शासन के सिद्धान्त
और
प्रमुख शासन पद्धतियाँ

Theory of Constitution & Important World Constitutions

(शासन के सिद्धान्त, यूनाइटेड किंगडम, संयुक्त राज्य अमरीका
सोवियत संघ तथा स्विटजरलैण्ड)

[मेरठ, कानपुर, गढ़वाल, कुमायूँ, बुन्देलखण्ड तथा अन्य विश्वविद्यालयों की
बी. ए. कक्षाओं के लिए]

लेखक
पी० शरण
एम. ए., पी-एच. डी.
भू० पू० प्राचार्य, मेरठ कालिज, मेरठ

अन्य महत्वपूर्ण पाठ्य-पुस्तकें

१. राजनीतिशास्त्र के सिद्धान्त भाग १ — डा० के. एन. वर्मा

२. राजनीतिशास्त्र के सिद्धान्त भाग २ (प्रमुख राजनीतिक वाद) — डा० के. एन. वर्मा

शासन के सिद्धान्त
एवं
प्रमुख शासन पद्धतियाँ

पूर्णतया संशोधित संस्करण : १९७९–८०

मूल्य : १७·५० रुपये

राकेश रस्तोगी द्वारा रस्तोगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ–२५० ००२ के लिए प्रकाशित तथा नेशनल प्रेस, मेरठ–२५० ००२ द्वारा मुद्रित।

भूमिका

'प्रमुख शासन पद्धतियों' का नवीन संशोधित संस्करण प्रस्तुत है। इसे अब की घटनाओं और विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा स्नातक कक्षाओं के लिए [प्रस्]तावित पाठ्यक्रमों को ध्यान में रखकर पूर्णतया संशोधित एवं परिवर्द्धित किया [ग]या है। कठिन और जटिल संवैधानिक बातों को सरल भाषा में रखने का प्रयत्न [कि]या गया है और उनके उपयोगी उदाहरण जोड़े गये हैं। प्रत्येक अध्याय के अन्त में [ऐ]से प्रश्न दिये गये हैं कि जिनकी सहायता से विद्यार्थी परीक्षाओं में अच्छी श्रेणी प्राप्त कर सकेंगे। सोवियत संघ की शासन पद्धति नये संविधान के आधार पर ही [र]खी गई है।

पाठ्य सामग्री में कठिन और पारिभाषिक शब्दों के कोष्ठकों में अंग्रेजी [रूपा]न्तर दिये गये हैं और फुटनोट में मान्य अंग्रेजी ग्रन्थों से उपयुक्त उद्धरण दिये गये हैं। जिन विद्वान लेखकों के ग्रन्थों से विचार तथा उद्धरण लिए गए हैं, उनके प्रति [ले]खक अत्यन्त आभारी है। लेखक को विश्वास है कि पाठकों को पुस्तक पहले से भी कहीं अधिक पसन्द आयेगी।

पारिजात
७५, साकेत, मेरठ

पी० शरण

विषय-सूची

शासन के सिद्धान्त

युनाइटेड किंगडम की शासन पद्धति

सं० रा० अमरीका की शासन पद्धति

सोवियत संघ की शासन पद्धति

स्विटजरलैण्ड की शासन पद्धति

शासन के सिद्धान्त

१. शासन और राजनीतिक पद्धति

१. शासन का अर्थ व महत्व

राज्य—राजनीतिक संगठन एवं संस्थाओं में सबसे प्रमुख स्थान 'राज्य' का है। एक सर्वव्यापी संस्था है और प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी राज्य में रहता है। स्की के शब्दों में : 'राज्य सामाजिक सहयोग की आधारशिला है।' फाइनर के नुसार, 'राज्य को सर्वोपरि सामाजिक ढांचे के रूप में देखा जा सकता है।' जनीतिक रूप में संगठित समाज ही राज्य है। मेकाइवर के अनुसार, 'राज्य एक र संघ है जो सामाजिक व्यवस्था को स्थित रखता है और उसका विकास करता है; ी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसकी केन्द्रीय संस्था (सरकार) को समुदाय की संयुक्त क्ति मिली होती है।' वुडरो विलसन कहता है : 'राज्य सबसे उच्च समुदाय है : एक निश्चित प्रदेश में नियम पालन के लिये संगठित किया जाता है।' राज्य वभिन्न परिभाषाओं में सबसे अधिक स्पष्ट और श्रेष्ठ गार्नर द्वारा की गई परिभाषा ो इस प्रकार है : 'राज्य मनुष्यों का एक संगठन है; वे मनुष्य एक निश्चित ग पर न्यूनाधिक स्थायी अधिकार रखते हैं; वे प्रायः बाह्य नियन्त्रण से स्वतन्त्र हैं और उनकी एक संगठित सरकार होती है, जिसकी आज्ञाओं का उनकी बहुत ी जनसंख्या आदतन पालन करती है।'' संक्षेप में, राज्य एक स्वतन्त्र, संगठित : भूमिगत समाज होता है। राज्य के चार आवश्यक तत्व जनसंख्या, निश्चित भाग, सरकार और प्रभुसत्ता (राज्य सत्ता) हैं।

शासन या सरकार—प्रत्येक राज्य की अपनी सरकार होती है; यह सभी शासन ाने वाले व्यक्तियों का समूह होती है। सरकार ही शासन का संचालन करती है : राज्य के सभी कार्यों की देख-रेख करती है। वास्तव में, राज्य के ध्येयों को कार द्वारा ही पारिभाषित किया जाता है; उनको सामने रखकर ही सरकार य-समय पर राज्य की नीति निर्धारित करती है और उसके कार्यक्रम ही सरकार नीति व कार्यक्रम होते हैं, जिन्हें सरकार कार्य रूप देने के सभी प्रयत्न करती है। ाकि राज्य सामान्य ध्येयों और सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये राजनीतिक ी में संगठित 'व्यक्ति' अथवा संस्था है; सरकार उस अभिकरण, अधिकारी-वर्ग, ावा संगठन का सामूहिक नाम है जिसके द्वारा राज्य की इच्छा को निर्धारित, भिव्यक्त और प्राप्त किया जाता है।' संक्षेप में, सरकार राज्य की मशीन है।

'The state is a community of persons more or less numerous, permanently occupying a definite portion of independent territory or nearly so of external control, and possessing an organised government to which the great body of inhabitants render habitual obedience.'
—*J. W. Garner*, Political Science and Government, p. 49.

सरकार के कई अर्थ हैं। सबसे व्यापक अर्थ में, किसी भी देश की सरकार में वे सभी अधिकारी एवं कर्मचारी सम्मिलित रहते हैं जो किसी भी प्रकार का सरकारी कार्य करते हैं। अति संकुचित अर्थ में, राज्य की सर्वोच्च कार्यपालिका को (जो राज्य की नीति को कार्यान्वित कराती है) सरकार कहते हैं, यथा कांग्रेस सरकार, ब्रिटेन में मजदूर दलीय सरकार, आदि। सरकार को प्रशासन (administration) का पर्यायवाची भी समझा जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका में कहा जाता है—कनेडी प्रशासन, कार्टर प्रशासन। फाइनर ने ठीक ही बताया है कि सरकार राजनीति और प्रशासन का योग (politics plus administration) है। इस प्रकार सरकार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) राजनीति की प्रक्रिया और (२) प्रशासन प्रक्रिया।[1]

सरकार का महत्व—किसी भी राज्य का सरकार के बिना अस्तित्व सम्भव नहीं; शासन के अभाव का अर्थ व परिणाम अराजकता है। राज्य की सुरक्षा, राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने तथा उसके निवासियों की अच्छे जीवन के लिए अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये सरकार का होना अत्यन्त आवश्यक है। **ऑस्टिन रेनी** के अनुसार, 'सरकार का मुख्य कार्य सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करना, और अधिकारपूर्ण नियमों (अर्थात् कानूनों) को इस प्रकार बनाना व लागू करना है कि राष्ट्र की एकता व स्वतन्त्रता बनी रहे।'[2] सरकार का महत्व इस बात से भी आँका जा सकता है कि यह एक सर्वव्यापी संस्था है। सभी स्थानों पर और सभी कालों में मनुष्य किसी न किसी सरकार के अधीन रहे हैं। परन्तु सरकार के वृद्धिपूर्ण महत्व का कारण उसके कार्यों में हुई अपूर्व वृद्धि है।

सरकार के कार्यक्षेत्र में वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारणों को हम, संक्षप में, इस प्रकार रख सकते हैं—(१) राज्य के ध्येय के विषय में राजनीतिक विचारधारा में महत्वपूर्ण अन्तर हुआ है; अब अ-हस्तक्षेप की नीति (*laissez fair* policy) को त्याग दिया गया है और राज्य जनता के हित में अनेक प्रकार के कार्य करने लगा है। (२) प्रत्येक राज्य में जनसंख्या की वृद्धि हो रही है। उससे उत्पन्न कठिन समस्याओं का निराकरण करने के लिए अब प्रगतिशील सरकारें प्रायः सभी प्रकार के कार्य करने लगी हैं। (३) वर्तमान युग में युद्ध का रूप अत्यन्त भयंकर हो गया है और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी ऐसी हो गई हैं कि आधुनिक सरकारों को अनेक कार्य करने होते हैं। **इन सभी बातों के परिणामस्वरूप** राज्य के कार्यों अर्थात् सरकार के कार्यक्षेत्र में इतना अधिक विस्तार हो गया है कि आज सरकार के लिए अग्रलिखित वाक्यांशों का प्रयोग होने लगा है : 'बड़ी सरकार

1. *H. Finer*, The Theory and Practice of Modern Government, p. 7.
2. 'The main task of government is to satisfy the social needs; to make and enforce authoritative rules in such a way that the nation will hold together and remain independent.—*A. Ranney*, Governing of Men, p. 36.

(Big Government), 'प्रशासनिक राज्य' (Administrative State) और 'नया लिवियाथन' (New Leviathan) ।[1]

यह सच है कि आज के युग में भौतिक कल्याण (Material welfare) के लिए मनुष्यों की चाह इतनी अधिक बलवती बन गई है कि उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता को प्रबन्धक वर्ग (Managerial Class) अर्थात् सरकार व प्रशासक समूह के हाथों में सौंप दिया है। शासन के विशेषज्ञों (Technacrats) ने यह आशा दिलाई कि वे जन-साधारण का जीवन स्तर ऊंचा उठा सकेंगे और काम करने के घण्टों में कमी भी करा सकेंगे। फलतः सरकार के कार्यों में बहुत वृद्धि हुई, विशेष रूप से जन-कल्याण कार्यों अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्र और सांस्कृतिक कार्यों में।

अतएव नए समाज में जन-साधारण के लिए शासन की भूमिका में बड़ा परिवर्तन हुआ है। परन्तु सन्तुलन बनाये रखने के हित में राज्य के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह सामाजिक पद्धति में अपना नियन्त्रण अथवा अपनी प्रधानता को कायम करे। ऐसा करने के लिए नई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में विभिन्न समूहों की विरोधी मांगों को समायोजित करना ही काफी नहीं रहा, वरन् सरकार को सोच-समझकर सामाजिक कल्याण की नई दशाओं की रचना करनी पड़ी है। इस प्रकार सरकार को राज्य के अभिकर्ता (Agent) के रूप में धन के उत्पादन और वितरण के लिए निश्चित रूप में अधिक उत्तरदायित्व सम्भालना पड़ा।[2]

सरकार के संगठन का आधार संविधान (Constitution) होता है। उसमें सरकार के प्रमुख अंगों—कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के संगठन, उनकी शक्तियों व कार्यों का परिगणन तथा उनके आपसी सम्बन्ध दिये रहते हैं। साथ ही, संविधान में नागरिकों के अधिकारों (व कर्तव्यों) का भी समावेश होता है। इस प्रकार संविधान सरकार और नागरिकों के बीच सम्बन्धों को भी पारिभाषित करता है। किसी देश की सरकार के अध्ययन में इन सभी बातों या पहलुओं का अध्ययन तो किया ही जाता है, परन्तु आजकल इस प्रकार के अध्ययन को पूर्ण नहीं समझा जाता। सरकार के संचालन में राजनीतिक दलों व हित समूहों (Interest Groups) का बड़ा महत्वपूर्ण भाग रहता है। 'शासन' (Government)

1. Big government requires a large apparatus to carry on many of its functions...one of the conspicuous characteristics of modern government is the large and increasing number of functions. The performance of these functions requires elaborate administrative machinery.

   —*M. Marx*, The Administrative State, p. 1.

2. 'Thus, government, as the agent of the state, has been forced more and more to assume positive responsibility for the creation and distributions of wealth. In so doing it has abmost universally become big government, both in scope and in the numbers of those employed in carrying on its responsibilities'.

   —*Carter and Heiz*, Government and Politics in the Twentieth century, p. 9.

का एक अति महत्वपूर्ण पहलू 'राजनीति' (Politics) है और राजनीति में जैसा कि इसका शाब्दिक अर्थ है, राज्य की नीति का निर्धारण (Formulation of Policy) अथवा महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सरकार द्वारा निर्णय करना (Decision Making) आते हैं। इस कार्य में राजनीतिक दलों, हित समूहों आदि का भाग महत्वपूर्ण होता है। अतएव आजकल प्रवृत्ति यह है कि शासन (सरकार) के संगठन के साथ उसे प्रभावित करने वाली राजनीति का भी अध्ययन किया जाय। इन दोनों के अध्ययन से मिलकर 'राजनीतिक पद्धति' का अध्ययन बनता है, जिसमें इनको प्रभावित करने वाली अन्य बातों को भी सम्मिलित किया जाता है, जैसा कि आगे के विवेचन स्पष्ट होगा।

२. राजनीतिक पद्धति

आजकल पाठ्य-पुस्तकों व प्रवन्धों (monographs) में शासन, राज्य और राष्ट्र के स्थान पर राजनीतिक पद्धति (political system) के प्रयोग का चलन हो गया है। राज्य, शासन और राष्ट्र शब्द कानूनी व संस्थागत अर्थों से सीमित हैं। ये हमारा ध्यान संस्थाओं के उस समूह की ओर दिलाते हैं जो साधारणतया आधुनिक पाश्चात्य समाजों में पायी जाती हैं। अब शासन के अध्ययन के लिये जिन विश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्यों (analytical perspectives) का प्रयोग किया जाता है उनमें वर्तमान काल में बड़ा परिवर्तन हुआ है। उस परिवर्तन का प्रतीक **'राजनीतिक पद्धति'** (Political system) की धारणा का उदय और उसकी प्रधानता है। राजनीतिक पद्धति की धारणा का अब व्यापक रूप में चलन हो गया है क्योंकि यह हमारा ध्यान समाज के भीतर राजनीतिक गतिविधियों के सम्पूर्ण क्षेत्र की ओर दिलाती है, वे गतिविधियाँ समाज के चाहे किसी भी क्षेत्र में आती हों।

आमोण्ड और पोवेल के मतानुसार इसकी अनेक परिभाषाओं में सामान्य बात इसका समाजों में प्रयुक्त होने वाले वैध शारीरिक बल (legitimate physical coercion) से सम्बन्ध है। ईस्टन ने उसे मूल्यों का अधिकारपूर्ण नियतन (authoritative allocation of values) कहा है; डहल शक्ति, शासन और सत्ता की बात कहता है। इन सभी परिभाषाओं में वैध अनुशास्तियाँ (legitimate sanctions), कानून मनवाने व दण्ड देने की उचित शक्ति निहित है।

पद्धति की धारणा इसलिए आकर्षक है कि राजनीतिक पद्धति, जीवित प्राणी की भाँति अन्तर्निर्भर अंगों से मिलकर बनती है। यदि हम पूर्ण संगठन (पद्धति) का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें उसके अंगों के बीच जटिल अन्तर्क्रियाओं की गहराई में जाना होगा। राजनीतिक पद्धति, शासनतन्त्र द्वारा, बाध्यकारी और वैध निर्णयों को उत्पन्न करने का कार्य करती है राजनीतिक पद्यति के आधारभूत तत्व ये हैं : (१) शक्ति (२) हित, (३) नीतियाँ, और (४) राजनीतिक संस्कृति।[1] आमोण्ड के शब्दों में; 'राजनीतिक पद्धति समाज में वैध, व्यवस्था बनाये रखने वाली, अथवा

1. *G. Abcarian and G. S. Masannat*, Contemporary Political System, pp.10—11.

परिवर्तन लाने वाली पद्धति है ...वैध बल वह सूत्र है जो राजनीतिक पद्धति के निवेशों (inputs) और निर्गतों (outputs) में घिरा है, और उसे पद्धति के रूप में उसका विशेष गुण, प्रमुखता और सुसंगतता प्रदान करती हैं।"[1]

वार्ड और मेक्रीडीज के शब्दों में : 'राजनीतिक पद्धति वह तन्त्र है जिसके द्वारा सार्वजनिक मामलों के क्षेत्र में (in the realm of public affair) समस्याओं को समझा और प्रस्तुत किया जाता है तथा निर्णय किये व प्रशासित किये जाते हैं। वह सरकारी तन्त्र जिसके द्वारा इन समस्याओं और निर्णयों को कानूनी रूप में समझा, प्रस्तुत किया और प्रशासित किया जाता है सरकार कहलाती है। परन्तु तुलनात्मक राजनीति के विद्यार्थियों के लिए सरकार ही अध्ययन का एकमात्र विषय नहीं है।[2]

कहने का तात्पर्य यह है कि सरकार (शासन) तो अधिक व्यापक धारणा—राजनीतिक पद्धति—का एक अंग है। राजनीतिक पद्धति में सरकार के अतिरिक्त उन सभी अनौपचारिक अथवा गैर-सरकारी कारकों को भी सम्मिलित किया जाता है जो सार्वजनिक मामलों के क्षेत्र में समस्याओं को समझने व प्रस्तुत करने, निर्णय करने और उन्हें प्रशासित करने के यन्त्र को प्रभावित करते हैं, यथा (१) उसकी ऐतिहासिक विरासत और भौगोलिक साधन, उसका सामाजिक व आर्थिक संगठन उसकी विचारधारायें और मूल्य-पद्धतियाँ तथा उसकी राजनीतिक शैली (political style); और (२) उसके दलीय हित तथा नेतृत्व की संरचना। इस प्रकार राजनीतिक पद्धति में बल शासनतन्त्र पर ही नहीं वरन् उन अनेक अनौपचारिक व गैर-सरकारी कारकों पर हैं जो राजनीति को प्रभावित करते हैं। आमोण्ड ने राजनीतिक पद्धति के निवेश कार्यों (input functions) और सरकार के निर्गत कार्यों (output functions) के बीच अन्तर किया है।

इस सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्वपूर्ण राजशास्त्री डेविड-ईस्टन है। उसके विचारों का सारांश इस प्रकार है—हम राजनीतिक पद्धतियों का अध्ययन इसलिये करते हैं, कि उनके अधिकार पूर्ण निर्णयों (authoritative decisions) के परिणामों का समाज के लिये बहुत महत्व है। इन परिणामों को निर्गत (outputs) कहा जा सकता है किसी भी पद्धति को जीवित रखने के लिये यह आवश्यक है कि उसमें निरन्तर निवेश (inputs) होता रहे। निवेशों के बिना कोई पद्धति कार्य नहीं कर सकती; और निर्गत के बिना उसके कार्यों को समझा-पहचाना नहीं जा सकता। राजनीतिक पद्धति के निवेश और निर्गत कार्यों को अग्र प्रकार रखा जा सकता है :

1. 'The political system is the legitimate, order maintaining or transforming system in the society...legitimate force is the thread that runs through the inputs and outputs of the political system, giving it its special quality, and salience, and its coherence as a system. —*Almond.*
2. *Ward and Macridis*, Modern Political Systems : Europe. p. 8.

राजनीतिक पद्धति में निवेश कार्य समाज, साधारण वातावरण, राजनीतिक दलों, दबाव अथवा हित समूहों, स्कूलों, समाचार-पत्रों द्वारा किये जाते हैं। परन्तु सभी निर्गत कार्य सरकार द्वारा किये जाते हैं। सम्पूर्ण प्रक्रिया को पर्यावरण के सम्बन्ध में देखना चाहिए। हम सरल ढंग से कह सकते हैं कि समाज में समय-समय पर नई माँगें (demands) उठती हैं और उन्हें समर्थन (support) मिलता है। ये सभी कार्य राजनीतिक दल, हित समूह, समाचार-पत्र आदि करते हैं। माँगें और उनके समर्थन राजनीतिक पद्धति के लिये निवेश हैं। राजनीतिक पद्धति में उन माँगों के फलस्वरूप आवश्यक निर्णय लिये जाते हैं तथा नीतियाँ बनाई जाती हैं, जो उसके निर्गत कहलाते हैं। समय बीतने पर निर्गतों से पर्यावरण (environment) में परिवर्तन पैदा होते हैं, जिनके परिणामस्वरूप नई माँगें उत्पन्न होती हैं। फीडबैक (feedback) का यही विचार है। इसी विचार के अनुसार, आजकल राजनीति के गतिशील कारकों (dynamic factors) को अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

उपर्युक्त चार प्रकार के निवेश कार्य और तीन प्रकार के निर्गत कार्य बताये गये हैं; उनकी संक्षिप्त व्याख्या यहाँ दी जाती है। शासन व राजनीति में भाग लेने के लिये व्यक्तियों को समाजीकृत किया जाता है अर्थात् इस प्रकार की शिक्षा व प्रशिक्षण दिया जाता है और उनकी राजनीति में भर्ती होती है अर्थात् वे राजनीति में प्रवेश करते हैं और अनेक प्रकार की भूमिकायें (roles) प्रस्तुत करते हैं। समाज

में माँगें उठती हैं; विभिन्न प्रकार के हितों का हित समूह (interest groups) उच्चारण (articulatin) करते हैं अर्थात् माँगों को सरकार के सामने रखते हैं। अनेक प्रकार के हितों के समूहीकरण (aggregation) के लिये राजनीतिक दलों का गठन हो जाता है। राज्य और सरकार के बीच विभिन्न प्रकार से संचार होता है, जिसे राजनीतिक संचार (political communication) कहते हैं। इसके मुख्य साधनों में हम समाचार-पत्रों, रेडियो व टेलीविजन (mass media) को गिन सकते हैं।

राजनीतिक पद्धति में अनेक अधिकारी व शासन के अंग अधिकार-पूर्ण निर्णय करते हैं तथा सरकारी नीतियों का निर्धारण करते हैं। इसी कार्य को नियम बनाना (rule-making) कहा गया है। नियमों को लागू करने (rule-application) का काम कार्यपालिका व प्रशासन का है। जो व्यक्ति नियमों अर्थात् कानूनों का उल्लंघन करते हैं, उनके विरुद्ध न्यायिक कार्यवाही (rule-adjudication) की जाती है; यह कार्य न्यायपालिका का है। इस प्रकार राजनीतिक पद्धति के उत्पादन कार्य वही हैं जो कि परम्परा के अनुसार सरकार के माने गये हैं।

माँगों का निवेश (input of demands) पद्धति को कार्य करते रहने के लिये काफी नहीं है। माँगों का समर्थन होना जरूरी है, जो राजनीतिक पद्धति में इन लक्ष्यों के सम्बन्ध में किया जाता है—समुदाय और शासन। माँगों का कितना समर्थन किया जाय जिससे कि राजनीतिक पद्धति माँगों को निर्णय व नीति के उत्पादन में परिवर्तित कर सके, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। यदि राज्य के निर्णय व नीतियाँ ऐसे हों कि समुदाय उसका समर्थन करें तो उससे शासन-तन्त्र को बल मिलता है। समुदाय के सदस्यों के राजनीतिक समाजीकरण (political socialization) से भी शासन-तन्त्र को समर्थन मिल सकता है। इसीलिये प्रगतिशील राज्यों में सरकारें युवा वर्ग को स्कूलों व कालिजों में राज्य के उद्देश्यों, उच्च आदर्शों व कार्यक्रमों के बारे में शिक्षा देने की व्यवस्था करती हैं। साथ ही संचार माध्यमों (mass media) द्वारा भी सम्पूर्ण जनता को राजनीतिक शिक्षा देती हैं। आजकल अपने देश में सरकार जनता को २० सूत्री तथा ५ सूत्री कार्यक्रमों के बारे में सभी प्रकार से शिक्षित करने का यथासम्भव प्रयत्न कर रही है। इसके परिणाम-स्वरूप जनमत सरकार के पक्ष में बन सकेगा और जन समर्थन से सरकार को आगे बढ़ने में बल प्राप्त होगा।

राजनीतिक पद्धति के अध्ययन हेतु अनेक नई धारणाओं की जानकारी पाना आवश्यक है। उनमें से मुख्य का उल्लेख उपरोक्त विवेचन में किया गया है। आजकल विभिन्न प्रकार की सरकारों (अथवा राजनीतिक पद्धतियों) के अध्ययन को वैज्ञानिक रूप प्रदान किया गया है और इसे तुलनात्मक शासन व राजनीति (Comparative government and politics) कहा जाता है। अतः इस प्रकार

के अध्ययन का स्वरूप आजकल चले आ रहे—परम्परागत (traditional)—अध्ययन से काफी भिन्न है। परन्तु इस बारे में यहाँ अधिक विवेचन करना आवश्यक नहीं है।

यद्यपि सरकारों के प्रमुख रूपों (forms of government) का विस्तारपूर्ण विवेचन अध्याय ३ में किया गया है, फिर भी यहाँ यह बताना उचित प्रतीत होता है कि राजनीतिक पद्धतियाँ विभिन्न प्रकार की हैं। आमोण्ड के अनुसार उनका वर्गीकरण यह है (१) आंग्ल-अमरीकी पद्धतियाँ, (२) महाद्वीपीय यूरोप की पद्धतियाँ, (३) पूर्व-औद्योगिक अथवा आंशिक रूप में औद्योगिक पद्धतियाँ और (४) सर्वाधिकारवादी पद्धतियाँ। ब्लॉण्डेल के मतानुसार राज्यों (राजनीतिक पद्धतियों) को पाँच बड़े संवर्गों में रखा जा सकता है: (अ) उदारवादी प्रजातन्त्र (liberal democracies) जिनमें वल सार्वजनिक निर्णय किये जाने में उदारवाद पर है। (ब) साम्यवादी पद्धतियों में, सामाजिक लाभों की क्षमता को प्राथमिकता दी जाती है और उदारवादी उपायों (साधनों) पर बहुत कम बल दिया जाता है। (स) परम्परागत राज्य में शासन सामान्यत: अल्पतान्त्रिक (या धनिकतन्त्री) होता है और उसका स्वरूप रूढ़िवादी अथवा अनुदार (conservative) होता है। (द) दूसरे विश्व युद्ध के बाद बने विकासशील राज्यों में सामाजिक और आर्थिक लाभों की अधिक समता के ध्येयों का पालन करने का प्रयास हो रहा है। (य) एक सत्ताधारी अनुदार (authoritative conservative) पद्धति वह है जिसमें अधिक समता और शासन-कार्यों में जनता के अधिक भाग लेने के प्रयत्नों का विरोध किया जाता है।[1]

प्रश्न

१. 'शासन' का अर्थ बताइये और उसका महत्व समझाइये।
२. वर्तमान काल में सरकार के कार्यों में वृद्धि के कारण दीजिए। आजकल सरकार को बड़ी सरकार' (Big Government) क्यों कहा जाता है?
३. राजनीतिक पद्धति' (Political system) की कोई परिभाषा दीजिये और बताइये कि आप उससे क्या समझते हैं?
४. शासन और राजनीतिक पद्धति के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
५. निम्नलिखित शब्दों से आप क्या समझते हैं?
   (अ) निवेश कार्य
   (ब) निर्गत कार्य
   (स) राजनीतिक समाजीकरण
   (द) मांगें और समर्थन।

1. *J. Blendle*, Comparing Political Systems, pp. 41—3.

२. संविधान

१. संविधान क्या है ?

संविधान का अर्थ व परिभाषायें—संविधान की विभिन्न लेखकों ने अनेक परिभाषायें और व्याख्यायें की हैं। हम उनमें से कुछ प्रमुख का संक्षिप्त विवेचन करेंगे। जोन ऑस्टिन के शब्दों में सविधान वह है 'जो सर्वोच्च शासन के संगठन को नियत करता है।' लीकॉक के शब्दों में 'यह सरकार का स्वरूप है' (It is the form of government)। जी० सी० लिवस कहता है कि 'संविधान शब्द का अर्थ समुदाय में सर्वोच्च सत्ता की व्यवस्था और वितरण अथवा शासन के रूप से है (The term constitution signifies the arrangement and distribution of the sovereign power in the community, or theform of the government.) एक और अच्छी परिभाषा जैलीनेक की है, इसके अनुसार 'संविधान उन कानूनों का नाम है जिनके द्वारा राजशक्ति को प्रयोग में लाने वाले प्रधान अङ्गों का रूप निश्चित किया जाता है और उनके द्वारा ये सब बातें निर्धारित की जाती हैं कि इन विभिन्न अंगों का निर्माण किया जाय इनमें परस्पर क्या सम्बन्ध हो, इसका अर्थ क्या हो और इनमें से प्रत्येक का राज्य के साथ क्या सम्बन्ध हो ?' 'लिखित संविधान साधारणतया विशेष पवित्रता का आलेख होता है, जो अन्य सभी कानूनों से स्वरूप में भिन्न होता है, जो भिन्न स्रोत से निकलता है, जिसकी कानूनी सत्ता उच्चतर होती है और जिसमें परिवर्तन भिन्न प्रक्रिया द्वारा होता है।'[1]

स्ट्राँग के शब्दों में : संविधान उन सिद्धान्तों का समूह होता है, जिनके अनुसार सरकार की शक्ति, शासितों के अधिकार और दोनों के बीच सम्बन्धों को ठीक रखा जाता है।' ब्राइस के अनुसार, संविधान ऐसे सुस्थापित नियमों का समूह है जो सरकार के संचालन से सम्बन्धित हों और उसे निदेशन देते हों (Constitution is a set of established rules embodying and directing the practice of government) अन्तिम परिभाषा अधिक विस्तृत है, पर इसमें व्यक्ति के अधिकारों का वर्णन नहीं है। यद्यपि डायसी की परिभाषा अधिक स्पष्ट नहीं है, फिर भी व्याख्या करने पर उससे ये बातें स्पष्ट हैं—(अ) नियमानुसार लिखित कानून और प्रचलित प्रथायें संविधान के मुख्य तत्व होते हैं और वे सरकार का स्वरूप निश्चित करते हैं। (आ) व्यक्तियों के अधिकार, सरकार का संगठन व उसकी कार्य-पद्धति तथा राज्य और नागरिक के आपसी सम्बन्धों का उसमें वर्णन होता है। अब ह

1. 'A written constitution is generally an instrument of special sancti, distinct in character from all other laws, proceeding from a differen source, having a higher legal authority and alterable by differen procedure.'

संविधान की व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं : वे *आधारभूत सिद्धान्त, जो किसी राज्य के शासन की बनावट और शासन के विभिन्न अंगों की शक्तियों, उनके आपसी सम्बन्धों व राज्यों और नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्धों को निर्धारित करते हैं, जो एक या अधिक आलेखों (documents) में वर्णित होते हैं और जिनमें परिवर्तन की कोई विशेष विधि होती है, राज्य का संविधान कहलाते हैं।*[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं व व्याख्याओं से एक यह बात स्पष्ट है कि प्रत्येक राज्य के लिए संविधान का होना अनिवार्य है। कुछ लेखकों, जैसे डी० टॉकविले का मत है कि इंगलैंड में कोई संविधान नहीं है, क्योंकि वे केवल लिखित संविधान को ही संविधान मानते हैं। परन्तु वे 'संविधान' शब्द का संकुचित अर्थ लेते हैं। वास्तव में, संविधान के व्यापक अर्थ में इंगलैंड तथा अन्य सभी राज्यों का अपना-अपना संविधान है, चाहे वह लिखित हो या अलिखित।[2] ऊपर दी गई संविधान की परिभाषाओं से दूसरी बात यह स्पष्ट है कि संविधान कम या अधिक रूप में निम्नलिखित बातों को निश्चित करता है—(१) राज्य के शासन का स्वरूप और संगठन; (२) शासन के विभिन्न अंगों—कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका की शक्तियाँ और कार्य; (३) शासन के विभिन्न अंगों के आपसी सम्बन्ध; (४) नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य; (५) शासन और नागरिकों के आपसी सम्बन्ध; और (६) संविधान के संशोधन हेतु प्राविधान (amending provisions)।

संवैधानिक शासन (Constitutional Government)—जिस राज्य में निरंकुश [illegible] राजतन्त्र (अथवा अधिनायकतन्त्र) होता है, वहाँ शासन की सभी शक्तियाँ [illegible] व्यक्ति के हाथों में निहित व केन्द्रित होती हैं। सर्वोच्च सत्ता प्राप्त व्यक्ति [illegible] इच्छा ही उस राज्य में कानून होती है और वहाँ पर शक्तियों का शासन के विभिन्न अंगों में वितरण नहीं होता। ऐसे राज्य या शासन को बिना संविधान वाला राज्य कह सकते हैं। इसके विपरीत संवैधानिक शासन का आधार कोई संविधान होता है और शासन शक्तियों का प्रयोग शासन के उच्च अधिकारी तथा विभिन्न अंग संविधान द्वारा वितरित शक्तियों के अनुसार करते हैं। उदाहरण के लिए, प्राचीन तथा मध्य युग में अधिकतर राज्य ऐसे थे, जिनमें कोई संविधान न था, अतः उनमें संवैधानिक शासन न था। आजकल भी ऐसे राज्यों के कुछ उदाहरण

1. 'The fundamental principles that determine the form of a state are called its constitution. These include the method by which the state is organised, the distribution of its sovereign powers among the various organs of government, the scope and manner of exercise of governmental functions, and the relation of the government to the people over whom its authority is exercised. —*R. G. Gettell*, Political Science, p. 116.
2. 'A constitution is the whole body of fundamental [illegible]les writteen [illegible] unwritten, legal and extra legal, according to wh[illegible] a govern[illegible] operates'. —*A. Ranney*, Governing [illegible] pp. 7[illegible]

मिलते हैं—जैसे सऊदी अरब या अरब के कुछ अन्य छोटे-छोटे राज्य, जिनमें शासक अपनी इच्छानुसार शासन करते हैं।

परन्तु अब सभी प्रगतिशील राज्यों में किसी न किसी प्रकार का संविधान मिलता है। अतः अब अधिकतर राज्यों में संवैधानिक शासन पाया जाता है। इंगलैंड में अब राजा है, किन्तु उसके अधिकार और शक्तियाँ केवल दिखावटी हैं, इसलिए वहाँ का राजा संवैधानिक शासक कहलाता है। **संवैधानिक शासन**[1] की एक महत्वपूर्ण विशेषता अथवा पहचान यह है कि उनमें किसी व्यक्ति या शक्ति-समूह का शासन नहीं होता वरन् कानूनों का शासन होता है और संविधान के कानून शासकों की शक्तियों पर कम या अधिक रोक लगाते हैं। इसीलिए **प्रो० स्ट्रांग** का कथन है कि संविधान शासकों की स्वेच्छाचारी शक्ति को सीमित करता है और शासितों के अधिकारों का संरक्षण भी।

अच्छे संविधान के लिए आवश्यक बातें—अच्छे संविधान में कुछ आवश्यक बातों का होना जरूरी है; उन्हें हम उसके लक्षण भी कह सकते हैं। संक्षेप में, ये निम्न प्रकार हैं :

(१) यह निश्चित होना चाहिए। इसी कारण उसके प्रावधान लिखित हों और उनकी भाषा स्पष्ट हो, ऐसा जरूरी है।

(२) संविधान विस्तारपूर्ण (Comprehensive) होना चाहिए; उसमें शासन के संगठन, अंगों की शक्तियाँ, उनके आपसी सम्बन्ध व नागरिकों के अधिकार आदि दिये होने चाहियें।

(३) साथ ही संविधान संक्षिप्त (brief) होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उसमें विस्तार की बातों (details) को जहाँ तक हो सके, कम से कम देना चाहिए।

(४) संविधान में संशोधन की विधि दुस्संशोध्य (rigid) होनी चाहिए; परन्तु; परन्तु ऐसी अनमनीय नहीं कि उसमें समय के साथ परिवर्तन करने में अति कठिनाई आये।

(५) संविधान की प्रस्तावना (preamble) तथा अन्य भागों में राज्य के लक्ष्यों (objectives) तथा सरकार के मार्ग-दर्शक सिद्धान्त (Principles of policy) दिये होने चाहियें, जैसे कि भारत के संविधान में प्रस्तावना और राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्त (Directive Principles of State policy) दिये हैं।

संविधान निर्माण के विभिन्न ढंग—आधुनिक राज्यों के संविधानों का निर्माण साधारणतया चार प्रकार से हुआ है। (१) **राजा द्वारा प्रदत्त** (Grants)—आधुनिक राज्यों का विकास मध्यकालीन राजतन्त्रों से हुआ है। एक के बाद दूसरे शासक ने

1. 'According to Aristotle it has three elements : 1. It is rule in the public or general ; 2. It is a lawful rule; and 3. Constitutional government means the government of willing subjects
—*G. H. Sabine*, A History of Political Theory.

अपनी प्रजा को कुछ अधिकार और शासन में भाग लेने का अवसर दिया और अपनी शक्तियों के प्रयोग हेतु कुछ सिद्धान्तों को सीमा रूप में स्वीकार किया। साधारणतया शासकों ने यह कार्य जनता द्वारा क्रान्ति किये जाने के भय से किया और इस प्रकार सीमित राजतन्त्र अथवा प्रजातन्त्र का विकास हुआ। ऐसे संविधान को ऑक्ट्राइड (Octroyed) **संविधान** कहते हैं, क्योंकि ऐसे संविधान या अधिकार पत्र (Charter) का स्वरूप एक प्रकार के अनुबन्ध या वायदे जैसा होता है। कुछ वर्ष पूर्व नेपाल नरेश ने अपनी प्रजा को एक प्रजातान्त्रिक संविधान दिया था, जिसे वर्तमान नरेश ने एक प्रकार से वापस ले लिया। जापान का संविधान इसी प्रकार बना था। (२) **मननात्मक रचना** (Deliberative creation)—फिलाडेलफिया सम्मेलन में सन् १७८७ में संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान इसी प्रकार निर्मित किया। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद मध्य योरप के कई देशों और वर्तमान समय में अनेक नये स्वतन्त्र राज्यों के संविधान इसी प्रकार बने हैं। एक अर्थ में भारत का संविधान भी निर्मित है, किन्तु यह बहुत सीमा तक विकास का फल है। (३) **क्रान्ति के परिणामस्वरूप** (Revolution)—फ्रांस, रूस और स्पेन के संविधानों का निर्माण आन्तरिक क्रांतियों के बाद ही हुआ था। कभी-कभी तो क्रांति के बाद बनने वाली अस्थायी सरकार स्वयं सविधान बनाती है और उस पर जनता की स्वीकृति लेती है और कभी-कभी यह संविधान निर्माण के लिए कोई विशेष प्रक्रिया का प्रयोग करती है, जैसे संविधान-निर्मात्री सभा बुलाना। (४) **विकास द्वारा** (Evolution)—ग्रेट ब्रिटेन के संविधान को अधिकांशत: विकास का परिणाम कह सकते हैं। भारत का संविधान तथा अनेक देशों के वर्तमान संविधान बहुत सीमा तक विकसित हैं। वास्तव में, निर्मित संविधान भी समयानुसार संशोधित होते रहते हैं; इस प्रकार अधिकतर संविधानों का वर्तमान रूप विकास का परिणाम कहा जा सकता है।

२. संविधानों का वर्गीकरण

वास्तव में, संविधानों के उतने ही प्रकार हैं जितने प्रकार शासन संगठनों के पाये जाते हैं। फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए संविधानों का कुछ आधारों पर वर्गीकरण किया गया है। वर्गीकरण के मुख्य आधार इस प्रकार हैं—

प्रथम, संविधान के संशोधन की विधि—किसी राज्य के संविधान में वहाँ की सर्वोच्च व्यवस्थापिका द्वारा उसी साधारण ढंग से संशोधन होते हैं, जैसे कि राज्य के अन्य कानूनों का निर्माण होता है। अधिकतर राज्यों में संशोधन के लिए विशेष प्रक्रिया होती है, जो संविधान में ही दी हुई होती है। इस आधार पर संविधान सुसंशोध्य अथवा दुस्संशोध्य कहे गये हैं। दूसरे जिस ढग के अनुसार **शासन की शक्तियों का सम्पूर्ण राज्य की सरकार और प्रादेशिक इकाइयों के बीच वितरण** किया जाता है, उस आधार पर संविधानों को एकात्मक अथवा संघात्मक में बाँटा जाता है। एकात्मक संविधान में शासन की सर्वोच्च शक्तियाँ एक केन्द्रीय सरकार में निहित

होती है शासन की सुविधा के लिए राज्य प्रशासनिक इकाइयों में बंटा हो सकता है, परन्तु इन इकाइयों की कोई स्वतन्त्र सत्ता व अधिकार नहीं होते। संघात्मक संविधान में संविधान द्वारा शक्तियों को संघ सरकार और इकाइयों की सरकारों में बांट दिया जाता है।

तीसरे, शासन के विभिन्न अंगों, विशेष रूप से कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के आपसी सम्बन्ध के आधार पर संसदात्मक संविधान में कार्यपालिका और विधायिका के बीच सामञ्जस्य रहता है और अध्यक्षात्मक (राष्ट्रपतीय) संविधान में दोनों एक दूसरे से पृथक् होते हैं। चौथे, कुछ लेखकों ने संविधान को राजतन्त्रात्मक और गणतन्त्रात्मक दो अलग समूहों में बांटा है। जिस देश में राज्य का अध्यक्ष राजा होता है चाहे वहाँ जनतन्त्रीय शासन हो जैसा कि इंगलैंड में, उसे राजतन्त्रात्मक कह सकते हैं। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमरीका व भारत आदि देशों में गणतन्त्रीय संविधान हैं क्योंकि इनमें राज्य के अध्यक्ष निर्वाचित राष्ट्रपति हैं। इनके अतिरिक्त संविधानों का अन्य आधारों पर विकसित और निर्मित, कानूनी और यथार्थ तथा लिखित और अलिखित में भेद किया गया है। यहाँ पर केवल संविधानों के निम्नलिखित प्रकारों का विवेचन किया जायेगा, क्योंकि शेष की व्याख्या आगे के अध्यायों में की गई है—

(१) **विकसित और निर्मित** (Evolved and Enacted)—कुछ लेखकों ने संविधानों का वर्गीकरण इस आधार पर किया है कि कुछ संविधान लम्बे ऐतिहासिक विकास के फल हैं जबकि दूसरों का किसी समय-विशेष में निर्माण हुआ है। विकसित संविधान ऐतिहासिक विकास का परिणाम होता है। हेनरी मेन ने विकसित संविधानों को ऐतिहासिक भी कहा है; क्योंकि ये अनुभव पर आधारित विकास का परिणाम होते हैं। इसके विपरीत जो संविधान दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर बनाए जाते हैं, उन्हें उसने 'अ प्रायोराई' (*a priori*) बताया है। लगभग सभी लेखक यह स्वीकार करते हैं कि इंगलैंड का संविधान विकसित है, क्योंकि इसका निर्माण किसी संविधान सभा द्वारा किसी समय-विशेष में नहीं हुआ। इसके संविधान का विकास कई सदियों में जाकर पूर्ण हुआ है (English constitution is a growth and not a make)। वहाँ पर राजा ने किसी एक समय-विशेष पर अपने अधिकारों को सीमित करके वहाँ की जनता को न तो कोई संविधान प्रदान किया और न ही वहाँ की जनता के प्रतिनिधियों ने किसी समय विशेष में एकत्रित होकर देश के संविधान का निर्माण किया। इसी कारण समय-समय पर बने संवैधानिक कानून, स्वीकृत प्रथायें और न्यायालयों के निर्णय वहाँ संविधान के अति महत्वपूर्ण तत्व हैं। इसके विपरीत **निर्मित संविधान** वह है जिसे कोई संविधान सभा, जिसकी रचना विशेष रूप से संविधान के निर्माण हेतु ही की गई हो, किसी समय-विशेष में एकत्रित होकर लिखित रूप में स्वीकार करती है। आजकल अधिकतर राज्यों के संविधान निर्मित ही हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में इस प्रकार

के संविधान का सबसे पहले निर्माण हुआ और उसके बाद फ्रांस, आयरलैंड, सोवियत संघ, भारत आदि सभी देशों में संविधान का निर्माण किया गया। भारत का संविधान ऐसा ही है, जिसे संविधान सभा ने २६ नवम्बर, सन् १९४९ को अन्तिम रूप में स्वीकार किया था, किन्तु यह संविधान एक लम्बे काल में हुए संवैधानिक विकास का परिणाम है।

(२) कानूनी और यथार्थ (Legal and Real)—कभी-कभी इस प्रकार का भेद लिखित संविधान के विषय में किया जाता है। लगभग प्रत्येक राज्य में जहाँ लिखित संविधान होता है, संविधान के मौलिक लेख्यों (लिखित तत्वों) के अतिरिक्त कुछ प्रचलित प्रथायें और अभिसमय (Conventions) भी संविधान के तत्व रूप में स्वीकार कर ली जाती हैं। संविधान के लिखित तत्वों—मौलिक आलेखों को कानूनी संविधान कहते हैं और जब इनमें प्रचलित प्रथाओं, अभिसमयों और न्यायालयों के निर्णय को सम्मिलित कर लिया जाता है तो संविधान के ऐसे सामूहिक रूप को यथार्थ संविधान कहते हैं। वास्तव में, किसी देश का संविधान केवल मौलिक आलेख ही नहीं होते। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान के लिखित तत्वों को २ घण्टे से भी कम पढ़ा जा सकता है, किन्तु केवल उनके अध्ययन से ही वहाँ के संविधान के वास्तविक रूप का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। अस्तु, किसी राज्य के संविधान को समझने के लिए हमें उसके यथार्थ संविधान का अध्ययन करना आवश्यक है।

(३) लिखित और अलिखित—इतिहास से पता चलता है कि लिखित संविधान आधुनिक युग की देन है। स० रा० अमरीका का संविधान, जो सन् १७८७ में बना था, सबसे पुराना लिखित संविधान है। लिखित संविधान में अधिकांश भाग लिखित होता है। संवैधानिक आलेख एक या अधिक हो सकते हैं। इनमें शासन के स्वभाव और संगठन तथा सर्वोच्च सत्ता के निवास का वर्णन दिया होता है। ये आलेख शासकों की शक्तियों और शासितों के अधिकारों का परिगणन भी करते हैं। इसके विपरीत अलिखित संविधान वह होता है जिसमें संविधान सम्बन्धी नियम अधिकांश में लिपिबद्ध नहीं होते वरन् वे अनेक प्रचलित प्रथाओं, अभिसमयों और न्यायिक निर्णयों आदि पर निर्धारित होते हैं। इस प्रकार के संविधान किसी समय-विशेष पर तथा किसी व्यक्ति द्वारा नहीं बनाये जाते। जैसा कि पहले बताया गया है विकसित संविधान का स्वरूप अधिकांशतः अलिखित होता है, जबकि निर्मित संविधान प्रायः लिखित होते हैं। अलिखित संविधान का सबसे अच्छा उदाहरण इंगलैंड का संविधान है। सं० रा० अमेरिका का संविधान सबसे पुराना लिखित संविधान है और लगभग अन्य सभी आधुनिक संविधान भी लिखित हैं। भारत का संविधान भी लिखित है। लिखित संविधान का अधिकांश भाग लिपिबद्ध होने के कारण लेख्य रूप में एक स्थान पर प्राप्त होता है, जबकि अलिखित संविधान (अधिकतर

अलिखित होने के कारण) उस देश के इतिहास में बिखरा होता है और उसका अधिकांश भाग लेख्य रूप में एक स्थान पर प्राप्त नहीं होता।

लिखित और अलिखित संविधान का भद वास्तविक नहीं है। बहुत से विद्वानों ने इस प्रकार के भेदों को मिथ्या, भ्रममूलक और अवैज्ञानिक बताया है। इसका कारण यह है कि कोई भी लिखित संविधान पूर्णतया लिखित नहीं रहता और कालान्तर में उसमें अलिखित तथ्यों का समावेश हो जाता है। ऐसे ही कोई भी अलिखित संविधान पूरी तरह से अलिखित नहीं होता, उसमें बहुत से महत्वपूर्ण तत्व लिखित होते हैं। उदाहरण के लिए सं० रा० अमरीका का संविधान लिखित और इंगलैंड का अलिखित माना जाता है। परन्तु अध्ययन करने पर पता चलता है कि सं० रा० अमरीका के लिखित संविधान का विकास हुआ है, बहुत सी प्रथायें और अभिसमय उसके महत्वपूर्ण अंश बन गए हैं। वहाँ के संविधान में राष्ट्रपति के मन्त्रि-मण्डल व दलीय पद्धति का कोई वर्णन नहीं है। दूसरी ओर, इंगलैंड का सविधान कहने को अलिखित है। किन्तु उसके बहुत से महत्वपूर्ण अंश लिखित हैं जैसे मेग्ना चार्टा, बिल ऑफ राइट्स, हेबियस कॉर्पस एक्ट, एक्ट ऑफ सेटिलमेंट और पार्लियामेंट के संगठन व निर्वाचन सम्बन्धी कानून जिन्हें समय-समय पर पार्लियामेंट ने कानून का रूप दिया। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लिखित और अलिखित संविधानों में गुण की अपेक्षा मात्रा का अन्तर अधिक होता है, (The distinction is one of degree and not of kind.)

अलिखित संविधान का प्रमुख गुण उसका **लचीलापन** होता है। इसमें समय और परिस्थिति के अनुकूल सुगमता से परिवर्तन हो जाते हैं। इसी कारण ऐसे संविधान के होते हुए क्रांति की सम्भावना नहीं रहती, क्योंकि यह संकटपूर्ण परिस्थितियों का सामना सरलतापूर्वक करने की क्षमता रखता है। दूसरे, अलिखित संविधान में **निर्बाध विकास** का पूर्ण अवसर होता है। अतः यह समय की भाँति गतिशील और परिवर्तनशील होता है। ऐसे संविधान का मुख्य दोष **अनिश्चितता व अस्पष्टता** है, क्योंकि इसके महत्वपूर्ण अंश लिखित नहीं होते। इसका दूसरा दोष **अस्थायीपन** है, इसमें सत्तारूढ़ दल अपने स्वार्थ-साधन के हेतु अथवा जनमत को अपने पक्ष में रखने के विचार से चाहे जब आसानी से परिवर्तन कर लेता है। कुछ लेखकों के विचार से ऐसे संविधान के अन्तर्गत नागरिकों के अधिकारों की रक्षा अपेक्षाकृत बहुत कम होती है। लिखित संविधान का मुख्य गुण उसकी निश्चितता व स्पष्टता होती है। अतः नागरिकों को सरकार की शक्तियों और अधिकारों का ज्ञान होता है। साथ ही सरकार के विभिन्न अंगों में विरोध और विवाद के अवसर कम आते हैं। इसका दूसरा गुण यह है कि इसमें नागरिकों के अधिकारों का वर्णन होने से वे अधिक सुरक्षित रहते हैं, क्योंकि शासक मनमानी नहीं कर सकते। लिखित संविधान में क्षणिक भावावेश में परिवर्तन नहीं हो सकता, क्योंकि प्रायः सभी

लिखित संविधान दुस्संशोध्य होते हैं। चूँकि लिखित संविधान प्रायः दुस्संशोध्य होते हैं, अतः इनका सबसे बड़ा दोष यह होता है कि संविधान में आवश्यकतानुसार परिवर्तन आसानी से नहीं हो पाते।

(४) **सुसंशोध्य (Flexible) और दुस्संशोध्य (Rigid)**—चूंकि लिखित और अलिखित संविधानों में भेद गुण का नहीं वरन् मात्रा का है, अतः इनका अन्तर कोई महत्व नहीं रखता। इसी कारण ब्राइस ने संविधान को सुसंशोध्य और दुस्संशोध्य दो श्रेणियों में बाँटा है। सुसंशोध्य संविधान से उसका अर्थ ऐसे संविधान से है जिसमें साधारण कानून बनाने की प्रक्रिया द्वारा ही परिवर्तन किया जा सके अर्थात् जिसमें संशोधन करने के लिए किसी विशेष या पेचीदा प्रक्रिया की आवश्यकता न पड़े। इसके विपरीत दुस्संशोध्य संविधान वह होता है जिसमें साधारण कानून बनाने की प्रक्रिया से संशोधन न किया जा सके। इस प्रकार इंगलैंड का संविधान सुसंशोध्य है, क्योंकि वहाँ कि पार्लियामेंट इसमें आवश्यकतानुसार जब चाहे और जैसे चाहे परिवर्तन कर सकती है और उसके लिए कोई विशेष प्रक्रिया या बहुमत की आवश्यकता नहीं है। परन्तु सं० रा० अमरीका, फ्रांस और भारत आदि देशों में संविधान दुस्संशोध्य हैं; क्योंकि इन देशों में संविधान के संशोधन के लिए किसी विशेष प्रक्रिया की व्यवस्था है। इसका लाभ यह है कि सुसंशोध्य संविधान नई परिस्थितियों के अनुसार बिना किसी कठिनाई के बदले जा सकते हैं, उनमें लचीलेपन का आधिक्य होता है; परन्तु दुस्संशोध्य संविधान आसानी से नहीं बदला जा सकता, क्योंकि वह कठोर होता है। अस्तु, सभी अलिखित संविधान सुसंशोध्य होते हैं और अधिकतर लिखित संविधान दुस्संशोध्य होते हैं, परन्तु यह अनिवार्य नहीं है कि लिखित संविधान दुस्संशोध्य ही हों। लिखित संविधान दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। विभिन्न देशों के लिखित संविधानों के अध्ययन से पता चलता है कि उनमें लचीलेपन की मात्रा में अन्तर होता है। संविधान का लचीलापन उसके संशोधन की विधि पर निर्भर करता है। सं० रा० अमरीका में संशोधन की विधि काफी कठिन और कठोर है, परन्तु अपने देश में संशोधन की विधि कम कठोर है। आधुनिक राज्यों की प्रवृति लिखित परन्तु सुसंशोध्य संविधान की ओर है। अतः संक्षेप में सुसंशोध्य और दुस्संशोध्य संविधानों में अन्तर का आधार यह है कि संविधान निर्माण एवं संशोधन करने और साधारण कानून बनाने की प्रक्रिया एकरूप है या नहीं।

सुसंशोध्य संविधान के कई लाभ हैं—(१) यह नई अथवा संकटकालीन परिस्थितियों का सामना सरलतापूर्वक कर सकता है; क्योंकि इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन आसानी से किए जा सकते हैं। (२) यह प्रगतिशील एवं विकासशील होता है। यह कभी पुराना और समय के विरुद्ध नहीं होता। इसका क्रमशः विकास

होता है; इसकी व्यवस्था जीवित और उर्वर होती है। इस प्रकार इस पर इतिहास की छाप लगी होती है। (४) चूँकि इसमें अति सुगमता से परिवर्तन हो जाते हैं, इसलिए देश में विप्लव व क्रान्ति का डर नहीं रहता।[1] परन्तु इसके गुण ही कभी दोषों का रूप धारण कर सकते हैं। चूँकि यह बहुत आसानी से बदला जा सकता है इस कारण इसमें भावावेश के अन्तर्गत क्षणिक और अहितकर परिवर्तन हो सकते हैं। इसके साथ ही ऐसा संविधान कुछ अनिश्चित और अस्पष्ट होता है, क्योंकि यह सदैव ही परिवर्तन की अवस्था में रहता है (It may be in a state of perpetual flux and may be the plaything of politicians)।

दुस्संशोध्य संविधान में ये गुण होते हैं—(१) यह अपेक्षाकृत अधिक अस्थायी होता है; क्योंकि इसमें आसानी से परिवर्तन नहीं किये जा सकते और यह दलीय हितों तथा जनता के भावावेश का शिकार नहीं बनता। (२) चूँकि यह लिखित होता है; इसीलिए इसमें सुनिश्चितता व स्पष्टता के गुण होते हैं। परन्तु इसकी अपरिवर्तनशीलता व स्थायित्व की कमी बड़ी हानिकारक सिद्ध हो सकती है, विशेषकर राष्ट्रीय आपातकाल में जबकि नई परिस्थितियों का सामना करने के हेतु इसमें संशोधन नहीं किया जा सकता। दूसरे चूँकि ऐसे संविधान का निर्माण किसी बीते हुए काल में, उस समय के आदर्शों व सिद्धान्तों के अनुरूप होता है, इसलिए उसमें बदलते हुए आदर्शों और सिद्धान्तों का समावेश सुगमता से नहीं होता; अतः यह प्रगतिशील होता है।[2]

३. संविधान का संशोधन और विकास

संशोधन प्रक्रिया—साधारणतया संशोधन करने की दो विधियाँ हैं—प्रथम, जिन देशों में सुसंशोध्य संविधान होता है, जैसे इंगलैंड व न्यूजीलैंड में, वहाँ राज्य की सर्वोच्च विधायिका जैसे अन्य साधारण कानून बनाती है वैसे ही संविधान में कोई भी परिवर्तन कर सकती है। दूसरे, अधिकतर दुस्संशोध्य संविधान वाले राज्यों में संशोधन के लिए साधारण कानून बनाने की प्रक्रिया से भिन्न कोई विशेष विधि होती है, जिसकी व्यवस्था संविधान में दी हुई होती है। संविधान की विशेष विधियाँ विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न हैं; उदाहरण के लिए यहाँ कुछ प्रमुख देशों की विधियों का सामान्य परिचय दिया जाता है—

सं० रा० अमरीका में कांग्रेस (राष्ट्रीय विधायिका) २/३ के बहुमत से संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकती है, अथवा २/३ उपराज्यों की व्यवस्थापिकाओं के प्रस्ताव पर संशोधन करने के हेतु कांग्रेस द्वारा उप-राज्यों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन

1. 'Flexible constitutions can be stretched or bent so as to meet emergencies without breaking their framework, and when emergency has passed they slip back into their old form like a tree whose outer branches have been pulled aside to let a vehicle pass.' —*J. Bryce.*
2. 'The greatest cause of revolutions is that while nations move onward constitutions stand still.' —*Macaulay.*

बुलाया जा सकता है। यह सम्मेलन आवश्यक संशोधन के लिए प्रस्ताव पेश कर सकता है। प्रस्तावित संशोधन का सम्पुष्टिकरण (ratification) या तो उपराज्यों की ३/४ व्यवस्थापिकाओं की स्वीकृति द्वारा या इतने ही उपराज्यों के सम्मेलनों द्वारा होता है। स्विटजरलैंड में संशोधन का प्रस्ताव मतदाताओं की निश्चित संख्या द्वारा भी पेश किया जा सकता है, इसे प्रस्तावाधिकार (initiative) कहते हैं। वहाँ पर प्रत्येक संशोधन पर मतदाताओं की स्वीकृति ली जाती है, इसे लोक-निर्णय (referendum) कहते हैं। भारत में संशोधन प्रस्ताव संसद् में ही पास किया जाता है, किन्तु उसके पास होने के लिए संसद् के दोनों सदनों में २/३ का बहुमत पक्ष में होना चाहिये। साथ ही संघ और राज्यों के बीच शक्तियों और अधिकारों के बीच सम्बन्धित प्रत्येक संशोधन प्रस्ताव का सम्पुष्टिकरण कम से कम आधे स्वायत्त राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा होना आवश्यक है।

संविधान का विकास—समय परिवर्तनशील है, समय के साथ राज्य की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दशायें बदलती हैं और उनके कारण संविधान में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन होता रहता है। इसी को संविधान का विकास (growth of the constitution) कहते हैं। साधारणतया संविधान का विकास पाँच प्रकार से होता है :—

प्रथम, **संशोधन द्वारा** (By amendment)—दुस्संशोध्य संशोधनों में भी समय-समय पर आवश्यकतानुसार संशोधन होते रहते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में अब तक २२ संशोधन हो चुके हैं और भारत के संविधान में इतने अल्पकाल में ही १६ संशोधन हुए हैं।

दूसरे, **अभिसमयों द्वारा** (By convention)[1]—प्रायः सभी देशों के संविधानों में समय के अनुसार बहुत सी संवैधानिक प्रथायें (customs), चलन (usages) या अभिसमय पड़ जाते हैं। ग्रेटब्रिटेन का संविधान तो वास्तव में बहुत बड़े अंश में अभिसमयों का समूह है। संयुक्त राज्य अमरीका व भारत आदि देशों के लिखित संविधानों में भी बहुत से परिवर्तन बिना संशोधन अभिसमयों द्वारा हुए हैं। उदाहरण के लिये, ब्रिटिश कॉमन सभा का अध्यक्ष पूर्णतया निष्पक्ष व निर्दलीय व्यक्ति होता है और जब तक वह सक्रिय राजनीति में भाग लेता है, उसे बिना विरोध चुन लिया जाता है। बहुत समय तक संयुक्त राज्य अमरीका में यह अभिसमय रहा कि कोई भी राष्ट्रपति दो अवधियों से अधिक पद पर न रहे किन्तु अब इस उद्देश्य से वहाँ के संविधान में संशोधन हो गया है। भारत की संसद् व राज्य विधान मण्डलों ने विभिन्न बातों में ब्रिटिश अभिसमयों को अपनाया है।

1. 'By 'convention' is meant a binding rule of behaviour accepted as obligatory by those concerned in the working of the constitution, by 'usage' is meant no more than a usual practice. Clearly a usage might become a convention.'

—*K. C. Wheare*, Modern Constitutions, Chapter VIII.

तीसरे, न्यायिक निर्वाचन व निर्णयों द्वारा (By judicial interpretation and decisions)—बहुधा अधिकार प्राप्त न्यायालय संविधान की धाराओं का निर्वाचन करते समय तथा संवैधानिक विवादों के निर्णयों द्वारा संविधान का विकास करते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार के कई महत्वपूर्ण निर्वाचन व निर्णय किये हैं। अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय के एक मुख्य न्यायाधीश ने सच ही कहा था 'हम संविधान के अन्तर्गत हैं, परन्तु संविधान वह है जैसा कि इसे न्यायाधीश बताते हैं।' उदाहरण के लिये, न्यायालयों ने ये मत प्रकट किये हैं—(१) संविधान की प्रस्तावना कोई शक्तियाँ नहीं प्रदान करती वह तो केवल लक्ष्य को पारिभाषित करती है। (२) प्रथम १० संशोधन केवल राष्ट्रीय सरकार में लागू होते हैं। (३) न्यायालय ऐसे कानूनों को अवैध घोषित कर सकते हैं जो संविधान का अतिक्रमण करते हैं। न्यायालयों के निर्णयों से ही निहित शक्तियों (implied powers) का सिद्धान्त निकला है, जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस की शक्तियों में बहुत वृद्धि हुई है।

चौथे, प्रायः सभी देशों की विधायिकायें समय-समय पर आवश्यकतानुसार संवैधानिक कानून बनाती हैं, अर्थात् उन बातों के बारे में कानूनों या संविधियों (Statutes) द्वारा उचित व्यवस्था करती हैं, जिनकी संविधान में पूर्ण व्यवस्था नहीं होती। संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में केवल सर्वोच्च न्यायालय सम्बन्धी धारायें हैं, अन्य संघीय न्यायालयों का संगठन कांग्रेस द्वारा निर्मित कानूनों से हुआ है। ऐसे ही राष्ट्रपति के चुनाव के सम्बन्ध में कांग्रेस ने कानून बनाये हैं। ब्रिटेन में तो अधिकतर संवैधानिक कानून पार्लियामेंट ने ही बनाये हैं। यथा पार्लियामेंट एक्ट सन् १९११, विभिन्न सुधार अधिनियम जिनसे मताधिकार विस्तृत हुआ है। भारत की संसद् राज्यों के पुनर्गठन सम्बन्धी कानून बना सकती है। जन प्रतिनिधित्व कानून (People's Representation Act) संघीय क्षेत्रों की विधायिकाओं की रचना सम्बन्धी आदि कानून संसद् द्वारा ही बने हैं।

पाँचवें, न्यायपालिका और विधायिका के साथ-साथ कार्यपालिका भी संविधान के विकास में योग देती है। सं० रा० अमरीका में कई राष्ट्रपतियों ने संविधान की विभिन्न धाराओं का निर्वचन किया है। लिंकन ने इस मत पर बल दिया कि दक्षिणी राज्य संघ से सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर सकते; रूजवेल्ट ने इस मत पर बल दिया कि कांग्रेस कार्यपालिका अधिकारियों को पद से हटाने की शक्ति पर सीमायें नहीं लगा सकती; उसने यह भी मनवाया कि बृहत् अर्थ में राज्य आर्थिक संकट को दूर करने के लिये आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता है। विश्व युद्ध के दौरान में कांग्रेस की स्वीकृति के बिना ही राष्ट्रपति विलसन ने कई प्रशासनिक अभिकरण स्थापित किये थे। वहाँ पर कार्यपालिका अन्य देशों के साथ संधियों के अतिरिक्त कार्यपालक समझौते (executive agreements) करने लगी है, जबकि संविधान में केवल संधियों के लिये ही व्यवस्था है।

व्हीयर के मतानुसार संविधान में परिवर्तन कई शक्तियों के प्रभाव से होता है। 'जनता' का अर्थ वास्तव में विभिन्न प्रकार के हितों और मतों के प्रभाव से है। इन शक्तियों में प्रमुख स्थान आर्थिक संकटों का है, जिनके कारण संविधान में केन्द्रीयकरण की दिशा में परिवर्तन होते हैं। दूसरे, केन्द्रीयकरण की ओर ले जाने में बड़ा महत्वपूर्ण भाग कार्यपालिका का है, जो विभिन्न कारणों से अतीत की तुलना में अधिक सुदृढ़ होती जा रही है। तीसरे, संविधान के क्रियात्मक रूप पर सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव राजनीतिक दलों का है। दलों का महत्व इतना अधिक है कि यह कहना उचित होगा कि संविधान ढाँचा है, जिसे रक्त और मांस दलों से मिलता है। अन्त में, संविधान के बारे में जनता के क्या विचार हैं, वह उसे कितना पवित्र मानती है, इन बातों का भी उनके परिवर्तन पर प्रभाव पड़ता है।

प्रश्न

१. 'संविधान' (Constitution) किसे कहते हैं ?

२. संविधान की दो परिभाषाएं दीजिए और यह स्पष्ट कीजिए कि उसमें किन बातों को सम्मिलित किया जाता है।

३. अच्छे संविधान में क्या-क्या बातें होनी चाहिए ?

४. संविधानों का वर्गीकरण किन आधारों पर किया जा सकता है।

५. निम्नलिखित के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिये :—

(अ) विकसित और निर्मित संविधान

(ब) सुसंशोध्य और दुस्संशोध्य संविधान

(स) लिखित और अलिखित संविधान

६. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए:—

(अ) संवैधानिक शासन

(ब) संविधान का विकास

(स) संविधान में संशोधन

३. शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त

१. सरकार के अंग या शाखायें

सरकार के कार्यों का परम्परागत विभाजन तीन वर्गों—विधायी, कार्यांग और न्यायिक में किया जाता है। उसी के आधार पर अधिकतर सरकारों के तीन प्रमुख अंग—विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका होते हैं। परन्तु कुछ विचारकों के अनुसार सरकार के कार्यों को दो समूहों —नीति निर्धारण और नीति का कार्यान्वयन में रखा जाना सबसे सरल है। विलोबी ने लिखा है कि सरकार की शक्तियों के सुस्थापित त्रि-वर्गीय विभाजन में यह बड़ी कमी है कि इसमें निर्वाचक मण्डल और प्रशासन के कार्यों के लिए स्थान नहीं है। अतः उसके अनुसार सरकार के कार्यों को ५ वर्गों में रखा जाना चाहिये।[1]

यहाँ पर फाइनर के मत को भी दिया जाना आवश्यक और उचित प्रतीत होता है। मोटे रूप में वह सरकार की शक्तियों को दो भागों में बाँटता है—(१) नीति-निर्माण और (२) प्रशासन। परन्तु जब वह इस विभाजन को राजनीतिक गति-विधियों के बारे में लागू करता है तो उसके अनुसार नीति-निर्धारण शाखा के केन्द्र निर्वाचक मण्डल, राजनीतिक दल, विधायिका, मन्त्रि-मण्डल और राज्य का अध्यक्ष हैं। दूसरी शाखा के केन्द्र मंत्रि-मण्डल, राज्य का अध्यक्ष, नागरिक सेवा और न्यायालय हैं। इस प्रकार राजनीतिक गतिविधियों के साथ मुख्य केन्द्र हैं, जिनका सहयोग सरकार के किसी भी पूर्ण कार्य के लिए आवश्यक है।[2]

पूर्वोक्त विभिन्न मतों में सत्य का काफी अंश है, फिर भी, सामान्यतः व्यवहार में सरकार की तीन ही प्रमुख शाखायें पायी व मानी जाती हैं। अतः आगे के अध्यायों में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका का विशद विवेचन किया जाएगा। उससे पूर्व यहाँ पर सरकार की तीनों शाखाओं अथवा शक्तियों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त का विवेचन किया जाता है।

२. शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त

शासन की शक्तियाँ तीन प्रमुख अंगों में बटी रहती हैं, यह विचार काफी प्राचीन है। एरिस्टॉटिल ने शासन के विभागों को सार्वजनिक सभा, मजिस्ट्रेटों और न्यायपालिका में विभाजित किया था। १६वीं शताब्दी में जीन बोदां ने राजा द्वारा न्याय-प्रशासन के खतरों को बताया और तर्क दिया कि न्यायिक कृत्य स्वतन्त्र मजिस्ट्रेटों को सौंपा जाना चाहिये। जेम्स हेरिंगटन ने कार्यपालिका और विधायिका के बीच स्पष्ट पृथक्करण पर जोर दिया। जोन लॉक ने शासन की शक्तियों को

1. *W. F. Willougbly*, The Government of Modern States, p 217.
2. *H. Finer*, Theory and Practice of Modern Government, p. 109.

तीन शाखाओं—विधायी, कार्यपालिका और फेडरेटिव (जिसका अर्थ कूटनीतिक शक्ति से है) में बाँटा। किन्तु शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन १८वीं शताब्दी में फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक **मॉन्टेस्क्यू** ने अपने विख्यात ग्रंथ 'स्प्रिट ऑफ दी लॉज' (Spirit of the Laws, 1748) में किया। वास्तव में मॉन्टेस्क्यू ने ऐसे समय में लिखा जबकि फ्रांस का राजा कह सकता था—'मैं राज्य हूँ (I am the State)।' वह इंगलैंड गया और वहाँ की जनता द्वारा स्वतन्त्रता के उपभोग की बड़ी सराहना की। उसने फ्रांस और इंगलैंड की शासन पद्धतियों की तुलना की और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि शासन शक्तियों का एक ही व्यक्ति के हाथों में केन्द्रीभूत होना अत्याचारी व निरंकुश शासन की ओर ले जाना है। अस्तु, उसने शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

उसके अनुसार सिद्धान्त की व्याख्या अग्रलिखित है:—'जब विधायिका और कार्यपालिका की शक्तियाँ एक ही व्यक्ति या व्यक्ति समुदाय (मजिस्ट्रेटों के समुदाय) के हाथ में केन्द्रित होती हैं, तो किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं होती, क्योंकि यह भय बना रहता है कि कहीं राजा या सीनेट (विधायिका) मनमाने कानून पास करके उनको मनमाने ढंग से लागू न करने लगें। यदि न्यायाधीश की शक्तियों को विधायिका और कार्यपालिका की शक्तियों से पृथक् नहीं किया जाता तो भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती। यदि न्यायपालिका और विधायिका शक्तियाँ सम्मिलित हैं तो प्रजा के जीवन और स्वतन्त्रता पर स्वेच्छाचारी नियन्त्रण होगा, क्योंकि इस दिशा में न्यायाधीश विधिनिर्माता (कानून बनाने वाला) भी होगा। यदि न्यायपालिका और कार्यपालिका की शक्तियाँ सम्मिलित हैं, तो न्यायाधीश पूर्ण रूप से आततायी बन सकता है। यदि एक व्यक्ति या व्यक्ति समुदाय, कुलीन या साधारण, कानून बनाये, उसको लागू करने और फैसला करने के तीन कार्यों को स्वयं करने लगे, तो प्रत्येक वस्तु का अन्त हो जायेगा अर्थात् पूर्णतया स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन होगा और स्वतन्त्रता का स्वप्न में भी विचार नहीं किया जा सकेगा।'[1]

उसका सिद्धान्त उस समय की राजनीतिक विचारधारा का महत्वपूर्ण अंश बना। यह सिद्धान्त संयुक्त राज्य अमरीका व फ्रांस की क्रांतियों के पीछे राजनीतिक दर्शन का भाग रहा। इस सिद्धान्त का १८वीं शताब्दी के अन्त में बने संविधानों में

1. 'When the legislative and executive powers are united in the same person or in the same body of magistrates, there can be no liberty, because apprehensions may arise, lest the same monarch and senate should enact tyrannical laws, to execute them in a tyrannical manner......Again, there is no liberty, if the judiciary power be not separated from the legislative and executive... There would be an end of everything, were the same man, or the same body, whether of the nobles or of the people, to exercise those three powers that of enacting laws, that of executing the public resolutions and of trying the causes of individuals.'
—*Montesquieu*, The Spirit of Laws.

भी समावेश किया गया। सन् १७८९ में फ्रांस की संविधान निर्मात्री सभा ने यह घोषित किया कि जिस देश में शक्ति पृथक्करण की व्यवस्था नहीं है, उस देश में संविधान नहीं हो सकता अर्थात् वहाँ का शासन संवैधानिक नहीं हो सकता। सन् १७६५ में मॉन्टेस्क्यू के उपर्युक्त दृष्टिकोण का समर्थन प्रसिद्ध अंग्रेज विधिशास्त्रवेत्ता (jurist) ब्लेकस्टोन ने इन शब्दों में किया : 'जब कभी कानून बनाने और उनको लागू या क्रियान्वित करने का अधिकार (या शक्ति) एक ही व्यक्ति या व्यक्ति समुदाय के हाथ में होगा तो किसी भी प्रकार की सार्वजनिक स्वतन्त्रता नहीं हो सकती।...यदि न्याय करने की शक्ति को विधि निर्माण की शक्ति के साथ सम्मिलित कर लिया जाये तो जनता का जीवन, स्वतन्त्रता व सम्पत्ति स्वेच्छाचारी न्यायाधीश के हाथ में हो जायेगी, जिनके निर्णय को मर्यादित करने के लिए उनके निजो विचार होंगे और कानून में कोई मौलिक नियम उसको मर्यादित नहीं कर सकेंगे।...यदि न्यायपालिक की शक्तियाँ सम्मिलित हो जायें तो ये दोनों मिलकर व्यवस्थापिका को निरर्थक कर देंगे।[1]

३. शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त व्यवहार में

इस सिद्धान्त को पूर्णतया लागू करने का अर्थ यह है कि विधायिका जो एक निश्चित अवधि के लिए चुनी जाये केवल विधि निर्माण कार्य करे; कार्यपालिका जिसका जनता प्रत्यक्ष निर्वाचन करे या जो संयुक्त राज्य अमरीका की भांति निर्वाचक मण्डल द्वारा अप्रत्यक्ष ढंग से चुनी जाये केवल कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य करे; और न्यायाधीश, जिनका इसी प्रकार चुनाव हो, अपना कार्य विधायिका व कार्यपालिका से स्वतन्त्र रह कर करें। विभिन्न राज्यों के संविधानों के अध्ययन से पता लगता है कि किसी भी राज्य में इस सिद्धान्त को पूर्णतया लागू नहीं किया जा सका। कुछ प्रमुख राज्यों में सिद्धान्त के क्रियात्मक रूप का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

संयुक्त राज्य अमरीका—संयुक्त राज्य अमरीका तथा विभिन्न संघान्तरित राज्यों के संविधानों में इस सिद्धान्त का समावेश है। सं० रा० अमरीका की विधायिका का कांग्रेस द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन होता है और राष्ट्रपति भी एक निश्चित अवधि के लिए परोक्ष रीति से चुना जाता है। राष्ट्रपति और उसके द्वारा नियुक्त विभिन्न विभागों के अध्यक्ष कांग्रेस की कार्यवाही में उपस्थित रह कर भाग नहीं ले सकते और राष्ट्रपति कांग्रेस का निश्चित अवधि से पूर्व विघटन नहीं कर सकता। इसी प्रकार न्यायाधीश भी स्वतन्त्र हैं, उनका कार्यकाल कार्यपालिका की इच्छा पर निर्भर नहीं करता। परन्तु वहाँ भी तीनों शाखाओं के

1. In all tyrannical governments the supreme magistracy, or the right both of making laws and of enforcing them, is vested in one and the same man, or one and the same body of men; and wherever these two powers are united together there can be no public liberty. —*Blackstone.*

बीच कई प्रकार से सम्पर्क बना हुआ है। प्रथम, निरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त के अनुसार एक शाखा के कार्यों पर दूसरे को रोक लगाने की शक्ति प्राप्त है। राष्ट्रपति कांग्रेस को अपने संदेशों द्वारा आवश्यक और वांछनीय कानून बनाने के सुझाव देता है और जब कांग्रेस किसी विधेयक को पास कर देती है तो उसे उस पर एक प्रकार का प्रतिषेध (veto) की शक्ति प्राप्त है। विभिन्न विभागीय अध्यक्षों को कांग्रेस की समितियों के सामने गवाही देने के लिए बुलाया जाता है, राष्ट्रपति द्वारा उच्च अधिकारियों की नियुक्तियों और कार्यपालिका द्वारा की गई संधियों पर सीनेट की सहमति आवश्यक है। राष्ट्रपति पर कांग्रेस महाभियोग लगा सकती है। राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करता है। न्यायाधीश सरकारी अधिकारियों की अवैध कार्यवाहियों तथा कांग्रेस द्वारा निर्मित अवैध कानूनों पर अपने निर्णय देते हैं।[1]

दूसरे, वर्तमान शताब्दी में सं० रा० अमरीका में बहुत से स्वतन्त्र रेगुलेटरी आयोग (Independent Regulatory Commissions) बने हैं, उनके कारण भी शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त संशोधित हुआ है। उदाहरण के लिये फेडरल ट्रेड कमीशन की रचना कांग्रेस ने सन् १९१४ में की। इसका उद्देश्य व्यवसाय और व्यापार को विनियमित करना है अर्थात् एक प्रकार का विधायी कार्य करना है। परन्तु कमीशन नियमों का उल्लंघन करने वालों की जाँच करता है जो एक प्रकार से कार्यपालिका का कार्य है और साथ ही यह उनके विरुद्ध मुकदमों की सुनवाई करता है, यह न्यायिक कार्य है। तीसरे, शासन की विभिन्न शाखाओं के बीच समन्वय बनाये रखने में राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण भाग है।'[2]

ग्रेट ब्रिटेन और भारत—संसदात्मक पद्धति वाले देशों में जिनमें ग्रेट ब्रिटेन सर्व-मुख है, मन्त्रिमण्डल एक प्रकार से विधायिका की समिति होता है अर्थात् विधायिका और कार्यपालिका के बीच अत्यधिक निकट सम्पर्क है। मन्त्री विधायिका की कार्यवाही में प्रमुख भाग लेते हैं, कानून बनवाते हैं और उन्हें लागू भी कराते हैं। मन्त्रिमण्डल कॉमन सभा का अवधि से पूर्व विघटन भी करा सकता है और लार्ड

1. 'In practice, separation is never complete. The so-called checks and balances in the United States, such as the veto of the President over acts of Congress and the ratification of treaties by the Senate represents a breakdown of strict separation. So also does the American assumption that the President will provide political leadership of the Congress.'

   —*Dillon, et al*, Introduction to Political Science, p 72.

2. 'In the United States, where separation of powers and checks and balances have been pushed to an extreme dangerous to the unity of Governmental action, political parties have arisen, powerful in organization, binding together all the departments of Government.'

   —*R. G. Gettell*, Political Science, p. 216.

सभा के नये सदस्यों (Peers) को भी बनवाता है। दूसरी ओर, विधायिका मन्त्रि-मण्डल को हटा सकती है। कार्यपालिका न्यायाधीशों को नियुक्त करती है और कुछ प्रकार के मुकदमों की सुनवायी भी करती है। इस प्रकार ब्रिटेन में पृथक्करण के स्थान पर एकीकरण है। कार्यपालिका कानूनों के अन्तर्गत अधीन नियम और विनियम (Rules and regulations) भी बनाती है।"[1] न्यायाधीश सरकारी अधिकारियों के आचरण पर विधि के नियम के सिद्धान्त के अनुसार, निर्णय देते हैं। यह सब कुछ होते हुए भी ब्रिटेन में शक्तियों का सीमित पृथक्करण है। विधि-निर्माण विधायिका का कार्य है और विधायिका कार्यपालिका से पृथक है। कार्यपालिका शक्ति ताज और उसके मन्त्रियों में निहित है, विधायिका इस कार्य में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करती, न्यायपालिका के कार्य में कार्यपालिका तथा विधायिका हस्तक्षेप नहीं करती। भारत में भी शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त को ब्रिटेन की भाँति ही लागू किया गया है।

सोवियत संघ—सोवियत संघ के संविधान में इस सिद्धान्त का ध्यान नहीं रखा गया। वहाँ प्रिसीडियम (Presidium) एक ऐसी अनोखी संस्था है जो तीनों ही प्रकार के कार्य करती है। स्वयं एक सोवियत लेखक, विशिस्की का कथन है कि 'ऊपर से नीचे तक सोवियत सामाजिक व्यवस्था एक ही भावना से प्रेरित है, वह यह कि सत्ता एक (अविभाजित) है और वह परिश्रम करने वालों की है। सर्वसंघीय साम्यवादी दल के कार्यक्रम ने शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त को अस्वीकृत किया है।'[2]

४. सिद्धान्त की समालोचना

यह सच है कि एक व्यक्ति या समूह के हाथों में शासन की सभी या अधिकांश शक्तियों का केन्द्रित होना अत्याचारी शासन की ओर ले जाने वाला है। इसी कारण प्राचीन राजा निरंकुश होते थे और आजकल अधिनायकशाही में भी व्यक्तियों की स्वतन्त्रता 'नहीं' के समान रहती है। सिद्धान्त रूप में यह उचित ही है कि शासन के तीन मुख्य कार्यों को तीन शाखाओं या अंगों को सौंपा जाय, जिससे वे अपना-अपना कार्य सुचारु रूप से कर सकें। सभी विचारक इस बात से सहमत हैं कि न्यायपालिका स्वतन्त्र होनी चाहिए अर्थात् उसके कार्य में कार्यपालिका व विधायिका को हस्तक्षेप करने की शक्ति नहीं मिलनी चाहिए। इस प्रकार जहाँ शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त के आधारभूत विचार और उद्देश्य का सम्बन्ध है वे सभी को मान्य होंगे; किन्तु इसे क्रियात्मक रूप देने में कठिनाइयाँ हैं और यह व्यवहार में दोष-रहित नहीं है।

1. 'The British Government has rather what can be called fusion of powers. Cabinet members, the executive, are the leaders of Parliament. Thus the executive and legislative functions are fused and together they lay down the rules for the judiciary.' —*Dillon et al*, op cit., p. 37.
2. *A. V. Vyshinsky*, The Law of the Soviet State, p. 318.

संयुक्त राज्य अमरीका तथा ग्रेट-ब्रिटेन आदि में इस सिद्धान्त के क्रियान्वित रूप को देखने से स्पष्ट होता है कि इसे कहीं भी पूर्णतया लागू नहीं किया जा सकता। संयुक्त राज्य अमरीका में, जहाँ इसे अधिक से अधिक मात्रा में लागू किया गया है, शासन का सुचारु रूप से संचालन सम्भव न होता यदि वहाँ पर निरोध व सन्तुलन के सिद्धान्त और राजनीतिक दलों का विभिन्न अंगों के बीच सम्पर्क स्थापित करने में महत्वपूर्ण योग न होता। वास्तव में, इस सिद्धान्त को पूर्ण रूप से लागू करना असम्भव है; क्योंकि शासन की विभिन्न शाखाओं को एक दूसरे से भिन्न दिशाओं में जाने से रोकने वाली व्यवस्था का होना अति आवश्यक है। संयुक्त राज्य अमरीका में यह कार्य संविधान के बाहर 'अदृश्य सरकार' द्वारा किया जाता है।"[१]

कुछ विद्वानों के मतानुसार शासन को तीन भागों में बाँटना कृत्रिम है; जैसा कि दूसरे खण्ड में बताया जा चुका है। कुछ विचारकों के अनुसार शासन को २ और कुछ के अनुसार ५ भागों में बाँटा जा सकता है। वास्तव में शासन एक पूर्ण वस्तु (an organic whole) है जिसके विभिन्न अंगों के बीच निकट सम्पर्क रहना आवश्यक है। अतएव शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त पूर्णतया मान्य नहीं हो सकता। शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का एक बड़ा दोष यह है कि इसके कारण शासन के विभिन्न अंगों के बीच एक प्रकार की अनुचित स्पर्धा चलती है, एक दूसरे के प्रति संदेह की भावना पैदा होती है और इनमें विवाद के अवसर आते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में कांग्रेस ने प्रशासन पर अपना नियंत्रण रखने के अनेक प्रशासनिक अभिकरण और सेवायें (administrative agencies and services) कायम की हैं। इस सिद्धान्त के रहते हुए यदि कार्यपालिका का अध्यक्ष एक दल का हो और विधायिका में बहुमत दूसरे दल का हो तो कार्यपालिका और विधायिका के बीच शक्ति के लिए एक प्रकार का संघर्ष चलना स्वाभाविक है, जिसके परिणामस्वरूप शासन कार्य सुगमतापूर्वक नहीं चल सकता। हरमन फाइनर के शब्दों में 'शक्ति का पृथक्करण शासन व्यवस्था में शिथिलता तथा संघर्ष को जन्म देता है।'

लास्की ने लिखा है कि संयुक्त राज्य अमरीका में नियुक्ति शक्ति के प्रयोग और दलों के संगठन ने कार्यपालिका और विधायिका के वीच आवश्यक मेल स्थापित किया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कहीं अधिक अच्छी विधि इंगलैंड और फ्रांस

1. 'There must be some means of getting the co-ordinate departments of government to act and to move in the same general direction. Hence the departments so carefully separated are united by such extra legal means as party causes, party boss, patronage, the so-called invisible government.' —*Jacobsen and Lipman*, An Outline of Political Science. p. 87.

की भाँति कार्यपालिका को विधायिका की एक समिति बनाने में है ।[1] गेटेल कहता है कि यदि मान लिया जाये कि स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए शक्तियों का विस्तृत पृथक्करण आवश्यक है तो भी इस सिद्धान्त को व्यवहार में सफलतापूर्वक लागू नहीं किया जा सकता। प्रजातन्त्रीय राज्य में उस अंग की शक्तियों का केन्द्रीयकरण जो कि जनता का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करता हो, जन-स्वतन्त्रता की स्वतन्त्र और अनुत्तरदायी विभागों में बाँट देने की अपेक्षा अधिक अच्छी प्रकार से सुरक्षा कर सकता है। अतः मॉंटेस्क्यू की यह धारणा की स्वतन्त्रता की रक्षा शक्तियों के पृथक्करण द्वारा हो सकती है, सर्वथा निर्मूल है। स्वतन्त्रता 'शक्ति त्रिभाजन' या 'निरोध और संतुलन के सिद्धान्त' (Theory of 'Checks and Balances') पर निर्भर नहीं करती, वरन् जनता की भावना एवं स्वतन्त्रता के प्रति उसके प्रेम पर निर्भर करती है। इंग्लैंड की जनता अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता का उपभोग इसलिए नहीं करती कि वहाँ पर शासन शक्तियाँ विभक्त हैं, जैसा कि मांटेस्क्यू का विचार था, वरन् इसलिए कि वहाँ कि जनता स्वतन्त्रता को अपेक्षाकृत अधिक प्रेम करती है। इंग्लैंड की जनता अपनी स्वतन्त्रता के प्रति सदा पर्याप्त रूप से जागरुक रहती है और कभी ऐसे शासन को सहन नहीं कर सकती जो उसमें वाधा डालता है।

यह सिद्धान्त शासन के विभिन्न विभागों की भ्रमात्मक समता पर आधारभूत है जबकि वास्तव में विधायी (legislative) विभाग अन्य दोनों विभागों की अपेक्षा महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली होता है। लोकतन्त्र विकास के साथ-साथ कार्यपालिका की स्थिति इसके अधीन हो गई है। ऑग (Ogg) के अनुसार 'कार्यपालिका पर विधायिका का नियन्त्रण उत्तरदायी सरकार की पहली शर्त है, जिसके अभाव में लोकतन्त्र सफल नहीं हो सकता। देश के वित्त (Finance) पर अधिकार होने के कारण की विधायिका की शक्ति सर्वोपरि हो जाती है, क्योंकि उसके हाथ में कोष (purse) का नियन्त्रण रहता है। वित्त विभाग प्रत्येक वस्तु का नियन्त्रण करता है।' गिलक्राइस्ट कहता है कि 'वित्त पर नियन्त्रण होने से विधायिका कार्यपालिका को मर्यादित करती है, तथा उस पर नियन्त्रण करती है, सैद्धान्तिक रूप से कार्यपालिका कितनी ही स्वतन्त्र क्यों न हो।'

निष्कर्ष—शक्ति विभाजन की उपर्युक्त आलोचना से यह सर्वथा प्रकट है, कि इस सिद्धान्त का पूर्ण रूप से प्रयोग करना न तो व्यावहारिक ही है और न वांछनीय ही, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि इस सिद्धान्त का कोई मूल्य या महत्व ही नहीं है। यद्यपि शासन के तीन विभाग एक दूसरे पर निर्भर करते हैं तो भी उनके कार्य

1. 'The use of the patronage, on the one hand, and the peculiar structure of parties, on the other, has effected by means open to serious question a conjunction between executive and legislature which needs, in any case to be made. Much the best method of obtaining it is to make executive, as in England and France, a committee of the legislature.'
—*H. J. Laski*, A-Grammer of Politics, pp 298-99.

क्षेत्र स्पष्टतया पृथक् होने चाहिएँ। लास्की कहता है कि कार्यों का पृथक्करण (अवश्य) होना चाहिए। (परन्तु) इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि कर्मचारी पृथक्-पृथक् हों। इस प्रकार का विभाजन शासन के निपुण संचालन के लिये आवश्यक है। वैयक्तिक स्वतन्त्रता के लिए कर्मचारियों का विशेषकर न्यायपालिका के कर्मचारियों का पृथक्करण भी आवश्यक है।

राजशास्त्र के विद्वानों में इस प्रश्न पर एक मत नहीं है कि मॉन्टेस्क्यू ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते समय तीनों शक्तियों के पूर्ण अथवा सीमित पृथक्करण का अनुमोदन किया। हम अधिकतर लेखकों के इस मत से सहमत हैं कि मॉन्टेस्क्यू तीनों विभागों के बीच पूर्ण शक्ति-पृथक्करण नहीं चाहता था। उसके सामने ग्रेट ब्रिटेन का उदाहरण एक आदर्श रूप में था, अस्तु वह सीमित पृथक्करण ही चाहता था। शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त मूल्यवान है यदि हम इसका अर्थ यह लें कि शासन के तीनों अंगों पर नियन्त्रण पृथक्-पृथक् व्यक्ति समूह का हो और उनमें से किसी एक को भी अन्य दो विभागों के ऊपर नियन्त्रण शक्ति प्राप्त न हो। इस प्रकार का पृथक्करण व्यक्तियों की स्वतन्त्रता का रक्षक और अत्याचारी शासन से बचाने वाला है।

अन्त में, न्यूमेन का मत मान्य प्रतीत होता है; अत्यधिक पृथक्करण में तो उत्तरदायित्व नष्ट हो सकता है, कार्य की प्रगति रुक सकती है। सरकार ही नष्ट हो सकती है। सरकार स्वतन्त्र रहनी चाहिए; परन्तु इसमें शासन करने की शक्ति अवश्य ही बनी रहनी चाहिए। सफल संवैधानिक और प्रजातन्त्रात्मक सरकार की माँग है कि शक्ति पृथक्करण व संयुक्त शासनिक कार्य की सम्भावना में मेल बना रहे। इस प्रकार शक्ति पृथक्करण सब प्रजातन्त्रतात्मक देशों में एक जीवित शक्ति है, जो असीमित और अत्याचारी शक्ति के प्रयोग पर रोक लगाती है। इसके लिए नेतृत्व का अभाव नहीं होना चाहिये, क्योंकि उनके विना शीघ्र ही संवैधानिक गतिरोध और अधिनायकशाही पैदा हो जायेंगे।"[1]

५. निरोध व सन्तुलन का सिद्धान्त

'निरोध व सन्तुलन' भी कोई सर्वथा नया सिद्धान्त नहीं है। **पोलिबियस** और **सिसरो** (Polybius and Cicero) ने रोमन गणतन्त्र की अच्छाई का कारण उसके संगठन में निरोध व सन्तुलन के सिद्धान्त की व्यवस्था को बताया है। **जेम्स हेरिंगटन** ने अपने ग्रन्थ (Oceana) में विधायी और कार्यपालिका विभागों के पृथक्करण पर बल देते हुए निरोध व सन्तुलन की विस्तृत व्यवस्था में विश्वास प्रकट किया है। **मेकाइवर** ने अपने ग्रन्थ 'आधुनिक राज्यों' (The Modern State) में लिखा है कि व्यवहार में प्रायः सभी आधुनिक राज्यों में किसी रूप में निरोध व सन्तुलन के सिद्धान्त की व्यवस्था है; परन्तु उसने इस सिद्धान्त का विस्तृत अर्थ लिया है। उसके अनुसार जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की विधायिका के कार्यों पर तीन प्रकार

1. *R. G. Neumann*, European and Comparative Government, p. 668,

से रोक लगाई जाती है। प्रथम, विधायिका संविधान की सीमाओं के बाहर नहीं जा सकती। दूसरे, साधारणतया अधिकतर राज्यों में दो-सदन वाली विधायिकायें हैं और दोनों सदन एक-दूसरे की अनुचित कार्यवाही पर रोक लगाते हैं। तीसरे, जन-निर्णय द्वारा विधायिका के कार्यों पर निर्वाचक-मण्डल स्वयं रोक लगा सकता है।

यहाँ पर 'निरोध और सन्तुलन' के सिद्धान्त को हम इस विस्तृत अर्थ में न लेकर सीमित अर्थ में लेंगे, जैसा कि साधारणतया संयुक्त राज्य अमरीका की शासन प्रणाली के विषय में समझा जाता है। निरोध और सन्तुलन का सिद्धान्त (Theory of Checks and Balances) स्वभावतः शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त के साथ जुड़ा है। शक्ति के पृथक्करण का सिद्धान्त अपने पूर्ण रूप में न तो सम्भव है और न वांछनीय ही, क्योंकि शासन के विभिन्न अंगों में आंगिक (Organic) एकता है। जिस प्रकार आँख, कान, हाथ, पैर आदि शारीरिक अंगों के कार्य पृथक्-पृथक् हैं, परन्तु शरीर से पूर्णतया पृथक् होकर कोई भी अपना कार्य पूरा नहीं कर सकता, उसी प्रकार शासन के विभिन्न अंग एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र एवं पृथक् होकर कार्य नहीं कर सकते। इसी कारण संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान निर्माताओं ने शक्ति पृथक्करण के इस गम्भीर दोष को पहचानकर निरोध और संतुलन के सिद्धान्त को शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के साथ-साथ जोड़ा।

इस सिद्धान्त के अनुसार विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्यों पर दृष्टि रखती है तथा उन्हें अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करने देती। इसी प्रकार कार्यपालिका का यह कार्य है कि वह विधायिका और न्यायपालिका की गतिविधियों पर दृष्टि रखे और उनकी अवांछनीय कार्यवाही को नियन्त्रण में रखे। ऐसे ही न्यायपालिका को यह अधिकार है कि वह विधायिका और कार्यपालिका को मनमानी करने से रोके और एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र में अनुचित हस्तक्षेप न होने दे। इस प्रकार शासन के विभिन्न अंग एक दूसरे के अनुचित एवं अवांछनीय कार्यों पर नियन्त्रण रखते हैं तथा शासन यंत्र के सन्तुलन को बनाये रखते हैं। इस सिद्धान्त का सबसे अच्छा उदाहरण संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान है, जिसने विधायिका को यह अधिकार दिया है कि वह संघीय न्यायालय के अन्तर्गत न्यायालयों की स्थापना की व्यवस्था कर सकती है तथा संघीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर नियन्त्रण रखती है। दूसरी ओर कार्यपालिका (राष्ट्रपति) द्वारा की गई नियुक्तियाँ तथा विदेशों के साथ की गई संधियाँ उस समय तक प्रभावी नहीं हो पातीं, जब तक विधायिका का उच्च सदन (सीनेट) उनकी सम्पुष्टि नहीं कर देता। विधायिका को राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाकर पदच्युत कर देने का भी अधिकार है। इसके अतिरिक्त विधायिका आवश्यक बजट पास न करके राष्ट्रपति को प्रशासन के क्षेत्र में मनमानी करने से रोक सकती है। इस प्रकार विधायिका कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती है।

कार्यपालिका अर्थात् राष्ट्रपति का अधिकार है कि वह विधायिका द्वारा पारित विधेयक को अपने प्रतिषेधाधिकार (Right of Veto) द्वारा कानून न बनने दे और इस प्रकार विधि-निर्माण के क्षेत्र में विधायिका को मनमानी करने से रोक दे। दूसरी ओर राष्ट्रपति न्यायाधीशों की नियुक्ति के अपने अधिकार द्वारा तथा क्षमादान के अधिकार के प्रयोग द्वारा न्यायपालिका पर भी नियन्त्रण रखता है। इसी प्रकार न्यायपालिका भी विधायिका और कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती है। न्यायपालिका को संविधान ने न्यायिक समीक्षा या पुनरावलोकन का अधिकार प्रदान किया है, जिसके द्वारा वह विधायिका द्वारा पारित विधेयकों को असंवैधानिक (Unconstitutional) तथा अवैध (*ultra vires*) घोषित कर सकती है, यदि वह विधेयक न्यायपालिका की दृष्टि में संविधान की धारा या प्राविधान का अतिक्रमण करते हों। संयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने इस अधिकार का बड़े व्यापक रूप में प्रयोग किया है। इसी प्रकार न्यायपालिका, कार्यपालिका (राष्ट्रपति) द्वारा उद्घोषित एवं प्रख्यापित अध्यादेशों तथा प्रशासनिक नियमों को भी अवैध घोषित करके उस पर नियन्त्रण रखती है।

संविधान में जहाँ एक ओर एक अंग दूसरे अंग पर रोक लगा सकता है, दूसरी ओर यह भी व्यवस्था है कि शासन का सन्तुलन न बिगड़े। उदाहरण के लिए यदि राष्ट्रपति कांग्रेस द्वारा पारित किसी विधेयक पर प्रतिषेध का प्रयोग करे और यदि कांग्रेस उसे दूसरी बार $\frac{2}{3}$ के बहुमत से पास कर दे तो वह विधेयक कानून का रूप धारण करेगा। संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान के निर्माण के पश्चात् जितने भी संविधानों का निर्माण हुआ, लगभग सभी में न्यूनाधिक अंशों में निरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त का पालन किया गया है, विशेषतया उन देशों में जिन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका की शासन प्रणाली को अपना आदर्श बनाया है। परन्तु 'निरोध और सन्तुलन' की प्रणाली भी सर्वथा दोषहीन नहीं कहीं जा सकती। इस प्रणाली के जन्म-गृह अमरीका में ही जब कार्यपालिका और विधयिका एक ही राजनीतिक दल के हाथ में आ जाती हैं, तो प्रणाली का क्रियान्वयन विफल हो जाता है, क्योंकि दलीय निष्ठा के आधार पर दोनों में गठबन्धन हो जाता है और एक दूसरे पर नियंत्रण रखने की बात भूला बैठता है। जब दोनों अंग विरोधी दलों के हाथों में होते हैं तो गतिरोध पैदा होता है।

इस सिद्धान्त का समावेश निर्माताओं ने इसी उद्देश्य से किया था कि शासन के किसी एक अंग को अत्यधिक शक्ति प्राप्त न हो, वे असीमित जनतन्त्र में विश्वास न रखते थे। इसका फल यह हुआ है कि शासन कार्य चाहे कानून बनाने या उनको लागू करने सम्बन्धी हो, कठिन और पेचीदा हो गया। व्यवस्थापिका और कार्यपालिका द्वारा एक दूसरे पर रोक लगाने के फलस्वरूप शासन कार्य काफी सुगमता से नहीं चल सकता था जैसा कि संसदीय प्रणाली के अन्तर्गत होता है। प्रेसीडेन्ट विल्सन ने अपनी पुस्तक (New Freedom) में इस सिद्धान्त का दोष बताते हुए लिखा है कि

सरकार एक जीवित चीज है जिसके विभिन्न अंग एक दूसरे पर रोक लगाकर जीवित नहीं रह सकते।'

इस विषय में जेम्स बेक ने लिखा है कि इसके द्वारा सरकारी कार्य की गति को विधायिका तथा कार्यपालिका दोनों ही क्षेत्रों में इतना भारी-भरकम व कठिन बना देना शासन की कुशलता पर ब्रेक लगाना है। जब कि गणतन्त्र छोटा था और सार्वजनिक मामले कम होते थे, इस पद्धति के चलने में कोई विशेष कठिनाई न पड़ी होगी। परन्तु आजकल इसमें आवश्यक सुधार हुए बिना यह सुगमतापूर्वक न चल सकती थी। परिस्थितियों ने दलीय पद्धति का विकास किया और शासन कार्य में सुगमता आई। बेक आगे लिखता है कि यदि निरोध और सन्तुलन का सिद्धान्त न लागू किया गया होता तो कांग्रेस बिना पूरी तरह विचार किये हुए अनेक कानून बना डालती। निरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त के बारे में अभी तक वाद-विवाद होता है और लेखक व आलोचक किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुच सके हैं। इसी कारण आजकल भी संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान की किसी अन्य विशेषता के सम्बन्ध में इतना अधिक मतभेद नहीं है जितना कि निरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त के विषय में है।

इस विषय में हरमन फाइनर लिखता है : 'मांटेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त इस अनुभव पर आधारित है कि प्रत्येक वह व्यक्ति जिसे शक्ति सौंपी जाती है उनका दुरुपयोग कर सकता है। इसको रोकने के लिए यह आवश्यक है कि एकाकी शक्ति के ऊपर (दूसरी की) शक्ति द्वारा रोक लगा दी जाय परन्तु इस प्रकार का सन्तुलन बना रहे।' परिस्थितियों ने तीनों ही विभागों को एक दूसरे से मिलकर कार्य करने पर विवश कर दिया है जैसा कि फाइनर ने कहा है। परन्तु वह आगे कहता है कि सभी वस्तुओं के लिए आगे बढ़ना आवश्यक है, तीनों शक्तियाँ एक दूसरे के विरोध से आगे नहीं बढ़ सकती थीं अतएव मिलकर चलीं, यद्यपि ऐसा सामंजस्य संविधान के अन्तर्गत सुगम न था किन्तु बाह्य कारणों द्वारा यह व्यावहारिक बना। यह कार्य दलीय पद्धति के विकास द्वारा हुआ।

प्रश्न

१. शासन के विभिन्न अंगों (या शाखाओं) के बारे में अपने विचार लिखिए।
२. शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
३. संयुक्त राज्य अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन और सोवियत संघ में शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त को किस प्रकार लागू किया गया है?
४. शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त की समालोचना कीजिए।
५. निरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त को संयुक्त राज्य अमरीका में किस प्रकार लागू किया गया है? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
६. निरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त का महत्व बताइये।

४. शासन के प्रमुख रूप

१. वर्गीकरण के आधार

अधिकतर लेखकों का यह मत है कि राज्यों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता, क्योंकि सब राज्य समान होते हैं। प्रत्येक राज्य के चार तत्व होते हैं—भूमि या प्रदेश, जनसंख्या, सरकार और राज्य-सत्ता। प्रत्येक राज्य के आवश्यक कर्तव्य भी समान होते हैं। वर्गीकरण उन्हीं वस्तुओं का किया जाता है, जो एक दूसरे से कुछ रूपों में समान होते हैं और कुछ में भिन्न। किन्तु राज्यों के रूपों में भिन्नता नहीं, अतः उनका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। प्रसिद्ध राजशास्त्रवेत्ता विलोबी ने लिखा है कि राज्यों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता; क्योंकि राज्य को अन्य मानवी समुदायों से अलग करने वाला तत्व सर्वोच्च सत्ता है, जो अनिवार्य रूप से सभी राज्यों में पायी जाती है अतः सर्वोच्च सत्ता के आधार पर राज्यों का वर्गीकरण नहीं हो सकता। वास्तव में राज्यों का आवश्यक तत्व सरकार ही एक ऐसा आधार है जिस पर किया गया राज्यों का वर्गीकरण शास्त्रीय और लाभदायक हो सकता है। अतएव ऐसे वर्गीकरण को राज्यों का वर्गीकरण न मानकर सरकारों का वर्गीकरण ही माना जाता है।[1]

परम्परा के आधार पर राज्यों को राजतन्त्रों (पूर्ण या सीमित), गणतन्त्रों, कुलीनतन्त्रों, प्रजातन्त्रों, धर्मतन्त्रों (theocracies), अत्याचारी शासन (despotisms), सामन्ती राज्य आदि में वर्गीकृत किया गया है। अपने धन, साधनों, सैनिक शक्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में प्रभाव के महत्व पर राज्यों को महान 'शक्तियों' या 'विश्व शक्तियों', 'कम शक्तिशाली राज्य (lesser powers) और 'छोटे राज्य' (petty states) में वर्गीकृत किया गया है। राज्यों का अन्य आधारों पर भी वर्गीकरण हुआ है, यथा स्वतन्त्रता की मात्रा के आधार पर 'प्रभुत्वपूर्ण', 'प्रभुत्वहीन', 'रक्षित' (protected); जिन राज्यों का समुद्री तट बड़ा है और समुद्री शक्ति भी बड़ी है, उन्हें 'समुद्री' (maritime) शक्तियाँ कहा जाता है; जो चारों ओर स्थली भागों से घिरा है, उन्हें स्थल से घिरा हुआ (land-locked) कहा जाता है और जिनका क्षेत्र द्वीपों पर है, उन्हें जल से घिरा हुआ (insular) कहा जाता है। साधारणतः वर्गीकरण के दो महत्वपूर्ण और माने हुए सिद्धान्त हैं: (१) उन लोगों की संख्या, जिनमें राज-सत्ता निहित है, और (२) राज्य के संगठन के रूप। राज्यों (अथवा सरकारों) का

1. 'But in the last analysis such a classification is nothing more than a classification of governments and not of states···Consistency and scientific logic therefore require that such classifications be placed in their proper category and labelled as classification of 'government, and not of states.' —*J. W. Garner*, Political Science and Government, pp. 220-21.

वर्गीकरण विभिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। सबसे प्राचीन और परम्परागत वर्गीकरण के अनुसार राज्य तीन प्रकार के होते हैं—प्रजातन्त्र, कुलीनतन्त्र और जनतन्त्र।

एरिस्टॉटिल का वर्गीकरण—अति प्राचीन काल में ग्रीस के प्रसिद्ध दार्शनिक एरिस्टॉटिल ने राज्यों का वर्गीकरण दो आधारों पर किया था—प्रथम, राज्य की सर्वोच्च सत्ता या शासन-शक्ति कितने मनुष्यों के हाथों में है और दूसरे, राज्य का उद्देश्य अच्छा है या बुरा। यदि शासन का संचालन लोक-कल्याण के लिये होता है तो वह अच्छा है और यदि शासकगण शासन-शक्ति का प्रयोग अपने हितसाधन के लिए ही करता है तो वह शासन बुरा अथवा विकृत (perverted) है। इस प्रकार राज्य (शासन) की दो दशायें होती हैं। साधारण दशा में शासक प्रजा के हित का ध्यान रखते हैं, परन्तु विकृत दशा में सरकारें अनेक प्रकार के अत्याचार करती हैं और शासक अपने हितों का ध्यान रखते हैं। अतः उसके अनुसार राज्यों (या सरकारों) का वर्गीकरण निम्न प्रकार है—

शासकों की संख्या	साधारण दशा	विकृत दशा
एक व्यक्ति का शासन	राजतन्त्र (या एकमात्र) (Monarchy)	स्वेच्छाचारी एकमात्र (Tyranny)
कुछ व्यक्तियों का शासन	कुलीनतन्त्र (Aristocracy)	वर्ग (धनिक) तन्त्र (Oligarchy)
बहुसंख्यक जनता का शासन	बहुतन्त्र (Polity)	प्रजातन्त्र (Democracy)

उपरोक्त की आलोचना—उपर्युक्त वर्गीकरण में प्रजातन्त्र से अभिप्राय भीड़तन्त्र से है। एरिस्टॉटिल के मतानुसार प्रजातन्त्र अथवा अज्ञानियों का शासन था; जिसे आजकल हम प्रजातन्त्र कहते हैं, उसके लिए एरिस्टॉटिल ने तो बहुतन्त्र शब्द का प्रयोग किया है। यह वर्गीकरण अन्य प्राचीन विद्वानों के वर्गीकरण से अधिक शास्त्रीय है, क्योंकि इसमें केवल शासकों की संख्या को वर्गीकरण का आधार नहीं माना गया है, वरन् राज्य के उद्देश्य पर भी काफी जोर दिया गया है फिर भी उसके वर्गीकरण की कई आधारों पर आलोचना की गई है। सर्वप्रथम, आजकल राजतन्त्र व कुलीनतन्त्र जैसा भेद नहीं पाया जाता। इंगलैंड जैसे राज्यों में तीनों ही प्रकार के राज्यों के लक्षणों का सम्मिश्रण पाया जाता है। दूसरे लीकॉक ने बताया है कि इस वर्गीकरण का प्रयोग वैधानिक या सीमित राजतन्त्र के सम्बन्ध में नहीं किया जा सकता। इस वर्गीकरण के विरुद्ध यह बात और कही जाती है कि कोई ऐसा राज्य नहीं है जहाँ वास्तविक (राजनीतिक) राज-सत्ता एक ही व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों तक सीमित रही हो। आधुनिक काल में तो जनता में ही

राजसत्ता निहित होती है। अतएव राज-सत्ता के आधार पर किया गया वर्गीकरण व्यवहार में मूल्यहीन है। गार्नर कहता है कि एरिस्टॉटिल का वर्गीकरण संख्या पर आधारित है, आंगिक स्वरूप पर नहीं, यह संख्यात्मक है, गुणात्मक नहीं। सीले ने इस वर्गीकरण की इस आधार पर आलोचना की है कि यह आज के राज्यों पर लागू नहीं होता। एरिस्टॉटिल नगर राज्यों को ही जानता था जो आज के देशीय राज्यों से अत्यन्त भिन्न थे।

अन्य वर्गीकरण—एरिस्टॉटिल के बाद अनेक विद्वानों ने राज्यों का वर्गीकरण किया है। इनमें मांटेस्क्यू, ब्लंटश्ली, मेरियट और लीकॉक के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ब्लंटश्ली ने एरिस्टॉटिल के वर्गीकरण का मौलिक रूप माना है, पर अपनी ओर से भी उसने शासन का एक और रूप जोड़ा है। चौथे प्रकार का राज्य उसने **धर्मतन्त्र** (Theocracy) बतलाया है, जो विकृत होने पर प्रतिमातन्त्री (Idolocracy) शासन कहलाता है। परन्तु आजकल राजशास्त्र के पंडित, धर्म को राजनीति से पृथक करके, शासन के रूपों का विभाजन करते हैं। **माण्टेस्क्यू** ने राज्यों के तीन प्रकार बताये—**गणतन्त्र, राजतन्त्र और स्वेच्छाचारी एकतन्त्र** (Despotism)। गणतन्त्र में राज-सत्ता जनता के कुछ भाग या पूर्ण जनता में निहित होती है। राजतन्त्र में राजा सर्वोच्च होता है, परन्तु वह निश्चित विधियों और परम्पराओं के अनुसार शासन करता है, जबकि निरंकुश शासक स्वेच्छाचारी होता है।

मेरियट का वर्गीकरण बड़ा रोचक है; उसके वर्गीकरण के तीन आधार हैं। प्रथम, शासन शक्ति का विभाजन : इस आधार पर राज्य दो प्रकार के होते हैं—**एकात्मक और संघात्मक**। दूसरा आधार है संविधान का स्वभाव—संविधान दो प्रकार के होते हैं—लचीला और कठोर। तीसरा आधार है व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का आपसी सम्बन्ध। इस आधार पर भी राज्य दो प्रकार के होते हैं—संसदात्मक और अध्यक्षात्मक। परन्तु लीकॉक का वर्गीकरण सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है, वह आधुनिक राज्यों को दो भागों में बाँटता है—स्वेच्छाचारी एकतन्त्र और जनतन्त्र। उसने जनतन्त्र को भी दो भागों में बाँटा है—(१) **संवैधानिक राजतन्त्र** जहाँ राजा नाममात्र के लिए होता है और वास्तविक शक्ति व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल के हाथ में होती है। (२) **गणतन्त्र**, जहाँ कार्यपालिका का अध्यक्ष एक निश्चित अवधि के लिए जनता द्वारा निर्वाचित व्यक्ति होता है। इसके अतिरिक्त, लीकॉक के अनुसार से वैधानिक राजतन्त्र और गणतन्त्र में से प्रत्येक एकात्मक और संघात्मक रूप धारण कर सकता है।

अन्त में, जनमत के अनुसार राज्यों का वर्गीकरण—**सॉल्टो** ने, शासन तन्त्र के विभिन्न अंगों का शासनात्मक सत्ता से जो सम्बन्ध है, उसके बारे में जनमत के अनुसार राज्यों का वर्गीकरण किया है, जनमत के दृष्टिकोण से उसने सरकार को चार प्रकार का बताया है—(क) संसदीय (Parliamentary)—इस प्रकार की

शासन प्रणाली में सरकार को निरन्तर निर्वाचन विधान-मण्डल के समर्थन पर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार के राज्यों में ग्रेट ब्रिटेन, वेल्जियम, फ्रांस, इटली व भारत आदि हैं। (ख) प्रत्यक्ष—प्रत्यक्ष शासनतन्त्र में विधान-मण्डल की भाँति शासनाधिकारियों का भी निर्वाचन किया जाता है। इस व्यवस्था में शासनतन्त्र के अधिकारियों को अपने कार्य-काल के लिए विधान-मण्डल के समर्थन पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, किन्तु शासनाधिकारी विधान-मण्डल की सहमति विना अपना कर्तव्य पालन समुचित रीति से नहीं कर सकते। उदाहरणस्वरूप अमरीका का नाम लिया जा सकता है। (ग) तानाशाही—यहाँ शासन का अध्यक्ष जनमत के आधार पर एक बार निर्वाचित हो जाता है और उसे विधान-मण्डल के समर्थन पर निर्भर नहीं रहना पड़ता जैसे स्पेन, पुर्तगाल आदि। (घ) निरंकुश—निरंकुश शासनतन्त्र में समस्त सत्ता एक अनुत्तरदायी राजा के हाथ में रहती है। राजा सामान्यत: वंश परम्परागत होता है, उदाहरण के लिए सऊदी अरव में ऐसा ही शासन है।[1]

२. प्रजातन्त्र (लोकतन्त्र)

वर्तमान युग को प्रजातन्त्र का युग कहा जाता है। प्रजातन्त्र शब्द का आजकल अत्यधिक प्रयोग होता है और उससे विभिन्न अर्थ लिये जाते हैं। प्रजातन्त्र का अंग्रेजी रूपान्तर 'डैमोक्रेसी' है जो 'डैमोस' और 'क्रेतिया' दो ग्रीक शब्दों से मिल कर बना है। इसका अर्थ क्रमश: 'लोक' और 'शक्ति' से है। अत: प्रजातन्त्र शासन वह है जिसमें शासन सत्ता जनता में निहित होती है। इस सत्ता का जनता चाहे स्वयं प्रयोग करे या समय-समय पर जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा इसका प्रयोग किया जाय। इसमें राज्य की नीति का निर्धारण और महत्वपूर्ण प्रश्नों का निर्णय इस आधार पर किया जाता है कि "जनता की इच्छा सर्वोपरि है।" यह पहले ही वताया जा चुका है कि प्राचीन ग्रीक दार्शनिक डैमोक्रेसी को पोलिटी का विकृत रूप मानते थे, और इसे वहुसंख्या का शासन समझते थे, उसे आजकल का शासन (mobocracy) कहा जाता है और प्रजातन्त्र को शासन का वहुत ही अच्छा रूप माना जाता है।

परिभाषायें—'प्रजातन्त्र' की अनेक परिभाषायें की गई हैं; इनमें कुछ मुख्य यहाँ पर देना पर्याप्त होगा। 'वह शासन जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का भाग रहे' (Government in which everyone has a share.)—**सीले**। शासन का वह रूप जिसमें शासक वर्ग, राष्ट्र की जनता का एक बड़ा अंश हो—**डायसी**। 'प्रजातन्त्र, शब्द का प्रयोग **हिरोडोटस** के समय से ही एक ऐसे शासनतन्त्र के रूप में होता आया है जिसमें सत्ता किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष में सीमित न रहकर सम्पूर्ण प्रजा में निहित रहती है।'—**ब्राइस**। 'प्रजातन्त्र शासन का वह स्वरूप है जिसमें शासन शासितों की सामान्य इच्छा के अनुकूल होता है'—**चेस्टरटन**। 'जनता का, जनता के

1. *R. H. Soltau*, An Introduction to Politics, p. 117.

लिए तथा जनता द्वारा शासन'—अब्राहम लिंकन। गिलक्राइस्ट के अनुसार 'प्रजातन्त्र समझौते द्वारा शासन की वह पद्धति है जो (विभिन्न वर्गों व समूहों) के दावों और हितों में वाद-विवाद द्वारा सामंजस्य स्थापित करके सभी के लिए न्याय प्राप्त कराती है।'[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से ये बातें स्पष्ट हैं—(१) प्रजातन्त्र में शासन सत्ता जनता में निहित होती है; (२) शासन-सत्ता का प्रयोग जनता के हित में किया जाता है; शासन-कार्यों में राज्य की सम्पूर्ण वयस्क या बहुसंख्यक जनता भाग लेती है। इनके अतिरिक्त दो अन्य बातें ध्यान में रखने योग्य हैं—(अ) शासन कार्यों में जनता की रुचि व भाग किसी दल, गुट, जाति या वर्ग विशेष के हित साधन के लिए नहीं वरन् सम्पूर्ण समुदाय के हित साधन के लिए होना चाहिए। (आ) यह ठीक है कि अधिकांश निर्णय बहुमत द्वारा होते हैं (सर्वसम्मति की प्राप्ति किसी निर्णय में ही हो सकती है); किन्तु प्रजातन्त्र में बहुसंख्या अत्याचार नहीं करती अर्थात् अल्पसंख्या की इच्छा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना आवश्यक है।

प्रजातन्त्र के भेद—साधारणतया प्रजातन्त्र के दो भेद किये जाते हैं। प्रथम, **विशुद्ध या प्रत्यक्ष** (Pure or Direct), दूसरा **प्रतिनिध्यात्मक या अप्रत्यक्ष** (Representative or Indirect)। जब लोग स्वयं प्रत्यक्ष रूप से, राज्य का शासन चलायें और सार्वजनिक विषयों पर अपनी इच्छा प्रकट करें तो प्रथम प्रकार का प्रजातांत्रिक शासन होता है। सार्वजनिक इच्छा या जनता का मत, सभा या सभाओं में व्यक्त अथवा निश्चित किया जाता है। इस प्रकार का प्रजातन्त्र छोटे राज्यों में ही सफलतापूर्वक चला है और चल सकता है। प्राचीन ग्रीस के नगर-राज्य प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के आदर्श उदाहरण कहे जा सकते हैं। आधुनिक युग में भी इस प्रकार के शासन के उदाहरण मिलते हैं। स्विटजरलैंड के कुछ उपराज्यों में जिन्हें **केन्टन** कहते हैं, आजकल भी प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की प्रणाली प्रचलित है। प्रत्येक केन्टन की सारी वयस्क जनसंख्या (स्त्रियों को छोड़कर क्योंकि उन्हें वहाँ पर मताधिकार प्राप्त नहीं है) वर्ष में एक दो बार किसी खुले चरागाह में इकट्ठी होती है और राज्य का बजट व अनेक प्रस्ताव स्वीकार करती है तथा अनेक अधिकारियों की नियुक्ति करती है। उत्तर प्रदेश के गांवों में ग्राम पंचायतों की कार्य-प्रणाली भी कुछ इसी नमूने की है। परन्तु आज हम संसार को छोटे-छोटे नगर-राज्यों में नहीं वरन् बड़े-बड़े देशीय राज्यों में बंटा पाते हैं। भारत, चीन, सोवियत संघ, सं० रा० अमरीका आदि बड़े-बड़े राज्यों में जनसंख्या करोड़ों में है और प्रत्येक का क्षेत्रफल भी लाखों वर्ग मील है। इनमें प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली सम्भव ही

1. 'Democracy is a system of government by compromise which, by adjustment of claims and interests after discussion, secures reasonable justice for all.' —*R. N. Gilchrist*, Political Science. p. 258.

नहीं। अतः इन देशों में जनता समय-समय पर अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है और ये प्रतिनिधि सामान्य इच्छा के अनुसार राज्य के लिए कानून बनाते हैं और सभी प्रशासन सम्बन्धी कार्यों की देख-रेख करते हैं। संसार के सभी प्रजातन्त्रात्मक राज्यों में आजकल अप्रत्यक्ष अथवा प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली चल रही है। जे. एस. मिल ने प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्र की परिभाषा करते हुए लिखा है; 'यह ऐसा शासन है जिसमें सम्पूर्ण जनता या उसका बहुसंख्यक भाग शासन सत्ता का, अपने नियत काल पर निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा प्रयोग करता है।'

प्रजातन्त्र के गुण—प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली के पक्ष और विपक्ष में विभिन्न लेखकों ने बहुत से तर्क दिये हैं। पहले हम प्रजातन्त्र के पक्ष में दिए गए तर्कों का संक्षिप्त विवेचन करेंगे—**प्रथम**, प्रजातन्त्र में सभी व्यक्तियों को, चाहे वे धनी हों या निर्धन, समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं। निर्धन व्यक्ति को अपनी इच्छा और राय व्यक्त करने का उतना ही अवसर मिलता है, जितना कि धनी को। इस शासन-प्रणाली में किसी को यह शिकायत नहीं हो सकती कि उसकी बात नहीं सुनी जाती। **दूसरे**, चूँकि सभी व्यक्ति शासन-कार्यों (प्रतिनिधियों के चुनाव आदि) में भाग लेते हैं, इसलिए सर्वसाधारण को शासन सम्बन्धी विषयों के प्रति अधिक रुचि पैदा होती है और उदासीनता दूर होती है। देश में क्या होता है और सरकारी अधिकारी क्या करते हैं—इन सभी बातों के प्रति वे जागरुक रहते हैं। फलस्वरूप जनता सरकारी अधिकारियों के सभी कार्यों के बारे में सतर्क रहती है और सतर्कता से ही अधिकारों व स्वतन्त्रता की रक्षा हो सकती है।

तीसरे, प्रजातन्त्र का आधार सर्वसाधारण की रुचि तथा ज्ञान है, इसलिए प्रजातन्त्र में जनता की राजनीतिक, शिक्षा बड़े पैमाने पर होती है। प्रजातन्त्र के नागरिक को देश की आर्थिक और सामाजिक—सभी प्रकार की समस्याओं के बारे में जानना और विचारना पड़ता है, आवश्यकतानुसार सरकार की नीति की आलोचना करनी पड़ती है और अवसर मिलने पर महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में निर्णय भी देना होता है। इस प्रकार से नागरिक प्रतिदिन ही कुछ न कुछ सीखता है और अपने देश की विभिन्न समस्याओं के निराकरण में योग देने के लिए तैयार करता है। **चौथे**, व्यावहारिक दृष्टि से (अ) प्रजातन्त्र में नागरिक यह समझते हैं कि शासन कार्य उनका काम है और इससे उनमें यह भाव पैदा होता है कि जिस देश में वे रहते हैं वह उनका देश है। इस प्रकार उनमें देश-प्रेम और देश-भक्ति की भावना सुदृढ़ होती है। (आ) अब नागरिक यह जानते हैं कि कानूनों को बनाने में उनका भी हाथ है, तो वे अपने प्रतिनिधियों द्वारा बनाये कानूनों का अधिक अच्छी प्रकार या स्वेच्छा से पालन करते हैं। फलतः प्रजातन्त्र में विद्रोह और विप्लव होने की कम से कम सम्भावना रहती है। इसके विपरीत, शासकों और शासितों के बीच अधिक सहयोग बढ़ता है।

पाँचवें, नैतिक दृष्टि से प्रजातन्त्र में नागरिकों का चरित्र ऊँचा उठता है; प्रत्येक व्यक्ति का दूसरे के बराबर मान होता है। प्रजातन्त्र के नागरिकों में आत्म-विश्वास और रचना-शक्ति की वृद्धि होती है। ये गुण राजतन्त्र अथवा कुलीनतन्त्र में साधारण जनता में उत्पन्न नहीं हो सकते, क्योंकि उनमें जनता को शासन-कार्यों में भाग लेने का अवसर नहीं मिलता। छठे, किन्तु लोकतन्त्र का गुण एक सरकार के रूप में उसकी योग्यता में निहित नहीं है। **एक अच्छी सरकार स्वशासन की स्थानापन्न नहीं हो सकती।** लोकतन्त्र लोगों द्वारा उनके कल्याण का शासन है। वह उनमें आत्म-शिक्षण के लिए प्रेरणा पैदा करता है। लोकतन्त्र चरित्र को निखारता है[1] और जनता के राजनीतिक विवेक को उन्नत करता है। यह एक साधारण व्यक्ति से विवेक, ईमानदारी, सार्वजनिक भावना और नियंत्रण की एक यथेष्ट मात्रा की मांग करता है। यह राष्ट्रीय चरित्र के श्रेष्ठ और उन्नत रूप की वृद्धि करता है, क्योंकि नागरिक अनुभव करते हैं कि वे सरकार के अंग-प्रत्यंग हैं। अन्त में, प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली में सरकार का बदलना सुगम होता है। जब भी वर्तमान सरकार (मन्त्रि-मण्डल) संतोषजनक न रहे, चुनाव आने पर उसे बदला जा सकता है।[2]

प्रजातन्त्र के दोष—उपर्युक्त विवेचन के बाद हमें प्रजातन्त्र के दोषों को देखना है। ये भी विभिन्न लेखकों के अनुसार बहुत से हैं। अतः उनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—पहला, प्रजातन्त्र पर सबसे बड़ा अभियोग यह लगाया जाता है कि यह अच्छा शासन स्थापित करने में सर्वथा असफल रहता है (It has been called the cult of ignorance)।[3] इस विचार के समर्थकों का कहना है कि प्रजातन्त्र अज्ञानियों का शासन होता है, क्योंकि बहुमत मूर्खों का होता है। इसका कारण यह है कि बहुसंख्यक साधारण जनता, जो अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है राजनीतिक समस्याओं को नहीं समझती। दूसरा, प्रजातन्त्र जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिए शासन कहा जाता है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। (अ) जनता को वाक्पुटु नेता व राजनीतिज्ञ अपने शब्द जाल में फाँस लेते हैं और आदर्शवाद की धारा में बहा ले जाते हैं, इन्हीं वाक्-पटुओं (Demogogues) का जनता अन्धानुकरण करती है और वे लोग जनता का सत्ता-प्राप्ति के लिए

1. 'It promotes a better and higher form of national character than another polity whatever.' —*J. S. Mill*
2. 'The process of changing ministers and majorities in the elected Assembly provides an alternative method to revolution, for meeting social changes.' —*C. D. Burns*, Democracy. p. 135.
3. 'A *decision* upon the basis of popular vote is ultimately the rule of ignorance. History shows that intelligence resides with the few, not with the many. Where ignorance rules, liberty is curtailed. Democracies are unfavourable to intellectual progress.' —*Leckey*

उपयोग करते हैं (It paves the way for the domination and operation of wire-pullers.)। (आ) प्रजातन्त्र में दलबन्दी एक बड़ी बुराई है। इसके कारण जनता (अथवा समुदाय) के हितों को दलबन्दी के आधार पर बाँटा जाता है और बहुमत दल के हितों के सामने सामान्य हितों को त्यागा जाता है। इस अर्थ में प्रजातन्त्र एक दल का, दल के लिए दल, द्वारा शासन कहा जाता है। तीसरा, संकुचित दलीय तथा वर्गीय आदि हितों के कारण प्रजातन्त्र में भ्रष्टाचार, पक्षपात, भाई-भतीजावाद आदि अनेक दोष पाये जाते हैं। फलस्वरूप, दलीय वफादारी और वर्ग हित के रहते हुए सुदक्ष शासन स्थापित नहीं हो सकता। बहुधा दल के अयोग्य व्यक्तियों को योग्य और कार्य-कुशल व्यक्तियों के मुकाबले में आगे बढ़ने का अवसर मिलता है। व्यावहारिक दृष्टि से, प्रजातन्त्र में दलबन्दी के सभी दोष पाये जाते हैं।

चौथा, प्रजातन्त्र की आलोचना इस आधार पर भी की गई है कि इसमें शासन निर्बल व धीमा होता है और शासकगण निर्णयों में पहुँचने पर बहुत समय लेते हैं। उदाहरण के लिए, सन् १६१४ में जर्मनी के सम्राट ने बेल्जियम पर आक्रमण करने का निश्चय क्षणों में कर डाला था, जबकि ब्रिटिश पार्लियामेंट स्थिति पर कई दिनों तक वाद-विवाद करती रही। साथ ही इसका एक दोष यह भी है कि शासन की नीति में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होते हैं और कभी-कभी अनुभवहीन शासकगण बिना समझे-बूझे राजनीतिक क्षेत्र में गलत या असफल प्रयोग कर डालते हैं, क्योंकि इसमें ऐसे व्यक्ति शासन के उच्च पदों पर आसीन हो जाते हैं जिन्हें प्रशासनिक कार्यों का ज्ञान भी नहीं होता। **पांचवां**, इसमें **गुणों** की अपेक्षा **संख्या** पर अधिक बल दिया जाता है। अशिक्षित, अज्ञानी व्यक्ति को योग्य और अनुभवी व्यक्ति के समान मताधिकार मिला होता है। बहुमत के आधार पर शासन चलता है। कभी-कभी बहुमत **असहिष्णुता** प्रदर्शित करता है। इसी कारण कुछ लेखकों ने इसे '**क्रूर बहुमत**' का शासन (tyranny of the majority) भी कहा है।

ब्राइस ने प्रजातन्त्र के अग्रलिखित दोष बताये हैं—(१) शासन व्यवस्था या विधान को विकृत करने में धन की शक्ति; (२) राजनीति की कमाई का पेशा बनाने की ओर झुकाव; (३) शासन व्यवस्था में अति व्यय; (४) समानता के सिद्धान्त का अप-व्यवहार और शासनीय पटुता या योग्यता का उचित मूल्य न आंका जाना; (५) दलबन्दी या दल-संगठन में अनुचित बल-प्राप्ति; और (६) विधान सभाओं के सदस्यों तथा राजनीतिक अफसरों द्वारा कानून पास कराते समय मतों को दृष्टि में रखना और समुचित व्यवस्था भंग होने को सहन करना।[1]

1. *J. Bryce*, Modern Democracies, Vol. II, p. 504.

प्रजातन्त्र शासन की सफलता के लिए अग्रलिखित बातें आवश्यक हैं—(१) चूंकि प्रजातन्त्र शासन प्रणाली में सभी महत्वपूर्ण निर्णयों पर वाद-विवाद द्वारा पहुँचा जाता है, अतः युक्तियाँ देने व सुनने में स्वभाव की मधुरता अति आवश्यक गुण है, जिससे कि अपनी बात कहने के साथ-साथ दूसरों के दृष्टिकोण को भी समझा जा सके। जहाँ पर व्यक्तियों में आधारभूत प्रश्नों पर मतभेद होते हैं और जहाँ अधिकाँश व्यक्ति बहुमत को मानने के स्थान पर सिर फोड़ने में अधिक विश्वास रखते हैं, वहाँ ये बातें नहीं पाई जा सकतीं। प्रजातन्त्रीय देश के नागरिकों में सहनशीलता का गुण विशेष रूप से विकसित होना चाहिए। बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों को अपनी बात मनवाने के लिए यथासम्भव समझाने-बुझाने का ढंग अपनाना चाहिए। बहुसख्यक दल को अल्पसंख्यक दल का मत आदर से सुनना चाहिये, साथ ही जब बहुमत से कोई निर्णय हो जाए उसे अल्पमत को सहर्ष स्वीकार करना चाहिए।

(२) **'यथा राजा तथा प्रजा'** एक प्राचीन कहावत है। यह राजतन्त्र के बारे में अक्षरशः सत्य है, अर्थात् यदि राजा राम जैसा प्रजापालक होगा तो प्रजा सुखी रहेगी, और यदि राजा अत्याचारी होगा तो प्रजा दुखी रहेगी। परन्तु प्रजातन्त्र में जनता को वैसा शासन मिलता है जिसकी प्रजा अधिकारी होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रजातन्त्र में शासन तभी अच्छा होगा जब सर्वसाधारण जनता शिक्षित हो, उसका नैतिक-स्तर ऊँचा हो और नागरिक अपने दायित्वों व कर्त्तव्यों को अधिकारों से अधिक महत्व दें। अतः प्रजातन्त्र की सफलता के लिए अति महत्वपूर्ण आवश्यकता शिक्षा की है। अच्छी शिक्षा द्वारा ही नागरिकों का चरित्र सुधर सकता है और उनमें अपने कर्तव्यों को पूरा करने व अधिकारों का उचित उपभोग करने की भावना जागृत की जा सकती है। देश की विभिन्न समस्याओं का ज्ञान नागरिकों को शिक्षित होने पर ही ठीक-ठीक हो सकता है और तभी वे उनके हल करने में बुद्धिपूर्ण व सक्रिय योग दे सकते हैं। इसलिए यह कहा जाता है कि प्रजातन्त्र में स्वामियों को शिक्षित होना चाहिये।

(३) आजकल अधिकतर राजनीतिक प्रश्नों का आधार आर्थिक है और किसी भी देश की अनेक राजनीतिक समस्यायें तब तक हल नहीं हो सकतीं जब तक कि सर्वसाधारण की आर्थिक दशा सन्तोषजनक न हो। जिस देश में आर्थिक विषमतायें बहुत होती हैं और बहुसंख्यक जनता निर्धन होती है वहाँ प्रजातन्त्र तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि सर्वसाधारण की आर्थिक दशा न सुधरे। वास्तव में, निर्धन व्यक्ति अपने राजनीतिक अधिकारों का उचित उपभोग नहीं कर सकते, उनके मतों को धनी व्यक्ति खरीद सकते हैं और उन पर अन्य प्रकार से अनुचित दबाव भी डाल सकते हैं। अतः राजनीतिक प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिये आर्थिक प्रजातन्त्र भी होना आवश्यक है। यहाँ पर एक बात और विचारणीय है पूंजीवादी देशों में केवल वे ही व्यक्ति सफलतापूर्वक चुनाव लड़ सकते हैं जिनके पास काफी

धन हो या जिन्हें ऐसे दल ने खड़ा किया हो जिसके साधन खूब हों और उन्हें जो आर्थिक सहायता दे ऐसी दशाओं में विभिन्न दलों (और समाचार-पत्रों आदि) पर धनिकों का नियन्त्रण रहता है, जिस कारण प्रजातन्त्र बहुत कुछ धोखा या दिखावामात्र रह जाता है।

(४) प्रजातन्त्र के लिये सामाजिक व्यवस्था का आधार प्रजातन्त्रात्मक होना जरूरी है। भारतीय, विशेष रूप से, हिन्दू समाज का आधार प्रजातन्त्र नहीं है। इसी कारण चुनावों में जात-बिरादरी और ऊँच-नीच की भावना का महत्वपूर्ण भाग रहता है। खेद की बात तो यह है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से जात-बिरादरी की भावना में वृद्धि हुई है। स्थानीय संस्थाओं के चुनाव तो बहुत सीमा तक इसी आधार पर खड़े और जीते जाते हैं। उनकी कार्य प्रणाली में भी यह भावना जारी रहती है।

(५) प्रजातन्त्र में दलों का होना आवश्यक है, परन्तु दलबन्दी का आधार स्वस्थ होना चाहिये। वर्ग और सम्प्रदाय जैसे संकुचित हितों के आधार पर बने दल देश के लिये बड़े हानिकारक होते हैं। साम्प्रदायिक दलबन्दी के विषैले फल भारत-वासियों को भोगने पड़ रहे हैं। आज भी हमारे देश में विभिन्न जातियों, प्रदेशों और वर्गों के हित साधन के लिये अनेक दल हैं, जिनका अन्त होना चाहिये। दलीय व्यवस्था का आधार विरुद्ध राजनीतिक और आर्थिक कार्यक्रम होना चाहिये और कोई भी दल राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध नहीं बनना चाहिये। इस बात को एक दूसरे दृष्टिकोण से भी देखना है। जहाँ एक ओर बहुमत प्राप्त दल को अल्पमत अथवा विरोधियों के दृष्टिकोण को पूरी तरह से समझना उसकी आलोचना का स्वागत करना और अच्छे सुझावों को स्वीकार करना चाहिये, वहाँ दूसरी ओर विरोधी दलों को सत्तारूढ़ दल का केवल विरोध के लिये ही विरोध नहीं करना चाहिये और राष्ट्रीय हित में भी पूरा-पूरा सहयोग देना चाहिये। साथ ही विरोधी दल सुदृढ़ होना चाहिये, जो अवसर मिलने पर शासन भार सम्भाल सके। वर्तमान प्रजातन्त्र के दो बड़े दोष—चुनाव व्यवस्था और दलीय आधार हैं, जिन्हें उनके विचार में बहुत कुछ त्यागा जा सकता है। जहाँ तक स्थानीय संस्थाओं का सम्बन्ध है, कम से कम उनमें तो उनके विचार को कार्य रूप दिया जाना उचित होगा।

(६) प्रजातन्त्र में यह भी आवश्यक है कि राजनीतिक अधिकार सभी वयस्कों को बिना किसी भेद-भाव के प्रदान किये जायें। साथ ही, निर्वाचन की पद्धति ऐसी होनी चाहिये कि स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव हो सकें। यह न हो कि सत्तारूढ़ दल चुनावों को जीतने के लिये अनुचित लाभ उठा सकें। इसी बात का ध्यान रखते हुए भारतीय संविधान के निर्माताओं ने स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिये एक निर्वाचन आयोग (Election Commission) की व्यवस्था की है। गत दोनों आम चुनाव यथा सम्भव निष्पक्षता और स्वतन्त्रतापूर्वक सम्पन्न हुए।

(७) प्रजातन्त्र की सफलता के लिये आवश्यक है कि स्वस्थ और स्वतन्त्र जनमत बनने की पूरी सुविधायें हों, क्योंकि प्रजातन्त्र जनमत पर आधारित होता है। जनता की इच्छा अर्थात् सामान्य इच्छा का पता जनमत द्वारा ही चलता है। जनमत के निर्माण के लिये यह आवश्यक है कि सभी नागरिकों और समुदायों को अपने विचार प्रकट करने और उन्हें प्रकाशित करने की समुचित स्वतन्त्रता हो। भाषण व लेखन की स्वतन्त्रता के साथ ही साथ देश में संगठन करने और सभा करने की भी उचित स्वतन्त्रता होनी चाहिये। जिस देश में ये स्वतन्त्रतायें बहुत सीमित कर दी जाती हैं वहाँ पर सच्चा प्रजातन्त्र नहीं पनप सकता।

अन्त में, सफल प्रजातन्त्र के लिये स्थानीय स्वशासन की सुदृढ़ नींव होनी आवश्यक है। ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसा होने के कारण ही प्रजातन्त्र शासन प्रणाली लागू करना एक प्रकार से ऊपर से थोपना है। यह सर्वथा सच है कि स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में सच्चे प्रजातन्त्र की शासन प्रणाली इतनी सुगमता और सफलता से चल रही है। इसके विपरीत जिन देशों में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का समुचित विकास न हुआ हो, उनमें प्रजातन्त्र के लिये बहुत बड़ी संख्या को आवश्यक प्रशिक्षण मिलता है और ऐसे ही व्यक्ति प्रजातन्त्र को सफलतापूर्वक चला सकते हैं। गाँधी जी ने तो इस बात पर विशेष बल दिया कि गाँव पंचायतें वास्तविक शक्ति का स्रोत होनी चाहियें। इसलिये भारत के सभी राज्यों में गाँव पंचायतें व अन्य स्थानीय संस्थाओं का विकास किया जा रहा है।

संक्षेप में, गार्नर के अनुसार प्रजातन्त्र की सफलता के लिये आवश्यक दशायें इस प्रकार हैं—(१) राजनीतिक सूझ-बूझ की काफी ऊँची मात्रा और सार्वजनिक मामलों में स्थायी दिलचस्पी; (२) सार्वजनिक उत्तरदायित्व की समुचित भावना और बहुमत के निर्णयों को मानने व कार्यान्वित करने के लिए तत्परता; (३) नैतिक शिक्षा के लिए सुविधायें; (४) राजनीतिक मामलों की शिक्षा और स्वशासन की ट्रेनिंग, तथा (५) उच्च नैतिक स्तर।[1] हमारे विचार में इनके साथ सामाजिक और आर्थिक प्रजातन्त्र का होना भी आवश्यक है। जहाँ तक संसदीय लोकतन्त्र का सम्बन्ध है, अग्रलिखित बातें भी आवश्यक हैं : प्रथम, जनता को अपने प्रतिनिधियों के चुनने की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। जनता को निश्चित समय पर अपने प्रतिनिधियों के प्रत्यावर्तन (recall) करने का अधिकार होना चाहिए। दूसरी, जनता द्वारा स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित किया जाना चाहिए कि वह कौन सी नीति

1. 'Garner lays down the following as essential conditions of democracy—(i) A relatively high degree of political intelligence and an abiding interest in public affairs (ii) a keen sense of public responsibility and readiness to accept and abide by the decisions of the majority (iii) facilities for moral education, (iv) education in political matters and training in the habits of self government, and (v) a high moral level.'

कार्यान्वित कराना चाहती है। तीसरी, प्रतिनिधियों में इतनी योग्यता और सामर्थ्य होनी चाहिए कि वे वांछित नीति को अनावश्यक विलम्ब किये बिना किसी भी स्वार्थ या व्यक्ति-विशेष के हस्तक्षेप के सफलतापूर्वक कार्यान्वित कर सकें।

३. अधिनायकशाही

अधिनायकतन्त्र या तानाशाही (Dictatorship)—प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत अनेक योरुपीय देशों में प्रजातन्त्र शासन शीघ्रता से अपने-अपने देश की अति जटिल और गम्भीर, आर्थिक व राजनीतिक समस्याओं को हल करने में असफल सिद्ध हुए। फलस्वरूप उन देशों में तानाशाही का विकास हुआ। जर्मनी में हिटलर, इटली में मुसोलिनी और स्पेन में फ्रांको ने शासन-सत्ता अपने हाथों में ले ली। इन देशों में प्रजातन्त्र शासन समाप्त कर दिया गया और उसकी जगह तानाशाही स्थापित हुई। कुछ ही समय में इन तानाशाहों ने अपने-अपने देश की कुछ गम्भीर समस्याओं को शीघ्रता से हल करने में सफलता पाई। परन्तु दूसरे विश्वयुद्ध के फलस्वरूप हिटलर का जर्मनी और मुसोलिनी का इटली हारे हुए देशों में रहे। तभी से बहुत से विचारकों के सामने यह प्रश्न चल रहा है कि प्रजातन्त्र अथवा तानाशाही मे कौनसी शासन-प्रणाली अधिक अच्छी है। सोवियत संघ में साम्यवादी दल की तानाशाही के अन्तर्गत अल्पकाल में ही वहाँ जनता की हालत में बड़ा ही प्रशंसनीय सुधार हुआ। ऐसे ही हमारे पड़ोसी देश चीन में भी कुछ ही वर्षों में काफी उन्नति हुई है। अतः भारत के अनेक विचारशील व्यक्तियों के मन में यह विचार उठता है कि देश में यदि प्रजातन्त्र के स्थान पर तानाशाही की स्थापना होती तो शायद देश की अवस्था में अधिक शीघ्रता से सुधार व उन्नति होती। अस्तु, हम यहां संक्षेप मे तानाशाही का विवेचन करना आवश्यक समझते हैं।

तानाशाही की व्यवस्था—तानाशाही राजतन्त्र से सर्वथा भिन्न है; क्योंकि राजतन्त्र वंशानुगत होता है। या तो तानाशाह शक्ति के प्रयोग द्वारा शासन-सत्ता को पाता है या वह कोई चुना हुआ ही नेता हो सकता है, किन्तु वह सत्ता को अपने हाथों में शक्ति द्वारा ही कायम रख पाता है। अस्तु तानाशाही शासन का वह रूप है जिसमें शासन की सर्वोच्च सत्ता एक व्यक्ति द्वारा मनचाहे ढङ्ग से प्रयुक्त की जाती है। इसमें जनता की सहमति उसके साथ अथवा विरुद्ध भी हो सकती है, परन्तु सभी दशाओं में तानाशाही शक्ति के सहारे कायम रहती है। तानाशाह के कार्यकाल की कोई निश्चित सीमा नहीं होती। तानाशाह के लिए यह भी आवश्यक नहीं कि वह राज्य के स्थापित कानूनों के अनुसार शासन करे। वास्तव में, वह तो आदेशों (decrees) व अध्यादेशों (ordinances) द्वारा शासन चलाता है और अति संक्षेप में उसकी इच्छा ही कानून होती है। तानाशाह एक सेना और एक दल के शासन में विश्वास करते हैं। फलस्वरूप, या तो वे अन्य सभी समुदायों और दलों पर कड़ा नियन्त्रण रखते हैं या उनका अन्त कर देते हैं। ऐसे ही नागरिकों के भाषण व लेखन सम्बन्धी स्वतन्त्रता के अधिकार अति सीमित कर दिये जाते हैं या

उनका अन्त कर दिया जाता है। संक्षेप में, तानाशाह किसी भी प्रकार का विरोध सहन नहीं कर सकते।

आधुनिक अधिनायकशाही राज्यों की सॉल्टो के अनुसार मुख्य विशेषतायें ये हैं—(१) विरोध तथा आलोचना के अधिकार को पूर्णतया अस्वीकार करना; (२) राष्ट्रवादी प्रवृत्तियाँ (nationalistic tendencies); (३) राज्य की पूजा (worship of the State); (४) एकदलीय शासन। ये विशेषतायें फासिस्ट इटली, नाजी जर्मनी और साम्यवादी सोवियत संघ आदि राज्यों में मिलती हैं। इन राज्यों में एक दल और एक नेता का शासन रहा है। इनके अतिरिक्त, ये राज्य सर्वाधिकार-वादी (totalitarian) रहे हैं; क्योंकि इन्होंने नागरिकों के सम्पूर्ण जीवन को नियन्त्रित व नियमित किया है।[1] आधुनिक तानाशाही सरकारों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—(१) इटली व जर्मनी में स्थापित फासिस्ट अधिनायकतन्त्र जैसा कि अभी तक पुर्तगाल में है; (२) साम्यवादी देशों में अधिनायकतन्त्र; और (३) सैनिक अधिनायकतन्त्र।

तानाशाही से लाभ और हानियाँ—तानाशाही का सबसे बड़ा लाभ यह है कि तानाशाही देश की अव्यवस्थित और बिगड़ी हुई दशा को शीघ्रता से सुधारने में सफल होती है। हिटलर और मुसोलिनी ने अपने देश की गिरी हुई दशा को बड़ी जल्दी सुधारने में सफलता प्राप्त की, ऐसे ही तानाशाही के अन्तर्गत सोवियत संघ और चीन ने काफी प्रगति की है। नियोजन (प्लानिंग) भी तानाशाही में अधिक अच्छी प्रकार से किया जा सकता है। यदि तानाशाह योग्य व कुशल हो और उसे जनता का समर्थन प्राप्त हो तो वह देश को उन्नति के मार्ग पर बड़ी तेजी के साथ चला सकता है। किन्तु विचारने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि तानाशाही एक प्रकार का अस्थायी शासन है, जो संकट अथवा अव्यवस्था के काल में अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि सम्पूर्ण सत्ता एक व्यक्ति के हाथों में रहती है और वह उसका देश के हित या अहित दोनों के लिए ही प्रयोग कर सकता है। यदि तानाशाह चुना हुआ भी हो तो इस बात की कोई गारन्टी न होगी कि सत्ता मिलने पर वह सत्ता के मद में चूर न हो जाय।[2]

उसमें जनता के स्वातन्त्र्य अधिकारों पर अनेक प्रतिबन्ध लगते हैं। तानाशाह देश को चाहे जितने गलत मार्ग पर ले जाये, उसकी आलोचना नहीं की जा सकती।

1. 'Totalitarianism rests in practice on a triple dictatorship—that of the party as regards *the mass of citizens, that of the inner group* as regards the rest of the party, that of the leader as regards inner group, party and nation. —*R. H Saltau*, op. cit., p. 304
2. 'If a man is dictator because he is honest. intelligent and competent, to make him dictator is the surest way of destroying all three of these virtues No dictator can escape the inevitable consequences of a lack of public discussion and free criticism. —*C. D. Burns.*, op. cit , p. 67.

साथ ही तानाशाही अर्थात् शक्ति पर आधारित शासन जनता की इच्छा की तनिक भी परवाह न करे तो विद्रोह के अतिरिक्त उसे बदलने या सुधारने का कोई और साधन नहीं। अन्त में, तानाशाही का एक दोष यह है कि एक सफल और योग्य तानाशाह के बाद ऐसा ही उत्तराधिकारी मिल जाय यह बहुत कठिन है। विभिन्न कारणों से अविकसित किन्तु हाल ही में हुए स्वतन्त्र देशों में शासन के कर्णधार प्रजातन्त्रात्मक व अधिनायकत्व दोनों ही शासन पद्धतियों की विशेषताओं को मिलाने का प्रयत्न करते रहे हैं। उन्होंने मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया है, जिसके अन्तर्गत राज्य अधिकतर महत्वपूर्ण उद्योगों का नियन्त्रण तथा विनियमन करता है और निजी उद्यमों को भी चलने देता है। ऐसी सरकारें एक दलीय शासन के पक्ष में हैं, किन्तु वे व्यक्तिगत व सामूहिक विरोध के लिए अवसर प्रदान करती हैं। वे अपने शासन को प्रजातन्त्र का ही परिवर्तित रूप बताती हैं, जैसे इन्डोनेशिया के राष्ट्रपति ने 'मार्गनिर्देशित प्रजातन्त्र' (guided democracy), पाकिस्तान के भूतपूर्व राष्ट्रपति ने 'नियन्त्रित प्रजातन्त्र' आदि वाक्यांशों का प्रयोग किया। इनके शासन एक प्रकार से प्रजातन्त्र व अधिनायकतन्त्र के बीच में हैं।

४. एकात्मक व संघात्मक शासन

संघटन (या परिसंघ) व संघ (Confederation and Federation)—आजकल पहले प्रकार के राज्य प्रायः नहीं रहे हैं, अब तो प्रवृति संघ राज्यों की स्थापना की ओर है। इन दोनों प्रकार के साधनों में महत्वपूर्ण अन्तर है। संघटन के अन्तर्गत सदस्य राज्यों को पूर्ण प्रभुता प्राप्त रहती है; उसमें केन्द्रीय सरकार (संघटन) तो होता है किन्तु केन्द्रीय प्रभुता नहीं होती। केन्द्रीय सरकार तो केवल विभिन्न राज्यों द्वारा उसे प्रदान की गई सत्ता व अधिकारों का ही प्रयोग कर सकता है: डेनियल विट के अनुसार 'संघटन स्वतन्त्र राज्यों का अत्यधिक ढीला-ढाला संघटन होता है, जिसमें कुछ सामान्य राजनीतिक तन्त्र रहता है। इसकी सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसके द्वारा नये राज्य की रचना नहीं होती'।[1] इसके विपरीत संघ शासन में संघीय व संघात्मक राज्यों की सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन होता है और दोनों ही प्रकार की सरकारों का जनता से सीधा सम्बन्ध रहता है। कन्फेडरेशन का प्रत्येक सदस्य राज्य अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से स्वतन्त्र व सम्प्रभु रहता है। इसी कारण कन्फेडरेशन को अर्द्धसंघ कहते हैं; इसके बनने से नये राज्य की रचना नहीं होती। संघ राज्य (federation) वास्तव में एक नये राज्य का रूप धारण करता है। संयुक्त राज्य अमरीका के विभिन्न सदस्य राज्यों ने पहले एक कन्फेडरेशन बनाया था जो सफलतापूर्वक न चल सका, अतः सन् १७८७ में

1. 'The confederation may be defined as the loosest possible association of independent states having some common political machinery. The most-conspicuous characteristic of the confederation is that it does not create a new state.' —*D. Wit*, Comparative Political Institutions, pp. 64-65.

फिलेडलफिया सम्मेलन ने एक नये संघ राज्य को जन्म दिया। स्विटजरलैंड के विभिन्न राज्यों के संघ का रूप भी प्रारम्भ में कन्फेडरेशन जैसा ही था, किन्तु वह अब एक संघ राज्य है। भारत कनाडा, आस्ट्रेलिया प्रमुख संघ राज्य हैं।

शासन के एकात्मक और संघात्मक स्वरूपों का आधार **भूमिगत विभाजन** (territorial division) है। आज के बड़े-बड़े देशीय राज्यों में शासन की सुविधा के लिए इस प्रकार का विभाजन अति आवश्यक और उपयोगी है। इसी कारण प्रत्येक राज्य में केन्द्रीय शासन के साथ-साथ प्रादेशिक और स्थानीय प्रशासन की व्यवस्था होती है। स्थानीय प्रशासन या स्वशासन की व्यवस्था तो आजकल सभी राज्यों में मिलती है। अतः यहाँ पर भूमिगत विभाजन से हमारा अर्थ शक्तियों का केन्द्र व प्रान्तों के बीच विभाजन से है।

एकात्मक शासन—इस प्रकार के शासन में शासन की सर्वोच्च शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार में निहित हैं। केन्द्रीय सरकार इतनी शक्तिशाली होती है कि यह राज्य के प्रादेशिक विभागों का अन्त कर सकती है या उनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन कर सकती है। प्रान्तीय सरकारों की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती। इन्हें जो भी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं वे केन्द्रीय सरकार द्वारा दी हुई होती हैं तथा केन्द्रीय सरकार उनकी शक्तियों में जब चाहे और जैसा चाहे परिवर्तन कर सकती है। अतः प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के **प्रतिनिधि रूप** (agents) होती हैं। इससे यह स्पष्ट है कि एकात्मक शासन में सभी शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार के हाथों में केन्द्रित होती हैं, और प्रान्तों की शक्तियाँ **केन्द्र द्वारा दी हुई** (delegated) होती हैं, जिसमें केन्द्रीय सरकार चाहे जब कोई भी परिवर्तन कर सकती है। इस प्रकार से एकात्मक शासन में राज्य एक ही रहता है।[1]

एकात्मक शासन का सबसे अच्छा उदाहरण ब्रिटेन का शासन है। वहाँ पर पार्लियामेंट को सभी प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हैं; इसी कारण इसे सर्वोपरि कहते हैं। यह सम्पूर्ण राज्य के लिए किसी भी प्रकार का कानून बना सकती है और इसके बनाये हुए कानूनों को सारे राज्य को मानना आवश्यक है। न्यायालय इन कानूनों को अवैध घोषित नहीं कर सकते। इस प्रकार ब्रिटेन में सारी शक्तियाँ पार्लियामेंट में निहित हैं, जो लन्दन में एकत्रित होती हैं। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि पार्लियामेंट राज्य के सभी छोटे और बड़े कार्यों की देख-रेख स्वयं करती है और ऐसा होना सम्भव भी नहीं है। वास्तव में प्रशासन की सुविधा के लिए राज्य अनेक स्थानीय क्षेत्रों में बँटा है और उनमें से प्रत्येक को अपने-अपने

1. 'A unitary state is one organised under a single central government, that is to say, whatever powers are possessed by the various districts within the area administered as a whole by the Central Government are held at the discretion of the government and the central power is supreme over the whole without any restrictions imposed by law granting special power to its part.' —*C. F. Strong.*

क्षेत्र में कुछ स्वशासन के अधिकार प्राप्त हैं और पार्लियामेंट इनके अधिकारों में जब चाहे कोई भी परिवर्तन कर सकती है।

भारत में भी सन् १९३५ के भारतीय शासन अधिनियम के लागू होने से पूर्व तक एकात्मक शासन प्रणाली थी। फ्रांस जैसे बड़े देश में अब भी एकात्मक शासन है; प्रशासन की सुविधा के लिए राज्य अनेक प्रान्तों (डिपार्टमेंट) में बँटा है। वास्तव में, संसार के अधिकतर राज्यों में ऐसा ही शासन पाया जाता है और यही शासन प्रणाली प्राचीन काल से प्रचलित है। आधुनिक संघात्मक प्रणाली की उत्पत्ति तो लगभग दो सदी पूर्व सं० रा० अमरीकी संघ के निर्माण से हुई। प्राचीन काल में भी विभिन्न राज्यों के संघों के उदाहरण मिलते हैं, किन्तु वे संघ आज के संघात्मक शासन वाले संघों से अति भिन्न थे। इसी कारण यह कहा जाता है कि सं० रा० अमरीका ने एक नई शासन प्रणाली (संघात्मक प्रणाली) को जन्म दिया है।

संघात्मक शासन—जब कुछ स्वतन्त्र राज्य अपने कुछ सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक केन्द्रीय शासन संगठित करते हैं और शेष विषयों में वे अपनी-अपनी स्वायत्तता (autonomy) सुरक्षित रखते हैं, तो ऐसे राज्यों में संघात्मक शासन[1] की स्थापना होती है। संघ शासन के निर्माण का दूसरा ढंग यह भी है कि वृहत क्षेत्र वाले देश (जैसे कनाडा या भारत) जहाँ पर पहले से एकात्मक शासन रहा हो, अपनी इकाइयों को कुछ स्वायत्तता प्रदान कर दे और शासन की शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार के हाथों में केन्द्रित न रहें वरन् इसमें शक्तियों को स्पष्ट और निश्चित रूप से केन्द्रीय (अथवा संघीय) शासन प्रान्तों (अथवा उप-राज्यों) के बीच विभाजित कर दिया जाये। यह विभाजन संविधान के द्वारा होता है, जो लिखित होना चाहिए। अतः संघात्मक शासन की प्रथम आधारभूत शर्त यह है कि **एक लिखित संविधान** हो, जो दुस्संशोध्य होना चाहिए जिससे कि शक्तियों के विभाजन में कोई परिवर्तन किसी एक सरकार की इच्छा से आसानी से न हो पाये।

इसकी दूसरी आधारभूत शर्त **शासन की शक्तियों का बंटवारा** है। इस विभाजन के कारण ही तो इसे **दोहरी सरकार** कह देते हैं। यह विभाजन इस प्रकार से होता है कि सम्पूर्ण राज्य से सम्बन्ध रखने वाले सभी महत्वपूर्ण विषयों तथा विदेशों से सम्बन्ध, सेना, संचार के साधन—रेल, तार आदि संघीय सरकार को सौंप दिए जाते हैं और प्रादेशिक महत्व के विषय उपराज्यों को। कुछ संघीय राज्यों में एक तीसरी सूची—**समवर्ती शक्तियों** की भी होती है। इस सूची में दिए गए

1. 'Federal government is a system in which the totality of government power is divided and distributed by the national constitution or the organic act of parliament creating it, between a central government and the government of the individual states or other territoiral sub-divisions of which the federation is composed.' —*J. W. Garner*, op. cit, p. 318

विषयों के ऊपर संघीय और उप-राज्यों की सरकारें दोनों ही कानून बना सकती हैं, किन्तु विरोध की दशा में संघीय सरकार का कानून मान्य होता है। भारत के वर्तमान संविधान के अन्तर्गत संघीय, राज्यों के विषयों की और समवर्ती—तीन सूचियाँ बनी हैं।

संघात्मक शासन की एक तीसरी आधारभूत शर्त और भी है। चूंकि इसमें शक्तियों का बंटवारा होता है और यह बंटवारा संविधान द्वारा किया जाता है इसलिये एक दूसरे के अधिकार-क्षेत्र में कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। यदि कभी किसी शक्ति या अधिकार के बारे में यह विवाद उठे कि वह किसके अधिकार-क्षेत्र में है या कभी संविधान की धाराओं के निर्वाचन के बारे में मतभेद उत्पन्न हो जाय तो ऐसे विवाद या प्रश्नों का निर्णय करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय का होना अनिवार्य है। ऐसे राज्य में संघीय सरकार के उप-राज्यों की सरकारों का दरजा संवैधानिक कानूनों के समक्ष समान होता है और संविधान सर्वोपरि होता है। कोई भी सरकार संविधान से प्रतिनिधियों के विरुद्ध कैसा भी कानून नहीं बना सकती; यदि गल्ती से कभी ऐसा हो भी जाये तो सर्वोच्च न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकता है।

संघात्मक शासन के प्रमुख उदाहरण सं० रा० अमरीका, भारत, सोवियत संघ, स्विटजरलैंड और आस्ट्रेलिया हैं। **हेमिल्टन** के शब्दों में, 'कुछ स्वतन्त्र राज्यों के संघ से एक नये राज्य का निर्माण होता है।' **डायसी** के अनुसार संघ, 'राष्ट्रीय एकता और शक्ति तथा राज्यों के अधिकारों में समन्वय स्थापित करने का एक राजनीतिक प्रयत्न या उपाय है'।[1] संक्षेप में संघात्मक शासन की ये विशेषतायें होती हैं—(१) एक लिखित और दुष्परिवर्तनीय संविधान; (२) शासन शक्तियों का विभाजन; और (३) सर्वोच्च न्यायालय।

एकात्मक और संघात्मक शासन में अन्तर—दोनों प्रकार के शासन की विवेचना करने के उपरान्त उन दोनों के बीच अन्तर की मुख्य बातों को हम इस प्रकार रख सकते हैं—(१) एकात्मक शासन एक इकाई अथवा एक होता है। संघीय शासन सत्ता एक संघ एवं दूसरी सरकार को प्राप्त होती है। एकात्मक शासन में शासन की सर्वोच्च शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार को प्राप्त होती हैं, प्रान्तों को इसी से शक्तियाँ मिली होती हैं। संघात्मक शासन में शक्तियों का विभाजन संविधान द्वारा किया जाता है और संविधान सर्वोपरि होता है। (२) एकात्मक राज्य में प्रान्त केवल प्रशासनिक इकाइयाँ होती हैं, जो केन्द्रीय सरकार के अंग-प्रत्यंग ही होते हैं। संघीय राज्य में उपराज्य (अथवा प्रान्त) स्वायत्त अर्थात् अपने अधिकार क्षेत्र में स्वतन्त्र होते हैं। एकात्मक सरकार प्रान्तों की रचना व शक्तियों में जब चाहे और

1. 'A federal state is nothing but a political contrivance intended to reconcile national unity with the maintenance of state rights.' —*Dicey.*

जैसा चाहे परिवर्तन कर सकती है। इस प्रकार की शक्ति संघीय सरकार को प्राप्त नहीं होती। संघ राज्य में संविधान के प्राविधानों के अनुसार ही किसी प्रकार के परिवर्तन किए जा सकते हैं। (२) एकात्मक शासन में केन्द्रीय सरकार सर्वोपरि होती है, जब कोई विवाद उठता है तो यही उसका निर्णय कर देती है। इसके विपरीत, संघीय शासन में सभी प्रकार के संवैधानिक विवादों का निर्णय सर्वोच्च न्यायालय करता है।

संघात्मक शासन के गुण व दोष—सर्वप्रथम, इसमें राष्ट्रीय शक्ति और स्थानीय स्वतन्त्रता का सुन्दर समन्वय होता है। संघ में सम्मिलित छोटे-छोटे निर्बल राज्य शक्तिशाली शत्रु-राष्ट्रों के आक्रमणों से अपने को सुरक्षित बना लेते हैं और साथ ही प्रादेशिक स्वतन्त्रता का भी उपयोग कर सकते हैं। "संगठन ही शक्ति है" वाली सर्वविदित उक्ति संघ राज्य के विषय में सर्वथा सत्य है। दूसरे, ऐसे शासन में राष्ट्रीय महत्व के विषय संघीय सरकार को मिले होते हैं और स्थानीय अथवा क्षेत्रीय महत्व के विषयों का प्रशासन उप-राज्यों के द्वारा किया जाता है। इसमें एकता और विभिन्नता का बड़ा सुन्दर समन्वय होता है। तीसरे, संघ शासन प्रणाली में प्रान्तीय समस्याओं का निराकरण करने के लिये उसी स्थान के योग्य व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त हो जाता है। राज्य की राजधानी में शासन को चलाने वाले राजनीतिज्ञ सुदूरवर्ती प्रादेशिक समस्याओं को भली प्रकार नहीं समझ सकते। चौथे, इस शासन प्रणाली में अधिक व्यक्तियों को शासन-कार्यों में भाग लेने का अवसर मिलता है। अतः सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने की उनकी रुचि को प्रोत्साहन मिलता है और स्वशासन के लिये उनका आवश्यक प्रशिक्षण हो जाता है। इस प्रकार नागरिकों की प्रशासन-सम्बन्धी दक्षता बढ़ती है।

परन्तु प्रत्येक शासन प्रणाली में गुण व दोष दोनों ही पाये जाते हैं। पूर्वोक्त गुणों के साथ **संघात्मक शासन में कुछ दोष भी हैं**—(१) इसमें शासन और राजभक्ति में द्वैधता होती है। संघ और उप-राज्यों के बीच शासनाधिकार क्षेत्र के विषय में बहुधा विवाद उठते रहते हैं। संघ शासन की दृष्टि से एकात्मक शासन की अपेक्षा कम सुदृढ़ और शक्तिशाली होता है, क्योंकि शासन की दृढ़ता और सुचारुता उद्देश्य की एकता, समय पर शीघ्रता के साथ काम करने की जो क्षमता एकात्मक शासन-प्रणाली में पाई जाती है, वैसी संघात्मक शासन-प्रणाली में सम्भव नहीं। लार्ड ब्राइस के अनुसार संघ शासन के प्रमुख दोष अग्रलिखित हैं—**(१) विदेश नीति के संचालन में दुर्बलता**—बहुधा उप-राज्यों की सरकारें विदेशों के साथ की गई सन्धियों की शर्तों को पूरा करने में अनेक प्रकार की अड़चनें डालकर संघीय सरकार के मार्ग में कठिनाइयाँ पैदा कर देती हैं। **(२) आन्तरिक शासन में दुर्बलता**—इसमें शासन शक्तियों का विभाजन अनिवार्य है। परिणामस्वरूप केन्द्र और उप-राज्य दोनों ही निर्बल हो जाते हैं। **(३) संघ के भंग होने और संघ में प्रतिस्पर्धी गुट बनने की आशंका**—राज्यों में विद्रोह या पृथक्करण की भावना के कारण संघ के भंग होने

की आशंका वनी रहती है, क्योंकि प्रत्येक इकाई राज्य की स्वतन्त्र सरकार होती है, जो अपने स्वार्थ-साधन के लिये कभी भी ऐसे प्रयत्न कर सकती है। (४) **राज्यों में प्रशासन एवं कानूनों की एकरूपता का अभाव**—संघ शासन प्रणाली का एक वड़ा दोप यह भी है कि उप-राज्यों में कानूनों और प्रशासन की एकरूपता नहीं रहती। वहुधा उप-राज्यों में दण्ड-विधान विवाह और तलाक, श्रम आदि महत्वपूर्ण विषयों के सम्वन्ध में परस्पर विरोधी कानून वन जाते हैं। (५) **दोहरे शासन के कारण अपव्यय, विलम्ब तथा अनुतरदायित्व**—संघात्मक शासन प्रणाली में दोहरे प्रशासन के कारण शासन-व्यय वहुत वढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त, निर्णय और काम करने में देरी होती है।

कुछ लेखकों ने सफल संघ के लिये अग्रलिखित वातें वताई हैं—(१) **भौगोलिक सामीप्य** (Geographical contiguity)—संघ में सम्मिलित होने वाले उपराज्य (अथवा प्रदेश) एक दूसरे से मिले हुए होने चाहियें अर्थात् उनके बीच में दूरी नहीं होनी चाहिये जैसी कि पाकिस्तान के पूर्वी और पश्चिमी भागों में थी। (२) **विभिन्न प्रकार की समानता**—संघ शासन के अन्तर्गत रहने वाले निवासियों में रक्त, भाषा, संस्कृति, विश्वास तथा हितों की समानता होनी चाहिये। (३) **संघ की इच्छा परन्तु एकता की अनिच्छा** (Desire for union but not for unity)—संघ के निवासियों में संघ की इच्छा परन्तु एकता की अनिच्छा होती है। (४) **इकाइयों में समानता**—संघ में सम्मिलित होने वाले सदस्य राज्यों में गम्भीर असमानतायें न होनी चाहियें, जिससे कि कुछ बड़े और शक्तिशाली राज्य निर्बल राज्यों पर अपना आधिपत्य न जमा सकें। उन सबमें सहयोग होना चाहिये, क्योंकि एक का दूसरे पर आधिपत्य उचित नहीं।

एकात्मक शासन प्रणाली के गुण व दोष—जैसा पहले बताया जा चुका है एकात्मक शासन-प्रणाली अति प्राचीन है और यह एक स्वाभाविक पद्धति है जबकि संघात्मक शासन-प्रणाली विशेष परिस्थितियों के सम्भालने का एक प्रयत्न मात्र है। आज भी कुछ राज्यों को छोड़कर अधिकतर में एकात्मक शासन ही चल रहा है। इसके मुख्य गुण ये हैं—(१) एकात्मक शासन सुदृढ़ और शक्तिशाली होता है, क्योंकि इनमें सारी शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार में केन्द्रित होती हैं जो आवश्यकतानुसार कैसी भी परिस्थितियों का दृढ़ता और शीघ्रता से सामना कर सकती हैं। (२) राज्य के कानूनों और प्रशासन में एकरूपता रहती है। (३) राज्य का शासन एक ही केन्द्रीय सरकार के हाथों में रहने से व्यय में कमी होती है। (४) इस शासन-प्रणाली में केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के वीच विवाद और गम्भीर मत-भेद नहीं होते। (५) ऐसी शासन प्रणाली शान्ति स्थापना, वैदेशिक नीति और युद्ध संचालन में अधिक सफल होती है। (६) शासन कार्य के सम्पादन में जटिलता और विलम्ब के कारण कम पाये जाते हैं। यह शासन-प्रणाली भी दोपरहित नहीं है। इसके मुख्य दोप ये हैं—(१) इस शासन-प्रणाली में केन्द्रीय शासन पर कार्य-

भार अत्यधिक होता है। शासन और व्यवस्था सम्बन्धी अनेक ऐसे कार्य केन्द्रीय सरकार को ही करने पड़ते हैं, जो प्रादेशिक शासन द्वारा अधिक सफलता और सुचारुता के साथ किये जा सकते हैं। (२) एकात्मक शासन सरकारी कर्मचारियों पर अधिक निर्भर होता है, जिसके कारण नौकरशाही (दफ्तरी शासन) में वृद्धि होती है और साथ ही नागरिकों को शासन-कार्यों में भाग लेने के कम अवसर प्राप्त होते हैं।

प्रश्न

१. सरकारों के विभिन्न आधारों पर किये गये वर्गीकरण का विवेचन कीजिये।
२. आपकी राय में आधुनिक सरकारों के प्रमुख रूप क्या हैं?
३. 'प्रजातन्त्र' पर एक निबन्ध लिखिये।
४ प्रजातंत्र की कोई उपयुक्त परिभाषा दीजिये और उसके गुण-दोषों का विवेचन कीजिये।
५. प्रजातंत्र की सफलता के लिये क्या बातें (दशायें) आवश्यक हैं?
६. अधिनायक तंत्र की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिये।
७. एकात्मक और संघात्मक शासन के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिये।
८. एकात्मक शासन के गुण-दोषों का विवेचन कीजिये।
९ संघात्मक शासन का अर्थ समझाइये और उसके गुण व दोषों का संक्षिप्त विवेचन दीजिये।
१०. संघात्मक शासन की आवश्यक दशाओं को समझाइये और बताइये कि सफल संघ के लिये क्या बातें होनी चाहियें?

५. कार्यपालिका

१. कार्यपालिका का महत्व और उसके कार्य

महत्व—'कार्यपालिका' (Executive) शब्द का अर्थ उन अधिकारियों के समूह से है जिनका मुख्य काम राज्यों के कानूनों लागू करना अथवा शासन की नीति व कार्यक्रम को क्रियान्वित करना होता है। साधारणतया कार्यपालिका के व्यापक अर्थ में (१) कार्यपालिका के अध्यक्ष (जो राज्य का भी अध्यक्ष होता है), (२) कार्यकारिणी परिषद् या मन्त्रिमण्डल और (३) नागरिक सेवाओं (Civil Services) को सम्मिलित किया जाता है। कार्यपालिका के महत्व के कई कारण हैं—प्रथम, यह कानूनों का निर्माण करती है, दूसरे, उन्हें लागू करती है। वृहत् अर्थ में इसमें सार्वजनिक अधिकारियों और कर्मचारियों को जिनमें विधायिका के सदस्यों और न्यायाधीशों को छोड़कर सभी नागरिक और सैनिक सेवाओं के सदस्य आते हैं—सम्मिलित किया जा सकता है।

अस्तु, कार्यपालिका केवल उच्च अधिकारियों और मन्त्रियों (जो राज्य की नीति को निर्धारित करते हैं और उसको पूरा करने के लिए आदेश निकालते हैं) से ही नहीं बनती, बल्कि इसमें सभी प्रशासकीय विभागों के अधिकारी व कर्मचारी सम्मिलित रहते हैं। इनको ही प्रशासकीय या नागरिक सेवाओं के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार कार्यपालिका की प्रमुख नीति को निर्धारित करते हैं और उनको कार्यान्वित करने में विभागों के सभी कार्यों की देख-रेख करते हैं, किन्तु सार्वजनिक सेवाओं के सदस्य अपने उच्च अधिकारियों की आज्ञाओं का पालन करते हैं। इस प्रकार के कर्मचारीगण सभी राज्यों में पाये जाते हैं। कार्यपालिका केवल कानून और व्यवस्था को ही स्थिर नहीं रखती वरन् यह तो लोक-कल्याण के सभी कार्यों और योजनाओं को प्रचलित करती है। शासन की सफलता अथवा जनता का हित बहुत कुछ कार्यपालिका के सदस्यों के गुणों पर निर्भर करता है। यदि वे अपने कार्यों में दक्ष, तत्पर, ईमानदार, उत्साही और सूझ-बूझ से पूर्ण हैं तो प्रशासन उत्तम होगा। वास्तव में, साधारण नागरिकों का सम्पर्क तो मुख्यतः सरकारी कर्मचारियों से ही रहता है, इसलिए जनता राज्य के विषय में अपना मत उनके कार्यों के आधार पर ही बनाती है।

कार्य—कार्यपालिका के मुख्य कार्यों को हम निम्नलिखित समूहों में रख सकते हैं—

(१) विधायी (Legislative)—कार्यपालिका के उच्च अधिकारियों, मन्त्रियों अथवा विभागीय का अध्यक्षों कानून-निर्माण कार्यों में कुछ प्रत्यक्ष या परोक्ष भाग अवश्य ही रहता है। संसदात्मक शासन-पद्धति में तो सभी महत्वपूर्ण विधेयक, प्रस्ताव व

बजट आदि कार्यपालिका (मन्त्रि-मण्डल) द्वारा ही पेश किये जाते हैं। सं० रा० अमरीका में भी, जहाँ अध्यक्षात्मक पद्धति है, राष्ट्रपति अनेक विधेयकों के लिए सिफारिश करता है तथा संदेश भेजता है। कार्यपालिका का अध्यक्ष (जो राज्य का भी अध्यक्ष होता है) विधायिका के सत्र बुलाता है, उनका अन्त करता है और आवश्यकता पड़ने पर विधायिका या उसके लोकप्रिय सदन को विघटित भी करता है। वह विधायिका में भाषण दे सकता है और विधायिका को संदेश भेज सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि विधायिका द्वारा पास किये गये विधेयकों पर वह अपनी अनुमति देता है, या नहीं देता अथवा उन्हें पुनर्विचार के हेतु वापस लौटा देता है। उसका दूसरा महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि आवश्यकता पड़ने पर वह स्थायी कानून अथवा अध्यादेश जारी कर सकता है। लगभग सभी राज्यों में विधायिका द्वारा पास किये गये कानूनों के अन्तर्गत अनेक प्रकार के नियम कार्यपालिका द्वारा ही बनाये जाते हैं।

(२) **प्रशासकीय** (Administrative)—इसके अन्तर्गत कार्यपालिका के उच्च अधिकारी शासन के विभागों के अध्यक्ष होते हैं और अपने-अपने विभागों के कार्यों की पूरी देख-रेख करते हैं। संसदात्मक प्रणाली में मन्त्रियों को अपने-अपने विभागों के बारे में प्रश्नों के उत्तर में माँगी गई सूचना देनी पड़ती है और आलोचना का जवाब भी देना पड़ता है। कार्यपालिका के अध्यक्ष अथवा उच्च अधिकारियों को बहुत से अधिकारियों की नियुक्ति व उन्हें पद से हटाने के अधिकार प्राप्त होते हैं। सं० रा० अमरीका व भारत के राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं, वे उच्च सैन्य अधिकारियों, विदेशों में भेजे जाने वाले राजदूतों और अनेक आयोगों की नियुक्तियाँ भी करते हैं।

(३) **प्रतिरक्षा सम्बन्धी**—यह ऊपर ही बताया गया है कि सर्वोच्च सेनापति, जल, थल व नभ तीनों ही प्रकार की प्रतिरक्षा सेवाओं के सेनापतियों आदि की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा ही की जाती है। तीनों प्रकार की सेनाओं से सम्बन्धित सर्वोच्च कमान के विषय में कार्यपालिका ही नीति-निर्धारण करती है और निर्देश देती है।

(४) **विदेश सम्बन्धी**—विदेशों से किस प्रकार का सम्बन्ध रखा जाये, किन देशों में अपने राजदूत व प्रतिनिधि भेजे जायें और किन्हें विदेशों में राजदूत या प्रतिनिधि बनाकर भेजा जाये ये सभी महत्वपूर्ण कार्य कार्यपालिकायें ही करती हैं। युद्ध की घोषणा करना अथवा सन्धि करना आदि भी कार्यपालिकाओं के कार्य हैं।

(५) **न्यायिक**—मुख्य रूप से इसके अन्तर्गत राज्य के अध्यक्ष को गम्भीर अपराधों के लिए दण्डित व्यक्तियों को क्षमा-दान देना अथवा दण्ड को स्थगित करना या कम करना आते हैं। अधिकतर राज्यों में न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ भी कार्यपालिकाओं द्वारा होती हैं। कुछ राज्यों में कार्यपालिकाओं को नागरिकों और सरकारी कर्मचारियों के बीच होने वाले झगड़ों में निर्णय देने के अधिकार हैं। कार्यपालिका को

राजनीतिक बन्दियों अथवा क्रान्तिकारी आन्दोलनों आदि में भाग लेने वाले व्यक्तियों को क्षमदान (amnesty) का विशेष अधिकार होता है।

(६) अन्य—कार्यपालिका के अध्यक्ष को नागरिकों को विशेष सेवा करने अथवा योग्यता प्राप्त करने पर उपाधियाँ (titles and decoration) देने का अधिकार भी होता है। स्वतन्त्रता से पूर्व ब्रिटिश सम्राट भारतीय प्रजाजनों को साम्राज्य की सेवा के लिए उपाधियाँ दिया करते थे। भारत के संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति 'भारत रत्न' 'पद्म-विभूषण' आदि अनेक पदक व पारितोषिक प्रदान करता है।

निष्कर्ष—कुछ समय पूर्व तक जनता कार्यपालिका की शक्ति को स्वतन्त्रता विरोधी व खतरनाक समझती थी, क्योंकि जनता को निरंकुश शासकों के विरुद्ध दीर्घ-काल तक संघर्ष करना पड़ा था, परन्तु प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास के बाद इस दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया है।[1] संसदात्मक पद्धति वाले देशों में विशेषकर तथा अन्य देशों में भी अब प्रवृत्ति कार्यपालिका को सुदृढ़ बनाने की दिशा में है, क्योंकि संसदीय कार्यपालिकाओं की निर्बलता व अक्षमता की काफी आलोचना हुई है। कार्यपालिकाओं की शक्तियों में वृद्धि के कई कारण हैं। सर्व-प्रथम,—शक्तिमय कार्यशीलता व कार्यकुशलता की मांग बढ़ी है। दूसरे, विभिन्न देशों में वंशानुगत कार्यपालिका अध्यक्षों के लोप होने के साथ-साथ निर्वाचित राष्ट्रपतियों, प्रधान मन्त्रियों और अधिनायकों के पद का विकास हुआ है और इस विकास का एक महत्वपूर्ण परिणाम कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि है। तीसरे वर्तमान कार्यपालिकाओं के पीछे जनमत व बहुमत दल का समर्थन रहता है। इसी कारण संयुक्त-राज्य अमरीका का राष्ट्रपति एक प्रकार से जनता द्वारा निर्वाचित अध्यक्ष रूप में विभिन्न शक्तियों का प्रयोग करता है और ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल अत्यधिक शक्तिशाली होता जा रहा है। चौथे, वर्तमान आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियाँ और विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति कार्यपालिकाओं की शक्ति बढ़ाने में सहायक हैं।

२. कार्यपालिकाओं के विभिन्न प्रकार

कार्यपालिकाओं को विभिन्न आधारों पर भिन्न-भिन्न प्रकार का बताया गया है, उनमें से मुख्य भेदों की संक्षिप्त विवेचना निम्नलिखित है—

(१) **वास्तविक या नाममात्र की** (Real or Nominal)—नाममात्र (या ध्वज-मात्र) कार्यपालिका से तात्पर्य उस व्यक्ति से होता है जो सैद्धान्तिक रूप में (नाम के लिए) तो राज्य का प्रमुख होता है और उसके नाम से ही प्रशासन का प्रत्येक

1. 'As freedom has been won by resistance to arbitrary monarchs, the executive power was long deemed dangerous to freedom, watched with suspicion and hemmed in by legal restraints, but when the power of the people has been established by long usage, these suspicions vanishes.'
—*J. Bryce*, Modern Democracies, Vol I, p. 358.

(२) एकल या बहुल कार्यपालिका (Single or Plural)—एकल कार्यपालिका में प्रशासन की सब शक्तियां एक ही व्यक्ति या ऐसे व्यक्ति समूह के हाथों में रहती हैं जो एक मत के आधार पर कार्य करता है। सं० रा० अमरीका में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रमुख व्यक्ति है, अपने द्वारा नियुक्त मन्त्रियों की सलाह को वह माने या न माने यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। अतः वहाँ एकल कार्यपालिका है। ब्रिटेन, भारत आदि जैसे मन्त्रिमण्डलात्मक कार्यपालिका वाले देशों में मन्त्रिमण्डलों में कितने ही सदस्य हो सकते हैं, किन्तु चूंकि मन्त्रिमण्डल के सभी निर्णय और कार्य एकमत के सिद्धान्त के अनुसार किये जाते हैं, अतः ऐसी कार्यपालिका को भी एकल ही कहते हैं। मन्त्रिमण्डल के सामूहिक उत्तरदायित्व का यही महत्वपूर्ण अभिप्राय है। मन्त्री लोग सभी बातों में एकमत रहते हैं, वे एक साथ ही तैरते या डूबते हैं।

इसके विपरीत स्विटजरलैंड में बहुल कार्यपालिका है। वहाँ की संघीय कौंसिल (Federal Council) में सात सदस्य होते हैं, जिनमें से प्रत्येक को समान शक्ति एवं अधिकार प्राप्त हैं। इस कार्यपालिका का एक सदस्य सभापति रहता है, परन्तु उसे कोई विशेष शक्ति या अधिकार नहीं मिले हैं। स्विटजरलैंड की कार्यपालिका की विशेषता यह है कि इसमें मन्त्रिमण्डलात्मक व अध्यक्षात्मक दोनों ही प्रकार की कार्यपालिकाओं के लक्षणों का मेल है। यह अग्रलिखित बातों में मन्त्रिमण्डल (Cabinet) के समान है—(१) एक अर्थ में यह विधायिका की समिति है, जिसके सदस्यों को विधायिका ही चुनती है। (२) प्रत्येक सदस्य एक प्रशासनिक विभाग का अध्यक्ष होता है। (३) इसके सदस्य विधायिका की दोनों सदनों की कार्यवाही में भाग ले सकते हैं, किन्तु मत उसी सदन में दे सकते हैं, जिसके वे सदस्य होते हैं।

(४) विधायिका के सदस्य इनसे प्रशासन के विषय में प्रश्न पूछ सकते हैं। (५) परिषद् के सदस्य विधायिका के नियन्त्रण में रहते हैं और उसकी इच्छा के अनुसार कार्य करते हैं। (६) परिषद् के सदस्य बजट और विधेयक आदि पेश करते हैं।

अग्रलिखित बातों में यह परिषद् केबिनेट से भिन्न है : (अ) यह बहुसंख्यक दल या दलों का प्रतिनिधित्व नहीं करती; (आ) इसके सदस्य किसी सामान्य राजनीतिक कार्यक्रम से नहीं बंधे होते; (इ) इनके विरुद्ध अविश्वास व निन्दा आदि के प्रस्ताव पेश नहीं किए जाते और बहुमत विरुद्ध होने पर भी उन्हें पदत्याग नहीं करना पड़ता और (ई) परिषद् के सदस्य व्यवस्थापिका का विघटन नहीं करा सकते। इसमें अध्यक्षात्मक कार्यपालिका का सबसे महत्वपूर्ण गुण स्थायित्व (stability) है; क्योंकि इसमें अन्य मन्त्रिमण्डलों की भांति बहुधा उलट-फेर नहीं होते। जबकि एकल कार्यपालिका का एक स्पष्ट गुण यह है कि इसमें कार्यपालिका की सफलता के लिए दो बातें—प्रयोजन की एकता व निर्णय की शीघ्रता विद्यमान है; बहुल कार्यपालिका में शक्तियाँ और उत्तरदायित्व बटे रहते हैं। परन्तु इसका बड़ा गुण इस बात में है कि यह "परामर्शदाताओं की एकता में ही बुद्धिमता का निवास होता है।" इस सिद्धान्त पर आधारित है, इसके अन्तर्गत नागरिक अधिकार भी अधिक सुरक्षित रहते हैं।"[1] स्विटजरलैंड में बहुल कार्यपालिका बड़ी सफल सिद्ध हुई है, यद्यपि इसका अन्य देशों में अनुकरण नहीं हुआ है। ऐसी कार्यपालिका को सामूहिक या बोर्ड जैसी (Collegial or Corporate) भी कहते हैं।

(३) **राजनीतिक और स्थायी** (Political and Permanent)—राजनीतिक कार्यपालिका का तात्पर्य कार्यपालिका के उच्च निर्वाचित अधिकारियों से है, जैसे भारत ब्रिटेन आदि देशों में मन्त्रिमण्डल के सदस्य। ये अधिकारी एक निश्चित अवधि के लिए निर्वाचकों द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चुने जाते हैं और अपने पदों पर तभी तक रहते हैं जब तक कि इनकी अवधि समाप्त नहीं होती अथवा इन्हें हटा नहीं दिया जाता। वास्तव में इनके पद राजनीतिक हैं। यदि ये फिर से निर्वाचित होकर आ जायें और इन्हें मन्त्रिमण्डल में ले लिया जाए तो ये कुछ वर्षों तक और अपने पदों पर रह सकते है। इनके अतिरिक्त प्रशासन में बहुसंख्यक अधिकारी स्थायी रूप में सरकारी नौकर होते हैं, सरकारी सेवा उनका पेशा ही है। राजनीतिक कार्यपालिका राज्य की नीति का निर्धारण करती है, उसे कार्य रूप देने

1. 'The single executive has one clear advantage. It secures the unity, singleness of purpose, energy and promptness of decision so necessary for the success of an executive. A collegial executive, on the other hand impairs unity of control by dividing responsibility...A plural executive has, however, its compensating advantages. It is a maxim of experience that in a multitude of counsellors there is wisdom...It renders more difficult the encroachment of the Executive on the liberties of the people in general.' —*A. Appadoroi*, The Substance of Political, pp 522-23.

के लिए अनेक कानूनों को विधायिका की स्वीकृति से बनवाती है। यह अपने सभी कार्यों और नीति के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। स्थायी अधिकारियों को नीति अथवा कानून नहीं बनाने होते, वे तो लागू करते हैं। मन्त्री लोग उनके कार्यों की देख-रेख करते हैं। जबकि मन्त्री बदलते रहते हैं, स्थायी अधिकारी सरकारी पदों पर कायम रहते हैं। उनको इसी कारण मन्त्रियों द्वारा निर्धारित नीति का वफादारी के साथ पालन करना उचित है, क्योंकि मन्त्री किसी भी राजनीतिक दल के हो सकते हैं और सरकारी अधिकारियों को राजनीति से अलग रहना पड़ता है।

(४) **मन्त्रिमण्डलात्मक व राष्ट्रपतीय कार्यपालिकायें**—आजकल अधिकतर प्रजातान्त्रिक राज्यों में संसदात्मक व राष्ट्रपतीय शासन पद्धतियाँ हैं, इन पद्धतियों में अन्तर का मुख्य आधार कार्यपालिकाओं का निर्माण, संगठन व उनके कार्य हैं। प्राय: सभी संसदात्मक पद्धति वाले देशों में मन्त्रिमण्डलात्मक कार्यपालिका होती है, जिसे मन्त्रिमण्डल (Cabinet or Ministry) या मन्त्रि-परिषद् (Council of Ministers) कहते हैं। राष्ट्रपतीय शासन पद्धति में कार्यपालिका का मुख्य राज्य का अध्यक्ष राष्ट्रपति होता है; अत: यह शासन पद्धति राष्ट्रपतीय कहलाती है। **मन्त्रिमण्डलात्मक कार्यपालिका** संसदात्मक शासन पद्धति का अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग है। मन्त्रिमण्डलात्मक कार्यपालिका का विकास सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन में हुआ। 'केबिनेट' शब्द की उत्पत्ति राजा चार्ल्स द्वितीय की इस प्रथा से हुई कि वह अपने परामर्शदाताओं को गुप्त परामर्श देने के लिए एक छोटे कमरे या केबिनेट में बुलाया करता था। प्रथम आधुनिक केबिनेट विलियम तृतीय की थी। १८वीं शताब्दी के अन्त तक इस प्रकार की शासन प्रणाली के प्रमुख सिद्धान्तों की स्थापना हो चुकी थी। सन् १९१६ में ग्रेट ब्रिटेन की सरकार द्वारा नियुक्त 'शासनतन्त्र पर समिति' (Committee on the Machinery of Government) ने मन्त्रिमण्डल के ये मुख्य कृत्य बताये—(१) उस नीति का अन्तिम रूप से निर्धारण जो संसद के सामने प्रस्तुत की जाती है; (२) संसद् द्वारा निर्धारण नीति के अनुसार राष्ट्रीय कार्यपालिका पर नियन्त्रण और राज्य के विभिन्न विभागों की कार्यवाहियों को परिसीमित करना तथा उनमें निरन्तर समन्वय रखना।

केबिनेट का निर्माण—राज्य का अध्यक्ष राजा या राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री को नियुक्त करता है; प्रधानमन्त्री साधारणतया ऐसा व्यक्ति होता है जिसे लोकप्रिय सदन के बहुमत का समर्थन और विश्वास प्राप्त हो। अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधानमन्त्री के परामर्श से राज्य के अध्यक्ष द्वारा की जाती है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य विधान-मण्डल के किसी भी सदन के सदस्य होते हैं; परन्तु उनमें से अधिकतर लोकप्रिय सदन के ही सदस्य होते हैं। मन्त्री बहुमत दल या मिले-जुले दल के प्रमुख नेता होते हैं। मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की कोई संख्या निश्चित नहीं होती; ग्रेट ब्रिटेन में केबिनेट के सदस्यों की संख्या २० के लगभग और भारत में १४-१५

रहती है। दोनों ही देशों के मन्त्रि-मण्डल में केबिनेट के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य कई श्रेणियों के सदस्य भी होते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में केबिनेट मन्त्रियों के अतिरिक्त राज्य-मन्त्री (Ministers of State), उप-मन्त्री (Deputy Ministers) और संसदीय सचिव (Parliamentary Secretary) होते हैं और सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल (ministry) के कुल सदस्यों की संख्या ६०–६५ रहती है। भारतीय संघ में इन सभी मन्त्रियों की संख्या ५० के लगभग है। मन्त्रियों का कार्य-काल साधारणतया लोकप्रिय सदन की अवधि के समान होता है, किन्तु मन्त्रि-मण्डल को उसका विश्वास खोने पर त्याग-पत्र देना पड़ता है। प्रधानमन्त्री भी किसी मन्त्री से, जब उचित समझे, त्यागपत्र माँग सकता है।

मन्त्रिमण्डल की कार्य-प्रणाली—मन्त्रिमण्डल का प्रमुख प्रधानमन्त्री (Premier or Prime Minister) होता है, जो मन्त्रिमण्डल की बैठकों का सभापतित्व करता है। वही मन्त्रियों में कार्य का वितरण अथवा विभागों का विभाजन करता है। वह दल और सदन का नेता होता है और मन्त्रिमण्डल व राज्य के अध्यक्ष के बीच की कड़ी भी। प्रधानमन्त्री सभी विभागों के कार्यों में समन्वय रखता है। प्रत्येक मन्त्री किसी एक या अधिक विभागों का प्रशासनिक अध्यक्ष होता है। उप-मन्त्री और संसदीय सचिव बड़े मन्त्री की सहायता करते हैं। सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल, विधान-मण्डल, व्यवहार में लोकप्रिय सदन के प्रति उत्तरदायी होता है। उनका उत्तरदायित्व सामूहिक अथवा संयुक्त (Collective or Joint) होता है। ग्रेट ब्रिटेन में प्रधानमन्त्री के परामर्श पर कॉमन सभा का विघटन (Dissolution) किया जाता है। जब कभी मन्त्रिमण्डल किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर बहुमत का समर्थन पाने में असफल रहता है तब प्रधानमन्त्री नए चुनाव कराने के उद्देश्य से ताज को कामन-सभा के विघटन का परामर्श देता है। ऐसी ही प्रथायें अन्य संसदात्मक देशों में भी पड़ रही हैं, किन्तु फ्रांस के मन्त्रिमण्डल के अधिकार इस विषय में सीमित रहे हैं।

राष्ट्रपतीय कार्यपालिका—इस प्रकार की कार्यपालिका का विकास संयुक्त राज्य अमरीका में हुआ और यह वहाँ के संघातरित राज्यों के अतिरिक्त दक्षिणी अमरीका के कई राज्यों में भी पाई जाती है। राष्ट्रपतीय कार्यपालिका का शासन में भाग मुख्यतः संवैधानिक उपबन्धों और यथार्थ शक्तियों के प्रयोग से निर्धारित होता है। युद्ध अथवा राष्ट्रीय संकटों के दौरान में सुदृढ़ राष्ट्रपतियों ने संविधान में निहित अनेक शक्तियों (Implied powers) का प्रयोग किया है। इस प्रकार की कार्य-पालिका की प्रमुख विशेषता इस बात में है कि यह विधायिका से स्वतन्त्र रहती है। यद्यपि कुछ बातों में निरोध व संतुलन (checks and balances) के सिद्धान्त के अनुसार शासन की दोनों शाखायें एक दूसरे के कार्यों पर कुछ बातों में रोक लगाती हैं, फिर भी इस प्रकार की कार्यपालिका अथवा शासन पद्धति का आधार 'शक्ति-विभाजन का सिद्धान्त' है। कार्यपालिका अपनी स्वतन्त्रता के कारण शासन

३. संसदात्मक व अध्यक्षात्मक शासन पद्धतियां

संसदात्मक (अथवा सांसद) शासन पद्धति—इसे ही मन्त्रि-मण्डलात्मक (Cabinet type) शासन-प्रणाली भी कहते हैं। इस प्रणाली की विशेषतायें ये हैं—प्रथम, राज्य का प्रमुख, चाहे वह वंशानुगत राजा हो अथवा निर्वाचित राष्ट्रपति, नाम-मात्र की शक्तियां रखता है। शासन की वास्तविक शक्तियों का प्रयोग निर्वाचित मन्त्रियों द्वारा किया जाता है। मन्त्रियों से मिलकर केबिनेट बनती है। मन्त्रीगण राज्य की विधायिका के सदस्य होते हैं और वे बहुमत प्राप्त दल में से छांटे जाते हैं। दूसरी, मन्त्रिमण्डल अपनी नीति और कार्यों के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी होता है। मन्त्री अपने पदों पर तभी तक रहते हैं जब तक कि विधायिका के सदस्यों का बहुमत उनका समर्थन करे। जब कभी विधायिका उनमें प्रस्ताव द्वारा अविश्वास प्रकट करती है या मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तुत किसी महत्वपूर्ण विधेयक (Bill) को पास होने से रोक देती है तभी मन्त्रिमण्डल को पद त्याग करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में या तो विरोधी दल का नेता, यदि बहुमत उसे प्राप्त हो जाये, शासन-भार संभालता है या विधायिका को विघटित कर दिया जाता है और नये चुनाव कराये जाते हैं। नये चुनाव पूर्ण होने पर बहुमत दल के नेता को राज्य का अध्यक्ष प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है और उसकी सलाह से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति भी करता है। प्रधानमन्त्री के परामर्श से ही मन्त्रियों में विभागों का वितरण किया जाता है। इस प्रकार मन्त्रिमण्डल कानूनी दृष्टि से सीधे विधान मण्डल अथवा लोकप्रिय सदन के प्रति और दूर से निर्वाचक-मण्डल के

प्रति उत्तरदायी होता है।[1] साधारणतया प्रत्येक मन्त्री एक या अधिक प्रशासनिक विभागों का अध्यक्ष होता है। तीसरी, मन्त्रिमण्डल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार कार्य करता है। यदि किसी मन्त्री द्वारा प्रस्तुत कोई भी प्रस्ताव या विधेयक बहुमत का समर्थन न पा सकने के कारण गिर जाता है, तो केवल उस मन्त्री को ही नहीं वरन् सारे मन्त्रिमण्डल को पदत्याग करना होता है। इसलिए यह कहा जाता है कि सभी मन्त्री एक साथ तैरते अथवा डूबते हैं।

चौथी, मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की कोई संख्या निश्चित नहीं होती; आवश्यकतानुसार वह विभागों के घटने-बढ़ने के साथ घटाई व बढ़ाई जा सकती है। मन्त्रिमण्डल का कार्य-काल भी निश्चित नहीं होता; क्योंकि विश्वास खोने पर मन्त्रिमण्डल को विधायिका की अवधि समाप्त होने से पूर्व ही पदत्याग करना पड़ सकता है। साथ ही यदि वही राजनीतिक दल नये चुनावों में फिर से जीत कर आता है तो नवनिर्मित मन्त्रिमन्डल में अधिकतर पुराने मन्त्री ही रहते हैं। पाँचवीं, प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होता है, वह मन्त्रिमण्डल की बैठकों में सभापति रहता है। वह मन्त्रिमन्डल व सरकार का नेता होता है। उसके पदत्याग का अर्थ सभी मन्त्रियों द्वारा पदत्याग होता है। वह जब चाहे किसी मन्त्री से त्यागपत्र की मांग कर सकता है और किसी अन्य सदस्य को नया मन्त्री नियुक्त करा सकता है। इन सब बातों के होते हुए भी अन्य मन्त्री प्रधानमन्त्री के सहयोगी होते हैं और उनका दर्जा उससे कुछ कम होता है। छठी, मन्त्रिमण्डल के निर्णय बहुमत से होते हैं और जब कोई निर्णय मन्त्रिमण्डल हो जाता है तो कोई भी मन्त्री बाद में उसका किसी भी प्रकार से विरोध नहीं करता। यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का ही परिणाम है। सातवीं, विधायिका को कानून बनाने, कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखने और बजट को स्वीकार करने के सभी अधिकार होते हैं।

संसदात्मक पद्धति का सबसे उत्तम उदाहरण ब्रिटेन है। इस पद्धति की उत्पत्ति और विकास ब्रिटेन में ही हुये और फिर इसका अनुकरण संसार के अनेक देशों ने किया। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि ब्रिटेन में राजा (अथवा ताज) नाममात्र का अध्यक्ष है; यद्यपि सिद्धान्त रूप में सारी शक्तियाँ उसी की हैं, परन्तु व्यावहारिक वास्तविकता यही है कि कार्यपालिका की सम्पूर्ण शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल (केबिनेट) के हाथों में हैं। मन्त्रिमण्डल का प्रमुख प्रधानमन्त्री होता है। मन्त्रिमण्डल वहाँ की विधायिका अर्थात् पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल का

1. 'Cabinet government is that system in which the real executive—the cabinet or ministry—is immediately and legally responsible to the legislature or one branch of it (usually the more popular chamber) for its legislative and administrative acts, and mediately or politically responsible to the electorate while the titular or nominal executive—the chief of state—occupies a position of irresponsibility'

—*J. W. Garner*, Political Science and Government, p. *296*.

यह उत्तरदायित्व सामूहिक है। ब्रिटेन संसदात्मक शासन-पद्धति का आदर्श नमूना है और इसमें ऊपर वर्णित संसदात्मक पद्धति की सभी विशेषतायें मिलती हैं। ब्रिटेन के नमूने पर भारत, आस्ट्रेलिया, कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका, फ्रांस तथा अन्य देशों में इस पद्धति को अपनाया गया है।

राष्ट्रपतीय शासन-पद्धति—इस प्रकार की शासन-प्रणाली में सर्वप्रथम, कार्यपालिका विधायिका से पृथक होती है और वह विधायिका के प्रति उत्तरदायी भी नहीं होती। कार्यपालिका का अध्यक्ष और परामर्शदाता विधायिका की कार्यवाही में भाग भी नहीं ले सकते। इसकी दूसरी विशेषता है कि विधायिका एक निश्चित काल के लिए जनता द्वारा चुनी जाती है और साथ ही कार्यपालिका का अध्यक्ष भी एक निश्चित अवधि के लिए अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुना जाता है। निर्वाचित अध्यक्ष का कार्यकाल विधायिका की इच्छा पर निर्भर नहीं होता।[1] सिद्धान्त और व्यवहार में एक दूसरे पर नियन्त्रण नहीं होता यद्यपि एक को दूसरे को कुछ रोक के अधिकार प्राप्त होते हैं। दोनों ही अंग एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हैं। इसकी तीसरी विशेषता यह है कि अध्यक्ष प्रशासन कार्यों को सुविधापूर्वक सुचारुता से चलाने के हेतु अपने कुछ परामर्शदाता नियुक्त करता है। इन परामर्शदाताओं को सामूहिक रूप में अध्यक्ष का मन्त्रि-मण्डल (केबिनेट) कह देते हैं; वास्तव में यह मन्त्रि-मण्डल के समान नहीं होता। परामर्शदाताओं की नियुक्ति, उनका अपने पदों पर रहना आदि बात अध्यक्ष की इच्छा पर निर्भर करती हैं। वे अध्यक्ष को जो भी परामर्श देते हैं उसे मानना अथवा न मानना अध्यक्ष की अपनी इच्छा या विवेक पर निर्भर करता है। चौथे, परामर्शदाता, जैसे पहले कहा जा चुका है, सर्वोच्च कार्यपालिका के अंग तो होते हैं, किन्तु विधायिका के सदस्य नहीं होते और न ही उसकी कार्यवाही में भाग ले सकते हैं। पाँचवे, राष्ट्रपति को केवल महाभियोग (impeachment) के द्वारा ही विधायिका निश्चित अवधि से पूर्व पद से हटा सकती है।

इस शासन पद्धति की विशेषतायें अधिक अच्छी प्रकार से समझने के लिए हमें सं० रा० अमरीका के उदाहरण को जानना होगा। वहाँ पर कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं है। दोनों को ही अपनी शक्तियाँ और अधिकार संविधान से प्राप्त होते हैं। क्योंकि वे प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित हैं इसलिए यदि हम कहें कि उन्हें अपने अधिकार व शक्तियाँ जनता से प्राप्त होते हैं, तो अधिक उपयुक्त होगा। सं० रा० अमरीका में कार्यपालिका का अध्यक्ष राष्ट्रपति (प्रेसीडेण्ट) होता है। राष्ट्रपति राज्य का केवल नाममात्र का अध्यक्ष नहीं, वरन् कार्यपालिका का वास्तविक अध्यक्ष होता है। उसका निर्वाचन अप्रत्यक्ष ढंग से

[1] 'Presidential government is the form in which the chief executive is independent of legislature as to his tenure and to a large extent as to his policies and acts.' —*R. G. Gattell*, Political Science, p. 219.

४ वर्ष की अवधि के लिए होता है। राष्ट्रपति स्वयं ही अपने परामर्शदाताओं (मंत्रियों) को नियुक्त करता है, वे उसी के प्रति उत्तरदायी होते हैं। राष्ट्रपति स्वयं और उसके मन्त्री विधायिका के सदस्य नहीं होते और उन्हें विधायिका उनके पदों से हटा भी नहीं सकती। विधायिका उसी प्रकार से निर्वाचित होती है जैसे किसी संसदात्मक पद्धति वाले देश में संसद। इस पद्धति का आधारभूत सिद्धान्त मांटेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित शक्तियों का विभाजन है। इसके अनुसार विधायिका और कार्यपालिका एक दूसरे से पृथक तथा स्वतन्त्र बनाये गये हैं।

संसदात्मक शासन-पद्धति के गुण—संक्षेप में, इस पद्धति के प्रमुख गुण अग्रलिखित हैं—प्रथम, मन्त्रि-मण्डल विधायिका में बहुमत-प्राप्त दल की एक समिति के रूप में होता है, इसका अर्थ यह हुआ कि कार्यपालिका और विधायिका में आपसी मतभेदों और विवादों की सम्भावना कम से कम रहती है और सभी कानून दोनों के सहयोग से बनते हैं। दूसरा, यद्यपि इस पद्धति में न्यायपालिका स्वतन्त्र होती है, फिर भी शासन के तीनों प्रधान अंगों में पृथक्करण नहीं होता और मंत्रिमण्डल विधायिका के प्रति उत्तरदायी रहता है, अतः शासन में सदैव ही उत्तरदायित्व की एकता रहती है, अर्थात् उत्तरदायित्व का विभाजन नहीं होता। तीसरा विधायिका में विरोधी दल के अस्तित्व के कारण मन्त्रिमण्डल के सदस्य अपने कर्त्तव्य के पालन में अधिक सतर्क रहते हैं, अन्यथा विरोधी दल उन्हें जनता की आँखों में गिरा देंगे। इस सबका परिणाम अच्छे और उपयोगी कानूनों का निर्माण होता है। चौथा, विधायिका में विरोधी दल के अस्तित्व का लाभ यह भी होता है कि यदि मंत्रिमण्डल किसी प्रश्न पर हार जाये तो शीघ्र ही विरोधी दल के सदस्यों का मंत्रिमण्डल बन सकता है। गैटेल के मतानुसार संसदात्मक शासन के ये गुण हैं—(१) यह ऐसे राज्य के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है, जहाँ प्रजातन्त्र की स्थापना हो गई हो, किन्तु वंशानुगत राजा का पद शेष हो। इसका सबसे अच्छा उदाहरण ग्रेट ब्रिटेन है। (२) कार्यपालिका व विधायिका के बीच सामञ्जस्यपूर्ण सहयोग (harmonious co-operation) रहता है।[1] (३) प्रशासनिक विभागों के अध्यक्षों की विधायिका में उपस्थिति और उनके नेतृत्व में कानूनों के प्रारूपों का तैयार किया जाना विधायिका, प्रशासन और जनता सभी के लिए लाभकारी है। (४) इसमें प्रशासन जनता के प्रतिनिधियों और उनके द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी रहता है।

संसदात्मक पद्धति के दोष—(१) दलीय व्यवस्था के, जिसके ऊपर यह पद्धति आधारित है, कई दोष हैं, जो इस प्रकार के शासन में विशेष रूप से प्रकट होते हैं। इनमें दलों का आपसी मतभेद, ईर्ष्या और दलीय हितों और राष्ट्रीय हितों के ऊपर

1. 'The cabinet system is valuable also in placing the administration under direct and constant responsibility to the popularly elected chamber and therefore indirectly to the electorate itself... The Government is always responsible, and a prolonged difference of opinion between the Government and the people is not possible.' —*Ibid., p. 220,*

महत्व देना आदि बुराइयाँ पायी जाती हैं। (२) कभी-कभी विरोधी दल वाले कुछ उपयोगी प्रस्तावों और विधेयकों का भी इस कारण विरोध करते हैं कि वे सत्तारूढ़ दल द्वारा पेश किये गये हैं और इस प्रकार बहुमत दल विरोधी दल के अच्छे सुझावों का विरोध करता है। ऐसे विरोध के कारण राष्ट्रीय विधि निर्माण में समय व्यर्थ जाता है और बाधायें उत्पन्न होती हैं। (३) यदि विधायिका में कई दल हों और किसी भी एक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त न हो तो मन्त्रिमण्डल अस्थायी रहता है। इस अस्थायीपन के कारण प्रशासन के कार्यों में दक्षता का अभाव बढ़ता है। वर्तमान संविधान से पूर्व फ्रांस के मन्त्रिमण्डलों में बहुधा परिवर्तन होते रहते थे।

राष्ट्रपतीय शासन के गुण—इस पद्धति के मुख्य गुण अग्रलिखित हैं—प्रथम, इसमें कार्यपालिका महत्वपूर्ण प्रश्नों पर स्वतन्त्र दृष्टिकोण अपना सकती है, क्योंकि यह विधायिका से स्वतन्त्र होती है। वैसे भी इस पद्धति में कार्यपालिका के हाथों में बड़ी शक्तियाँ व दायित्व केन्द्रीभूत रहते हैं, अतएव युद्ध अथवा राष्ट्रीय संकटों में ऐसी कार्यपालिका विशेष रूप से उपयोगी रहती है। दूसरा, क्योंकि कार्य-पालिका का अध्यक्ष और उसके परामर्शदाता विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होते, और उन्हें व्यवस्थापिका उनके पदों से हटाने में असमर्थ होती है, इसीलिए कार्यपालिका अधिक स्थायी रहती है। उस पर जनमत के क्षणिक परिवर्तनों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। अस्तु कार्यपालिका की नीति में जल्दी-जल्दी परिवर्तन नहीं होते। इसमें प्रशासन भी अधिक स्थायी रहता है, क्योंकि इसमें मन्त्रि-मण्डलों की उलट-फेर कम होती है और प्रशासनिक नीति का शक्तिमय संचालन होता है। तीसरा, संसदात्मक पद्धति में प्रधानमन्त्री बहुमत दल का नेता होता है और इस कारण वह इस दल का प्रमुख ही रहता है, जबकि अध्यक्षात्मक पद्धति में राष्ट्रपति वास्तविक अर्थ में राज्य का प्रमुख होता है। इसी कारण उसका अपेक्षाकृत अधिक सम्मान होता है। चौथे, इस पद्धति के अन्तर्गत विधायिका में दलीय भावना का प्रभुत्व कुछ कम रहता है, क्योंकि सदस्य विभिन्न प्रश्नों पर स्वतन्त्र रूप से मतदान कर सकते हैं।

राष्ट्रपतीय पद्धति के मुख्य दोष अग्रलिखित हैं—(१) कार्यपालिका और विधायिका के पृथक्करण के कारण शासन का उत्तरदायित्व बंट जाता है, जिसके फलस्वरूप शासन में सुगमता की कमी रहती है और व्यवस्थापन एवं प्रशासन कार्यों में बाधायें आती हैं। (२) इसमें मन्त्री विधायिका की कार्यवाही में भाग नहीं ले सकते, इस कारण विधायन की उपयोगिता में कमी पैदा होती है। (३) कभी-कभी राष्ट्रपति स्वेच्छानुसार कार्य करके राष्ट्र को संकट की स्थिति में डाल सकता है। यदि वह किसी विदेशी शक्ति के साथ युद्ध की घोषणा कर दे तो न चाहते हुए भी राष्ट्रीय विधायिका को उसकी कार्यवाही का समर्थन करना पड़ सकता है। वास्तव में, राष्ट्रपतीय पद्धति की शक्ति और कमजोरी बहुत बड़ी सीमा तक शक्ति

विभाजन सिद्धान्त के गुणों और दोषों पर निर्भर करती है, जिस पर यह मुख्यतः आधारित है।[1]

अन्त में, संसदात्मक शासन-पद्धति की सफलता के लिये ये बातें जरूरी समझी जाती हैं—प्रथम, संसद अथवा प्रतिनिधि सभा को सम्पूर्ण शक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिएँ और मन्त्रि-मण्डल को उसके प्रति उत्तरदायी रहना चाहिए। दूसरे, संसदात्मक पद्धति के विकास के लिए दलों का होना आवश्यक है। बहुमत दल मन्त्रिमण्डल बनाता है और शासन का संचालन करता है। उसकी नीति व कार्य-वाहियों की उचित आलोचना करने के लिए सुदृढ़ विरोधी दल होना चाहिए। ब्रिटेन की द्वि-दलीय पद्धति को बहुदलीय पद्धति से अधिक अच्छा समझा जाता है। तीसरे, जनता को काफी राजनीतिक शिक्षा मिलनी आवश्यक है जिससे मतदाता अपने मत का सदुपयोग कर सकें। चौथे, जनमत निर्माण की समुचित स्वतन्त्रता भी आवश्यक है।

प्रश्न

१. कार्यपालिका से आप क्या समझते हैं? उसके महत्व को बताइये।
२. आधुनिक राज्यों में कार्यपालिका के क्या कार्य हैं?
३. कार्यपालिकाओं को किन आधारों पर भिन्न २ प्रकार का बताया गया है?
४. एकल और बहुल कार्यपालिका के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
५. मंत्रिमण्डलात्मक व राष्ट्रपतीय कार्यपालिकाओं के बीच अन्तर की मुख्य बातें दीजिए।
६. संसदात्मक (मंत्रिमण्डलात्मक) शासन की मुख्य विशेषतायें क्या हैं? इसके गुण-दोषों का भी विवेचन कीजिए।
७. राष्ट्रपतीय शासन की मुख्य विशेषतायें दीजिए और उसके गुण व दोषों का भी विवेचन कीजिए।
८. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—
   (अ) नाममात्र की और वास्तविक कार्यपालिका
   (ब) राजनीतिक व स्थायी कार्यपालिका
   (स) बहुल कार्यपालिका
   (द) केबिनेट और पूर्ण मंत्रिमंडल

1. *'The strength and weakness of the presidential system lies wholly in* what is believed to be the virtue of separation of powers, its weakness *is the weakness inherent in the theory.'*
—*Jacobsen & Lipman,* An Outline of Poltical Science, p. 35

६. विधायिका

१. विधायिका का महत्व और उसके कार्य

महत्व—आजकल प्रजातन्त्र का युग है और प्राय: सभी प्रजातन्त्रीय राज्यों में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की एक सभा होती है, जिसका प्रधान कार्य कानून बनाना होता है। इस सभा को विधायिका, व्यवस्थापिका या विधानमण्डल कहते हैं। विधायिका अथवा विधानमण्डल के एक या दो सदन होते हैं। चूंकि शासन का आधार कानून होता है, अत: विधायिका का राज्य के संगठन व संस्थाओं में चूल जैसा स्थान होता है। प्रजातन्त्रीय राज्यों में विधायिका कार्यपालिका के ऊपर भी नियन्त्रण रखती है। सरकार के तीनों अंगों में विधायिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह उन विभिन्न प्रकार के कानूनों को बनाती है, जो नागरिकों के अधिकांश जीवन को विनियमित करते हैं।

इसके द्वारा निर्मित कानूनों पर ही समुदाय का कल्याण निर्भर करता है। यदि इसके बनाए हुए कानून लोकहित में हैं तो सम्पूर्ण समुदाय को लाभ पहुंचेगा, किन्तु यदि वे किसी एक वर्ग के हित में बनाए जाते हैं तो उनका परिणाम असमानता और अन्याय होगा। इस प्रकार विधायिका मुख्यत: एक मनात्मक (deliberative) संस्था होती है। पूर्ण अथवा निरंकुश राजतन्त्र में विधायिका का अस्तित्व नहीं होता; क्योंकि राजा की इच्छा ही कानून होती है। प्राचीन ग्रीस के नगर-राज्यों में सभी नागरिक प्रत्यक्ष रूप से कानून-निर्माण कार्यों में भाग लेते थे, क्योंकि एक तो नगर-राज्य छोटे-छोटे होते थे; दूसरे उनमें बहुमत सीमित जनसंख्या को नागरिकता के अधिकार मिले होते थे। किन्तु आधुनिक राज्य तो बहुत बड़े-बड़े हैं, इसी कारण नागरिक अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं। ये प्रतिनिधि विधायिका के सदस्य होते हैं और सर्वसाधारण के हित में सभी प्रकार के कानून बनाते हैं।

विधायिका के कार्य (Functions of Legislature)—सभी आधुनिक राज्यों की विधायिकायें एक समान कार्य नहीं करतीं, फिर भी उनके कार्यों में काफी समानता होती है। सभी विधायिकायें कानून बनाती हैं, राज्य की आय और व्यय पर नियन्त्रण रखती हैं और अन्य सार्वजनिक महत्व के विषयों पर विचार करती हैं। लगभग सभी राज्यों में उनका संविधान के संशोधन की प्रक्रिया में भी भाग रहता है। जिन राज्यों में संसदात्मक पद्धति होती है वहाँ विधायिकायें कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती हैं। कुछ राज्यों की विधायिकाओं को कार्यपालिका के अध्यक्ष के निर्वाचन अथवा उच्च सदन के सदस्यों के निर्वाचन में भी भाग लेने का अधिकार है। साथ ही, कुछ राज्यों की विधायिकायें कार्यपालिका सम्बन्धी

कार्यों में भाग लेती हैं। अन्त में, कुछ राज्यों की विधायिकायें न्यायिक कार्य भी करती हैं।[1] अस्तु, विधायिकाओं के मुख्य कार्यों का विवेचन निम्नलिखित है—

विधायी (कानून बनाना)—जैसा कि नाम से स्पष्ट है, प्रत्येक विधायिका व्यवस्थापन कार्य अर्थात् कानून बनाने का कार्य करती है। वास्तव में सभी राज्यों में विधायिकाओं का विधायी कार्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस शक्ति के अन्तर्गत विधायिकायें आवश्यकतानुसार नए कानून बनाती हैं, पुराने कानूनों को समाप्त अथवा उनमें संशोधन करती हैं, जिससे कि राज्यों के कानूनों (विधियों) और बदली हुई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशाओं में सामञ्जस्य बना रहे। कानूनों में स्रोतों का वर्णन करते हुए यह पहले ही बताया जा चुका है कि आजकल प्रायः सभी देशों में अधिकतर ही क्यों वरन् सभी कानून विधायिकाओं द्वारा बनाये जाते हैं जो संविधि (statutes) कहलाते हैं। कानून बनाना तो विधायिकाओं का प्रमुख कार्य है, किन्तु विधेयकों के प्रारूप (drafts of Bills) राज्य के कानूनी अधिकारियों द्वारा तैयार किए जाते हैं। विधि निर्माण कार्य में विधायिका समितियों का व्यापक प्रयोग करती हैं, जिनके सदस्यों को उन कानूनों से सम्बन्धित विषयों के बारे में विशेष जानकारी हो जाती है। साधारणतया विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों में मोटी बातें दी जाती हैं उनके अन्तर्गत नियम व उपनियम प्रशासनिक अधिकारी बनाते हैं। इस प्रकार के विधि-निर्माण को अधीन या सौंपा हुआ (subordinate or delegated) विधि-निर्माण कहते हैं। यह कहना उचित होगा कि यथासम्भव विधायिका के कानून बनाते समय छोटी-छोटी विस्तार की बातों में जाने की आवश्यकता नहीं।

वित्तीय (Financial)—प्रत्येक राज्य में विधायिका का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य आय और व्यय पर नियन्त्रण रखना है। यही विभिन्न प्रकार के कर लगाने और विभिन्न स्रोतों से होने वाली आय को राज्य द्वारा की जाने वाली विभिन्न सेवाओं पर व्यय करने की स्वीकृति देती है। दूसरे शब्दों में, विधायिकायें बजट पास करती हैं। इस प्रकार विधायिकाओं को राज्य के कोष पर नियन्त्रण के अधिकार होते हैं। वर्तमान समय में बजट पास करना विधायिकाओं का बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य हो गया है। वे बजट पास करने के साथ-साथ सरकारी विभागों की आय और व्यय पर नियन्त्रण करती हैं और उनकी जाँच-पड़ताल (audit) की रिपोर्ट अनेक देशों की विधायिकाओं के सामने पेश की जाती हैं। वास्तविकता तो

1. Some writers divide the various functions of a legislature into two broad groups, (a) Legislative and (b) Non-legislative. In the latter group they include: (i) securing information, (ii) formal expression of opinion, (iii) checking the executive branch, (iv) sharing in specified executive decisions, (v) determining their own membership, (vi) electoral responsibility, and (vii) making or revising constitution, etc.
—*Dillon, et al*, Introduction to Political Science, pp. 143-51.

यह है कि संसदात्मक पद्धति वाले देशों में इस शक्ति द्वारा विधायिका विभिन्न विभागों के कार्यों की आलोचना करती है और उन पर एक प्रकार से अपने नियन्त्रण को लागू करती है। इसी शक्ति को धन स्वीकार करने की शक्ति (power of the purse) कहते हैं।

कार्यकारी या प्रशासनिक (Administrative)—सभी राज्यों में विधायिकायें कार्यपालिका सम्बन्धी अथवा प्रशासनिक कार्य भी करती हैं। वे प्रशासनिक विभागों के संगठन के विषय में कानून बनाती हैं। विभिन्न भागों के कार्यों की आलोचना करती हैं और उनके लिए आवश्यक व्यय की स्वीकृति देती हैं। संसदात्मक पद्धति के अन्तर्गत कार्यपालिका (मन्त्रिमण्डल) और विधायिका में अति निकट सम्पर्क रहता है, विधायिका के प्रति ही कार्यपालिका उत्तरदायी होती है। इसका अर्थ यह है कि मन्त्रिमण्डल तभी तक अपने पदों पर आरुढ़ रह सकता है जब तक उसे व्यवस्थापिका के बहुमत का विश्वास अथवा समर्थन प्राप्त हो। ऐसे शासन में कार्यपालिका द्वारा तैयार की हुई नीति को विधायिका ही स्वीकार करती है, मन्त्रियों से उनके विभागीय कार्यों के बारे में प्रश्न पूछती है व जब चाहे बहुमत द्वारा उन्हें त्यागपत्र देने को विवश कर सकती है। किन्तु राष्ट्रपतीय शासन-पद्धति से कार्यपालिका विधायिका से स्वतन्त्र होती है अर्थात् विधायिका का कार्यपालिका पर नियन्त्रण नहीं होता। परन्तु वहाँ भी विधायिका सरकारी विभागों के संगठन के बारे में कानून बनाती है, उनके कार्यों में जांच करने के लिए कमीशन नियुक्त करती है, उदाहरण के लिए सं० रा० अमरीका में सीनेट (कांग्रेस का उच्च सदन) राष्ट्रपति द्वारा की हुई नियुक्तियों का **अनुसमर्थन** (confirmation) करती है।

संविधान में संशोधन—लगभग सभी राज्यों में विधायिकाओं को अपने-अपने राज्यों के संविधान में संशोधन करने के कुछ अथवा पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं। ब्रिटेन की पार्लियामेंट तो साधारण कानून की ही तरह से कैसा भी संविधान सम्बन्धी कानून बना सकती है। अन्य देशों में संविधान में संशोधन सम्बन्धी प्रस्तावों को विधायिकायें ही पास करती हैं, किन्तु उनके पास करने के लिए सामान्यतया विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है। कुछ राज्यों में उनके द्वारा पारित संशोधन सम्बन्धी प्रस्तावों को लोक-निर्णय (referendum) द्वारा, जैसा कि स्विटजरलेंड में होता है, सम्पुष्ट (ratify) किया जाता है, अथवा संघात्मक राज्यों में विभिन्न उपराज्यों की विधायिकाओं द्वारा उनका सम्पुष्टिकरण होता है। सं० रा० अमरीका तथा भारत में ऐसी ही व्यवस्था है।

अन्य—कुछ देशों की विधायिकाओं को निर्वाचन-सम्बन्धी कार्य भी करने होते हैं। स्विटजरलेंड व सोवियत संघ में तो सर्वोच्च कार्यपालिका के सदस्यों की नियुक्ति विधायिकायें ही करती हैं और सोवियत संघ में विधायिकायें न्यायाधीशों का निर्वाचन भी करती हैं। हमारे देश में संसद व राज्यों की विधान सभायें राष्ट्रपति का निर्वाचन भी करती हैं तथा जिन राज्यों में विधान परिषदें हैं वहाँ की विधान

सभायें उच्च सदन के १/३ सदस्यों का निर्वाचन भी करती हैं। विधायिकाओं को कुछ राज्यों में न्यायिक कार्य करने के भी अधिकार प्राप्त हैं। सं० रा० अमरीका में कांग्रेस को और भारत में संसद को राष्ट्रपति पर महाभियोग की कार्यवाही का पूर्ण अधिकार है। ब्रिटेन की संसद का उच्च सदन (हाउस ऑफ लॉर्ड्स) राज्य का सबसे ऊँचा न्यायालय है।

२. विधायिका की रचना

विभिन्न प्रजातन्त्रात्मक राज्यों की विधायिकाओं के अध्ययन से पता चलता है कि विधायिका के संगठन के दो तरीके हैं। यह एक सदन वाली अथवा दो सदन वाली होती है। वास्तव में, विधायिका की बनावट के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न ही यह है कि विधायिका एक सदन वाली हो अथवा दो सदन वाली। आधुनिक राज्यों में दोनों ही प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों ही प्रकार की विधायिकाओं के गुण और दोषों पर विचार किया जाय। द्विसदनात्मक (Bicameral) **विधायिका** के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं—

(१) **उच्च अथवा दूसरा सदन उतावलेपन को रोकता है**[1]—यह कहा जाता है कि *निर्वाचित विधायिका के अधिकांश सदस्य जनमत के अनुकूल क्षणिक भावावेश* में अथवा प्रभावशाली वक्ताओं के प्रभाव में आकर किसी प्रस्ताव या विधेयक के ऊपर पूरी तरह से विचार किये बिना ही पक्ष या विपक्ष में मत दे देते हैं। ऐसी जल्दी में पास किये जाने वाले विधेयकों पर उच्च सदन एक प्रकार की उपयोगी रोक लगाता है। (It serves as a check upon hasty, rash and ill-considered legislation.)।

(२) **स्वेच्छाचारिता को रोकता है**—जब व्यवस्थापिका में एक ही सदन होता है, *तो उसका बहुमत चाहे तो स्वेच्छाचारी कानून बना सकता है (It is a* safeguard against the despotism of a single chamber)। द्विसदनीय प्रणाली के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा विधायिका की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध अधिक अच्छे ढङ्ग से हो सकती है। यदि विधायिका में एक ही सदन होता है तो सारी शक्ति उसी के हाथ में केन्द्रीभूत हो जाती है और वह जैसे चाहे कानून बना सकती है। किन्तु दो सदनों के होने पर एक सदन दूसरे सदन की स्वेच्छाचारिता पर रोक लगाता है; फलस्वरूप व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा की अधिक सम्भावना बढ़ जाती है।

(३) **कानून पास होने में देरी करता है**—दो सदन होने पर कानून के पास होने में देरी लगती है। विधायिका के प्रथम सदन द्वारा पास किये किसी विधेयक पर

1. 'The second chamber has been *looked* upon as *a check on hasty legislation*, a brake upon impetuous democracy, a ballast in political life, a Philip sober entertaining appeals from Philip drunk.' —*Beni Prasad.*

कुछ समय बाद दूसरा सदन विचार करता है; इस बीच में उस विधेयक के विषय में विचारवान नागरिक भी सोचते हैं और उसके पक्ष या विपक्ष में एक प्रबल जनमत का निर्माण हो सकता है।[1] फलस्वरूप दूसरा सदन विधेयक पर विचार करते समय जनमत का पूरा ध्यान रख सकता है। इस प्रकार से बनाये गये कानून अधिक सन्तुलित व जनमत के अनुकूल होते हैं।

(४) **अशुद्धियों को दूर करता है**—इसमें विधेयकों पर अधिक अच्छी प्रकार से विचार किया जा सकता है और प्रथम सदन द्वारा पास किये गये विधेयकों में यदि कुछ त्रुटियाँ रह गई हों तो यह उन्हें दूर कर सकता है। साथ ही, यह प्रथम सदन के भार को भी कम करता है। बहुत से ऐसे विधेयक, जिसके बारे में गम्भीर मतभेद न हों आरम्भ में दूसरे सदन में पास किये जा सकते हैं और बाद में प्रथम सदन उनको शीघ्रता से पास कर सकता है।

(५) **विशेष हितों को प्रतिनिधित्व देता है**—दूसरे सदन में विभिन्न प्रकार के विशेष हितों का प्रतिनिधित्व सुविधापूर्वक किया जा सकता है। इसमें नामजदगी द्वारा योग्य और अनुभवी व्यक्तियों की सेवायें राष्ट्रीय हित में प्राप्त की जा सकती हैं। अत: जो योग्य और अनुभवी व्यक्ति चुनाव के झंझट में पड़ना पसन्द नहीं करते, उन्हें आसानी से उच्च सदन में नामजद सदस्य बनाया जाता है (It affords a convenient means of giving representation to special interests or classes in the state.)

(६) **संघीय राज्यों में उप-राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है**—साधारणतया संघ राज्यों में प्रथम सदन में प्रतिनिधित्व का आधार राज्य की जनसंख्या होती है जो विभिन्न निर्वाचन-क्षेत्रों में बंटी रहती है। संघीय राज्यों में आवश्यकता इस बात की होती है कि राज्य की इकाइयों (अथवा-उपराज्यों) का राज्य की व्यवस्थापिका में, जहाँ तक हो सके समानता के आधार पर प्रतिनिधित्व हो। यह कार्य दूसरे सदन के होने पर सुविधापूर्वक किया जा सकता है।

(७) जैसा कि **मैरियट** (J. A. R. Marriott) नामक लेखक ने कहा है, इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि विभिन्न राज्यों के अनुभव दूसरे सदन के पक्ष में हैं (experience of history has been in favour of two chambers) इसका प्रमाण यह है कि जिन देशों में दो सदन वाले विधान-मण्डल बनाये गये, उन सभी में यह व्यवस्था अभी तक स्थिर है और उसकी देखा-देखी अन्य राज्यों ने भी इस व्यवस्था को अपनाया है।

दूसरे सदन के विपक्ष में तर्क—(१) **अबेसिये के विचार**—प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक अबेसिये ने कहा है, "जनता की इच्छा ही कानून है"। एक समय में किसी विषय

1. 'By interposing delay between the introduction and the final adoption of a measure the second house *compels* time for further reflection and deliberation.' —*R. G. Gettell*, Political Science. p. 313.

पर जनता की दो इच्छायें नहीं हो सकतीं अतः जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व करने वाला एक ही सदन होना चाहिए। 'दूसरा सदन यदि प्रथम का विरोध करता है, तो दुष्ट है और यदि अनुमोदन करता है, तो बेकार है' (If a second chamber dissents from the first, it is mischievous; if it agrees with it, it is superfluous)। परन्तु इस विकल्प का फाइनर ने इस प्रकार से उत्तर दिया है—यदि दोनों सदन किसी विषय पर सहमत हों तो जनसाधारण का कानून के न्याय और बुद्धिमत्ता में विश्वास और भी दृढ़ होगा, किन्तु यदि उनमें मतभेद है, तो ऐसे समय में जनता को उस विषय के प्रति अपने दृष्टिकोण पर फिर से विचार करना चाहिए।

(२) दूसरा सदन होने पर कानूनों के बनने में देरी लगती है और व्यय भी अधिक होता है (A Second chamber is a costly luxury)।

(३) दूसरे सदन की बनावट किस प्रकार की हो; इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न प्रकार से दिया गया है अर्थात् दूसरे सदन के समर्थकों में इनकी बनावट के विषय में एकमत नहीं हैं। आधुनिक लेखकों का मत है कि दूसरा सदन हो तो प्रथम से प्रतियोगिता न करे, और इस प्रकार से संगठित किया जाय कि इसमें योग्य व अनुभवी सदस्य आ सकें। इन दोनों बातों को व्यवहार में मिश्रित करना अत्यन्त कठिन है।

(४) गेलेट के मतानुसार एक सदन वाली विधायिका के पक्ष में ये तर्क दिये जाते हैं—(अ) ऐसी व्यवस्थापिका का संगठन सरल और सीधा होता है; और यह निर्वाचकों के प्रतिनिधित्व का सीधा और अधिकारपूर्ण साधन है। (५) **लॉस्की के विचार**—लॉस्की कहता है कि दूसरा सदन व्यर्थ है, क्योंकि जब कोई विधेयक प्रथम सदन में पास होता है, तो उसके तीन वाचन होते हैं, उसकी प्रत्येक धारा पर विचार करते समय पक्ष-विपक्ष में सभी तर्कों पर पूरा ध्यान दिया जाता है। साथ ही विधेयक की धारायें और उन पर होने वाले वाद-विवाद समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते हैं और देश भर में उनकी विवेचना व आलोचना की जाती है; विधेयक पर विचार करने वाली समिति इन सब पर पूरी तरह से ध्यान देती है।[1]

निष्कर्ष—आधुनिक प्रवृत्ति यह है कि जिन राज्यों में उच्च सदनों की व्यवस्था है, वहाँ पर उनकी शक्तियों को कम किया जा रहा है। इस प्रक्रिया का सबसे सुन्दर उदाहरण ब्रिटेन है, जहाँ पर कि लार्ड सभा की शक्तियाँ घटते-घटते केवल नाममात्र की रह गई हैं। भारत में भी राज्य सभा व राज्यों की विधान परिषदों की शक्तियाँ अत्यधिक सीमित व जनप्रिय सदन की शक्तियों से बहुत कम

1. 'It is better, therefore, to have directly single-chambered government, and to throw the burden of control upon the electorate which chooses the chamber, and the executive which directs its activities.'
—*H. J. Laski*, Grammar of Politics, p, 33.

रखी गई हैं; क्योंकि कई देशों के अनुभव से पता चलता है कि दो सदन वाली व्यवस्था के कारण बहुधा गतिरोध व अनावश्यक विरोध पैदा हो जाया करते हैं और अनावश्यक देरी होती है। संघात्मक देश में, संघीय विधानमण्डल में तो दो सदन होने आवश्यक ही समझे जाते हैं, किन्तु इकाई राज्यों की विधायिकायें सामान्यतया एक सदन वाली होती हैं। ऐसी ही व्यवस्था कनाडा के प्रान्तों स्विटजरलैंड के केन्टनों और आस्ट्रेलिया व भारत के अधिकतर इकाई राज्यों में पाई जाती है। अन्त में, हम यहीं कहेंगे कि संघीय व विशाल क्षेत्रों वाले राज्यों में दो सदन वाले विधानमण्डल अधिक उपयुक्त हैं; किन्तु उच्च सदनों की शक्तियाँ काफी सीमित होनी चाहियें। छोटे-छोटे राज्यों व संघों के इकाई राज्यों में एक सदन वाली विधायिकायें ही पर्याप्त समझी जानी चाहियें। अब हम दोनों सदनों की रचना के बारे में अलग-अलग विवेचन करेंगे।

दूसरे सदन की रचना—(१) कुछ राज्यों में दूसरा सदन वंशानुगत आधार पर बनाया जाता है। इसका सबसे प्रसिद्ध उदाहरण ब्रिटेन की लार्ड सभा है; जिसमें अधिकांश सदस्य वंशानुगत आधार पर बैठते हैं और शेष का विभिन्न पीयर्स (उच्च वंश के उपाधिकारी व्यक्ति) निर्वाचन करते हैं। परन्तु अब इस आधार को सर्वथा प्रजातन्त्रवाद के सिद्धान्त का विरोधी माना जाता है। (२) कुछ राज्य के उच्च सदन में राज्य के अध्यक्ष द्वारा नामजद व्यक्ति ही रहते हैं। कनाडा की सीनेट में सभी सदस्य वहाँ के गवर्नर जनरल द्वारा नामजद किये जाते हैं। अन्य अधिकतर राज्यों में सब तो नहीं किन्तु कुछ सदस्य बहुधा राज्य के अध्यक्ष द्वारा नामजद होते हैं। भारतीय राज्यसभा तथा राज्यों की विधान परिषदों में राष्ट्रपति व गवर्नरों को क्रमशः कुछ सदस्यों को नामजद करने का अधिकार है। परन्तु इस सिद्धान्त को भी प्रजातन्त्र विरोधी समझा जाता है, इसी कारण इसका प्रयोग कम होता जा रहा है। (३) कुछ राज्यों, विशेषकर संघीय राज्यों, में उच्च सदन के सदस्य विभिन्न उप-राज्यों या इकाइयों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सं० रा० अमरीका स्विटजरलैंड, सोवियत संघ और भारत में ऐसा ही है; परन्तु पहले तीन में प्रत्येक उप-राज्य का समान प्रतिनिधित्व है—अर्थात् प्रत्येक उप-राज्य से दो-दो या अधिक प्रतिनिधि चुनकर आते हैं, भारत में ऐसा नहीं है। ये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं।

आजकल अग्रलिखित ढंग को सबसे उत्तम समझा जाता है। उच्च सदन का एक भाग नामजद सदस्यों का और दूसरा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों का होना चाहिए। इस सदन के सदस्यों की संख्या जहाँ तक हो कम ही रहनी चाहिए, २५० से अधिक संख्या अच्छी नहीं समझी जाती, ब्रिटेन और सोवियत संघ को छोड़कर अन्य राज्यों में इसकी सदस्य संख्या सीमा से कम ही है। भारत की राज्य सभा में अधिक से अधिक २५० सदस्य हो सकते हैं और किसी भी उपराज्य की विधान परिषद् में १०८ से अधिक संख्या नहीं हैं। उच्च सदन के सदस्यों में पहले उच्च वंश या

वर्गीय हितों जैसी—उद्योगपतियों, व्यापारियों श्रमिकों और जमींदारों का प्रतिनिधित्व अधिक होता था। भारत के संविधान द्वारा इनमें शिक्षकों, स्नातकों और विभिन्न क्षेत्रों में विख्यात व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व रखा गया है। उच्च सदन के सदस्यों के लिए निर्धारित योग्यताओं में निम्नतम आयु की सीमा निचले सदन के सदस्यों से ऊँची होती है। इन सदस्यों की अवधि भी अधिक होती है। हमारे यहाँ प्रत्येक सदस्य ६ वर्ष के लिये निर्वाचित होता है। यह सदन स्थायी है; इनके १/३ सदस्य प्रति दो वर्ष में अपने स्थान खाली कर देते हैं, परन्तु उन्हीं सदस्यों को फिर से निर्वाचित किया जा सकता है। अन्य राज्यों में भी इनकी अवधि ५ या ६ वर्ष रक्खी जाती है और एक तिहाई सदस्य प्रति दो या तीन वर्ष में अपने स्थान रिक्त करते हैं। पूरे सदन का एकदम पुनःनिर्वाचन नहीं होता। इसका लाभ यह है कि यह सरकार की नीति में आकस्मिक परिवर्तनों को रोकती है, परन्तु साथ ही साथ नये विचारों के प्रदेश पर प्रतिबन्ध नहीं लगाती।

निचले सदन की रचना—इस सदन का जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन होना चाहिये। अधिकतर राज्यों में अब व्यस्क मताधिकार प्रदान किया जा रहा है। मताधिकार पर किसी भी प्रकार की सीमायें लगाना आजकल अप्रजातन्त्रात्मक समझा जाता है। सदन की सदस्य संख्या कितनी हो ? यह प्रश्न विचारणीय है। इसकी सदस्य संख्या इतनी अधिक न हो कि यह अपना मननात्मक कार्य प्रभावशाली ढंग से न कर सके, परन्तु इसमें राज्य के सभी प्रदेशों अथवा जन-समूहों का उचित प्रतिनिधित्व भी हो। अतः इसकी सदस्य-संख्या निश्चित करते समय राज्य के क्षेत्रफल. जनसंख्या आदि का पूरा ध्यान रखना चाहिये। इसके लिए ५०० सदस्यों की अधिकतम सीमा अधिकतर लेखक ठीक मानते हैं। सदस्यों के निर्वाचन के विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न तरीके हैं, परन्तु अधिकतर राज्यों में भूमिगत निर्वाचन-क्षेत्र और वे भी एक सदस्य वाले अधिक पसन्द किये गये हैं। कुछ देशों में आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति की व्यवस्था है, जिसके लिए वहु सदस्य वाले निर्वाचन क्षेत्रों का होना आवश्यक है।

इस सदन की अवधि इतनी कम न हो कि सदस्यगण चुने जाने के उपरान्त जब [i]सकी आवश्यक कार्य-विधि से परिचित हों, उसके कुछ समय बाद ही फिर उन्हें [न]ये निर्वाचन की चिन्ता सताने लगे। सं० रा० अमरीका में काँग्रेस के निचले [स]दन की अवधि २ वर्ष है। फलतः वहाँ सदस्यगण जैसे ही अपने कार्य को भली [प्र]कार समझने योग्य होते हैं, तुरन्त ही उन्हें नये चुनाव की तैयारी में लग जाना [ह]ोता है। इसके विपरीत इसकी अवधि इतनी लम्बी भी न हो कि सदस्यगण कुछ [स]मय बाद जनमत का ठीक से प्रतिनिधित्व न कर सकें। इन कारणों से इसकी [अ]वधि ४ या ५ वर्ष होनी चाहिये। निचला सदन ही लोकप्रिय सदन (Popular [H]ouse) होता है; अर्थात् यही जनता की इच्छा का सच्चा प्रतिनिधि होता है। अतः [इ]से कानून निर्माण और आय-व्यय के नियन्त्रण में अन्तिम निश्चय के अधिकार

प्राप्त होने चाहियें। साथ ही इसे कार्यपालिका पर भी नियन्त्रण की शक्ति होनी चाहिये। संसदात्मक पद्धति में तो ऐसा ही होता है। निचले सदन को कार्यपालिका पर पूर्ण नियन्त्रण के अधिकार होते हैं, क्योंकि इसे अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उसे हटाने की शक्ति प्राप्त होती है। आर्थिक क्षेत्र में भी वास्तविक शक्ति निचले सदन को ही मिली रहती है।

३. सदनों की तुलनात्मक शक्तियाँ और विधायी प्रक्रिया

दोनों सदनों की शक्तियों की तुलना—वर्तमान प्रवृत्ति यह है कि दो सदन वाले विधानमण्डल में निचले अथवा लोकप्रिय सदन को व्यापक और वास्तविक शक्तियाँ प्राप्त हों। इसी कारण अधिकतर देशों में ऊपर वाले सदनों की शक्तियाँ निचले सदनों की तुलना में बहुत कम और परिमित होती हैं। ग्रेट ब्रिटेन में सन् १९११ के पार्लियामेंटरी अधिनियम द्वारा लार्ड सभा की शक्तियाँ अत्यधिक सीमित कर दी गई। जहाँ तक धन विधेयकों (Money bills) का सम्बन्ध है, उनके बारे में तो लार्ड सभा की शक्तियाँ नहीं के समान हैं। अन्य विधेयकों के बारे में भी वह केवल उनके पास होने में कुछ देरी करा सकता है तथा उनको दोहराता है, अतएव लार्ड सभा की शक्तियाँ वास्तविक नहीं हैं। ब्राइस कान्फ्रेंस ने लार्ड सभा के उचित कार्य इस प्रकार बताये—ऊपर वाले सदन को लोकप्रिय सदन की इच्छा में बाधा नहीं डालनी चाहिये, परन्तु उनके द्वारा पास किये गये विधेयकों को दोहराना चाहिये। इस विधेयक को कानून बनने के बीच में इतनी देरी कराने का अधिकार हो कि उस पर जनमत की अभिव्यक्ति के लिये काफी समय मिल जाये। भारत में भी राज्य सभा व विधान परिषदों की शक्तियाँ क्रमश: लोकसभा व विधान सभाओं की तुलना में बहुत ही सीमित हैं और वित्तीय क्षेत्र में तो नाममात्र की हैं। सोवियत संघ व संयुक्त राज्य अमरीका में दोनों सदनों की शक्तियाँ लगभग समान हैं। अमरीका की सीनेट (Senate) तो विश्व का सबसे अधिक शक्तिशाली ऊपर वाला सदन कहा जाता है।

विधायिका का संगठन (Organisation)—प्रत्येक सदन अपने लिए एक सभापति और एक उप-सभापति का निर्वाचन करता है। साधारणतया निचले सदन के सभापति अध्यक्ष (Speaker) और उपाध्यक्ष कहलाते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका और भारत में यह व्यवस्था है कि उपराष्ट्रपति उच्च सदन का सभापति रहे और उसकी अनुपस्थिति में उसी सदन द्वारा निर्वाचित उप-सभापति कार्य करे। नये निर्वाचित सदस्यों को सदन की कार्यवाही में भाग लेने से पूर्व अपने पद की शपथ लेनी होती है। उन्हें कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं। सदन में उन्हें भाषण और मतदान की स्वतन्त्रता होती है साथ ही उन्हें अपने कार्यकाल में वेतन और भत्ते मिलते हैं। विधायिका के वर्ष में कम से कम एक अथवा दो सत्र होते हैं जो काफी दिनों तक चलते हैं। प्रत्येक सदन की वैध कार्यवाही के लिए **गणपूर्ति** की शर्त होती है, अर्थात एक निश्चित संख्या से कम सदस्यों की उपस्थिति मे

कार्यवाही स्थगित कर दी जाती है। सदन में अधिकांश प्रस्ताव और विधेयक बहुमत पक्ष में आने पर पास होते हैं। किन्तु कुछ विशेष प्रस्तावों जैसे संशोधन अथवा राष्ट्रपति पर महा अभियोग सम्बन्धी प्रस्तावों को पास करने के लिये विशेष बहुमत की शर्त होती है।

विधायी प्रक्रिया (Legislative Procedure)—किसी भी सदन में पेश किये जाने से पूर्व प्रत्येक विधेयक (Bill) का प्रारूप (draft) बहुत सोच-समझकर और कानूनी सलाहकारों के परामर्श से तैयार किया जाता है। अन्तिम रूप में पास होने के पूर्व साधारणतया इसको कई मंजिलें पार करनी होती हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है—

(१) प्रस्तावित विधेयक किसी निश्चित समय पर सदन में पेश किया जाता है। इस समय पेश करने वाला सदन सदस्य से प्रार्थना करता है कि विधेयक का पहला वाचन किया जाय। प्रार्थना स्वीकृत हो जाने पर वह सदन के सामने इन तीन में से एक बात स्वीकार करने का प्रस्ताव रखता है—विधेयक का तुरन्त ही दूसरा वाचन किया जाय; (ख) विधेयक प्रवर समिति (Select Committee) के विचाराधीन कर लिया जाये, या (ग) विधेयक लोकमत जानने के लिए प्रसारित किया जाये। (२) जब कोई विधेयक समिति के विचाराधीन कर दिया जाता है तो समिति उसके बारे में छानबीन करती है और निश्चित समय के भीतर रिपोर्ट देती है। समिति की रिपोर्ट गजट में प्रकाशित होती है। इसके उपरान्त निश्चित समय पर यह रिपोर्ट फिर सदन के सामने पेश की जाती है। दूसरे वाचन में विधेयक की प्रत्येक धारा पर विस्तार के साथ विचार और विवाद किया जाता है। इसी समय उन धाराओं पर संशोधन पेश किये जाते हैं। प्रत्येक धारा के ऊपर आये संशोधन पर विचार के बाद मत लिए जाते हैं और स्वीकृत संशोधन के अनुसार धारा में सुधार कर लिया जाता है और फिर धारा पर मत लिया जाता है। इस प्रकार स्वीकृत धारायें विधेयक के अंग बन जाती हैं। अन्त में एक बार फिर इस प्रस्ताव पर मत लिया जाता है कि क्या विधेयक का तीसरा वाचन हो। (३) यह प्रस्ताव स्वीकृत होने पर विधेयक का तीसरा वाचन होता है। इस समय विधेयक में यदि कोई साधारण या भाषा सम्बन्धी त्रुटि मिलती है तो उसे ठीक कर लिया जाता है। यह वाचन केवल विधेयक को दोहराने के विचार से होता है।

उपरोक्त प्रक्रिया द्वारा कोई भी विधेयक एक सदन में पास होता है। उसके उपरान्त दूसरे सदन में विधेयक पर ऐसी ही प्रक्रिया द्वारा विचार होता है। दोनों सदनों द्वारा जब कोई विधेयक एक ही रूप में पास होता है, तब उसे राज्य के अध्यक्ष के पास अनुमति (Assent) के लिए भेजा जाता है। संसदात्मक पद्धति वाले देशों में राज्य का अध्यक्ष उस पर अपनी अनुमति दे देता है या कहीं-कहीं, जैसा भारत में है, विधान-मण्डल को अपने सुझावों के साथ पुनर्विचार के लिए विधेयक

को लौटा देता है, अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देश में, जैसा संयुक्त राज्य अमरीका में राष्ट्रपति को विधेयक पर प्रतिषेध (veto) का अधिकार भी है।

विधायी प्रक्रिया में समितियों का प्रयोग—प्राय: सभी देशों के विधान-मण्डल समिति-व्यवस्था (Committee System) का कम या अधिक प्रयोग करते हैं। विधायिका की समितियाँ स्थायी (Standing) तथा प्रवर (Select) समितियाँ होती हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में काँग्रेस की स्थायी समितियों का महत्व अन्य सभी देशों की समितियों से बढ़कर है। काँग्रेस का प्रतिनिधि सदन (लोकप्रिय सदन) अपना अधिकांश विधायी कार्य अर्थात् विधेयकों को समितियों के सुपुर्द कर देता है। ये समितियाँ विधेयकों पर विस्तृत रूप से विचार करती हैं और सम्बन्धित व्यक्तियों अथवा समूहों के प्रतिनिधियों की गवाहियाँ भी लेती हैं। इनकी रिपोर्ट पर सदन विचार और वाद-विवाद करता है, किन्तु यदि कोई समिति किसी विधेयक विशेष पर रिपोर्ट न दे तो वह विधेयक सदन के सामने नहीं आता। इसी कारण यह कहा जाता है कि संयुक्त राज्य अमरीका में काँग्रेस की स्थायी समितियाँ लघु विधायिकायें (Little Legislatures) हैं, जिन्हें विधेयकों पर विचार करने का अधिकार ही नहीं वरन् उसके अन्त करने की शक्ति भी प्राप्त है।

वित्तीय प्रक्रिया (Financial procedure)—साधारणत: सभी प्रकार के वित्तीय अथवा धन विधेयक निचले सदन में ही प्रस्तुत किये जाते हैं। ऐसे विधेयकों के सम्बन्ध में ब्रिटेन की लार्ड सभा तथा भारत की राज्य सभा की शक्तियाँ अत्यधिक सीमित हैं। दूसरे शब्दों में, उन्हें कोई वास्तविक शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका में काँग्रेस का ऊपर वाला सदन वित्तीय विधेयकों के क्षेत्र में भी बराबर की शक्तियाँ रखता है।

अच्छी अर्थात् स्वतन्त्र व सुचारु रूप से कार्य करने वाली विधायिका के सम्बन्ध में ये बातें ध्यान देने योग्य हैं—(१) यथासम्भव कार्यपालिका विधायिका पर प्रभाव न डाल सके। (२) विधायिका के सदनों की कार्यवाही में स्वतन्त्र वाद-विवाद के लिए पूर्ण अवसर होना चाहिए। (३) कुछ सीमित अंश में, जहाँ तक व्यावहारिक हो, जन-निर्णय, प्रस्तावाधिकार तथा प्रतिनिधि प्रत्यावर्तन के लिए व्यवस्था हो। (४) प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली में ऊपर वाले सदन का अप्रत्यक्ष निर्वाचन और परिमित शक्तियाँ होनी चाहिएँ। विधायिका के सदस्यों और प्रशासन के विभागों के बीच आंगिक सम्बन्ध (organic connection) हो, इस उद्देश्य से विधायिका के सदस्यों की विभिन्न विभागों से सम्बन्धित कार्यों और विधेयकों पर विचार करने के लिए स्थायी समितियाँ होनी चाहिएँ। (६) निर्वाचकों को काफी राजनीतिक शिक्षा अथवा प्रशिक्षण मिलना चाहिये और प्रतिनिधियों को राजकीय मामलों का समुचित ज्ञान व अनुभव होना चाहिये। अत: उनके लिए कुछ निम्नतम अर्हतायें आवश्यक होनी चाहिएँ।

४. प्रत्यक्ष विधि-निर्माण

कुछ समय से जनता का प्रतिनिधि संस्थाओं में विश्वास कम हो रहा है और जनता द्वारा स्वयं विधि निर्माण हो, ऐसी प्रवृत्ति देखने में आती है। इसके दो मुख्य कारण हैं; प्रथम, जनता यह समझने लगी है कि राजसत्ता जनता में निहित है और राजसत्ता को वास्तविक रूप देने के लिए यह आवश्यक समझा जाने लगा है कि जनता कानूनों पर स्वीकृति दे या उनके निर्माण में प्रत्यक्ष भाग ले। दूसरे, विधायिकाओं के कार्यों से निराशा और उनमें अविश्वास का बढ़ना। यह सच है कि विधायिका सभाओं में राजनीतिक दलों की प्रधानता रहती है, अत: वे वास्तविक जनहित का पूरा ध्यान नहीं रख पातीं। अधिकतर देशों में वर्गीय हितों को बढ़ाने के लिए पक्षपातपूर्ण कानून बनाए जाते हैं। ऐसे कानून सामान्य इच्छा पर आधारित नहीं कहला सकते। यहाँ यह भी कहना उचित होगा कि कठोर दलीय अनुशासन के कारण जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि स्वतन्त्र रूप से अपने मत का प्रयोग नहीं कर सकते। इन कारणों से तथा प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के सिद्धान्त को यथासम्भव क्रियात्मक रूप देने के लिए आजकल प्रत्यक्ष विधि निर्माण (Direct legislation) का समर्थन किया जाता है। प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की दो विधियाँ प्रमुख हैं, जिनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

जन-निर्णय (Referendum)—जन-निर्णय अथवा लोक-निर्णय का तात्पर्य उस साधन से है जिसके द्वारा उन विधेयकों अथवा संवैधानिक संशोधन पर जनता की निर्णायक सम्मति ली जाती है जिन पर व्यवस्थापिका में वाद-विवाद हो चुका होता है। यदि निर्वाचक एक निश्चित बहुमत द्वारा उसको स्वीकार कर लेते हैं, तो वह कानून बन जाता है, अन्यथा नहीं। इनका आधारभूत विचार यह है कि कानून जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति होती है, इसलिए विधायिका द्वारा पास कानून पर जनता की निर्णायक स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। जन-निर्णय दो प्रकार का होता है—अनिवार्य (obligatory) और दूसरा ऐच्छिक या वैकल्पिक (optional)। अनिवार्य जन-निर्णय के अन्तर्गत विधायिका द्वारा पारित (passed) प्रत्येक कानून जनता की सम्मति जानने के लिए उसके सामने अनिवार्य रूप से पेश किया जाता है। स्विटजरलैंड के केन्टनों में प्रत्येक कानून के लिए और स्विटजरलैंड तथा संयुक्त राज्य अमरीका के अनेक राज्यों और आस्ट्रेलिया में संवैधानिक संशोधन के लिए अनिवार्य जन-निर्णय का प्रयोग किया जाता है। ऐच्छिक जन-निर्णय में प्रत्येक कानून को जनता के सामने पेश नहीं किया जाता, वरन् वे ही कानून जनता के निर्णय के लिए उसके सामने रखे जाते हैं, जिनके लिए निर्वाचक एक निश्चित संख्या में मतदाताओं के हस्ताक्षरों के साथ प्रार्थना करते हैं। यह संख्या संविधान में दी हुई है। स्विटजरलैंड में साधारण कानूनों पर जन-निर्णय की माँग के लिए तीस हजार नागरिकों के हस्ताक्षर या आठ केन्टनों की विधायिकाओं की प्रार्थना आवश्यक है।

स्विटजरलैंड के कुछ केन्टनों—उरी, ग्लेरस आदि में जन-निर्णय में भी बढ़कर प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की एक विधि और भी है। इन केन्टनों में निर्वाचक वर्ष में एक बार खुले चरागाहों में एकत्रित होते हैं। वे अपनी सभाओं (Landsgemeinde) में कानूनों को पास करते हैं, करों पर स्वीकृति देते हैं और आगामी वर्ष के लिए अपने कार्यपालिका अधिकारियों को चुनते हैं। इसके अतिरिक्त जननिर्णय से मिलती-जुलती एक विधि और है, जिसे जनमत (plebiscite) कहते हैं। जनमत एक प्रकार का लोकप्रिय जन-निर्णय है, जिसका राजनीतिक उद्देश्यों अथवा महत्व-पूर्ण प्रश्नों पर जनता का मत जानने के लिए प्रयोग किया जाता है।

प्रस्तावाधिकार (Initiative)—जन-निर्णय को भी प्रत्यक्ष विधि-निर्माण का संतोषजनक साधन नहीं माना जाता, क्योंकि इसमें विधयिका द्वारा प्रस्तावित कानूनों को विधायिका द्वारा पास किए जाने पर ही जनता का निर्णय जानने के लिए उसके सामने रखा जाता है। इसमें जनता को अपनी ओर से चाहे कानूनों को प्रस्तावित करने का अधिकार नहीं है। यह माना जाता है कि नागरिकों को अपनी इच्छा के कानूनों के लिए विधायिका में प्रस्ताव रखने का अधिकार भी होना चाहिए। इसी को प्रस्तावाधिकार कहते हैं। इसके अन्तर्गत संविधान द्वारा निश्चित संख्या में नागरिकों को चाहे कानून के लिए प्रार्थना करने या स्वयं उसका मसौदा तैयार करके उस पर कानून बनाने की प्रार्थना करने का अधिकार होता है। जब विधायिका उस कानून को पास कर देती है तो यह कानून पुनः एक बार जनता का निर्णय जानने के लिए नागरिकों के सामने रखा जाता है। इस साधन का प्रयोग स्विटजर-लैंड के केन्टनों में और संयुक्त राज्य अमरीका के कुछ राज्यों में प्रत्येक प्रकार के कानूनों के लिए किया जाता है और स्विस संघ तथा अमरीका के १४ राज्यों में संवैधानिक संशोधन के लिए भी इस अधिकार का प्रयोग किया जाता है। स्विस संघ में ५० हजार नागरिक संविधान में संशोधन का प्रस्ताव रख सकते हैं।

प्रतिनिधि प्रत्यावर्तन (Recall)—प्रत्यावर्तन के द्वारा एक निश्चित संख्या में मतदाता किसी निर्वाचित कर्मचारी या ऐसे प्रतिनिधि को पदच्युत कराने की प्रार्थना करते हैं जिनके कार्य से उनको संतोष प्राप्त नहीं हो। प्रार्थना पर मतदान होता है, यदि बहुमत प्रार्थना को स्वीकार करता है तो वह कर्मचारी या प्रतिनिधि पदच्युत हो जाता है। इसका प्रयोग कुछ अमरीकन राज्यों व सोवियत संघ में किया जाता है। वास्तव में, प्रतिनिधि प्रत्यावर्तन ऐसे प्रतिनिधि को दण्डित करने का साधन है, जो अपने कर्तव्य एवं दायित्व का पालन नहीं करता। परन्तु इसके अनेक दोष भी हैं। इसके प्रयोग के भय के कारण प्रतिनिधि स्वतन्त्र एवं निडर होकर अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर सकता तथा राजनीतिक दलबन्दी की गन्दगी की कीचड़ में फँस जाता है, दलबन्दी के आधार पर किसी प्रतिनिधि पर मिथ्या दोषारोपण किया जा सकता है। कुछ विद्वानों का मत है कि यदि साधन का प्रयोग किया ही जाए तो विधायिका के प्रथम और अन्तिम वर्ष में इसका प्रयोग वर्जित होना चाहिए

और प्रभावी करने के लिए कम से कम ५० प्रतिशत मतदाताओं की स्वीकृति होनी चाहिए।

प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के गुण—(१) इसके द्वारा लोकप्रिय राजसत्ता के विचार को व्यावहारिक रूप दिया जाता है। प्रस्तावाधिकार के द्वारा जनता स्वयं चाहे कानून का प्रस्ताव रखती है और जन निर्णय के द्वारा पास किये गये कानून पर अपनी स्वीकृति देती है। इस प्रकार अनुचित विधेयकों को कानून बनाने से रोका जाता है और उचित एवं चाहे विधायकों को कानून का रूप दिया जाता है। (२) प्रत्यक्ष विधि निर्माण द्वारा जो कानून पास होते हैं उन पर जनता की स्वीकृति होती है। उनका इच्छापूर्वक पालन किया जाता है। इस प्रकार इन कानूनों के पालन द्वारा देश-भक्ति की भावना को प्रोत्साहन एवं बल मिलता है। (३) इन साधनों के द्वारा जनता की राजनीतिक शिक्षा होती है। इनके कारण नागरिकों को चार या पाँच वर्ष के पश्चात् केवल निर्वाचन काल में ही देश की महत्वपूर्ण आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर विचार करने का अवसर प्राप्त होता है। (४) विधायिका के सदस्य साधारण निर्वाचन समाप्त होने के कुछ समय पश्चात् लोकमत से दूर तथा उदासीन हो जाते हैं। जन-निर्णय और प्रस्तावाधिकार विधायिका को सदा लोकमत के घनिष्ठ सम्पर्क में रखते हैं।

(५) साधारण निर्वाचन के समय मतदाता लुभावने नारों के प्रवाह में बह जाते हैं और नीति विषयक नियम पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं कर पाते। इसके अतिरिक्त साधारण निर्वाचन के समय एक साथ अनेक समस्यायें तथा विषय एक दूसरे से मिले-जुले रहते हैं, इस कारण से भी साधारण नागरिक उनको पूर्णतया नहीं समझ पाते। परन्तु जन-निर्णय और प्रस्तावाधिकार का प्रयोग करते समय उनके सामने केवल एक विशेष विषय होता है। अतः इस पर वे लोग गम्भीरता-पूर्वक विचार कर सकते हैं। (६) विधायिका के सदस्यों को घूस आदि देकर पूँजीपति तथा अन्य लोग भ्रष्ट कर सकते हैं और सार्वजनिक हित की अवहेलना करके व्यक्तिगत अथवा वर्गहितों को पूरा कर सकते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की व्यवस्था में ऐसा करना असम्भव है। (७) प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के ये साधन विधायिका के दोनों सदन के गतिरोध (deadlock) को दूर करने में सफल सिद्ध हुए हैं। आस्ट्रेलिया इसका उदाहरण है। अन्त में, दुष्परिवर्तनीय संविधान वाले देशों में प्रस्तावाधिकार का एक महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि इसके द्वारा संविधान का संशोधन सरलता से हो जाता है जबकि विधायिका को ऐसा करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के दोष—(अ) प्रत्यक्ष विधि का प्रमुख दोष यह है कि इसके कारण विधायिका का गौरव नष्ट हो जाता है और परिणामस्वरूप वह अनुत्तरदायी हो जाता है; क्योंकि उसे यह ध्यान रहता है कि कानून का पास होना या न होना अन्तिम रूप से नागरिकों की प्रत्यक्ष इच्छा पर निर्भर करता है। इस

प्रकार विधायिका अपने कार्य (विधि-निर्माण) के प्रति उदासीन हो जाती है। (आ) कानून का निर्माण करना विशेषज्ञों का कार्य होता है। साधारण मनुष्यों में ऐसी योग्यता नहीं होती जो वे आधुनिक काल की जटिल, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं को समझ सकें। अनेक पर-राष्ट्र नीति और वित्तीय (financial) नीति सम्बन्धी समस्यायें ऐसी होती हैं जिनको शिक्षित मनुष्य भी भली प्रकार नहीं समझ पाते तो फिर साधारण मनुष्यों का तो कहना ही क्या ? इसलिए प्रत्यक्ष विधि निर्माण के द्वारा बहुधा दोषपूर्ण कानून जिस पर यथोचित विचार नहीं किया जाता, पास हो जाते हैं। (इ) जन-निर्णय और प्रस्तावाधिकार में मतदाताओं को केवल 'हाँ' या 'नहीं' कहने से ही कार्य पूरा नहीं हो जाता। (ई) यह कथन भी अधिक सारपूर्ण नहीं है कि प्रत्यक्ष विधि-निर्माण द्वारा पास किए गए कानूनों का अपेक्षाकृत अच्छी तरह पालन किया जाता है। यदि जन-निर्णय में मतदाता ५१ प्रतिशत बहुमत से किसी कानून को पास कर देते हैं तो ६४ प्रतिशत मतदाता उस कानून से उस समय से अधिक विरोधी बन जाते हैं, जबकि वही कानून केवल प्रतिनिधि विधायिका के द्वारा ही पास किया गया होता है।

(उ) स्विटजरलैंड और अमरीका में राज्यों के अनुभव से पता चलता है कि अधिकतर मनुष्य जन-निर्णय और प्रस्तावाधिकार में दिलचस्पी नहीं लेते। इसका परिणाम यह होता है कि बहुधा कानून अल्पमत के द्वारा पास हो जाते हैं और इसलिए कानून में जनता की वास्तविक इच्छा परिलक्षित नहीं हो पाती। मत-दाताओं की इस उदासीनता का कारण यह है कि प्रतिदिन मतदान की परेशानी से वे तंग आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त राजनीति जन-साधारण के लिए विशेष रूप से आकर्षक भी नहीं होती तथा साधारण मनुष्यों का अधिकांश समय जीविकोपार्जन में व्यय हो जाता है और इसलिए राजनीतिक विषयों पर विचार करने के लिए उनके पास बहुत कम अवसर रहता है। (ऊ) इस कथन में भी अधिक सत्य नहीं है कि प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के साधनों द्वारा जन-साधारण की राजनीतिक शिक्षा अच्छी हो जाती। जो बात साधारण निर्वाचन के विषय में सत्य है, वही जन-निर्णय या प्रस्तावाधिकार के विषय में भी कही जा सकती है कि इनके द्वारा उत्तेजना एवं भ्रष्टाचार फैलाने वाले लोगों को जनसाधारण के अज्ञान और भोलेपन से अनुचित लाभ उठाने का अवसर प्राप्त होता है।

(ए) जन-निर्णय और प्रस्तावाधिकार का प्रयोग विशालकाय देशों में नहीं किया जा सकता, क्योंकि वहाँ पर इनके द्वारा कानून के निर्माण में अवांछनीय विलम्ब होगा। (ऐ) अन्त में, जिन देशों में इन साधनों का प्रयोग किया गया है उनके अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जनता की उनके द्वारा विधि निर्माण के कार्य में कोई उन्नति नहीं हो पाई।

प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के गुण-दोषों के विवेचन से प्रकट हो जाता है कि इसको सभी राज्यों द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता, जैसा कि गत इतिहास से प्रकट

भी है। प्रत्यक्ष विधि-निर्माण का सरलतापूर्वक प्रयोग केवल उन राज्यों में ही किया जा सकता है जिसका आधार एवं जनसंख्या विशाल न हो जिसकी आन्तरिक पूर्ण-चेतना एवं बाह्य समस्या अधिक जटिल न हो तथा नागरिकों में राजनीतिक चेतना पूर्णतया विकसित हो चुकी हो।

५. प्रदत्त विधि-निर्माण

वास्तव में प्रदत्त विधि-निर्माण (Delegated legislation) कार्यपालिका अथवा सम्बन्धित प्रशासनिक विभागों के उच्च अधिकारियों का कार्य है; फिर भी यह एक प्रकार का विधि-निर्माण है, अत: उसकी आवश्यकता और उसके ऊपर विधान-मण्डल के नियन्त्रण का संक्षिप्त विवेचन इस अध्याय में दिया जा रहा है। पहले भी और विशेषकर आजकल, यह सम्भव नहीं रहा कि विधायिका प्रत्येक आपात काल के लिए कानून बनाने की व्यवस्था पहले से ही करने अथवा प्रत्येक कानून में उसे प्रभावी बनाने के लिए विस्तार की सभी बातों का समावेश कर दे। ऐसी परिस्थितियों में कार्यपालिका को सम्बन्धित कानूनों के अन्तर्गत विनियम तथा नियम आदि बनाने की शक्ति प्रदान कर दी जाती है।

संक्षेप में प्रदत्त विधि-निर्माण के लिए ये कारण उत्तरदायी हैं—(१) सभी विधायिकाओं को अनेक कानून बनाने पड़ते हैं और उनके पास समय का अभाव रहता है; अत: प्रदत्त विधि-निर्माण के द्वारा विधायिका का कार्य-भार काफी हल्का हो जाता है। (२) जिन बातों के बारे में विधायिका कार्यपालिका को प्रदत्त विधि-निर्माण का अधिकार देती है, वे सामान्यत: बहुत पेचीदा और प्राविधिक होती हैं। उनके बारे में प्रशासनिक विभागों के अधिकारी सम्बन्धित कानूनों के अन्तर्गत अधिक अच्छी प्रकार से आवश्यक विनिमय तथा नियम बना सकते हैं। (३) इस पद्धति में विनियोग तथा नियमों को विभिन्न वर्गों और व्यक्तियों की आवश्यकताओं और उनके सम्बन्धित हितों पर पड़ने वाले प्रकाश की दृष्टि से समय-समय पर परिवर्तित किया जा सकता है। (४) यदि कोई प्राविधान व्यवहार में संतोषप्रद न सिद्ध हो तो उसमें सफलता से आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है।

उपरोक्त कारणों के परिणामस्वरूप, प्रशासन के अनेक क्षेत्रों-कृषि, उद्योग, निर्धन सहायता, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा आदि में नियम विनिमय और आदेश सामान्य कानूनों के अन्तर्गत सम्बन्धित विभागों के उच्च अधिकारियों द्वारा बनाये जाते हैं। इस प्रकार विधायिका का महत्व कुछ कम हो गया है और कार्यपालिका का महत्व बढ़ गया है। परन्तु प्रदत्त विधि-निर्माण के सम्बन्ध में यह ध्यान अवश्य ही रखा जाना चाहिए कि जिन बातों के बारे में कार्यपालिका को विधि-निर्माण का कार्य सौंपा जावे वे सम्पूर्ण विधायी सिद्धान्त की न हों।[1] विधायिका को यह भी देखना

1. '...in the present phase of the constitution the centre of gravity has shifted to the Executive and the role of Parliament has proportionately diminished, but care should be taken that what is left to the executive is not matter of substantive legislative principle'

—*J. C. Charlesworth,* Governmental Administration, pp. 64-66.

चाहिए कि प्रदत्त विधि-निर्माण का कार्य किसी एक व्यक्ति को न सौंप कर किसी बोर्ड या कमीशन को सौंपा जाना चाहिए। साथ ही इस कार्य के ऊपर विधायिका द्वारा देख-रेख तथा रोक की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

भारत में इस प्रकार के विधि-निर्माण को **अधीन विधि-निर्माण** (Subordinate legislation) नाम दिया गया है और संसद ने १५ सदस्यों की एक समिति बनाई है जिसका कार्य इस प्रकार से बनाये गए नियमों और विनियमों की यह परीक्षा करना है कि वे संसद द्वारा सौंपी गई सत्ता के अनुसार ही हैं। ब्रिटेन में इस प्रकार से बनाए गए विनियमों तथा आज्ञापतियों (decrees) को दो समूहों में रखा जा सकता है—(१) ऐसे विनियम आदि जो उन पर संसद के दोनों सदनों के प्रस्ताव द्वारा स्वीकृति लिए जाने पर ही लागू किए जाते हैं। इसे सकारात्मक प्रक्रिया (affirmative procedure) कहा जाता है। (२) वे नियम और विनियम जो निर्मित होने के बाद ही लागू हो जाते हैं, परन्तु जिन्हें संसद के किसी भी सदन के प्रभाव द्वारा रद्द किया जा सकता है। इसे नकारात्मक प्रक्रिया (negative procedure) कहते हैं। इस प्रकार से बने नियमों आदि को उनके सदन में रखे जाने के ४० दिन के भीतर ही रद्द किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका में शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त लागू होने के कारण साधारणतः काँग्रेस कार्यपालिका को ऐसा अधिकार नहीं देती परन्तु समय-समय पर राष्ट्रपति ने कुछ बातों को कार्य-पालिका आदेशों द्वारा विनियमित करने की शक्ति काँग्रेस से प्राप्त की है। इस प्रकार से दी गई शक्तियों के प्रयोग पर संवैधानिक वैधता की दृष्टि से, सर्वोच्च न्यायालय कड़ी दृष्टि रखता है।

प्रश्न

१. विधायिका का महत्व बताइये। आधुनिक राज्यों में विधायिकाओं के मुख्य कार्य क्या हैं?
२. दो-सदन वाली विधायिका (Bicameral legislature) के पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिए।
३. विधायिकाओं की रचना के बारे में आप क्या जानते हैं?
४. विधायिका के संगठन और विधायी प्रक्रिया का संक्षेप में, वर्णन कीजिए।
५. 'प्रत्यक्ष विधि-निर्माण' पर एक निबन्ध लिखिए।
६. प्रदत्त विधायन (Delegated legislation) क्या है और उसकी क्यों आवश्यकता है?
७. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये :
   (अ) विधि निर्माण।
   (ब) दूसरे सदन की उपयोगिता।
   (स) अधीन विधि-निर्माण।
   (द) जन-निर्णय (Referendum)।
   (य) प्रस्तावाधिकार (Initiative)।

७. प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त

१. मताधिकार

निर्वाचन कार्य का महत्व—प्रतिनिधि शासन-पद्धति में निर्वाचकमण्डल का निर्धारण और निर्वाचन प्रक्रिया का संगठन अत्यधिक महत्व के विषय हैं, क्योंकि प्रतिनिधि शासन का आधार ही निर्वाचक और निर्वाचन प्रणाली है। निर्वाचक मण्डल अपने कार्य का प्रयोग मतदान द्वारा करता है; जो व्यक्ति मतदान के अधिकार का प्रयोग करते हैं वे मतदाता (voters) कहलाते हैं। इस प्रकार निर्वाचक मण्डल सक्रिय नागरिकों का समूह होता है। (electorate is an active body of citizens)। निर्वाचकों (electors) अथवा मतदाताओं को सामूहिक रूप में निर्वाचक मण्डल (electorate) कहते हैं। जो व्यक्ति चुनाव में खड़े होते हैं, उन्हें उम्मीदवार या अभ्यर्थी (candidates) कहते हैं। संक्षेप में, मत देने के अधिकार को मताधिकार (franchise) कहते हैं, जो सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक अधिकार है। निर्वाचकों का मुख्य कार्य प्रतिनिधियों को चुनना है; निर्वाचित प्रतिनिधियों से राज्य की विधायिका बनती है और उन्हीं में से मन्त्री बनते हैं। मन्त्री और विधायिका राज्य की नीति का निर्धारण करते हैं अर्थात् आवश्यक कानून बनाते हैं। इस प्रकार राज्य की नीति-निर्धारण तथा कानून-निर्माण में परोक्ष रूप से निर्वाचकों का भाग रहता है।

मताधिकार सम्बन्धी सिद्धान्त (Theories of suffrage)—निर्वाचन कार्य में कौन व्यक्ति भाग ले यह बात मताधिकार के स्वरूप के बारे में मान्य मत पर निर्भर करती है। ग्रीक, रोमन और जर्मन जातियों के प्राचीन संगठन में जन-जातीय आधार पर मताधिकार दिया जाता था, अतः इसे जनजातीय सिद्धान्त (Tribal theory) कह सकते हैं। राज्य की सदस्यता के साथ मताधिकार चलता था और यह नागरिक के जीवन का आवश्यक और स्वाभाविक भाग समझा जाता था। मध्यकाल में, जब प्रतिनिधित्व प्रणाली का आरम्भ हुआ, मताधिकार एक निहित विशेषाधिकार (vested privilege) था; क्योंकि यह केवल धनी भूमिपतियों के वर्ग को ही मिला था। इसे मताधिकार का सामन्ती सिद्धान्त (Feudal theory) कहा गया है। आगे चलकर संविदा सिद्धान्त के विकास के फलस्वरूप यह सिद्धान्त निकला कि प्रत्येक नागरिक को मत देने का प्राकृतिक अधिकार है, इसे ही प्राकृतिक अधिकार का सिद्धान्त (natural right theory) कहते हैं। बाद में विकसित हुए कानूनी सिद्धान्त (legal theory) के अनुसार निर्वाचक मण्डल शासन का एक अंग है, जिसकी रचना और शक्तियां राज्य के कानूनों द्वारा निर्धारित होती हैं। अस्तु, मतदान एक सार्वजनिक कृत्य (public office or trust) है। अन्त में, नैतिक सिद्धान्त (Ethical theory) के अनुसार शासन-कार्य में भाग लेने का अधिकार,

यद्यपि प्राकृतिक अधिकार नहीं है वांछनीय है, जिससे कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके।

वर्तमान काल में मताधिकार के दो सिद्धान्त प्रमुख समझे जाते हैं, अतएव उनकी कुछ विस्तृत व्याख्या आवश्यक प्रतीत होती है। प्रथम, प्राकृतिक अधिकार का सिद्धान्त (Natural right theory)—इसके अनुसार मताधिकार प्रत्येक व्यक्ति का प्राकृतिक व स्वभावगत (inherent) अधिकार है—कम से कम प्रत्येक ऐसे वयस्क का अधिकार है जिसे कभी अयोग्यता का कदाचार के आधार पर अयोग्य न ठहराया गया हो। यह अधिकार प्रत्येक नागरिक, को राज्य का सदस्य होने के नाते मिलना चाहिए। यह मत १८वीं शताब्दी के अन्त में फ्रांस और संयुक्त राज्य अमरीका के राजनीतिक दर्शन का प्रधान विचार रहा है। संयुक्त राज्य अमरीका में पेन (Paine) आदि विचारकों ने इस मत का समर्थन किया है और फ्रांस में मॉन्टेस्क्यू ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया। इसे रूसो के राजसत्ता सम्बन्धी सिद्धान्त का तर्कसंगत परिणाम कह सकते हैं, क्योंकि उसके अनुसार राजसत्ता का निवास जनता में है, अतः प्रत्येक नागरिक को राजसत्ता के प्रयोग में भाग लेने का अदेय अधिकार है। इस सिद्धान्त का फ्रांसीसी क्रांति के नेताओं ने अनुमोदन किया इस सिद्धान्त को फ्रांस की संविधान निर्मात्री सभा ने सन् १७९३ में बने संविधान में स्थान दिया जबकि उसने यह घोषित किया कि प्रत्येक २१ वर्ष के पुरुष को जो फ्रांस में जन्मा हो और जिसका निवास भी फ्रांस में हो नागरिक तथा निर्वाचक होने का अधिकार मिलेगा। परन्तु शीघ्र ही फ्रांसवासियों ने इस सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया।

दूसरा, मताधिकार एक पद अथवा कर्तव्य है—आजकल प्रायः सभी राजनीतिक विचारक इस मत को मानते हैं। इसके अनुसार मताधिकार राज्य द्वारा प्रदत्त अधिकार है, जो उन व्यक्तियों को दिया जाता है जो इसका सार्वजनिक हित में अच्छी प्रकार से प्रयोग करने की योग्यता रखते हैं। गार्नर के अनुसार, व्यवहार में उन देशों में भी जो उग्र प्रजातन्त्री हैं, निर्वाचन पद्धति इसी सिद्धान्त पर आधारित है, परन्तु सर्वसाधारण का यह मत है कि प्रत्येक व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त होना चाहिए। इसी मत पर स्त्रियों के लिए मताधिकार की माँग आधारित थी। यदि मतदान को ऐसा पद माना जाय जो नागरिक को समाज की भलाई के लिए दिया जाता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि मतदान नागरिक का एक कर्तव्य हो जाता है। तब यह प्रश्न उठता है कि क्या उसे कानून द्वारा मत देने के लिए बाध्य किया जाय अर्थात् मतदान को अनिवार्य किया जाय? व्यवहार में अधिकतर राज्यों ने इसे नहीं अपनाया। बेल्जियम, स्पेन व फ्रांस आदि में अनिवार्य मतदान की व्यवस्था है और मत न देने वालों को दण्ड भी दिया जाता है। परन्तु लगभग सभी लेखक अनिवार्य मतदान के सिद्धान्त का विरोध करते हैं। वे मतदान न करने वाले नागरिकों के आचरण को इतना बुरा नहीं मानते कि उन्हें दण्डित किया जाय।

अधिकतर लेखक इसे कर्तव्य होने के साथ-साथ एक विशेषाधिकार मानते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विचारकों का मत है कि अनिवार्य मतदान का एक खतरा यह हो सकता है कि मतों को आसानी से खरीदा जा सके।

२. विभिन्न प्रकार का मताधिकार

अखिल मताधिकार (Universal Suffrage) के पक्ष-पोषकों का यह अभिप्राय नहीं कि मतदान का अधिकार राज्य की सीमा के अन्दर रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रदान हो। इससे उनका तात्पर्य **वयस्क मताधिकार** (Adult Suffrage) से है अर्थात् प्रत्येक वयस्क स्त्री और पुरुष को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए। बच्चों को यह अधिकार नहीं दिया जा सकता, क्योंकि उनमें इतना विवेक नहीं होता कि वे मतदान करते समय यह निर्णय कर सकें कि किसे मत देना चाहिए। इसी प्रकार पागल और अपराधी वृत्ति के मनुष्यों को भी यह अधिकार नहीं दिया जाता, क्योंकि वे भी अपने नैतिक पतन के कारण उचित और अनुचित में भेद नहीं कर सकते। यह अधिकार विदेशियों को भी नहीं दिया जाता क्योंकि उनकी राज-भक्ति दूसरे देश के प्रति होती है। **गार्नर** के अनुसार मताधिकार के विषय में आधुनिक काल में यह दृष्टिकोण अपनाया जाता है; यह एक कर्त्तव्य है जो राज्य द्वारा उन व्यक्तियों को प्रदान किया जाता है, जिनके विषय में यह समझा जाता है कि वे इसका प्रयोग राष्ट्रीय हित में करने की आवश्यक योग्यता रखते हैं। यह एक नैसर्गिक अधिकार नहीं है जो प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेद-भाव के प्राप्त होता है।'

वयस्क मताधिकार के पक्ष में तर्क—वयस्क मताधिकार के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं—(१) प्रजातन्त्र का सिद्धान्त यह है कि सभी व्यक्ति सम हैं। अतः न्याय की यह माँग है कि सभी को मताधिकार मिले (It is a matter of justice)। इसके अतिरिक्त जनता ही सर्वोच्च शक्ति का स्रोत है अतः मताधिकार एक मूलभूत अधिकार है। (२) राज्य की नीति और निर्णयों का प्रभाव सभी व्यक्तियों पर पड़ता है, इसलिए राज्य की नीति के निर्धारण में सब लोगों का हाथ रहना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब सभी वयस्कों को मत देने का अधिकार प्राप्त हो। (३) मताधिकार प्राप्त होने से व्यक्ति में आत्म-सम्मान की भावना बढ़ती है और समाज में उनका महत्व भी बढ़ता है। यह बात उनके व्यक्तित्व के विकास में बहुत सहायक होती है (It means an increase of dignity for the individual, and therefore of morality)। (४) जिन लोगों को मताधिकार प्राप्त नहीं होता, उनकी ओर से शासक वर्ग उदासीन हो जाता है। जिसके पास मत की शक्ति (power of vote) नहीं होती सरकार उनके हितों की चिन्ता नहीं करती।[1]

1. 'Exclusion from power means exclusion from the benefits of power.'
—*Laski.*

(५) मताधिकार मिलने से नागरिकों में राजनीतिक जागृति पैदा होती है और सार्वजनिक कार्यों में उनकी रुचि बढ़ती है। इससे नागरिकों में सन्तोष और उत्तरदायित्व की भावना भी पैदा होती है। अतः मताधिकार एक मूलभूत अधिकार तो है ही, जिससे किसी व्यक्ति को वंचित नहीं करना चाहिए। साथ ही उसका उचित उपभोग मतदान द्वारा सामुदायिक जीवन में एक प्रकार का उचित योगदान (contribution to the life of the community) भी है।

विरोध में तर्क—(१) लैकी और मेन के अनुसार मताधिकार लोगों का जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है। यह राज्य द्वारा दिया हुआ अधिकार है, जिसका उपभोग वे ही व्यक्ति कर सकते हैं जो इसके प्रयोग की योग्यता व क्षमता रखते हों। (२) अधिकांश व्यक्ति अपढ़, अज्ञानी, मूर्ख और निर्धन होते हैं। न तो उनमें पर्याप्त समझ ही होती है और न उन्हें पर्याप्त अवकाश ही मिलता है, जिससे कि वे अपने सार्वजनिक कर्त्तव्यों का उचित ढंग से पालन कर सकें। मिल का कथन है कि **'मताधिकार को अखिल बनाने से पहले शिक्षा को अनिवार्य करना नितान्त आवश्यक है।'**[1] (३) मताधिकार एक सामाजिक उत्तरदायित्व है, अतः उसका प्रयोग बहुत सावधानी और सोच-विचार के साथ होना चाहिए। राजनीतिक प्रश्न आजकल इतने जटिल होते जा रहे हैं कि जनसाधारण के लिए उन्हें समझना या उनके विषय में निर्णय करना सम्भव नहीं है। ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका में जनता ने मताधिकार पर लगी सीमाओं को हटवाने के लिए संघर्ष किया और आज प्रायः सभी प्रजातन्त्रात्मक राज्यों में वयस्क मताधिकार को स्वीकार कर लिया गया है। वयस्क मताधिकार के दोष कुछ भी हों, यह स्वीकार करना पड़ता है कि यह पद्धति अब व्यापक रूप में मान्य हो गई है (for good or evil, adult suffrage has come to stay)। हम गार्नर के इस विचार से सहमत हैं कि हमें जॉन स्टुअर्ट मिल के उस कथन का उचित ध्यान रखना चाहिए कि अखिल मताधिकार के पूर्व अखिल शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये।

सीमित मताधिकार—वयस्क मताधिकार के पक्ष और विपक्ष में समझ लेने के बाद यह प्रश्न उठता है कि यदि मताधिकार सीमित भी हो तो उसका आधार क्या रहे? इस सम्बन्ध में **शिक्षा और सम्पत्ति** दो आधार मुख्य माने गये हैं। यह तो सर्वथा उचित है कि प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए नागरिक शिक्षित हों। परन्तु शिक्षित होना और योग्य होना दोनों भिन्न-भिन्न बातें हैं। एक अशिक्षित व्यक्ति सामान्य बातों में एक शिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा अधिक योग्य हो सकता है। साथ ही, मताधिकार स्वयं शिक्षा का साधन है। इसके अतिरिक्त, आजकल शिक्षा भी अधिक से अधिक व्यक्तियों को दी जाने की सुविधायें बढ़ रही हैं। जो

1. 'I regard it as wholly inadmissible that any person should participate in the suffrage without being able to read, write; universal teaching must precede universal enfranchisement.' —*J. S. Mill.*

विद्वान सम्पत्ति को मताधिकार का आधार बनाने के पक्ष में हैं, उनका कहना है कि जिन लोगों के पास वैयक्तिक सम्पत्ति होती है और जो राज्य को कर देते हैं उनको शान्ति और व्यवस्था अधिक प्रिय होती है। मिल के अनुसार यदि उन मनुष्यों के हाथ में शासन-सूत्र दे दिया जाय जो सम्पत्तिहीन हों तो निश्चय ही वे राष्ट्रीय धन का अपव्यय करेंगे और मितव्ययिता से काम नहीं करेंगे, क्योंकि इससे उनकी कोई हानि नहीं होती।

परन्तु उपर्युक्त युक्तियाँ सारहीन हैं, क्योंकि इनके आधार पर शासन शक्ति सम्पत्तिशालियों का एकाधिकार बन जायेगा और दीन मनुष्यों का सदा ही उनके द्वारा शोषण होता रहेगा। दूसरे, प्रजातन्त्र का एक यह भी माना हुआ सिद्धान्त है कि राज्य को मताधिकार या प्रतिनिधित्व का अधिकार दिये बिना कर लगाने का अधिकार नहीं है (no taxation without representation)। इसी आधार पर अमरीकी उपनिवेशों ने इंगलैंड से स्वतन्त्रता के लिए युद्ध किया। इसलिए जब तक राज्य मतदान का अधिकार प्रदान न करे तब तक उसे कर लगाने का अधिकार नहीं होना चाहिए। आजकल कोई भी विचारवान व्यक्ति यह मानने को तैयार नहीं कि मताधिकार का आधार सम्पत्ति अथवा कर देने को बनाया जाय क्योंकि राज्य कोई जॉईन्ट-स्टॉक कम्पनी नहीं है।[१]

स्त्री-मताधिकार—अन्त में मताधिकार से सम्बन्धित एक अति महत्वपूर्ण प्रश्न स्त्रियों का मत देने के अधिकार का है। कुछ समय पूर्व तक सभ्य एवं समुन्नत देशों में भी स्त्रियों को मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। इंगलैंड में सन् १९१८ में स्त्रियों को सीमित अधिकार प्रदान किया गया और सन् १९२८ में उन्हें पुरुषों के समान ही मताधिकार प्राप्त हुआ। सं० रा० अमरीका में स्त्रियों को मताधिकार सन् १९२० में मिला और फ्रांस में द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद। स्विटजरलैंड में स्त्रियों को अभी तक मताधिकार नहीं मिला यद्यपि महिला मताधिकार के विरोध में दी जाने वाली युक्तियों का अन्त होता जा रहा है, फिर भी अनेक राज्यों में स्त्रियों को अभी तक मताधिकार नहीं मिला।

स्त्री-मताधिकार के पक्ष और विपक्ष में दिये गये तर्कों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है :—(१) यदि स्त्रियाँ राजनीति में भाग लेंगी तो उन्हें इसकी कठोरता व अशिष्टताओं को सहन करना पड़ेगा, जिसमें उनके स्वाभाविक स्त्री-गुणों का नाश हो जायेगा और विश्व की संस्कृति को हानि पहुँचेगी। परन्तु यह कहना कि सार्वजनिक जीवन में भाग लेने में स्त्रियोचित गुणों का ह्रास होता है, ठीक नहीं। कुछ

1. 'But to make literacy a qualification for voting is not practical politics. So is the tax paying qualification. The state is not a joint stock company so that those who contribute to the stock have a voice in its operations.'
—*H. N. Sinha*, Political Science, pp. *148—9*

विद्वानों का तो यह मत है कि स्त्रियों के सार्वजनिक क्षेत्र में आने से सार्वजनिक जीवन की बहुत सी बुराइयाँ दूर हो जायेंगी।

(२) बहुत से व्यक्ति यह समझते हैं कि स्त्री का उचित स्थान घर के भीतर है, न कि पार्लियामेंट भवन या सार्वजनिक सभायें। उनके विचार में यदि स्त्रियाँ सार्वजनिक जीवन में भाग लेंगी तो वे बच्चों का उचित ध्यान नहीं रख सकतीं। फलस्वरूप आने वाली पीढ़ियों को हानि पहुँचेगी। यह भी कहा जाता है कि यदि पति व पत्नी विभिन्न विचारधाराओं के मानने वाले हुए तो घर में मतभेद और अशान्ति बढ़ेगी। परन्तु यह तर्क मानवीय नहीं है। **यदि अपढ़ मजदूर को मताधिकार मिलने से कोई घोर अनिष्ट नहीं हुआ है तो शिक्षित स्त्रियों को मताधिकार मिलने से कौन से अनिष्ट की आशंका है।** वास्तव में, 'स्त्रियों को मताधिकार मिल जाने पर, राष्ट्रीय समस्याओं के सुलझाने में स्त्रियाँ भी अपना योगदान दे सकेंगी, क्योंकि उनको घरेलू जीवन का अधिक ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव होता है। पारिवारिक जीवन में अशांति की आशंका केवल काल्पनिक है, सच तो यह है कि आज उनकी क्षुद्र और संकुचित मनोवृत्ति के कारण जो छोटी-छोटी बातों पर अनेक झगड़े होते हैं, उनका बहुत सीमा तक अन्त हो जायेगा, क्योंकि जब उनका दृष्टिकोण विस्तृत हो जायेगा तो वे छोटी-मोटी बातों पर ध्यान देने के बजाय देश की बड़ी समस्याओं पर ध्यान देने लगेंगी।

(३) कुछ व्यक्तियों का मत है कि शारीरिक दृष्टि से स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा दुर्बल होती हैं वे राज्य की रक्षा के हुतु शस्त्र-धारण नहीं कर सकतीं। अतः उन्हें मताधिकार क्यों दिया जाये ? यह बात सर्वथा सत्य नहीं है, आज हमारे देश में तथा विदेशों में स्त्रियाँ सैनिक शिक्षा ग्रहण कर रही हैं; यदि उन्हें कमजोर भी मान लिया जाए तो भी उन्हें अपनी रक्षा के हेतु विशेष रूप से मताधिकार दिया जाना चाहिए। यह सभी मानते हैं कि स्त्रियाँ बुद्धि में पुरुषों से कम नहीं होतीं। जहाँ-जहाँ उन्हें पुरुषों के समान सुविधायें और अवसर मिलते हैं, वे उनसे किसी भी कार्य-क्षेत्र में पीछे नहीं रहतीं।

यह भी कहा जाता है कि स्त्रियाँ स्वयं मताधिकार की माँग नहीं करतीं। नारियाँ अब जागृत हो गई हैं और आजकल सभी प्रगतिशील देशों में वे समान राजनीतिक अधिकारों के लिए माँग कर रही हैं। अतः उन्हें इस अधिकार से वंचित रखना अन्याय हैं।

(५) कुछ व्यक्ति यह कहते है कि स्त्रियाँ अपने हितों के लिए पहले पिता और बाद में पति पर निर्भर रहती हैं और वे अपने राजनीतिक विचारों के लिए पुरुषों पर ही आश्रित हैं। इसलिए उन्हें मताधिकार देने से क्या लाभ ? वास्तव में इस निर्भरता के कारण तथा राजनीतिक अधिकारों के न मिलने से तो उन्हें पुरुष हीन अथवा दासी समान समझते हैं।

(६) प्रजातन्त्र सभी व्यक्तियों की समता पर आधारित है, इसलिए लिंग के आधार पर मताधिकार अथवा दूसरे अधिकारों के प्रदान करने में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं होना चाहिए। अपने व्यक्तित्व के विकास, नागरिक चेतना और राजनीतिक जागृति के लिए यह अधिकार नारियों के लिए भी उतना ही आवश्यक है जितना पुरुषों के लिए।

(७) इतिहास और अनेक राज्यों के उदाहरण यह बताते हैं कि स्त्रियाँ राज्य कर सकती हैं और पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में काम कर सकती हैं, तो फिर राजनीतिक क्षेत्र में भी ऐसा क्यों न होना चाहिए।

भारत में मताधिकार—नये संविधान के लागू होने से पूर्व भारत में बहुत थोड़ी जनसंख्या को मताधिकार प्राप्त था। सन् १९१९ के भारतीय शासन अधिनियम द्वारा प्रान्तीय कौंसिल के लिए केवल ३ प्रतिशत जनता को मताधिकार दिया गया था और सन् १९३५ के *भारतीय शासन अधिनियम द्वारा यह बढ़ाकर १४ प्रतिशत* जनसंख्या को मिला। मताधिकार के आधार शिक्षा व सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यतायें थीं। स्त्रियों को पुरुषों के समान मताधिकार प्राप्त न था। परन्तु वर्तमान संविधान द्वारा अपने देश में वयस्क मताधिकार की व्यवस्था हो चुकी है। अब सभी वयस्क पुरुषों और स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त है, यदि वे पागल, दिवालिया या अपराधी होने के कारण इस अधिकार से वंचित न कर दिये गये हों। इससे यह स्पष्ट है कि अब हमारे देश में शिक्षा व सम्पत्ति का होना मताधिकार के लिए आवश्यक शर्तें नहीं हैं। स्त्रियों को पुरुषों के ही समान मताधिकार प्राप्त हैं। वयस्क मताधिकार का आदर्श अब सभी सभ्य और प्रगतिशील राज्यों में स्वीकार किया जाता है।

३. प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त अथवा विभिन्न विधियाँ

मताधिकार के अतिरिक्त प्रतिनिधित्व के मुख्य सिद्धान्तों में हम इन्हें सम्मिलित कर सकते हैं—(१) भूमिगत और कार्यात्मक (व्यावसायिक) और (२) अल्प-संख्यकों का प्रतिनिधित्व, विशेषकर आनुपातिक प्रतिनिधित्व। इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित तथा इनसे सम्बन्धित ही प्रतिनिधित्व की विभिन्न विधियाँ हैं। अतएव उनका विवेचन निम्नलिखित है—

भूमिगत और कार्यात्मक प्रतिनिधित्व—एक आधार पर प्रतिनिधित्व की विधियों को भूमिगत (territorial) अथवा भौगोलिक और कार्य अथवा व्यवसाय (functional) के अनुसार दो प्रकार का माना जाता है। अधिकतर देशों में प्रथम प्रकार की विधि का ही चलन है; सोवियत संघ के पुराने संविधान के अन्तर्गत दूसरे प्रकार की विधि को अपनाया गया था। भूमिगत प्रतिनिधित्व का अभिप्राय यह है कि राज्य को अनेक निर्वाचन-क्षेत्रों में भूमि अथवा भूगोल के आधार पर बाँटा जाता है। निर्वाचन-क्षेत्रों से एक या अधिक सदस्यों का चुनाव किया जाता

है। इस विधि को सबसे अधिक सुविधाजनक माना गया है। इसके पक्ष में यह भी तर्क दिया जाता है कि जो व्यक्ति एक स्थान या क्षेत्र में रहते हैं, उनके हित समान होते हैं। परन्तु कुछ समय से इस विधि की आलोचना की जाने लगी है। इसमें दो दोष बताए जाते हैं। प्रथम तो यह कि भूमिगत सीमायें यथार्थ नहीं कृत्रिम होती हैं, वे एक समूह या वर्ग के हितों को दूसरे वर्ग या हितों से अलग नहीं कर सकतीं। केवल एक स्थान पर रहने व्यक्तियों के दृष्टिकोण अथवा हितों में एकरूपता नहीं आ सकती। दूसरे, यह इस युक्तिहीन सिद्धान्त पर आधारित है कि कोई एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व कर सकता है। वास्तव में प्रतिनिधित्व व्यक्तियों का नहीं वरन् हितों का होता है। अतः सच्चा प्रतिनिधित्व सामान्य हितों का ही होता है। कुछ विचारकों के अनुसार भूमिगत प्रतिनिधित्व से राजनीतिक बहुसंख्यकों और आनुपातिक प्रतिनिधित्व (proportional representation), जिसकी विवेचना आगे की गई है, ये अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व मिलता है, परन्तु ये दोनों ही विधियाँ आधुनिक दशाओं तथा प्रतिनिधित्व के सच्चे सिद्धान्तों से मेल नहीं खातीं।

वास्तव में, प्रतिनिधित्व का आधार व्यवसाय वर्ग अथवा कार्य होने चाहिएँ।[1] जी० डी० एच० कोल ने इस विधि का जोरदार समर्थन किया है। दूसरी विधि के अन्तर्गत कोई व्यक्ति अपने व्यवसाय के व्यक्तियों के साथ मत देगा न कि अपने क्षेत्र के निवासी मतदाताओं के साथ। इसके फलस्वरूप विधायिका में विभिन्न हितों के प्रतिनिधि पहुँचेंगे। इस विधि के समर्थकों का विश्वास है कि जो व्यक्ति एक ही प्रकार का कार्य, व्यवहार अथवा व्यवसाय करते हैं, उनके हित अपेक्षाकृत अधिक समान होते हैं। विधायिकाओं में विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए, विशेष रूप से आजकल; क्योंकि अधिकांश राजनीतिक आर्थिक प्रश्न अधिक होते हैं। इस विधि का विभिन्न विचारधाराओं के समाजवादी अधिक समर्थन करते हैं। परन्तु इस विधि के विरुद्ध कई व्यावहारिक तर्क दिए जाते हैं। उनमें से सर्वप्रथम यह है कि इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय विधायिका वर्गीय और विशेष हितों की सभा बन जायेगी और ये प्रतिनिधि राष्ट्रीय हितों का उचित ध्यान न रखेंगे। दूसरे प्रतिरक्षा, शान्ति और व्यवस्था, वैदेशिक सम्बन्ध, कर आदि जैसे सामान्य हितों के प्रतिनिधित्व के लिये यह विधि अनुपयुक्त है। इसके लागू करने में बहुत-सी व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी आती हैं, इसी कारण इस विधि को अधिकतर राज्यों ने नहीं अपनाया।

1. 'Neither the system of representation of political majorities, nor that of political minorities as such is in harmony with modern conditions or the true principle of representation. Both are defective because they rest upon purely geographical and political bases. They should therefore be replaced by a system of professional class, occupational or functional representation...' —*J. W. Garner*, Political Science and Government.

अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व

ऊपर एक सदस्य वाले निर्वाचन-क्षेत्रों के लाभ और हानियों की विवेचना करते समय बताया गया है कि इस प्रणाली का सबसे गम्भीर दोष यह है कि इनमें अल्पमत अथवा अल्पसंख्यक को उचित प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त होता। इस दोष को दूर करने के लिए निर्वाचन की अनेक विधियाँ निकली हैं, जिनका विभिन्न देशों में प्रयोग किया गया है। उनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं, इसलिए प्रत्येक का साधारण परिचय तथा संक्षिप्त विवेचन देना आवश्यक प्रतीत होता है।

सीमित मत प्रथा (Limited vote system)—इसके अनुसार राज्य को बहु-सदस्य वाले निर्वाचन-क्षेत्रों में बांटा जाता है। प्रत्येक क्षेत्र से ३, ४ या अधिक सदस्य चुने जाते हैं। प्रत्येक मतदाता को सीमित मत देने होते हैं। उदाहरण के लिए तीन सदस्य वाले क्षेत्र से दो, पाँच सदस्य वाले क्षेत्र से तीन मत देने का अधिकार मतदाताओं को दिया जा सकता है। मतदाता किसी भी उम्मीदवार को एक से अधिक मत नहीं दे सकते (Each voter is allowed a smaller number of votes than there are seats to fill, and he may not give more than one vote to any candidate)। इस विधि के अन्तर्गत अल्पसंख्यकों के एक या अधिक प्रतिनिधि चुने जा सकते हैं। परन्तु इससे पूर्ण सन्तोष बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक दलों में से किसी को भी नहीं होता; क्योंकि इनमें केवल दो बड़े दलों को तो प्रतिनिधित्व मिलता है, किन्तु छोटे-छोटे दलों का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता।

एकत्र-मत प्रथा (Cumulative Voting)—अल्पसंख्यकों की दृष्टि में उपर्युक्त विधि का मुख्य दोष यह है कि उन्हें अपने मतों का विभाजन करना पड़ता है, अतः कभी-कभी ऐसा होता है कि वे अपना एक भी प्रतिनिधित्व नहीं भेज पाते। इस दोष को दूर करने के लिये एकत्र-मत प्रथा का चलन हुआ। इसके अनुसार कई सदस्य वाले निर्वाचन-क्षेत्र में मतदाता को उतने ही मत देने का अधिकार होता है, जितने उस क्षेत्र से सदस्य चुने जाने को होते हैं। साथ ही मतदाता को यह अधिकार भी रहता है कि वह स्वेच्छानुसार अपने मतों को एक या अधिक उम्मीदवारों में जिस प्रकार चाहे बांट सकता है। इसमें अल्पसंख्यक वर्ग या दल अपने प्रतिनिधियों का चुनाव कराने में अधिक सफल होते हैं, क्योंकि उनके समर्थक अपने मतों को एक या दो उम्मीदवारों के पक्ष में एकत्रित कर सकते हैं। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों के चुने जाने की अधिक सम्भावना रहती है, परन्तु इसका दोष यह है कि इसके फलस्वरूप विभिन्न दलों का प्रभाव बढ़ जाता है।

दूसरे मतदान की प्रणाली (Second Ballot)—इसका तात्पर्य यह है कि यदि चुनाव में तीन या अधिक उम्मीदवार हों और उनमें से किसी एक को भी चुनाव में **पूर्ण बहुमत** (absolute majority) प्राप्त न हो तो प्रथम दो उम्मीदवारों को छोड़कर शेष नाम को हटा दिया जाता है और मतदाताओं से उन दो उम्मीदवारों

में से किसी एक को फिर से मतदान द्वारा चुनने को कहा जाता है। इसमें बहु-संख्यक मतदाताओं का उम्मीदवार तो चुना जाता है, परन्तु अल्पसंख्यकों को तब तक सफलता नहीं मिलती जब तक कि कुछ या सभी अल्पसंख्यक दल मिलकर अपना गुट न बना लें। इसका मुख्य दोष यह है कि दूसरी बार चुनाव किया जाता है, जिसके कारण अनावश्यक व्यय और परेशानी बढ़ती है।

वैकल्पिक मत की प्रणाली (Alternate Vote System)—इसमें निर्वाचन-क्षेत्र एक ही सदस्य वाला रहता है, परन्तु चुनाव के लिए पूर्ण बहुमत आवश्यक होता है। इसके अनुसार मतदाता मत तो एक ही देता है, किन्तु उसे अपनी पहली, दूसरी और तीसरी पसन्द बताने का अधिकार होता है अर्थात् यदि उसकी पहली पसन्द वाला उम्मीदवार न चुना जाए तो उसका मत दूसरी या तीसरी पसन्द के उम्मीदवार को पड़ जायेगा। यदि मतदान के बाद किसी उम्मीदवार को पूर्ण बहु-मत प्राप्त हो जाता है, तो उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। परन्तु यदि किसी भी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत प्राप्त नही होता, तो उस उम्मीदवार का नाम हटा दिया जाता है, जिसे सबसे कम मत मिलते हैं और उसके मतों को अन्य उम्मीदवारों के पक्ष में दूसरी पसन्द के अनुसार बाँट दिया जाता है। यदि अब किसी उम्मीदवार को बहुमत प्राप्त हो जाता है, तो उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है, अन्यथा फिर सबसे कम मत वाले उम्मीदवार का नाम हटाकर उनके मतों को तीसरी पसन्द के अनुसार शेष उम्मीदवारों में बांट दिया जाता है। इस प्रकार जिस उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत प्राप्त होता है, वह निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। यह प्रणाली आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से मिलती-जुलती है। इसमें क्षेत्र एक सदस्य वाले होते हैं, जबकि आनुपातिक पद्धति में बहु-सदस्य वाले क्षेत्र होते हैं। इसके गुण और दोष दूसरे मत की प्रथा के समान ही हैं, परन्तु इसमें दूसरी बार चुनाव की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व-पद्धति (System of Proportional Representation)—अल्पसंख्यकों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिलाने के लिए अनेक विधियों में यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और इसका चलन लगभग सभी प्रगतिशील राज्यों में कुछ प्रकार के चुनावों के लिए होता है। इस पद्धति के भी दो मुख्य रूप हैं—प्रथम **एकल संक्रमणीय मत-पद्धति** (Single transferable vote system) और दूसरा **सूची-पद्धति** (List system)। आनुपातिक पद्धति का प्रथम रूप अधिक महत्व-पूर्ण व प्रचलित है। इसके लिए ये बातें आवश्यक हैं—(१) बहुसदस्य वाले निर्वाचन क्षेत्र जिनमें कम से कम ३ प्रतिनिधि चुने जाने चाहिएँ; (२) किन्तु मतदाता को केवल एक ही मत का अधिकार होता है; (३) मतदाता अपनी पसन्द (preference) को विभिन्न उम्मीदवारों के नाम के आगे १, २, ३, ४ आदि संख्या लिखकर बता देता है; (४) मतों का संक्रमण और अन्त में; (५) निर्वाचन के लिए आवश्यक कोटा (गिनती)। कोटा निकालने के लिए ये फार्मूले प्रयोग में लाये जाते हैं—

(अ) $\frac{\text{कुल मतों की संख्या}}{\text{चुने जाने वाले सदस्यों की संख्या}}$

(आ) $\frac{\text{कुल मतों की संख्या}}{\text{चुने जाने वाले सदस्यों की संख्या} + 1} + 1$

उपर्युक्त फार्मूलों में प्रथम अधिक सरल है किन्तु दूसरा अधिक ठीक और अधिक ही प्रचलित है। इस प्रकार यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र से ८ उम्मीदवार हों और तीन सदस्य चुने जाने हों तो मतदाता तीन नामों के सामने अपनी पहली, दूसरी तथा तीसरी पसन्द दिखायेगा। मतदाता का मत पहली पसंद के उम्मीदवार को पड़ेगा, परन्तु यदि गणना का यह परिणाम निकले कि उसकी पहली पसंद वाला उम्मीदवार कोटा पूरा होने पर निर्वाचित घोषित कर दिया गया है अथवा उस उम्मीदवार के मत इतने कम आये हैं कि उसके चुने जाने की कोई सम्भावना न हो तो उसका मत दूसरी पसन्द वाले उम्मीदवार के पक्ष में पड़ जायेगा। यदि दूसरी पसंद का उम्मीदवार भी चुना जा चुका है, तो उसका मत तीसरी पसन्द के उम्मीदवार के पक्ष में गिना जायेगा। आवश्यकतानुसार यही क्रम जारी रहेगा।

एक उदाहरण—मान लीजिये कि एक निर्वाचन-क्षेत्र से ५ प्रतिनिधि चुने जाते हैं और डाले गए कुल मतों की संख्या २४,००० है। इस दशा में किसी प्रतिनिधि के चुने जाने के लिए कोटा इस प्रकार निकाला जायेगा—

$\frac{२४,०००}{५+१} + १ = ४००१$, अर्थात् जिस उम्मीदवार की पहली पसन्द के इतने मत मिल जायेंगे, या गुंजाइश होने पर दूसरी या तीसरी या चौथी पसन्द के इतने मत मिल जायेंगे उसे निर्वाचित कर दिया जायेगा।

गणना विधि—सर्वप्रथम उन मत-पत्रों को निकाला जाता है, जिनके आगे संख्या १ अर्थात् पहली पसंद लिखी है। मान लीजिए इस गणना के फलस्वरूप दो उम्मीदवार कोटा प्राप्त कर लेने पर निर्वाचित घोषित हो जाते हैं। इनमें से जिसके मतों की संख्या नियत कोटे से अधिक है उससे अधिक मत-पत्रों को दूसरी पसन्द वाले उम्मीदवारों के पक्ष में गिन लिया जायेगा। इस प्रकार एक या दो अन्य उम्मीदवार कोटा प्राप्त करने पर चुन लिए जायेंगे। अधिक मत-पत्रों को उसी प्रकार तीसरी पसन्द के उम्मीदवारों के पक्ष में जोड़ दिया जायेगा; यही क्रम कुल उम्मीदवारों के चुने जाने तक जारी रहेगा। यह पद्धति उन निर्वाचकों के लिए व्यापक रूप से अपनाई जाने लगी है जहाँ निर्वाचकों की संख्या अत्यधिक कम हो। भारत में राज्यों की विधान सभायें विधान परिषदों व राज्य सभा के लिए अपने द्वारा चुने जाने वाले सदस्यों का चुनाव इसी पद्धति के अनुसार करती हैं।

सूची पद्धति (List System)—इसमें निर्वाचन क्षेत्र बहुत बड़े आकार के होते हैं। चुनाव में भाग लेने वाले उम्मीदवारों को विभिन्न दलों की सूचियों में रखा

जाता है, प्रत्येक दल के उम्मीदवारों की एक सूची होती है। प्रत्येक मतदाता को यह अधिकार होता है कि जितने प्रतिनिधि उस क्षेत्र से चुने जाते हैं, उतने मत दे सके, किन्तु किसी भी उम्मीदवार को वह एक से अधिक मत नहीं दे सकता। निर्वाचन का परिणाम निकालने के लिए पहले कोटा निश्चित किया जाता है, कोटा निकालने का ढंग वही होता है, जैसा कि उपर्युक्त प्रणाली में। मान लीजिये, किसी निर्वाचन क्षेत्र से ८ प्रतिनिधि चुने जाने हैं, कुल डाले गए मतों की संख्या ७२,००० है, तो कोटा ८,००० हुआ। उम्मीदवारों की विभिन्न सूचियों के पक्ष में मान लीजिये मत इस प्रकार आये हैं—

कांग्रेस	४२,०००
प्रजासमाजवादी	१७,०००
साम्यवादी	१०,०००
जनसंघ	३,०००
	७२,०००

अतः विभिन्न दलों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या क्रमानुसार ५, २, १ होगी। किसी दल की सूची में से किन उम्मीदवारों को निर्वाचित माना जाए, इसका निर्णय इस आधार पर होगा कि उस सूची में किन उम्मीदवारों को सबल अधिक मत प्राप्त हुए हैं। इस प्रणाली का चलन फ्रांस तथा कुछ अन्य यूरोपीयन देशों में पाया जाता है। यह भी अत्यधिक पेचिदा है।

आनुपातिक पद्धति के मुख्य गुण अग्रलिखित हैं—(१) इसमें प्रतिनिधित्व न्यायपूर्ण होता है, क्योंकि बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक मतों अथवा दलों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। (२) इसमें कोई मत व्यर्थ नहीं जाता, अतः प्रतिनिधित्व अधिक यथार्थ और जनतन्त्रात्मक होता है, क्योंकि प्रत्येक मतदाता के मत की गणना का निर्वाचन फल पर प्रभाव प्रड़ता है। (३) इसके फलस्वरूप विधायिका जनमत का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है, क्योंकि इसमें सभी दलों को शासन-कार्य में अपनी बात कहने का अवसर मिलता है। (४) यह मतदाता को छाँट की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करता है। उसे अपनी पसन्द दिखाने में खूब अच्छी तरह सोचना पड़ता है, अतएव वह राजनीतिक शिक्षा का एक उत्तम साधन है। परन्तु प्रत्येक विधि में गुण और दोष दोनों ही होते हैं।[1]

1. 'Proportional representation ensures representation of every group. Parliament will truly by a mirror of the nation, as it must be in a democracy. The single transferable vote also develops civic interest for the system of preferences implies that the voter must give some time to consider the issues considerd...But it is useless as a means of establishing an instrument of aovernmen. The system encourages minority thinking.'

अनुपातिक पद्धति के मुख्य दोष अग्रलिखित हैं—(१) कुछ व्यक्तियों का कथन है कि यह पद्धति अत्यधिक पेचिदा है, अतः मतदाता दलों के एजेण्टों के हाथ में फंस जाते हैं। इस पद्धति को सफल बनाने के लिये मतदाता शिक्षित होने चाहियें। (२) विधायिका में विभिन्न दलों का प्रतिनिधित्व होता है, फलस्वरूप स्थायी मन्त्रि-मण्डल का निर्माण और स्थायी रहना बहुत कठिन हो जाता है। (३) अति विस्तृत निर्वाचन क्षेत्रों के कारण प्रतिनिधियों और मतदाताओं के बीच निकट सम्पर्क नहीं रहता।

साम्प्रदायिक अथवा पृथक निर्वाचन पद्धति (Communal or Separate Electorates)—अल्पसंख्यकों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए भारत के विदेशी शासकों ने इस पद्धति को चलाया था परन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य भारतीयों को आपस में लड़ाना था। 'बाँटों और शासन करो' वाली नीति के फलस्वरूप यह पद्धति चलाई गई थी और इसका अन्तिम फल देश के विभाजन में निकला। धर्म अथवा सम्प्रदाय के आधार पर विभिन्न अल्पसंख्यकों को अपने-अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिला। इससे संकीर्ण स्वार्थों पर बल दिया गया और साम्प्रदायिक वैमनस्य अत्यधिक बढ़ा। प्रतिनिधित्व और निर्वाचक राष्ट्रीय समस्याओं को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देखने लगे। यह प्रणाली गम्भीर दोषों से पूर्ण है यह बात अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने मानी, परन्तु फिर भी इस सिद्धान्त को क्रमशः विस्तृत किया गया।[1]

साम्प्रदायिक पद्धति के मुख्य दोष ये हैं—(१) इन चुनावों का आधार प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के विरुद्ध है; अन्य देशों में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते। यह पद्धति वैसे भी इतिहास की शिक्षा के विरुद्ध है। (२) इस पद्धति के अन्तर्गत मतदाता अपने धर्म अथवा सम्प्रदाय के प्रति राज्य से भी अधिक निष्ठा रखने लगते हैं। वे वर्गीय अथवा साम्प्रदायिक हितों को राष्ट्रीय हितों से बढ़कर महत्व देते हैं। (३) इसके फलस्वरूप साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ता है और राष्ट्रीयता की भावना क्षीण होती है। विभिन्न सम्प्रदायों के मतदाता एक दूसरे के विरोधी बन जाते हैं। वे सच्चे अर्थ में नागरिक नहीं रह जाते। (४) अल्पसंख्यक सम्प्रदाय अपनी स्थिति से एक प्रकार से सन्तुष्ट रहता है और अपने अच्छे कार्यों व गुणों के द्वारा बहुसंख्यक समुदाय की बराबरी करने का प्रयत्न नहीं करता। (५) बहुसंख्यक समुदाय भी ऐसी स्थिति में अल्पसंख्यकों के प्रति अपना कोई अन्य दायित्व अनुभव नहीं करते। अतः वर्तमान संविधान के अन्तर्गत उपरोक्त पद्धति का अन्त कर दिया गया है। परन्तु अनुसूचित जातियों व पिछड़े हुए वर्गों के लिए १० वर्ष के लिए सुरक्षित

1. 'They are opposed to the teaching of history.. Division by creeds and classes means the creation of political camps organised against each other and teaches men to think *as partison* and not *as citizenn.*'

Mantford Report, 1918.

स्थानों की व्यवस्था की गई थी, जिससे कि इन वर्गों के प्रतिनिधि एक निश्चित संख्या (अपनी जनसंख्या के अनुपात) में विधायिकाओं में पहुँच जायें।

प्रश्न

१. 'मताधिकार' का अर्थ बताइये और सीमित तथा वयस्क मताधिकार के पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिए।
२. भौगोलिक और कार्यात्मक प्रतिनिधित्व के पक्ष और विपक्ष में दिये गये तर्कों का विवेचन कीजिए।
३. प्रतिनिधित्व के मुख्य सिद्धान्तों का, संक्षेप में, विवेचन कीजिए।
४. अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के लिए विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
५. आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) क्या है ? इसके दोनों प्रमुख रूपों को समझाकर लिखिए।
६. आनुपातिक प्रतिनिधित्व के गुण व दोषों का विवेचन कीजिए।
७. साम्प्रदायिक अथवा पृथक निर्वाचन पद्धति के दोष बताइये।

८. न्यायपालिका

१. न्यायपालिका का महत्व और उसके कार्य

महत्व—शासन के प्रधान अंगों में तीसरा अंग न्यायपालिका का है। किसी देश के शासन की अच्छाई की पहचान वहाँ के न्यायपालिका की स्वतन्त्रता, निष्पक्षता और उसके सम्मानित स्थान से की जाती है। साधारण नागरिक को यदि यह विश्वास रहे कि आवश्यकता पड़ने पर वह न्यायालयों की शरण ले सकता है, जहाँ उसको वास्तव में कानूनों के अनुसार न्याय मिलेगा तो उसे बड़ी मानसिक शान्ति रहती है। ब्राइस ने सत्य ही कहा है कि कुशल न्यायपालिका का होना अच्छे शासन के लिए आवश्यक ही नहीं, वरन् यह तो शासन की अच्छाई की पहचान है।[1] न्यायशास्त्रियों के अनुसार तो राज्य एक कानूनी संस्था है; इसका अस्तित्व कानून के लिए है; और यह कानून के रूप में कायम रहती है। बार्कर के अनुसार राज्य का सार इस बात में है कि यह प्रभावी कानूनों व नियमों की जीवित व्यवस्था है; इस अर्थ में राज्य कानून है। न्यायपालिका अर्थात् न्यायालयों का प्रधान कार्य न्याय का प्रशासन अथवा न्याय करना है।

वास्तव में मानवी सम्बन्धों की संगठित व्यवस्था के लिए विभिन्न मूल्यों को आवश्यक समझा जाता है, यथा स्वतंत्रता, समता और भ्रातृत्व। प्रत्येक कानूनी व्यवस्था में ये मूल्य विद्यमान् रहते हैं। न्यायालयों को स्वतन्त्रता व समता के दावों के बीच उचित सम्बन्ध कायम करना पड़ता है। इस दृष्टि से न्याय विभिन्न राजनीतिक मूल्यों में उचित सम्बन्ध स्थापित करने की व्यवस्था है। यहाँ पर यह कहना काफी होगा कि न्याय के विचार के विभिन्न स्रोत माने जाते हैं। कुछ विद्वानों के विचार में न्याय का स्रोत धर्म है। मध्य युग में ईसाई धर्म गुरुओं का विश्वास था कि न्याय का स्रोत ईश्वर है और चर्च उसका साधन है। स्टॉइक दार्शनिकों का यह विश्वास था कि न्याय का स्रोत प्रकृति का कानून (Natural Law) है, जिसके अनुसार सब व्यक्ति समता के अधिकारी हैं। कुछ विचारक आचार शास्त्र अथवा नैतिक नियमों को न्याय का आधार मानते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में राजा को न्याय का स्रोत माना जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि न्याय शब्द का अर्थ विभिन्न दृष्टियों से किया जाता है और ऐसा किया जाना सर्वथा उचित माना जाता है।

1. 'There is no better test of the excellence of a government than the efficiency of its judicial system for nothing more clearly touches the welfare and security of the citizen, than his knowledge that he can rely on the certain, prompt and impartial administration of justice.'
—*J. Bryce.*

विधायिका कानून बनाती है, कार्यपालिका कानूनों को लागू करती और न्याय-पालिका उनके अनुसार कानून तोड़ने वालों को उचित दण्ड देती है और आवश्य-कता पड़ने पर उन कानूनों का निर्वचन (interpretation) भी करती है। इसका अर्थ यह हुआ कि न्यायपालिका अत्याचार को रोकती है, क्योंकि न्यायाधीशों से यह आशा की जाती है कि वे अपना कार्य निर्भीकता और निष्पक्षतापूर्वक करेंगे। इस प्रकार न्यायपालिका नागरिकों के बीच होने वाले झगड़ों में ही न्याय नहीं करती वरन् उन झगड़ों में भी जो नागरिकों और सरकार के बीच उठें। इस अर्थ में न्यायपालिका वैयक्तिक स्वतन्त्रता की सबसे महत्वपूर्ण रक्षक है। जिन देशों के ंविधान में नागरिकों के मूलभूत अधिकारों का वर्णन होता है, वहाँ तो नागरिक पने अधिकारों में किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप के विरुद्ध न्यायालयों में उपचार के तु जा सकते हैं। संघीय राज्यों में न्यायपालिका का महत्व और भी अधिक होता , क्योंकि उनमें सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का अधिकारपूर्ण निर्वचन करना ोता है और यदि कोई भी संघीय अथवा उप-राज्य की विधायिका कोई ऐसा ानून बना देती है जो उसके अधिकार-क्षेत्र से बाहर हो तो सर्वोच्च न्यायालय उसे वैध घोषित करने की शक्ति रखता है।

न्यायपालिका के कार्य—न्यायपालिका के कार्यों को हम संक्षेप में अग्रलिखित कार से रख सकते हैं—(१) सबसे प्रमुख कार्य तो न्यायपालिका का यही है कि यह कानूनों और संविधान का निर्वचन करे (२) **दीवानी (Civil) मुकदमों में न्याय करना**—विभिन्न नागरिकों के बीच अथवा नागरिकों और राज्य के बीच सम्पत्ति व अधिकारों से सम्बन्धित दीवानी मुकदमों में न्याय करना। (३) **फौजदारी (Criminal) मुकदमों में न्याय करना**—चोरी, डकैती, कत्ल आदि मुकदमों में न्याय करना भी न्यायालयों का महत्वपूर्ण कार्य है। ऐसे अपराधों के अभियुक्तों के विरुद्ध न्यायिक कार्यवाही राज्य की ओर से की जाती है अर्थात् पुलिस और सरकारी वकील इन मुकदमों को चलाते हैं।

(४) **संविधान का संरक्षण**—संघीय राज्य में न्यायपालिका संविधान की संरक्षक (Guardian of the Constitution) होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि संविधान की धाराओं के विरुद्ध संघ या राज्य की विधायिकायें कोई भी कानून बना दें तो उसे सर्वोच्च न्यायालय अवैध घोषित कर देता है।[1] संयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय तथा भारत के सर्वोच्च और उच्च न्यायालयों को **न्यायिक पुनरवलोकन** (Judicial Review) की शक्ति प्राप्त है। बर्थ के मतानुसार सं० रा० अमरीका में न्यायिक पुनरवलोकन के प्रयोग के लिए दो मुख्य कारण हैं।

1. According to Berth judicial review is 'the power of the highest court of a *jurisdiction* to invalidate, on constitutional grounds, the acts of other governmental agency within that jurisdiction.'

L. P. Berth, The Constitution and the Supreme Court, *p.* 16.

प्रथम, सं० रा० अमरीका का संविधान संघात्मक है, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है। उनके बीच किसी भी प्रकार के अधिकार-क्षेत्र सम्बन्धी विवाद का निर्णय सर्वोच्च न्यायालय ही कर सकता है। दूसरे, सं० रा० अमरीका के संविधान में शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त को लागू किया गया है, उसके कारण भी यह आवश्यक है कि यदि शासन की अन्य दोनों शाखाओं के बीच अधिकार-क्षेत्र सम्बन्धी कोई विवाद उठे तो सर्वोच्च न्यायालय उसका निर्णय करे।

(५) **नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षक**—जिन राज्यों के संविधानों में नागरिकों के अधिकारों का परिगणन कर दिया जाता है, उन्हें नागरिकों के मूल अधिकार कह देते हैं। यदि कोई व्यक्ति अथवा सरकारी अधिकारी उन अधिकारों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करते हैं तो नागरिक अपने अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालयों में मुकदमा ले जा सकते हैं। भारत के संविधान ने नागरिकों के अधिकारों को वास्तविकता प्रदान करने के उद्देश्य से एक यह अधिकार भी प्रदान किया है कि वे अपने अधिकारों का अतिक्रमण (violation) होने पर न्यायालयों से रक्षण प्राप्त करें। इसे संवैधानिक उपचार का अधिकार (Right to constitutional remedies) कहा गया है। इसकी पूर्ति के लिए सर्वोच्च और उच्च न्यायालय विभिन्न प्रकार के लेख या आदेश (Writs) जारी कर सकते हैं।

(६) **कानूनों का निर्माण**—मुख्यतः न्यायालयों का कार्य कानूनों के अनुसार न्याय करना है। किन्तु कभी-कभी न्यायाधीश कानूनों का निर्वचन करते समय अपने निर्णय द्वारा कानूनों का सर्वथा नया अर्थ लगाते हैं। उनके निर्णय भविष्य में कानूनों जैसा ही प्रभाव रखते हैं। उनके द्वारा निर्मित कानून **'केस लॉ'** (case law) या न्यायाधीशों द्वारा बनाये कानून (Judge-made law) कहलाते हैं। बहुधा कानूनों की बहुत सी धाराओं का अर्थ स्पष्ट और निश्चित नहीं होता, अतः यह कार्य करते समय न्यायाधीश नये कानून निर्माण कर जाते हैं। **डायसी** के अनुसार इंगलैंड के अधिकतर कानून इसी प्रकार बने हैं। ये कानून कानूनों के संग्रह (statute books) में नहीं मिलते, क्योंकि इन्हें संसद् ने नहीं बनाया। फ्रांस में लगभग सम्पूर्ण प्रशासनिक कानून-संग्रह इसी प्रकार निर्मित हुआ।

(७) **परामर्श देना** (Advisory opinion)—कुछ राज्यों में उच्च न्यायालयों को कार्यपालिका अथवा विधायिका की प्रार्थना पर महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्नों पर परामर्श देने का अधिकार प्राप्त है। इंगलैंड में ताज बहुधा प्रीवि कॉन्सिल की न्यायिक समिति (Judicial Committee of the Privy Council) से ऐसा परामर्श लेता है। लॉर्ड सभा भी सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करते समय किसी भी न्यायाधीश से परामर्श ले सकती है। अन्य अनेक राज्यों में भी ऐसी व्यवस्था है। भारत के संविधान के अन्तर्गत यदि कभी भी राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत हो कि किसी कानूनी या तथ्य के प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति

ली जानी आवश्यक है तो वह उस प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति मांग सकता है और सर्वोच्च न्यायालय उसके सम्बन्ध में आवश्यक सुनवाई के बाद अपनी सम्मति या प्रतिवेदन राष्ट्रपति को देगा, किन्तु न्यायालय ऐसा करने के लिए वाध्य नहीं है और उसकी सम्मति को अन्य न्यायालय कानूनी रूप में स्वीकार करने को वाध्य नहीं हैं।

३. न्यायपालिका का संगठन

न्यायाधीशों की योग्यता—कानूनी ज्ञान, दक्षता, ईमानदारी, स्वतन्त्रता व निष्पक्षता न्यायाधीशों के प्रमुख गुण होते हैं। यह स्पष्ट ही है कि जिन व्यक्तियों को न्यायालयों में न्याय करना है, वे कानूनों के अच्छे ज्ञाता, विद्वान और अपने कार्य में दक्ष तथा कुशल हों। यदि न्यायाधीश अयोग्य हों और कानूनों से पूरी तरह परिचित न हों तो वे न्याय नहीं कर सकेंगे और सर्वसाधारण का न्यायपालिका से विश्वास उठ जायेगा। न्यायाधीश को अत्यधिक ईमानदार व सच्चरित्र होना चाहिए। न्यायाधीशों के सामने बड़े-बड़े लालच आ सकते हैं, क्योंकि उनके हाथों में बड़ी शक्ति रहती है, कानूनों को थोड़ा-सा मोड़ देने पर वे चाहे तो गम्भीर अपराधियों को मुक्त कर सकते हैं और सम्पत्ति सम्बन्धी मुकदमों में वादी या प्रतिवादी को बड़ा लाभ पहुँचा सकते हैं। इसी कारण बहुत से व्यक्ति उन्हें घूस में बड़ी-बड़ी धनराशि देने का प्रयत्न कर सकते हैं। यदि न्यायाधीश भ्रष्टाचारी और घूसखोर हुए तो फल अन्याय ही होगा। यह भी अति आवश्यक है कि न्यायाधीश स्वतन्त्र व निष्पक्ष हों और वे दलगत नीति से दूर रहते हों, किसी के साथ जाति, धर्म अथवा निकट सम्बन्ध के आधार पर किसी प्रकार का पक्षपात न करते हों। न्यायाधीशों को निष्पक्ष और स्वतन्त्र होने के साथ-साथ निष्पक्षता और स्वतन्त्रता के लिए प्रख्यात भी होना चाहिए। इससे यह स्पष्ट है कि न्यायाधीशों के ऊँचे गुणों की माँग व आशा की जाती है। जिससे कि उनमें ये गुण मिल सकें, यह अति आवश्यक है कि उन्हें उनकी योग्यता और पद के अनुकूल अच्छा वेतन दिया जाय, उन्हें अपने पदों की पूर्ण सुरक्षा हो, और राज्य में उनका सामाजिक पद आदर का हो। अच्छा वेतन उनको भ्रष्टाचार के दोष से बचाने के लिए बहुत ही आवश्यक है। पद की सुरक्षा अथवा स्थायित्व इसलिए आवश्यक है कि वे कार्यपालिका के दबाव से स्वतन्त्र रह सकें और उनका समाज में उच्च पद इसलिए होना चाहिए कि वे धनिकों से दबें नहीं। साधारणतः न्यायाधीशों की नियुक्ति की तीन मुख्य विधियाँ हैं, जिनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है।

विधायिका द्वारा चुनाव—संयुक्त राज्य अमरीका के विभिन्न राज्यों में प्रारम्भिक काल में न्यायाधीशों को विधायिका द्वारा चुनने की प्रथा थी, क्योंकि उन्हें कार्यपालिकाओं का भय और लोकप्रिय निर्वाचन में अविश्वास था। यह विधि अमरीका के १—२ राज्यों में अब भी पाई जाती है और स्विटजरलेंड के संघीय न्यायाधीशों

की नियुक्ति इसी प्रकार होती है। इसमें दो दोष हैं—प्रथम, विधायिका द्वारा चुनाव का अर्थ दलों द्वारा तथा दलीय अभ्यर्थियों का चुनाव है। इस प्रकार से चुने गये न्यायाधीशों में उन योग्यताओं की कमी रह सकती है जो उनके कार्य के लिए आवश्यक है, जैसे निष्पक्षता। दूसरे इस प्रकार से नियुक्त हुए न्यायाधीश अपने कार्यपालन में स्वतन्त्र नहीं रह सकते। इन कारणों से इस विधि को आजकल पसन्द नहीं किया जाता।

जनता द्वारा चुनाव—गत शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लोकप्रिय राजसत्ता के सिद्धान्त के अनुसार न्यायाधीशों के लोकप्रिय चुनाव को पसन्द किया जाता था। इस विधि को कुछ समय के लिए फ्रांस में अपनाया गया, परन्तु इसके परिणाम निराशाजनक रहे। फिर भी संयुक्त राज्य अमरीका के कई संघान्तरित राज्यों में इस विधि का प्रयोग जारी है। स्विटजरलैंड में अधीन न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए तथा सोवियत संघ में कुछ सीमा तक इस विधि का प्रयोग होता है। इस विधि में भी कई दोष हैं। (१) आधुनिक प्रजातन्त्री राज्यों में लोकप्रिय चुनाव का अर्थ भी दलों द्वारा चुनाव से है। इस प्रकार से नियुक्त न्यायाधीशों का दलों के प्रभाव अधीन रहना स्वाभाविक है। (२) इस प्रकार से कम योग्यता वाले तथा कमजोर व्यक्तियों का चुनाव होता है, क्योंकि मतदाताओं की बड़ी संख्या योग्यतम व्यक्तियों को छांटने में यथेष्ट सावधानी नहीं रख सकती, वैसे भी योग्यतम व्यक्ति चुनाव की विधि को पसन्द न करने के कारण इससे दूर रहेंगे। (३) यदि न्यायाधीश की अवधि पुनर्निर्वाचन पर निर्भर करे तो यह स्वाभाविक है कि न्यायाधीश अपने कार्य में जनमत का ध्यान रखेंगे और ऐसे निर्णय देंगे जो लोकप्रिय हों, चाहे उसमें कानूनी दृष्टि से कमी रहे। संक्षेप में, इस प्रकार से नियुक्त किए गए न्यायाधीश अपना कार्य स्वतन्त्रता व निष्पक्षता के साथ नहीं कर सकते (A Judge elected by the people cannot act without fear or favour)। संयुक्त राज्य अमरीका में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं कि चुनावों में अच्छे और योग्य उम्मीदवारों की हार हुई।[1]

कार्यपालिका द्वारा नियुक्ति—आजकल इसी विधि को अधिकतर राज्यों ने अपनाया हुआ है। इसके अनुसार अध्यक्षात्मक शासन पद्धति वाले देशों में न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा और ग्रेट ब्रिटेन जैसे संसदात्मक पद्धति वाले देशों में न्यायमंत्री (Minister of Justice) द्वारा की जाती है। भारत के संविधान के अन्तर्गत सर्वोच्च और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष है और उसे दलगत राजनीति से ऊपर

1. 'It (popular election) lowers the character of the judiciary, tends to make a politician of the judge, and subjects the judicial mind to a strain which it is not always possible to resist.'

—*J. W. Garner*, Political Science and Government, p. 725.

माना जाता है। इसके अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति न्याय-मंत्री के स्थान पर सम्बन्धित न्यायालयों के न्यायाधिपतियों अथवा न्यायाधीशों से परामर्श लेता है। अधीन न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्यों के लोक-सेवा आयोगों द्वारा की जाती है। हमारे मत में यह विधि सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि न्यायाधीश अपना कार्य स्वतन्त्रता व निष्पक्षता से कर सकते हैं। उन पर कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रियों व विधायिकाओं के सदस्यों का कोई अनुचित प्रभाव नहीं पड़ सकता।

ग्रेट ब्रिटेन तथा अन्य कई यूरोपीय देशों में भारत की भाँति निम्नस्तरीय न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर ही होती है। बहुत से राजनीतिक विचारकों को यह विधि अधिक पसन्द है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा हो, किन्तु उन्हें न्यायाधीशों द्वारा तैयार की गई सुयोग्य व्यक्तियों की सूची में से ही न्यायाधीश नियुक्त करने का अधिकार हो। इस प्रकार की सूची उस न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा, जिसमें कि रिक्त स्थान है, या उच्चतर श्रेणी के न्यायाधीशों द्वारा बनाई जा सकती है। लॉस्की ने लिखा है : इस विषय में सब बातों को देखते हुए न्यायाधीशों का कार्यपालिका द्वारा नियुक्ति के परिणाम सबसे अच्छे रहे हैं।[1] परन्तु यह अति आवश्यक है कि न्यायाधीशों के पदों को राजनीतिक सेवा का फल नहीं बनाना चाहिए।

न्यायाधीशों की पदावधि—न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता और निष्पक्षता के लिए उनकी पदावधि भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि उनकी नियुक्ति की प्रणाली। सं० रा० अमरीका, स्विट्जरलैंड, सोवियत संघ के संघान्तरित राज्यों में न्यायाधीशों का जनता द्वारा निर्वाचन होता है, इसी कारण उनके पद की अवधि कुछ ही वर्ष होती है। अल्प-अवधि के लिए नियुक्त न्यायाधीश अपनी स्थिति का दुरुपयोग कर सकते हैं। वे न्याय की सभी रीतियों और यहाँ तक कि औचित्य के सिद्धान्तों की उपेक्षा करते हुए अपनी अवधि में अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे। अतः पद से निवृत होने की आयु तक सदाचरण (during good behaviour) पद अवधि की प्रणाली सबसे अच्छी मानी जाती है और लगभग सभी प्रगतिशील राज्यों में इसी का अनुकरण किया जाता है। सं० रा० अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति जीवन-पर्यन्त होती है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिए पद से निवृति की आयु-सीमा क्रमशः ६५ और ६२ वर्ष रखी गई है।

न्यायाधीशों को पद से हटाना—सदाचरण पद-अवधि के रहते हुये यह आवश्यक है कि प्रत्येक ऐसे राज्य में न्यायाधीशों को विशेष, किन्तु कठिन विधि द्वारा हटाया

1. 'Appointment by the executive has, on the whole, produced the best results. But it is, I think, urgent to prevent judicial office being made the reward for political services.'
—*H. J. Laski*, A Grammar of Politics. p. 302.

भी जा सके यदि ऐसा कार्य राष्ट्र हित में हो। इस विधि का प्रयोग भ्रष्टता अथवा अयोग्यता के आधार पर किसी न्यायाधीश को हटाने के लिए किया जाना उचित है; परन्तु किसी न्यायाधीश को हटाने की विधि में अत्यधिक विचार का समावेश होना चाहिए और उसे एक व्यक्ति की इच्छा पर नहीं छोड़ना चाहिए। *इसीलिए ब्रिटेन में किसी न्यायाधीश को पार्लियामेंट के संयुक्त आवेदन पर जिसमें,* उसके ऊपर भ्रष्ट या अयोग्य होने अथवा नैतिक पतन का आरोप लगाया गया हो, ताज द्वारा हटाया जा सकता है। सं० रा० अमरीका में न्यायाधीशों को कांग्रेस महाभियोग की कार्यवाही द्वारा हटा सकती है। इस प्रकार की कार्यवाही का प्रारम्भ प्रतिनिधि सदन होता है और सीनेट महाभियोग की सुनवाई करती है। ग्रेट ब्रिटेन में न्यायाधीशों को पार्लियामेंट के दोनों सदनों द्वारा सम्बोधन (address) पेश करने पर हटाया जा सकता है।

सं० रा० अमरीका के कुछ संघान्तरित राज्यों में प्रत्यावर्तन (recall) द्वारा न्यायाधीशों को हटाने की विधि अपनाई गई है; किन्तु न्यायविद् इस विधि को निन्दनीय समझते हैं। भारत के संविधान के अन्तर्गत इस सम्बंध में व्यवस्था इस प्रकार है—कोई भी न्यायाधीश त्याग-पत्र द्वारा पद त्याग कर सकता है। किसी भी न्यायाधीश को इस प्रकार पदच्युत किया जा सकता है—सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालय का कोई भी न्यायाधीश तब तक पदच्युत न किया जायेगा जब तक कि राष्ट्रपति ऐसा आदेश न निकाले, किन्तु ऐसा आदेश राष्ट्रपति तभी देगा जबकि संसद का प्रत्येक सदन कुल संख्या के २/३ के बहुमत से यह पास करे कि अमुक न्यायाधीश सिद्ध कदाचार (*proved misconduct*) या *अयोग्यता* (*incapacity*) के आधार पर हटाया जाए और इस उद्देश्य से राष्ट्रपति के पास सम्बोधन भेजा जाए। इससे यह स्पष्ट है कि संसद ऐसा प्रस्ताव पास करने से पूर्व उसके बारे में जाँच करायेगी, साथ ही यह भी आवश्यक नहीं कि राष्ट्रपति उसके प्रस्ताव को मान ही ले।

न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता (Independence of Judges)—कार्यपालिका द्वारा नियुक्त न्यायाधीशों को यदि कार्यपालिका आसानी से न हटा सके और उनकी नियमानुसार पदोन्नति होती रहे, तो वे स्वतन्त्र रह सकेंगे। साथ ही विधायिका को उनके वेतन और भत्तों में उनके कार्यकाल में कमी करने की शक्ति नहीं मिलनी चाहिए। ऐसा होने पर न्यायाधीश स्वतन्त्र और निष्पक्ष रह सकते हैं। इस संबंध में एक बात और भी है, वह यह कि यदि कार्यपालिका अथवा विधायिका किसी भी प्रकार से उनके कार्यों में हस्तक्षेप करे या उन पर अनुचित दबाव डालने का प्रयत्न करे तो समझदार नागरिकों को उनके अनुचित कार्यो की खुलकर आलोचना करनी चाहिए। संक्षेप में, न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए ये बातें आवश्यक हैं : (अ) उनकी नियुक्ति कार्यपालिका अध्यक्ष अथवा लोक-सेवा आयोग द्वारा की जाए; (आ) एक बार नियुक्त हो जाने पर पद से निवृत होने की अवधि

तक उन्हें सिवा दुराचार, मानसिक विकृति या शारीरिक अयोग्यता के आधार पद से न हटाया जाए, (इ) उनको पर्याप्त वेतन और भत्ते आदि दिये जायें जिससे उन्हें धनाभाव न रहे और वे घूस या भ्रष्टाचार से बचे रहें, और (ई) कार्यपालिका अथवा व्यवस्थापिका उन पर किसी भी प्रकार का अनुचित दबाव न डाल सके।

भारत में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता—भारतीय न्यायपालिका ग्रेट ब्रिटेन व संयुक्त राज्य अमरीका की न्यायपालिकाओं के समान स्वतन्त्र है। न्यायपालिका को यथासम्भव कार्यपालिका तथा विधायिकाओं के प्रभाव से स्वतन्त्र रखा है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के हेतु संविधान में कई उपलब्ध हैं। (१) सर्वोच्च और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीशों के परामर्श से की जाती है। (२) किसी भी ऐसे न्यायाधीश को राष्ट्रपति एक कठोर विहित विधि द्वारा ही हटा सकता है। (३) न्यायाधीशों के वेतनों और भत्तों आदि में उनके कार्यकाल में कोई कमी नहीं की जा सकती और साथ ही उनके ऊपर होने वाला व्यय, संघ या राज्यों की संचित निधियों पर पारित है (charged on the Consolidated Fund of the Union or the State)। (४) उनकी स्वतन्त्रता बनी रहे इस उद्देश्य से यह भी व्यवस्था है कि उनके अधीन अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति व सेवा की शर्तों पर नियन्त्रण न्यायाधीशों का ही रहे।

३. न्यायपालिका के विषय में कुछ अन्य जानने योग्य बातें

न्यायालयों के संगठन (Organisation of Court)—आजकल न्यायालयों का संगठन काफी जटिल होता है; फिर भी उसके विषय में कुछ साधारण बातें इस प्रकार रखी जा सकती हैं—(१) प्रायः प्रत्येक देश में विभिन्न स्तरों अथवा श्रेणियों के न्यायालयों को एक पिरेमिड के रूप में (in the form of a hierarchy) रखते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय न्यायपालिका में सबसे ऊपर सर्वोच्च न्यायालय है, उसके नीचे प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय है और उसके नीचे जिले की तथा अधीन अदालतें हैं। (२) सभी देशों में न्यायपालिका के दो प्रमुख अंग होते हैं—दीवानी अदालतें (Civil courts) और फौजदारी अदालतें (Criminal courts)। इनके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रकार की अदालतें भी होती हैं। भारत में भूमिकर सम्बन्धी मुकदमों के लिए माल की अदालतें (Revenue courts) हैं। ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत संघ आदि राज्यों में कई प्रकार की विशेष अदालतें (special courts) हैं। फ्रांस में प्रशासनिक अदालतों (Administrative courts) की पृथक् व्यवस्था है। (३) साधारणतया संघीय राज्यों में संघीय कानूनों और राज्य कानूनों के प्रशासन हेतु दो प्रकार की अदालतों के समूह (two separate sets of courts) होते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसी ही व्यवस्था है। किन्तु भारत में सभी न्यायालयों को ही एक संघठित व्यवस्था

(integrated system) में रखा गया है। (४) कुछ न्यायालयों में एक ही न्यायाधीश होता है और कुछ में न्यायाधीशों की बेन्च (plurality of judges)। ग्रेट ब्रिटेन में एक न्यायाधीश वाली अदालतों में ज्यूरी (jury) का प्रयोग होता है। भारत में भी ज्यूरी पद्धति अपनाई गई है।

न्यायालयों का क्षेत्राधिकार (Jurisdiction of the Courts)—साधारणतया न्यायालयों का दो प्रकार का क्षेत्राधिकार होता है—प्राथमिक (Original) और अपील सम्बन्धी (Appellate)। जिन मुकदमों का जिस न्यायालय में आरम्भ होता है, उस न्यायालय का उन मुकदमों के ऊपर प्राथमिक क्षेत्राधिकार होता है। जिन मुकदमों की अपीलें उच्चतर श्रेणी के न्यायालयों में होती हैं उन न्यायालयों को उन मुकदमों के सम्बन्ध में अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए भारत में छोटे-छोटे दीवानी और कम गम्भीर मुकदमे जिले की छोटी अदालतों में सुने जाते हैं; उन अदालतों का उन पर प्राथमिक क्षेत्राधिकार है। इन मुकदमों की अपीलें उच्च न्यायालयों में की जाती हैं, अतः उन्हें अपीलीय क्षेत्राधिकार होता है। उच्च स्तरीय न्यायालयों को नीचे की अदालतों में सुने गए मुकदमों की अपीलें सुनने के अधिकार के साथ-साथ बड़ी मालियत के दीवानी मुकदमे सुनने का प्राथमिक क्षेत्राधिकार भी होता है। जिन न्यायालयों को परामर्श देने का अधिकार है, वह उनका परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार (advisory jurisdiction) कहलाता है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को कुछ प्रकार के मुकदमों में समवर्ती (concurrent) क्षेत्राधिकार भी प्राप्त हैं।

विधि का नियम और प्रशासनिक कानून की पद्धति—ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका तथा भारत आदि देशों में एक प्रकार की कानूनी व्यवस्था है, जिसे विधि का नियम कहते हैं। इसके विपरीत फ्रांस तथा अन्य योरोपीय देशों में दूसरी प्रकार की व्यवस्था है, जिसे प्रशासनिक कानून की व्यवस्था कहते हैं। इन दोनों के अन्तर की मुख्य बातें संक्षेप में इस प्रकार हैं। विधि के नियम वाली कानूनी व्यवस्था में सभी व्यक्तियों के लिए, चाहे वे साधारण नागरिक हों या सरकारी एक ही प्रकार के कानून और एक ही प्रकार की अदालतें होती हैं।[1] इसके विपरीत दूसरी कानूनी व्यवस्था के अन्तर्गत साधारण नागरिकों के लिए एक प्रकार के कानून और न्यायालय होते हैं तथा सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध अभियोगों की सुनवाई के लिए पृथक् प्रशासनिक कानूनों का संग्रह और प्रशासनिक न्यायालय होते हैं।

फ्रांस और जर्मनी में सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध मुकदमों की सुनवाई के लिये साधारण कानूनों और न्यायालयों के समानान्तर न्यायालयों का पृथक् संगठन है। इन न्यायालयों में सरकारी कर्मचारियों अर्थात् राज्य के विरुद्ध दावों की सुनवाई होती है। फ्रांस के प्रत्येक प्रान्त (Department) में प्रशासनिक न्यायाधिकरण

1. A. V. Dicey, *Law of the Constitution*, pp. 184-195.

(administrative tribnnal) है और उसके निर्णयों के विरुद्ध अपील आदि सुनने के लिए एक सर्वोच्च प्रशासनिक न्यायालय (Council of State) फ्रांस की राजधानी पेरिस में स्थित है। फ्रांस में पृथक् व्यवस्था होते हुए भी नागरिकों के अधिकारों की रक्षा में कोई कमी नहीं; व्यवहार में प्रशासनिक न्यायालयों के कार्य से साधारण जनता को सन्तोष है। इन अदालतों में सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध मुकदमे लाने अर्थात् राज्य के विरुद्ध दावा करने में शीघ्र कार्यवाही होती है, व्यय कम होता है और दावेदारों को न्याय मिलता है।[1]

न्यायपालिका का कार्यपालिका से सम्बन्ध—कुछ बातों में कार्यपालिका न्यायपालिका पर नियन्त्रण के अधिकार रखती है, और कुछ में न्यायपालिका कार्यपालिका पर नियन्त्रण के अधिकार रखती है। कार्यपालिका के न्यायपालिका पर नियन्त्रण के तीन मुख्य रूप हैं—(१) कार्यपालिका न्यायाधीशों की नियुक्ति, उनके पद से हटाये जाने और स्थानान्तरण आदि के सम्बन्ध में कम या अधिक अधिकार रखती है। (२) न्यायालयों के निर्णयों को कार्यरूप कार्यपालिका ही देती है। ऐसा करने में कार्यपालिका ढील अथवा देरी कर सकती है। (३) कुछ न्यायिक कार्य अभी तक कार्यपालिका द्वारा किये जाते हैं। उदाहरण के लिये न्यायालयों द्वारा दण्डित व्यक्ति के दण्ड को कम करना; उसे निलम्बित करना तथा क्षमादान करना। इसके अतिरिक्त, सैनिक व नागरिक सेवाओं में अनुशासन रखना और अनुशासन भंग करने वाले व्यक्तियों को विभागीय दण्ड देना आदि भी एक प्रकार के न्यायिक कार्य हैं, जिन्हें कार्यपालिका करती है। न्यायपालिका कार्यपालिका पर इन बातों में नियन्त्रण शक्ति रखती है। कार्यपालिका के अधिकारी, राज्य के अध्यक्ष को छोड़कर जिसे कुछ उन्मुक्तियाँ (immunities) प्राप्त होती हैं, अवैध कार्यों के लिए न्यायालयों के अधीन होते हैं, चाहे वे प्रशासनिक न्यायालय ही हों। न्यायालय सभा अधिकारियों को कानून का उल्लंघन या अतिक्रमण करने पर उचित दण्ड देते हैं तथा उनके विरुद्ध लेख (writ) जारी कर सकते हैं।

संविधान के निर्वचन (interpretation) का कार्य बहुत महत्वपूर्ण होता है, जो राज्य के सर्वोच्च न्यायालय ही कर सकते है। निर्वचन की आवश्यकता सभी लिखित सविधान वाले राज्यों में पड़ती हैं। परन्तु संघात्मक राज्यों में संविधान के निर्वचन का कार्य कहीं अधिक महत्वपूर्ण होता है; क्योंकि ऐसे संविधान का रूप एक दो राज्यों के बीच सन्धि अथवा अनुबन्ध (contract) जैसा होता है। संघात्मक संविधान द्वारा संघीय सरकार व संघांतरित राज्यों की सरकारो के बीच शक्तियों

1. 'French 'administrative law' or 'droit administratif' has been defined by French authorities in general terms as the body of rules which regulate the relations of the administration or of the administrative authority towards private citizens.'

—*H. Zink*, Modern Government, p. 283.

का विभाजन किया जाता है और दोनों प्रकार की सरकारें केवल अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में ही कानून बना सकती हैं। अस्तु, कभी भी किसी विषय के बारे में यह प्रश्न अथवा विवाद उठ सकता है कि उस पर कानून बनाने की शक्ति संघीय अथवा राज्य सरकारों में से किसको मिली है। यह कार्य कोई सर्वोच्च स्थान प्राप्त पूर्णतया निष्पक्ष न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। ऐसे न्यायालय के निर्वचन करते समय संविधान के प्राविधानों में कभी-कभी नये अर्थ निकाल देते हैं विशेष रूप से उनका व्यापक अथवा उदार अर्थ लेकर स्पष्ट शक्ति में निहित शक्ति को निकाल लेते हैं। इसी प्रकार सं० रा० अमरीका में सर्वोच्च न्यायालय ने निहित शक्तियों (implied powers) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। संविधान के निर्वचन के महत्व का एक न्यायाधिपति के निम्नलिखित कथन से भली प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है। 'हम सविधान के अन्तर्गत हैं, किन्तु संविधान क्या है यह हम बताते हैं।'[1] भारत में संविधान की धाराओं का निर्वचन उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालयों द्वारा किया जाता है।

न्यायायिक पुनरवलोकन (Judicial Review) क्या है और उसकी सं० रा० अमरीका के संविधान में क्या विशेष रूप से आवश्यकता है, इन बातों का संक्षिप्त विवेचन पहले खण्ड में ही किया जा चुका है। वास्तव में, इस प्रकार की शक्ति का सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान किया जाना संघात्मक संविधान की तीन अति आवश्यक शर्तों में से एक है। इसी आधार पर यह कहा जाता है कि जिन संघात्मक संविधानों में सर्वोच्च न्यायालय को इस प्रकार शक्ति प्राप्त नहीं होती वे सच्चे अर्थ में संघात्मक नहीं कहला सकते। न्यायिक पुनरवलोकन की पद्धति का उदय और विकास सं० रा० अमरीका में हुआ और यह उस देश की विश्व को एक महान् देन है। संयुक्त राज्य अमरीका मे न्यायिक पुनरवलोकन अधिकतम मात्रा में पाया जाता है।

भारत में भी संघात्मक संविधान है; सर्वोच्च और उच्च न्यायालयों को संसद व राज्य विधान मण्डलों द्वारा बनाये गये कानूनों पर पुनरवलोकन की शक्ति प्राप्त है। सं० रा० अमरीका व भारत में पुनरवलोकन की मात्रा में बहुत थोड़ा सा अर्थात् एक बात में अन्तर है। जबकि सं० रा० अमरीका में कानून की उचित प्रक्रिया' (due process of law) वाक्यांश प्रयुक्त हुआ है; भारत के संविधान में इसके स्थान पर 'सिवाय उस प्रक्रिया के अनुसार जिसे कानून द्वारा स्थापित किया गया हो' (except in accordance with the procedure established by law) वाक्यांश का प्रयोग हुआ है, फलतः जबकि सं० रा० अमरीका में सर्वोच्च न्यायालय कांग्रेस द्वारा निर्मित किसी कानून को इस आधार पर भी अवैध घोषित कर सकता है कि उसमें औचित्य का अभाव है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय

[1] 'We are under the constitution, but the constitution is what the judges say it is.' —Chief Justice of the Supreme Court of U.S. A.

संसद या राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा निर्मित कानून की इस दृष्टि से जाँच नहीं कर सकते, वे तो किसी कानून को केवल तभी अवैध घोषित कर सकते हैं जबकि उसकी धारायें संविधान के प्राविधानों का अतिक्रमण करती हों।

प्रश्न

१. न्यायपालिका का महत्व बताइये। न्यायालयों के मुख्य कार्य क्या हैं ?

२. न्यायपालिका के संगठन के बारे में आप क्या जानते हैं ?

३. निम्नलिखित को समझाकर लिखिए :—

(अ) न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता

(ब) न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र

४. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—

(अ) न्यायिक पुनरवलोकन

(ब) संविधान का निर्वचन

(स) अधिकारों का रक्षण

९. स्थानीय स्वशासन

१. अर्थ और महत्व

अर्थ—स्थानीय स्वशासन से हम उन स्थानीय संस्थाओं के शासन को समझते हैं हैं जिन्हें निर्वाचक प्रत्यक्ष रूप से चुनते हैं और जो किसी स्थान या क्षेत्र के निवासियों से सम्बन्धित मामलों का प्रशासन करती हैं। स्थानीय स्वशासन केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित स्थानीय प्रशासन (Local administration) से भिन्न होता है।[1] स्थानीय प्रशासन के अधिकारी केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त और उसी के कानूनों को लागू करने के लिए होते हैं; इसके विपरीत स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के सदस्य स्थानीय जनता द्वारा चुने जाते हैं। स्वशासन की संस्थाओं को केन्द्रीय सरकार से स्थानीय मामलों के सम्बन्ध में स्वशासन के अधिकार मिले होते हैं और वे एक प्रकार के उप-अधिनियम (bye-laws) बनाती हैं और उन्हें लागू करती हैं। सरल भाषा में स्थानीय स्वशासन से तात्पर्य उन निगमों, नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों व ग्राम पंचायतों से है जिनका कर्त्तव्य उन आवश्यकताओं को पूरा करने तथा ऐसे कार्य करने से होता है, जिनका सम्बन्ध विशेष स्थानीय क्षेत्रों के निवासियों से होता है। स्थानीय स्वशासन का सम्बन्ध समस्त सामाजिक जीवन से नहीं होता वरन् इसके कार्यों का स्वरूप स्थानीय होता है, राष्ट्रीय नहीं।

गिलक्राइस्ट के शब्दों में 'स्थानीय शासन का वर्णन किया जा सकता है, उसकी परिभाषा नहीं की जा सकती, क्योंकि परिभाषा के लिए कुछ सीमाओं की आवश्यकता है और केन्द्रीय व स्थानीय शासन में स्पष्ट क्षेत्र विभाजन नहीं किया जा सकता।' स्थानीय स्वशासन केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय शासन से सर्वथा भिन्न होता है। साधारण प्रान्त या उप-राज्य की सरकार स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की स्थापना व संगठन के लिए कानूनी बनाती है, जिसके अन्तर्गत स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को उपनियम बनाने तथा अपने स्थानीय विषयों पर नियन्त्रण रखने के सीमित अधिकार मिले होते हैं। लीकॉक के अनुसार केन्द्रीय और स्थानीय शासन का भेद दो बातों पर निर्भर करता है—प्रथम, दोनों की संवैधानिक स्थिति एक दूसरे के सर्वथा भिन्न होती है। केन्द्रीय शासन की संस्थायें संविधान के अन्तर्गत स्थापित होती हैं, स्वशासन की संस्थाओं की स्थापना केन्द्रीय शासन के कानूनों के अन्तर्गत

1. 'Local administration by officials of the central government does not constitute "Local Government." The term is applied to those organs which exist at the will of the central government, and which, while they exist, have certain definite powers of making regulations, of controlling certain parts of public finance, and of executing their own laws, or the laws of the central legislature, over a given area.' —*R. N. Gilchrist.*

की जाती है। दूसरे, क्षेत्रीय संस्थाओं द्वारा किये जाने वाले कार्यों का स्वरूप भिन्न होता है। संक्षेप में, स्थानीय स्वशासन का अर्थ किसी स्थान (या स्थानीय क्षेत्र) के उन सब बातों के शासन से है, जिनका प्रबन्ध वहाँ के निवासी स्वयं करें या उनके द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि करें।

स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता और महत्व—सदैव ही स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को आवश्यक समझा गया है। प्राचीन भारत में विभिन्न प्रकार की स्थानीय संस्थायें थीं। ग्रेट ब्रिटेन अपनी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के लिए प्रसिद्ध है। सभी प्रजातन्त्रात्मक राज्यों में ऐसे संस्थायें पाई जाती हैं। जेम्स ब्राइस के अनुसार ये संस्थायें नागरिकों में अपने सामान्य मामलों के प्रति दिलचस्पी पैदा करती हैं। ये संस्थायें नागरिकों को केवल दूसरे के लिए काम करने का प्रशिक्षण ही नहीं देतीं, वरन् दूसरों के साथ काम करना भी सिखाती हैं। इस विषय में लास्की का कथन है : "प्रजातन्त्रात्मक शासन के पूरे लाभों को हम तब तक नहीं उठा सकते जब तक किसी स्थान के निवासियों में सामान्य उद्देश्यों और आवश्यकताओं की पूर्ति की चेतना न हो।" वास्तव में, स्थानीय स्वशासन की संस्थायें स्वतन्त्र राष्ट्रों की शक्ति हैं। स्वतन्त्रता के लिए स्थानीय सभायें उसी प्रकार हैं जिस प्रकार कि विज्ञान के लिए प्राइमरी स्कूल। ये स्वतन्त्रता का प्रयोग और उपभोग करना सिखाती हैं।[1]

आधुनिक राज्यों का क्षेत्रफल व उनकी जनसंख्या इतनी बढ़ी होती है कि उनका शासन एक केन्द्र से सुचारू रूप से नहीं हो सकता। वर्तमान काल में जबकि राज्यों के कार्यों में बहुत वृद्धि हो रही है, यह विशेष रूप से और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। यदि राज्यों की केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों पर सभी शासन-कार्यों का भार हो तो वे इन कार्यों को कुशलता व सुगमतापूर्वक नहीं कर सकतीं, क्योंकि न तो उनके पास पर्याप्त समय होता है और न उन्हें विभिन्न स्थानों व क्षेत्रों की आवश्यकताओं और विशेष परिस्थितियों का पर्याप्त ज्ञान होता है। यह बात सभी विचारशील व्यक्ति मानेंगे कि किसी देश की सभी समस्यायें केन्द्रीय अथवा प्रादेशिक नहीं होतीं, अर्थात् अनेक समस्यायें प्रत्येक स्थान व क्षेत्र की अपनी-अपनी होती हैं। यह बात भी सभी समझदार व्यक्ति स्वीकार करेंगे कि इन स्थानीय समस्याओं का अपेक्षाकृत अच्छा हल इनके ही निवासी कर सकते हैं क्योंकि वे अपने नगर व पड़ौस की समस्याओं और आवश्यकताओं को दूसरे की अपेक्षा अधिक अच्छी

1. 'Municipal institutions constitute the strength of free nations. Town meeting are to liberty what primary schools are to science, they bring it within the people's reach, they teach men how to use and how to enjoy it. A nation may establish a free government, but without municipal institutions it cannot have the spirit of liberty.'

—*Anderson, et al*, Local Government in Europe, p. 14.

प्रकार से जानते और समझ सकते हैं, अपने द्वारा किये कार्यों से उन्हें एक विशेष प्रकार का सन्तोष व आनन्द प्राप्त होता है; इसके अतिरिक्त केन्द्रीय शासन साधारण जनता में स्थानीय समस्याओं के प्रति वैसी अभिरुचि व उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न नहीं कर सकता, जैसी कि स्थानीय संस्थायें कर सकती हैं। अन्त में, यह भी कहना ठीक होगा कि चूंकि किसी भी स्थानीय सेवा का लाभ वहीं के निवासियों को पहुँचता है, अत: उन्हें उनके लिए कर देने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए और वे उन सेवाओं का प्रवन्ध भी अधिक कुशलतापूर्वक कर सकते हैं; क्योंकि उन्हें व्यय में सभी प्रकार की वचत करने की चिन्ता रहना स्वाभाविक है।

स्थानीय स्वशासन के लाभ—स्थानीय स्वशासन के अनेक लाभ हैं, उनमें से प्रमुख का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—प्रशासन में सुविधा—प्रशासन की सुविधा के लिए केन्द्रीय व स्थानीय शासन का विभाजन अति आवश्यक है। आधुनिक राज्यों का क्षेत्रफल और जनसंख्या बहुत बड़े होते हैं, परिणामस्वरूप प्रत्येक राज्य को अनेक और विभिन्न प्रकार की समस्याओं को हल करना पड़ता है। उनमें से वहुत सी स्थानीय व क्षेत्रीय समस्याओं को स्थानीय संस्थायें और वहीं के नागरिक अपेक्षाकृत अधिक अच्छी प्रकार तथा सुविधा से हल कर सकते; यह सर्वविदित सिद्धान्त है कि जो व्यक्ति जिस स्थान अथवा क्षेत्र में रहते हैं वे अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों को दूसरों की अपेक्षा अधिक अच्छी प्रकार से समझते हैं और वे उनको हल करने के लिए सफलता व कुशलतापूर्वक कार्य कर सकते हैं।

शासन-कार्य में कुशलता—स्थानीय शासन की स्थापना अथवा शासन के **विकेन्द्रीकरण** (Decentralization) से *शासन-कार्य में कुशलता बढ़ जाती है।* स्थानीय शासन का आधार **कार्य-विभाजन** (Division of Labour) का सिद्धान्त तथा यह भावना होती है कि 'पहनने वाला ही यह जानता है कि जूता पैर में कहाँ कष्ट देता है। साथ ही केन्द्रीय शासन के कार्य-भार को स्थानीय शासन द्वारा हलका किया जाता है। आजकल राज्य के कार्यों का विस्तार वढ़ गया है और सभी कार्यों को केवल केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारें कुशलतापूर्वक पूर्ण नहीं कर सकतीं।

शासन-व्यय में कमी—स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के प्रशासन से व्यय में बचत होती है। यदि स्थानीय शासन के कार्यों को केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय शासन करें तो उन्हें उन कार्यों को कराने के लिए अनेक विभाग खोलने होंगे, जिनमें उच्च वेतनभोगी सरकारी कर्मचारियों को रखना होगा और वड़े-वड़े कार्यालय खोलने पड़ेंगे। इस प्रकार राज्य की आय का एक वड़ा भाग स्थानीय शासन पर व्यय होगा, परन्तु स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की स्थापना से शासन-व्यय में काफी वचत होती है, क्योंकि इन संस्थाओं में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि प्रायः अवैतनिक रूप से कार्य करते हैं। इस प्रकार सरकार का आर्थिक भार कम हो जाता है और अपव्यय का भी भय कम रहता है।

पड़ोस के जीवन में अधिक दिलचस्पी व उत्तरदायित्व—स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के निर्माण से नागरिकों की स्थानीय तथा पास पड़ोस के जीवन में अधिक दिलचस्पी पैदा हो जाती है; क्योंकि स्थानीय शासन के कार्यों का उनके नित्य के जीवन से अपेक्षाकृत अधिक सम्बन्ध होता है। साथ ही नागरिकों में उत्तरदायित्व की भावना की वृद्धि होती है। केन्द्रीय शासन द्वारा नागरिकों में आस-पास के जीवन के प्रति अभिरुचि और स्थानीय शासन-कार्यों के लिए उत्तरदायित्व की भावना पैदा नहीं की जा सकती।

स्थानीय संस्थाओं द्वारा व्यापार (Municipal Trading)—स्थानीय संस्थाओं को एक अन्य लाभ यह है कि वे कुछ व्यापारिक कार्यों को अधिक अच्छी प्रकार से कर सकती हैं। व्यापारी वर्ग सभी कार्य आर्थिक लाभ के लिए करता है। किन्तु ये संस्थायें नागरिकों के हित में बहुत से व्यापारिक कार्य आर्थिक लाभ की भावना के विना कर सकती हैं। विभिन्न देशों द्वारा इस क्षेत्र में किये गये अनुभवों से पता चलता है कि कुछ कार्य स्थानीय संस्थायें अधिक अच्छी प्रकार से तथा कम व्यय के साथ कर सकती हैं, क्योंकि इन समस्याओं का निराकरण जनता की सेवा के लिए होता है और ये व्यापारिक कार्यों के बिना आर्थिक लाभ के करने का उद्देश्य सामने रखती हैं। उदाहरण के लिए आजकल अधिकतर नगरपालिकायें पानी की व्यवस्था करती हैं और बहुत से बिजली के कारखाने भी चलाती हैं। कुछ नगर-पालिकायें इनके अतिरिक्त दूध और मक्खन आदि सस्ते दामों पर उपलब्ध करने—के विचार से डेयरी की व्यवस्था करती हैं और सेवा में सस्ते आवागमन के साधन—ट्राम या बसें—भी चलती हैं।

राजनीतिक प्रशिक्षण (Political Training)—परन्तु स्थानीय स्वशासन का सबसे बड़ा लाभ उनके द्वारा होने वाली नागरिकों की राजनीतिक शिक्षा है। स्थानीय संस्थायें उत्तरदायी शासन को बड़े पैमाने पर चलाने के लिए प्रशिक्षण-केन्द्रों का कार्य करती हैं। प्रथम इनके सदस्य स्थानीय अथवा नगरपालिकाओं के कार्यों को करने की ट्रेनिंग पाते हैं और आगे चलकर वे बड़े क्षेत्र में उन्हीं कार्यों को अधिक सफलतापूर्वक कर सकते हैं। इस बात को उदाहरणों द्वारा अधिक अच्छी प्रकार से समझा जा सकता है। हमारे देश के चोटी के नेताओं स्व० जवाहरलाल नेहरू, स्व० जी० वी० मावलंकर, सरदार पटेल व नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि ने कई वर्षों तक अपनी नगरपालिकाओं में कार्य किया और उनके उस समय के अनुभवों व ट्रेनिंग ने उन्हें सर्वोच्च राजनीतिज्ञ बनने में बड़ा ही महत्वपूर्ण योग दिया। स्थानीय संस्थाओं के कारण नागरिकों की सार्वजनिक कार्यों में दिलचस्पी बनी रहती है। इनके कार्यों तथा निर्वाचन आदि से साधारण व्यक्ति भी व्यवस्थापिका की कार्य-प्रणाली व निर्वाचन-पद्धति को समझ जाते हैं। लॉस्की का कहना है कि जब तक कोई मनुष्य कम से कम ३ वर्ष तक किसी स्थानीय संस्था में काम न कर ले तब तक उसे राष्ट्रीय व्यवस्थापिका के लिए निर्वाचित होने का

अधिकार नहीं मिलना चाहिए । भावी विधायिकों (Legislators) व प्रतिनिधियों को अपने राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ अपने नगर या पड़ौस के जीवन से सम्बन्धित कार्यों में भाग लेकर करना चाहिए अर्थात् उन्हें नगर के स्वास्थ्य, सड़कों, नालियों और प्रकाश आदि की समस्याओं की ओर अपना ध्यान लगाना चाहिए। स्थानीय संस्थाओं में कार्य करने और नगरपालिकाओं में नेतृत्व पाने के उपरान्त व्यक्ति अधिक अच्छे नेता बन सकते हैं ।

जैसा आरम्भ में ही बताया गया है, **'प्रजातन्त्र शासन स्थानीय स्वशासन के आधार पर ही सफल हो सकता है ।'** इस कथन में सत्य का बहुत अंश है। यह सभी समझते हैं कि प्रजातन्त्र का संचालन जनता द्वारा होता है, अत: इसके लिए यह अति आवश्यक है कि जनता अथवा जनता के लिए प्रतिनिधियों को शासन-कला का आवश्यक एवं पर्याप्त ज्ञान हो । नागरिकों को यह ज्ञान स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के द्वारा प्राप्त होता है । प्रजातन्त्र शासन की सफलता के लिए जनता में नागरिक गुणों के विकास की परम आवश्यकता होती है। जिस देश की जनता में नागरिक गुणों का जितना अधिक विकास होता है, उतना ही प्रजातन्त्र उस देश में अधिक सफल होता है । प्रजातन्त्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि नागरिक सार्वजनिक कार्यों में सक्रिय दिलचस्पी लें। स्वशासन की संस्थाओं द्वारा नागरिक में सार्वजनिक कार्यों के प्रति क्रियाशील अभिरुचि पैदा होती है और वह उनका इस विषय में ज्ञान भी बढ़ाता है । सभी विद्वानों ने माना है कि स्थानीय स्वशासन की संस्थायें **राजनीतिक शिक्षा देने में प्राथमिक पाठशालाओं** का कार्य करती हैं । इन संस्थाओं के द्वारा नागरिकों को एक बड़ी संख्या में सार्वजनिक कार्यों के सम्पन्न करने में भाग लेने का अवसर मिलता है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में कार्य करने से नागरिकों में सहयोग और त्याग की भावना जागृत होती है, जो प्रजातन्त्र की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है । ब्राइस के अनुसार, 'स्थानीय स्वशासन के द्वारा प्रजातन्त्र का जो अभ्यास नागरिकों को होता है उससे उनमें सार्वजनिक कार्यों के प्रति सामान्य हित की भावना एवं रुचि पैदा होती है, तथा उनमें व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक कार्यों के प्रति यह कर्त्तव्य की भावना जागृत होती है कि कार्य ईमानदारी और कुशलता के साथ सम्पन्न किया जाए ।

स्थानीय स्वशासन से हानियाँ—कोई भी मानवी संस्था दोषहीन नहीं होती। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की स्थापना से अनेक लाभों के साथ-साथ कुछ हानियाँ भी होती हैं।[1] प्रथम कानूनों के एक जगह बनने और उनके एकरूप होने

1. 'Local self-government creates a spirit of localism and thus breeds a narrow outlook. Its method of trial and error also means much waste and incompetence as against the trained servants of the government. Further, locally elected officers are also prone to undesirable influences and they may always try to please their electors for their re-election.'
—*Ilyas Ahmad,*

से व्यय में कमी होती है, परन्तु इस व्यवस्था के अन्तर्गत सभी स्थानीय क्षेत्रों के लिए एक ही समस्या को विभिन्न प्रकार से हल किया जाता है और कानूनों के लागू करने में एकरूपता की कमी रहती है। दूसरे, स्थानीय स्वशासन के होने पर केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों के योग्य और अनुभवी कर्मचारियों की सेवाओं से नागरिक वंचित रहते हैं। उन जैसा ज्ञान व अनुभव नागरिकों के निर्वाचित प्रतिनिधियों में बहुधा नहीं होता। तीसरे, स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं पर शक्तिवान् व्यक्तियों या उनके समूहों का अवांछनीय प्रभाव भी पड़ता है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि अपने निर्वाचकों को सन्तुष्ट रखने के लिए गलत कार्य कर सकते हैं। चौथे, इन संस्थाओं में अपव्यय भी होता है, क्योंकि सदस्यगण अनेक त्रुटियाँ करते हैं या कभी-कभी गलत प्रयोग कर बैठते हैं। अन्त में, इन संस्थाओं का सबसे बड़ा दोष यह है कि इनके कारण **स्थानीयता की भावना और संकुचित दृष्टिकोण पैदा** होते हैं। परन्तु इन दोषों के होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि स्वशासन फिर भी स्वशासन ही है और स्वशासन से बढ़कर कोई अन्य शासन हो नहीं सकता। अस्तु यह सदैव ही अच्छा है कि नागरिकों को स्वशासन का अधिक से अधिक अवसर मिले।

२. स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का संगठन

विदेशों में स्थानीय स्वशासन की संस्थायें—स्थानीय शासन के लिए ग्रेट ब्रिटेन काउन्टि बॉरो (County Borough) और प्रशासनिक काउन्टि (Administrative Counties) में बंटा है। प्रशासनिक काउन्टि तीन प्रकार के जिलों—म्युनिसिपल बॉरो, शहरी जिलों और ग्रामीण जिलों में विभाजित हैं। ग्रामीण जिले में स्वशासन की सबसे छोटी इकाई 'पैरिश' है, जो भारत की गाँव पंचायत के समान है प्रत्येक स्थानीय निकाय में एक जनता द्वारा निर्वाचित परिषद् होती है, जो अपने अधीन क्षेत्र के लिए आवश्यक कार्यक्रम व उपनियम आदि बनाती है। ये परिषदें छोटी-छोटी समितियों का प्रयोग करती हैं और इनके अधीन विभिन्न कार्यों के अनेक अधिकारी व कर्मचारी होते हैं। ये संस्थायें स्थानीय निवासियों या क्षेत्र की जनता की सुविधाओं के प्रायः सभी कार्य करती हैं। लन्दन के लिए स्थानीय स्वशासन की विशेष व्यवस्था है। ब्रिटेन की संस्थायें अपना कार्य काफी सफलतापूर्वक करती हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसी संस्थाओं के विकास के अतिरिक्त तीन प्रमुख प्रकार की संस्थाओं का विकास हुआ है। कुछ नगरों में कौन्सिल और मेयर पद्धति का स्थानीय शासन है; कुछ में कमीशन योजना (Commission plan) के अनुसार शासन होता है, अर्थात् जनता कुछ कमिश्नरों को चुनती है, जो पद में समान होते हैं, एक साथ मिलकर परिषद् की तरह कार्य करते हैं और प्रत्येक कुछ स्थानीय विभागों या सेवाओं का प्रमुख होता है। कमिश्नरों को जनता द्वारा चुना जाता है;

उनकी अवधि २ या ४ वर्ष होती है और इन्हें उनकी सेवा के लिए वेतन दिया जाता है। उनमें एक सभापति का कार्य करता है; उसे चेयरमैन या मेयर कहते हैं। साधारणतया कमीशन के पाँच सदस्य होते हैं। उनमें कार्यों का वितरण या तो प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा होता है या कमीशन के निर्णयानुसार मेयर द्वारा। या यह एक अति सरल पद्धति है, जिसमें कमिश्नरों की सत्ता एक दूसरे के बराबर होती है।

कुछ नगरों में 'कौन्सिल मैनेजर' (Council Manager Plan) योजना को अपनाया गया है। इनमें जनता एक परिषद् को चुनती है और परिषद् एक कुशल व्यक्ति को प्रशासन के प्रबन्धक रूप में नियुक्त करता है। कौन्सिल-मैनेजर योजना का तेजी से विस्तार हो रहा है। इस पद्धति में विधायी कार्य कौन्सिल करती है और कार्यकारी कार्य मैनेजर द्वारा किया जाता है। नगर मैनेजर की नियुक्ति अवधि व कार्य करने की दशायें नगर-नगर में भिन्न होती हैं। इस पद्धति को व्यावसायिक संगठन के नमूने पर आधारित किया गया है। कौन्सिल बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के स्थान पर होती है और नगर मैनेजर कम्पनी के जनरल मैनेजर के समान होता है। इसमें व्यवसाय जैसी कुशलता प्राप्त की जा सकती है। अमरीका में भी स्वशासन की संस्थाओं को कार्य करने की काफी स्वतन्त्रता है और वे भी अपने स्थान या क्षेत्र के निवासियों के लिए सभी प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था करती हैं। फ्रांस में स्थानीय शासन की संस्थाओं पर केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकार का अत्यधिक नियन्त्रण है, अतः उन्हें स्वशासित संस्थायें नहीं कहा जा सकता। सम्पूर्ण देश प्रान्तों में और प्रान्त जिलों में बंटे हैं। जिले नगरों व ग्रामीण क्षेत्रों में बंटे हैं, जो कम्यून कहलाते हैं।

भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का संगठन (Organisation)—इनमें से प्रत्येक में एक साधारण सभा होती है, जिसके सदस्य नागरिकों द्वारा निश्चित अवधि के लिए चुने जाते हैं। ये सदस्य कहीं-कहीं केवल कर देने वालों या विशेष योग्यता रखने वाले नागरिकों के द्वारा चुने जाते थे, किन्तु अब सभी राज्यों में इनका चुनाव सभी वयस्क नागरिकों द्वारा किया जाता है। इनके कुछ सदस्यों को राज्य के अधिकारियों की ओर से नामजद भी किया जाता है, किन्तु नामजदगी की व्यवस्था को वर्तमान युग में अप्रजातान्त्रिक समझा जाता है। भारत की नगर-पालिकाओं और अन्य स्थानीय संस्थाओं के अधिकांश सदस्य वयस्क नागरिकों द्वारा चुने जाते हैं। पहले ये चुनाव साम्प्रदायिक आधार पर होते थे, किन्तु अब संयुक्त पद्धति द्वारा होते हैं। इन संस्थाओं के निर्वाचित सदस्य अपनी सभाओं के बहुमत से कुछ सदस्यों को विनियुक्त (co-opt) करते हैं। यह प्रणाली नामजदगी से अच्छी है, क्योंकि इसके द्वारा जनता के प्रतिनिधि योग्य, अनुभवी व विशेष ज्ञान-प्राप्त व्यक्तियों को जन-सेवा के लिए अपने साथ मिला लेते हैं।

साधारण सभा एक प्रकार से विधान सभा होती है। यही सभा स्थानीय शासन के सम्बन्ध में तथा नीति सम्बन्धी प्रस्ताव पास करती है, आय-व्यय के हिसाब

(वजट) को स्वीकृत करती है और स्थानीय संस्था के सभी अधिकारियों व कर्मचारियों के कार्यो पर नियन्त्रण व देख-रेख के अधिकार रखती है। चूंकि इसके सदस्यों की संख्या काफी बड़ी होती है अतः यह सभा अपना बहुत-सा कार्य समितियों द्वारा करती है। ये समितियाँ शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी, रोशनी, सार्वजनिक निर्माण कार्य अर्थ आदि के लिए बनाई जाती हैं। साधारणतया सभा की माह में एक बैठक होती है, जिस पर चेयरमैन या उसकी अनुपस्थिति में वाइस-चेयरमैन सभापति का पद ग्रहण करता है। चेयरमैन स्थानीय संस्था का अध्यक्ष अर्थात् सबसे बड़ा अधिकारी होता है। साधारणतया अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष रीति से होता है, वह सभा के सदस्यों द्वारा चुना जाता है।

स्थानीय संस्थाओं का प्रतिदिन का कार्य **चेयरमैन** विभिन्न समितियों के अध्यक्षों के अतिरिक्त अनेक अधिकारियों व कर्मचारियों द्वारा होता है। वास्तव में, उच्च अधिकारीगण (निर्वाचित तथा वेतनभोगी) सामूहिक रूप से इनकी **कार्यपालिका** होती है। प्रत्येक संस्था का अपना कार्यालय होता है, जो बहुत से विभागों में बंटा रहता है। इसमें अनेक सुपरिन्टेन्डेंट, इंसपेक्टर, अन्य कर्मचारी, क्लर्क और चपरासी आदि होते हैं। उत्तर प्रदेश में बड़ी नगरपालिकाओं के प्रमुख वेतनभोगी अधिकारी को एक्जीक्यूटिव ऑफीसर कहते हैं और छोटी नगरपालिकाओं में उसे सेक्रेटरी कहते हैं। प्रत्येक जिला परिषद् में उसके अनुरूप अधिकारी सेक्रेटरी ही कहलाता है। अधिकांश उच्च अधिकारियों की नियुक्ति या तो राज्य सरकार द्वारा होती है अथवा उसके द्वारा निर्धारित योग्यताओं और शर्तों वाले व्यक्तियों की नियुक्ति इनकी साधारण सभाओं द्वारा ही की जाती है। छोटे कर्मचारियों की नियुक्ति चेयरमैन, समितियों के अध्यक्षों या एक्जीक्यूटिव आफीसर द्वारा की जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रत्येक स्थानीय संस्था के कार्य संचालन के लिए एक साधारण सभा (विधायिका) और अनेक कार्यकारी अधिकारी (कार्यपालिका) होते हैं।

राज्य का नियन्त्रण—इसके संगठन से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि **इन पर राज्य सरकार का नियन्त्रण किस प्रकार से हो** अर्थात् स्थानीय संस्थाओं को केन्द्रीय सरकार से बिल्कुल स्वतन्त्र होना चाहिए या पूर्णरूप से उसके अधीन रहना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें कई बातों पर विचार करना आवश्यक है। यह बात स्पष्ट है कि स्थानीय संस्थाओं को पूर्ण अधिकार अथवा स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती। जनहित में राज्य की ओर से उनके ऊपर कुछ नियन्त्रण अवश्य होना चाहिए। किसी भी स्थानीय संस्था को सफाई, प्रारम्भिक-शिक्षा, आय-व्यय व स्वास्थ्य आदि के विषयों में स्वतन्त्र नहीं छोड़ा जा सकता। यदि कोई स्थानीय संस्था प्लेग, चेचक जैसे संक्रामक रोग को फैलने से रोकने के लिए तुरन्त उचित कार्यवाही नहीं करती तो ऐसी बीमारियाँ अन्य क्षेत्रों में फैलकर

बहुत से व्यक्तियों की मृत्यु का कारण बन सकती हैं। इसलिए इन संस्थाओं के कार्यों पर सरकार को नियन्त्रण व देख-रेख के अधिकार अवश्य होने चाहियें। वास्तव में इन संस्थाओं का संगठन और कार्य-प्रणाली व इनके अधिकार राज्य अथवा प्रान्त की सरकार के कानून द्वारा निर्धारित होते हैं। **यदि ये संस्थायें अपने कर्त्तव्यों का ठीक प्रकार से पालन नहीं करतीं तो सरकार इन्हें ऐसा करने के लिए विवश कर सकती है।** सरकार द्वारा दी गई चेतावनी व आदेशों का यदि ये संस्थायें पालन न करें तो सरकार इनके कार्य में हस्तक्षेप कर सकती है; यहाँ तक कि आवश्यकता पड़ने पर इन्हें भंग भी किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप इनके कार्य निर्वाचित प्रतिनिधियों के बजाए सरकार द्वारा नियुक्त प्रशासक कर सकता है। यह उचित ही है कि राज्य सरकार अधिक व्यापक हित में इन संस्थाओं के कार्यों की देख-रेख करे और उन पर काफी नियन्त्रण रखे।

परन्तु राज्य सरकार को इनके कार्यों में अधिक और निरन्तर हस्तक्षेप करना भी उचित नहीं है। ऐसा होने पर ये संस्थायें अपने उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन हो जायेंगी। राज्य सरकार को तभी हस्तक्षेप करना चाहिए जब इनकी लापरवाही या कुप्रबन्ध इतना बढ़ जाये कि जनहित में हस्तक्षेप करना आवश्यक हो जाए। साधारणतया राज्य सरकार को इनके कार्यों की देख-रेख व आय-व्यय की जांच के अधिकार होने चाहिएँ। **राज्य सरकार को उन्हें आवश्यक परामर्श देने के लिए अनुभवी और योग्य अधिकारी भी रखने चाहिएँ।** यदि इनके अधिकारी भ्रष्टाचारी अयोग्य और लापरवाह हों तो सरकार को उन्हें हटाने की शक्ति होनी चाहिए और यदि कोई स्थानीय संस्था अपने कर्तव्यों का पालन न करे और सरकार की चेतावनी व आदेश को भी न माने तो सरकार को इन्हें भंग करके नये चुनाव कराने का अधिकार भी होना उचित प्रतीत होता है। राज्य सरकार को चाहिए कि इन संस्थाओं के आय और व्यय की कड़ी जांच कराये, जिससे ये संस्थायें अपव्यय और भ्रष्टाचार से दूर रहें। सरकारी अधिकारी इन्हें उपयोगी सूचना और परामर्श दे सकते हैं। इनके कार्यों की देख-रेख करने व उचित परामर्श देने के लिए सरकार की ओर से योग्य और अनुभवी इन्सपेक्टर आदि होने चाहियें। शिक्षा, स्वास्थ्य और सड़कों की उन्नति के लिए राज्य सरकार की ओर से इन संस्थाओं को काफी आर्थिक सहायता और ऋण आदि दिए जाने चाहियें।

सदस्यों आदि की अर्हतायें (Qualification)—इन संस्थाओं में योग्य और अनुभवी व्यक्तियों को ही कार्य करने का अवसर मिले तो बहुत अच्छा है। इनके सदस्यों के निर्वाचन के लिए शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता की शर्त लगाई जा सकती है। परन्तु जब संसद व राज्य के विधान-मण्डल के सदस्यों के लिए भी कोई शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता की शर्त नहीं है, तो यह अनुचित प्रतीत होता है कि इन सदस्यों के लिए ऐसी योग्यता की शर्त लगाई जाए। वास्तव में इनके सदस्यों का निर्वाचन नागरिकों की बुद्धिमता पर छोड़ना ही उचित है। अस्तु नागरिकों को चाहिए कि

वे निर्वाचन के समय सदस्यों में कुछ गुणों के ऊपर विशेष ध्यान दें। उनके सदस्य शिक्षित, योग्य व अनुभवी हों तो बहुत ही अच्छा रहे। उन्हें सार्वजनिक कार्यों का ज्ञान और उनमें दिलचस्पी होनी चाहिए। साधारण दिलचस्पी ही काफी नहीं, वरन् उनमें समाज सेवा के लिए लगन होनी चाहिए। उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी होनी चाहिए, जिससे वे भ्रष्टाचार से दूर रह सकें। उनके पास खाली समय होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त उनका दृष्टिकोण संकुचित नहीं होना चाहिए। जात-बिरादरी अथवा सम्प्रदाय और धर्म के संकुचित दायरों से जो व्यक्ति ऊपर उठ सकें, इन्हें ही इनका योग्य सदस्य समझा जाए।

प्रत्येक देश में ये संस्थायें अपने ढंग की होती हैं। फिर भी इन संस्थाओं को साधारणतया दो वर्गों में बाँटा जाता है—(१) शहरी (Urban) और (२) ग्रामीण (Rural)। इस भेद को एक उदाहरण की सहायता से आसानी से समझा जा सकता है। उत्तर प्रदेश में जिला परिषदें और गाँव पंचायतें ग्रामीण क्षेत्रों की संस्थायें हैं और नगरपालिकायें शहरी क्षेत्र की संस्थायें हैं। उत्तर प्रदेश के छोटे कस्बों में नोटिफाइड एरिया या टाउन एरिया कमेटियाँ हैं, जो अपने संगठन और कार्यों में नगरपालिकाओं के समान हैं। हमारे देश में विशाल नगरों—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपुर आदि बड़े शहरों में निगम (Corporation) हैं, जो नगर-पालिकाओं से अपने अधिकारों में बड़े होते हैं। बड़े-बड़े बन्दरगाहों में बन्दरगाह के क्षेत्र का प्रबन्ध करने के लिए पोर्ट-ट्रस्ट होते हैं। जिन नगरों में सैनिक छावनियाँ हैं, वहाँ पर छावनी बोर्ड हैं। इनके अतिरिक्त बड़े-बड़े शहरों में इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट नाम की संस्थायें भी होती हैं।

३. स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के कार्य

स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के संगठन की विस्तृत विवेचना के बाद उनके कार्यों का विवेचन किया जाना चाहिए। साधारणतया अधिकतर लेखकों ने इनके कार्यों को, राज्य के कार्यों की तरह, दो वर्गों में बाँटा है—**अनिवार्य** (Compulsory) और **ऐच्छिक** (Optional)। विभिन्न राज्यों में इन कार्यों की सूची के विषय में अन्तर पाए जाते हैं फिर भी इनमें काफी एकरूपता पाई जाती है।

मुख्य अनिवार्य कार्य संक्षेप में ये होते हैं—सड़कों और रास्तों का निर्माण व मरम्मत, सड़कों और गलियों में रोशनी की व्यवस्था, पीने के पानी की व्यवस्था, सफाई, गन्दी बस्तियों को हटाकर स्वच्छ और स्वस्थ बस्तियों का निर्माण, खतरनाक व्यापार की रोकथाम, खतरनाक मकानों और इमारतों को ढाना, आग से रक्षा, मुर्दाघाट व पशु-वध घरों की व्यवस्था, प्रारम्भिक शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए अस्पताल खोलना व बीमारियों को फैलने से रोकने के उपाय करना इत्यादि।

ऐच्छिक कार्य—सार्वजनिक बगीचों, पार्कों, पुस्तकालयों, वाचनालयों का निर्माण व संचालन, अजायबघर व चिड़ियाघर खोलना, सड़कों के दोनों ओर वृक्ष लगवाना, प्रारम्भिक शिक्षा से ऊँची शिक्षा की व्यवस्था करना, नुमायशों और मेलों का लगवाना, आरामघर, स्नानालय व सभा भवन आदि चलाना, मनोरन्जन व आमोद-प्रमोद के साधन जुटाना और म्युनिसिपल व्यापार करना अर्थात् नागरिकों की सुविधा के लिए बाजार खोलना, ट्राम या बसें चलाना, डेयरी खोलना इत्यादि। हम उनके कार्यों को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्न समूहों में बाँट सकते हैं :—

सार्वजनिक सुरक्षा—फायर ब्रिगेड रखना, हिंसक और विषैले जन्तुओं को नष्ट करना, सड़कों पर तथा गलियों में प्रकाश का प्रबन्ध करना। इंगलैंड में ये ही संस्थाएँ पुलिस की व्यवस्था करती हैं।

सार्वजनिक स्वास्थ्य (अ) रोगों की रोकथाम करना—शुद्ध पानी की व्यवस्था, सड़कों और गलियों की सफाई, तालाबों और गड्ढों का भरवाना, गृह-निर्माण के विषय में नियम बनाना, घरों की आन्तरिक सफाई का प्रबन्ध, रोग फैलाने वाले कीड़ों (मक्खी, मच्छर, पिस्सू और चूहों को नष्ट करना), सड़े व गले फलों और खाद्य-पदार्थों की बिक्री को रोकना, टीके लगवाना आदि। **(ब) रोगों की चिकित्सा**—चिकित्सालय, औषधालय, शिशु-गृह व मातृ-गृह (Maternity Homes) आदि की व्यवस्था करना।

शिक्षा—प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था करना, यथासम्भव माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना, अध्ययन-केन्द्र, पुस्तकालय, वाचनालय आदि अजायबघर आदि की स्थापना और उनका संचालन करना।

सार्वजनिक सुविधा के लिए, सड़कों, पुलों, ट्रामों या बसों की व्यवस्था करना, सार्वजनिक स्नान-गृह, घाट, तैरने के तालाब, पानी के नल, पार्क, उद्यान, क्रीड़ा-स्थल तथा मनोरंजन के साधन (सिनेमा, नाटक, सर्कस) आदि की व्यवस्था करना।

सार्वजनिक सुधार—निवास-स्थलों को सुन्दर एवं स्वस्थ बनाना, नगर-पुनः निर्माण योजना (टाउन-प्लानिंग), जलप्रवाह (ड्रेनेज) में सुधार करके गन्दगी को दूर करना, छायादार व फल वाले वृक्ष लगाना।

सार्वजनिक लाभ के लिए—नागरिक व्यापार (Municipal Trading) अर्थात् वे कार्य जिनके द्वारा नागरिकों को नित्य-प्रति के उपयोग की शुद्ध एवं सस्ती वस्तुयें प्राप्त हो सकती हैं। विदेशों में स्थानीय संस्थायें नागरिकों के लिए दूध, मक्खन, रोटी, ईंधन आदि का व्यापार करती हैं और साथ में बिजली, गैस, ठण्डे व गर्म पानी की व्यवस्था भी करती हैं। परन्तु हमारे देश के बड़े-बड़े नगरों की नगरपालिकायें भी अभी ये कार्य नहीं करतीं। वास्तव में, हमारे देश की संस्थाओं में अनेक

कमियाँ हैं किन्तु राज्य सरकारें उनके संगठन व कार्य-प्रणाली सम्बन्धी दोनों को दूर करने के प्रयत्न कर रही हैं।

४. भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सभी राज्यों में पंचायतों की स्थापना का कार्य-क्रम तेजी से बढ़ा। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास कार्यक्रम अपनाया गया और दूसरी योजना के काल में उसे अधिक क्षेत्रों तक विस्तृत किया गया। साथ में एक नया कार्यक्रम राष्ट्रीय विस्तार सेवा (National Extension Service) के नाम से चालू किया गया। पंचायतों के संगठन और इन दोनों कार्यक्रमों का उद्देश्य गाँवों में एक नये जीवन का संचार करना था। उन कार्यक्रमों की प्रगति का अध्ययन करने और ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु नये सुझाव देने के लिए भारत सरकार ने मेहता अध्ययन समूह (Mehta Study Team) नियुक्त किया था। उस समूह ने अपनी रिपोर्ट में सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण *(Democratic Decentralization) के सम्बन्ध में की। इस योजना को नीचे के* स्तरों पर शासन के कार्यों में जनता को सक्रिय भाग दिलाने के लिए एक महत्वपूर्ण माध्यम अथवा साधन के रूप में अपनाया गया।

इस कार्यक्रम की धारणा में ये तत्व सम्मिलित हैं:—(१) इसका उद्देश्य शासन के कार्यों में जनता और उसके निर्वाचित प्रतिनिधियों को अधिक भाग दिलाना तथा सरकार व जनता के बीच अधिक निकट सम्पर्क व सहयोग कायम करना है। (२) सरकार ऊपर के स्तरों से नीचे के स्तरों की संस्थाओं को अधिक शक्तियाँ प्रदान करेगी। (३) नीचे के स्तरों को प्रदान की गई शक्तियों के क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण की संस्थाओं को नीति-निर्धारण व कार्यक्रम के क्षेत्रों में राजनीतिक निर्णय करने तथा उन्हें कार्यान्वित करने की स्वायत्तता। (४) इस प्रकार विकेन्द्रीकृत सत्ता का प्रयोग जनता स्वयं करे या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा करवाये।

इस योजना के अन्तर्गत अधिकतर राज्यों में जिले के स्तर पर बनी जिला बोर्डों का उन्मूलन करके उनके स्थान पर नई संस्थायें बनाई गई हैं, जिन्हें जिला परिषद् कहा गया है। विकास खण्ड के स्तर पर प्रत्येक विकास खण्ड के लिए क्षेत्रीय समिति बनाई गई है। सबसे नीचे के धरातल पर (गाँवों के स्तर पर) गाँव पंचायतें स्थापित की गई हैं। इस प्रकार लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना के अन्तर्गत त्रि-स्तरीय (three tier) स्थानीय स्वशासन की संस्थायें स्थापित हुई हैं। अध्ययन समूह ने केवल स्वशासन की संस्थाओं के संगठन में ही महत्वपूर्ण परिवतनों का सुझाव नहीं दिया वरन् उनके कार्यक्षेत्र को अधिक विस्तृत बनाने और तीनों स्तरों की संस्थाओं के बीच अधिक अच्छा समन्वय कायम करने के सुझाव भी दिए। राजस्थान सबसे पहला राज्य था जिसने इस योजना को लागू किया; इसका प्रारम्भ राजस्थान में २ अक्तूबर १६५६ को हुआ। वहाँ पर गाँव पंचायतों के ऊपर खण्ड के स्तर पर पंचायत समितियाँ बनाई गई हैं। उत्तर-प्रदेश में पंचायत समितियों

के स्थान पर क्षेत्रीय समितियाँ बनाई गई हैं। प्रत्येक राज्य की संस्थाओं में रचना व कार्य-क्षेत्र की दृष्टि से साधारण अन्तर तथा अपनी विशेषतायें हैं, किन्तु योजना की मुख्य बातें प्रायः समान हैं।

प्रश्न

१. स्थानीय स्वशासन के महत्व पर एक निबन्ध लिखिये।
२. स्थानीय स्वशासन की विभिन्न प्रकार की संस्थाओं का, संक्षेप में वर्णन कीजिए।
३. स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के कार्यों का विवेचन कीजिए।
४. स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के संगठन के बारे में आप क्या जानते हैं ?
५. भारत में प्रजातंत्रात्मक विकेन्द्रीकरण क्या है ?

१०. राजनीतिक दल और दबाव गुट

१. राजनीतिक दल

राजनीतिक दल की व्याख्या—राजनीतिक दलों का होना आज के सार्वजनिक जीवन की एक मुख्य विशेषता है। दलीय पद्धति वर्तमान प्रजातन्त्र के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है। राजनीतिक दलों के विषय में सर्वप्रथम यह प्रश्न उठता है कि राजनीतिक दल किसे कहते हैं ? राजनीतिक दल नागरिकों के वे समूह होते हैं जो अनेक सार्वजनिक प्रश्नों के विषय में एक रूप से सोचते हैं और जिनके सदस्य अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के बारे में एक दूसरे से सहमत होते हैं। **गेलेट** के अनुसार राजनीतिक दल नागरिकों का वह समूह है, जो न्यूनाधिक संगठित होता है, जिसके सदस्य एक राजनीतिक इकाई की तरह कार्य करते हैं, और जिनका उद्देश्य अपने मत की शक्ति द्वारा शासन पर नियन्त्रण पाना तथा अपनी सामान्य नीति को कार्य रूप में परिणत करना होता है। राजनीतिक दल जनमत के निर्माण और अभिव्यक्ति का अति महत्वपूर्ण साधन होता है। यदि नागरिकों का कोई समूह किसी सुधार या कानून विशेष में रुचि रखता है तो उसे राजनीतिक दल नहीं कह सकते। यद्यपि एक दल के सदस्य किसी प्रश्न के ऊपर मतभेद रख सकते हैं या दल में कई गुट हो सकते हैं। फिर भी दल के सदस्यों में कुछ आधारभूत बातों या सिद्धान्तों के बारे में मतैक्य होता है और वे संगठित रूप से सरकार के अंगों पर नियन्त्रण पाने की इच्छा रखते हैं।[1]

ऑस्टिन रेनी (Austin Ranney) ने लिखा है : 'राजनीति आवश्यक रूप में मानव समूह के बीच शासन की नीतियों को प्रभावित करने के लिए एक संघर्ष है। राजनीतिक दल एक प्रकार के राजनीतिक समूह हैं। अत. राजनीतिक दल एक स्वायत्त, संगठित ऐसा समूह है जो निर्वाचकों के लिए उम्मीदवारों की नामजदगी करता है और चुनाव संघर्ष में इस आशा से भाग लेता है कि अन्त में वह सरकार के सदस्यों और नीतियों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेगा।' **एस० न्यूमेन** ने राजनीतिक दल की और भी अधिक विस्तृत परिभाषा इस प्रकार की है : राजनीतिक दल समाज के उन सक्रिय राजनीतिक व्यक्तियों का वाणियुक्त संगठन (articulate organisation) है जिनका काम शासन की शक्ति पर नियन्त्रण पाना होता है और जो भिन्न मत रखने वाले समूह या समूहों से जनता का समर्थन पाने के लिए प्रतियोगिता करता है। इस प्रकार, यह वह माध्यम या, की कड़ी है जो सामाजिक शक्तियों और राजनीतिक विचारधाराओं को शासन की सरकारी संस्थाओं से

1. 'A political party may thus be defined as an organised group of citizens who profess to share the same political views and who, acting as a political unit try to control the government.'
—*R. N. Gilchrist,* Political Science, p. 349.

जोड़ता है और उन्हें बड़े राजनीतिक समुदाय (राज्य) के भीतर राजनीतिक कार्यों से सम्बन्धित कर देता है।'[1] मेकाइवर के शब्दों में 'राजनीतिक दल एक संघ है जो किसी सिद्धान्त या नीति के समर्थन संगठित किया जाता है। यह संवैधानिक उपायों द्वारा उस सिद्धान्त या नीति को शासन का निर्धारक बनाने का प्रयत्न करता है।'[2]

राजनीतिक दलों की उत्पत्ति—आज प्रजातन्त्र राज्य में ही नहीं वरन् प्रायः अन्य सभी राज्यों में राजनीतिक दल पाये जाते हैं। राजनीतिक दल की उत्पत्ति प्रजातन्त्र की स्थापना के बाद नहीं हुई। यथार्थ में राजनीतिक दल प्रजातन्त्र शासन प्रणाली के पूर्व भी पाये जाते थे। इंगलैंड में केवेलियर और राउण्डहेड तथा उनके उत्तराधिकारी ह्विग और टोरी सत्रहवीं शताब्दी में भी थे, यद्यपि उस समय इंगलैंड में स्वेच्छाचारी राज्य का बोलबोला था। दलों की उत्पत्ति, वास्तव में स्वाभाविक है। जब तक मनुष्यों को सोचने की स्वतन्त्रता है, दलों की उत्पत्ति होना अनिवार्य है। विचारों की स्वतन्त्रता से मतों में भेद उत्पन्न होता है और विभिन्न मतों के आधार पर ही समुदाय विभिन्न दलों में बंट जाता है। दलों की उत्पत्ति के विभिन्न कारण होते हैं। सर्वप्रथम, मनुष्यों के स्वभाव में अन्तर होता है, कुछ स्वभावतः अनुदार होते हैं और दूसरे शीघ्र-परिवर्तन के समर्थक व उदार अथवा प्रगतिशील होते हैं। इस आधार पर अनुदार दल (conservatives) तथा उदार दल (liberals) का निर्माण होता है।

दलों के निर्माण के अन्य कारणों में विभिन्न प्रकार के धर्म जाति, भाषा संस्कृति आदि के भेद मुख्य हैं। कई धर्म अथवा जातियों वाले देशों के धर्म व जाति के आधार पर बहुत से दलों का निर्माण होता है। भारत में स्वतन्त्रता के पूर्व कांग्रेस को छोड़कर अधिकतर दलों के आधार यही थे। परन्तु आजकल दलों के निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण आधार आर्थिक या राष्ट्रीय-धन का असमान वितरण है। यथार्थ में प्राचीन काल से ही प्रत्येक देश में धनिक वर्ग और निर्धनों का भेद चला आ रहा है; धनिक वर्ग अपने स्वार्थों की रक्षा के हित में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं चाहता। इसके विपरीत निर्धन व्यक्ति क्रान्ति का सदैव ही स्वागत करते हैं, क्योंकि उन्हें यह विश्वास रहता है कि क्रान्ति के फलस्वरूप उनकी आर्थिक दशा में अवश्य ही सुधार होगा। **जो शासन के ऊपर नियन्त्रण पाना चाहते हैं उन्हें राजनीतिक दल कहते हैं।** साधारणतया सभी प्रकार के दल शीघ्र ही राजनीतिक दल बन जाते हैं।

1. *S. Newmann, (ed),* Modern Political Parties, p. 396.
2. 'A political party is an association organized in support of some principles or policy which by constitutional means it edeavours, to make the determinant of government.'

   —*R. M. MacIver,* The Modern State, p. 396.

पश्चिमी यूरोप में दलीय इतिहास संवैधानिक और प्रतिनिधि शासन के विकास के एक पहलू का दिग्दर्शन कराता है। आधुनिक प्रजातन्त्रात्मक दल दो प्रकार के महत्वपूर्ण राजनीतिक विकास का परिणाम है : प्रथम, राजाओं की निरंकुश सत्ता के सीमित किये जाने और दूसरे, जनता के प्रायः सभी वयस्कों के लिए मताधिकार के विस्तार का। जब तक राजा के हाथों में निरंकुश सत्ता केन्द्रित रही और जनता को किसी प्रकार का मताधिकार प्राप्त न था, दलीय कार्य व्यर्थ ही नहीं वरन् राजद्रोहात्मक समझे जाते थे। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि दलों की ऐतिहासिक उत्पत्ति की जड़ निम्नलिखित दो बातों में बड़ी है—(१) विधान-मण्डल द्वारा राजाओं के परमाधिकारों पर सीमाएँ लगाने के लिए किये गये संघर्ष में। (२) विस्तार पूर्ण निर्वाचन-मण्डल के भीतर ऐसे समूहों के विकास में जिन्होंने उस संघर्ष में किसी एक का समर्थन किया अथवा अपने हितों को मनवाने के लिए मांगें रखीं और उनको पूरा कराने के लिए प्रयत्न किया।[1]

राजनीतिक दल और प्रजातन्त्र—राजनीतिक दलों के कार्यों और उनके अस्तित्व के कारणों के विश्लेषण से पता चलता है कि राजनीतिक दलों और प्रजातन्त्र में गहरा सम्बन्ध है। अत्याचारी तथा निरंकुश शासन में जहाँ जनता की शासन में कोई कानूनी आवाज नहीं होती, जनता राजनीतिक कार्यक्रम अथवा परिवर्तनों के वारे में अपनी इच्छा को हिंसापूर्ण उपायों—राजनीतिक कत्ल व विद्रोह द्वारा व्यक्त करती है। राजनीतिक दलों का संगठन प्रजातन्त्र में सबसे अधिक सुदृढ़ होता है, क्योंकि ऐसे शासन में विचारों की स्वतन्त्रतायें निरंकुश राजतन्त्र अथवा तानाशाही में जनता को नहीं मिली होतीं; उन राज्यों में सरकार का विरोध गुप्त उपायों द्वारा किया जाता है। परन्तु प्रजातन्त्र का निचोड़ ही इस बात में है कि शासन जनता की इच्छानुसार हो। प्रजातन्त्र में दल उसी समय से आवश्यक और अवश्यम्भावी हो जाते हैं, जब राज्य द्वारा नीति अपनाने के लिए जनमत जानने का प्रयत्न किया जाता है।[2] इसी कारण जनता को संगठित होने तथा अमने मतों का प्रचार जानने के लिये प्रजातन्त्र में विशेष सुविधायें प्राप्त होती हैं।

जिन राज्यों में संसदात्मक शासन प्रणाली होती है, वहाँ तो राजनीतिक दलों का होना अति आवश्यक है। ऐसी शासन प्रणाली में बहुमत दल का मन्त्रि-मण्डल होता है और अन्य दल विरोधी पक्ष बनाते हैं। प्रजातन्त्र में राजनीतिक दलों की उत्पत्ति या नये समूहों का निर्माण महत्वपूर्ण प्रश्नों के अभाव अथवा अन्य प्रकार के स्वाभाविक मतभेदों के न होने पर भी कायम रहता है। अधिकतर राज्यों में

1. '*Rodee, et al*, Introduction to Political Science, p. 395.
2. 'Parties are in fact both necessary and inevitable from the moment when public opinion is consulted as to the policy to be followed.'
—*R. H. Soltau*, An Introduction to Politics, p. 199.

राजनीतिक दल शासन-तन्त्र का कानूनी अंग तो नहीं होते, परन्तु वे यथार्थ शासन-तन्त्र के महत्वपूर्ण अंग अवश्य होते हैं। सं० रा० अमरीका में राजनीतिक दल शासन-तंत्र के महत्वपूर्ण अंग हैं, यद्यपि उनके निर्माण तथा वर्तमान संगठन के आधार कोई राजनीतिक सिद्धान्त नहीं हैं। ब्राइस के अनुसार प्रतिनिधि शासन विना दलों के सम्भव नहीं है। कोई भी बड़ा और स्वतन्त्र देश उनके बिना नहीं रहा है। किसी ने अभी तक यह नहीं दिखाया है कि उनके बिना प्रतिनिधि शासन कैसे चल सकता है। असंख्य मतदाताओं से उत्पन्न अराजक स्थिति में दल व्यवस्था उत्पन्न करते हैं; वे कुछ बुराइयों को नष्ट और अन्य को कम कर देते हैं।

राजनीतिक दल का रूप व संगठन—प्रत्येक दल के अपने उद्देश्य, नीति तथा कार्यक्रम होते हैं जिनमें समय और आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं। प्रत्येक दल अपनी नीति और कार्यक्रम को निर्धारित करता है, जिसे सं० रा० अमरीका में 'प्लेटफार्म' कहा जाता है। दल की नीति और कार्यक्रम का निर्धारण विशेष रूप से निर्वाचनों के पूर्व किया जाता है। इस हेतु चुनाव में भाग लेने वाला प्रत्येक दल अपना घोषणा-पत्र (manifesto) निकालता है जिस दल के उम्मीदवार बहुसंख्या में चुने जाते हैं, उसके विषय में यह कहा जा सकता है कि जनता ने उस दल की नीति और कार्यक्रम को अपनाया है। प्रत्येक दल के सदस्यों की संख्या छोटी या बड़ी होती है। सदस्यों को सदस्यता का फार्म भरना होता है और कुछ मासिक अथवा वार्षिक चन्दा भी देना होता है। प्रत्येक दल यही प्रयत्न करता है कि उसके सदस्यों तथा समर्थकों की संख्या बढ़ती रहे। राजनीतिक दल का उद्देश्य शासन पर नियन्त्रण पाना होता है अर्थात् विधायिकाओं के निर्वाचन में बहुमत प्राप्त करके मन्त्रि-मण्डल बनाना उसका मुख्य उद्देश्य होता है। अन्य दल जो अल्पमत में रहते हैं विधायिका में विरोधी दल का कार्य करते हैं। सत्ताधारी तथा विरोधी, दोनों ही प्रकार के दल शासन मे महत्वपूर्ण भाग रखते हैं।

सॉल्टो के इस कथन में सत्य का बड़ा अंश है कि दल, विशेष रूप से संगठित बहुमत दल, जिसके हाथ में सत्ता रहती है, राज्य के अधीन एक छोटा राज्य (Party is a state within a state) होता है। बहुत बड़ी संख्या में इसके सक्रिय सदस्य तथा समर्थक होते हैं और स्थानीय, क्षेत्रीय व राष्ट्रीय स्तरों पर इस संगठन की शाखायें होती हैं जो चन्दा इकट्ठा करती हैं और दल का प्रचार कार्य भी करती हैं। राजनीतिक दल का संगठन जटिल होता है; दल राज्य की नीति और कार्यक्रम का निर्धारण करता है। इस प्रकार संगठित दल एक अर्थ में राज्य के अधीन राज्य होता है। भारत में कांग्रेस की स्थिति कुछ ऐसी ही है। फासिस्ट तथा साम्यवादी अधिनायकशाही वाले राज्यों में जो दल ही वास्तव में सरकार का संचालन करता है; राजनीतिक संस्थायें तो बहुत सीमा तक दिखाने के लिए बनाई जाती हैं अथवा ये सत्ताधारी दल की साधनमात्र होती हैं।

२. राजनीतिक दलों के कार्य

शिक्षा कार्य—दलों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य नागरिकों को राजनीतिक शिक्षा देता है। दल सभाओं व प्रचार साहित्य के द्वारा मतदाताओं को देश के सामने आने वाली विभिन्न समस्याओं के विषय में शिक्षित करते रहते हैं। यद्यपि प्रत्येक दल की ओर से कहा व दिखाया यही जाता है कि किसी भी प्रश्न के विषय में उसके द्वारा निर्धारित नीति व कार्यक्रम ही सबसे अच्छे है, वास्तव में यह केवल उन्हीं बातों प बल देता है जो उसके पक्ष में हों, परन्तु चूँकि सभी दल ऐसा करते हैं, अर्थात् अप कार्यक्रम की अच्छी बातों को नागरिकों के सामने रखते हैं, और विरोधी दलों के कार्यक्रमों के दोषों को बढ़ा कर दिखाते हैं, नागरिक उन प्रश्नो के विषय में दोन पक्ष की बातें सुन कर सच्चाई को समझ सकते हैं, और उनके विषय में अपना म निर्धारित कर सकते हैं। यदि राजनीतिक दल न हों तो अधिकांश मतदाता ज मत डालने वाले हैं, शायद मत डालने भी न जायें और यदि जायें भी तो अपन मत बुद्धिमानी से नहीं डाल सकते। कारण यह है कि साधारणतया मतदात अशिक्षित और राजनीतिक प्रश्नों की ओर से उदासीन रहते हैं, परन्तु राजनीति दलों के द्वारा उन्हें राष्ट्रीय समस्याओं का कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य ही हो जाता है प्रचार-साहित्य, भाषणों, रेडियो आदि के द्वारा दल जनता में राजनीतिक प्रश्नों बारे में दिलचस्पी पैदा करते हैं और असंख्य व्यक्तियों को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करते हैं।[1]

निर्वाचनों तथा शासन कार्यों में भाग—विधान मण्डलों के सदस्यों के निर्वाच हेतु दलों की उच्च समितियाँ उम्मीदवारों की छाँट करती हैं और निर्वाचन उन्हें सफल बनाने के लिए सभी प्रकार का प्रचार कार्य करती हैं तथा यथासम्भ उम्मीदवारों को आर्थिक सहायता भी देती हैं। जो दल-निर्वाचन में बहुमत प्रा करता है, उसे मन्त्रिमण्डलात्मक शासन-प्रणाली में मन्त्रि-मण्डल का निर्माण कर होता है। बहुसंख्यक दल के नेता द्वारा छाँटे हुए मन्त्री शासन-भार को सम्भाल हैं और अपने दल के सदस्यों के सहयोग से शासन का संचालन करते हैं। जो द अल्प-संख्या में चुने जाते हैं, वे विरोधी पक्ष बनाते हैं। विरोधी दल का कार्य सत्त धारी बहुसंख्यक दल से कम महत्वपूर्ण नहीं समझा जाना चाहिए। विरोधी द सरकार की नीति और कार्य-क्रम की आलोचना करता है और शासन के दोषों क प्रकाश में लाकर जनता तक पहुँचाता है। इस प्रकार नागरिक किसी भी प्रश्न दोनों पक्षों को समझ जाते हैं और अपने मत का निर्धारण करते हैं। विरोधी द

1. 'The party stimulates interest with colourful candidates, clubs, person canvassing mass meetings, parades, and free entertainment. It educat the uninitiated by distributing literature, through speeches...and all tl effective media of communication.'

—*Rodce et al*, op. cit , p. 39

सरकार के आलोचक या पहरेदार का कार्य करके उसकी कमियों को दूर करने में योग देता है। विरोधी दल को इङ्गलैंड में विशेष महत्व प्राप्त है और उसके नेता को सरकारी निधि से वेतन दिया जाता है। जब कभी किसी प्रश्न या विधेयक पर सरकार की हार हो जाती है तो विरोधी दल नये मन्त्रि-मण्डल का निर्माण कर शासन-सूत्र को अपने हाथ में ले लेता है, यदि विधायिका को विघटित न किया जाय।

यदि दलीय व्यवस्था न हो तो प्रत्येक सदस्य स्वतन्त्रतापूर्वक मत देगा और सरकार को साधारणतया अपनी नीति और कार्यक्रम स्वीकृत कराने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी। ऐसी स्थिति में सरकार को कभी यह विश्वास न होगा कि उसके द्वारा प्रस्तुत विधेयकों को विधान-मण्डल में बहुमत का समर्थन मिलेगा या नहीं। ऐसी परिस्थिति में कोई भी सरकार, विशेष रूप से मन्त्रिमण्डलात्मक ढंग की सरकार सफलता व सुगमतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती। जब मन्त्रि-मण्डल को एक बहुमत प्राप्त संगठित दल का समर्थन प्राप्त होता है तो वह निश्चयात्मक रूप से दृढ़तापूर्वक शासन-कार्यों का संचालन कर सकता है। जिन देशों में अध्यक्षात्मक शासन-पद्धति होती है, जैसे कि सं० रा० अमरीका में है, कार्यपालिका विधायिका से पृथक और स्वतन्त्र होती है, वहाँ पर राजनीतिक दल दोनों के बीच अति आवश्यक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। दोनों में जब एक ही दल के सदस्यों का नियन्त्रण होता है तो उनमें आपसी सहयोग और भी अधिक बढ़ जाता है। इस प्रकार दलीय पद्धति के कारण शक्ति विभाजन सिद्धान्त के दोष कम हो जाते हैं।

वृहत क्षेत्रों में प्रजातन्त्र को सफल बनाते हैं—सं० रा० अमरीका, फ्रांस, जर्मनी व भारत जैसे बड़े देश में प्रजातन्त्र की सफलता बहुत कुछ दलीय पद्धति पर निर्भर करती है। यह स्वाभाविक ही है कि व्यक्तियों के मतों में विभिन्नता रहे परन्तु जब तक दलों की सहायता से जनमत संगठित न किया जाय, तब तक बहुमत प्राप्त दल के समर्थन के बिना स्थायी मन्त्रिमण्डल नहीं बन सकता। किसी भी राज्य में शासन-कार्य असम्भव हो जाय, यदि मन्त्रिमण्डल को यह विश्वास न हो की विधान सभा के बहुमत का समर्थन उसे अपनी नीति और कायक्रम के लिए प्राप्त होगा क्योंकि प्रजातन्त्र में सभी शक्तियाँ विधान मण्डल में निहित होती हैं।

महत्वपूर्ण प्रश्नों पर जनमत का निर्माण एव संगठन करना—दलीय-पद्धति के द्वारा ही राष्ट्र के सामने महत्वपूर्ण प्रश्नों के उठने पर जनता 'हाँ' या 'नहीं' के दो समूहों में बँट जाती है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि जनमत के निर्माण और संगठन में राजनीतिक दलों का बहुत ही महत्वपूर्ण भाग रहता है। राजनीतिक दलों के सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्यों का सम्बन्ध निम्नलिखित बातों से रहता है— (१) उम्मीदवारों की नामजदगी, (२) चुनावों में विजय प्राप्त करना, और (३) शासन को संगठित करना अथवा शासन का संचालन करना। सांसद पद्धति वाले राज्यों में तो शासन का संचालन बहुमत दल द्वारा ही होता है और विरोधी दल सरकार की

आलोचना कर उसे ठीक मार्ग पर चलने के लिए जोर डालता है। संयुक्त राज्य अमरीका में भी दलों द्वारा ही सरकार के कार्य संगठित होते हैं। अधिनायकशाही वाले राज्यों में तो दल ही एक अर्थ में सरकार होते हैं। लॉवेल ने दलों के कार्य, संक्षेप में, इस प्रकार बताये हैं—राजनीतिक दलों के द्वारा जनता का ध्यान उन सार्वजनिक समस्याओं पर आकृष्ट होता है, जिनका सुलझाना आवश्यक है। जन-सत्तात्मक शासन को चलाने के यन्त्र दल ही हैं। वे उम्मीदवारों और समस्याओं का ज्ञान जनता को करा देते हैं।

३. दलीय पद्धति

दलीय पद्धति के रूप—विभिन्न देशों में एक, दो या अधिक दल होते हैं। जिन देशों में तानाशाही होती है जैसे कि हिटलर व मुसोलिनी के समय में क्रमश: जर्मनी व इटली में थी और जैसी आजकल सोवियत संघ में पाई जाती है वहाँ केवल एक ही दल होता है जिसके सहयोग से अधिनायक (dictator) शासन कार्य को चलाता है। जर्मनी और इटली में एक नेता और उसके दल की तानाशाही थी, सोवियत संघ में केवल एक ही दल (साम्यवादी दल) की ही तानाशाही है। ऐसे देशों में सत्ताधारी नेता और दल अन्य राजनीतिक दलों को बनने व कार्य करने का अवसर नहीं देते और विरोधियों को दबा दिया जाता है। सं० रा० अमरीका और ब्रिटेन में मुख्यत: दो दल रहे हैं। जिस दल के उम्मीदवारों को निर्वाचन में बहुमत प्राप्त होता है, वही शासन-कार्य को चलाता है। ब्रिटेन में मन्त्रि-मण्डल को बहुमत प्राप्त दल बनाता है और दूसरा दल विरोधी दल रहता है। सं० रा० अमरीका में जिस दल का राष्ट्रपति चुना जाता है वही दल एक प्रकार से शासन संचालन करता है।

ब्रिटेन में दो दलों (two-party system) का सबसे बड़ा लाभ यह है कि मन्त्रि-मण्डल प्राय: स्थायी होता है। इसके विपरीत फ्रांस में मन्त्रिमण्डलात्मक शासन-पद्धति के होते हुए भी कई राजनीतिक दल (multi-party system) हैं। उनमें से किसी एक को विधायिका में पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होता। वहाँ पर मन्त्रिमण्डल में एक दो नहीं वरन् कई दलों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं जब भी कोई एक दल अपना समर्थन मन्त्रिमण्डल से हटा लेता है, मन्त्रिमण्डल भंग हो जाता है। परिणामस्वरूप फ्रांस के मन्त्रि-मण्डलों में बड़ी जल्दी-जल्दी परिवर्तन होते हैं और मन्त्रि-मण्डलों का स्थायी न होना शासन के लिए अति हानिकारक व दोषपूर्ण समझा जाता है। दो-दलीय प्रथा के अपने दोष हैं। इनमें मतदाता की छाँट अत्यन्त सीमित रहती है और यह स्वतन्त्र जनमत से निर्माण में भी बाधा डालता है।[1]

1. 'Certainly the two-party system pays a price for the more stable government which it provides. The citizen has a narower choice...The dual principle hampers the free expression of political opinion.'
—*R. M. MacIver*. op. cit. p. 420.

अपने देश में अभी कई दल हैं, किन्तु यह आशा की जाती है कि आगे चलकर केवल दो ही प्रमुख दल रह जायेंगे। इसका कारण यह है कि हमारे संविधान-निर्माताओं ने देश में एक सदस्य वाले निर्वाचन क्षेत्रों की पद्धति को पसन्द किया है और ऐसी ही पद्धति ब्रिटेन में है।

दलीय पद्धति (अथवा शासन) के गुण—प्रत्येक पद्धति की भाँति दलीय पद्धति के भी बहुत से गुण हैं, जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं—(१) **विचारों और मतों में विभिन्नता होना स्वाभाविक है।** यह सभी जानते हैं कि किसी भी विषय या प्रश्न पर विभिन्न मत होते हैं। दलीय पद्धति द्वारा विभिन्न मतों को संगठित रूप से व्यक्त करने के अवसर प्राप्त होते हैं। (२) **दलीय संगठन से ही जनप्रिय शासन सम्भव है**—जनप्रिय शासन का अर्थ बहुमत के अनुसार शासन से है, जिसके लिए दलीय संगठन का होना अनिवार्य है। दलों के बिना प्रतिनिध्यात्मक शासन का संचालन नहीं हो सकता, क्योंकि उनके होने पर वैयक्तिक आधार पर सदस्यों का चुनाव अति कठिन है। (३) **दलीय पद्धति के द्वारा जनमत का निर्माण व संगठन होता है** और जनता की आवाज को बल मिलता है। इस कारण से दल एक दूसरे की आलोचना करते हैं। कानून-निर्माण कार्य के विभिन्न दोष दूर हो जाते हैं, क्योंकि विधेयकों को बहुत सोच-समझकर विधान सभा में पेश किया जाता है और उन पर पूर्ण विचार होता है। (४) **दलीय पद्धति से शासन के विभिन्न अंगों के कार्यों में सामंजस्य उत्पन्न होता है** और विरोधी दल सत्तारूढ़ दल की स्वेच्छाचारिता पर रोक लगाता है।

(५) दलीय संगठन से सदस्यों में एक प्रकार के अनुशासन और वफादारी की भावना पैदा होती है। (६) संसदात्मक शासन-प्रणाली में बहुसंख्यक दल मन्त्रि-मण्डल बनाता है और अन्य दल विरोधी दल के रूप में कार्य करते हैं। जब कभी मन्त्रि-मण्डल की हार होती है, तो विरोधी दल शासन-भार को संभालने के लिए तैयार रहता है। इस प्रकार से अशांति व अव्यवस्था नहीं फैलने पाती क्योंकि पद-त्याग करने वाले मन्त्रि-मण्डल का स्थान विरोधी दल के अनुभवी सदस्य ले लेते हैं। (७) सं० रा० अमरीका जैसी अध्यक्षात्मक पद्धति वाले देशों में दलीय पद्धति के द्वारा कार्यपालिका व व्यवस्थापिका में अति आवश्यक सम्बन्ध स्थापित होता है। (८) अन्त में दलीय भावना से सार्वजनिक व राजनीतिक मामलों में जनता की रुचि बढ़ती है। विभिन्न दल अपने-अपने राजनीतिक व आर्थिक कार्यक्रम को जनता के सामने रखते हैं, उनको समझने के लिए प्रचार-साहित्य बाँटते हैं और अन्य प्रकार से मतदाताओं को शिक्षित करते हैं।

दलीय पद्धति के दोष—(१) दलीय पद्धति के कारण दल के सदस्यों में एक प्रकार की कृत्रिम सहमति रहती है और यह व्यक्तियों के स्वतन्त्र विचार व कार्यों को दबाती है। इसका कारण स्पष्ट है। दल की एकता के नाम पर व्यक्तिगत मत को त्यागना पड़ता है और इस प्रकार का मिथ्या मतैक्य स्थिर किया जाता है।

(२) यदि उत्तरदायी शासन में दलों की संख्या बड़ी होती है तो कार्यपालिका दुर्बल व स्थायी रहती है, जैसे कि फ्रांस में है। (३) दो दलों वाली पद्धति में भी राज्य के कुछ योग्यतम व अनुभवी व्यक्ति शासन के निर्वाचित पदों से अलग रहते हैं, अर्थात् विरोधी दल के योग्य व्यक्तियों को भी शासन में मन्त्रि-पद नहीं दिया जा सकता। सत्तारूढ़ दल अपने योग्य समर्थकों को भी सभी स्थानों पर विरोधी दल के योग्य व्यक्तियों से अधिक पसन्द करता है। (४) दलीय पद्धति के अन्तर्गत दलों के नेताओं और कार्यकर्त्ताओं को मतदाताओं की उचित और अनुचित इच्छाओं का आदर करना पड़ता है और इसके कारण सत्य को दबाया जाता है। इसके अतिरिक्त सभी दलों में यह दोष पाया जाता है कि वे सच्चाई को दबाते हैं और झूठ को बढ़ा कर दिखाते हैं, क्योंकि वे हर प्रकार से अपना स्वार्थ चाहते हैं।

दलीय पद्धति अपने-अपने सदस्यों में राज्य के प्रति निष्ठा के बजाय दल के प्रति निष्ठा (वफादारी) पर विशेष बल देती है, जो राष्ट्र के हित में नहीं है। (it encourages loyalty to party at the expense of loyalty to state) (५) दलीय पद्धति के कारण कभी-कभी विरोधी दल केवल विरोध के लिए ही विरोध करता है और इस प्रकार शासन-कार्य को सुगमता से चलाने में बाधायें डालता है। दूसरी ओर सत्तारूढ़ दल विरोधी दल के अच्छे सुझावों और प्रस्तावों को इसी आधार पर अस्वीकार कर देता है कि वे विरोधी दल की ओर से रखे गये हैं। दलीय पद्धति से जनता के विभिन्न वर्गों के बीच ईर्ष्या और वैमनस्य बढ़ते हैं, फलस्वरूप बहुत से झगड़े और मतभेद पैदा होते रहते हैं। (६) दलों द्वारा भ्रष्टाचार, अनुचित दबाव और अनैतिक व्यवहार को बढ़ावा मिलता है। (७) राजनीतिक दल गुटों और चालबाज नेताओं (bosses) के प्रभाव में आ जाते हैं, अतः दलीय सरकार में शासन सूत्र ऐसे ही व्यक्तियों के हाथों में आता है।

दलों के दोषों को दूर करने के लिए कुछ आवश्यक बातें निम्नलिखित हैं—(१) दलों के निर्माण का आधार वर्ण, वर्ग व धर्म न होकर आर्थिक व राजनीतिक कार्य-क्रम का होना चाहिए। (२) नेताओं और कार्यकर्त्ताओं को स्वार्थ त्याग कर सच्चाई से देश हित के कार्य करने चाहियें। (३) जनता बुद्धिमान शिक्षित हो और उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो, जिससे वह राजनीतिक मामलों में दिलचस्पी ले सके और दलीय नेताओं के चक्कर में न आये। (४) सामाजिक और आर्थिक असमानतायें दूर होनी चाहियें। (५) दलों को अपने स्वार्थ और हितों को राष्ट्रीय हितों से कम महत्व देना चाहिए। दलीय अनुशासन की कड़ाई में कुछ कमी होनी चाहिए। (६) एक दल के सदस्यों को दूसरे दल के सदस्यों से व्यवहार करते समय सहनशीलता बरतनी चाहिए और उसकी बात को उचित महत्व देना चाहिए। शासन में बहुमत का अत्याचार अच्छा नहीं, जब कोई दल सत्तारूढ़ होता है तो उसे सम्पूर्ण सामाजिक हितों को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिए। (७) दलों की अनुचित कार्यवाहियों को रोकने के लिए सरकार का नियन्त्रण और प्रतिबन्धय

कानूनों का होना आवश्यक है। यदि इन शर्तों का अधिक से अधिक पालन किया जाय तो बिना सन्देह दलीय पद्धति के दोषों को काफी कम किया जा सकता है। जनतन्त्र के लिए दोनों दलों का होना अनिवार्य है, इसलिए उनका अन्त तो किया नहीं जा सकता, केवल उनके दोषों को दूर करने के प्रयत्न किए जा सकते हैं और किए जाने चाहिये।

अन्त में, द्वि-दलीय और बहु-दलीय पद्धति के गुणों और दोषों की संक्षेप में तुलना देना आवश्यक प्रतीत होता है। ग्रेट ब्रिटेन में दो प्रमुख राजनीतिक दल रहे हैं और अब भी हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में भी दो प्रमुख राजनीतिक दल हैं, यद्यपि वहाँ की शासन पद्धति संसदात्मक नहीं है। इसके विपरीत फ्रांस बहु-दलीय पद्धति के बुरे परिणामों का सर्वविदित उदाहरण है। भारत में अभी तक कई दल हैं, किन्तु उनकी संख्या क्रमशः कम हो रही है और आशा की जाती है कि भविष्य में द्वि-दलीय पद्धति का ही चलन रहेगा और तभी संसदीय पद्धति सफल होगी।

द्वि-दलीय पद्धति के गुण—(१) द्वि-लीय पद्धति के अन्तर्गत संसदात्मक शासन प्रणाली का संचालन सुचारु रूप से एवं सफलतापूर्वक होता है। जिस दल को निर्वाचन में बहुमत प्राप्त हो जाता है उसकी सरकार बन जाती है और दूसरा दल विरोधी दल का स्थान ग्रहण करता है। (२) इस पद्धति के अन्तर्गत शासन अपेक्षाकृत स्थाई होता है, क्योंकि कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिमण्डल की नीति का समर्थन करने के लिए व्यवस्थापिका में एक सुव्यवस्थित एवं अनुशासित बहुमत होता है जिसके समर्थन के विश्वास पर मन्त्रिमण्डल निश्चित रूप से अपनी नीति को पर्याप्त काल तक क्रियान्वित कर सकता है। (३) इस पद्धति में शासन अर्थात् मन्त्रिमण्डल मतदाताओं की इच्छा का प्रत्यक्ष परिणाम होता है, क्योंकि उसी दल को केबिनेट निर्माण करने का अधिकार होता है जिसके निर्वाचित सदस्य बहुमत प्राप्त करते हैं। (४) द्वि-दलीय पद्धति के अन्तर्गत शासन के दोषों के लिए सत्तारूढ़ दल को उत्तरदायी बनाना बहु-दलीय पद्धति की अपेक्षा सरल है, क्योंकि द्वि-दलीय पद्धति में देश का शासन सूत्र केवल एक निश्चित एवं स्पष्ट दल के हाथ में होता है। अन्त में, द्वि-दलीय पद्धति के अन्तर्गत संवैधानिक गतिरोध पैदा नहीं होता, क्योंकि यदि वर्तमान शासन का अन्त होता है तो विरोधी दल शासन सूत्र अपने हाथ में लेने के लिए तत्पर रहता है। आज का विरोधी दल कल की संभावित सरकार है। वास्तव में, यही साधन है जिसके द्वारा निर्वाचक मण्डल सीधे रूप में अपनी सरकार अर्थात् मन्त्रिमण्डल का चुनाव करता है।

द्वि-दलीय पद्धति के दोष—द्वि-दलीय पद्धति में अनेक दोष भी हैं जो इस प्रकार हैं—(१) द्वि-दलीय पद्धति के कारण राष्ट्र ऐसे दो दलों में बंट जाता है जिसमें समझौते और सहयोग की कोई गुंजाइश नहीं रहती। इसके अतिरिक्त इस पद्धति के अन्तर्गत लोकमत के समस्त सम्भव पक्षों का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता। यह कहना सर्वथा भ्रमात्मक है कि प्रत्येक प्रश्न के केवल दो पक्ष होते हैं। आधुनिक काल की

आर्थिक एवं राजनीतिक जटिल समस्याओं पर अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया जाता है और किया भी जाना चाहिए। (२) इस पद्धति के अन्तर्गत निरंकुश बहुमत का जन्म होता है जो अल्पमत की उचित मांगों की भी अवहेलना कर सकता है। रेम्जे म्यूर (Ramsay Muir) के शब्दों में इस पद्धति द्वारा तानाशाही केबिनेट पद्धति का जन्म होता है और विधायिका की स्थिति हीन हो जाती है अर्थात् केबिनेट व्यवस्थापिका पर तानाशाही शासन करती है; क्योंकि केबिनेट में उस दल के नेता होते हैं जिनका व्यवस्थापिका में बहुमत होता है। (३) अन्त में द्वि-दलीय पद्धति के मतदाताओं की मतदान की स्वतन्त्रता भी सीमित हो जाती है। उनको अपना मत दो दलों के उम्मीदवारों में से एक को देना होता है, भले ही उनमें से एक मूर्ख और दूसरा बदमाश हो।

बहुदलीय पद्धति के गुण—प्रायः द्वि-दलीय पद्धति में जो दोष बतलाये जाते हैं वे बहु-दलीय पद्धति के गुण हैं। (१) सर्वप्रथम, इस पद्धति के पक्ष में यह युक्ति दी जाती है कि इसके द्वारा लोकमत के विभिन्न पहलुओं को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है जो द्वि-दलीय पद्धति के अन्तर्गत सर्वथा असम्भव है। (२) इस पद्धति के अन्तर्गत निरंकुश बहुमत का भय नहीं रहता, क्योंकि किसी भी एक राजनीतिक दल को मतदाताओं का स्पष्ट बहुमत प्राप्त होने की सम्भावना या अवसर नहीं रहता। इस पद्धति के कारण व्यवस्थापिका में अनेक दलों के सदस्य होते हैं और किसी एक दल के सदस्य स्पष्ट बहुमत में नहीं होते। अतः कुछ दल मिलकर संयुक्त मन्त्रि-मण्डल का निर्माण करते हैं। संयुक्त मन्त्रि-मण्डल समझौते के आधार पर बनाये जाते हैं। इसलिए संयुक्त मन्त्रि-मण्डल कभी निरंकुश नहीं हो सकते। (३) मन्त्रि-मण्डल के संयुक्त होने के कारण साधारण निर्वाचन के खतरे, परेशानी और व्यय उठाये बिना ही उसमें आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन सरलता से किया जा सकता है।

बहु-दलीय पद्धति के दोष—परन्तु उपर्युक्त गुणों के होते हुए भी यह पद्धति कुछ भयंकर दोषों से परिपूर्ण है। (१) इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके अन्तर्गत शासन अत्यन्त स्थायी होता है, क्योंकि इस दल का स्पष्ट बहुमत न होने के कारण अनेक दलों में संयुक्त मन्त्रि-मण्डल बनाने पड़ते हैं। इन दलों के हितों में परिवर्तन होते रहने के कारण संयुक्त मन्त्रि-मण्डल में भी जल्दी-जल्दी परिवर्तन होते रहते हैं जिनका परिणाम यह होता है कि शासन दुर्बल रहता है और दुर्बल होने के कारण पूर्णतया उत्तरदायी नहीं होता। ऐसी स्थिति में अच्छी से अच्छी नीति को भी क्रियान्वित करना असम्भव होता है। फ्रांस में जहाँ पर अनेक राजनीतिक दल हैं सन् १८७० से १९३४ तक अनेक मन्त्रि-मण्डल का निर्माण किया गया जिनके कारण मन्त्रि-मण्डल की औसत आयु ९ महीने से कुछ कम सिद्ध होती है जबकि इस काल में इंगलैंड में जहाँ द्वि-दलीय पद्धति प्रचलित है केवल १८ मन्त्रि-मण्डल बने। (२) शासन की अस्थिरता के कारण किसी दीर्घकालीन योजना को

व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता। (३) प्रत्येक दल शासन सूत्र प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहता है और इसके लिए उसको अपनी नीति में संशोधन करना पड़ता है, क्योंकि उसे संयुक्त मन्त्रि-मण्डल का अंग बनकर ही सत्ता में भाग मिल सकता है। (४) किसी भी प्रश्न पर जनता के बहुमत का निर्णय क्या है, इसका पता लगाना बड़ा कठिन है।

४. हित समूह

दबाव या हित समूह (Pressure or Interest Groups)—प्रायः सभी राज्यों में दलीय पद्धति के विकास के साथ-साथ अनेक दबाव गुटों अथवा हित समूहों का भी विकास हुआ है। 'एक हित समूह उन लोगों का औपचारिक संगठन होता है जिनके एक या अधिक हित अथवा उद्देश्य समान होते हैं और जो घटनाक्रम को प्रभावित करने का प्रयत्न करते रहते हैं—विशेष रूप में, सरकार द्वारा नीति के निर्धारण व कार्यान्वित करने में—जिससे कि वे अपने हितों की रक्षा कर सकें और इन्हें प्रोत्साहन दे सकें।'[1] जब औद्योगिक, व्यवसायी, वाणिज्यिक और समुदाय के अन्य समूह जिनका प्रतिनिधित्व अन्य व्यावसायिक संघ करते हैं, विधान-मण्डल को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं जिससे कि वे अपने हितों में कानून बनवा सकें अथवा अपने हितों को हानि पहुंचाने वाले विधेयकों को वापिस लेने के लिए (ऐसे कानूनों को हटाने के लिए) अथवा उनमें आवश्यक परिवर्तन कराने के लिए प्रयत्न कर सकें। ऐसे समूहों को साधारण बोलचाल में दबाव गुट कहते हैं।

राजनीतिक दल और दबाव गुट के बीच कुछ बातों में समानता और कुछ बातों में भिन्नता होती है। साधारणतया राजनीतिक दल दबाव गुट से बहुत अधिक बड़ा संगठन होता है, जो करोड़ों मतदाताओं का समर्थन पाने का प्रयत्न करता है। इसी कारण राजनीतिक दल का कार्यक्रम भी अधिक विस्तृत होता है और उसका सम्बन्ध अनेक समस्याओं व प्रश्नों से रहता है। दबाव गुट (अथवा हित समूह) आकार तथा सदस्यता की दष्टि से बहुत छोटे होते हैं और वे एक ही समूह के हितों को बढ़ाने के लिए ही कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त राजनीतिक दल शासन पर नियन्त्रण पाने का प्रयास करता है, हित समूह केवल अपने हित में ही नीति निर्धारण कार्यों में दिलचस्पी लेता है।

दबाव गुटों के विभिन्न प्रकार—उनमें कई प्रकार के भेद होते हैं। वे स्थायी तथा अस्थायी, आकार में बड़े व छोटे, शक्तिशाली या कमजोर हो सकते हैं। अन्य आधार पर उन्हें आर्थिक तथा अन्य कई बड़े समूहों में विभाजित किया जा सकता है। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस, फेडरेशन ऑफ चैम्बर्स ऑफ कामर्स, किसान सभा आदि आर्थिक हित समूह हैं। डाक्टरों, शिक्षकों, वकीलों, विद्यार्थियों आदि के संघ अधिकांशतः आर्थिक नहीं हैं। ब्रिटेन व भारत में दबाव गुटों व हित

1. *Odegard et al,* American Government, p 149.

समूहों की काफी बड़ी संख्या है; किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका में उनकी संख्या ३ लाख से भी ऊपर है और वे इतने प्रकार के हैं कि उनका वर्गीकरण करना भी कठिन है। आर्थिक तथा अन्य-समूह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में राजनीतिक कार्यों में दिलचस्पी लेते हैं, इसी कारण उन्हें दबाव गुट कहना अधिक उपयुक्त है। उनमें से कुछ किसी विचारधारा के मानने वाले अथवा समर्थक (idea groups) हैं; वे किसी राजनीतिक दर्शन या कार्यक्रम का अनुमोदन करते हैं। इनके विपरीत आर्थिक गुट अपने हित साधन के लिए कानून बनवाने, उनमें परिवर्तन कराने आदि कार्यों में लगे रहते हैं।[1]

दबाव गुटों के गुण व दोष—पूँजीवादी और प्रजातन्त्रात्मक समाज में ऐसे गुटों का होना स्वाभाविक है। वे अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए संगठित होते हैं। इन गुटों के संगठन होते हैं जो उपयोगी सूचना व आँकड़े एकत्रित करते हैं और प्रचार कार्य भी करते हैं। उनमें से कुछ संगठन तो विशेषज्ञों को रखते हैं और उपयोगी साहित्य का प्रकाशन करते हैं। विधेयकों और प्रशासकों को भी संगठित समूहों के प्रतिनिधियों से मन्त्रणा या परामर्श करने में सुविधा होती है। परन्तु दबाव गुटों के कारण कई दोष भी पैदा होते हैं। हित समूहों के कारण विभिन्न समूहों के बीच हितों का संघर्ष चलता है और कभी-कभी उनके वर्गीय हितों से सामान्य हितों को हानि पहुँचने का खतरा रहता है। चूंकि इन गुटों के साधन अलग-अलग होते हैं और उनकी सदस्य संख्या भी बड़ी या छोटी होती है; इस कारण से अधिक शक्तिशाली और साधनयुक्त गुट अधिक दबाव या प्रभाव डालने में सफल हो जाते हैं, जो कभी-कभी अनुचित भी हो सकता है।

दबाव गुटों के कार्य करने का ढंग—वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये मुख्यत: इन तरीकों का प्रयोग करते हैं—(१) जनमत और सरकार की नीति को प्रभावित करने के लिये वे प्रचार कार्य करते हैं। (२) वे चुनावों में भाग लेते हैं, जिससे कि यह दल अथवा वे उम्मीदवार विजयी हों जो उनके हितों को बढ़ाने में योग दे सकें। (३) उनके प्रतिनिधि अथवा सक्रिय कार्यकर्त्ता दलों में सम्मिलित हो जाते हैं या उनके कार्यों में सक्रिय भाग लेते हैं। (४) वे विधायकों से मिलकर उन पर अपने हित में प्रभाव डालने के प्रयत्न करते हैं, जिन्हें लॉबी में प्रभावित करना (lobbying) कहते हैं। वे बहुधा हड़ताल व प्रदर्शन संगठित करते हैं और कभी-कभी हिंसक कार्य भी करते हैं। पाश्चात्य देशों में दबाव गुट प्रधानत: लॉबी के प्रभाव का प्रयोग करते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में इसका महत्व इतना बढ़ गया है कि लॉबी (गोष्ठी कक्ष) को कभी-कभी विधान-मण्डल का तीसरा सदन कह देते हैं। इस कार्य में अनेक गुटों के बड़े कार्यालय और हजारों अधिकारी व कर्मचारी लगे रहते हैं।

1. *R. W. Brewster*, Government in Modern Society, p. 200.

व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता। (३) प्रत्येक दल शासन सूत्र प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहता है और इसके लिए उसको अपनी नीति में संशोधन करना पड़ता है, क्योंकि उसे संयुक्त मन्त्रि-मण्डल का अंग बनकर ही सत्ता में भाग मिल सकता है। (४) किसी भी प्रश्न पर जनता के बहुमत का निर्णय क्या है, इसका पता लगाना बड़ा कठिन है।

४. हित समूह

दबाव या हित समूह (Pressure or Interest Groups)—प्रायः सभी राज्यों में दलीय पद्धति के विकास के साथ-साथ अनेक दबाव गुटों अथवा हित समूहों का भी विकास हुआ है। 'एक हित समूह उन लोगों का औपचारिक संगठन होता है जिनके एक या अधिक हित अथवा उद्देश्य समान होते हैं और जो घटनाक्रम को प्रभावित करने का प्रयत्न करते रहते हैं—विशेष रूप में, सरकार द्वारा नीति के निर्धारण व कार्यान्वित करने में—जिससे कि वे अपने हितों की रक्षा कर सकें और इन्हें प्रोत्साहन दे सकें।'[1] जब औद्योगिक, व्यवसायी, वाणिज्यिक और समुदाय के अन्य समूह जिनका प्रतिनिधित्व अन्य व्यावसायिक संघ करते हैं, विधान-मण्डल को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं जिससे कि वे अपने हितों में कानून बनवा सकें अथवा अपने हितों को हानि पहुंचाने वाले विधेयकों को वापिस लेने के लिए (ऐसे कानूनों को हटाने के लिए) अथवा उनमें आवश्यक परिवर्तन कराने के लिए प्रयत्न कर सकें। ऐसे समूहों को साधारण बोलचाल में दबाव गुट कहते हैं।

राजनीतिक दल और दबाव गुट के बीच कुछ बातों में समानता और कुछ बातों में भिन्नता होती है। साधारणतया राजनीतिक दल दबाव गुट से बहुत अधिक बड़ा संगठन होता है, जो करोड़ों मतदाताओं का समर्थन पाने का प्रयत्न करता है। इसी कारण राजनीतिक दल का कार्यक्रम भी अधिक विस्तृत होता है और उसका सम्बन्ध अनेक समस्याओं व प्रश्नों से रहता है। दबाव गुट (अथवा हित समूह) आकार तथा सदस्यता की दष्टि से बहुत छोटे होते हैं और वे एक ही समूह के हितों को बढ़ाने के लिए ही कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त राजनीतिक दल शासन पर नियन्त्रण पाने का प्रयास करता है, हित समूह केवल अपने हित में ही नीति निर्धारण कार्यों में दिलचस्पी लेता है।

दबाव गुटों के विभिन्न प्रकार—उनमें कई प्रकार के भेद होते हैं। वे स्थायी तथा अस्थायी, आकार में बड़े व छोटे, शक्तिशाली या कमजोर हो सकते हैं। अन्य आधार पर उन्हें आर्थिक तथा अन्य कई बड़े समूहों में विभाजित किया जा सकता है। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस, फेडरेशन ऑफ चैम्बर्स ऑफ कामर्स, किसान सभा आदि आर्थिक हित समूह हैं। डाक्टरों, शिक्षकों, वकीलों, विद्यार्थियों आदि के संघ अधिकांशतः आर्थिक नहीं हैं। ब्रिटेन व भारत में दबाव गुटों व हित

1. *Odegard et al,* American Government, p 149.

समूहों की काफी बड़ी संख्या है; किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका में उनकी संख्या ३ लाख से भी ऊपर है और वे इतने प्रकार के हैं कि उनका वर्गीकरण करना भी कठिन है। आर्थिक तथा अन्य-समूह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में राजनीतिक कार्यों में दिलचस्पी लेते हैं, इसी कारण उन्हें दबाव गुट कहना अधिक उपयुक्त है। उनमें से कुछ किसी विचारधारा के मानने वाले अथवा समर्थक (idea groups) हैं; वे किसी राजनीतिक दर्शन या कार्यक्रम का अनुमोदन करते हैं। इनके विपरीत आर्थिक गुट अपने हित साधन के लिए कानून बनवाने, उनमें परिवर्तन कराने आदि कार्यों में लगे रहते हैं।[1]

दबाव गुटों के गुण व दोष—पूँजीवादी और प्रजातन्त्रात्मक समाज में ऐसे गुटों का होना स्वाभाविक है। वे अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए संगठित होते हैं। इन गुटों के संगठन होते हैं जो उपयोगी सूचना व आँकड़े एकत्रित करते हैं और प्रचार कार्य भी करते हैं। उनमें से कुछ संगठन तो विशेषज्ञों को रखते हैं और उपयोगी साहित्य का प्रकाशन करते हैं। विधेयकों और प्रशासकों को भी संगठित समूहों के प्रतिनिधियों से मन्त्रणा या परामर्श करने में सुविधा होती है। परन्तु दवाव गुटों के कारण कई दोष भी पैदा होते हैं। हित समूहों के कारण विभिन्न समूहों के बीच हितों का संघर्ष चलता है और कभी-कभी उनके वर्गीय हितों से सामान्य हितों को हानि पहुँचने का खतरा रहता है। चूँकि इन गुटों के साधन अलग-अलग होते हैं और उनकी सदस्य संख्या भी बड़ी या छोटी होती है; इस कारण से अधिक शक्तिशाली और साधनयुक्त गुट अधिक दबाव या प्रभाव डालने में सफल हो जाते हैं, जो कभी-कभी अनुचित भी हो सकता है।

दबाव गुटों के कार्य करने का ढंग—वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये मुख्यत: इन तरीकों का प्रयोग करते हैं—(१) जनमत और सरकार की नीति को प्रभावित करने के लिये वे प्रचार कार्य करते हैं। (२) वे चुनावों में भाग लेते हैं, जिससे कि यह दल अथवा वे उम्मीदवार विजयी हों जो उनके हितों को बढ़ाने में योग दे सकें। (३) उनके प्रतिनिधि अथवा सक्रिय कार्यकर्त्ता दलों में सम्मिलित हो जाते हैं या उनके कार्यों में सक्रिय भाग लेते हैं। (४) वे विधायकों से मिलकर उन पर अपने हित में प्रभाव डालने के प्रयत्न करते हैं, जिन्हें लॉबी में प्रभावित करना (lobbying) कहते हैं। वे बहुधा हड़ताल व प्रदर्शन संगठित करते हैं और कभी-कभी हिंसक कार्य भी करते हैं। पाश्चात्य देशों में दबाव गुट प्रधानत: लॉबी के प्रभाव का प्रयोग करते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में इसका महत्व इतना बढ़ गया है कि लॉबी (गोष्ठी कक्ष) को कभी-कभी विधान-मण्डल का तीसरा सदन कह देते हैं। इस कार्य में अनेक गुटों के बड़े कार्यालय और हजारों अधिकारी व कर्मचारी लगे रहते हैं।

1. *R. W. Brewster*, Government in Modern Society, p. 200.

प्रश्न

१. राजनीतिक दलों का महत्व बताइये और उनके मुख्य कार्यों का विवेचन कीजिए।
२. दलीय पद्धति से आप क्या समझते हैं ? द्वि-दलीय और बहु-दलीय पद्धतियों के गुण दोष बताइये।
३. हित समूह क्या होता है ? दबाव समूह किसे कहते हैं ? हित और दबाव समूहों का क्या महत्व है ?
४. दबाव समूहों के कार्य करने के तरीके क्या हैं ?
५. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—
   (अ) प्रजातन्त्र और राजनीतिक दल।
   (ब) राजनीतिक दल और हित समूह के बीच अन्तर।
   (स) जनमत निर्माण और राजनीतिक दल।

युनाइटेड किंगडम

का

शासन

(GOVERNMENT OF THE UNITED-KINGDOM)

१. भूमिका

१. परिचयात्मक

देश—ब्रिटिश द्वीपसमूह यूरोप के पश्चिम में स्थित हैं और इनका कुल क्षेत्रफल, १,६४,५६० वर्गकिमी है। सबसे बड़े द्वीप ग्रेट ब्रिटेन कहलाते हैं, जिनमें इंगलैण्ड, वेल्स और स्कॉटलैण्ड सम्मिलित हैं और इनमें आयरलैण्ड के उत्तरी भाग को मिला कर संयुक्त राज्य (United Kingdom) बनता है।[1] इन द्वीपों में अनेक खाड़ियाँ हैं और समुद्री तट बहुत कटा-फटा है। फलतः इन द्वीपों का कोई भी स्थान समुद्री तट से ७५ मील की दूरी से अधिक नहीं है। यद्यपि इन द्वीपों का क्षेत्रफल छोटा है, किन्तु इनमें प्रायः सभी प्रकार की चट्टानें पाई जाती हैं। यहाँ के विभिन्न क्षेत्रों में लोहे और कोयले की खानें बहुतायत से हैं और पास-पास मिलती हैं। ये ही खानें ब्रिटेन के औद्योगिक उत्पादन का प्रमुख कारण रहीं हैं। ब्रिटेन की जलवायु न बहुत अधिक गर्म और न बहुत अधिक ठण्डी है, क्योंकि समुद्री हवाओं का जलवायु पर बहुत प्रभाव पड़ता है। ब्रिटिश द्वीप समूह में औसतन वर्षा ४० इंच से अधिक है। पहाड़ी क्षेत्रों में कम उपजाऊ मिट्टी के कारण अधिकतर बंजर प्रदेश हैं। घाटियों और मैदानों में ही कृषि होती है।

ब्रिटिश द्वीपसमूह चारों ओर समुद्रों से घिरे होने के कारण बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रहे हैं। इसी कारण ब्रिटेन की सशस्त्र सेनाओं में नौ-सेना का अत्यधिक महत्व रहा है। बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा के कारण ही १७वीं और १८वीं शताब्दियों में ब्रिटिश जाति शासन की स्वतन्त्र संस्थाओं को विकसित कर सकी और सुदृढ़ बना सकी। यद्यपि प्रतिरक्षा की दृष्टि से आज इंगलिश चेनल का महत्व बहुत कम हो गया है, फिर भी स्वतन्त्र संस्थायें जिनके विकास में इसका बड़ा योग रहा, ब्रिटेन में प्रगति पथ पर हैं। ग्रेट ब्रिटेन की भौगोलिक स्थिति का एक दूसरी दृष्टि से भी बड़ा महत्व है। व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में ब्रिटेन अन्य देशों से आगे रहा और इसी कारण ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति हुई तथा ब्रिटिश निवासी विश्व में सबसे बड़ा साम्राज्य स्थापित कर सके। साम्राज्य के द्वारा ब्रिटेन की शासन संस्थाओं का विश्व के बड़े भाग पर गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा है।

१. तकनीकी दृष्टि से हमें सभी स्थानों पर ब्रिटेन के बजाय युनाइटेड किंगडम का प्रयोग करना चाहिए। किन्तु सुविधा की दृष्टि से व्यवहार में 'ब्रिटेन' या 'ब्रिटिश' शब्दों का प्रयोग किया है।

निवासी—सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार संयुक्त राज्य की कुल जनसंख्या ५ करोड़ २७ लाख से ऊपर थी। यहाँ पर जनसंख्या का घनत्व बहुत अधिक ३४६ व्यक्ति प्रति वर्गकिमी है। यहाँ पर ऐसे व्यक्तियों की संख्या लाखों में है, जिनका जन्म राष्ट्रमण्डलीय देशों (Commonwealth Countries) या संयुक्त राज्य के पराधीन प्रदेशों में हुआ। सन् १९४८ के ब्रिटिश राष्ट्रीयता कानून (Britsh Nationality Act 1948) के अन्तर्गत संयुक्त राज्य की नागरिकता इन श्रेणियों के व्यक्तियों को प्राप्त हो सकती है—(१) जिनका अथवा जिनके जनकों का जन्म संयुक्त राज्य या संयुक्त राज्य के किसी उपनिवेश (Colony), संयुक्त राज्य के रजिस्टर्ड जहाज या हवाई जहाज पर हुआ हो। (२) वंश से—जिनके महाजनक का जन्म संयुक्त राज्य या उसके किसी उपनिवेश में हुआ हो। (३) रजिस्ट्रेशन द्वारा—राष्ट्रमण्डलीय देशों या आयरिश गणतन्त्र के नागरिकों के लिए और ऐसी स्त्रियों के लिए जिनका विवाह संयुक्त राज्य या उसके उपनिवेशों के नागरिकों से हो। देशीकरण के प्रमाण-पत्र की प्राप्ति के लिए संयुक्त राज्य अथवा उसके उपनिवेशों में ५ साल के निवास या इतनी अवधि के लिए ताज की नौकरी तथा अच्छा आचरण, अंग्रेजी भाषा का काफी ज्ञान और संयुक्त राज्य अथवा उपनिवेश अथवा ताज की नौकरी में स्थायी रूप से रहने का इरादा आवश्यक शर्तें हैं। अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रमण्डलीय देशों के नागरिक ब्रिटेन में राष्ट्रमण्डलीय नागरिक होते हैं। वे संयुक्त राज्य में बिना किसी प्रतिबन्ध के प्रवेश कर सकते हैं और वहीं रह भी सकते हैं। इसी प्रकार का व्यवहार आयरिश गणतन्त्र के नागरिकों के साथ होता है।

ब्रिटिश द्वीपसमूह के निवासी अंग्रेजी भाषा-भाषी हैं। कहीं-कहीं पर प्रादेशिक बोलियाँ भी प्रचलित हैं। प्रायः सभी वयस्क पुरुष लाभकारी काम-धन्धों में लगे हैं और स्त्रियों की बहुत बड़ी संख्या या तो घर का काम करती हैं अथवा काम-धन्धों में लगी हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ कुछ समय के लिए काम करती हैं। लगभग एक तिहाई विवाहित स्त्रियाँ नौकरी करती हैं और नौकरी करने वाली स्त्रियों में लगभग आधी विवाहित हैं। बहुसंख्या के लिए काम के घण्टे ४२ और ४६ के बीच प्रति सप्ताह हैं। अधिकतर व्यक्तियों का जीवन-स्तर काफी ऊँचा है। उन्हें अवकाश प्राप्त है और वे रेडियो, टेलीविजन व मोटरकार रखते हैं। यहाँ के निवासियों को खेल, थ्येटर व नाच गाने का व्यापक शौक है। इनकी बहुत बड़ी संख्या विभिन्न प्रकार के क्लबों की सदस्य है। कहने का तात्पर्य यह है कि यहाँ के निवासियों का जीवन सुखी है और उन्हें आर्थिक चिन्ताओं से काफी मुक्ति है।

ब्रिटेन की प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली के विकास और उसके सफल संचालन के लिए अधिकांश श्रेय वहाँ की जनता को है। ब्रिटिश जाति को स्वतन्त्र व स्व-शासन की संस्थाओं से विशेष प्रेम रहा है। राजनीतिक स्वतन्त्रता और ऐसी संस्थाओं से ब्रिटिश जाति का इतना प्रेम रहा है कि जहाँ कहीं भी उन्होंने शासन

किया, वहाँ के लोगों में भी इनके लिए प्रेम उत्पन्न हो गया। फलत: ब्रिटिश शासकों के सामने अनेक कठिनाइयाँ आईं। ब्रिटिश द्वीपसमूह के निवासी और उनके वंशज जहाँ कहीं भी जाकर बसे, तानाशाही शासन के शत्रु रहे हैं। वहाँ के निवासियों में सहनशीलता, रूढ़िवादिता के साथ प्रगतिवाद का अद्भुत मेल और राष्ट्रीय चरित्र आदि गुणों ने ही ब्रिटेन और उसकी पद्धति को विश्व में इतना मान और महत्व प्रदान कराया है। ब्रिटेन के निवासियों को राजनीति में खेल के समान ही रुचि है। चुनावों में ८०% से अधिक मतदाता भाग लेते हैं। उनका नैतिक चरित्र ऊंचा है और राजनीतिक क्षेत्र में अन्य प्रजातन्त्रीय देशों की अपेक्षा सार्वजनिक अनैतिकता बहुत ही कम है।

२. ब्रिटिश शासन पद्धति के अध्ययन का महत्व

विभिन्न राज्यों की शासन पद्धतियों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को प्राय: सभी विश्वविद्यालयों में सर्वप्रथम ब्रिटिश शासन पद्धति का अध्ययन करना होता है। यह तथ्य इस बात का सूचक है कि ब्रिटिश शासन पद्धति का अध्ययन अन्य शासन पद्धतियों के समझने के लिए आवश्यक है, साथ ही यह तथ्य ब्रिटिश शासन पद्धति के महत्व की ओर भी पाठकों का ध्यान दिलाता है। यह शासन पद्धति इतनी महत्वपूर्ण क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत दिया जा सकता है—

सर्वप्रथम, **ब्रिटेन का संविधान सबसे प्राचीन जीवित संविधान** है। आधुनिक राज्यों के संविधानों में यह सबसे पुराना है और इस कारण पाठकों की श्रद्धा का पात्र है। वास्तव में, यदि यह कहा जाये कि ब्रिटेन ही प्रथम आधुनिक राज्य है जहाँ संवैधानिक शासन का विकास हुआ तो इस कथन में लेशमात्र भी अत्युक्ति न होगी।

दूसरे, **ब्रिटेन का संविधान प्रधानत: अलिखित है,** जबकि प्राय: सभी आधुनिक राज्यों के संविधान लिखित हैं। ब्रिटेन के संविधान में संवैधानिक प्रथाओं, अभिसमयों और चलनों का अंश अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ब्रिटेन के उदाहरण का अनेक राज्यों ने अनुकरण किया है। फलत: वहाँ पर लिखित संविधान होते हुए भी यह उचित समझा गया है कि बहुत-सी संवैधानिक बातों के सम्बन्ध में प्रथाओं और अभिसमयों को विकसित किया जाये।

तीसरे, **ब्रिटेन की शासन पद्धति गतिशीलता और क्रमिक विकासशीलता का सर्वोत्तम उदाहरण** है। जबकि फ्रांस, संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत संघ तथा अन्य अनेक राज्यों में वर्तमान शासन पद्धतियाँ क्रान्ति का परिणाम हैं, ब्रिटेन की शासन पद्धति का विकास, १,००० वर्ष से भी लम्बे काल में क्रमिक रूप से हुआ है और इस विकास-क्रम में कहीं भी क्रान्तिकारी घटनाओं का अभाव है। वास्तव में ब्रिटेन की शासन पद्धति समय के अनुसार परिवर्तित होती रही है। यह बात अन्य

देशों के लिए अनुकरणीय है। जिन राज्यों के शासक समय के अनुसार नहीं बदलते, वहाँ बहुधा परिवर्तन क्रान्ति का परिणाम होते हैं।

चौथे, **ब्रिटेन की शासन पद्धति का विश्व के सबसे अधिक राज्यों पर गहरा प्रभाव पड़ा है।** ब्रिटेन ने अनेक राज्यों को शासन पद्धति के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण बातें दी हैं, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण बातों का संक्षिप्त विवेचन निम्न प्रकार है—(१) ब्रिटेन की पार्लियामेंट अनेक देशों की संसदों अथवा विधायिकाओं की जननी (Mother of Parliaments) है। राष्ट्रमण्डल के प्रायः सभी देशों, कई ब्रिटिश उपनिवेशों और अन्य अनेक देशों में ब्रिटिश पार्लियामेंट जैसी विधायिकायें स्थापित हुई हैं। संसार के अधिकतर प्रगतिशील राज्यों ने ब्रिटेन से द्वि-सदनात्मक विधायिका की शिक्षा ली है। (२) ब्रिटेन की संसदात्मक शासन पद्धति को विश्व के अधिकतर देशों ने अपनाया है। उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल, सामूहिक उत्तरदायित्व, अध्यक्ष समिति व्यवस्था, संसदीय प्रक्रिया, वित्तीय प्रक्रिया आदि अनेक शासन सम्बन्धी बातों व सिद्धान्तों को बहुत से देशों में साधारण परिवर्तनों के साथ स्वीकार किया गया है। (३) अनेक अंग्रेजी भाषाभाषी राज्यों तथा ऐसे राज्यों ने जिनका ब्रिटेन से निकट सम्पर्क रहा है, ब्रिटेन की शासन पद्धति से विधि के शासन के सिद्धान्त और न्यायिक व्यवस्था को लिया है। (४) ब्रिटेन को स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का जन्म-स्थान माना जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका, भारत तथा अन्य अनेक देशों ने स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की स्थापना ब्रिटेन की संस्थाओं की प्रेरणा से अथवा उनके नमूने पर की है।

पांचवें, **ब्रिटेन की शासन पद्धति ने अनेक देशों को विभिन्न प्रकार की शासन संस्थायें देने के साथ-साथ शासन के सिद्धान्त और व्यवहार के विकास में भी महत्वपूर्ण योग दिया है।** इस क्षेत्र में हम इन बातों का विशेष रूप से उल्लेख करेंगे—(अ) उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त और व्यवहार; (आ) द्वि-दलीय पद्धति और विरोधी पक्ष का महत्व; (इ) राष्ट्रीय वित्त पर जनता के प्रतिनिधियों का नियन्त्रण; (ई) अध्यक्ष की निष्पक्षता का सिद्धान्त; (उ) संवैधानिक विकास में प्रथाओं और अभिसमयों का महत्व; (ऊ) न्यायपालिका की स्वतन्त्रता; (ए) विधि के शासन का सिद्धान्त और (ऐ) सफल प्रजातन्त्र के लिए उत्तम परम्परायें।

छठे, आज अनेक देशों में प्रजातन्त्र स्थापित हो गया है और अनेक देशों में साम्यवाद के प्रभाव में एकदलीय शासन की अधिनायकशाही भी कायम है। सभी प्रगतिशील देश अपनी साधारण जनता की आर्थिक दशा सुधारने में लगे हैं, क्योंकि अधिकतर देश कम या अधिक समाजवादी व्यवस्था को लागू करना चाहते हैं। बहुत से व्यक्तियों का विचार है कि सच्चे समाजवाद की स्थापना प्रजातन्त्र के द्वारा नहीं हो सकती और यदि की भी गई तो प्रगति धीमी रहेगी। ब्रिटेन की यह एक महत्वपूर्ण देन है कि **प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के द्वारा समाजवाद की स्थापना के**

सफल प्रयत्न किए जा सकते हैं। ब्रिटेन के दोनों प्रमुख राजनीतिक दलों के सिद्धान्तों और उद्देश्यों में कुछ भी अन्तर हो, वे अपने उद्देश्यों की प्राप्ति प्रजातन्त्रात्मक तरीकों द्वारा ही करने में विश्वास करते हैं।

अन्त में, यह कथन पूर्णतया सत्य है कि **यद्यपि ब्रिटेन सबसे बड़ा साम्राज्यवादी देश रहा है, फिर भी ब्रिटेन ने संसार के अधिकतर देशों में आधुनिक सभ्यता और प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली के विकास में अत्यधिक महत्वपूर्ण योग दिया है।** भूतकालीन ब्रिटिश साम्राज्य के प्रायः सभी स्वतन्त्र व पराधीन उपनिवेशों में ब्रिटेन के सम्पर्क से आधुनिक सभ्यता और प्रजातन्त्रात्मक शासन संस्थाओं का विकास हुआ है। यह सत्य है कि अनेक देशों ने ब्रिटिश जाति के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन किया और संयुक्त राज्य अमरीका व आयरलैंड ने एक प्रकार से युद्ध भी किया, फिर भी इस बात को मानना पड़ता है कि अनेक देशों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए प्रेरणा ब्रिटिश जाति के सम्पर्क से पाई और अनेक ब्रिटिश जनों ने उनके विकास में महत्वपूर्ण सहयोग भी दिया।

३. ब्रिटिश शासन-पद्धति का स्वरूप और उसके तत्व

ब्रिटिश संविधान अथवा शासन-पद्धति का स्वरूप—ब्रिटिश संविधान व शासन-पद्धति के स्वरूप का संक्षिप्त विवेचन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

ब्रिटेन में संविधान है और नहीं भी—कुछ लेखकों का यह मत रहा है कि ब्रिटेन में कोई संविधान नहीं है। फ्रांसीसी लेखक **डी० टॉकविले** ने, जिसे अपने देश के लिखित संविधानों की परम्परा की जानकारी थी, यह मत प्रकट किया कि "इंगलैंड में किसी संविधान का अस्तित्व नहीं है।" ऐसे ही एक अमरीकी विद्यार्थी को एक ब्रिटिश पुस्तकालय में जाने पर यह जानकर कि 'ब्रिटिश संविधान की कोई प्रति नहीं', बड़ा आश्चर्य हुआ। **टॉमस पेन** (Thomas Paine) ने स्पष्ट रूप में कहा है कि 'जहाँ संविधान को दृढ़ रूप में सामने नहीं रक्खा जा सकता, वहाँ संविधान नहीं होता।' इस भ्रम का कारण यह है कि फ्रांसीसी तथा अमरीकी लेखक 'संविधान' से केवल लिखित संविधान का ही अर्थ लेते हैं जो यथार्थ में बहुत ही संकुचित है। ब्रिटेन में संविधान है यद्यपि इसे आलेखों के रूप (documentary form) में नहीं पाया जाता। वास्तव में देखा जाए तो कोई भी राज्य बिना संविधान के नहीं होता। **ब्राइस** ने सत्य ही कहा है कि यद्यपि तकनीकी भाषा में ब्रिटेन का कोई संविधान नहीं है। फिर भी ब्रिटिश संविधान इनका संग्रह है—(अ) असंख्य पूर्व दृष्टान्त जो मनुष्यों की स्मृति तथा विभिन्न लेखों में पाए जाते हैं; (आ) बुद्धिमान राजनीतिज्ञों व महान् न्यायविदों के अधिकारपूर्ण कथन; (इ) प्रथायें, चलन और अभिसमय, आदि और (ई) संविधियाँ जिनके साथ पूर्व दृष्टान्त, प्रथायें और कानूनी निर्णय लगे हुए हैं।

ब्रिटिश संविधान के स्रोत (Sources of the British Constitution)—ब्रिटिश संविधान क्रमिक विकास का परिणाम है; और इसका एक स्रोत नहीं वरन् बहुत से स्रोत हैं। यह एक उस बड़ी नदी के समान है जिसमें अनेक सहायक नदियाँ आकर मिल जाती हैं। सर विलियम एन्सन के शब्दों में, ब्रिटिश संविधान विभिन्न प्रकार की निर्माण सामग्री द्वारा एक ऐसा महल है जिसमें समय-समय पर अपनी आवश्यकताओं के अनुसार दालान, बरामदे, शयन-गृह बना लिए गए हैं। इसके निर्माण में अनेक हाथ लगे हैं। ब्रिटिश संविधान के प्रमुख स्रोतों में निम्नलिखित हैं—(१) आज्ञा-पत्र (Charters); (२) संविधियाँ (Statutes); (३) न्यायिक निर्णय (Judicial decisions); (४) सामान्य विधि (Common Law); (५) पूर्व दृष्टान्त (Precedents); (६) संवैधानिक प्रथायें (Customs); (७) चलन (Usages); और (८) अभिसमय (Conventions)।

उपर्युक्त स्रोतों को मोटे रूप में तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—संविधिक कानून, न्यायिक कानून (case law), और संवैधानिक अभिसमय। प्रथम दोनों प्रकार के कानून ऐसे नियमों से मिलकर बने हैं जिन्हें न्यायालयों में लागू किया जाता है, अतः वे देश के कानूनों का भाग हैं। वे मिलकर संविधान का कानून बनाते हैं, जो कि स्वयं देश के साधारण कानून का भाग है। तीसरी श्रेणी, जो कि कम महत्वपूर्ण नहीं है, विशुद्धतः प्रथागत नियमों से मिलकर बनी है। 'संविधान के कानून और प्रथाओं' वाक्यांश का प्रयोग कभी-कभी तीनों ही प्रकार के संवैधानिक नियमों के समूह के लिए किया जाता है।

ब्रिटिश संविधान के तत्व—मोटे रूप में इन तत्वों को दो समूहों में रक्खा जा सकता है—प्रथम, संविधान के लिखित अथवा कानूनी तत्व और दूसरे, अलिखित तत्व। संविधान के लिखित तत्वों में आज्ञा-पत्रों, संविधियों और न्यायिक निर्णयों को सम्मिलित किया जाएगा। इसी समूह में सामान्य कानून भी आते हैं। **आज्ञा-पत्रों तथा पवित्र समझौतों** (Charters and solemn agreements) में मुख्य ये हैं—(१) सन् १२१५ का महान् आज्ञा-पत्र (Magna Carta); (२) सन् १६२८ का अधिकार याचना-पत्र (Petition of Rights) में उसके अनुसार राजा को पार्लियामेंट की स्वीकृति के बिना कर लगाने का अधिकार न रहा और यह भी निश्चित हुआ कि किसी व्यक्ति को बिना कारण बताए तथा अभियोग चलाए बन्दी नहीं बनाया जाएगा। (३) सन् १६८९ के अधिकार-पत्र (Bill of Rights) के द्वारा राजा एक संवैधानिक शासक बना और पार्लियामेंट की सर्वोपरिता स्थापित हुई।

संविधियाँ (Statutes)—संविधान अर्थात् शासन-पद्धति के सम्बन्ध में पार्लियामेंट ने समय-समय पर अनेक संविधियाँ बनाईं जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण ये हैं—(१) बन्दी प्रत्यक्षीकरण कानून (Habeas Corpus Act) सन् १६७९; (२) स्कॉटलैंड के साथ मिलने का कानून (Act of Union with Scotland) सन् १७०७;

(३) आयरलैंड के साथ मिलने का कानून (Act of Union with Ireland) सन् १८००; (४) म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन कानून, सन् १८३५; (५) सन् १८३२, १८६७, व १८८४ के सुधार कानून; (६) सन् १८७३ व १८७६ के न्यायालय कानून (Judicial Acts); (७) सन् १९११ का संसदीय कानून, आदि।

न्यायिक कानून (Case law)—जबकि संविधिक कानून संसद् द्वारा बनाए होते हैं, न्यायिक कानूनों की सत्ता अनन्यतः इस बात पर निर्भर करती है कि उन्हें न्यायालयों में न्यायाधीश मान्यता प्रदान करते हैं। ऐसे कानूनों के समूह की जड़ें सामान्य कानून (Common law) में हैं, जो कि बहुत पुराने कानूनी नियमों और सिद्धान्तों से मिलकर बना है। उदाहरण के लिए, इस सिद्धान्त को 'कि राजा (रानी) कोई गलती नहीं कर सकता, जिसके कारण राजा (रानी) को न्यायिक कार्यवाही के विरुद्ध उन्मुक्ति प्राप्त है, आरम्भ से ही शाही न्यायाधीशों ने मान्यता प्रदान की। ऐसे ही, क्षमादान के शाही परमाधिकार (Prerogative) तथा अन्य परमाधिकार अपनी सत्ता सामान्य कानून से पाते हैं। तिस पर भी, कठोर परम्परागत अर्थ में सामान्य कानून अब न्यायालयों में विकसित कानून का छोटा अंश है। कानूनी नियमों का बड़ा समूह न्यायाधीशों द्वारा न्यायालयों में सुने गये मुकदमों में दिए गए निर्णयों का परिणाम है।

न्यायालयों में दिये हुए निर्णय विभिन्न चार्टरों व कानूनों की व्याख्या करते हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों द्वारा जनता के अधिकारों की स्थापना हुई हैं। उदाहरण के लिए, सन् १६७० के प्रसिद्ध बुशल मुकदमे (Bushell's Case) के द्वारा जूरी स्वतन्त्रता का सिद्धान्त स्थापित हुआ। इन निर्णयों का डायसी की दृष्टि में इतना अधिक महत्व है कि उसने ब्रिटेन के संविधान को न्यायाधीशों द्वारा निर्मित बताया है। इसी श्रेणी में हम कोक (Coke) और ब्लेकस्टोन (Blackstone) जैसे महान् न्यायविदों की टीकाओं (Commentaries) का उल्लेख करेंगे, जिन्होंने संवैधानिक सिद्धान्तों के अर्थ और क्षेत्र को सीमित करने में महत्वपूर्ण योग दिया है।

सामान्य कानून (Common Law)—सामान्य कानून ऐसे कानूनी नियमों का समूह है जिनका इंगलैंड में पार्लियामेंट द्वारा किसी भी प्रकार की कार्यवाही बिना विकास हुआ है और जिन्हें सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र में मान्यता प्राप्त है। 'सामान्य' विशेषण की व्याख्या इस प्रकार की गई है—मध्य काल में राजा के उच्च न्यायालयों द्वारा प्रशासित कानून सारे राज्य के सामान्य कानून थे, उनके मुकाबले में स्थानीय रूढ़ियों अथवा प्रथाओं पर आधारित नियम अमान्य थे। इनमें से केवल कुछ ही संहिताबद्ध हैं, किन्तु इन सभी के पीछे कानूनी शक्ति हैं। उन्हें पूरी तरह से स्वीकार किया जाता है और न्यायालय उन्हें लागू करते है। ब्रिटिश नागरिकों के मूल अधिकार और स्वतन्त्रतायें ऐसे ही कानूनों पर आधारित हैं। ताज का परमाधिकार भी सामान्य कानून पर आधारित है। ब्रिटेन में भाषण और सभा

करने की स्वतन्त्रता तथा सार्वजनिक अधिकारों के अवैध आचरण के विरुद्ध की जाने वाली शिकायतों का निवारण ऐसे कानूनों द्वारा होता है, जबकि अन्य देशों में नागरिकों के मूल अधिकारों का प्रगणन संविधान में किया गया है। संविधियों की तरह न्यायिक निर्णयों के द्वारा सामान्य कानून के विकास की प्रक्रिया भी जारी है।

मान्यटीकाएँ और ग्रन्थ—कुछ ऐसे ग्रन्थ भी हैं कि जिनमें ब्रिटिश संविधान के सम्बन्ध में दिये गये मत व दृष्टिकोण अधिकारपूर्ण माने जाते हैं और उन्हें साधारणतया स्वीकार किया जाता है। ऐसे मान्य ग्रन्थों में प्रसिद्ध संवैधानिक लेखकों—उदाहरण के लिए, बेजहॉट का 'इंगलिश कंस्टीट्यूशन', डायसी का 'लॉ ऑफ कंस्टीट्यूशन' और अर्सकिन में की 'पार्लियामेंटरी प्रेक्टिस' के ग्रन्थ सम्मिलित किए जा सकते हैं। ब्रिटिश संविधान की व्याख्या और निर्वचन के सम्बन्ध में इन ग्रन्थों के उद्धरणों का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। अतएव ऐसे ग्रन्थों को भी ब्रिटिश संविधान का स्रोत कहा जा सकता है।

संविधान के अलिखित तत्व—ब्रिटेन के संविधान में विभिन्न प्रकार की राजनीतिक प्रथाओं, चलनों अभिसमयों आदि की संख्या अन्य राज्यों की तुलना में बहुत बड़ी है और उनका वहाँ की शासन पद्धति में महत्व भी बहुत अधिक है। चलन और अभिसमय (Usage and Convention) संविधान के कानून के पूरक हैं। यद्यपि वे कानून का अंग नहीं हैं, किन्तु उन्हें फिर भी बन्धनकारी माना जाता है और वे देश की राजनीतिक संस्थाओं को विनियमित करती हैं तथा स्पष्टत: शासन पद्धति का अंग हैं। चलन और अभिसमय के बीच भी अन्तर है। 'अभिसमय' का अर्थ है एक प्रकार का बन्धनकारी नियम, एक ऐसा व्यवहार नियम जिसका पालन वे लोग अनिवार्य मानते हैं जो संविधान के कार्य करने से सम्बन्धित हैं। 'चलन' का अर्थ एक साधारण प्रथा से अधिक कुछ नहीं है। स्पष्ट है कि चलन ही अभिसमय बन सकता है।

अभिसमय लिखित रूप धारण कर सकते हैं और वे अभिसमय संविधान में जीवन और गति का संचार करते हैं। आग और जिन्क के शब्दों में 'ये कानून की सूखी हड्डियों पर माँस भरते हैं और कानूनी संविधान को चालू रखते हैं तथा उसे बदलती हुई आवश्यकताओं व राजनीतिक विचारों के अनुसार संशोधन करते रहते हैं। अभिसमय उन समझौतों, आदतों या प्रथाओं से मिलकर बने हैं, जो राजनीतिक नैतिकता के नियम-मात्र होने पर भी सबसे महत्वपूर्ण सार्वजनिक प्राधिकरणों के दिन प्रतिदिन के यथार्थ सम्बन्धों और गतिविधियों को अधिकांशत: विनियमित करते हैं।'[1]

डायसी (Dicey) के मतानुसार सभी संवैधानिक प्रथाओं की एक सामान्य विशेषता यह है कि ये उस विधि को निर्धारित करने के नियम हैं जिसके अनुसार

1. *Ogg and Zink*, Modern Foreign Governments, p. 29.

राजा की विवेकीय शक्तियों (Discretionary Powers) का प्रयोग किया जाना चाहिए। राजा की ऐसी शक्तियाँ बहुत ही कम रह गई है फिर भी वे शेष हैं, जैसे पार्लियामेंट का सत्र बुलाना, कामन सभा को विघटित (Dissolve) करना, युद्ध की घोषणा करना, इत्यादि। वास्तव में संवैधानिक प्रथायें वह साधन हैं जिनके द्वारा राजा के विशेषाधिकारों का प्रयोग जनता की इच्छानुसार किया जाता है। जनता की इच्छा को उसके प्रतिनिधि पार्लियामेंट में व्यक्त करते हैं। संवैधानिक प्रथाओं की दो विशेषतायें हैं प्रथम, वे प्रथायें उस ढंग को निर्धारित करती हैं जिसके द्वारा संविधान को व्यवहार में क्रियान्वित किया जाता है। दूसरे, इन प्रथाओं के द्वारा संविधान को बदलती हुई सामाजिक आवश्यकताओं और नये विचारों के अनुसार ढाला जाता है।

संवैधानिक कानूनों और अभिसमयों में अन्तर—दोनों का प्रायः समान रूप पालन किया जाता है और ब्रिटेन की शासन-पद्धति दोनों पर ही समान रूप से आधारित है, परन्तु दोनों के बीच महत्वपूर्ण अन्तर है, जिसे विशेषज्ञों ने तीन प्रकार से व्यक्त किया है। प्रथम संवैधानिक प्रथा की अपेक्षा संवैधानिक विधि को अधिक पवित्र समझा जाता है और उनका पालन भी अपेक्षाकृत उच्चतर कर्त्तव्य की भावना से किया जाता है। इस कथन में सत्य का बड़ा अंश है किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि कानून प्रथाओं से अधिक महत्वपूर्ण हैं। अनेक प्रथाओं का महत्व कानूनों से कम नहीं है। उदाहरण के लिए, यह सोचना भी कठिन है कि कोई मन्त्रिमण्डल कामन सभा का विश्वास खोने पर भी त्याग-पत्र न दे अथवा दोनों सदनों द्वारा पास किये गये विधेयक पर ताज की अनुमति न मिले। दूसरे, संवैधानिक कानूनों को न्यायालय भी मानते हैं और उन्हें लागू भी करते हैं, किन्तु प्रथाओं का न्यायालयों की दृष्टि में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। तीसरे, संवैधानिक कानूनों का स्पष्ट रूप से निर्माण किया गया है। दूसरे शब्दों में, उनमें से अधिकांश को पार्लियामेंट ने बनाया है अथवा वे न्यायिक निर्णयों तथा पवित्र समझौतों पर आधारित हैं। इसके विपरीत प्रथाओं का जन्म व्यवहार से हुआ है। यह सब कुछ होते हुए भी कुछ लेखकों के मतानुसार कानून और प्रथा के बीच अन्तर का आधारभूत महत्व नहीं है।

अभिसमयों की प्रमुख विशेषता ही यह है कि वे कानून नहीं होते और उनका न्यायालयों द्वारा लागू किया जाना आवश्यक नहीं है। वे तो अलिखित व्यवहार की प्रथाएँ अथवा नैतिक नियम हैं जिनके पीछे कानूनी शक्ति नहीं है। फिर भी उनके पीछे काफी शक्ति है जो उन्हें संविधान के प्रमुख पहलुओं को निर्धारण करने वाला बनाती है। अभिसमयों के विस्तार का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि वे संविधान की तीन मुख्य शाखाओं में काम करते हैं—(१) ताज और मन्त्रियों के सम्बन्ध में, (२) पार्लियामेंट की प्रक्रिया व दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्धों में, और (३) राष्ट्रकुल (Commonwealth) के सम्बन्धों में।

अभिसमयों अथवा संवैधानिक प्रथाओं का पालन क्यों होता है ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका विभिन्न प्रकार से उत्तर दिया गया है। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि इनके पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है, परन्तु इनके पीछे कोई ऐसी शक्ति अथवा अनुशास्ति अवश्य है जो इन्हें मनवाती है। डायसी के मतानुसार अभिसमयों का कानूनों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है; अतएव यदि किसी अभिसमय का पालन नहीं होता तो साथ में किसी कानून का भी उल्लंघन होता है अथवा सम्बन्धित कानून का उद्देश्य पूरा नहीं होता। उदाहरण के लिए, यह प्रथा है कि पार्लियामेंट का प्रतिवर्ष कम से कम एक सत्र होगा। यदि किसी वर्ष पार्लियामेंट का सत्र न हो तो वार्षिक सैन्य कानून (Army Act) समाप्त हो जायेगा, क्योंकि उसे प्रतिवर्ष पास करना पड़ता है। इसके बिना देश की सशस्त्र सेनाएँ अवैध हो जायेंगी और सरकार का उन पर कोई कानूनी अधिकार न रहेगा। ऐसे ही किसी वर्ष पार्लियामेंट का सत्र न होने पर वित्त कानून और विनियोग कानून (Finance and Appropriation Acts) भी समाप्त हो जायेंगे, क्योंकि उनकी अवधि भी एक वर्ष होती है। इन कानूनों के बिना न सरकार कर वसूल कर सकेगी और न प्रशासन पर व्यय ही। इस मत में सत्य का अंश है किन्तु उसका उत्तर पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं है। यथार्थ में, ऐसे अनेक अभिसमय हैं जिनके पालन न करने से कानूनों पर प्रभाव नहीं पड़ता।

लॉवेल (Lowell) के मतानुसार यह आवश्यक नहीं कि पार्लियामेंट का वर्ष में सत्र न होने के कारण डायसी द्वारा बताये गए परिणाम अवश्य ही निकलें। पार्लियामेंट सर्वोपरि है और यदि वह चाहे तो सैनिक कानून, वित्त कानून व विनियोग कानून की अवधि बढ़ा सकती है। उसका मत यह है कि अभिसमयों का पालन इस कारण से होता है कि उनके पीछे परम्परा और जनमत की शक्ति है। वे एक प्रकार के सम्मान संहिता अथवा खेल के नियम हैं, जिनका पालन होना ही चाहिए। राष्ट्र आशा रखता है और उसे यह आशा रखने का अधिकार है कि पार्लियामेंट प्रतिवर्ष आहूत हो और यदि दूसरा उदाहरण लिया जाए तो जिस मंत्रिमण्डल का कामन सभा में बहुमत न रहे वह त्याग-पत्र दे दे या देश से अपील करे। यह सच है कि यदि सुस्थापित और प्रतिष्ठित अभिसमयों का उल्लंघन हो तो देश में विरोध का तूफान उठ खड़ा होगा। अतएव सरकार और विरोधी दल दोनों ही इस बात के लिए उत्सुक रहते हैं कि वे अभिसमयों का पालन करें जिससे उन्हें निर्वाचन के समय शर्म न उठानी पड़े। इस दृष्टि से संवैधानिक प्रथाओं की रक्षा जनता द्वारा होती है।

अभिसमयों के पालन के लिए एक और कारण भी उत्तरदायी है; वह है 'उनकी उपयोगिता'। व्यावहारिक दृष्टि से अनेक अभिसमय अत्यन्त उपयोगी हैं। यदि उनका उल्लंघन किया जाय तो संसदात्मक शासन का हो अन्त हो जाएगा। यदि कोई दुराग्राही राजा मन्त्रिमण्डल के परामर्श को अस्वीकार कर दे तो उसका

परिणाम यह होगा कि मन्त्रिमण्डल त्याग-पत्र दे देगा। ऐसा करने पर यदि राजा विरोधी दल के नेता को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित करे तो ऐसा मन्त्रिमण्डल चल न सकेगा। राजा के लिए दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि वह कामन सभा को विघटित कर दे और नए चुनाव कराये। चुनाव इस आधार पर लड़ा जायेगा कि राजा ने अपनी शक्तियों का दुरुपयोग किया है, अतएव निर्वाचक-मण्डल उसके कार्य का समर्थन नहीं करेगा और राजा के समक्ष विषम स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। ऐसे राजा को दलगत राजनीति से ऊपर और निष्पक्ष न समझा जायेगा। उसके कार्य का परिणाम राजतन्त्र का अन्त हो सकता है।

अभिसमयों के प्रकार—ब्रिटेन के संविधान में अभिसमयों की संख्या बहुत बड़ी है। वे मोटे रूप में तीन प्रकार के हैं। प्रथम, पार्लियामेंट की सर्वोपरिता के सिद्धान्त के प्रकाश में बहुत से अभिसमय साधारण मार्ग-दर्शन और अथवा सुविधा के नियम हैं जो पार्लियामेंट और कार्यपालिका के बीच सामञ्जस्य उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए, केबिनेट अपनी नीति और शासन कार्यों के लिए पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी है; जिस दल का कामन सभा में बहुमत होता है, उसी के नेता पदारूढ़ होते हैं। इन अभिसमयों का पालन इस कारण से होता है कि उनके उल्लंघन से शासन संचालन में बड़ी असुविधा होगी। दूसरे, कुछ अभिसमय ऐसे हैं जिनका उद्देश्य एक ओर सरकार और संसदीय कार्यवाही तथा दूसरी ओर सरकार, जनमत अथवा निर्वाचक-मण्डल के निर्णय के बीच सामञ्जस्य स्थापित करना है। एक अन्य आधार पर अभिसमयों को निम्नलिखित चार समूहों में रखा जा सकता है—

(क) राजा से सम्बन्ध रखने वाले—इस समूह में प्रमुख ये हैं—(१) राजा को प्रतिवर्ष पार्लियामेंट को आहूत (summon) करना आवश्यक है। (२) पार्लियामेंट के दोनों सदनों द्वारा पास किये गये विधेयकों पर राजा को अनुमति (assent) देनी होती है। (३) मन्त्रिमण्डल का निर्माण करने के लिए राजा कामन सभा में बहुसंख्यक दल के नेता को आमन्त्रित करता है। (४) पार्लियामेंट (व्यवहार में कामन सभा) के प्रति उत्तरदायी किसी मन्त्री के परामर्श पर ही राजा कोई कार्य करता है, अन्यथा नहीं। प्रधानमन्त्री के परामर्श पर ही राजा कामन सभा का विघटन करता है।

(ख) केबिनेट पद्धति से सम्बन्ध रखने वाले—(१) केबिनेट सामूहिक रूप से पार्लियामेंट (व्यवहार में कामन सभा) के प्रति उत्तरदायी है। (२) कामन सभा का समर्थन अथवा बहुमत का विश्वास खोने पर मन्त्रिमण्डल को त्याग-पत्र देना होता है, वह चाहे तो प्रधानमन्त्री राजा को कामन सभा को विघटित करने का परामर्श दे सकता है।

(ग) **पार्लियामेंट से सम्बन्ध रखने वाले**—(१) कामन सभा का अध्यक्ष निर्दलीय होता है अर्थात् दलबन्दी से अलग रहता है। (२) कामन सभा किसी वित्तीय विधेयक पर तभी विचार करती है जबकि उसे राजा (अर्थात् केबिनेट) की सिफारिश पर पेश किया जाये। (३) कामन सभा अनुदान की माँग (demand for grant) में कमी कर सकती है और उसे अस्वीकार कर सकती है, किन्तु उसमें वृद्धि नहीं कर सकती। (४) कानूनी लार्डों के अतिरिक्त अन्य लार्ड उच्च सदन की न्यायिक कार्यवाही में भाग नहीं लेते। (५) यदि कामन सभा में किसी विधेयक या प्रस्ताव पर बराबर मत आयें तो अध्यक्ष अपना निर्णायक मत (casting vote) वर्तमान स्थिति को बनाये रखने (status quo) के पक्ष में देता है।

(घ) **राष्ट्रमण्डल के सम्बन्ध में अभिसमय**—(१) किसी भी उपनिवेश पद प्राप्त अथवा स्वतन्त्र डोमीनियन के शासन सम्बन्धी मामलों में राजा ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल के परामर्श के स्थान पर उसी डोमीनियन के मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा के अनुसार कार्य करता है। (२) पार्लियामेंट किसी डोमीनियन की राय के बिना उसके सम्बन्ध में कोई कानून नहीं बना सकती।

ब्रिटेन का संविधान संयोग और योजना का शिशु है (A child of accident and design)—लिटन स्ट्रेची ने इसे 'बुद्धि और अवसर की सन्तान' (The child of wisdom and chance) कहा है। दोनों ही कथनों का आशय एक-सा है। गत पृष्ठों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि ब्रिटिश संविधान किसी एक निश्चित समय की रचना नहीं वरन् दीर्घकालीन विकास का परिणाम है। (It is a growth and not a make)। इसका विकास अनेक अवसरों पर संयोगवश हुआ अर्थात् यह सदैव ही विवेकपूर्ण अथवा सोच-समझकर किसी योजना के अनुसार नहीं हुआ। यद्यपि समय-समय पर इसके विकास में सचेत उद्देश्य और योजना का भी भाग रहा। उदाहरण के लिए, सन् १२६५ की आदर्श पार्लियामेंट की बैठक एक सदन के रूप में ही हुई, यद्यपि इसमें तीन वर्गों के सदस्यों ने भाग लिया। यह स्वाभाविक था कि आगे जाकर यह तीन सदनों में विभक्त हो जाती, किन्तु संयोग की बात थी कि इसने द्विसदनात्मक रूप ग्रहण किया। इसी प्रकार केबिनेट पद्धति तथा द्विदलीय पद्धति का विकास भी बहुत सीमा तक संयोग के परिणाम हैं। वास्तव में, ब्रिटिश संविधान का विकास अनुभव पर आधारित है, यह किसी तर्कपूर्ण योजना का फल नहीं है। वास्तव में, अंग्रेजों ने अपने संविधान के विभिन्न भागों को वहीं पर पड़े रहने दिया है जहाँ कहीं भी उन्हें इतिहास की लहरों ने जमा कर दिया।

संविधान में परिवर्तन अथवा संशोधन की विधियाँ—वास्तव में जिन तत्वों ने ब्रिटिश संविधान के विकास में योग दिया है, उनके स्रोत संविधान में परिवर्तन व संशोधन लाने वाली विभिन्न विधियाँ हैं। इनमें से प्रमुख ये हैं—(१) अभिसमय

और संवैधानिक प्रथायें, जिनका विस्तृत विवेचन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। ऐसे ही भविष्य में भी आवश्यकतानुसार उपयोगी प्रथायें पड़ सकेंगी। (२) न्यायिक निर्णय—बीते हुए युग में न्यायिक निर्णयों द्वारा अनेक कानूनों की स्पष्ट व्याख्या हुई और उनसे संविधान का विकास हुआ है। ऐसे ही भविष्य में भी विकास होने की पूर्ण सम्भावना है। (३) संविधियाँ—अब तक संविधान सम्बन्धी अनेक कानून पार्लियामेंट ने बनाये हैं। सन् १९१८ का जन प्रतिनिधित्व कानून, सन् १९२८ का सम मताधिकार कानून, सन् १९३७ का ताज के मन्त्रियों का कानून, सन् १९४९ का कानून जिसके द्वारा लार्ड सभा की शक्तियों को प्रतिबन्धित किया गया है, संविधान में महत्वपूर्ण परिवर्तन व संशोधन करने वाले कानूनों के कुछ उदाहरण हैं। पार्लियामेंट भविष्य में भी कानून बनाकर संविधान में चाहे संशोधन कर सकती है। स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासन-पद्धति एक जीती जागती प्रणाली है, जिसमें समय-समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप ही अब ब्रिटेन में राजा नाम-मात्र का अध्यक्ष रह गया है और वहाँ पूर्ण प्रजातन्त्र की स्थापना हुई है। इसी कारण कुछ लेखकों ने इसे 'ताजयुक्त गणतन्त्र कहा है।

४. ब्रिटिश संविधान (शासन पद्धति) की विशेषतायें

ब्रिटिश संविधान के स्वरूप की मुख्य बातों का विवेचन ऊपर किया गया हैं, इसकी अन्य बातों अथवा लक्षणों का विवेचन इसकी प्रमुख विशेषताओं के अन्तर्गत किया जायेगा। अनेक विद्वान लेखकों ने इसकी भिन्न-भिन्न विशेषताओं पर बल दिया है। हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत उनका अति संक्षिप्त विवेचन देते हैं, क्योंकि उनमें से अधिकतर विशेषताओं का विस्तारपूर्ण विवेचन या तो पूर्वगामी पृष्ठों में किया जा चुका है या आगे के अध्यायों में यथास्थान किया जायेगा—

(१) अधिकांशतः अलिखित है—आधुनिक राज्यों में ब्रिटेन का संविधान इस दृष्टि से सर्वप्रमुख है, क्योंकि इसमें अलिखित अंशों, अभिसमयों, संस्थाओं व चलनों का बाहुल्य है। ब्रिटिश संविधान को अलिखित कहने का अर्थ यह है कि उसे किसी आलेख्यरूप (documentary form) में नहीं पाया जा सकता। परन्तु तथ्य यह है कि ब्रिटेन में शासन के विभिन्न अंग हैं, जो स्पष्ट रूप से समझ में आने वाले नियमों और सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करते हैं। वहाँ कोई आलेख नहीं है, किन्तु संविधान है और एक संगठित शासन पद्धति है।

(२) सुसंशोध्यता—यह एक निर्विवाद सत्य है कि सभी राज्यों के संविधानों की तुलना में ब्रिटिश संविधान में सुसंशोध्यता का अंश सबसे अधिक है। इसका कारण स्पष्ट है। ब्रिटेन की पार्लियामेंट सर्वोपरि है और वह साधारण कानूनों की भाँति ही आवश्यकतानुसार संविधान में परिवर्तन कर सकती है। संविधान का पूर्व वर्णित विकास इस तथ्य का अकाट्य प्रमाण है। इसके अतिरिक्त इस संविधान के रूप में संवैधानिक प्रथाओं द्वारा भी परिवर्तन होते रहे हैं और हो सकते हैं।

वास्तव में, संविधान की सुसंशोध्यता इस बात पर ही निर्भर नहीं करती कि इसमें अत्यधिक सुगमता से परिवर्तन किये जा सकते हैं, वरन् इसके प्राविधानों के स्वरूप और संवैधानिक संशोधनों के विषय में जनता के दृष्टिकोण पर भी। ब्रिटिश जाति अपनी रूढ़िवादिता के लिए विख्यात है, इसी कारण वहाँ पर कभी रक्तमय क्रान्ति नहीं हुई, किन्तु उन लोगों ने बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों और नये राजनीतिक विचारों के अनुकूल सदा ही अपने संविधान में आवश्यक परिवर्तन व संशोधन किये हैं।

(३) विकसित है निर्मित नहीं—इस बात को इस प्रकार से भी कह सकते हैं कि यह कई शताब्दियों में हुऐ क्रमिक विकास का परिणाम है अर्थात् इसका किसी समय-विशेष में निर्माण नहीं हुआ। ब्रिटिश शासन पद्धति का विकास किसी विधान शास्त्री या संविधान-वेत्ता के अध्ययन का परिणाम नहीं है, वरन् इसका विकास सदियों में हुआ है और ऐसी जड़ों से जो उस समय तक फैली हैं जबकि देश का शासन उन रेखाओं पर होता था, जिन्हें कि आजकल प्रजातन्त्रात्मक नहीं कह सकते। वास्तव में ब्रिटिश संविधान एक जीवित और विकासशील अथवा गतिशील शासन-पद्धति है। इस संविधान का विकास-क्रम कभी भी नहीं टूटा। इस संविधान के कुछ अशों का निर्माण समय-समय पर पार्लियामेंट के कानूनों द्वारा हुआ है। किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका अथवा भारत आदि राज्यों के संविधानों की भाँति इसे संविधान निर्मात्री सभा या सम्मेलन ने निर्मित नहीं किया।

(४) एकात्मक है—वास्तव में वहाँ की शासन पद्धति एकात्मक शासन का बहुत ही उपयुक्त उदाहरण है। सम्पूर्ण ब्रिटेन (अथवा संयुक्त राज्य) का शासन एक ही केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है। समस्त राज्य-क्षेत्र के लिए कानूनों का निर्माण पार्लियामेंट ही करती है। क्षेत्रीय प्रशासन तथा स्थानीय शासन के लिए राज्य विभिन्न प्रादेशिक इकाइयों में बँटा है, किन्तु उन्हें प्राप्त सभी शक्तियों और अधिकारों का स्रोत पार्लियामेंट द्वारा निर्मित कानून हैं। संयुक्त राज्य अमरीका या भारत की तरह वहाँ पर कोई लिखित संविधान नहीं है। ब्रिटेन में पार्लियामेन्ट सर्वोपरि है। वहाँ पर शक्तियों का वितरण भी नहीं है और न ही कोई सर्वोच्च न्यायालय है।

(५) अभिसमय जन्य है—इस विशेषता का पूर्वगामी पृष्ठों में विस्तारपूर्ण विवेचन किया जा चुका है कि ब्रिटिश शासन पद्धति में अभिसमयों व संवैधानिक प्रथाओं का बहुत बड़ा अंश है।

(६) सिद्धान्तों और व्यवहार में अन्तर—यह भी ब्रिटिश संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। अभी तक देखने में सारी शक्तियाँ राजा में निहित हैं, किन्तु व्यवहार में उसकी शक्तियाँ पूर्णतया दिखावटी हैं। सिद्धान्त रूप में आज भी राजा सभी कानूनों का स्रोत है और शासन के सभी कार्य उसके नाम से किये जाते हैं।

राजा अथवा रानी की सरकार राजा की सेना, राजा के डाकघर और राजा का वफादार विरोधी पक्ष आदि वाक्यांशों का खुलकर प्रयोग किया जाता है और ब्रिटिश नागरिक अपने राजा के प्रजाजन हैं। किन्तु यह सर्वविदित है कि राजा नाममात्र का कार्यपालिका अध्यक्ष है, यथार्थ में वह रबड़ की मोहर के समान है और वहाँ पर पूर्ण प्रजातन्त्र है अर्थात् राजसत्ता जनता अथवा उसके प्रतिनिधियों में निहित है। राजा अब भी निरंकुश शक्ति के चिन्हों को बनाये हुए है जबकि वह उसके सार को खो चुका है।

एक और उदाहरण लीजिए, सिद्धान्त रूप में पार्लियामेंट सर्वोपरि अथवा प्रभुतापूर्ण है। यह मन्त्रिमण्डल को बनाती व तोड़ती है और सरकार की विधायी व कार्यपालिका कार्यवाहियों पर नियन्त्रण रखती है। परन्तु व्यवहार में आज केबिनेट की तानाशाही स्थापित हो गई है और पार्लियामेंट केवल उसके निर्णयों पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगाने वाली संस्था रह गई है। अतएव **मुनरो** का यह कथन है कि ब्रिटिश संविधान में 'कोई बात जैसी दिखाई देती है वैसी नहीं है और जैसी है वैसी नहीं दिखाई देती।' **ऑग** के अनुसार सभी शासनों के सिद्धान्त और व्यवहार में काफी अन्तर पाया जाता है; परन्तु जिस प्रकार अन्तर की बातें ब्रिटिश शासन पद्धति का ताना-बाना बन गई हैं वैसा अन्य किसी शासन पद्धति में नहीं है।

(७) विधि का शासन (Rule of Law)—विधि के शासन का सिद्धान्त ब्रिटेन की सभ्य संसार को महत्वपूर्ण देन है। इसके अनुसार ब्रिटेन में शासन कानूनों का है अथवा कानूनों के अनुसार होता है। ये कानून जनता के प्रतिनिधियों अर्थात् पार्लियामेन्ट द्वारा बनाये जाते हैं, फलतः वहाँ पर सभी प्रकार के स्वेच्छाचारी शासन का सर्वथा अन्त हो गया है। राजा की शक्तियाँ तो नाममात्र की रह गई हैं और मन्त्रिमण्डल पर पार्लियामेंट का नियन्त्रण है। अतएव कानून का शासन जनता की स्वतन्त्रताओं का वास्तविक संरक्षक है। इस पद्धति का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि शासन शक्तियों के प्रयोग पर सदा ही कानून की मर्यादा रहेगी और नागरिक अपने शासक की मनमानी इच्छा का शिकार न होगा। इस प्रकार यह सिद्धान्त कानून की सर्वोपरिता स्थापित करने वाला है। इस मूल्यवान सिद्धान्त की स्थापना पार्लियामेंट के बनाये किसी कानून द्वारा नहीं हुई, वरन् यह तो अनेक संविधानों व न्यायिक निर्णयों में निहित है अर्थात यह सामान्य कानून पर आधारित है।

डायसी के अनुसार इस सिद्धान्त की तीन मुख्य बातें अग्रलिखित है : (१) किसी व्यक्ति को कानून के विरुद्ध दण्ड नहीं दिया जा सकता, अथवा किसी व्यक्ति को शारीरिक दण्ड या सम्पत्ति की हानि केवल कानून के अनुसार ही कानून का उल्लंघन करने पर, जो साधारण न्यायालय में साधारण कानूनी प्रक्रिया द्वारा

सिद्ध होनी चाहिए, दी जा सकती है। (२) केवल यही नहीं कि कोई व्यक्ति कानून के ऊपर है, वरन् यह कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे उसका पद अथवा स्थिति कुछ भी हो, राज्य के साधारण कानूनों के अधीन है और उस पर साधारण न्यायालयों में ही मुकदमा चलाया जाता है। इसका आशय यह है कि सभी व्यक्तियों के लिए ब्रिटेन में एक ही प्रकार के कानून और एक ही प्रकार के न्यायालय हैं। (३) ब्रिटेन में संवैधानिक कानून जो अन्य राज्यों में संविधान का अंग होते हैं नागरिकों के अधिकारों का स्रोत नहीं वरन् परिणाम हैं, जिन्हें न्यायालयों ने पारिभाषित किया है और न्यायालय ही लागू करते हैं। इस प्रकार 'विधि का कानून' नागरिकों की स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध रक्षा और कानून की सर्वोपरिता स्थापित करता है।

(८) नागरिकों के मुख्य अधिकारों का अति संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है। सन् १६८९ के अधिकार-पत्र द्वारा इन अधिकारों की घोषणा की गई—(१) नागरिकों को शस्त्र धारण करने की स्वतन्त्रता होगी। (२) उनसे अत्यधिक जमानत नहीं माँगी जाएगी। (३) उन्हें अमानवीय व असाधारण दण्ड नहीं दिए जायेंगे। (४) उन्हें पार्लियामेंट को अपनी शिकायतों का प्रार्थना-पत्र भेजने का अधिकार होगा। (५) पार्लियामेंट के सदस्यों को भाषण की स्थापना का पूर्ण अधिकार होगा। (६) राजा नये न्यायालय स्थापित नहीं कर सकता और न पार्लियामेंट की सहमति बिना सेना ही रख सकता है। (७) नये कर पार्लियामेंट की अनुमति के विना नहीं लगाये जायेंगे।

उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य प्रमुख नागरिक अधिकार ये हैं—(अ) भाषण की स्वतन्त्रता—ब्रिटिश नागरिकों को यह अधिकार सामान्य कानून के आधार पर प्राप्त है। उन्हें अपने विचार अभिव्यक्त करने और उन्हें प्रकाशित करने का अधिकार है, किन्तु ये बातें अपमानकारी एवं अश्लील नहीं होनी चाहिएँ (आ) धार्मिक स्वतन्त्रता—विभिन्न कानूनों के परिणामस्वरूप ब्रिटेन में सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार है और वहाँ पर किसी भी धर्म के मानने वालों पर न कोई प्रतिबन्ध है और न ही किसी के लिये विशेष रियायतें। संक्षेप में, वहाँ पर धर्म निरपेक्षता का आदर्श अपनाया हुआ है। केवल राज्य का अध्यक्ष 'अंग्रेजी चर्च' का मानने वाला होना चाहिए। (इ) सभा और सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता—परन्तु इस अधिकार पर आवश्यक मर्यादायें हैं—'सम्राट को प्रजाजनों की दृष्टि में गिराना, असन्तोष व द्वेष उत्पन्न करना, जनता को अशान्ति, हिंसा और अव्यवस्था के लिए उत्तेजित करना, शासन और संविधान के विरुद्ध घृणा पैदा करना या शारीरिक शक्ति द्वारा कानूनों में परिवर्तन करना राजद्रोह है।' इसके अतिरिक्त भाषणों व सभाओं पर पुलिस का व्यापक नियन्त्रण रहता है। (ई) संघ बनाने की स्वतन्त्रता—इस पर केवल एक सीमा है और वह यह कि संघों का उद्देश्य और साधन वैधानिक होने चाहिएँ। (उ) प्राण व शारीरिक स्वतन्त्रता—किसी भी व्यक्ति को बिना कानूनी कार्यवाही के प्राण

अथवा शारीरिक स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जा सकता। ये स्वतन्त्रतायें विधि के शासन पर आधारित हैं।

(९) **नागरिक स्वतन्त्रतायें**—भारत, संयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य राज्यों में नागरिक स्वतन्त्रताओं का स्रोत संविधान होता है अर्थात् नागरिकों को बहुत से अधिकार व स्वतन्त्रतायें संविधान में प्रगणित मूल-अधिकारों से मिलते हैं। परन्तु जैसा ऊपर बताया गया है, ब्रिटेन में ऐसा नहीं है, यद्यपि वहाँ पर भी नागरिक स्वतन्त्रताओं की कानूनी अथवा संवैधानिक प्रत्याभूति की कमी नहीं है। ये अधिकार व स्वतन्त्रतायें किसी एक आलेख में संग्रहित नहीं हैं। विभिन्न संविधियों के आधार पर ब्रिटिश नागरिकों को वन्दी प्रत्यक्षीकरण के लेख (Writ of Habeas Corpus Act), शस्त्र धारण करने का अधिकार, याचिका देने का अधिकार, आदि प्राप्त हैं। इनमें से कुछ 'अधिकार-पत्र' में अभिव्यक्त हैं। अन्य अधिकार जैसे भाषण और सभा करने की स्वतन्त्रता तथा धर्म की स्वतन्त्रता आदि का आधार सामान्य कानून हैं। इन सभी के पीछे 'विधि के शासन' का सिद्धान्त है। इन अधिकारों या स्वतन्त्रताओं पर पार्लियामेंट जब चाहे सीमायें लगा सकती है या उन्हें निलम्वित कर सकती है; क्योंकि वह सर्वोपरि है। प्रथम विश्व-युद्ध के काल में पार्लियामेंट ने उनके ऊपर बहुत से प्रतिबन्ध लगाये, परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इन अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का सबसे बड़ा संरक्षक जनमत है और जनमत के विरुद्ध पार्लियामेंट भी कार्य नहीं कर सकती।

(१०) **संसदात्मक कार्यपालिका**—इस प्रकार की कार्यपालिका अथवा शासन-पद्धति की उत्पत्ति तथा विकास ही ब्रिटेन में हुए और अन्य देशों ने उसका अनुकरण किया है। इस प्रकार की कार्यपालिका में शासन का भार मन्त्रिमण्डल पार्लियामेंट (व्यवहार में लोकप्रिय सदन) के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य बहुमत दल से चुने जाते हैं। इसके प्रमुख सदस्यों का निकाय 'केबिनेट' वास्तव में, ब्रिटिश संवैधानिक पद्धति का अन्तर्भाग है। यह शासन को निदेशित करने वाली सर्वोच्च संस्था है।

(११) **पार्लियामेंट की सर्वोपरिता**—यह एक सर्वविदित तथ्य है कि ब्रिटेन में पार्लियामेंट कानूनी रूप से सर्वोपरि है अर्थात् पार्लियामेंट किसी भी प्रकार का कानून बना सकती है। इसकी शक्तियों पर व्यावहारिकता के अतिरिक्त कोई और सीमा नहीं है। यह ऐसा काम करती है तथा परिणाम प्राप्त कर सकती है जिसे मनुष्य निर्मित कानूनों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में डायसी ने लिखा है: 'कानूनी दृष्टि से पार्लियामेंट की सर्वोपरिता (या प्रभुसत्ता) हमारी राजनैतिक संस्थाओं की एक प्रमुख विशेषता है। पार्लियामेंट की प्रभुसत्ता के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि ब्रिटिश संविधान के अनुसार पार्लियामेंट को किसी भी

प्रकार के कानून बनाने या किसी भी प्रकार के कानून के अन्त करने का अधिकार है और इंगलैंड में कानून द्वारा मान्य कोई ऐसा व्यक्ति या संस्था नहीं है जिसे पार्लियामेंट के बनाये कानूनों को बदलने या रद्द करने का अधिकार हो।'

पार्लियामेंट की सर्वोपरिता के सिद्धान्त के कुछ अन्य निष्कर्ष ये हैं—(अ) पार्लियामेंट ब्रिटिश संविधान में किसी भी प्रकार का संशोधन कर सकती है और उसके लिए किसी विशेष विधि के पालन की आवश्यकता नहीं है। संविधान सम्बन्धी कानून का निर्माण किसी भी साधारण कानून की ही तरह किया जाता है। इसी कारण अन्य राज्यों की तरह ब्रिटेन में **संवैधानिक कानून और साधारण कानून** के बीच का अन्तर नहीं है। (आ) चूँकि पार्लियामेंट सर्वोपरि है ब्रिटेन में संयुक्त राज्य अमरीका की भाँति न्यायिक पुनर्बलोकन (Judicial review) की व्यवस्था नहीं है अर्थात् वहाँ पर कोई भी न्यायालय पार्लियामेंट द्वारा बनाये कानून अथवा उसकी किसी धारा को अवैध घोषित नहीं कर सकता। (इ) पार्लियामेंट द्वारा बनाया गया कानून अन्य किसी प्रकार के कानून, सामान्य कानून, अभिसमय अथवा न्यायिक निर्णय के ऊपर सर्वोपरि है।

(१२) **मिश्रित शासन प्रणाली**—कुछ लेखकों के अनुसार ब्रिटेन में शासन के तीनों प्रमुख सिद्धान्तों—राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और प्रजातन्त्र का मिश्रण है। ये अपने मत के समर्थन में राजपद और लार्ड सभा की रचना के वंशानुगत सिद्धान्त का तर्क प्रस्तुत करते हैं। देखने में यह बात सत्य प्रतीत होती है, किन्तु जैसा ऊपर बताया गया है अब वास्तविक तथ्य यह है कि ब्रिटेन में सच्चे प्रजातन्त्र की स्थापना हो चुकी है। राजा का पद ध्वजमात्र अथवा नाममात्र का है, उसमें कोई शक्ति निहित नहीं है। लार्ड सभा की भी शक्तियाँ छिन चुकी हैं। मजदूर दल के विकास और समाजवाद के प्रभाव के परिणामस्वरूप ब्रिटेन में राजतन्त्र व कुलीनतन्त्र का प्रायः अन्त ही हो गया है।

(१३) **द्वि-दलीय पद्धति**—ब्रिटेन में कुछ समय को छोड़कर दो प्रमुख राजनैतिक दल रहे हैं। उनमें से बहुसंख्यक दल का मंत्रिमंडल सत्तारूढ़ होता है और दूसरा दल विरोधी पक्ष में रहता है। यदि किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर मन्त्रिमण्डल की हार हो जाती है, तो उसके परामर्श पर राजा नये चुनाव कराता है, परन्तु यदि पराजित मन्त्रिमण्डल त्याग-पत्र देता है तो राजा विरोधी पक्ष के नेता को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित करता है। इस पद्धति का सबसे बड़ा गुण मन्त्रिमण्डल का स्थायित्व है।

(१४) **सीमित शक्ति विभाजन का सिद्धान्त**—शक्ति विभाजन सिद्धान्त के प्रतिपादक मॉन्टेस्क्यू के मतानुसार तो ब्रिटिश शासन पद्धति का यह विशेष गुण था। यह सच है कि ब्रिटेन में शासन के तीनों अंगों की शक्तियाँ पृथक्-पृथक् हैं, किन्तु यथार्थ में कार्यपालिका और विधायी शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल में केन्द्रीभूत हैं। मन्त्रिमण्डल वास्तविक कार्यपालिका होने के साथ-साथ विधि-निर्माण में प्रधान भाग

लेता है। संयुक्त राज्य अमरीका की भाँति ब्रिटेन में शक्ति-विभाजन सिद्धान्त लागू नहीं है। इसी कारण कुछ लेखकों के मतानुसार ब्रिटेन में इस सिद्धान्त को सीमित रूप से ही लागू किया गया है। वास्तविकता यह है कि ब्रिटेन में इस सिद्धान्त को उत्तर-दायित्व के केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त से संशोधित अथवा मिश्रित किया गया है। यह सच है कि मन्त्रिमण्डल में कार्यपालिका तथा विधायी शक्तियाँ केन्द्रीभूत हैं। इस प्रकार ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में कार्यपालिका और विधायी शक्तियों का मेल हो गया है, परन्तु अन्य देशों की तरह ब्रिटेन की न्यायपालिका स्वतन्त्र है।

प्रश्न

शासन पद्धतियों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिए ब्रिटिश शासन पद्धति का क्या महत्व है ?

ब्रिटिश संविधान के विभिन्न स्रोतों व तत्वों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

कानून और अभिसमय के बीच अन्तर बताइये। अभिसमयों का पालन क्यों होता है ? कुछ महत्वपूर्ण अभिसमयों की व्याख्या कीजिये।

निम्नलिखित कथनों में से किन्हीं दो को समझाइये—
(अ) 'ब्रिटिश संविधान का अस्तित्व ही नहीं है।'
(आ) 'ब्रिटिश संविधान अत्यधिक सुसंशोध्य है।'
(इ) 'ब्रिटिश संविधान संयोग और योजना की संतान है।'

'ग्रेट ब्रिटेन का शासन सिद्धान्ततः निरंकुश राजतन्त्र, स्वरूप में सीमित राजतन्त्र और वास्तविक व्यवहार में लोकतांत्रिक गणतन्त्र है।' इस कथन की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।

ब्रिटिश शासन-पद्धति की किन्हीं पांच विशेषताओं का विवेचन कीजिये।

'ब्रिटिश संविधान विकास का परिणाम है।' इस कथन को समझाइये। संवैधानिक कानून और साधारण कानून में क्या अन्तर है ?

२. राजत्व और ताज

१. राजा (अथवा रानी) और ताज

राजा की उपाधि उत्तराधिकार—सन् १९५३ के शाही उपाधि कानून (Royal Titles Act) के अनुसार वर्तमान रानी की उपाधि इस प्रकार है—"एलिजाबेथ द्वितीय, ईश्वर की अनुकम्पा से संयुक्त राज्य व अन्य प्रदेशों की रानी, राष्ट्रमण्डल की अध्यक्ष, धार्मिक विश्वास की रक्षक।" राजत्व का केन्द्रीय स्थान 'संयुक्त राज्य' में है, उत्तरी आयरलैंड में रानी के प्रतिनिधि के रूप में गवर्नर रहता है। अन्य स्वतन्त्र उपनिवेशों में उसके प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल कहलाते हैं, जिनकी नियुक्ति ताज द्वारा उनके मन्त्रिमण्डलों के परामर्श से की जाती है। संयुक्त राज्य के पराधीन प्रदेशों में साधारणतया रानी के प्रतिनिधि गवर्नर अथवा प्रशासक, आदि कहलाते हैं। ताज के उत्तराधिकार को सन् १७०१ के सेटिलमेंट कानून से विनियमित किया जाता है। ताज के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में यह नियम है। 'प्रभु के पुत्र, ज्येष्ठता के क्रमानुसार गद्दी के अधिकारी होते हैं, यदि पुत्र न हों तो उसी क्रमानुसार यह अधिकार पुत्रियों को मिलता है।' एक प्रभु की मृत्यु और दूसरे की गद्दी पर बैठने के बीच कम से कम समय रहता है। पूर्वगामी प्रभु की मृत्यु के तुरन्त बाद ही नए उत्तराधिकारी की घोषणा की जाती है, उस समय प्रिवी कौंसिल के सदस्यों की उपस्थिति रहती है। इस अवसर पर आध्यात्मिक व लौकिक लार्ड, लार्ड मेयर और लन्दन के अन्य प्रतिष्ठित नागरिकों और अन्य देशों के लन्दन में उच्च आयोगों (High Commissions) को भी आमन्त्रित किया जाता है।

रीजेन्सी अर्थात् राजा का प्रतिनिधित्व (Regency)—राजा के कार्य इतने महत्वपूर्ण हैं कि पार्लियामेंट के कानूनों द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था की गई है कि यदि किसी कारण प्रभु पूर्णतया अयोग्य हो जाए अथवा गद्दी पर बैठने के समय १८ वर्ष से कम आयु का हो तो उन्हें पूर्ण करने के लिए 'रीजेन्ट' नियुक्त किया जाएगा। सन् १९३७ और सन् १९४३ के रीजेन्सी कानूनों में यह व्यवस्था है कि यदि राजा अवयस्क हो तो उसके वयस्क होने तक निकटतम वयस्क उत्तराधिकारी को रीजेन्ट बनाया जाएगा। कानूनों में यह भी व्यवस्था है कि यदि किसी समय राजा 'मस्तिष्क की खराबी या शारीरिक कमी' के कारण अपना कार्य न कर सके तो उसके कार्य के लिए रीजेन्ट नियुक्त किया जाए।

राजघराने का व्यय (Civil List)—सन् १६८९ से पूर्व तक राजा सरकारी कोष से चाहे जितना धन अपने तथा राजघराने पर व्यय किया करते थे। वास्तव में, सम्पूर्ण राजकीय आय राजा की आय समझी जाती थी और राजा जितना

चाहते थे व्यय करते थे । इस प्रथा के दोषों को देखकर सन् १६८६ में, जिस वर्ष कि राजा के पद को पारिभाषित और शक्तियों को सीमित किया गया, यह भी निश्चित हुआ कि राजा को प्रतिवर्ष सरकारी कोष से धन की एक नियत राशि दी जाय और शेष आय पर उसका अधिकार न रहे । उस समय विलियम और मेरी को ७ लाख पौंड प्रतिवर्ष की धनराशि दी गई, जिनमें से उन्हें राजदूतों, न्यायाधीशों व नागरिक सेवकों के भी वेतन देने थे । इन विभिन्न मदों को, जिनका व्यय राजा की निधि से होता था, 'सिविल लिस्ट' का नाम दिया गया । परन्तु आजकल इसका प्रयोग राजघराने के लिए स्वीकृत निधि के लिए होता है । कालान्तर में राजाओं ने अपनी जमींदारियों तथा आय के अन्य स्वतन्त्र स्रोतों को छोड़ दिया और पालियामेंट ने व्यय के अन्य मदों का भार राजा की निधि से हटा लिया ।

सन् १९५२ के सिविल लिस्ट कानून (Civil List Act) ने प्रभु की सिविल लिस्ट के लिए ४,७५,००० पौंड वार्षिक की व्यवस्था की जिसका वितरण इस प्रकार होता है—रानी की प्रिवी पर्स ६०,००० पौंड, राजघराने के अधिकारियों का वेतन १,८५,००० पौंड, राजघराने का व्यय १,२१,००० पौंड, शाही दान और विशेष सेवायें १३,२०० पौंड और पूरक व्यवस्था ६५,००० पौंड । इसी सिविल लिस्ट कानून द्वारा रानी के पति (Duke of Edinburgh) को ४०,००० पौंड वार्षिक दिया जाता है । सन् १९७५ में बने कानून के अन्तर्गत ट्रेजरी संसद् द्वारा स्वीकृत धन में से महारानी की सिविल लिस्ट में समय की महँगाई को देखते हुए पूरक धन की व्यवंस्था कर सकती है । ऐसे ही राजघराने के सदस्यों को मिलने वाले वार्षिक देय धन, सरकारी व्यय, आदि में वृद्धि कर सकते हैं । इस उद्देश्य के लिए अब संसद् को बार-बार कानून नहीं बनाना पड़ेगा ।

राजा (अथवा रानी) और ताज में अन्तर

१९वीं शताब्दी के प्रसिद्ध प्रधान मन्त्री ग्लेडस्टन ने एक बार कहा था कि ब्रिटिश संविधान की भाषा में कई सूक्ष्म भेद हैं; परन्तु कोई भेद इतना महत्वपूर्ण नहीं जितना राजा और ताज में है ।[1] राजा और ताज के बीच अन्तर की मुख्य बातों को हम निम्न प्रकार से रख सकते हैं—

(१) प्रभु अथवा राजा या रानी (Sovereign or Monarch) एक व्यक्ति है और ताज एक संस्था है । प्रभु वह व्यक्ति है जिसे कि ताज संवैधानिक रूप में पहनाया जाता है जबकि ताज (जो कि प्रभु और सरकार दोनों का प्रतिनिधित्व करता है) सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति का चिन्ह है । ताज रानी में निहित है । किन्तु उसके कार्य पालियामेंट के प्रति उत्तरदायी मन्त्री करते हैं । रानी शासन की प्रतीक है, शासन नहीं करती ।

1. *Munro and Ayearst,* The Government of Europe, p. 49.

(२) आरम्भ में सभी शक्तियाँ और अधिकार राजा में निहित थे, किन्तु क्रमिक रूप से उनमें कमी होती चली गई। वास्तव में, उसके सभी अधिकारों और शक्तियों का एक ताज नाम की संस्था को हस्तान्तरण हो गया है। ऑग के शब्दों में, ताज वह संस्था है जो अब उन परमाधिकारों और शक्तियों का प्रयोग करती है, जिनका प्रयोग कभी राजा स्वयं करता था।[1] राजत्व को जब संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में प्रयुक्त किया जाता है वह ताज कहलाता है।

(३) राजा का जन्म होता है, वह मरता है और वह गद्दी पर बैठता है तथा गद्दी का त्याग करता है; परन्तु ताज इन सब बातों से दूर एक संस्था है। इसका आशय यही है कि व्यक्ति के रूप में राजा मरता है किन्तु संस्थागत राजा अर्थात् ताज का अस्तित्व बना रहता है। यही विचार इस उक्ति में अभिव्यक्त है—'राजा मृत है, राजा अर्थात् (ताज) चिरंजीवी हो।'

(४) राजा एक शरीरधारी व्यक्ति होता है; ताज एक अमूर्त विचार अथवा अदृश्य संज्ञा है। मुनरो ने ताज को एक कृत्रिम तथा कानूनी व्यक्ति बताया है। राजा ताज नाम की संस्था का शारीरिक रूप है। चूँकि अब सम्पूर्ण शक्तियों का प्रयोग ताज करता है, किन्तु यह सब कुछ मन्त्रियों के परामर्श अथवा जनता की इच्छानुसार होता है, अतएव ताज को 'शासितों की सहमति' अथवा **'जनता की इच्छा'** भी कह सकते हैं। **सर सिडनी लो** ने ताज को 'एक सुविधाजनक कार्यानुकूल कल्पना' बताया है। इस कथन में भी सत्य भरा है, क्योंकि ब्रिटिश शासन पद्धति में ताज रूपी धारणा से बड़ी सुविधा पैदा हो गई है।

(५) राजा एक वंशानुगत (hereditary) और संवैधानिक प्रमुख है; उसकी शक्तियों का प्रायः अन्त हो गया। शासन संचालन का लगभग सारा कार्य ताज द्वारा होता है। राजा के हाथों से निकलकर शक्तियाँ ताज में निहित हो गई हैं। 'ताज' शब्द शासन की समस्त शक्तियों का प्रतीक तथा कार्यपालिका का पर्यायवाची है।[2] शासन के सभी कार्य ताज के नाम से किए जाते हैं। ताज की सभी शक्तियों का प्रयोग उत्तरदायी मन्त्रियों के द्वारा किया जाता है। इन बातों से स्पष्ट है कि ताज और राजा में अन्तर ब्रिटेन की शासन पद्धति के सिद्धान्त तथा वास्तविकता में अन्य अन्तरों की अपेक्षाकृत कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

1. 'It is the institution to which substantially all prerogatives and powers, once belonging to the king in person have gradually been transferred.'
   —*F. A. Ogg,* English Government and Politics, p. 83–84

2. 'The term 'Crown' represents the sum-total of governmental powers and is synonymous with the Executive.'
   —*Wade and Philips,* Constitutional Law, p. 123.

२. ताज और राजा की शक्तियाँ

ताज की शक्तियों के दो प्रमुख स्रोत हैं—परमाधिकार और संविधियाँ (Prerogatives and Statutes)। पार्लियामेंट प्रति वर्ष अनेक संविधियों का निर्माण करती है, जिनके द्वारा ताज को शासन सम्बन्धी कार्यों में विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ अथवा अधिकार मिलते हैं। प्रश्न यह उठता है कि परमाधिकार क्या है ? मौलिक रूप में जो शक्तियाँ राजा में निहित थीं उन्हें ताज के परमाधिकार समझा गया था। उन शक्तियों को पार्लियामेंट की कार्यवाही द्वारा राजा को प्रदान नहीं किया गया था। आज भी ताज के कुछ अधिकार परमाधिकार का जीवित रूप हैं, परन्तु आज की अधिकांश शक्तियाँ पार्लियामेंट द्वारा दी गई हैं। ताज के कुछ परमाधिकारों का बहुत समय से प्रयोग न होने के कारण लोप हो गया है। संक्षेप में, परमाधिकार उन शक्तियों का द्योतक है, जिन्हें पार्लियामेंट ने प्रदान नहीं किया। डायसी के शब्दों में, परमाधिकार राजा की विवेकीय सत्ता में से वे अवशिष्ट शक्तियाँ हैं जो कानूनी रूप से ताज के हाथों में छोड़ दी गई हैं।

कीथ के शब्दों में परमाधिकार वे (शक्तियाँ) हैं जो शासन को स्थिर रखने, आन्तरिक अव्यवस्था से राज्य की रक्षा करने और अन्य राज्यों के साथ सम्बन्धों के संचालन के लिए आवश्यक हैं।[1] वास्तव में, ये ताज के वे उच्च अधिकार हैं, जिनका केवल ताज ही अन्य सभी व्यक्तियों के ऊपर उपभोग करता है और जिनका आधार सामान्य कानून अथवा प्रथायें हैं न कि पार्लियामेंट द्वारा निर्मित कानून। ये अधिकार पहले राजा को उसकी राजसी प्रतिष्ठा अथवा श्रेष्ठता के कारण प्राप्त थे। मोटे रूप में इन परमाधिकारों को दो समूहों में रक्खा जा सकता है—(अ) व्यक्तिगत और (ब) राजनीतिक। प्रथम समूह में इन्हें सम्मिलित किया जाता है—(१) राजा कभी भूल नहीं करता; (२) राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है। दूसरे समूह में सम्मिलित परमाधिकारों का क्षेत्र शासन व धर्म के प्रायः सम्पूर्ण क्षेत्र तक विस्तृत है। इस श्रेणी में उल्लेखनीय परमाधिकार ये हैं—(१) पार्लियामेंट को आहूत करना है; (२) कॉमन सभा को विघटित तथा पार्लियामेंट का सत्रावसान करना; (३) पीयर बनाना; (४) मन्त्रियों और न्यायाधीशों को नियुक्त करना; (५) युद्ध की घोषणा तथा सन्धि करना; (६) क्षमादान करना; (७) राजकीय चार्टरों द्वारा कारपोरेशन स्थापित करना, इत्यादि। ताज की शक्तियों का विवेचन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे—

कार्यपालिका व नागरिक प्रशासन के क्षेत्र में शक्तियाँ—(१) ताज कार्यपालिका का सर्वोच्च अधिकारी है और सभी कानूनों का पालन कराता है। सभी महत्त्वपूर्ण

1. 'Prerogatives are the sum-total of "those (powers) which are essential for the maintenance of government, for preservation of the realm against internal tumults for the conduct of relation with other states.'

—*A. B. Keith*, The King and the Imperial Crown.

आदेश उसी के नाम से जारी किए जाते हैं। (२) प्रधान मन्त्री और उसके परामर्श से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति भी ताज द्वारा की जाती है। (३) सम्पूर्ण नागरिक प्रशासन की देख-रेख तथा कानूनों को लागू कराने का भार ताज पर है। (४) सभी उच्चतर श्रेणियों के कार्यपालिका तथा प्रशासन अधिकारियों व आयोगों आदि के सदस्यों की नियुक्ति ताज द्वारा होती है। (५) कुछ अपवादों के साथ ताज को प्रशासनिक अधिकारियों को निलम्बित और सेवा से अलग करने का अधिकार भी है। (६) शासन का प्रमुख होने के नाते ताज पार्लियामेंट के सम्बन्ध में भी बहुत से प्रशासनिक कार्य भी करता है। इनमें ये मुख्य हैं—(अ) पार्लियामेंट को आहूत करना; (आ) पार्लियामेंट का सत्रावसान करना; (इ) कामन सभा का विघटन करना; (ई) पार्लियामेंट में भाषण देना अथवा संदेश भेजना; (उ) कामन सभा का निर्वाचन कराना; और (ऊ) लार्ड सभा में पीयर बनाना, इत्यादि।

विधि-निर्माण के सम्बन्ध में शक्तियाँ—ताज कार्यपालिका शक्तियों का रखवाला ही नहीं है वरन् वह विधि-निर्माण कार्य में भी भाग लेता है। वास्तव में, ताज विधानमण्डल का एक आवश्यक अंग है, क्योंकि संवैधानिक दृष्टि से ब्रिटेन में कानूनों का निर्माण 'ताज और पार्लियामेंट' (King-in-Parliament) द्वारा होता है। पार्लियामेंट द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक (Bill) ताज की अनुमति मिल जाने पर ही कानून (Act) बनता है, सरकारी व्यय के लिए अनुदान की माँगें (Demands for grants) ताज की सिफारिश पर ही कामन सभा में पेश की जाती हैं। प्रतिवर्ष ताज द्वारा अनेक सपरिषद् आदेश (Orders-in-Council) भी जारी किए जाते हैं। ये आदेश पार्लियामेंट द्वारा निर्मित किसी कानून के आधीन जारी होते हैं और उनमें सम्बन्धित कानून के अन्तर्गत आदि नियम दिए होते हैं। पार्लियामेंट के प्रत्येक सत्र के आरम्भ में राजा अथवा रानी का भाषण (Speech from the Throne) होता है। इस भाषण की भाषा का रूप कुछ इस प्रकार होता है—'मेरे मन्त्री ऐसा करने का विचार करते है और उनके ये प्रस्ताव हैं।' पार्लियामेंट के दोनों सदनों में कृपामय भाषण के उत्तर में भेजे जाने वाले सम्बोधन (Address) पर वाद-विवाद होता है।

सशस्त्र सेनाओं के सम्बन्ध में शक्तियाँ—राजा (अथवा रानी) स्थल सेना, नौ-सेना तथा वायु सेना का सेनापति भी है। सशस्त्र सेना के तीनों विभागों के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति ताज द्वारा की जाती है।

न्यायपालिका के सम्बन्ध में—ताज न्याय का स्रोत (Fountain of Justice) है और इंगलैंड के सभी न्यायालय ताज के न्यायालय हैं। ताज न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है और पार्लियामेंट की सिफारिश पर ताज उन्हें पद से अलग भी कर सकता है। उसे क्षमादान व अविलम्बन देने आदि के अधिकार भी प्राप्त हैं।

धर्म सम्बन्धी शक्तियाँ—ताज इंगलैंड के स्थापित चर्च (Head of the established Church of England) का प्रमुख है। वह लाट पादरी (Archbishop)

और अन्य उच्च व महत्वपूर्ण चर्च अधिकारियों को नियुक्त करता है। ताज ही धार्मिक सम्मेलनों को आहूत करता है और उनके अधिनियमों पर स्वीकृति भी देता है। ताज स्कॉटलैंड के चर्च का भी प्रमुख है। इसी कारण उसे 'धर्म का रक्षक' भी कहते हैं।

अन्य शक्तियाँ—ताज उपाधियों का भी निर्भर अथवा स्रोत (Fountain of Honours) है। यह ब्रिटिश नागरिकों को उनकी प्रतिष्ठित सेवाओं के लिए विभिन्न प्रकार की उपाधियाँ देता है। उपाधि-वितरण वर्ष में दो बार होता है—नव वर्ष के प्रारम्भ पर तथा प्रभु के जन्म-दिन पर।

वैदेशिक सम्बन्धों के क्षेत्र में—ताज युद्ध की घोषणा व अन्य देशों से सन्धियाँ करता है। ताज ही अन्य राज्यों में ब्रिटेन के राजदूतों, उच्च आयुक्तों (High Commissioners) और अन्य उच्च श्रेणी के प्रतिनिधियों को नियुक्त करता है। ताज विदेशों से सम्बन्धों का संचालन भी करता है। अन्य राज्यों के राजदूत अपने प्रमाण-पत्र भी ताज के सामने प्रस्तुत करते हैं।

राष्ट्रमण्डल के देशों तथा ब्रिटेन के आधीन अन्य प्रदेशों के सम्बन्ध में—इस समय राष्ट्रमण्डल में दो प्रकार के राज्य सम्मिलित हैं—प्रथम, गणराज्य और स्वतन्त्र उपनिवेश। प्रथम श्रेणी में भारत व पाकिस्तान आदि आते हैं और दूसरी श्रेणी में आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड व कनाडा आदि प्रमुख हैं। गणराज्य तो राजा अथवा रानी को केवल राष्ट्रमण्डल का प्रमुख मानते हैं। इस रूप में उसके कोई अधिकार नहीं हैं। स्वतन्त्र उपनिवेश अभी तक ब्रिटेन के राजा (या रानी) के प्रति निष्ठा रखते हैं। इन देशों में राजा (या रानी) का प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल होता है, जिसकी नियुक्ति ताज द्वारा सम्बन्धित राज्य के मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर की जाती है। सभी राष्ट्रमण्डलीय देशों में ब्रिटेन के उच्चायुक्त रहते हैं जिनकी नियुक्ति ताज द्वारा होती है। अन्य पराधीन देशों व प्रदेशों में ताज द्वारा नियुक्त गवर्नर अथवा प्रशासक रहते हैं। ताज को इनके सम्बन्ध में कुछ विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं और न्यायिक अधिकार भी।

उपर्युक्त वर्णित शक्तियाँ और अधिकार वैधानिक दृष्टि से ताज में निहित हैं, किन्तु यथार्थ में उन सभी का प्रयोग प्रधान मन्त्री तथा अन्य उच्च अधिकारियों द्वारा किया जाता है। वास्तव में, ताज की शक्तियों के रखवाले मन्त्री हैं न कि राजा (अथवा रानी)। मन्त्रियों का नियन्त्रण इस सीमा तक विस्तृत है कि राजा के कुछ व्यक्तिगत सेवकों को छोड़कर अन्य सभी अधिकारियों की नियुक्ति अथवा छाँट मन्त्रियों के हाथों में है। यही कारण है कि पार्लियामेंट ताज को सहर्ष शक्तियाँ प्रदान करती चली जाती है। इन शक्तियों का प्रयोग राजा (या रानी) नहीं वरन् उत्तरदायी मन्त्री करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ताज जो कुछ भी करता है, चाहे परमाधिकारों का प्रयोग हो या पार्लियामेंट के कानूनों द्वारा दी गई शक्तियों का प्रयोग, वह ब्रिटिश जनता के कार्यपालिका प्रतिनिधि के रूप में करता है और

ये सभी कार्य पार्लियामेंट के नियन्त्रण के अधीन हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि आजकल ताज की शक्तियाँ अतीत के किसी समय से भी बढ़कर हैं और बढ़ती चली जा रही है।

ऑग और जिंक के शब्दों में 'यह ब्रिटिश संविधान की आत्म-विरोधी उक्ति प्रतीत होती है कि प्रजातन्त्र के विकास के साथ-साथ ताज की शक्तियों में विस्तार हुआ है' यद्यपि यह बात काफी तर्कपूर्ण है, यदि सच्ची स्थिति को समझ लिया जाए। अब ताज राज्य के जहाज की चालक शक्ति नहीं है, पर यह वह मस्तूल है, जिस पर पाल बँधा हुआ है; अस्तु यह केवल उपयोगी ही नहीं है, वरन् जहाज का आवश्यक अंग है। जैनिंग्स का यह मत सच है कि ताज का प्रभाव उसके धारण करने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। शासन के कार्यों की ताज के नाम से प्रतिष्ठा बढ़ती है, क्षमता नहीं।

३. राजा (अथवा रानी) की शक्तियों पर कुछ विचार

राजा कोई भूल नहीं करता (The king can do no wrong)—ब्रिटिश संविधान की यह एक बड़ी महत्वपूर्ण उक्ति है। इसके दो रूप हैं—कानूनी और राजनीतिक। **कानूनी रूप में राजा अपने कार्यों के लिए कानून से ऊपर है, अर्थात् वह कानूनी दृष्टि से पूर्णतया अनुत्तरदायी है।** राजा के विरुद्ध दीवानी अथवा फौजदारी किसी भी प्रकार की कार्यवाही न्यायालयों में नहीं की जा सकती। डायसी ने कहा है कि यदि राजा प्रधान मन्त्री को भी गोली मार दे तो कोई ऐसी कानूनी कार्यवाही नहीं जो उसके विरुद्ध की जा सके। यह सिद्धान्त राजनीतिक क्षेत्र में भी लागू होता है। यदि राजा कोई राजनीतिक भूल करे या किसी प्रकार के अपराध का परामर्श दे तो भी उसके विरुद्ध कुछ नहीं किया जा सकता और उस भूल के लिए सम्बन्धित विभाग का मन्त्री उत्तरदायी ठहराया जायेगा। **इसका यह भी आशय है कि यदि राजा स्वयं कोई भूल नहीं कर सकता तो वह अन्य किसी को भी भूल करने के लिए अधिकृत नहीं कर सकता।** इसका यह अर्थ हुआ कि यदि कोई मन्त्री किसी कानूनी या संवैधानिक अपराध के लिए दोषी हो तो वह अपने बचाव में यह नहीं कह सकता कि उसने वह कार्य राजा के आदेश से किया है। इस प्रकार मन्त्री लोग राजा की कानूनी उन्मुक्ति की शरण लेकर अपने को नहीं बचा सकते।

उपर्युक्त सिद्धान्त का आधार यह है कि राजा की शक्तियाँ नाममात्र की हैं, वास्तविक शक्तियाँ मन्त्रियों के हाथों में आ गई हैं। एक बार एक दरबारी ने चार्ल्स द्वितीय के शयन कक्ष के द्वार पर अग्रलिखित आशय की चार पंक्तियाँ लिख दी थीं, जिनको पढ़कर राजा ने कहा था कि वे सत्य हैं; क्योंकि उसके कार्य वास्तव में मन्त्रियों के कार्य हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि उन कार्यों के लिए उत्तरदायित्व भी मन्त्रियों का ही हो :

'यहाँ सोते हैं सम्राट हमारे अधिराज
विश्वास नहीं करता जिनकी बातों का कोई
कभी कम अकली की बात नहीं कहते हैं
और न करते हैं बुद्धि की बात ही कोई'

पूर्वोक्त सिद्धान्त की दो आधारों पर आलोचना की गई है—प्रथम, इससे राजा की निरंकुशता प्रकट होती है; क्योंकि वह कानून के ऊपर है और किसी भी प्रकार की भूल करने पर उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती, परन्तु उसके प्रायः सभी कार्यों के लिए कोई एक या दूसरा मन्त्री उत्तरदायी होता है। दूसरे, राजकर्मचारियों को यह भय रहता है कि यदि उनसे कोई भूल हो गई तो उन्हें व्यक्तिगत रूप से दोषी ठहराया जायेगा, क्योंकि कानून की विधि के अन्तर्गत राजा अथवा राज्य के विरुद्ध कार्यवाही नहीं की जा सकती। इससे नागरिकों के अधिकारों को भी हानि पहुँचती है, क्योंकि वे राज्य के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं कर सकते थे। परन्तु दूसरे विश्व-युद्ध के बाद सन् १९४७ में मजदूर दल की सरकार ने एक कानून (Crown Proceeding Act) पास कराया जिसके अनुसार अब राजा के विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है। इस प्रकार अब राजकर्मचारी के विरुद्ध सरकारी हैसियत में की गई भूल के लिए कार्यवाही की जा सकती है। इस दृष्टि से 'राजा कोई भूल नहीं कर सकता' सिद्धान्त का शासन के क्षेत्र में अन्त हुआ, परन्तु राजा की व्यक्तिगत भूख के लिए अब भी कोई उपचार नहीं है।

राजा राज्य करता है, शासन नहीं करता (The King reigns but does not govern)—१९वीं शताब्दी में राजा राज्य भी करता था और शासन भी; परन्तु प्रजातन्त्र के विकास के परिणामस्वरूप राजा केवल संवैधानिक अथवा नाम-मात्र का शासन प्रमुख रह गया है। उसकी सभी वास्तविक शक्तियों का 'ताज' नाम की अमूर्त अथवा काल्पनिक संस्था को हस्तांतरण हो गया है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है ताज में शासन की अनेक शक्तियाँ निहित हैं वास्तव में उन शक्तियों में प्रजातन्त्र के साथ-साथ विस्तार हुआ है, किन्तु ताज की किसी शक्ति का प्रयोग राजा (या रानी) व्यक्तिगत रूप में नहीं करता। ताज की सभी शक्तियों का प्रयोग उत्तरदायी मन्त्रियों द्वारा किया जाता है। अस्तु, यह सच है कि राजा के हाथों में शासन की कोई शक्तियाँ नहीं हैं, अर्थात् राजा शासन नहीं करता। परन्तु राजा राज्य और शासन का प्रमुख है, सारे कार्य उसके नाम से होते हैं; सरकार और सेना आदि सब राजा की है; और राजा अथवा रानी को राजाओं जैसा सम्मान व प्रतिष्ठा भी प्राप्त है। अतः यह कहना भी सत्य है कि राजा राज्य करता है अर्थात् नाम-मात्र का राजा है। सम्पूर्ण शक्तियों का प्रतीक अब भी राजा

है, किन्तु उनका सार उसके हाथों से निकल गया है। साधारणतया राजा वही काम करता है जो कि उत्तरदायी मन्त्री उसे करने को कहते है।[1]

राजा की वास्तविक शक्तियाँ और प्रभाव—उपर्युक्त विवेचन के बाद यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या राजा की कोई वास्तविक शक्तियाँ हैं ? साथ ही यह भी कि शासन में उसका प्रभाव क्या है ? सच तो है कि अब राजा के हाथों में कोई वास्तविक शक्ति शेष नहीं रही है; क्योंकि उसे प्रायः कोई काम करने का अधिकार ही नहीं है। उसकी सारी शक्तियाँ 'ताज' को हस्तांतरित हो गई हैं और उनका प्रयोग मन्त्रियों के परामर्श के अनुस र होता है। रानी (अथवा राजा) राज्य की प्रतीक है। कानून में, वह कार्यपालिका की प्रमुख है, विधि निर्माण प्रक्रिया का आवश्यक अंग है, न्यायपालिका की भी प्रमुख है, ताज की सभी सशस्त्र सेनाओं की सेनापति है और इगलेंड के स्थापित चर्च की लौकिक प्रमुख (Temporal head) है। व्यवहार में, एक लम्बी विकासवादी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप, जिसके दौरान राजत्व की पूर्ण शक्तियां क्रमिक रूप से कम हुई हैं, रानी अब केवल अपने मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करती है वह राज्य करती है शासन नहीं करती। रानी के नाम से ही संयुक्त राज्य का शासन रानी की सरकार द्वारा किया जाता है। इसी कारण कुछ लेखकों ने ब्रिटेन को पैतृक राष्ट्रपति (Hereditary President) के अधीन एक गणतन्त्र बताया है और कोई-कोई राजा को स्वर्णिम शून्य (Golden Zero) अथवा रबर की मोहर कहता है।

परन्तु आज भी शासन के कुछ महत्वपूर्ण कार्य हैं जिन्हें राजा या रानी करते हैं, यथा एक मन्त्रिमण्डल के त्याग-पत्र देने पर नये प्रधानमन्त्री की छाँट तथा कामन सभा का विघटन। कुछ लेखकों की राय में इन कार्यों के करने की शक्ति अथवा परमाधिकार राजा में निहित है। साधारण परिस्थितियों में इनका प्रयोग भी मन्त्रियों के परामर्श से होता है और राजा के लिए जहाँ तक प्रधानमन्त्री की छाँट का प्रश्न है, विवेक के प्रयोग का अवसर नहीं आता; किन्तु कभी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं कि राजा अपनी विवेकीय शक्तियों का प्रयोग कर सके। जब कभी कामन सभा में किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत न हो तो राजा किसे प्रधानमन्त्री नियुक्त करेगा ? ऐसे अवसर पर तथा मन्त्रिमण्डल के त्याग-पत्र देने पर साधारणतया राजा पूर्वगामी प्रधान-मन्त्री से उसके उत्तराधिकारी के विषय में परामर्श लेता है। ऐसा भी हुआ है कि राजा ने इस प्रकार का परामर्श नहीं लिया।

१९५७ में स्वेज नहर के प्रश्न पर ब्रिटिश सरकार ने इजिप्ट के विरुद्ध असफल सैनिक कार्यवाही की थी, जिसके परिणामस्वरूप तत्कालीन प्रधान मन्त्री ईडन

1. 'In general, the king's job is simply to do what his responsible ministers tell him to do.'
—*Carter et al*, Major Foreign Powers, p. 125.

को त्याग-पत्र देना पड़ा। उस समय अनुदार दल का ही बहुमत था, किन्तु उसने किसी को अपना नया नेता न चुना था। नेतृत्व के लिए राजा के सामने दो नेताओं—आर० ए० बटलर और हेरोल्ड मेकमिलन के बीच में छाँट करने का अवसर था। रानी ने दो बुजुर्ग राजनीतिज्ञों—चर्चिल और सेलिसबरी—से मन्त्रणा की और मेकमिलन को नया मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित किया। मजदूर दल के नेताओं ने मेकमिलन की छाँट के लिए रानी को अधिक दोष नहीं दिया, परन्तु इस बात की आलोचना की कि अनुदार दल को अपने नेता का चुनाव करना चाहिए था, जिसे रानी प्रधानमन्त्री बनाती। ऐसा न होने पर रानी को अनुदार दल की आन्तरिक राजनीति में फँसना पड़ा। संवैधानिक दृष्टि से यह एक बड़ी गम्भीर बात थी; यदि अनुदार दल मि० मैकमिलन को अपना नेता बनाने को तैयार न होता तो रानी के लिए बड़ा संकट पैदा हो जाता।

सरकार को पदच्युत करने और पार्लियामेंट (कामन सभा) के विघटन के सम्बन्ध में जैनिंग्स का मत है कि यदि राजा को ऐसा विश्वास हो जाये कि शासक दल को बहुमत का समर्थन नहीं रहा है, तो पहले उसे इस विषय में पूर्ण जानकारी करनी चाहिए और यदि उसका विश्वास सच है तो मन्त्रिमण्डल से त्याग-पत्र देने या कामन सभा का विघटन करने पर जोर दे सकता है। परन्तु यदि मंत्रिमण्डल राजा की बात न माने तो राजा मन्त्रिमण्डल को अपदस्थ कर सकता है। हमारी राय में राजा को ऐसा पग उठाने से पूर्व पूरी तरह से भावी परिणामों के बारे में सोच लेना चाहिए। यदि कामन सभा का विघटन किया जाये और वही दल बहुमत में चुना जाये तो राजा की स्थिति संकटमय हो जायेगी। अतः जैनिंग्स का यह मत है कि या तो राजा अपने मन्त्रियों को इस बात के लिए तैयार कर ले कि वे उसे कामन सभा के विघटन का परामर्श दें या मन्त्रिमण्डल त्याग-पत्र दे दे। दूसरे शब्दों में, राजा 'कामन सभा' के विघटन सम्बन्धी अपने परमाधिकार का प्रयोग बिना परामर्श के नहीं कर सकता।

शासन कार्यों में (राजा अथवा रानी) का प्रभाव—यह तथ्य कि साधारणतया रानी (या राजा) स्वतन्त्रतापूर्वक राजनीतिक निर्णय नहीं कर सकती, उसे दूसरों द्वारा किये जाने वाले निर्णयों को प्रभावित करने से वंचित नहीं करता। वास्तव में, संवैधानिक रानी की स्थिति ऐसी है कि उसे शक्ति के प्रयोग के तो नहीं किन्तु प्रभाव डालने के अनगिनत अवसर मिलते हैं। सार्वजनिक मामलों के केन्द्र में स्थित होने के नाते रानी की सभी प्रकार की सूचना तक अप्रतिबन्धित पहुँच है तथा शक्तियों का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों से ऐसा सम्पर्क रहता है जैसा कि अन्य किसी का नहीं रहता। सभी महत्वपूर्ण राजकीय प्रपत्र उसको उपलब्ध होते हैं और उसे प्रधान मन्त्री सहित मन्त्रियों के सामने अपने मत रखने के प्रचुर अवसर मिलते हैं। उसकी स्थिति के स्थायित्व के कारण उसे निरन्तर अनुभव प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार किसी भी राजा या रानी को कई सरकारों (मन्त्रिमण्डलों) के साथ

कार्य करने का अनुभव होता है। इसके अतिरिक्त उसकी अत्यधिक लोकप्रियता और प्रतिष्ठा इस वात को सुनिश्चित वनाते हैं कि उसके मतों को आदर के साथ सुना जायेगा। निष्कर्ष यह है कि राजा (या रानी), जिसमें आवश्यक वैयक्तिक गुण हों, ऐसी स्थिति में है कि वह घटनाओं को नियन्त्रित किये बिना प्रभावित कर सकता है। शाही प्रभाव में योग देने वाले कारकों में कदाचित सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि राजत्व के साथ निष्पक्षता की परम्परा सम्बन्धित है। आनुवंशिक राजा की स्थिति विभिन्न समूहों व हितों के समर्थन पर निर्भर नहीं करती है।

इस सम्बन्ध में वाल्टर बेजहॉट का मत विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने अपने ग्रन्थ 'अंग्रेजी संविधान' में लिखा है—राजा (Sovereign) को हमारे जैसे संवैधानिक राजत्व (Constitutional Monarchy) में तीन अधिकार प्राप्त हैं—(१) मन्त्रणा देने का अधिकार, (२) उत्साहित करने का अधिकार और (३) चेतावनी देने का अधिकार (The right to be consulted, the right to encourage, the right to warn) और किसी भी बुद्धिमान व चतुर राजा के लिए अन्य अधिकारों की आवश्यकता नहीं है।

४. राजत्व क्यों कायम है?

आज के प्रजातन्त्री युग में यह प्रश्न बड़ा ही महत्वपूर्ण है। कुछ आलोचकों के मतानुसार अतीत की इस संस्था को बनाये रखना वास्तविक दशाओं के विरुद्ध है तथा एक प्रकार का पाखण्ड है अर्थात् अंग्रेज लोग एक बात कहते हैं, परन्तु कार्य उसके विपरीत करते हैं। दूसरे शब्दों में, ब्रिटिश जाति प्रजातन्त्र की बड़ी समर्थक बनती है, परन्तु राजत्व को बनाये हुए है। हमारे मत में ऐसी बात नहीं है, वरन् राजत्व का व्यवहार में बड़ा महत्व है। बार्कर के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर तीन प्रकार से दिया जा सकता है। प्रथम, यह बड़े व्यावहारिक महत्व की वात है कि ब्रिटेन के मन्त्री राजा के मन्त्री हैं और उनके पद के साथ राजा के नाम का मान जुड़ा है। इससे मन्त्रियों का पद कहीं ऊँचा और अधिकारपूर्ण हो जाता है, क्योंकि वे केवल किसी एक दल अथवा पार्लियामेंट का ही प्रतिनिधित्व नहीं करते, वरन् राज्य के प्रतीक और चुम्बक केन्द्र (Megnetic Centre) के मन्त्री हैं। दूसरे, राजा नियमित रूप से शासन के बारे में जानकारी पाता रहता है और मन्त्री उससे सदैव मन्त्रणा करते हैं। प्रधान-मन्त्री निरन्तर राजा से सम्पर्क रखता है और मन्त्री उसे पार्लियामेंट की कार्यवाही तथा केबिनेट की कार्यवाहियों से अवगत कराता रहता है। इस प्रकार राजा लम्बे अनुभव का केन्द्र होता है। मन्त्री लोग आते हैं और चले जाते हैं, परन्तु राजा काफी लम्बे समय तक गद्दी पर रहता है। तीसरे, प्रत्येक देश में विभिन्न शक्तियों के वीच सन्तुलन वनाये रखने के लिए कोई व्यवस्था रहती है। ब्रिटेन में भी ऐसा है, इस उद्देश्य की प्राप्ति

राजत्व के द्वारा होती है। उसके अस्तित्व से सरकार और विरोधी पक्ष दोनों को ही एक प्रकार की प्रतिष्ठा और आवरण मिलते हैं। विरोधी दल 'राजा का विरोधी पक्ष' (His Majesty's Opposition) कहलाता है और सरकार तो राजा की सरकार होती ही है। इससे स्पष्ट है कि राजा की ओढ़नी बड़ी विस्तृत है, जो सरकार और विपक्षी दल दोनों को ही ढक लेती है।

बेजहॉट का मत है कि राजत्व का उपयोग और महत्व दो रूपों में है—प्रतिष्ठा और कार्य (dignified capacity and business capacity)। ताज का मूल्य उसके प्रतिष्ठित (dignified) रूप में अग्रलिखित बातों में है—(अ) यह जन-साधारण के लिए शासन को सुबोधगम्य (intelligible) बनाता है। (आ) यह जन-साधारण के लिए शासन को अभिरुचिपूर्ण बनाता है। (इ) यह शासन को ताज से सम्बन्धित धार्मिक परम्परा से सुदृढ़ बनाता है। (ई) ताज का सामाजिक मूल्य है। (उ) ताज का नैतिक मूल्य है (ऊ) ताज के अस्तित्व के कारण परिवर्तन ढका रहता है, अतः क्रान्ति के परिणाम बुरे नहीं होते, उदाहरण के लिए सन् १८३२ का सुधार कानून।

ताज का मूल्य कार्यकुशल अंग के रूप में अग्रलिखित बातों में है—(क) मन्त्रि-मण्डलों के निर्माण में विशेष अवसरों पर प्रधान मन्त्री की नियुक्ति में। (ख) मन्त्रि-मण्डल के कार्यकाल में ताज को तीन अधिकार प्राप्त हैं—मन्त्रणा किये जाने, प्रोत्साहन देने और चेतावनी देने। (ग) मन्त्रिमण्डल भंग होने पर।[1]

ब्रिटिश शासन-पद्धति का विकास और अनुभव राजत्व की उपयोगिता व लाभों के प्रमाण हैं। ताज उस संविधान का संवैधानिक प्रमुख है जिसके लम्बे विकास में एक अल्पकाल को छोड़कर कभी कोई गम्भीर अवरोध नहीं आया। वास्तव में, ब्रिटेन की शासन-पद्धति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, किन्तु वे सभी शान्तिपूर्ण ढंग से हुए। राजत्व के रहते हुए संविधान का विकास-क्रम बिना क्रान्ति के जारी रहता है। अब ताज शासन की वह कीली है जिस पर शासनतन्त्र घूमता है। शासन के सभी कार्य ताज के नाम से किये जाते हैं और मन्त्रिमण्डलात्मक शासन-पद्धति वास्तव में उस पर आधारित है। यह सच है कि संसदीय पद्धति में ताज भी संसद के समान ही शासन का लोकप्रिय अंग बन गया है।

जेनिंग्स कहता है कि हम सरकार की निन्दा कर सकते हैं, लेकिन राजा की प्रशंसा ही करेंगे। गत २०–३० वर्षों में प्रशासन में पार्लियामेंट का महत्व काफी कम हुआ है; किन्तु इस काल में राजत्व की स्थिति पहले से अधिक सुदृढ़ बनी है। राजत्व संवैधानिक स्थायित्व और निरन्तरता के प्रतीक रूप में ही नहीं वरन् ब्रिटेन में उदय हो रही नई वास्तविकता के केन्द्री-बिन्दु के रूप में सुदृढ़ हुआ है। राजाओं ने परिवर्तनों को कभी भी रोकने का प्रयत्न नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने

1. See *Morrison, H.*, Government and Parliament, pp. 83–4.

परिवर्तन होने में सहायता दी है और वे स्वयं भी बदले हैं। यही उनके दीर्घकाल तक जीवित रहने का कारण है; क्योंकि वे समय के साथ चले हैं।

अब हम संक्षेप में उन अन्य कारणों का विवेचन करेंगे जिनके परिणामस्वरूप ब्रिटेन में राजत्व अभी तक जीवित है—(१) **संसदात्मक शासन पद्धति वाली कार्यपालिका में दो प्रमुखों का होना आवश्यक है**—एक नामधारी अथवा संवैधानिक और दूसरा वास्तविक। ब्रिटेन में ताज प्रथम प्रकार का प्रमुख है और प्रधान मन्त्री दूसरे प्रकार का। इसी आधार पर वेजहॉट ने ताज को शासन का प्रतिष्ठित (dignified) और मन्त्रिमण्डल का कार्यकुशल (efficient) अंग बताया है। परन्तु यह कहा जाएगा कि राजा के स्थान पर निर्वाचित राष्ट्रपति संवैधानिक प्रमुख का कार्य कर सकता है और अन्य देशों में ऐसा ही है। सवैधानिक दृष्टि से यह सत्य है कि राजा का स्थान राष्ट्रपति ले सकता है। परन्तु यहाँ यह बात विचारणीय है कि ब्रिटेन के लिए राष्ट्रपति की अपेक्षा ताज क्यों अधिक उपयुक्त है? राजत्व के पक्ष में सबसे बड़ा तर्क यह दिया जाता है कि राजा पैतृक होता है, उसका पद अत्यधिक प्रतिष्ठित है और उसे अपने कार्यकाल में राष्ट्रपति की अपेक्षा शासन कार्यों का बड़ा अनुभव रहता है। इनसे भी बढ़कर बात यह है कि राजा दलगत राजनीति से अलग और ऊपर होता है और सभी प्रजाजन उसे निष्पक्ष समझते हैं।

(२) **राजत्व राष्ट्रीय एकता और स्थिरता का प्रतीक है**—राजा राज्य का शारीरिक रूप है और राजत्व साधारण जनता के लिए एक शासन का सुबोधगम्य अंग है। ब्रिटिश जनता में राजनीतिक तथा अन्य भेद हैं, दो प्रमुख दलों में से एक सत्तारूढ़ रहता है और दूसरा विरोधी पक्ष में; परन्तु सारी जनता अपने को राजा के प्रजाजन कहलाने में और सरकारी एवं विरोधी दल क्रमशः 'राजा की सरकार' व 'राजा का विपक्षी दल' कहलाने में गर्व का अनुभव करती है। इस दृष्टि से राजत्व राष्ट्रीय एकता का प्रतीक या उसको बनाए रखने वाला है। साथ ही जैसा ऊपर बताया जा चुका है, राजत्व शासन व राष्ट्र की स्थिरता का चिन्ह है। उसके रहते हुए अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन शान्तिपूर्ण ढंग से हो गए हैं। मन्त्री आते हैं और चले जाते हैं, किन्तु राजत्व कायम रहता है। राजत्व के रहते हुए जनता कानूनों का पालन अधिक अच्छी प्रकार से करती है।

(३) **राजत्व साम्राज्य को एकता के सूत्र में बाँधने वाली स्वर्ण कड़ी** (Golden-link of the Empire) **और राष्ट्रमण्डली देशों के स्वतन्त्र व ऐच्छिक संघ का चिन्ह है।** यह एक निर्विवाद सत्य है कि साम्राज्य के विभिन्न अंगों में एकता राजत्व के कारण स्थिर रही है। बीते युग में डोमीनियनों और पराधीन उपनिवेशों ने सदा ही ब्रिटिश राजत्व के प्रति अपनी वफादारी का प्रदर्शन किया है और उसे बनाए भी रक्खा है। अब भी ब्रिटिश साम्राज्य काफी विस्तृत है, जिसके विभिन्न अंग और स्वतन्त्र उपनिवेश राजत्व के प्रति अभी तक वफादार हैं। यदि कभी ब्रिटेन निवासी ताज के स्थान पर निर्वाचित राष्ट्रपति रखने को तैयार हो जाते तो

यह स्वाभाविक था कि साम्राज्य व राष्ट्रमण्डल के अनेक सदस्य अब तक ब्रिटेन से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेते। आज भी ब्रिटिश राजा या रानी राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित राज्यों के स्वतन्त्र और ऐच्छिक संघ का प्रमुख (Head of the Commonwealth) है और केनाडा, आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैंड आदि स्वतन्त्र उपनिवेश उसे अपने राज्यों का प्रमुख मानते हैं। समय-समय पर ब्रिटिश राजा या रानी राष्ट्रमण्डल के विभिन्न राज्यों व प्रदेशों की सैर को जाते हैं और वहाँ उनका अपूर्व स्वागत होता है।

(४) **राजा ब्रिटिश समाज का प्रमुख है और राजा का दरबार सामाजिक जीवन का केन्द्र है।** सामाजिक व्यवहार और पहनावे इत्यादि में राजघराना ब्रिटिश समाज के लिए अनुकरणीय है। जिस किसी परोपकारी या दान संस्था के साथ राजा या रानी का नाम जुड़ जाता है, उसके कार्य में बड़ी प्रगति होती है। यदि किसी सामाजिक या राष्ट्रीय कार्य के समर्थन में राजा या रानी की अपील निकल जाती है तो उसका व्यापक प्रभाव पड़ता है।

(५) **राजा इंगलैंड के स्थापित चर्च का भी प्रमुख है।** जिसके कारण राजत्व के साथ देवत्व का अंश जुड़ा है। इस कारण राजा का स्थान वहाँ के समाज में और भी सुदृढ़ बन गया है। नए विचारों के व्यापक प्रभाव के बावजूद भी अभी तक अनेक ब्रिटिश-जन राजा में देवत्व का रूप देखते हैं और इस कारण से भी राज्य के कानूनों का पालन करते हैं अतएव यह कहना उचित होगा कि राजत्व ब्रिटिश शासन को धर्म की शक्ति से भी अधिक सुदृढ़ बनाता है।

(६) **मनोवैज्ञानिक दृष्टि से राजत्व का बड़ा महत्व है।** यह सच है कि राजत्व व्यवहार में बड़ा उपयोगी और मूल्यवान सिद्ध हुआ है, किन्तु यह बात भी सत्य है कि राजत्व का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बड़ा महत्व है। शासन और राजनीति में तर्क और बुद्धि के साथ-साथ भावों और भावनाओं का बहुत महत्व है और राजत्व मनुष्य के भावों को बहुत प्रभावित करता है। बार्कर कहता है कि यदि राजा केवल एकमात्र चिन्ह और आकर्षण का केन्द्र होता, तब भी शासन में एक अत्यधिक मूल्यवान कार्य पूरा करता। हम भूल जाते हैं कि राजनीति की दुनिया में भावों और भावनाओं का बड़ा महत्व है। राजा के महल में रहते हुए ब्रिटिश प्रजाजन शान्ति से सोते हैं।

(७) **ब्रिटिश जाति अपनी रूढ़िवादिता के लिए विख्यात है।** ब्रिटिश लोग किसी भी पुरानी संस्था को उखाड़ फेंकने में विश्वास नहीं करते। वे समय की बदलती हुई परिस्थितियों तथा नए विचारों के अनुकूल उसमें आवश्यक परिवर्तन करते रहते हैं। ब्रिटिश संविधान का विकास इस तथ्य का सबसे सुन्दर प्रमाण है। ब्रिटिश जाति का रूढ़िवादी दृष्टिकोण भी राजत्व को बनाए रखने में बड़ा सहायक रहा है। अंग्रेज अपनी क्रान्तियों में भी रूढ़िवादी रहे हैं।

(८) ऐसी लाभकारी संस्था पर, जैसी कि राजत्व है, कोई विशेष व्यय नहीं होता। राष्ट्रीय बजट के १ प्रतिशत का केवल बीसवां भाग राजत्व पर व्यय होता है। इससे कुछ ही कम निर्वाचित राष्ट्रपति पर व्यय करना पड़ेगा इस दृष्टि से भी राजत्व के विरुद्ध कोई आवाज कभी नहीं उठी।

(९) राजत्व के उन्मूलन से ब्रिटेन में प्रजातन्त्र उससे अधिक जनतन्त्रात्मक नहीं होगा जितना कि आज है, क्योंकि जनता के प्रतिनिधियों का शासन की शाखाओं पर पूर्ण नियन्त्रण है।

(१०) राजत्व के उन्मूलन से अन्य परिवर्तन भी आवश्यक होंगे, जिनका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके बिना इंगलैंड का चर्च बिना छत्रजमात्र प्रमुख के रह जाएगा; इसके परिणामस्वरूप सामाजिक प्राथमिकताओं का फिर से निर्धारण करना पड़ेगा; और ब्रिटिश शासन की सम्पूर्ण सरकारी नामावली बदलनी पड़ेगी।

५. प्रिवी परिषद्

प्रिवी कौंसिल का ब्रिटिश शासन की विभिन्न संस्थाओं में ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। इसी परिषद् से कैबिनेट की उत्पत्ति और विकास हुआ है। यहाँ पर इसके मुख्य पहलुओं का ही संक्षिप्त विवेचन दिया जाएगा।

प्रिवी परिषद् की सदस्यता—इसके सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। इस समय इसके सदस्यों की संख्या ३०० से ऊपर है। केबिनेट के सभी सदस्य इस परिषद् के सदस्य होते हैं। केन्टरबरी और यॉर्क के लाटपादरी और लन्दन का पादरी भी इसके सदस्य होते हैं। इसके सदस्यों में वे लार्ड, जो ब्रिटेन या साम्राज्य के अन्य देशों में उच्च पदों पर रहे हों तथा साम्राज्यीय देशों के वे व्यक्ति भी, जिन्होंने सरकारी नौकरी, कला, साहित्य, विज्ञान या कानून आदि के क्षेत्र में विशेष योग्यता दिखाई हो, सम्मिलित रहते हैं। सभी प्रकार के सदस्यों की नियुक्ति ताज द्वारा की जाती है और यह सदस्यता जीवन भर के लिए होती है। इसके सदस्यों को महामाननीय कहकर सम्बोधित किया जाता है।

प्रिवी परिषद् के कार्य—आजकल इसके मुख्य कार्यों में इन्हें सम्मिलित किया जाता है—(१) नए मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को शपथ दिलाना; (२) विश्वविद्यालयों, म्युनिसिपल कारपोरेशन और अन्य संस्थाओं को चार्टर देना; (३) शैरिफ नामक अधिकारियों की नियुक्ति करना; (४) ताज के सम्मुख विभिन्न प्रकार के सपरिषद् आदेश (Order-in-Council) उसकी स्वीकृति के लिए रखना; (५) ताज को शाही उद्घोषणाओं (Royal Proclamations) के विषय में परामर्श देना। इनमें से कुछ उद्घोषणाओं का सम्बन्ध कॉमन सभा के विघटन अथवा पार्लियामेंट के आहूत करने से होता है। इन उद्घोषणाओं की वैधता पार्लियामेंट द्वारा निर्मित कानूनों के ही समान होती है।

सपरिषद् आदेश—ये दो प्रकार के होते हैं, जिनमें संवैधानिक सिद्धान्त का आधारभूत अन्तर है। एक श्रेणी में तो वे आदेश सम्मिलित हैं जिन्हें शाही परमाधिकार के आधार पर जारी किया जाता है जैसे वे आदेश जो उपनिवेशों के गवर्नरों को दिए जाते हैं और जिनमें शाही अनुदेश दिए हुए होते हैं। दूसरी श्रेणी में वे आदेश आते हैं जिन्हें पार्लियामेंट के कानूनों के अन्तर्गत जारी किया जाता है (statutory) और जो एक प्रकार के अधीनस्थ विधि-निर्माण (delegated legislation) में सम्मिलित किए जाते हैं। प्रिवी परिषद् की बैठकों में जिनमें आदेश बनाए जाते हैं, जो भी परिषद् के सदस्य उपस्थित होते हैं, वे उनकी आधारभूत नीति के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होते। यह उत्तरदायित्व उन मन्त्रियों का होता है जिनके विभागों में आदेशों का निर्माण होता है। कुछ आदेश अनिवार्यतः लन्दन बजट में प्रकाशित किए जाते हैं, जो कि सरकार द्वारा अधिकृत पत्र है।

प्रिवी परिषद् की बैठकें—इसकी बैठकों में साधारणतया ५–७ सदस्य भाग लेते हैं और उनके लिए गणपूर्ति (quorum) केवल ३ सदस्यों की उपस्थिति है। नए राजा (अथवा रानी) के राज्याभिषेक (Coronation) के अवसर पर सभी सदस्यों को आमन्त्रित किया जाता है और उनकी काफी बड़ी संख्या उपस्थित रहती है। जब राजा या रानी की मृत्यु होती है अथवा वह अपना विवाह करने के इरादे की घोषणा करता है (या करती है) तब भी पूर्ण परिषद् की बैठक बुलाई जाती है। अन्य अवसरों पर केवल उन सदस्यों को ही बुलाया जाता है जो अधिक क्रियाशील होते हैं।

प्रिवी परिषद् की समितियाँ—परिषद् की कई समितियाँ हैं जिनकी बैठकें पूर्ण परिषद् की बैठकों से इस बात में भिन्न होती हैं कि उनमें राजा (या रानी) संवैधानिक रूप से भाग नहीं ले सकता। इन समितियों के कार्य परामर्शदात्री हैं। इनमें से कुछ के नाम ये हैं—चिकित्सा शास्त्र, विज्ञान, औद्योगिक कृषि, प्रवासी देशों आदि विषयों के बारे में अनुसंधान कार्यों के लिए समितियाँ। प्रिवी कौंसिल की सबसे महत्वपूर्ण समिति 'न्यायिक समिति' (Judicial Committee) है जो राष्ट्रमण्डल तथा साम्राज्य अधीन देशों में उठने वाले कानूनी प्रश्नों पर अपील का अन्तिम न्यायालय है। इसके अपीलीय अधिकार-क्षेत्र का आधार सामान्य कानून का वह सिद्धान्त है जो यह मानता है कि राजा के सभी प्रजाजनों को सपरिषद् राजा के सामने अपील करने का अधिकार है।

प्रश्न

१. ब्रिटिश संविधान में ताज (राजमुकुट) से आप क्या समझते हैं ? 'राजा' और 'ताज' का अन्तर स्पष्ट कीजिए तथा ताज की स्थिति व शक्तियों का वर्णन कीजिए।

२. निम्नलिखित कथनों को समझाइए—

(अ) 'राजा कोई भूल नहीं करता।'

(आ) 'राजा की मृत्यु हो गई है, राजा चिरंजीवी हो।'

३. ब्रिटिश राजा राज्य करता है, शासन नहीं करता।' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

४. ब्रिटिश शासन में राजा की स्थिति का वर्णन करते हुए बताइए कि ब्रिटेन में राजत्व क्यों जीवित है ?

५. प्रिवी परिषद् क्या है ? इसकी कार्य-प्रणाली व इसके कार्यों का वर्णन कीजिए।

६. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) ताज की शक्तियों में निरन्तर वृद्धि हुई है।

(ब) राजत्व साम्राज्य की एकता का प्रतीक है।

(स) सिविल लिस्ट।

(द) परमाधिकार।

३. केबिनेट और मन्त्रिमण्डल

१. केबिनेट पद्धति और मन्त्रिमण्डल की रचना

'केबिनेट' क्या है ?—यह ब्रिटिश शासन पद्धति का प्राण तत्व है। यह शासन सत्ता का केन्द्रीय अंग है, जो अब कामन सभा पर भी नियन्त्रण रखता है और प्रशासन का संचालन करता है। वाह्य रूप में केबिनेट राजा के परामर्शदाताओं का एक समूह है, व्यवहार में यह एक विशेष प्रकार का समूह है। राजा को प्रधान मन्त्री की छाँट में स्वतन्त्रता नहीं है और प्रधान मन्त्री अपने सहयोगियों को नियुक्त करता है। लास्की के शब्दों में 'केबिनेट आवश्यक रूप में उस दल या मिले जुले दलों की समिति है, जो कामन सभा के बहुमत का समर्थन पाते हैं।'[1] जैनिंग्स के अनुसार केबिनेट के सदस्य राजा के वे विश्वास प्राप्त सेवक हैं जो प्रिवी कौन्सिल में सदस्य होते हैं। सार में, केबिनेट राष्ट्रीय नीति का निदेशन करने वाला निकाय है।

लॉवेल के अनुसार केबिनेट ब्रिटेन की शासन व्यवस्था में 'पहियों के भीतर पहिया (Wheel within wheels) है।' यदि पार्लियामेंट को शासन का प्रमुख पहिया मानें तो उसका (मुख्यतः कामन सभा का) बहुमत दल जिससे केबिनेट के सदस्यों को छाँटा जाता है उस पहिये के भीतर का पहिया हुआ और मन्त्रिमण्डल इस पहिये के भीतर पहिया है; क्योंकि इसमें बहुमत दल के प्रमुख नेताओं अथवा सदस्यों को लिया जाता है। केबिनेट मन्त्रिमण्डल पहिये के भीतर एक छोटा पहिया है, जैसा कि आगे के विभाग में मन्त्रिमण्डल और केबिनेट के अन्तर से स्पष्ट होगा। यह सत्तारूढ़ दल के प्रमुख नेताओं से मिलकर बनती है और यह उसकी नीति को आगे बढ़ाती है, क्योंकि इसका कामन सभा पर नियन्त्रण रहता है। जहाँ तक इसकी शक्तियों का सम्बन्ध है, सभी लेखक यह मानते हैं कि केबिनेट ताज के परमाधिकारों की उत्तराधिकारी है। कार्टर ने केबिनेट को सामूहिक कार्यपालिका और विधायी प्रस्तावों के निर्धारण का सामूहिक साधन बताया है, अर्थात् यह कार्यपालिका और विधायी दोनों ही प्रकार की शक्तियाँ रखती है।[2] यथार्थ में, यह प्रिवी कौन्सिल की समिति और पार्लियामेंट के दोनों सदनों की समिति का मेल है। मनरो के शब्दों में इसकी संक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार है—'यह ताज के परामर्शदाताओं का ऐसा निकाय है, जिन्हें प्रधान-मन्त्री ताज के नाम से कामन सभा के बहुमत की स्वीकृति से छाँटता है।' स्ट्रांग के अनुसार (केबिनेट) कार्यपालिका पद्धति का सार

1. *H. J. Laski*, Parliamentary Government in England, p 221.
2. 'The cabinet is a collective executive and a collective instructive instrument for the determination of legislative proposals.'
—*B. E. Carter*, The Office of the Prime Minister, 207.

यह है कि अन्तिम विश्लेषण में केबिनेट पार्लियामेंट की एक समिति है जो प्रजातन्त्र के विकास के साथ कामन सभा की समिति होती चली गई है।[1]

केबिनेट पद्धति के मुख्य लक्षण अथवा विशेषतायें—विभिन्न लेखकों ने इस पद्धति की भिन्न-भिन्न विशेषताओं पर बल दिया है। यहाँ पर हम उनमें से प्रमुख का अति संक्षिप्त विवेचन करेंगे—(१) **राजनीतिक विचारों और कार्यक्रम में एकता अथवा एकरसता**—केबिनेट के सदस्य साधारणतया एक ही दल अथवा मिले-जुले दलों से छाँटे जाते हैं; उनके राजनीतिक विचार एक समान होते हैं और वे एक ही कार्य-क्रम को स्वीकार करते हैं। (२) **मन्त्रियों का उत्तरदायित्व**—केबिनेट के सभी सदस्य संयुक्त अथवा सामूहिक रूप से पार्लियामेंट, व्यवहार में कामन सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का अभिप्राय इस प्रकार है : केबिनेट में जो कुछ भी होता है, उसका प्रत्येक सदस्य जो त्याग-पत्र नहीं देता, उसके निर्णयों के लिए पूर्णतया उत्तरदायी होता है और उस निर्णय से हट नहीं सकता। उसे बाद में यह कहने का अधिकार नहीं है कि एक बात में वह समझौते से सहमत हो गया जबकि दूसरी बात में उसके सहयोगियों ने उससे अपनी बात मनवा ली। केबिनेट की बैठकों में अनेक प्रश्नों व प्रस्तावों पर वाद-विवाद होता है, और उन पर एकमत या बहुमत से निर्णय होते हैं। परन्तु कोई भी निर्णय हो जाने पर केबिनेट के सदस्य ही नहीं वरन् अन्य मन्त्री भी, जो उसके सदस्य नहीं होते, उन निर्णयों से बंध जाते हैं। यदि पार्लियामेंट में कोई मन्त्री उस विषय पर बोले अथवा उस प्रश्न पर मत लिया जाये तो प्रत्येक मन्त्री को उस निर्णय का समर्थन करना होता है। इसी कारण सभी मन्त्री एक साथ तैरते व डूबते हैं।

मन्त्रियों के उत्तरदायित्व के दो पहलू और हैं—(अ) ब्रिटेन में मन्त्री संवैधानिक रूप से ताज के प्रति भी उत्तरदायी होते हैं; किन्तु अब यह विचार एक कानूनी कल्पना मात्र (legal fiction) है। (ब) प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग के कार्यों के लिए भी पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी होता है। कभी कोई मन्त्री अपने व्यक्तिगत निर्णय या विवेक में ऐसी भूल कर बैठता है जिसके लिए पार्लियामेंट उसकी तीव्र आलोचना करती है और केबिनेट उसके लिए अपने को उत्तरदायी नहीं समझती। ऐसी स्थिति में उस मन्त्री को त्याग-पत्र देना पड़ जाता है।

(३) **केबिनेट सामान्य कार्यक्रम को लागू करती है**—मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य एक ही कार्यक्रम को अपनाते और लागू करते हैं। इसी कारण शासन के

1. 'The essence of this executive system is that, in the last analysis, the cabinet is a committee of Parliament, tending to be, with the advance of democracy, a committee of the House of Commons.'

—*C. F Strong*, Modern Political Constitution, p. 219.

सभी विभागों के कार्यों में समन्वय रहता है। (४) **गोपनीयता**—केबिनेट की बैठकों की कार्यवाही और सिद्धान्त वास्तव में गुप्त रखे जाते हैं। केबिनेट एक प्रकार की गुप्त समिति है अर्थात् सिद्धान्त वास्तव में गुप्त रखे जाते हैं। केबिनेट एक प्रकार की गुप्त समिति है अर्थात् इसके सदस्यों में यदि मतभेद भी होते हैं तो उन्हें जनता के सामने नहीं लाया जाता, केवल केबिनेट के निर्णय ही प्रकाशित होते हैं। (५) **एकल कार्यपालिका**—इसी कारण से केबिनेट को एकमत वाली कार्यपालिका माना जाता है। (६) **प्रधान मन्त्री का नेतृत्व**—प्रधान मन्त्री केबिनेट का प्रमुख होता है। वही अपने सहयोगियों की छाँट करता है और केबिनेट की बैठकों का सभापतित्व करता है। इसी कारण इसकी बैठकों में राजा भाग नहीं लेता।

केबिनेट का महत्व—इसे विभिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त किया है। यहाँ पर उनके मतों का उल्लेख करना उपयुक्त प्रतीत होता है। **बेजहॉट** के अनुसार यह वह यन्त्र है जो शासन के विधायी अंग को कार्यपालिका से जोड़ता है। **लॉवेल** ने इसे राजनीतिक महराव की आधारशिला (Keystone of the political arch) बताया है। **जोन मेरियट** के शब्दों में 'यह वह चूल है जिसके चारों ओर राजनीतिक तन्त्र घूमता है।' **डायसी** ने लिखा है—'जबकि राज्य का प्रत्येक कार्य ताज के नाम से किया जाता है, इंगलैंड की कार्यपालिका की वास्तविक अध्यक्ष केबिनेट है। **सिडनी लो** के अनुसार 'केबिनेट उत्तरदायी कार्यपालिका है, जिसके हाथ में प्रशासन का पूर्ण नियन्त्रण और राष्ट्रीय कार्यों का सामान्य निदेशन है।' **रेम्जे म्यूर** ने इसे 'राज्य के जहाज का स्टीयरिंग व्हील' बताया है। **ग्लेडस्टन** के शब्दों में 'आधुनिक काल के राजनीतिक संसार में केबिनेट सम्भवतः सबसे अधिक आश्चर्यजनक रचना है, अपनी प्रतिष्ठा के लिये नहीं वरन् अपनी चतुराई, लचक और शक्ति की बहुमुखी विभिन्नता के लिए। हाल्डेन समिति की रिपोर्ट में केबिनेट को सम्पूर्ण शासनतन्त्र की मुख्य कमानी बताया गया है। हम **जैनिंग्स** के इस मत से पूर्णतया सहमत हैं : 'केबिनेट ब्रिटिश संवैधानिक पद्धति का अन्तर्भाग है, यह सर्वोच्च निदेशक निकाय है। यह विभिन्न कार्यों में समन्वय स्थापित करती है और ब्रिटिश शासन-पद्धति को एकता प्रदान करती है।'[1] इन मतों और उद्धरणों के आधार पर तथा ब्रिटिश शासन-पद्धति में केबिनेट के वास्तविक भाग को देखते हुए यह कहना उचित होगा कि केबिनेट ब्रिटिश शासन-पद्धति की वास्तविक कार्यपालिका है, जिसके हाथ में प्रायः सम्पूर्ण कार्यपालिका शक्ति है, जो विधि-निर्माण कार्य में भी अत्यधिक महत्वपूर्ण भाग लेती है अर्थात् शासन की नीति व कार्यक्रम निर्धारित करती है, जो सम्पूर्ण प्रशासन का नियन्त्रण, निदेशक और निरीक्षण करती है और जो ताज के नाम में शासन की सभी शक्तियों का प्रयोग करती है।

1. *I. Jennings* Cabinet Government, p. 1.

केबिनेट और मन्त्रिमण्डल की रचना में अन्तर—ब्रिटेन के सभी मन्त्रियों के समूह में ६० या इससे भी अधिक सदस्य होते हैं। इन सदस्यों में १५–२० के लगभग सबसे महत्वपूर्ण मन्त्री अथवा केबिनेट के सदस्य होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल में केबिनेट के सदस्यों के अतिरिक्त राज्य मन्त्री व संसदीय सचिव भी होते हैं। केबिनेट और मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है, उसमें नया प्रधान मन्त्री आवश्यकतानुसार परिवर्तन करता है, किन्तु मन्त्रियों की साधारणतया तीन ही श्रेणियाँ हैं—प्रथम, केबिनेट के सदस्य, प्रधान मन्त्री, वित्त-मन्त्री, गृह-मन्त्री, विदेश-मन्त्री, राष्ट्रमण्डलीय सम्बन्धों, उपनिवेशों व स्काॅटलैंड के सेक्रेटरीज अर्थात् मन्त्री, व्यापार मन्त्री, प्रतिरक्षा, कृषि और मछली तथा श्रम विभागों के मन्त्री। दूसरी श्रेणी के मन्त्रियों को अब 'केबिनेट पद का मन्त्री' कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि ऐसे मन्त्रियों को केबिनेट की उन बैठकों में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जाता है, जिनमें उनके विभागों से सम्बन्धित मामले विचाराधीन होते हैं। तीसरी श्रेणी में **राज्य-मन्त्री** अथवा उप-मन्त्री आते हैं। जो ऐसे विभागों में, जिनमें अधिक काम होता है उप-मन्त्री के समान होते हैं जैसे आजकल विदेश विभाग में एक-एक राज्य-मन्त्री है। चौथी श्रेणी में कुछ संसदीय सचिव अथवा उप-सचिव होते हैं, जो अधिक महत्वपूर्ण विभागों के मन्त्रियों की पार्लियामेंट के कार्यों में सहायता करते हैं। इस श्रेणी में साधारणतया कम आयु वाले सदस्यों को लिया जाता है, जिन्हें एक प्रकार से उच्चतर श्रेणी के पदों के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है।

प्रधान मन्त्री की नियुक्ति ताज द्वारा की जाती है और साधारण परिस्थितियों में ताज की छांट सीमित होती है; क्योंकि प्रधान मन्त्री कामन सभा में बहुमत दल का नेता होता है। प्रधानमन्त्री की छाँट पर ही मन्त्रिमण्डल के अन्य सदस्यों की छाँट निर्भर होती है; अतएव यह अत्यधिक महत्वपूर्ण और विशेष परिस्थितियों में कठिन कार्य होता है। किन्तु ऐसे अवसर भी आ सकते हैं कि जब किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत न हो अथवा प्रधानमन्त्री किसी कारण त्याग-पत्र दे दे और बहुमत दल अपने नेता का चुनाव न कर पाए जैसा कि सन् १९५७ में हुआ। साधारण परिस्थितियों के विषय में तो यही कहा जा सकता है कि प्रधान मन्त्री वास्तव में अपने आप नियुक्त होता है। अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधान मन्त्री की सिफारिश से ताज द्वारा की जाती है। अपने सहयोगियों की छांट में कानूनी दृष्टि से, प्रधान मन्त्री पूर्णतया स्वतन्त्र होता है।

मन्त्रिमण्डल में दोनों सदनों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व रहता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य केवल पार्लियामेंट के सदस्य ही हो सकते हैं। किसी ऐसे व्यक्ति को जो नियुक्ति के समय पार्लियामेंट का सदस्य न हो, केवल ६ माह तक की अवधि के लिए मन्त्री बनाया जा सकता है, इस बीच में या उसे लार्ड की उपाधि देकर लार्ड

सभा का सदस्य बना लिया जाता है या वह किसी निर्वाचन क्षेत्र में उप-चुनाव में चुनकर आ जाता है, अन्यथा उसे मन्त्री पद छोड़ना पड़ता है।

मन्त्रिमण्डल में बहुमत दल के विभिन्न समूहों का प्रतिनिधित्व किया जाता है तथा प्रमुख नेताओं को सम्मिलित किया जाता है, जिससे दल के सभी सदस्यों का समर्थन प्रधान मन्त्री को मिलता रहे। मन्त्रियों की छाँट करने में प्रधानमन्त्री को संयुक्त राज्य के विभिन्न प्रदेशों के प्रतिनिधित्व का भी ध्यान रखना पड़ता है। अन्य बातों में, जिनका ध्यान प्रधान मन्त्री को रखना होता है, हम इन्हें रख सकते हैं—(अ) ताज का प्रभाव, (आ) सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था, (इ) मन्त्री पदों पर नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों की योग्यता व क्षमता और (ई) प्रधान मन्त्री के महत्वपूर्ण सहयोगियों का प्रभाव।

मन्त्रिमण्डल की रचना—मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या तथा विभिन्न पदों के नामों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं फिर भी मन्त्रियों के विभिन्न पदों को इन वर्गों में रखा जा सकता है—(१) **प्रधान मन्त्री**—यह मन्त्रिमण्डल अथवा सरकार का माना हुआ प्रमुख होता है और उसके अधीन कोई विभाग नहीं रहता। (२) **विभागीय मन्त्री**—इस श्रेणी में ७ प्रमुख विभागों विदेश, गृह, उपनिवेश, युद्ध, जल सेना, स्कॉटलैंड व राष्ट्रमण्डल के मामलों के मन्त्री (Secretaries of State), कृषि, मछली और खाद्य, प्रतिरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, गृह-निर्माण व स्थानीय शासन, परिवहन, निर्माण-कार्य आदि विभागों के मन्त्री और कुछ ऐसे मन्त्री जिनके पुराने नाम चलते हैं यथा वित्त-मन्त्री (Chancellor of the Exchequer), व्यापार-मन्त्री (President of the Board of Trade), नौ-सेना मन्त्री (The First Lord of the Admiralty) और पोस्टमाटर जनरल आदि सम्मिलित हैं, (३) **ऐसे मन्त्री जो विभिन्न परम्परागत पदों को धारण करते हैं**, किन्तु किसी विभाग के अध्यक्ष नहीं होते, जैसे प्रिवी कौन्सिल का प्रधान (Lord President of the Council), लार्ड प्रिवीसील, लेंकेस्टर की डची का चांसलर, पे-मास्टर जनरल और बिना विभाग का मन्त्री। (४) **राज्य मन्त्री**, जो एक प्रकार से उप-मन्त्री होते हैं। (५) **अवर या जूनियर मन्त्री** अथवा संसदीय सचिव या उपसचिव।

मन्त्रिमण्डल का निर्माण करने के अतिरिक्त प्रधान मन्त्री किसी भी मन्त्री से त्याग-पत्र माँग सकता है। यदि प्रधान मन्त्री त्याग-पत्र देता है तो उसके त्याग-पत्र का अर्थ सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल के त्याग-पत्र से है। प्रधान मन्त्री समय-समय पर आवश्यकतानुसार अपने मन्त्रिमण्डल में बिना त्याग-पत्र दिए ही परिवर्तन कर लेता है। जब किसी एक दल का बहुमत नहीं होता तो दो दल मिलकर एक सामान्य कार्यक्रम के आधार पर मिला-जुला मन्त्रिमण्डल (Coalition Ministry) बनाते हैं। ये दल किसी एक सदस्य को अपना नेता बना लेते हैं और उसे ताज प्रधान मन्त्री पद पर नियुक्त करता है। युद्ध अथवा अन्य संकट के काल में राष्ट्रीय सरकार

की भी स्थापना हो सकती है। ऐसी सरकार में तीनों ही प्रमुख दलों के सदस्य सम्मिलित किए जाते हैं। मन्त्रियों के वेतन मुख्यत: सन् १९३७ और सन् ७९५७ के कानूनों से निर्धारित हैं। प्रधान मन्त्री को १४,००० पौण्ड वार्षिक मिलते हैं, लार्ड चांसलर को १२,००० पौण्ड, अन्य मन्त्रियों को ५,००० पौण्ड और जूनियर मन्त्रियों को २,५०० पौण्ड।

छोटी बनाम बड़ी केबिनेट—प्रथम तथा द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान युद्ध केबिनेट का निर्माण हुआ था जिसके सदस्यों की संख्या बहुत छोटी थी। दूसरे विश्व-युद्ध के आरम्भ में चेम्बरलेन की केबिनेट में कुल ९ सदस्य थे, जिनमें ५ मन्त्रियों पर विभागीय उत्तरदायित्व था। जब विन्सटन चर्चिल ने प्रधान मन्त्री पद सम्भाला तो उन्होंने इस संख्या में परिवर्तन नहीं किया। उन्होंने आरम्भ में अपने सहित कुल ३ मन्त्री रखे परन्तु बाद में अन्य मन्त्री जोड़े, फिर भी युद्ध के अन्त तक केबिनेट के सदस्यों की संख्या ८–९ से अधिक नहीं बढ़ी। कुछ समय से इस सुझाव पर बल दिया जा रहा है कि केबिनेट को अधिक प्रभावी बनाने के लिए इसके सदस्यों की संख्या काफी कम होनी चाहिए। इसमें केवल ऐसे ही मन्त्री सम्मिलित किए जायें जिन पर विभागीय प्रशासन का उत्तरदायित्व न हो और उनका मुख्य कार्य अन्य मन्त्रियों के कार्यों की देख-रेख ही हो। इस सुझाव के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि आजकल विभागीय प्रशासन का कार्य इतना बढ़ गया है कि विभागीय मन्त्री दीर्घकालीन नीति व केबिनेट पत्रों पर विचार करने के लिए काफी समय नहीं पाते।

२. केबिनेट और मन्त्रिमण्डल के कार्य व शक्तियाँ

विधि-निर्माण करना अब प्रत्येक मन्त्रिमण्डल का एक आवश्यक कार्य हो गया है। मन्त्रिमण्डल के मुख्य कार्यों में एक प्रमुख कार्य प्रशासन का भी है और अब तो केबिनेट का प्रशासन पर संसद से भी अधिक नियन्त्रण है। अतएव केबिनेट ब्रिटिश संवैधानिक पद्धति का बिजली (शक्ति) घर है।[1] यह ऐसी अनोखी सत्ता का उपभोग इन कारणों से करती है—(१) केबिनेट शासन की कार्यपालिका शाखा है, क्योंकि इसके सदस्य मन्त्री होते हैं और वे सरकारी विभागों के अध्यक्ष हैं। (२) यह विधानमण्डल की स्टीयरिंग समिति है; दो तीन पीयरों को छोड़कर इसके सभी सदस्य पार्लियामेंट के सदस्य होते हैं। तीसरे, यह बहुमत दल की समिति है क्योंकि यह विश्वसनीय और परखे हुए दलीय प्रमुख व्यक्तियों से मिलकर बनती है। सरल भाषा में केबिनेट के कार्यों को हम अग्रलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रख सकते हैं—

[1] 'The Cabinet, therefore, is the power-houses of the entire British Constitutional system.'
—*Macridies and Ward,* Modern Political Systems—Europe, p. 81.

केबिनेट के विधायी कार्य—वास्तव में अब यह केबिनेट का अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि केबिनेट ही शासन की सर्वोच्च नीति व कार्यक्रम को निर्धारित करती है और उन्हें क्रियात्मक रूप देने के लिए आवश्यक कानूनों का निर्माण कराती है। विभिन्न विधेयकों के प्रारूप कानूनी परामर्श से सरकारी अधिकारी तैयार करते हैं, किन्तु उन पर अन्तिम स्वीकृति केबिनेट ही देती है और उन्हें पार्लियामेंट में भी मन्त्री पेश करते हैं तथा अपने दल के बहुमत समर्थन से पास कराते हैं। पार्लियामेंट के नए सत्र के आरम्भ पर राजा या रानी का भाषण भी (Speech from the Throne), जिसमें सरकार की प्रस्तावित नीति और कार्यक्रम का वर्णन होता है, केबिनेट द्वारा स्वीकृत होता है। समय-समय पर प्रधान मंत्री विदेश मंत्री या अन्य मंत्री विदेश नीति अथवा आन्तरिक नीति से सम्बन्धित प्रश्नो पर महत्वपूर्ण घोषणायें करते हैं, जिन्हें यथासमय कार्यरूप दिया जाता है। अन्त में, विभिन्न कानूनों के अन्तर्गत प्रतिवर्ष सैकड़ों सपरिषद् आदेश निकलते हैं जो विभिन्न विभागों में ही तैयार किये जाते हैं, किन्तु उनके निर्माण में भी केबिनेट की स्वीकृति निहित है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सरकारी नीति और कार्यक्रम का निर्धारण केबिनेट करती है न कि मंत्रिमण्डल। वास्तव में केबिनेट ही सर्वोच्च मननात्मक निकाय है, जिसकी बैठकें साधारणतया सप्ताह में १—२ बार होती हैं। सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल की कभी भी कोई बैठक नहीं होती। केबिनेट से बाहर के मंत्रियों को तो केबिनेट द्वारा निर्धारित नीति को कार्यरूप दिया जाता है कार्यो व शक्तियों की दृष्टि से केबिनेट और मंत्रिमण्डल (Ministry) में यह सबसे महत्वपूर्ण अन्तर है। केबिनेट ही पार्लियामेंट के कार्यक्रम को निर्धारित करती है।

केबिनेट के कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य—वास्तव में तो केबिनेट राष्ट्र की सर्वोच्च कार्यपालिका हैं। केबिनेट के मंत्रियों तथा अन्य मंत्रियों का प्रमुख कार्य पार्लियामेंट द्वारा स्वीकृत नीति और कार्यक्रम अर्थात् कानूनों को क्रियात्मक रूप देना है क्योंकि विधि-निर्माण सिद्धान्त रूप में तो पार्लियामेंट का ही मुख्य कार्य है, यद्यपि उसमें अब अति महत्वपूर्ण भाग केबिनेट का रहता है। राष्ट्रीय कार्यपालिका के रूप में केबिनेट सम्पूर्ण शासन का ताज के नाम में संचालन करती है। देश के प्रशासन पर नियन्त्रण, निर्देशन व अधीक्षण के अधिकार व शक्तियाँ केबिनेट में ही निहित हैं। शासन अथवा प्रशासन को सुचारु रूप में चलाने के हेतु केबिनेट आवश्यक निर्णय करती है, निदेश व आदेश निकालती है और आवश्यकतानुसार नई सेवायें, अभिकरणों, आयोगों व विशेष पदों की रचना करती है। समय-समय पर प्रशासन के विभागों अथवा शासनतन्त्र का पुनर्गठन भी केबिनेट के निर्णय द्वारा किया जाता है। शासन के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति आदि पर भी केबिनेट में विचार अथवा निर्णय किया जाता है। संक्षेप में, युद्ध व शान्ति के काल में शासन के सुगम और कुशल संचालन का उत्तरदायित्व केबिनेट पर ही है।

वित्तीय क्षेत्र में—राष्ट्र की आय और व्यय का निर्धारण अर्थात् बजट और उसे पार्लियामेंट से स्वीकृत कराना भी केबिनेट का एक महत्वपूर्ण कार्य है। वास्तव में बजट को तैयार करने का भार प्रधानतः वित्त-मंत्री पर रहता है, परन्तु आय के साधनों और व्यय की मुख्य योजनाओं पर केबिनेट में ही विचार होता है। बजट प्रस्तावों पर अन्तिम स्वीकृति केबिनेट की ही होती है।

प्रशासन कार्यों में समन्वय स्थापित करना—शासन का कार्य विभिन्न प्रशासनिक विभागों में बंटा है, किन्तु ऐसे अनेक कार्य होते हैं जिन्हें किसी एक विभाग के अधीन रखा जाता है, यद्यपि यथार्थ में उनका दो या अधिक विभागों से सम्बन्ध रहता है। उदाहरण के लिए दूसरे विश्व-युद्ध के दौरान ब्रिटिश सेनाओं का नार्वे में उतारा जाना और डंकर्क से हटाना ऐसे कार्य थे जिनको सफलतापूर्वक करने के लिए नौ-सेना, युद्ध कार्यालय, नभ-मंत्रालय के बीच घनिष्ठ सहयोग की आवश्यकता थी। इन कार्यों को पूर्ण करने के हेतु वित्त विभाग से व्यय, समुद्री जहाजों और परिवहन के मंत्रालयों से परिवहन की सुविधायें भी आवश्यक थीं। विभिन्न विभागों के बीच सहयोग बढ़ाने तथा उनके कार्यों को एक निर्दिष्ट दिशा में संचालित करने के लिए समन्वय की बड़ी आवश्यकता है और केबिनेट ही इस महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करती है।

केबिनेट की शक्तियाँ—आजकल केबिनेट और प्रधान मन्त्री शासन की उन सभी सर्वोच्च शक्तियों का प्रयोग करते हैं, जो अतीत में निरंकुश राजाओं में निहित थीं और अब नाम के लिए रानी में निहित हैं। यदि हम केबिनेट की वर्तमान शक्तियों की निरंकुश राजाओं की शक्तियों से तुलना करें तो पता चलता है कि आजकल मंत्रियों की शक्तियाँ कुछ बातों में परिमित हैं और कुछ में अधिक विस्तृत। केबिनेट की शक्तियाँ इस दृष्टि से कम हैं कि इसे सदा ही पार्लियामेंट और जनमत का ध्यान रखना पड़ता है तथा नागरिकों की स्वतंत्रताओं व विधि के शासन का आदर भी। इसके अतिरिक्त इसे कभी-कभी राजा (या रानी) की इच्छा पर भी ध्यान देना होता है परन्तु दूसरी ओर केबिनेट की शक्तियों में बड़ी वृद्धि हुई है, क्योंकि गत शताब्दियों में शासन के कार्यों में अपूर्व वृद्धि हुई है। साथ ही, मंत्रियों को पार्लियामेंट (व्यवहार में कामन सभा) के बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है, अतएव वे अपने कार्यक्रम को जनमत के समर्थन के बल पर कार्यान्वित कर सकते हैं।

केबिनेट और ताज—यह बताया जा चुका है कि प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति ताज द्वारा की जाती है और ताज चाहे तो उन्हें अपदस्थ भी कर सकता है अथवा उनसे त्याग-पत्र मांग सकता है; परन्तु साधारण परिस्थितियों में ताज को इन कार्यों के करने की स्वतन्त्रता नहीं है। कुछ विशेष अथवा असाधारण परिस्थितियों में ही ताज इन शक्तियों का अपने विवेक के अनुसार प्रयोग कर सकता है। वास्तव में ऐसे अवसरों पर भी वह वृद्ध राजनीतिज्ञों से मंत्रणा करता

है। अब तो यथार्थ स्थिति यह है कि ताज की प्रायः सभी शक्तियों का प्रयोग केबिनेट या मंत्री करते हैं। ताज और केबिनेट तथा अन्य मंत्रियों के बीच सम्बन्ध जोड़ने वाली कड़ी प्रधान मंत्री है। प्रधान मंत्री शासन की गतिविधियों, केबिनेट के निर्णयों व प्रस्तावों से ताज को अवगत रखता है और ताज प्रधान मंत्री से इन विषयों में सभी प्रकार की सूचना पाने का अधिकार रखता है। अब, सक्षेप में, स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है : जबकि अतीत में मंत्री राजा को परामर्श देते थे और निर्णय राजा द्वारा किये जाते थे; आजकल परामर्श राजा या रानी देते हैं और निर्णय केबिनेट करती है।

केबिनेट और पार्लियामेंट—मंत्रिमण्डल के प्रायः सभी सदस्य पार्लियामेंट के सदस्य होते हैं और केबिनेट अथवा मंत्रिमण्डल (व्यवहार में कामन सभा) के प्रति उत्तरदायी होता है। यद्यपि केबिनेट कार्यपालिका है और पार्लियामेंट का मुख्य कार्य विधि-निर्माण तथा शासन की नीति का निर्धारण है, किन्तु यथार्थ में दोनों ही कार्यों में पहल केबिनेट के हाथों में आ गई है। अब स्थिति यह है कि जब तक केबिनेट को कामन सभा के बहुमत का समर्थन मिलता रहता है यह किसी भी प्रकार का कानून पास कराने में सफल होती है। शासन के विभिन्न विभागों के लिए व्यय और आय के प्रस्ताव पार्लियामेंट (अब कामन सभा) स्वीकार करती है। परन्तु इन प्रस्तावों का निर्धारण अथवा बजट का निर्माण केबिनेट करती है। इस सम्बन्ध में यह प्रथा पड़ गई है कि वित्तीय प्रस्ताव केवल मंत्री ही पेश कर सकते हैं और कामन सभा किसी वोट (व्यय के लिए मांगी गई धन-राशि) को अस्वीकृत या कम कर सकती है, किन्तु उसमें वृद्धि नहीं कर सकती। वास्तव में, जब तक मंत्रिमण्डल को बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है, केबिनेट ही इन सब प्रस्तावों को कामन सभा में प्रस्तुत करने की स्वीकृति देती है और उन्हें जिस रूप में चाहती है पास करा सकती है।

पूर्वोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वास्तविक शक्तियाँ केबिनेट के हाथों में केन्द्रीभूत हो गई हैं। पार्लियामेंट तो केवल सरकारी नीति की खुलकर आलोचना ही कर सकती है एक समय था जबकि कामन सभा की स्थिति, मंत्रिमण्डल के मुकाबले में, अधिक सुदृढ़ थी। बेजहॉट ने अपने ग्रंथ में, जो सन् १८६७ में प्रकाशित हुआ था, कामन सभा को राजनीतिक शक्ति व प्रभाव का केन्द्र और राजनीतिक मत का निर्माण करने वाला बताया है, परन्तु अब स्थिति यह है कि केबिनेट विधायी क्षेत्र में भी शक्ति का केन्द्र है और पार्लियामेंट तो केवल इसके निर्णयों पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगाती है अर्थात् उन्हें कानूनी रूप प्रदान करती है। जैनिंग्स के मतानुसार सरकार (मंत्रिमण्डल) का काम शासन करना है और कामन सभा का उसकी आलोचना करना है।

केबिनेट के नियन्त्रण का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। विदेश तथा परराष्ट्र सम्बन्धों के क्षेत्र में केबिनेट सभी प्रकार के महत्वपूर्ण निर्णय करती है। कभी-कभी तो

निर्णय और उनके अनुसार कार्यवाही के आदेश पहले ही जारी हो जाते हैं और बाद में उन पर पार्लियामेंट में विचार किया जाता है। इन अवसरों पर मंत्रि-मण्डल की खूब आलोचना होती है, किन्तु साधारणतया बहुमत सरकारी निर्णयों का अनुसमर्थन ही करता है। उदाहरण के लिए युद्ध की घोषणा, संधि करना और सेनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के सम्बन्ध में केबिनेट ही निर्देश अथवा आदेश देती है। जैसा कि गत पृष्ठों में बताया जा चुका है, विधि-निर्माण के क्षेत्र में भी अब प्रवृत्ति यह है कि अधिक से अधिक निर्णय केबिनेट करती है और कामन सभा केवल उनका अनुसमर्थन करती है।

हैरीसन तथा अन्य लेखकों का यह मत है कि यदि किसी केबिनेट को कामन सभा में सुदृढ़ बहुमत का समर्थन प्राप्त हो तो उसकी शक्तियों पर कोई कानूनी सीमा नहीं।[1] इसी कारण कुछ लेखकों ने यह मत व्यक्त किया है कि ब्रिटेन में केबिनेट की अधिनायकशाही कायम होती जा रही है। रेम्जे म्यूर ने 'ब्रिटेन का शासन कैसे होता है' नामक पुस्तक में केबिनेट की विभिन्न शक्तियों का वर्णन करते हुए उसे सर्वशक्तिशाली बताया है। वह कहता है कि इसकी स्थिति, जब भी वह बहुमत का समर्थन पाती है अधिनायकशाही की है, यह केवल खुले रूप में कार्य-वाही की एक शर्त से बंधी है। यह अधिनायकशाही दो पीढ़ी पूर्व से कहीं अधिक पूर्ण है।[2] अन्य लेखकों ने भी लिखा है कि वे अमरीकी जो केबिनेट पद्धति को कार्यरूप में देखते हैं, कभी-कभी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग्रेट ब्रिटेन तथ्यतः केबिनेट तानाशाही के अधीन है।

किन्तु केबिनेट को अधिनायक कहना उचित नहीं है। इसकी शक्तियों पर वास्त-विक सीमायें लगी हैं। शासन की कार्यवाही खुले रूप में चलती है। पार्लियामेंट के दोनों सदनों और समाचार-पत्रों में केबिनेट की नीति व कार्यक्रम की व्यापक आलोचना की जाती है। कामन सभा में इसके विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव, अविश्वास का प्रस्ताव तथा काम-रोको प्रस्ताव पेश किये जा सकते हैं और बहुमत विरुद्ध होने पर केबिनेट को त्याग-पत्र देना पड़ता है। पार्लियामेंट की बैठकों में मन्त्रियों से प्रशासन सम्बन्धी कार्यों व भूलों के बारे में प्रतिदिन अनेक प्रश्न पूछे जाते हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ब्रिटेन में विपक्षी दल अत्यन्त सुदृढ़ रहता है और उसके महत्व को सभी स्वीकार करते हैं। इन बातों के रहते हुए केबिनेट कभी भी अधिनायकशाही का रूप धारण नहीं कर सकती।

1. 'If a Cabinet has a stable House of Commons majority, there are no formal limits to its powers.'
—*W Harrison*, The Government of Britain, p. 6.

2. 'Its position, whenever it commands a majority, is a dictatorship only qualified by publicity. This dictatorship is far more absolute than it was two generation ago.'
—*R. Muir*, *How Britain is Governed*, *pp. 67–68.*

वास्तव में, केबिनेट को जनमत और व्यापक विरोध का आदर करना पड़ता है। इसी आधार पर ब्रिटेन में सच्चा प्रजातन्त्र है, और केबिनेट की अधिनायकशाही की बात मान्य नहीं। पार्लियामेंट में विरोधी पक्ष का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। मन्त्रिमण्डल शासन का संचालन करता है और प्रशासनतन्त्र का नियन्त्रण भी, किन्तु विरोधी पक्ष पर यह उत्तरदायित्व है कि वह इस बात पर बल देता रहे कि जो कुछ भी सरकार करती है, वह जनता के सामने आता रहे और यह भी कि शासन की नीति के पक्ष तथा विपक्ष में सभी तर्कों की सुनवाई होगी। इस बात का भी ध्यान रहना चाहिए कि ब्रिटेन में चुनाव स्वतन्त्र होते हैं और नागरिकों को अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता प्राप्त है। इन दशाओं में केबिनेट कभी भी अधिनायक नहीं बन सकती।

केबिनेट की कार्य-प्रणाली—केबिनेट की कार्यवाही गुप्त रखी जाती है। इसके सदस्यों को 'गोपनीयता की शपथ' लेनी होती है। इसके अतिरिक्त सरकारी गुप्त कार्यवाहियों के कानून (Official Secrets Act) के अन्तर्गत केबिनेट तथा राज्य के अन्य गुप्त पत्रों को प्रकाशित करना दण्डनीय है। जब कभी कोई मन्त्री किसी प्रश्न पर मतभेद होने के कारण त्याग-पत्र देता है और अपने त्याग-पत्र के कारणों पर कोई वक्तव्य देना चाहता है तो उसे प्रधान मन्त्री के द्वारा ताज से किसी भी ऐसी बात के लिए जिसमें केबिनेट का वाद-विवाद अन्तर्ग्रस्त है, आज्ञा लेनी पड़ती है। साधारण अर्थात् शान्तिकाल में केबिनेट की प्रति सप्ताह एक या दो बैठकें होती हैं, जो कई घण्टे तक चलती हैं। जिन दिनों पार्लियामेंट का सत्र नहीं होता इन बैठकों के बीच का समय अपेक्षाकृत बढ़ जाता है। इनकी बैठक प्रधान मन्त्री कभी भी बुला सकता है, यदि कोई ऐसा मामला उठे, जिस पर अविलम्ब विचार किया जाना आवश्यक हो।

केबिनेट साधारणतया दो प्रकार की समितियों का प्रयोग करती है—स्थायी या तदर्थ। केबिनेट किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय करने से पूर्व उसे किसी समिति को विचारार्थ और रिपोर्ट देने के लिए सौंप देती है। इस समय मुख्य समितियाँ ये हैं—(१) प्रतिरक्षा समिति—इसका सभापति प्रधान मन्त्री होता है। वास्तव में यह प्रथम विश्व-युद्ध काल में बनी साम्राज्य प्रतिरक्षा समिति की उत्तराधिकारी है। (२) नागरिक प्रतिरक्षा समिति—इस समिति का सभापति गृह-मन्त्री होता है। (३) आर्थिक नीति समिति—प्रधान मन्त्री स्वयं इसका प्रधान होता है और यह समिति आर्थिक नियोजन कार्य की देख-रेख करती है। (४) उत्पादन समिति—यह दूसरी आर्थिक समिति है। अन्य समितियों में ये मुख्य रही हैं—दो विधि-निर्माण समितियाँ, नागरिक उड्डयन समिति और नागरिक सेवा समिति इत्यादि। केबिनेट सचिवालय की स्थापना प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान हुई थी और अब यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग के रूप में विकसित हो गया है।

४. प्रधान मन्त्री

प्रधान मन्त्री के कार्य और शक्तियाँ—प्रधान मन्त्री की नियुक्ति किस प्रकार होती है, इस बात का विवेचन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। अतएव यहाँ पर हम प्रधान मन्त्री की केबिनेट, मन्त्रिमण्डल व शासन आदि में क्या स्थिति है, इसका विवेचन करेंगे। प्रधान मन्त्री केबिनेट व मन्त्रिमण्डल का प्रधान अथवा प्रमुख होता है। सभी मन्त्रियों की नियुक्ति उसकी सिफारिश पर की जाती है। उसे अपने सहयोगी छाँटने में काफी स्वतन्त्रता रहती है। अपने मन्त्रिमण्डल के निर्माण में प्रधान मन्त्री को जितनी स्वेच्छाचारी शक्ति रहती है, उतनी शक्ति का कोई अधिनायक भी उपभोग नहीं करता।[1] यद्यपि इस कार्य को करने में उसे अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता है। इसका यह कार्य बड़ा कठिन है; क्योंकि उसे अपने दल की बहुत बड़ी संख्या में से कुछ ऐसे सदस्यों को छाँटना पड़ता है जिन्हें एक सूत्र में बाँधा जा सके। उसका यह कार्य विभिन्न प्रकार के टुकड़ों को एक मूर्ति की शक्ल देना है। वही केबिनेट की बैठकों का सभापतित्व करता है। प्रधान मन्त्री के त्याग-पत्र का अर्थ सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल का त्याग-पत्र है और वह किसी भी मन्त्री को उसकी भूल या मतभेद के कारण अपदस्थ भी कर सकता है। मन्त्रियों में कार्य वितरण भी प्रधान मन्त्री ही करता है। मन्त्रियों और उनके विभागों में समय-समय पर प्रधान मन्त्री उलट-फेर करता है। जहाँ तक मन्त्रिमण्डल के निर्माण का सम्बन्ध है, वही इसकी रचना करता है। केबिनेट और ताज को जोड़ने वाली कड़ी अथवा उन दोनों के बीच संचार का साधन भी प्रधान मन्त्री होता है। शासन के बहुत से मामलों में वही ताज को परामर्श देता है।

प्रधान मन्त्री अपने दल का नेता होता है और साथ ही कामन सभा की बैठकों में सदन का नेता (Leader of the House) भी। वह सरकार की नीति के सम्बन्ध में समय-समय पर पार्लियामेंट के भीतर या बाहर महत्वपूर्ण घोषणायें भी करता है। शासन के अनेक उच्च पदों पर उसके ही परामर्श से नियुक्तियाँ की जाती हैं। वह सम्पूर्ण प्रशासन के कार्यों की देख-रेख करता है और उनके कार्यों में समन्वय स्थापित करता है। प्रधान मन्त्री केबिनेट सचिवालय पर नियन्त्रण रखता है। इसके अतिरिक्त वह साम्राज्य सम्मेलनों और राष्ट्रमण्डलीय देशों के प्रधान मन्त्रियों के सम्मेलनों का सभापति होता है। संक्षेप में, जिस प्रकार राजा (या रानी) राज्य का प्रतीक होता है, प्रधान मन्त्री उसी प्रकार शासन का प्रतीक होता है।[2]

प्रधान मन्त्री की शक्तियों और उसके अधिकारों को हम, संक्षेप में, इस प्रकार रख सकते हैं—(१) प्रधान मन्त्री, जैसा कि हम देख चुके हैं, केबिनेट व मन्त्रिमण्डल

1. 'No dictator indeed enjoys such a measure of autocratic power as is enjoyed by the British Prime Minister in the process of making up his cabinet.' —L. S Amery, Thoughts on the Constitution, pp. 23-4.
2. 'He personifies the Government of the day as the Queen personifies the state.' —*Michael Stewart*, The British Approach to Politics p 47.

का निर्माण करता है और केबिनेट में सामञ्जस्य बनाये रखने के लिये किसी भी मन्त्री को उसके पद से हटा सकता है। (२) वह केबिनेट की बैठकों का सभापतित्व करता है और सचिवालय के द्वारा केबिनेट के निर्णयों को कार्यान्वित कराने के लिये परिवीक्षण करता है। (३) वही प्रतिरक्षा समिति की बैठकों में सभापति रहता है और विदेश कार्यालय के कार्यों से उसका अवश्य ही सम्बन्ध रहता है। (४) अन्य विभागों में भी प्रमुख प्रश्नों को उसके नोटिस में लाया जाता है, जिससे कि वह यह निर्णय कर सके कि क्या उन्हें केबिनेट के सामने रखवाया जाय।

(५) जहाँ कहीं विभागों के बीच मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं, वही उन्हें तय कराता है अथवा वे केबिनेट के सामने रखे जाते हैं। (६) नीति सम्बन्धी प्रश्नों पर वह सम्बन्धित मन्त्रियों से विचार-विमर्श करता है और सभी प्रकार की महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ उसकी सिफारिश पर की जाती हैं। (७) उपाधियों के लिये वही राजा (अथवा रानी) के सम्मुख सूची प्रस्तुत करता है। (८) सभी केबिनेट सम्बन्धी मामलों में वही राजा (या रानी) और विभागीय मन्त्रियों के बीच संचार का साधन है। (९) अतीत में साधारणतया वही कामन सभा में सदन का नेता रहा है। उससे आशा की जाती है कि वह ऐसे प्रश्नों का उत्तर दे जो किसी एक विभाग के क्षेत्र में नहीं आते। महत्वपूर्ण प्रश्नों पर हो रहे वाद-विवाद में वह बहुधा भाग लेता है।

(१०) दल के नेता के रूप में उसे दल में अनुशासन बनाये रखना होता है और अनेक कार्य करने पड़ते हैं। (११) प्रतिनिधि मण्डलों को भेंट करने का अवसर देकर, दलीय सम्मेलनों में तथा अवसरों पर सार्वजनिक भाषण देकर, वह जनमत का मार्ग-दर्शन करता है। (१२) वह डोमीनियनों के केबिनेट-स्तर के मामलों पर सम्बन्धों का संचालन करता है। (१३) विभागों में अध्यक्ष किसी भी अविलम्ब आपात की दशा में प्रधान मन्त्री के पास परामर्श के लिये पहुँचते हैं, विशेषकर ऐसे मामलों में जिनके बारे में केबिनेट की स्वीकृति आवश्यक हो, किन्तु देरी होने की आशंका से केबिनेट का निर्णय कराना सम्भव नहीं होता।

प्रधान मन्त्री की शक्तियों के स्रोत—सर्वप्रथम, सरकार के कार्यों में अपूर्व वृद्धि हुई है, जिसके परिणामस्वरूप मन्त्रिमण्डल व प्रधान मन्त्री की शक्तियों में वृद्धि हुई है। दूसरे, प्रधान मन्त्री केबिनेट, मन्त्रिमण्डल और लोकप्रिय सदन का नेता होता है। वह कॉमन सभा का विघटन करा सकता है। तीसरे, प्रधान मन्त्री बहुमत दल का नेता होता है। कुछ लेखकों के मतानुसार तो अब निर्वाचक आम चुनाव के अवसर पर दो विरोधी नेताओं में से एक को चुनते हैं। अस्तु, आम चुनाव एक प्रकार का होने वाले प्रधान मन्त्री के पक्ष में जन-निर्णय होता है। चौथे, उसे अनेक उच्च पदों पर नियुक्ति और उपाधियाँ आदि देने की शक्तियाँ प्राप्त हैं। पाँचवें, युद्धकाल और आपातकाल में विशेष रूप से प्रधान मन्त्री की शक्तियाँ विस्तृत हो जाती हैं। छठें, प्रधान मन्त्री के वक्तव्यों और घोषणाओं को समाचार

५. केबिनेट के महत्व को विस्तार से समझाइए।

६. 'आज कॉमन सभा केबिनेट पर नहीं वरन् केबिनेट कॉमन सभा पर नियन्त्रण करती है।' इस कथन की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।

७. क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि ग्रेट ब्रिटेन में केबिनेट की अधिनायकशाही है? ऐसा क्यों कहा जाता है?

८. ब्रिटिश शासन में प्रधान मन्त्री की स्थिति और उसके कार्यों का वर्णन कीजिए।

९. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

(अ) केबिनेट पहियों के भीतर पहियाँ है।

(ब) केबिनेट एक मननात्मक निकाय है।

(स) केबिनेट का संयुक्त उत्तरदायित्व।

(द) प्रधान मन्त्री एक सूर्य के समान है जिसके चारों ओर अन्य ग्रह घूमते हैं।

४. लार्ड सभा

१. लार्ड सभा की रचना

परिचयात्मक—ब्रिटिश पार्लियामेंट के दो सदन हैं; ऊपर वाला सदन 'लार्ड सभा' है और निचला अथवा लोकप्रिय सदन 'कॉमन सभा' है। अब से लगभग १२५ वर्ष पूर्व तक 'कॉमन सभा' का महत्व लार्ड सभा की अपेक्षाकृत कम था; किन्तु आज लार्ड सभा केवल द्वितीय सदन ही नहीं है, वरन् इसका महत्व भी दूसरे नम्बर पर है। मजदूर दल की नीति तो बहुत समय तक इसका अन्त करने की ही रही और यदि ब्रिटेन में नई संवैधानिक पद्धति का निर्माण किया जाए तो वर्तमान लार्ड सभा का उसमें कोई स्थान न होगा।[1] वास्तव में लार्ड सभा एक ऐतिहासिक संस्था है, जिसे संसार का सबसे पुराना विधि-निर्माण करने वाला निकाय (Oldest law-making body in the world) कहा गया है।

लार्ड सभा के सदस्य—इसमें ६ श्रेणियों के सदस्य सम्मिलित हैं—(१) शाही रक्त के युवराज, (२) पैतृक पीयर, (३) स्काटलैंड के प्रतिनिधि पीयर, (४) आयरलैंड के प्रतिनिधि पीयर, (५) अपील के लार्ड अथवा कानूनी लार्ड और (६) आध्यात्मिक लार्ड। प्रथम श्रेणी में ही शाही परिवार के वे पुरुष सदस्य आते हैं जो वयस्क हों और जिनका शाही परिवार से बहुत ही निकट सम्बन्ध होता है। किसी भी पार्लियामेंट में इनकी संख्या २–३ से अधिक नहीं रहती और सदन की बैठकों में इनकी उपस्थिति 'नहीं' के समान रहती है तथा वे इसकी कार्यवाही में कोई सक्रिय भाग नहीं लेते।

पैत्रिक पीयर (Hereditary Peers)—लार्ड सभा के सदस्यों में इनका समूह सबसे बड़ा है। वास्तव में, इनकी संख्या कुल सदस्यों की संख्या का लगभग ९/१० भाग है। अंग्रेजी भाषा में पीयर शब्द का अर्थ 'सम' से है; आरम्भ में इस शब्द का प्रयोग राजा के प्रमुख सामन्तों के लिए हुआ, जिनका पद समान था। किन्तु समय बीतने पर बड़े और छोटे सामन्तों अथवा भूमिपतियों में अन्तर हो गया, जिसके परिणामस्वरूप केवल बड़े भूमिपति ही लार्ड सभा के सदस्य रहे। 'पीयर' शब्द का प्रयोग भी इन्हीं सदस्यों तक सीमित हो गया और अभी तक अधिकांश

1. 'A second chamber has become secondary as well. A leading political party. *i. e*, Labour favours *suppressing it* altogether, and everyone conceds that if the country were to find itself engaged in formulating a new constitutional system nothing resembling the present upper house would find a place in it.'

—*F. A. Ogg*, English Government and Politics, p 317.

पीयर पैत्रिक हैं। पीयर का सबसे बड़ा पुत्र और पुत्र न होने पर पुत्री पीयर की उपाधि पाती है और उत्तराधिकारी को यह उपाधि लेनी होती है। पैत्रिक पीयरों में ५ प्रकार के उपाधिधारी सम्मिलित हैं—ड्यूक, मारक्विस, अर्ल, वाइकाउन्ट और बेरन।

सभी पीयर लार्ड सभा के सदस्य नहीं होते। इसके विपरीत कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी लार्ड सभा की सदस्यता प्रदान की जाती है जो पीयर नहीं होते। सन् १७०७ में इंगलैंड और स्कॉटलैंड की यूनियन से पूर्व सभी अंग्रेज पीयर लार्ड सभा के सदस्य होते थे और सभी स्कॉटिश पीयर वहाँ के उच्च सदन के सदस्य होते थे। यूनियन की शर्तों के अनुसार इंगलैंड के सभी पीयरों के लिए लार्ड सभा की सदस्यता जारी रही, किन्तु स्कॉटलैंड से पीयरों को प्रत्येक पार्लियामेंट में भाग लेने के लिए १६ पीयरों का निर्वाचन करने का अधिकार मिला। स्कॉटलैंड के पीयरों की इस समय संख्या ५० से कम है। इसी प्रकार जब सन् १८०० में आयरलैंड और ग्रेट ब्रिटेन एक हुए तो आयरिश पीयरों की संख्या भी बहुत बड़ी थी। यूनियन की शर्तों के अनुसार यह व्यवस्था की गई कि सभी पीयर मिलकर अपने २८ प्रतिनिधि लार्ड सभा के लिए छाँटेंगे, परन्तु यह छाँट जीवन भर के लिए होती है। सन् १९२१ में स्वतन्त्र आयरिश राज्य की स्थापना हुई। आयरलैंड के पीयरों के लार्ड सभा में प्रतिनिधित्व में कोई परिवर्तन नहीं किया गया, किन्तु सन् १९२२ से इन पीयरों के रिक्त स्थानों को भरा नहीं गया और ऐसा माना जाता है कि आगे भी यह स्थान रिक्त ही रहेंगे।

पीयर किस प्रकार बनाए जाते हैं—प्रधान मन्त्री के परामर्श पर किसी भी श्रेणी के पीयर राजा (अथवा रानी) बनाता है। इनकी सख्या और समय आदि के विषय में कोई नियम नहीं है। प्रथा के अनुसार पद से निवृत्त होने वाले कॉमन सभा के प्रत्येक अध्यक्ष (Speaker) को पीयर बनाया जाता है। साधारणतया विभिन्न श्रेणियों के पीयरों की उपाधियाँ इनको दी जाती हैं—ऐसे मन्त्री जो सार्वजनिक सेवा में ऊँचा नाम पाते हैं, ऐसे सैनिक अधिकारी जिन्होंने सैनिक कार्यों में ऊँचा नाम पाया हो; ऐसे विद्वान जिन्होंने साहित्य, विज्ञान अथवा कला के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान किया हो; बड़े धनाड्य जो दानशीलता में बढ़े हुए हों और जिन्होंने सत्तारूढ़ दल को बड़े चन्दे दिए हों। कभी-कभी सत्तारूढ़ दल का पीयर बनवाने में यह उद्देश्य रहता है कि लार्ड सभा में विवादग्रस्त विधेयक को पास करने में सुविधा हो।

सन् १९५८ के आजीवन पीयरेज कानून के अन्तर्गत रानी को किसी व्यक्ति को आजीवन पीयर बनाने की शक्ति प्राप्त हुई। इसके अनुसार रानी किसी महिला को भी आजीवन पीयर बना सकती है और वे लार्ड सभा की सदस्या हो

सकेंगी।[1] जबकि वे महिलायें जिन्हें अपने अधिकार में पीयरेज मिलता है, लार्ड सभा की सदस्या नहीं हो सकतीं। निम्नतर श्रेणियों की उपाधियाँ पाने वाले कुलीन व्यक्तियों जैसे नाइट और बैरोनेट आदि को लार्ड सभा की सदस्यता का अधिकार नहीं है।

शाही घराने के युवराजों, पैत्रिक पीयरों और स्कॉटलैंड के प्रतिनिधि पीयरों के अतिरिक्त लार्ड सभा में अन्य दो प्रकार के सदस्य भी होते हैं। प्रथम, कानूनी लार्ड जो पैत्रिक पीयर नहीं होते। लार्ड सभा का एक महत्वपूर्ण कार्य सबसे ऊँचे अपीलीय न्यायालय का भी है। अतएव इसके सदस्यों में कुछ योग्य और प्रतिष्ठित न्यायविद् भी होते हैं, ऐसे सदस्यों को साधारणतया बेरन् की उपाधि दी जाती है। कानूनी लार्डों में विशेष रूप से नियुक्त ७ सदस्यों के अतिरिक्त लार्ड चांसलर और ऐसे अन्य सदस्य भी सम्मिलित होते हैं; जिन्होंने उच्च न्यायिक पदों पर कार्य किया हो। दूसरे, आध्यात्मिक लार्ड अर्थात् धर्म के उच्च अधिकारी भी लार्ड सभा के सदस्य बनाए जाते हैं। कानून के अनुसार केन्टरबरी और यॉर्क के लाट पादरी (Archbishops) तथा लन्दन व अन्य दो बड़े शहरों के तीन बड़े पादरी इसके कार्य में भाग लेने के लिए सदा ही बुलाए जाते हैं; इसके अतिरिक्त २१ अन्य पादरियों को निश्चित अवधि के लिए लार्ड सभा का सदस्य बनाया जाता है। इस प्रकार २८ आध्यात्मिक लार्ड उच्च सदन के सदस्य होते हैं।

२. लार्ड सभा के कार्य और उसकी शक्तियाँ

सन् १९११ के पार्लियामेंट एक्ट से लार्ड सभा की शक्तियों में महत्वपूर्ण कमी हुई; यद्यपि लार्ड सभा के कार्य अब भी पूर्व की भाँति कई प्रकार के हैं। पहले हम लार्ड सभा के कार्यों और शक्तियों का सन् १९११ से पूर्व की स्थिति के अनुसार निवेचन करेंगे लार्ड सभा की शक्तियाँ दूसरे सदन के बराबर मानी जाती थीं, क्योंकि कोई भी विधेयक दोनों सदनों में पास हुए बिना अधिनियम नहीं बन सकता था। लार्ड सभा किसी भी विधेयक में संशोधन कर सकती थी तथा विधेयक को अस्वीकृत भी कर सकती थी। यद्यपि लार्ड सभा को सैद्धान्तिक दृष्टि से धन-विधेयक (Money Bill) को भी अस्वीकार करने की शक्ति प्राप्त थी, किन्तु यह शक्ति बहुत समय से प्रयुक्त न होने के कारण लुप्त हो चुकी थी, यद्यपि लार्ड सभा के सदस्य इस शक्ति के लोप को स्वीकार न करते थे।

न्यायिक क्षेत्र में लार्ड सभा को दो विशेष शक्तियाँ प्राप्त हैं। प्रथम, यह कुछ प्रकार की दीवानी व फौजदारी अपील सुनने के लिए सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय

1. 'Without prejudice to her Majesty's powers as to the appointment of Lords of Appeal in ordinary; Her Majesty shall have power by letters patent to confer on any person a peerage for life......A peerage may be conferred under this section on a woman.' —Life Peerage Act, 1958.

है; परन्तु जैसा ऊपर बताया जा चुका है यह कार्य सदन के बहुत ही थोड़े सदस्यों अर्थात् कानूनी लार्डों द्वारा किया जाता है। दूसरे, इसे कामन सभा द्वारा लगाये गये महाभियोग के मामलों की सुनवाई और उनके निर्णय करने की शक्ति भी प्राप्त है। लार्ड सभा का यह प्राचीन और महत्वपूर्ण परमाधिकार रहा है। मन्त्रियों के उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के विकास से पूर्व इस कार्य का बड़ा महत्व था, क्योंकि यही एक साधन था जिसके द्वारा राजा के परामर्शदाताओं को उत्तरदायी ठहराया जा सकता था।

राजनीतिक क्षेत्र में लार्ड सभा की शक्ति कामन सभा के समान तो न थी अर्थात् मन्त्रिमण्डल केवल कामन सभा के प्रति ही उत्तरदायी माना जाता था, किन्तु यदि किसी विधेयक पर दोनों सदनों के बीच मतभेद होता था तो उसे दूर करने के ये तीन उपाय थे—(१) दोनों सदनों की संयुक्त समिति नियुक्त की जा सकती थी जो विधेयक के ऊपर समझौते का मार्ग निकाल सकती थी; (२) कामन सभा का विघटन करके उस प्रश्न पर निर्वाचकमण्डल के निर्णय को प्राप्त किया जा सकता था; और (३) यदि लार्ड सभा इस निर्णय को भी मानने को तैयार न होती तो राजा प्रधान मन्त्री के परामर्श पर लार्ड सभा को सूचित कर सकता था कि यदि उन्होंने कामन सभा द्वारा पारित विधेयक को स्वीकार न किया तो वह इतने नये पीयर बनायेगा कि लार्ड सभा में विधेयक का समर्थन बहुमत द्वारा किया जा सके। सन् १९११ में दोनों सदनों के बीच तीव्र मतभेद पैदा हुआ, जिसके परिणामस्वरूप सन् १९११ का पार्लियामेंट एक्ट बना। उसके मुख्य प्राविधान निम्नलिखित हैं—(१) कामन सभा द्वारा पारित धन विधेयक कामन सभा में पास होने की तारीख से १ माह के बाद कानून बन जायेंगे, चाहे लार्ड सभा उन्हें स्वीकार न करे। (२) इसमें धन विधेयक की परिभाषा दी गई है और यह भी व्यवस्था है कि जब कभी इस बात पर मतभेद उठें कि कोई विधेयक इस परिभाषा के अनुसार धन विधेयक है या नहीं तो कामन सभा का अध्यक्ष इस प्रश्न पर अन्तिम निर्णय देगा। कोई भी अन्य सार्वजनिक विधेयक जिसे कामन सभा ने एक के बाद दूसरे और तीसरे तीन लगातार सत्रों में इस प्रकार से पास किया हो कि इसके प्रथम और तीसरी बार पास किये जाने के बीच में २ वर्ष की अवधि बीत चुकी हो तो वह ताज की अनुमति मिल जाने पर कानून बन जायेगा चाहे लार्ड सभा ने उसे स्वीकार न किया हो। (३) आगे से पार्लियामेंट की अवधि अधिक से अधिक ५ वर्ष होगी, परन्तु पार्लियामेंट, यदि दोनों ही सदन सहमत हों और उस पर शाही अनुमति भी मिल जाये, आपातकाल में अपने जीवन को आगे बढ़ा सकती है। दोनों ही विश्व-युद्धों के दौरान में ऐसा ही हुआ, क्योंकि ऐसे आपातकाल में चुनाव नहीं कराये जा सकते थे।

सन् १९४९ का कानून—सन् १९४७ में लार्ड सभा की शक्तियों को और अधिक प्रतिबन्धित करने के लिए एक विधेयक कामन सभा में पेश किया गया, जिसे लार्ड

सभा ने स्वीकार न किया। अतएव वह विधेयक ३ वर्ष बीतने पर सन् १९४९ में कानून बना। इस कानून के अन्तर्गत कोई विधेयक तब कानून बन जायेगा, चाहे लार्ड सभा उसका विरोध करे, जब कामन सभा उस विधेयक को लगातार दो सत्रों (सन् १९११ के एक्ट में दिये गये प्राविधान के अनुसार ३ के स्थान पर २ में पास कर दे) तथा पहली बार हुए दूसरे वाचन की तारीख और दूसरी बार साथ किये जाने की तारीख के बीच २ के स्थान पर १ वर्ष का समय बीत जाये।

लार्ड सभा की वर्तमान स्थिति—ऊपर वर्णित कानूनों के निर्माण से लार्ड सभा की शक्तियों का अन्त हो गया है। यह विचार की दोनों सदनों की शक्तियों बराबर हैं, एक कल्पना मात्र है। लार्ड सभा अब भी द्वितीय सदन है। किन्तु शक्तियां की दृष्टि से भी इसका स्थान दूसरा (गौण) है। अब भी लार्ड सभा कुछ उपयोगी कार्य करती है, किन्तु अब यह अपने पुराने रूप की (जब इसे वास्तविक शक्तियाँ प्राप्त थीं) छाया मात्र है। लार्ड सभा के वर्तमान कार्यों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—प्रथम, यह अभी तक उच्चतम अपीलीय न्यायालय है; परन्तु अपीलों की सुनवाई के अतिरिक्त अब महाभियोग की सुनवाई की प्रथा का प्रायः अन्त हो गया है। दूसरे, इसके मननात्मक और आलोचनात्मक कार्य महत्वपूर्ण हैं। (अ) इसकी प्राइवेट बिल समितियाँ, कामन सभा का इस प्रकार के विधेयकों के ऊपर विचार किये जाने में जो समय व्यय होता है, उसे बचाने और तदनुसार कामन सभा का कार्य-भार हलका करने में बड़ा योग देती हैं। (आ) लार्ड सभा अस्थायी आदेशों सम्बन्धी विधेयकों तथा विशेष आदेशों के ऊपर विचार करके भी कामनसभा की सहायता करती है। (इ) लार्ड सभा में ऐसे विधेयकों को आरम्भ किया जाता है, जिन पर कोई विशेष मतभेद अथवा प्रवाद नहीं होता। ऐसे विधेयकों पर लार्ड सभा में विचार और वाद-विवाद हो जाने पर कामन सभा को उन पर बहुत कम समय लगाना पड़ता है।

ब्राइस रिपोर्ट के आजकल अनुसार लार्ड सभा निम्नलिखित चार उपयोगी कार्य करती है—(१) कामन सभा से आये विधेयकों के ऊपर विचार करना और उन्हें दोहराना। इस कार्य का महत्व इस कारण से और बढ़ गया है कि कामन सभा के कार्य-भार में बड़ी वृद्धि हुई और उसके पास समय का अभाव रहता है। साथ ही दलीय शासन अधिक कठोर हो जाने के कारण भी कामन सभा में विधेयकों पर सभी दृष्टियों से विचार नहीं हो पाता। (२) लार्ड सभा में ऐसे विधेयकों पर आरम्भ में विचार होता है, जिन पर गहरा मतभेद या प्रवाद नहीं होता। (३) लार्ड सभा किसी विधेयक के पास होने में (पहले दो वर्ष) अब एक वर्ष की देरी करा पाती है, इस बीच में राष्ट्र उस विधेयक पर अपने मत को भली प्रकार से अभिव्यक्त कर सकता है। (४) वैदेशिक नीति तथा अन्य महत्वपूर्ण मामलों पर स्वतन्त्र और विस्तृत रूप से विचार करना, विशेषकर ऐसे समय में जबकि कामन सभा अन्य आवश्यक कार्यों को करने में लगी हो।

लार्ड सभा और अमरीकी सीनेट—रचना और शक्तियों की दृष्टियों से दोनों सदनों की तुलना करना लाभदायक होगा। रचना की दृष्टि से दोनों सदनों में आधारभूत अन्तर है। सं० रा० अमरीका की सीनेट में प्रत्येक संघान्तरित राज्य के २-२ निर्वाचित प्रतिनिधि हैं और इनके सदस्यों की संख्या कुल १०० है। इसके विपरीत लार्ड सभा की बहुसंख्या पैत्रिक आधार से बने सदस्यों की है और इनका आकार सीनेट की तुलना में कई गुना बड़ा है। शक्तियों की दृष्टि से भी दोनों सदनों में महत्वपूर्ण अन्तर की बातें हैं। विधायी क्षेत्र में सीनेट की शक्तियाँ प्रतिनिधि सदन के बराबर हैं और वित्तीय क्षेत्र में भी प्राय: समान ही हैं, अन्तर केवल इतना है कि वित्तीय विधेयकों का आरम्भ प्रतिनिधि सदन में होता है। किन्तु सीनेट सभी प्रकार के विधेयकों में कैसा भी संशोधन कर सकती है तथा प्रतिनिधि सदन द्वारा भेजे गये विधेयकों को अस्वीकृत भी कर सकती है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है लार्ड सभा की वास्तविक शक्तियों का सन् १९११ और १९४९ के कानूनों से प्राय: अन्त ही हो गया है। न्यायिक क्षेत्र में सीनेट को महाभियोग की कार्यवाही में निर्णय का अधिकार है, किन्तु लार्ड सभा का उच्चतम अपीलीय न्यायालय सम्बन्धी अधिकार महत्वपूर्ण है और इस प्रकार की शक्ति सीनेट को प्राप्त नहीं है। इनके अतिरिक्त, जबकि सीनेट को राष्ट्रपति द्वारा दी गई अनेक महत्वपूर्ण नियुक्तियों और सन्धियों के अनुसमर्थन की विशेष शक्तियाँ प्राप्त हैं, लार्ड सभा को मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण तो क्या साधारण प्रभाव डालने का भी अधिकार नहीं है। इन्हीं कारणों के आधार पर यह कहना उचित है कि सीनेट विश्व का सबसे शक्तिशाली सदन है और लार्ड सभा पूर्णतया अशक्त है।

३. लार्ड सभा और उसके सुधार की समस्या

लार्ड सभा की आलोचना—लार्ड सभा की रचना की दृष्टि से अग्रलिखित आधारों पर तीव्र आलोचना की गई है: (१) इसके सदस्यों की संख्या अत्यधिक बड़ी है। विश्व के अन्य देशों में उच्च सदन का आकार निम्न सदन से बहुत छोटा होता है, केवल सोवियत संघ में ही दोनों सदनों के सदस्यों की संख्या लगभग बराबर और ६०० से ऊपर है। (२) जबकि अन्य राज्यों के उच्च सदनों के अधिकतर सदस्यों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष निर्वाचन होता है, लार्ड सभा के सदस्यों की बहुसंख्या वंशानुगत है और वे जीवन-पर्यन्त सदस्य रहते हैं। (३) बहुत से लेखकों के मतानुसार लार्ड सभा के अधिकतर सदस्य अयोग्य होते हैं किन्तु अन्य उच्च सदनों के अधिकतर सदनों के बारे में यह बात लागू नहीं होती। (४) लार्ड सभा के अधिकतर सदस्य एक ही वर्ग-कुलीन व सम्पत्ति-शाली व्यक्तियों व उनके हितों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। अन्य देशों के उच्च सदनों के सदस्य विभिन्न वर्गों व हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन्हीं आधारों पर लार्ड सभा की रचना पूर्णतया लोकतन्त्री सिद्धान्तों के विरुद्ध है और इसके सदस्य किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। जबकि गत १००-१५० वर्षों में ब्रिटिश शासन पद्धति के महत्वपूर्ण अंगों का लोकतन्त्रीकरण हुआ है। लार्ड

सभा अभी तक पहले ही जैसी अलोकतन्त्री संस्था है और इसमें समय के अनुसार शासन के अन्य अंगों के साथ-साथ परिवर्तन हुए हैं। यह अभी तक सम्पत्ति का गढ़ और रूढ़िवादी निकाय हैं।

इसी कारण लार्ड सभा का स्वरूप एकदलीय है और यह सदा ही अनुदार दल का समर्थन करता रहा है; क्योंकि इसने प्रगतिशील प्रस्तावों का विरोध किया है। जैनिंग्स ने इसे सत्य ही अनुदार दल का गढ़ कहा है। यह सदन एक ही राजनैतिक दल—अनुदार दल की नीतियों और सिद्धान्तों से अभिन्न रूप से बंधा है। इसके सदस्यों की बहुत बड़ी संख्या अनुदार दल ही नहीं वरन् अनुदार दल में भी प्रतिगामी अंश की समर्थक रही है। फलतः आम निर्वाचन में चाहे किसी भी दल की जीत हो, उच्च सदन पर नियन्त्रण प्रतिगामी तत्वों का ही बना रहता है। कुछ पीयरों ने लार्ड बालफोर के इस दावे से सहमति प्रकट की है कि अनुदार दल को अब भी इतने बड़े साम्राज्य के भाग्य का नियन्त्रण करना चाहिए, चाहे कोई भी दल सत्तारूढ़ रहे। तदनुसार उच्च सदन ने सदा ही अनुदारदलीय कार्यक्रम का समर्थन और उदार व मजदूर दल के कार्यक्रमों व नीतियों का विरोध किया है। सिडनी तथा बियट्रीज वैब के अनुसार लार्ड सभा के निर्णय उसकी रचना से दूषित होते हैं। यह समस्त निर्मित प्रतिनिधि संस्थाओं में सबसे बुरी है। इसमें श्रमिकों, साधारण व्यापारियों, स्त्रियों और साधारण वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं है।

लार्ड सदन की कार्य प्रणाली में भी कई दोष हैं। इसमें सदस्यों की संख्या इतनी अधिक है कि यदि उनमें से अधिकतर इसकी कार्यवाही में भाग लेने लगें तो इसका कार्य-संचालन सुगम न रहे। किन्तु इतनी बड़ी संख्या होते हुए भी व्यवहार में अधिकतर सदस्य इसकी बैठकों में अनुपस्थित रहते हैं। लार्ड सभा में लगभग ७५० सदस्य हैं, जिनमें से औसतन ६५० प्रतिनिधि अनुपस्थित रहते थे। उपस्थित होने वाले सदस्यों में से बहुत ही कम वाद-विवाद में भाग लेते हैं। वास्तव में, कुछ वर्ष पूर्व तक स्थिति यह रही कि इसकी कार्यवाही में सक्रिय भाग लेने वाले या तो वर्तमान अथवा पुराने मन्त्री होते थे और या वे सदस्य जो अपने आर्थिक हितों का संरक्षण करने में विशेष दिलचस्पी रखते थे। लार्ड सभा की सबसे तीव्र आलोचना तथा निन्दा इस आधार पर की गई है कि **यह आज के प्रजातन्त्री युग में अतीत की एक बहुत ही अलोकतन्त्री संस्था है।** ऑग ने इसे एक राजनीतिक रूप में समय के विरुद्ध संस्था (political anarchronism) बताया और लास्की ने लिखा है कि यह एक ऐसी समय के विरुद्ध संस्था है जिसका पक्ष नहीं लिया जा सकता।[1]

परन्तु दूसरे विश्व-युद्ध के बाद से लार्ड सभा के रुख में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। लार्ड सभा की जो भी बची हुई शक्तियाँ थीं, उनकी श्रमिक दल की सुदृढ़

1. 'For as the second chamber of political democracy, it is by almost universal consent an indefensible anachronism.'

—*H. J. Laski*, Parliamentary Government in England, p, 111.

सरकार के अन्तर्गत कठोर परीक्षा होने को थी, इस बात को लार्ड सभा के सदस्य भी समझ गये थे। अतएव राष्ट्रीयकरण और सुधार विषयक विभिन्न विधेयक सुगमतापूर्वक पास हो गये। इस प्रकार लार्ड सभा अब एक पूरक दूसरा सदन हो गया है, जो कि कामन सभा की विधि-निर्माण में सहायता करता है और दोनों के बीच संघर्ष पैदा न हो इस प्रकार का प्रयत्न करता है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी, यह धारणा बना लेना गलत होगा कि लार्ड सभा ऐसा सदन बन गया है, जिसके कार्यों की ओर ध्यान देना आवश्यक नहीं है। बावजूद इस बात के कि यह देरी करने की शक्ति का प्रयोग करने में हिचकिचाता है, लार्ड सभा संशोधन करने की शक्ति का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग करती है। इसलिए कभी-कभी तो श्रमिक दल की सरकार ने भी विधि-निर्माण शीघ्र हो सके इस दृष्टि से विस्तार की बातों में लार्ड सभा के मतों व संशोधनों को मानने में रियायत की है। उदाहरण के लिए लोहे और फौलाद के राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी अति प्रवादमय कानून (सन् १९४९) को लागू करने की तारीख सरकार ने सन् १९५० में होने वाले आम चुनावों के बाद नियत करना स्वीकार कर लिया। सन् १९५६ में लार्ड सभा ने एक गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तुत मृत्यु-दण्ड का उन्मूलन करने वाले विधेयक को अस्वीकृत कर दिया, जबकि कामन सभा ने उसे पास कर दिया था। इस बात से लार्ड सभा की सुप्त शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है।[1]

सुधार प्रस्ताव—पार्लियामेंट एक्ट सन् १९११ के विकल्प रूप में लेंसडॉन योजना थी, जिसमें ये प्रस्ताव सम्मिलित थे—लार्ड सभा के सदस्यों की कुल संख्या ३२५ हो और वे इस प्रकार चुने या नामजद किये जायें—(१) १०० सदस्यों का चुनाव पीयरों द्वारा किया जाय; (२) १०० सदस्यो को ताज पीयरों अथवा अन्य व्यक्तियों में से नियुक्त करे; (३) १२० सदस्यों का चुनाव कामन सभा के सदस्य विभिन्न प्रादेशिक समूहों में बैठकर करें; और (४) समस्त पादरी पाँच पादरियों को नियुक्त करें। इस योजना को उदारवादी दल ने स्वीकार न किया और उन्होंने पार्लियामेंट एक्ट का निर्माण किया।

सन् १९१७–१८ का सम्मेलन और ब्राइस रिपोर्ट—सन् १९११ के पार्लियामेंट एक्ट के निर्माताओं ने अपने इस इरादे की घोषणा कर दी थी कि वे लार्ड सभा की रचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन करेंगे। सन् १९१७ में लार्ड ब्राइस के सभापतित्व मे ३० सदस्यों का एक सम्मेलन आयोजित हुआ; इन सदस्यों में सभी मतों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। सम्मेलन में द्वितीय सदन की रचना और शक्तियों के प्रश्न पर गम्भीर विचार किया गया और उसकी रिपोर्ट सन् १९१८ में प्रकाशित हुई। रिपोर्ट में सुधार के प्रश्न की कठिनाइयों पर बल दिया गया व द्वितीय सदन की रचना के लिए विभिन्न विधियों पर भी विचार किया गया। मन्त्रियों के परामर्श से

1. *K. B. Marder*, British Government, p 110.

ताज द्वारा सदस्यों की नामजदगी की विधि को सम्मेलन ने इन आधारों पर अस्वीकृत कर दिया कि इस विधि के अन्तर्गत इस बात की कोई प्रत्याभूति नहीं होगी कि जिन सदस्यों को नामजद किया जायेगा वे योग्य ही होंगे तथा इस प्रकार की नामजदगी अधिकांशत: दल के लिए की गई सेवाओं का फल न होगी। साधारण निर्वाचकों द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन विधि को इस कारण से अस्वीकृत किया गया कि इस प्रकार से चुना गया द्वितीय सदन पहले ही सदन की नकल होगा और उसका प्रतिद्वन्द्वी भी। स्थानीय संस्थाओं द्वारा चुनाव की विधि के पक्ष में कई बातें होते हुए भी इसे इस कारण से स्वीकार नहीं किया गया कि इसके परिणामस्वरूप स्थानीय संस्थाओं के निर्वाचनों में भी दलगत राजनीति का प्रवेश हो जायेगा, जो उस समय तक निर्दलीय आधार पर होते थे।

दूसरे विश्व-युद्ध के उपरान्त मेजर एटली के नेतृत्व में मजदूर दल की सरकार बनी, जिसने राष्ट्रीयकरण और सामाजिक कल्याण सम्बन्धी बहुत से विधेयकों को पास कराने का कार्यक्रम अपनाया। इन वर्षों में यह भय बना रहा कि सत्तारूढ़ दल और लार्ड सभा में संघर्ष होगा, किन्तु लार्ड सभा ने आम चुनाव के निर्णय को ध्यान में रखकर सरकार के प्रस्तावों में अधिक रुकावटें न डालीं। कुछ विधेयकों में लार्ड सभा ने कुछ ऐसे संशोधन किये जिन्हें मन्त्रिमण्डल ने देरी से बचने के उद्देश्य से स्वीकार कर लिया। फलत: दोनों सदनों के बीच कोई गम्भीर मतभेद न उठा; फिर भी सन् १९४७ में सत्तारूढ़ दल ने यह घोषणा की कि लार्ड सभा के देरी करने के अधिकार की अवधि घटा दी जाये। यह प्रस्ताव सभा में दूसरे वाचन के स्टेज को पार कर चुका था। इसी बीच में लार्ड सेलिसबरी की अध्यक्षता में अनुदार दल ने भी लार्ड सभा के सुधार हेतु एक समिति नियुक्त की। इस समस्या के ऊपर विचार करने के लिए तीनों दलों के नेताओं का सम्मेलन हुआ; इसमें लार्ड सभा की रचना के प्रश्न पर काफी सहमति रही, किन्तु शक्तियों के बारे में यह किसी निर्णय पर न पहुँच सका। कामन सभा द्वारा पास किए गये विधेयक को लार्ड सभा ने अस्वीकृत कर दिया। सन् १९४९ में मजदूर दली सरकार का विधेयक पास हो गया, जिसके मुख्य प्राविधान का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। उसके बाद से लार्ड सभा के सुधार का प्रश्न पृष्ठ-भूमि में पड़ा हुआ है।

क्या द्वितीय सदन आवश्यक है ?—इस तर्क का कि 'लार्ड सभा में अनुदार दल का स्थायी बहुमत न हो' यह अर्थ नहीं कि लार्ड सभा ही नहीं होनी चाहिए। यह प्रश्न कि ऐसा सदन वांछनीय है या नहीं, इस बात पर निर्भर करेगा कि लार्ड सभा के क्या कार्य हैं अथवा होने चाहिएँ। ब्राइस रिपोर्ट में इसकी आवश्यकता को स्वीकार किया गया है और यह भी बताया गया है कि इसके कार्य क्या होने चाहिएँ। अन्य सभी योजनाओं में तथा विभिन्न दलों द्वारा इसके सुधार की बातें कही गई हैं, किन्तु इसके उन्मूलन पर बल नहीं दिया गया। सदन के उपयोगी

कार्यों का संक्षिप्त विवेचन दिया जा चुका है। उसके आधार पर हम जैनिंग्स के इस मत से पूर्णतया सहमत हैं कि गत ४०–५० वर्ष से इस बात पर काफी सहमति है कि लार्ड सभा का होना वाँछनीय है, जिसमें सार्वजनिक महत्व के प्रश्नों पर (किन्तु राजनैतिक प्रवादों पर नहीं) वाद-विवाद हो सके, जहाँ सरकारी विधेयकों को साफ किया जा सके और जहाँ प्रशासन के संसदीय नियन्त्रण सम्बन्धी ऐसे पहलुओं पर ध्यान दिया जा सके जो तकनीकी अधिक हों और प्रवादग्रस्त कम।[1]

रेम्जे म्यूर ने भी द्वितीय सदन की आवश्यकता को दो आधारों पर न्यायोचित बताया है। प्रथम, यह ऐसे कार्य के विरुद्ध संरक्षण रूप में आवश्यक है जिस पर प्रथम सदन कम विचार करे; जो सम्भवतः क्रान्तिकारी हो और जिस पर राष्ट्र का मत न जाना गया हो तथा जो राष्ट्र की वास्तविक इच्छा के विरुद्ध हो। दूसरे, विधि-निर्माण तथा अन्य कार्यों की मात्रा इतनी अधिक है कि अकेला प्रथम सदन उसे नहीं कर सकता। अतएव द्वितीय सदन प्रथम सदन के पूरक रूप में आवश्यक है और बड़ी त्रुटियों को सुधारने के लिए भी जो कि अनुचित जल्दबाजी और अपर्याप्त वाद-विवाद से उत्पन्न हो सकती हैं।[2] वास्तव में, ब्रिटेन में कोई ऐसा संरक्षण (safeguard) न होने के आधार पर जैसा कि दुस्संशोध्य संविधान का होता है या जैसा लोक निर्णय की प्रक्रिया का स्विट्जरलैंड मे है, यह तर्क दिया जाता है कि ब्रिटेन को अन्य बहुत से राज्यों से भी अधिक द्वितीय सदन की आवश्यकता है, जिसे दोहराने और मनन करने की पूरी शक्तियाँ प्राप्त हों।

द्वितीय सदन क्यों कायम है ?—इस प्रश्न के उत्तर में इसकी आवश्यकता के अतिरिक्त दो बातें और कही जाती हैं। प्रथम, ब्रिटेन में द्वितीय सदन कायम है, क्योंकि वह आरम्भ से ही है अर्थात् ब्रिटिश जाति की रूढ़िवादिता के कारण इसका उन्मूलन सम्भव नहीं। दूसरे, लार्ड सभा जैसी भी रही है वह काफी उपयोगी सिद्ध हुई है। लार्ड सभा के अधिकतर सक्रिय सदस्यों को बड़ा अनुभव होता है, जो विशिष्ट विषयों पर हुए विचार तथा वाद-विवाद में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। इस रूप में लार्ड सभा प्रथम सदन की पूरक है और यह तथ्य कि इसमें अनुदार दली सदस्यों की प्रधानता है अधिक अर्थमय नहीं है, क्योंकि इसमें हुए वाद-विवाद से मन्त्रिमण्डल को कोई खतरा नहीं पहुँचता। लास्की ने भी लिखा है—'यदि जनतन्त्रीय राज्य में दूसरा सदन रखना हो, तो लार्ड सभा जबकि अनुदार दली सरकार हो, विश्व में सबसे अच्छा दूसरा सदन है। उसके विचारों का स्तर ऊँचा होता है। वह अस्थायी भावनाओं की लहरों की ओर ध्यान नहीं देता जिनसे निर्वाचकों को धोखा दिया जा सकता है। उसके पास उन सभी प्रकार के विषयों पर

1. *Jennings,* English Institutions, p. 106

2. '...a Second Chamber is therefore held to be necessary to supplement the first and to correct the blunders that may arise from undue haste and inadequate discussion.' —*R. Muir, How Britain is Governed, p. 193.*

विचार करने के लिए समय होता है जिनके लिए काफी समय की आवश्यकता होती है और भार से दबी कामन सभा उन पर कठिनाई से विचार कर सकती है। वह वास्तविक विवाद वाली समस्यायें केवल उस समय उपस्थित करता है जब प्रगतिशील दल की सरकार होती है।'

निष्कर्ष—द्वितीय सदन का होना आवश्यक और उपयोगी है। लार्ड सभा का अन्त नहीं किया जा सकता, सुधार किया जा सकता है। वर्तमान रूप में लार्ड सभा का अस्तित्व तब तक रहेगा जब तक कि इसका स्थान लेने वाले सुधरे हुए सदन की योजना स्वीकृत न हो जाये। इसके सुधार का प्रश्न बड़ा कठिन और पेचीदा है और उस पर जल्दी से सहमतिपूर्ण निर्णय होना सम्भव नहीं है। वैसे ही काफी समय से यह प्रश्न पृष्ठ-भूमि में पड़ा हुआ है। लार्ड सभा की रचना में साधारण परिवर्तन कभी भी हो सकते हैं, किन्तु इसका स्थानापन्न ढूंढ निकालना सुगम नहीं। अस्तु, लार्ड सभा को अभी कोई खतरा नहीं।

प्रश्न

१. लार्ड सभा की रचना का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

२. लार्ड सभा के संगठन व कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिए

३. सन् १९११ और सन् १९४९ के कानूनों से लार्ड सभा की शक्तियों पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

४. 'लार्ड सभा को सुधारा जाये या उसका अन्त किया जाये' इस विषय पर अपने विचार कारण सहित अभिव्यक्त कीजिए।

५. लार्ड सभा की मुख्य सुधार योजनाओं पर प्रकाश डालते हुए उसके सुधार हेतु अपने सुझाव दीजिये।

६. निम्नलिखित कथनों को समझाइये—

   (अ) लार्ड सभा दूसरा ही नहीं वरन् गौण सदन है।

   (आ) लार्ड सभा कामन सभा का पूरक सदन है।

   (इ) ब्रिटिश संविधान की एक उपयोगी किन्तु समय के विरुद्ध संस्था है।

७. 'व्यवहार में लार्ड सभा ठीक कार्य करती है और इसका स्थानापन्न पाना कठिन है।' (अर्ल एटली) इस टिप्पणी का विवेचन कीजिए।

५. कामन सभा

१. मताधिकार और निर्वाचन

सन् १८३२ से पूर्व निर्वाचन पद्धति के मुख्य दोष ये थे : (१) मताधिकार सम्पत्तिवान तथा ऊँचा कर देने वाले व्यक्तियों को ही प्राप्त था। (२) प्रतिनिधित्व का वितरण जनसंख्या के अनुपात में न था। (३) चुनाव में गम्भीर अनियमितताओं का प्रयोग होता था। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में ब्रिटेन में निश्चित रूप से उच्च व धनी वर्गों का शासन था।

सन् १८३२ के कानून सुधार में दो प्राविधान प्रमुख थे ? प्रथम, निर्वाचन-क्षेत्रों के पुनर्वितरण के बारे में था। इस कानून द्वारा सभी निर्वाचन-क्षेत्रों का पुनर्वितरण नहीं हुआ न ही उनका वितरण मतदाताओं के अनुपात में हुआ, परन्तु इसने प्रचलित गम्भीर दोषों को दूर किया। उजड़े हुए बरों और जेब के बरों (Pocket boroughs) को निर्वाचन-क्षेत्रों की सूची से निकाल दिया गया और इस प्रकार से घटे लगभग १५० स्थान नये आबाद नगरों में वितरित कर दिये गये। दूसरा, प्राविधान मताधिकार का विस्तार था। काउन्टियों और बरों के बीच प्रतिनिधित्व सम्बन्धी पुराना अन्तर कायम रहा, किन्तु मताधिकार को विस्तृत किया गया। काउन्टियों में ४० शिलिंग वाले भूमिपतियों के अतिरिक्त कुछ ऊँचे मूल्य वाली भूमि को जोतने वाले किसानों को भी मतदाता बनाया गया। नगरों में विविध प्रकार के मताधिकार के स्थान पर एकरूप मताधिकार जारी किया गया, क्योंकि इस कानून द्वारा उन सभी मकान-कर देने वाले निवासियों को मताधिकार दिया गया, जो ऐसे मकानों में रहते थे जिनकी किराये की वार्षिक आय १० पौण्ड या अधिक थी।

सन् १८३२ के सुधार कानून द्वारा केवल दो ही बड़े सुधार हुए थे। अतएव अन्य सुधारों के लिए आन्दोलन जारी रहा। उग्र सुधारवादियों ने जिन्हें चार्टिस्ट (Chartists) कहा जाता था, ६ बातों की माँग की और उनके लिए जोरदार आन्दोलन चलाया। उनकी ६ माँगें ये थीं—(१) सर्वव्यापी पुरुष मताधिकार, (२) सम-निर्वाचन क्षेत्र, (३) गुप्त मतदान, (४) कामन सभा की सदस्यता के लिए सम्पत्ति की योग्यता का उन्मूलन, (५) सरकारी कोष के सदस्यों को वेतन दिया जाये, और (६) पार्लियामेंट के वार्षिक सत्र। इस आन्दोलन के फलस्वरूप सन् १८६७ में दूसरा बड़ा सुधार कानून बना। इस कानून के निर्माण का श्रेय टोरी अर्थात् अनुदार दल को है। इस कानून द्वारा उन बरों से प्रतिनिधित्व छीनकर जिन्हें आवश्यकता से कहीं अधिक प्राप्त था उन क्षेत्रों को प्रदान किया गया जिनमें जन-संख्या की वृद्धि हो गई थी। इस कानून द्वारा नगरों में रहने वाले अधिकांश श्रमिकों को भी मताधिकार प्राप्त हुआ; जिसके फलस्वरूप निर्वाचकों की संख्या लगभग

१० लाख बढ़ गई। सन् १८७२ में गुप्त मतदान प्रणाली जारी की गई और सन् १८८३ में भ्रष्ट प्रथाओं को रोकने का कानून पास किया गया। परन्तु अभी तक ग्रामीण निर्वाचन-क्षेत्रों में रहने वाले खेतिहर श्रमिकों और खानों में काम करने वाले मजदूरों को मताधिकार प्राप्त न हुआ था। सन् १८८५ के पुनर्वितरण कानून द्वारा प्रतिनिधित्व को एक नियत स्तर के अनुसार सम्पूर्ण देश के लिए फिर से वितरित किया।

सन् १६१८ के जन प्रतिनिधित्व कानून और बाद के कानूनों के अन्तर्गत ये प्राविधान उल्लेखनीय हैं—(१) काउन्टि और बरो के बीच मताधिकार सम्बन्धी अन्तर का उन्मूलन—इस कानून के अन्तर्गत काउन्टि और बरो निर्वाचन-क्षेत्र तो रहे परन्तु दोनों ही प्रकार के निर्वाचन-क्षेत्रों में मताधिकार की अर्हतायें एकरूप बना दी गई। बरो का सदस्य बड़े कस्बे या शहर का प्रतिनिधित्व करता है, परन्तु दोनों का चुनाव एक ही समय, एक ही प्रकार से और एक समान मताधिकार के आधार पर होता है। सन् १९४४ से कामन सभा के सदस्यों की संख्या ६१५ से ६४० कर दी गई थी; परन्तु सन् १६४८ में इसे फिर घटा दिया गया और अब यह संख्या ६२५ है। अब कोई भी सदस्य १ लाख व्यक्तियों से अधिक का प्रतिनिधित्व नहीं करता, जबकि अधिकतर निर्वाचन क्षेत्रों में ६० हजार के लगभग व्यक्ति रहते हैं।

(२) इस कानून ने सभी वयस्क पुरुषों को मताधिकार प्रदान किया। ब्रिटेन के प्रत्येक ऐसे पुरुष को जिसकी आयु २१ वर्ष या उससे अधिक है और जो निवास सम्बन्धी शर्त या व्यवसायी मत के लिए अर्ह है अर्थात् व्यावसायिक सम्पत्ति का अधिकारी है चाहे वह अन्य स्थान में रहता हो मताधिकार प्राप्त है। इस कानून द्वारा यह भी प्रतिबन्ध लगाया गया था कि कोई भी व्यक्ति एक ही निर्वाचन में दो से अधिक मत न दे सकता था—अर्थात् कोई व्यक्ति एक निर्वाचन-क्षेत्र में निवास के आधार पर और दूसरे में व्यवासायिक सम्पत्ति के अधिकारी होने के नाते मतदान कर सकता था। सन् १६३८ के कानून द्वारा इस प्रकार के दूहरे मतदान का भी अन्त कर दिया गया। पुरानी प्रथा के अनुसार ऑक्सफोर्ड व कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों के स्नातकों को २–२ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त था। सन् १६१८ के कानून द्वारा उनका यह अधिकार बना रहा, परन्तु लन्दन व अन्य विश्वविद्यालयों को भी प्रतिनिधित्व का अधिकार मिला।

(३) स्त्रियों को भी मताधिकार दिया गया। तर्क की माँग थी कि स्त्रियों को समान मताधिकार मिले, किन्तु वास्तविकताओं को नहीं भुलाया जा सकता था। युद्ध-काल में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से बहुत कम हो गई थी, समान मताधिकार के परिणामस्वरूप स्त्री मतदाताओं की संख्या पुरुष मतदाताओं से बहुत बढ़ जाती। अतएव सन् १६१८ के कानून द्वारा यह सीमा लागू हो गई कि स्त्रियाँ ३० वर्ष की आयु के बाद ही मतदाता बनाई जायें। परन्तु सन् १६२८ के सम मताधिकार कानून

ने इस सीमा को भी हटा दिया। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, सन् १९४८ के अन्तर्गत व्यापारिक स्थानों और विश्वविद्यालयों को मिले मताधिकार का अन्त कर दिया गया। अब पार्लियामेंट के चुनावों में भाग लेने वाले मतदाता केवल निवास या सेवा के आधार पर ही पंजीकृत किए जाते हैं और कोई भी व्यक्ति केवल एक ही निर्वाचन क्षेत्र में मतदाता बन सकता है। संक्षेप में, सभी वयस्कों के नाम, जिनके ऊपर कोई कानूनी अक्षमता लागू न होती हो और जो ब्रिटिश प्रजाजन हों या आयरिश गणतन्त्र के नागरिक हों, मतदाता सूची में सम्मिलित किए जाते हैं। अक्टूबर सन् १९६४ के चुनाव के अवसर पर यूनाइटेड किंगडम के कुल मतदाताओं की संख्या ३ करोड़ ५८ लाख से कुछ ही ऊपर थी।

अनर्हतायें—साधारणतया प्रत्येक २१ वर्ष से ऊपर आयु वाला ब्रिटिश नागरिक[1] लोक सभा के लिए मतदाता है; फिर भी निम्नलिखित किसी भी अनर्हता के कारण बहुत से व्यक्तियों को मताधिकार से वंचित किया जाता है;

(१) सार्वजनिक संस्थाओं में रखे गए अपराधियों और मानसिक दोष से पीड़ित व्यक्तियों को मतदान का अधिकार नहीं है।

(२) कामन सभा के चुनावों में पीयरों को मतदान का अधिकार नहीं है, उच्च सदन में उनका प्रधान प्रतिनिधित्व है और वे स्थानीय संस्थाओं के चुनावों में भाग ले सकते हैं।

(३) पहले ऐसे सभी व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त न था जिन्हें सार्वजनिक निर्धन सहायता निधियों से सहायता मिलती थी। इस अनर्हता का सन् १९१८ के कानून द्वारा अन्त कर दिया गया, किन्तु ऐसे निर्धन व्यक्तियों को अब भी मताधिकार प्राप्त नहीं हुआ जिन्हें सार्वजनिक संस्थाओं में रखा जाता है, क्योंकि वे निवास सम्बन्धी शर्त को पूरा नहीं करते।

(४) जिन व्यक्तियों को चुनाव सम्बन्धी भ्रष्टाचारी अपराधों के लिए उपयुक्त न्यायालयों द्वारा दण्डित किया जाता है।

पार्लियामेंट अथवा कामन सभा की अवधि—कानून के अनुसार प्रति ५ वर्ष में एक बार आम चुनाव अवश्य होने चाहियें; परन्तु पार्लियामेंट जब चाहे अपनी अवधि को बढ़ा सकती है। दोनों विश्व-युद्धों के दौरान ऐसा ही हुआ। ब्रिटेन में चुनाव कभी बहुत शीघ्र और कभी बहुत देर से होते हैं, वहाँ पर संयुक्त राज्य अमरीका की तरह कोई निश्चित अवधि नहीं है। सन् १९१० में दो बार आम चुनाव हुए और सन् १९२२, १९२३, १९२४ में प्रति वर्ष आम चुनाव हुए। इनका

१. किसी व्यक्ति को तब तक मतदाता नहीं बनाया जा सकता जब तक कि वह जन्म या देशीकरण से ब्रिटिश प्रजाजन न हो। ब्रिटिश प्रजाजन (British Subject) में वे सभी व्यक्ति सम्मिलित हैं जो राजा के प्रति निष्ठा रखते हों चाहे वे ब्रिटिश द्वीप-समूह के निवासी हों या केनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणा अफ्रीका के निवासी हों।

कारण यह है कि प्रधान मन्त्री जब उचित समझे ताज को कामन सभा के विघटन हेतु परामर्श दे सकता है। इस प्रकार कामन सभा की अवधि अनिश्चित है। कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि आम चुनाव कब होने वाले हैं। सरकारी घोषणा हो जाने पर ही कामन सभा का विघटन होता है और घोषणा द्वारा ही चुनाव के लिए नामजदगी व मतदान की तिथियाँ नियत की जाती हैं। ऐसी घोषणा व नामजदगी की तारीख के बीच में बहुत कम समय रहता है—साधारणतया २–३ सप्ताह।

निर्वाचन क्षेत्र—ब्रिटेन में एक सदस्य वाले निर्वाचन क्षेत्र हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में प्रत्येक १० वर्षीय जनगणना के बाद निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्निर्माण होता है, किन्तु ब्रिटेन में ऐसी प्रथा नहीं है। पालियामेंट के कानूनों के अनुसार समय-समय पर निर्वाचन-क्षेत्रों का पुनः वितरण हुआ है, परन्तु सन् १९४४ में स्थायी सीमा आयोग बैठाये गए थे, जिनकी सिफारिशों के फलस्वरूप सन् १९४८ में निर्वाचन-क्षेत्रों का निर्माण किया गया था। इंगलैंड, स्कॉटलैंड, उत्तरी आयरलैंड तथा वेल्स के लिए स्थापित स्थायी आयोगों को अपने-अपने क्षेत्र में जनसंख्या के परिवर्तन पर ध्यान रखना है और उनका काम निर्वाचन-क्षेत्रों के वितरण में उचित उलट फेर के लिए सिफारिश करना है। नवम्बर सन् १९६५ में कुल निर्वाचन क्षेत्र ६३० थे, जो इस प्रकार बँटे थे—इंगलैंड ५११, स्कॉटलैंड ७१, वेल्स ३६ और उत्तरी आयरलैंड १२। यहाँ यह स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि ब्रिटेन में संयुक्त राज्य अमरीका की भाँति जेरीमेण्डरिंग नहीं होता; क्योंकि निर्वाचन-क्षेत्रों के निर्माण का आधार ऐतिहासिक सीमायें हैं तथा उनमें परिवर्तन स्थायी-आयोग करते हैं, जिन पर सत्तारूढ़ दल का विशेष प्रभाव नहीं होता।

नामजदगी—नामजदगी की प्रक्रिया बड़ी सरल है। उम्मीदवार को अपना नामजदगी-पत्र दाखिल करने से पूर्व उस निर्वाचन-क्षेत्र के कम से कम १० अर्ह मतदाताओं के हस्ताक्षर कराने पड़ते हैं। नामजदगी पत्र 'रिटर्निंग आफिसर' को इस कार्य के लिए नियत दिन, उम्मीदवार अथवा उसके एजेन्ट द्वारा देना होता है। इस प्रयोजन के लिए एक घण्टे का समय मिलता है। नामजदगी-पत्र के साथ उम्मीदवार को १५० पौण्ड स्टर्लिंग जमा करने होते हैं। यह जमानत की राशि उम्मीदवार को चुनाव के बाद लौटा दी जाती है यदि वह कुल मतों का १/८ से अधिक प्राप्त करता है। ब्रिटेन में संयुक्त राज्य अमरीका की तरह प्राइमरी नहीं होती। अधिकतर निर्वाचन-क्षेत्रों में २–३ उम्मीदवार खड़े होते हैं।

उम्मीदवारों की अर्हतायें—सदियों तक यह अर्हता रही कि उम्मीदवार एक विहित सम्पत्ति का स्वामी हो, किन्तु अब सम्पत्ति की अर्हता का अन्त हो गया है। वस्तुतः कोई भी ब्रिटिश प्रजाजन, जो मतदाता हो, खड़ा हो सकता है और स्त्रियाँ भी उम्मीदवार बन सकती हैं। कानून अथवा प्रथा के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि उम्मीदवार जिस निर्वाचन-क्षेत्र से खड़ा हो वह उसी का निवासी हो।

ऐसे सदस्यों की संख्या काफी होती है जो उन चुनाव क्षेत्रों में नहीं रहते जिनसे उनका चुनाव होता है।

मतदाताओं की सूची—प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र के लिए मतदाताओं की सूची वर्ष में दो बार दोहराई जाती है और सदैव तैयार रहती है। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में सूची तैयार करने का कार्य रजिस्ट्रेशन अधिकारी के सुपुर्द रहता है; जो बरों का टाउन क्लर्क या काउन्टि परिषद् का क्लर्क होता है। यदि किसी व्यक्ति का नाम सूची में सम्मिलित होने से रह जाये तो वह ऐसा कराने का आवेदन-पत्र दे सकता है और कोई भी व्यक्ति किसी नाम के सम्मिलित किए जाने पर एतराज कर सकता है। ऐसा किए जाने पर रजिस्ट्रेशन अधिकारी निर्णय देता है, जिसके विरुद्ध अदालतों में अपील की जा सकती है।

चुनाव अभियान—प्रत्येक दल का एक केन्द्रीय या राष्ट्रीय संगठन होता है और प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में उसकी शाखा होती है। स्थानीय संघ या शाखायें अपने उम्मीदवार छाँटती हैं। चुनाव कार्य घोषणा के पूर्व ही आरम्भ हो जाता है, भावी उम्मीदवार सभी प्रकार के सार्वजनिक समारोहों में भाग लेते हैं और सभी अच्छे कार्यों में योगदान करते हैं; यही निर्वाचन-क्षेत्र की सुश्रुषा करना (nursing) कहलाता है। प्रथा के अनुसार जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होती है, वह उम्मीदवार हाथ खोलकर निर्वाचन-क्षेत्र की सुश्रुषा करते हैं। विजयी उम्मीदवार निर्वाचन के उपरान्त भी ऐसा करता है। जैसे ही आम चुनाव की तारीख घोषित होती है, प्रत्येक उम्मीदवार निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं के नाम एक सम्बोधन या घोषणा-पत्र (manifesto) जारी करता है। इसमें वह अपनी दलीय निष्ठा या स्वतन्त्र विचारों पर बल देता है। कानून के अन्तर्गत प्रत्येक उम्मीदवार को बिना डाक व्यय के एक ऐसा घोषणा-पत्र सभी मतदाताओं के पास भेजने की सुविधा प्राप्त है। उसके बाद सार्वजनिक भवनों तथा सड़कों के कोनों पर सभायें की जाती हैं। कुछ सीमा तक उम्मीदवार मतदाताओं से समाचार-पत्रों में प्रकाशित इश्तहारों द्वारा भी अपील करते हैं। मतदाताओं के पास उम्मीदवार व उसके समर्थक व्यक्तिगत रूप से भी जाते हैं।

मतदान-क्रिया आदि—कामन सभा के चुनावों में छोटे और सरल मत-पत्रों (ballots) का प्रयोग होता है, जिन पर उम्मीदवारों के दल को नहीं लिखा जाता। मतदान केन्द्र साधारणतया सार्वजनिक भवनों में रखे जाते हैं। मतदान की विधि गुप्त व सरल है। सन् १९१८ से कामन सभा के चुनावों में अनुपस्थित मतदाता किसी को अपना स्थानापन्न (proxy) नियुक्त कर मतदान में भाग ले सकते हैं। मत-गणना का कार्य एक केन्द्रीय स्थान पर रिटर्निंग अधिकारी द्वारा किया जाता है। चुनाव पूर्ण हो जाने पर पराजित उम्मीदवार चुनाव याचिका दायर कर सकता है। ऐसी याचिकाओं की सुनवाई अदालतों द्वारा की जाती है। सम्बन्धित अदालत अपना निर्णय कामन सभा के अध्यक्ष के पास भेजती है और इसकी स्वीकृति सदन

द्वारा दी जाती है। नव-निर्वाचित सदस्यगण चुनाव के बाद शीघ्र ही एकत्रित किये जाते हैं और वे अपना स्थान ग्रहण करते हैं।

स्थान रिक्त करना अथवा चिल्टर्न हण्ड्रेड्स (Chiltern hundreads)—किसी सदस्य को दिवालिया या पागल होने पर हटाया जा सकता है; किसी सदस्य को देश-द्रोह या महाअपराध के आधार पर सदन की सदस्यता से वंचित किया जा सकता है, और किसी सदस्य को इच्छा या अनिच्छा से लार्ड सभा में भेजा जा सकता है। किन्तु कामन सभा का कोई भी सदस्य स्वेच्छापूर्वक अपने पद से त्याग पत्र नहीं दे सकता। इस सम्बन्ध में सन् १६२३ से एक अजीब-सा नियम चला आ रहा है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि कोई सदस्य किसी भी प्रकार स्वेच्छा से अपना स्थान रिक्त नहीं कर सकता। ऐसा करने के लिए एक घुमा-फिरा तरीका यह है कि ऐसा चाहने वाला सदस्य किसी ऐसे स्थान पर नियुक्ति करा ले जिसके पाने पर वह सदस्य न रह सके। ऐसे अनेक पद हैं, किन्तु साधारणतया ऐसा चाहने वाले सदस्य राजा के तीन चिल्टर्न हण्ड्रेड्स—स्टाक, डेसबरो व बर्नहम में से किसी एक की स्टीवर्डशिप प्राप्त कर लेते हैं। जो सदस्य कामन सभा की सदस्यता त्यागना चाहता है वह किसी ऐसे पद के लिए 'चांसलर ऑफ दी एक्सचेकर' को आवेदन-पत्र देता है, उसे पद मिल जाने पर विहित वेतन आदि मिलता है और इस प्रकार वह सदस्यता के लिए अनर्ह हो जाता है। इस पद को वह जब चाहे त्याग कर सकता है।

कामन सभा की रचना निम्न प्रकार है।

	१६१८	१६५७	१६६६
इंगलैंड	५२८	५०६	५११
वेल्स		३६	३६
स्कॉटलैण्ड	७४	७१	७१
आयरलैण्ड	१०५	—	—
उत्तरी आयरलैण्ड		१२	१२
विश्वविद्यालय		—	—
कुल	७०७	६२५	६३०

कामन सभा में प्रतिनिधित्व—कामन सभा में राष्ट्रीय जीवन के प्रायः सभी प्रमुख क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व रहता है। कुछ लेखकों के मतानुसार कामन सभा राष्ट्र

के विभिन्न हितों व मतों का प्रतिविम्ब है; परन्तु लास्की का मत भिन्न है। वह कहता है कि कामन सभा राष्ट्र के हितों व मतों का सच्चा प्रतिविम्ब नहीं, क्योंकि जनता के हितों व मतों में इतनी अधिक विभिन्नता व जटिलता है कि उन सभी का कामन सभा में प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता। परन्तु हम इस कथन से पूर्णतया सहमत हैं कि वर्तमान कामन सभा ब्रिटेन की जनता का पहले सदनों से कहीं अधिक अच्छा प्रतिनिधित्व करती है। इसमें प्राय: सभी प्रकार के महत्वपूर्ण जनमत का प्रतिनिधित्व होता है, केवल साम्यवादी दल का प्रतिनिधित्व न होना एक अपवाद है।

वर्तमान निर्वाचन पद्धति के प्रमुख गुण व दोष—ब्रिटेन की निर्वाचन-प्रणाली सीधी और बहुत सरल है, जिसे अन्य अनेक देशों ने अपनाया है। यद्यपि ब्रिटेन में अनिवार्य मतदान की व्यवस्था नहीं है, फिर भी मतदान ८०% से ऊपर रहता है, जो ब्रिटिश जाति की राजनीतिक अभिरुचि व जागरुकता और नागरिक उत्तर-दायित्व की भावना का प्रतीक है। सन् १९५० के चुनाव में मत देने वाले वोटरों की संख्या ८४% थी; सन् १९५१ में यह ८२·६% थी और सन् १९५५ में ७६·८%। वर्तमान निर्वाचन-पद्धति का (जिसका आधार एक सदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्र है) सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसके परिणामस्वरूप ब्रिटेन में २ प्रमुख राजनीतिक दल रहे हैं, जिनमें से एक सत्तारुढ़ होता है और दूसरा विरोधी दल। इसी कारण ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल स्थायी रहता है। इसमें फ्रांस की तरह से जल्दी-जल्दी उलट-फेर व परिवर्तन नहीं होते। किन्तु यह निर्वाचन-प्रणाली दोषहीन नहीं, जैसा कि इसके दोषों के निम्नलिखित विवेचन से स्पष्ट होगा—

वर्तमान प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में वह उम्मीदवार चुना जाता है जिसे सबसे अधिक मत प्राप्त हों, चाहे अन्य उम्मीदवारों को प्राप्त मतों का जोड़ निर्वाचित सदस्य के मतों से काफी बड़ा हो। इस कारण से इस पद्धति में ये कठिनाइयाँ अथवा दोष उत्पन्न होते हैं—प्रथम, कामन सभा में राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व उनके उम्मीदवारों को प्राप्त कुल मतों के अनुपात में नहीं होता; विशेष रूप से अल्पसंख्यक दलों का बहुत कम प्रतिनिधित्व हो पाता है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा—

वर्ष	डाले गये मतों का प्रतिशत			प्राप्त हुए स्थानों का संख्या		
	अनु०	मज०	उदार	अनु०	मज०	उदार
१९३५	५०	४०	७	३८७	१५४	१७
१९५५	४९·८	४६·३	२७	३४५	२७५	६

इस पद्धति के परिणामस्वरूप बड़े दल सुदृढ़ हुए हैं और छोटे दल क्षीण हुए हैं; क्योंकि कुछ निर्वाचन-क्षेत्रों से एक बड़े दल के और कुछ दूसरे बड़े दल के उम्मीदवार चुने जाते हैं। इस बात की बहुत सम्भावना रहती है और बहुधा ऐसा होता है कि यद्यपि छोटे दल के समर्थकों की संख्या काफी हो किन्तु विभिन्न निर्वाचन-क्षेत्रों में बिखरी हुई हो तो उसे बहुत ही कम प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। इस दृष्टि से अनुदार दल को बड़ी हानि रहती है। दूसरे, कामन सभा के सदस्य राष्ट्र के जनमत का ठीक से प्रतिनिधित्व नहीं करते। सन् १९५१ के चुनाव में यद्यपि मजदूर दल को अनुदार दल से अधिक मत प्राप्त हुए, फिर भी निर्वाचित सदस्यों में अनुसार दल के सदस्य मजदूर दल से अधिक थे। इस दृष्टि से मजदूर दल को हानि रहती है, क्योंकि औद्योगिक क्षेत्रों में उसके उम्मीदवारों को आवश्यकता से कहीं अधिक संख्या में मत मिलते हैं, जो एक प्रकार से व्यर्थ जाते हैं।

तीसरे, बहुत से निर्वाचन-क्षेत्रों में निर्वाचित सदस्यों को पराजित सदस्यों के कुल मतों से कम मत प्राप्त होते हैं। सन् १९५० के चुनाव में जिन निर्वाचन-क्षेत्रों में उदार दल के उम्मीदवार खड़े हुए थे ऐसे क्षेत्रों की संख्या १८७ थी, जिनमें निर्वाचित प्रतिनिधियों को अल्पसंख्यक मत प्राप्त हुए थे। चौथे, मतदाताओं के मत में छोटे से परिवर्तन से भी स्थानों के वितरण में कही बड़ा परिवर्तन हो जाता है। सन् १९५१ और सन् १९५५ में क्रमशः ४४ व ४३ स्थानों के उम्मीदवारों की जीत १००० से भी कम मतों से हुई थी। यदि मतदाताओं की २—३% संख्या इधर से उधर हो जाये तो स्थानों के वितरण में बहुत बड़ा अन्तर हो जायेगा। पाँचवे, ऐसे मतदाताओं के लिए जो किसी छोटे दल अथवा निर्दलीय उम्मीदवारों को मत देना चाहें, दो ही विकल्प हैं—या तो वे मत न दें या ऐसे उम्मीदवारों को मत दें जिन्हें वे कम से कम बुरा समझें।

२. कामन सभा का संगठन

सदस्य का प्रतिनिधि रूप—अधिकतर लेखक और विचारक यह मानते हैं कि पार्लियामेंट का सदस्य (M. P.) न तो अपने निर्वाचकों का प्रतिनिधित्व करता है और न दल का। उसे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। वह जैसा कि बर्क ने कहा था, ब्रिस्टल का सदस्य नहीं वरन् पार्लियामेंट का सदस्य होता है। पार्लियामेंट के सदस्य विभिन्न विरोधी हितों के प्रतिनिधित्व हेतु भेजे गये राजदूत अथवा प्रतिनिधि नहीं हैं। पार्लियामेंट राष्ट्र की मननात्मक सभा है और सभी के हितों की दृष्टि से प्रश्नों पर विचार करती है। कामन सभा के एक पुराने अध्यक्ष के अनुसार प्रत्येक सदस्य निर्वाचन के बाद सम्पूर्ण मतदाताओं का प्रतिनिधि हो जाता है, वह चाहे किसी भी निर्वाचन-क्षेत्र से चुना गया हो। अतएव उसके निर्वाचक उसे किसी प्रकार का आदेश नहीं दे सकते, वे उसे परामर्श दे सकते हैं अथवा उससे

किसी प्रकार की सिफारिश कर सकते हैं। प्रत्येक सदस्य सम्पूर्ण निर्वाचकमण्डल का प्रतिनिधित्व करता है।

सदस्यों के विशेषाधिकार आदि—पार्लियामेंट के सदस्य अपने कर्त्तव्यों का अच्छी तरह से पालन कर सकें, इस उद्देश्य से कामन सभा ने अतीत में कुछ विशेषाधिकारों (privileges) का दावा किया और उसे वे विशेषाधिकार प्राप्त हुए। लगभग १६वीं शताब्दी के मध्य से यह प्रथा चली आ रही है कि सभा का अध्यक्ष प्रत्येक पार्लियामेंट की ओर से उनके प्राचीन विशेषाधिकार, विशेष रूप से बन्दी न बनाये जाने की स्वतन्त्रता व भाषण की स्वतन्त्रता आदि का दावा करता है और लार्ड चांसलर, राजा अथवा रानी की ओर से उन सबकी स्वीकृति का अनुसमर्थन करता है। सदस्यों के मुख्य विशेषाधिकार इस प्रकार हैं—(१) कामन सभा को (व्यक्तिगत सदस्यों को नहीं) राजा या रानी के पास पहुँच की स्वतन्त्रता है। (२) सदस्यों को बन्दी बनाये जाने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। इसका उद्देश्य न्याय की साधारण प्रक्रियाओं को निरर्थक बनाना नहीं है। आजकल यह माना जाता है की दीवानी कार्यवाही के सम्बन्ध में पार्लियामेंट के सदस्य की गिरफ्तारी विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं है। (३) भाषण की स्वतन्त्रता का बड़ा ऐतिहासिक महत्व है जिसके मनवाने के लिए बहुत से सदस्यों को कष्ट सहना पड़ा और कुछ को जान भी देनी पड़ी।

उपर्युक्त के अतिरिक्त कामन सभा के सदस्यों को सन् १९५७ में वार्षिक वेतन व भत्ते के रूप में क्रमशः १,००० व ७५० पौंड मिलते थे; परन्तु सन् १९६४ से उन्हें ३,२५० पौंड वार्षिक मिलने लगे हैं; किन्तु उनकी यह आय कर से मुक्त नहीं है। यह वेतन तथा भत्ता उनके कार्य के ऊपर नहीं मिलता अर्थात् सदस्य निर्वाचित होने पर ही वे इसके अधिकारी हो जाते हैं, चाहे वे कामन सभा की बैठकों में भी उपस्थित न हों। ब्रिटेन में कोई ऐसी कानूनी व्यवस्था नहीं जो निर्वाचित सदस्य को कामन सभा की बैठकों में भाग लेने के लिए बाध्य करे, किन्तु ऐसे सदस्यों को अगली बार न तो कोई दल खड़ा करेगा और न ही उसे मतदाता चुनेंगे। यह बात उल्लेखनीय है कि कोई भी सदस्य अपने पदों से अनुचित आर्थिक लाभ न उठा सकते हैं और न वे ऐसा चाहते हैं; जब कभी किसी १–२ ने ऐसा किया है जनता ने उनके प्रति रोष प्रकट किया है।

पार्लियामेन्ट के विशेषाधिकार (Parliamentary Privilege)—पूर्व वर्णित सदस्यों के विशेषाधिकारों के अतिरिक्त पार्लियामेंट के भी विशेषाधिकार हैं। पार्लियामेंट को किसी भी ऐसे व्यक्ति को, सदन के भीतर और बाहर, दण्ड देने का अधिकार है जो विशेषाधिकार के उल्लंघन का दोषी हो, अर्थात् जिसने सदन के अधिकारों व प्रतिष्ठा के विरुद्ध अपराध किया हो। जब कोई तथाकथित अपराध होता है, उस मामले को सदन में कोई भी सदस्य शीघ्रतम अवसर पर उठाता है और अन्य सभी मामलों पर विचार करना छोड़कर सदन उस विषय पर विचार

करता है। उसके बाद अध्यक्ष यह निर्णय करता है कि उसमें वास्तव में विशेषाधिकार का उल्लंघन हुआ है या नहीं। यदि अध्यक्ष यह निर्णय करता है कि ऐसा हुआ है, तो तब तक अन्य किसी मामले पर विचार नहीं किया जा सकता जब तक कि सदन तुरन्त ही उस बारे में निर्णय न करले या उसे विशेषाधिकार समिति को न सौंप दे। यह एक छोटी सी समिति है, जिसमें बड़े अनुभवी सदस्य होते हैं। वे उस मामले की छानबीन करते हैं और अपराधी को बुलाकर उससे पूछताछ करने के बाद समिति अपनी रिपोर्ट देती है। यदि अपराधी अपने अपराध को स्वीकार कर पर्याप्त क्षमा प्रार्थना-पत्र देता है तो समिति साधारणतया यह सिफारिश करती है कि उसके प्रार्थना-पत्र को स्वीकार कर लिया जाय। उसके बाद सदन समिति की रिपोर्ट पर विचार करता है और निर्णय करता है कि क्या अपराधी को दण्ड दिया जाये। पार्लियामेंट सदन के अपमान (contempt) दोषी व्यक्तियों को भी दण्ड देती है। सदन के अपमान का अर्थ उसकी प्रतिष्ठा व प्राधिकार के विरुद्ध अपराध या अपमान (अथवा) निन्दा लेख है। अपराधी को सदन में ही नजरबन्दी का दण्ड दिया जा सकता है, परन्तु ऐसा दण्ड सन् १८८० के बाद से नहीं दिया गया। अब तो सदन ऐसे व्यक्ति को फटकार देकर ही सन्तुष्ट हो जाता है।

कामन सभा का अध्यक्ष—कामन सभा के अध्यक्ष का पद बहुत ही प्रतिष्ठित, सम्मानित व शक्तिमय है। सर टॉमस हंगरफोर्ड, जो सन् १३७७ में चुना गया था, पहला 'स्पीकर' था। उस समय कामन सभा को विधायी तथा वित्तीय क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त न थे, सदस्यगण राजा से केवल नये कानून बनाने, पुरानों में संशोधन करने तथा जनता की शिकायत दूर करने की प्रार्थना कर सकते थे ओर स्पीकर वह सदस्य होता था जिसके द्वारा वे अपनी प्रार्थनायें राजा तक भेजते थे। अध्यक्ष को सदन का प्रवक्ता होने के नाते 'स्पीकर' की उपाधि मिली थी; परन्तु अब स्पीकर का सदन में बोलने का कार्य 'नहीं' समान रह गया है। उसका पद अत्यधिक प्रतिष्ठा का है। कामन सभा के सभी सदस्य उसका सभापतित्व करने वाले देवता के रूप में आदर करते हैं। डिजरायली के शब्दों में 'उसकी पोशाक की खड़खड़ाहट ही गड़बड़ को शान्त करने के लिए पर्याप्त होती थी।' पार्लियामेंट के बाहर समारोह के सभी अवसरों के लिए अध्यक्ष ही कामन सभा होता है।[1]

सदन के लिए यह महत्वपूर्ण विजय थी, जब उसे अपना अध्यक्ष चुनने का अधिकार मिला। अभी तक सदन द्वारा निर्वाचित अध्यक्ष के नाम पर ताज की अनुमति ली जाती है, यद्यपि ताज की अनुमति केवल औपचारिक बात रह गई है।

1. 'Outside the Parliament, Mr. Speaker is for ceremonial purposes the House of Commons......inside the House his word is law. His rising is a signal for member on the floor to sit.'

—*I. Jennings*. English Institutions, p. 89.

अध्यक्ष का चुनाव प्रत्येक नई पार्लियामेंट के कार्य आरम्भ पर होता है और वह अपने पद पर तब तक रहता है जब तक कि पार्लियामेंट विघटित हो। चूँकि ब्रिटिश अध्यक्ष निष्पक्ष होता है, इसलिए वहाँ यह प्रथा पड़ गई है कि जब तक पूर्वगामी सदन का अध्यक्ष सदन का सदस्य रहता है, (और उसका चुनाव निर्विरोध होता है) शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ रहता है, और पद पर कायम रहने की इच्छा रखता है तो उसी का फिर से निर्वाचन हो जाता है। सदन द्वारा चुनाव केवल एक औपचारिक कार्यवाही होती है, वास्तव में अध्यक्ष की छाँट जब कभी स्थान रिक्त होता है, प्रधान मन्त्री और अन्य नेता सहमति से करते हैं, किन्तु वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि उसकी छाँट सदस्यों की बहुसख्या को स्वीकार होगी। सन् १९३५ और सन् १९४५ में मजदूर दल ने अनुदार-दली अध्यक्षों का निर्वाचन में विरोध किया, परन्तु दोनों ही बार उसे असफलता मिली। सन् १९५० में मजदूर दल ने पूर्वगामी अध्यक्ष के विरुद्ध अपना अधिकृत उम्मीदवार तो नहीं खड़ा किया, किन्तु एक स्वतन्त्र मजदूर दली उम्मीदवार ने उसका चुनाव में विरोध किया जो बुरी तरह से पराजित हुआ। अध्यक्ष को ५,००० पौंड वार्षिक मिलता है और वेस्टमिंस्टर महल में निवास स्थान भी। पद से निवृत्ति के बाद उसे ४,००० पौंड वार्षिक पेन्शन दी जाती है और पीयर बना दिया जाता है।

उसके कार्यों का महत्व बहुत अधिक है। वह संशोधनों की छाँट द्वारा सदन की कार्यवाही को विनियमित करता है, वह अल्पसंख्यक दलों की रक्षा करता है, क्योंकि वाद-विवाद की समाप्ति पर उसकी स्वीकृति आवश्यक है। वही नियमों का निष्पक्षता के साथ कठोर पालन करवाता है और अपने निर्णयों (rulings) द्वारा प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों का निर्माण भी करता है। अध्यक्ष अपने कर्त्तव्यों के पालन में निष्पक्ष रहता है। सन् १९४५ में **डगलस क्लिफटन ब्राउन** ने कहा था—अध्यक्ष रूप में मैं न सरकार का आदमी हूँ और न विरोधी दल का; मैं कामन सभा का आदमी हूँ और मेरा विश्वास है कि मैं पीछे की बेंचों पर बैठने वाले सदस्यों का आदमी हूँ। चूंकि अब कार्यपालिका अधिकाधिक शक्तिशाली होती जा रही है, अध्यक्ष ने सदन के अधिकारों की रक्षा का महत्वपूर्ण प्रयत्न किया है। अध्यक्ष ही सदन में व्यवस्था बनाये रखता है; वह सदस्यों को अनुचित शब्दों के प्रयोग से रोकता है तथा उन्हें उसके लिए दण्ड भी दे सकता है।

अध्यक्ष के मुख्य कार्य अग्रलिखित हैं : (१) वाद-विवाद की देख-रेख करना, व्यवस्था बनाये रखना, अनुचित रूप से देरी उत्पन्न करने वाले प्रस्तावों पर आज्ञा न देना और सदन के नियमों के सम्बन्ध में उत्पन्न हुए विवादों पर निर्णय देना। (२) सदस्यों को बोलने की आज्ञा देना और यह देखना कि उसके भाषण विचारणीय विषय से संगत हैं और नियमों के अनुसार हैं। अल्पसंख्यक दल के सदस्यों को अपनी बात कहने का उचित अवसर देना। (३) धन विधेयक का निर्णय करना। (४) ऐसे सदस्यों की पनैल (panel) नियुक्त करना, जिनमें से स्थायी समितियों के

सभापति छाँटे जाते हैं। (५) अमुक विधेयक किस समिति के विचारार्थ भेजा जायेगा, यह निर्णय करना। (६) जब कभी आवश्यकता पड़ जाये, निर्णायक मत (casting vote) देना। (७) यह निर्णय करना कि 'अविलम्ब सार्वजनिक महत्व' का प्रस्ताव उचित है या नहीं। (८) बाहरी व्यक्तियों के सम्बन्ध में सदन के प्रतिनिधि रूप में कार्य करना तथा सदन की ओर से राजा के सम्मुख बोलना। (९) सदस्यों को निलम्बित करना तथा अन्य प्रकार से दण्ड देना। (१०) यह देखना कि मतदान कार्य ठीक प्रकार से होता है और मतदान का फल घोषित करना।

अध्यक्ष की निष्पक्षता—ब्रिटिश कामन सभा का अध्यक्ष निर्वाचन के उपरान्त दल से सभी प्रकार का सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है। सदन की कार्यवाही के संचालन में वह पूर्ण निष्पक्षता बरतता है और सभी कार्य समस्त सदस्यों के हित का ध्यान रखते हुए करता है। प्रक्रिया सम्बन्धी प्रश्नों तथा विवादों पर उसके निर्णयों को स्वतः स्वीकार कर लिया जाता है। क्योंकि मित्रों को दावत देते समय या सदस्यों को सदन में बोलने का अवसर देते समय या 'व्यवस्था' सम्बन्धी नियम भंग के प्रश्न (point of order) पर अपना निर्णय देते समय यह न्यायाधीश की निष्पक्षता से कार्य करता है। उससे यह आशा की जाती है कि वह इतना निष्पक्ष रहे जितना की कोई व्यक्ति सम्भवतः हो सकता है। साधारणतया इस पद पर निर्वाचित होने वाला सदस्य असाधारण राजनीतिक महत्व का व्यक्ति नहीं होता; परन्तु वह ऐसा व्यक्ति होता है जिसने राजनीतिक आकांक्षायें त्याग दी हों और जो दलीय राजनीति व प्रवादों से अलग रहना चाहता हो। वह वाद-विवाद में कोई भाग नहीं लेता और निर्णायक मत के अतिरिक्त कभी अपना मत नहीं देता। जैसा कि ऊपर बताया गया है उसका निर्वाचन प्रायः निर्विरोध होता है। केवल सदन के भीतर ही नहीं वरन् बाहर भी वह ऐसे कार्यों से दूर रहता है जिनका सम्बन्ध दलीय राजनीति से हो। वह किसी राजनीतिक क्लब में भी भाग नहीं लेता, यहाँ तक कि वह अपने पुनर्निर्वाचन के लिए भी चुनाव अभियान संगठित नहीं करता। ब्रिटिश अध्यक्ष के विपरीत संयुक्त राज्य अमरीका के प्रतिनिधि सदन का अध्यक्ष बहुमत दल का नेता होता है।

सदन का नेता (Leader of the House)—सन् १९४२ तक प्रधान मन्त्री ही (यदि वह पीयर होने के कारण लार्ड सभा का सदस्य न होता था) साधारणतया कामन सभा का नेता होता था, परन्तु सन् १९४२ की फरवरी के बाद चर्चिल और उसके बाद उसके उत्तराधिकारी मेजर एटली ने इस प्रथा को तोड़ दिया अर्थात् वे स्वयं सदन के नेता न रहे। केबिनेट के अधीन रहते हुए सदन के नेता का सदन के कार्य व सरकारी कार्यक्रम के बारे में सर्वोच्च उत्तरदायित्व होता है। उसका यह एक विशेष उत्तरदायित्व है कि वह प्रक्रिया सम्बन्धी कठिनाइयों, विशेषाधिकार के मामलों, आन्तरिक मामलों और समारोहों के अवसरों पर सदन का मार्ग-दर्शन करे।

विरोधी पक्ष का नेता (Leader of Opposition)—सन् १६३७ से कानूनी दृष्टि से विरोधी पक्ष का नेता होता है, जिसके महत्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उसे संचित निधि से ३,००० पौंड वार्षिक वेतन दिया जाता है। विरोधी पक्ष का नेता सम्भावित प्रधान मन्त्री होता है। वह सदन का ऐसा सदस्य होता है, जो विरोधी पक्ष में अधिक संख्या वाले दल का नेता होता है। यदि इस सम्बन्ध में कोई मतभेद उठे तो उसका अन्तिम निर्णय कामन सभा का अध्यक्ष ही कर सकता है।

सदन का क्लर्क आदि—कामन सभा के वैतनिक अधिकारियों में एक सदन का क्लर्क होता है और उसके दो सहायक होते हैं। ये अधिकारी सदन की कार्यवाही का रेकार्ड रखते हैं। सदन में आवश्यकता पड़ने पर पुलिस-कार्य करने के लिए एक **सशस्त्र सार्जेन्ट** (Sergeant-at-arms) और उसके अधीन अधिकारी **चैपलेन** होता है, जो समारोहों पर धार्मिक कृत्य कराता है। क्लर्क और सार्जेन्ट की नियुक्ति प्रधान मन्त्री की नामजदगी पर जीवन भर के लिए राजा द्वारा की जाती है, परन्तु चैपलेन को अध्यक्ष ही नियुक्त करता है। सदन का क्लर्क और उसके दो सहायक, जो विग और गाउन पहनते हैं, सदन की प्रतिष्ठा बढ़ाने में योग देते हैं। वे सदन के महत्वपूर्ण अधिकारी हैं और वे निष्पक्ष होते हैं, इसीलिए उनकी स्थिति सदन में स्वतंत्र अधिकारियों की होती है। क्लर्क के सहायकों की नियुक्ति कानून के अनुसार होती है। अध्यक्ष के निदेशानुसार वे सदन का कार्यक्रम तैयार करते हैं और सदन में हुए मतदानों एवं कार्यवाही के रेकार्ड रखते हैं। व्यवस्था और प्रक्रिया के विषय में सदन के सदस्यों को, और आवश्यकता पड़ने पर अध्यक्ष को भी, वे परामर्श व सहायता देते हैं। इनके अतिरिक्त **मार्गोपाय समिति** (*Committee of Ways and Means*) **के सभापति व उपसभापति** होते हैं, जिन्हें अब सामान्यतया समितियों के सभापति व उपसभापति कहा जाता है। इसका चुनाव भी सदन द्वारा अध्यक्ष की भाँति पार्लियामेंट की अवधि के लिए होता है। समितियों का सभापति (उसकी अनुपस्थिति में उप-सभापति) सदन की कार्यवाही का सभापतित्व करता है जबकि सदन सम्पूर्ण सदन की समिति के रूप में बैठता है और जन्य अवसरों पर जबकि अध्यक्ष उनसे इस हेतु प्रार्थना करे।

दलीय सचेतक (Party Whips)—सांसद पद्धति का प्रभावी होना बहुत सीमा तक दलीय-सचेतकों पर निर्भर करता है, जो अपने-अपने दल के सदस्यों में अनुशासन बनाये रखते हैं। प्रत्येक दल के सचेतकों का यह कर्तव्य है कि वे दल के सदस्यों से सम्पर्क बनाये रखें, उन्हें सूचित करते रहें कि सदन के विचारार्थ क्या प्रश्न आने वाले हैं तथा कब मतदान होना है और यह देखना भी कि सदस्यगण मतदान के समय उपस्थित रहें। सत्तारूढ़ दल का मुख्य सचेतक ट्रेजरी का संसदीय सेक्रेटरी होता है और उसे सरकारी वेतन मिलता है। अन्य सचेतकों को कोई वेतन नहीं मिलता।

३. कामन सभा की कार्य प्रणाली

कुछ विचित्र रीतियाँ—कामन सभा अभी तक अनेक पुरानी रीतियों को मानती है, उनमें से अधिकतर मध्य युग की देन हैं, जबकि सदन के सदस्य बर्जेस व नाइट (Knight) हुआ करते थे। बहुत से उग्र मजदूरदली सदस्य इनमें से बहुत-सी रीतियों का अन्त करने के पक्ष में हैं, किन्तु उनकी प्राचीनता सदन की प्रतिष्ठा को बढ़ाती है। सदन और उसकी कार्यवाही सम्बन्धी कुछ विचित्र रीतियों का अति संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है :—

अनोखा सदन—सदन की बैठकों का स्थान बड़ा अनोखा है। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान में जर्मन हवाई आक्रमणों से यह भवन नष्ट हो गया था, परन्तु युद्ध के बाद पहले जैसा ही बनाया गया। सदन में अब भी २/३ सदस्यों से अधिक के लिए बैठने का स्थान नहीं है और सरकारी तथा विरोधी दल की बेन्चें एक दूसरे के सामने हैं।

सदन की तलाश—जिस दिन नई पार्लियामेंट का प्रथम दिन होता है, सवेरे के समय एक विचित्र रीति का पालन होता है। बहुत सवेरे ही गार्ड के १२ सिपाहियों की टुकड़ी अपने पुराने ढंग की पोशाक में तथा प्रत्येक १६वीं शताब्दी के नमूने की लेन्टर्न हाथ में लिए हुए लार्ड चेम्बरलेन, जो सदन का रखवाला होता है, के साथ सदन के एक-एक कमरे व कोने में यह देखते फिरते हैं कि कहीं राजा के शत्रुओं ने किसी स्थान पर बारूद तो नहीं रख दिया। ३०० वर्ष से अधिक पूर्व एक ऐसा षड़यन्त्र रचा गया था, तब से अब तक इस रीति का पालन होता आया है।

सदन की दैनिक बैठक का कार्य स्पीकर के जलूस के आने के बाद प्रार्थना से आरम्भ होता है। साधारणतया प्रार्थना के समय बहुत ही कम सदस्य सदन में उपस्थित रहते हैं। प्रार्थना के बाद दरबान चिल्लाकर कहता है कि अध्यक्ष ने स्थान ग्रहण कर लिया है। मेज पर अध्यक्ष की मेस (Mace) रखी जाती है जो सबको भली प्रकार दीखती है। मेस का प्रयोग भी मध्यकाल से चला आ रहा है। अध्यक्ष के दाहिनी ओर सरकारी सदस्यों की बेचें (Treasury Benches) हैं और सामने विरोधी पक्ष की। सदन में सदस्य टोप पहनकर आ सकते हैं, किन्तु बोलते समय उन्हें उसे उतार कर रखना होता है। कोई भी सदस्य अपने साथ तलवार या उस जैसी अन्य वस्तु नहीं ला सकता। सदन में किसी भी वक्ता के भाषण की सराहना हथेली बजाकर नहीं की जाती। यह कार्य इन शब्दों के प्रयोग से किया जाता है 'सुनिये-सुनिये' (Hear-hear)।

सदन के सत्र, बैठकें और दैनिक कार्यक्रम आदि—प्रतिवर्ष कामन सभा का कम से कम एक सत्र होना आवश्यक है, क्योंकि दो सत्रों के बीच १२ माह से अधिक नहीं बीतने चाहिएँ। साधारणतया एक सत्र ५-७ माह तक चलता है। वार्षिक सत्र बहुधा नवम्बर के शुरू में आरम्भ होता है और जून या जुलाई तक चलता है, किन्तु क्रिसमस के पूर्व से लेकर जनवरी के अन्त तक सदन स्थगित रहता है।

दोनों सदन एक दूसरे से पूछे विना स्थगित हो सकते हैं। केबिनेट के परामर्श पर ताज पार्लियामेंट का सत्रावसान (prorogation) करता है।[1] सत्रावसान पर सभी प्रस्ताव तथा लम्बित कार्य का अन्त हो जाता है और आगामी सत्र में उन्हें नये सिरे से पेश किया जाता है। ५ वर्ष बाद या उसके पूर्व ही (यदि सदन की अवधि बढ़ाई न जाय) केबिनेट के परामर्श से पार्लियामेंट का विघटन (dissolution) होता है। साधारणतया पार्लियामेंट के दोनों सदनों को एक साथ ही आहूत (summon) किया जाता है।

सदन की बैठकें—सदन की सप्ताह में ५ दिन बैठकें होती हैं। सोमवार से बृहस्पतिवार तक २-३० बजे दोपहर से रात के १०-३० बजे तक और शुक्रवार को ११ बजे सवेरे से ४-३० बजे सायं तक, किन्तु प्रक्रिया सम्बन्धी स्थायी नियमों (Standing Orders) को निलम्बित करके बैठक की कार्यवाही का समय बढ़ाया जा सकता है। सदन की दैनिक कार्यवाही का क्रम निम्न प्रकार रहता है।

२०–३० प्रार्थना	सार्वजनिक विधेयक पर लार्ड सभा
निविरोध निजी कार्य	के संशोधनों पर विचार
सार्वजनिक याचनायें	विशेषाधिकार प्रस्ताव
२–४५ प्रश्नों का समय	सार्वजनिक विधेयक पेश करना
३–४५ 'निजी अधिसूचना' के प्रश्न	विधेयक लाने के लिए आज्ञा लेने का प्रस्ताव
४–०० दिन का कार्यक्रम	सदन के स्थगन प्रस्ताव पेश
७–०० स्थगन प्रस्ताव पर विचार	प्रस्ताव पेश करने की अधिसूचना
विरोधपूर्ण निजी-कार्य	
१०–०० वाद-विवाद समाप्त	मन्त्रियों के वक्तव्य

सदन में प्रक्रिया सम्बन्धी नियम (Standing orders)—शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि से 'पार्लियामेंट' का अर्थ बातें अथवा वाद-विवाद करने वाली सभा से है। अब भी यद्यपि पार्लियामेंट अनेक महत्वपूर्ण कार्य करती है, वाद-विवाद इसके कार्यों में सर्वप्रमुख है। लार्ड सभा में सदस्य अपने भाषण सहयोगी लार्डों को सम्बोधित करके देते हैं; किन्तु कामन सभा में सभी भाषण अध्यक्ष महोदय को सम्बोधित करके देते हैं; किन्तु कामन सभा में भी सभी भाषण अध्यक्ष महोदय को सम्बोधित करके दिए जाते हैं। सदस्य बोलते समय किसी अन्य सदस्य का नाम नहीं लेते वरन् आवश्यकतानुसार कहते हैं 'अमुक निर्वाचन-क्षेत्र के लिए आदरणीय

1. '*The life of a Parliament is divided into sessions, each normally, though not necessarily of a year's duration, and terminated by a prorogation except in the case of a final session of a Parliament, which is terminated by a dissolution. During a session either House may adjourn itself, on its own motion, to such date as it pleases.*'

सदस्य'। सदस्य अपने भाषण पढ़ नहीं सकते, यद्यपि वे उद्धरण आदि पढ़ सकते हैं और अपने लिखे नोट्स से सहायता ले सकते हैं। भाषण विचारार्थ विषय से ही सम्बन्धित होने जरूरी हैं। अपमानसूचक तथा दूसरों को बुरे लगने वाले वाक्यांशों का प्रयोग निषिद्ध है। यदि कोई सदस्य नियमों का उल्लंघन करता है, तो अन्य सदस्य तुरन्त ही 'व्यवस्था-व्यवस्था' (Order, Order) की आवाज लगाते हैं और अध्यक्ष बोलने वाले सदस्य से नियम पालन कराता है। यदि सदस्य अध्यक्ष का कहना न माने तो अध्यक्ष उसका नाम लेता है (Speaker names of the offender) और सदन का नेता यह प्रस्ताव पेश करता है कि उस सदस्य को सदन की सेवा से निलम्बित कर दिया जाए। सदन में प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर सदस्य को सदन छोड़ना पड़ता है।

सदन में भाषणों पर समय सीमा नहीं है, परन्तु सदन का रुख लम्बे भाषणों के विरुद्ध है। यदि सदन में उपस्थित सदस्यों की संख्या गणपूर्ति से कम होती है तो गिनती कराने के लिए माँग की जा सकती है और संख्या ४० से कम होने पर सदन की कार्यवाही समाप्त हो जाती हैं। सदन में बैठने के स्थान की बगल में मतदान के स्थान (Division lobbies) हैं। जब किसी प्रश्न पर वाद-विवाद समाप्त हो जाता है तो अध्यक्ष प्रश्न को रखता है अर्थात् उस पर मतदान कराता है और प्रश्न के पक्ष तथा विपक्ष में सदस्यों से 'हाँ' या 'ना' कहलाता है। तब वह घोषित करता है कि प्रश्न का निर्णय किस पक्ष में हुआ। परन्तु यदि कोई, विशेष रूप से विरोधी दल के सदस्य, माँग करें तो मतगणना की जाती है अर्थात् सदस्यगण घण्टी बजने पर 'हाँ' या 'ना' वाली लॉबी में जाते हैं और उनकी गिनती की जाती है।

वाद-विवाद की समाप्ति के रूप—प्रथम, **साधारण समाप्ति** (Simple closure)—सदन की बैठकों (तथा स्थायी समितियों व पूर्ण सदन की समिति) में वाद-विाद का अन्त करने के उद्देश्य से कोई भी सदस्य यह प्रस्ताव रख सकता है कि 'प्रश्न पर अब मत ले लिया जाए' यदि ऐसे प्रस्ताव को कम से कम १०० सदस्यों का (स्थायी समिति की बैठक में केवल २० सदस्यों का) समर्थन प्राप्त हो और अध्यक्ष अथवा सभापति का समाधान हो जाए कि प्रस्ताव ऐसा नहीं है जिससे सदन के नियमों का दुरुपयोग होगा अथवा अल्पसंख्यक मत के अधिकारों में हस्तक्षेप होगा, तो उसे स्वीकार कर लिया जायेगा, जिसके उपरान्त विचाराधीन प्रश्न पर वाद-विवाद समाप्त हो जायेगा और उस पर मतदान द्वारा निर्णय कर लिया जायेगा। ऐसा प्रस्ताव तब भी पास हो सकता है जब कि कोई भी सदस्य भाषण समाप्त न कर पाया हो।

दूसरा, **गिलोटिन अथवा खण्डों द्वारा समाप्ति** (The Guillotine or closure by compartments)—पहले प्रकार की समाप्ति तो केवल उन्हीं प्रश्नों पर लागू हो सकती है जबकि विचाराधीन प्रश्न एक ही हो। परन्तु यह ऐसे विधेयकों के सम्बन्ध में अप्रभावी सिद्ध हुई, जो बड़े पेचीदा तथा अत्यधिक विवादग्रस्त धाराओं

से युक्त हों। ऐसे विधेयकों पर वाद-विवाद को निश्चित समय तक समाप्त करने के लिए सरकार (अथवा अन्य सदस्यों) के प्रस्ताव पर बहुमत के समर्थन से यह निर्णय किया जा सकता है कि विधेयक की धारायें इतने से उतने तक तथा सम्पूर्ण विधेयक पर अथवा उनके विभिन्न स्टेजों पर नियत समय पर मतदान कराया जाए। ऐसे नियत समय पर विधेयक के विभिन्न खण्डों अथवा धाराओं के समूहों पर वाद-विवाद समाप्त हो जाता है और सम्बन्धित धारायें यदि बहुमत उनके पक्ष में होता है, विधेयक का अंग बन जाती हैं। इस प्रकार समय की काफी बचत हो जाती है, परन्तु इसके परिणामस्वरूप विधेयक के महत्वपूर्ण पहलुओं पर पर्याप्त वाद-विवाद न होने की सम्भावना रहती है।

तीसरी, कंगारू समाप्ति (Kangaroo closure)—इसके अन्तर्गत अध्यक्ष अथवा समिति के सभापति को यह अधिकार मिल जाता है कि यदि किसी प्रस्ताव अथवा विधेयक की धारा पर कई संशोधन प्रस्ताव आये हों तो वह उनमें से कुछ महत्वपूर्ण संशोधनों को वाद-विवाद के लिए छाँट ले और अन्य को छोड़ दे अर्थात् कंगारू की तरह छलांग लगाता है। निष्पक्ष अध्यक्ष अथवा सभापति के होते हुए यह विधि समय की बचत के लिए बहुत अच्छी है। इसका प्रयोग पृथक् से तथा गिलोटीन के साथ-साथ भी किया जा सकता है।

४. समिति पद्धति

प्रायः सभी देशों में विधायिकाओं ने समिति पद्धति को उपयोगी पाकर अपना लिया है, क्योंकि विधेयकों पर विस्तारपूर्ण वाद-विवाद समितियों में हो जाता है, जिनके फलस्वरूप सदन का बहुत सा समय बच जाता है और विचाराधीन प्रश्नों पर विचार भी अधिक अच्छे प्रकार से हो जाता है। ब्रिटेन में मुख्यतः ५ प्रकार की समितियों का प्रयोग होता है, जिनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है:

सम्पूर्ण सदन की समिति—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसमें सम्पूर्ण सदन समिति रूप में बैठता है, अध्यक्ष का स्थान समिति का सभापति ले लेता है और वह अध्यक्ष की कुर्सी पर न बैठकर क्लर्क की मेज के पास बैठता है। इसकी बैठक सदन में ही होती है। जब सदन सम्पूर्ण समिति के रूप में बैठता है तो वाद-विवाद के नियमों के पालन में कुछ ढील दे दी जाती है—एक ही प्रश्न पर यदि कोई सदस्य चाहे एक से अधिक बार बोल सकता है, प्रस्तावों पर अनुमोदक की आवश्यकता नहीं पड़ती, वाद-विवाद का अन्त इस प्रस्ताव द्वारा नहीं किया जा सकता 'कि पहले प्रश्न पर मत ले लिया जाये' और जिस प्रश्न पर मत ले लिया गया हो उस पर फिर कभी विचार किया जा सकता है। जब समिति विधेयक (अथवा प्रस्ताव) के सभी खण्डों पर विचार कर लेती है तो यह प्रस्ताव किया जाता है कि समिति कार्य समाप्त कर रिपोर्ट दे। अध्यक्ष फिर अपना स्थान ग्रहण कर लेता है और समिति का सभापति सदन के सामने रिपोर्ट पेश करता है। अत्यधिक महत्वपूर्ण अथवा ऐसे विधेयक इस समिति के विचार हेतु भेजे जाते हैं जिन पर अविलम्ब

निर्णय आवश्यक हो अथवा जो गम्भीर प्रवाद का विषय हों। सभी वित्तीय प्रस्तावों पर भी सम्पूर्ण सदन की समिति में ही विचार किया जाता है, यद्यपि उसका नाम बदल जाता है। जब इसमें अनुमानों (estimates) पर विचार होता है तो इसे कमेटी ऑफ सप्लाई (Committee of Supply) कहते हैं। विनियोग अथवा कर व धन निकालने के लिए प्रस्तावों पर विचार करते समय यह मार्गोपाय समिति (Committee of Ways and Means) कहलाती है।

स्थायी समितियाँ (Standing Committees)—सन् १६४५ से पूर्व उनकी संख्या ५ तक सीमित थी, किन्तु अब कोई प्रतिबन्ध नहीं है, यद्यपि किसी भी समय इनकी संख्या ६ से नहीं बढ़ी है। इन समितियों के नाम वर्णाक्षरों पर अ, ब, स, द, ई, (A, B, C, D, E,) हैं। प्रत्येक समिति में लगभग २० स्थायी सदस्य होते हैं और प्रत्येक विधेयक पर विचार करने के समय लगभग २५–३० अस्थायी सदस्यों को जोड़ लिया जाता है। प्रत्येक समिति में सदस्य विभिन्न दलों के सदन में अनुपात के अनुसार रहते हैं, यद्यपि सदस्यों की छाँट में सदस्यों की व्यक्तिगत अभिरुचियों, योग्यताओं और भौगोलिक प्रतिनिधित्व का भी ध्यान रखा जाता है। सदस्यों की नामजदगी 'चयन समिति' (Committee of Selection) द्वारा की जाती है, चयन समिति सदन द्वारा छाँटे गये सदस्यों की एक प्रवर समिति (Select Committee) होती है। स्थायी समितियों के सभापतियों को लगभग १ दर्जन सदस्यों के पैनल (जिसे अध्यक्ष नियुक्त करता है) में ले लिया जाता है। सभापति की ायुक्ति एक विधेयक के ऊपर विचार करने के लिए होती है और वह कार्य ाप्त होने पर अपने पद से हट जाता है।

इन समितियों के कार्य-क्षेत्र विशेष रूप से विभाजित नहीं हैं, अर्थात् वे किसी ाषय विशेष से सम्बन्धित नहीं होतीं, वरन् वे किसी भी विधेयक पर विचार ार सकती हैं। परन्तु स्कॉटिश मामलों की समिति (Scottish Affairs Committee) का सम्बन्ध केवल स्काटलेंड सम्बन्धी मामलों से ही रहता है। वैसे भी इस ामिति में स्काटलेंड के सभी प्रतिनिधि (जिनकी संख्या ७१ है) और १० प्रतिनिधि ़ंगलैण्ड के सदस्य होते हैं। दूसरे वाचन के बाद सभी विधेयक उन विधेयकों को ोड़कर जिन्हें सम्पूर्ण सदन की समिति को सौंपा जाए, इन समितियों को भेजे ाते हैं। अध्यक्ष यह निर्णय करता है कि कौन-सा विधेयक किस समिति को भेजा ाए और उनका सभापति भी वही छाँटता है। समितियों की बैठक साधारणतया ोपहर से पूर्व होती है। समिति प्रत्येक विधेयक का विस्तारपूर्वक परीक्षा करती है, र्थात् उसकी प्रत्येक धारा पर विचार करती है और संशोधन पर भी वाद-विवाद ारती है।

प्रवर समितियां (Select Committees)—इन समितियों का आकार छोटा होता है, क्योंकि इनके सदस्यों की अधिकतम संख्या १५ होती है। इन समितियों का

सम्बन्ध साधारणतया किसी समस्या विशेष की छानबीन करना होता है। प्रवर समिति व्यक्तियों को गवाही देने के लिए बुला सकती है और आवश्यक पत्रों व रिकार्डों को भी मंगा सकती है, परन्तु इसे किसी प्रकार के निर्देश देने की शक्ति नहीं होती। सौंपे गये विषय की छानबीन और परीक्षा करके यह अपनी रिपोर्ट सदन को देती है, जो इसकी सिफारिशों को स्वीकार व अस्वीकार कर सकता है। प्रवर समिति स्थायी समिति की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र होती है, क्योंकि इसके सदस्य अधिक प्रभावशाली होते हैं और दलीय सचेतकों को उनके कार्यों में हस्तक्षेप करने का अवसर कम मिलता है। समिति का सभापति सदस्यों द्वारा चुना जाता है।

अन्य समितियाँ—बहुत सी प्रवर समितियाँ, जिन्हें सत्र समितियाँ (Sessional Committees) भी कहते हैं, प्रतिवर्ष सत्र के आरम्भ होने पर नियुक्त की जाती हैं। इन समितियों में ये उल्लेखनीय हैं—विशेषाधिकार समिति (Committee of Privileges), चयन समिति, सार्वजनिक लेखा समिति (Committee of Public Accounts), अनुमान समिति (Committee of Estimates), स्थायी आदेश समिति (Standing Orders Committee), व्यक्तिगत विधेयकों की समितियाँ (The Opposed and Unopposed Private Bill Committee)।[1] व्यक्तिगत विधेयक दो प्रकार के होते हैं—(१) वे, जिनका विरोध होता है; और (२) वे, जिनका विरोध नहीं होता। इन दोनों प्रकार के विधेयकों के लिए ४–५ सदस्यों की अलग-अलग समितियाँ होती हैं। प्रथम, प्रकार के विधेयकों की समिति में सभापति को निर्णायक मत का अधिकार होता है। कभी-कभी समय बचाने के उद्देश्य से दोनों सदनों की संयुक्त समिति किसी विषय-विशेष की छानबीन करके रिपोर्ट देने के लिए बैठा दी जाती है। इसका सभापति साधारणतया कोई पीयर होता है और इसकी रिपोर्ट दोनों सदनों में पेश की जाती है।

समिति पद्धति पर कुछ विचार—स्थायी समितियों की बैठकें बहुधा एक ही समय में हो जाती हैं और सदन की कार्यवाही के समय में भी यदि सदन के विचाराधीन कोई महत्वपूर्ण प्रश्न न हो। इस प्रकार ये बहुत सा कार्य कम समय में कर लेती हैं। संयुक्त राज्य अमरीका की समितियों की तुलना में कामन सभा की समितियों का सम्बन्ध किन्हीं विषय-विशेष—जैसे वित्त, श्रम अथवा वैदेशिक मामलों से नहीं होता।[1] इसके सदस्यों में विशेषज्ञों का अभाव रहता है, यद्यपि प्रत्येक विधेयक पर विचार करने के लिए २५–३० अस्थायी रूप से जोड़े गये सदस्यों की

1. 'An opposed Bill, is not a Bill which has been opposed in Parliament, but a Bill against which a petition has been deposited or a Bill which the Chairman of ways and Means of the Lord Chairman of Committees report should be treated as an opposed Bill, although no petition has been presented against it.'

—D. Ba ley, Sydney, British Parliamentary Democracy. pp. 82-3.

छाँट में इस बात का कुछ ध्यान रखा जाता है। विभिन्न सार्वजनिक विधेयकों का सम्बन्ध विविध प्रकार के प्राविधिक विषयों से हो सकता है, किन्तु उन्हें एक ही समिति को सौंपा जा सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका की समितियों की शक्तियाँ इन समितियों की शक्तियों से बहुत अधिक विस्तृत हैं। वे एक प्रकार की लघु विधायिकायें होती हैं। उनको सौंपे गये विधेयकों को समितियाँ चाहें तो उन पर रिपोर्ट न देकर अन्त कर सकती हैं, कामन सभा की समितियों को ऐसी शक्ति प्राप्त नहीं है।

प्रश्न

१. ग्रेट ब्रिटेन में मताधिकार के विस्तार और निर्वाचन प्रणाली सम्बन्धी अन्य सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
२. कामन सभा की वर्तमान रचना का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
३. कामन सभा के संगठन और प्रमुख अधिकारियों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
४. कामन सभा के अध्यक्ष के मुख्य कर्त्तव्य क्या हैं? अध्यक्ष अपने कार्यों का पालन किस प्रकार करता है?
५. कामन सभा की कार्य प्रणाली सम्बन्धी मुख्य बातों का वर्णन कीजिए।
६. कामन सभा की समिति पद्धति का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।
७. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए:
   (अ) एक सदस्य वाले निर्वाचन-क्षेत्र।
   (आ) चिल्टर्न हन्ड्रेड्स।
   (इ) वाद-विवाद का अन्त कराने के विभिन्न तरीके।
   (ई) सदस्यों व पार्लियामेंट के विशेषाधिकार।

६. पार्लियामेंट की शक्तियाँ और उसके कार्य

१. पार्लियामेंट की शक्तियाँ और उसके कार्य

पार्लियामेंट की शक्तियों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है। प्रथम, यह सरकार **अर्थात् मन्त्रिमण्डल को कायम रखती है और बहुमत प्राप्त दल को अपना मन्त्रिमण्डल बनाने का अवसर देती है।** कामन सभा का मुख्य कार्य ही मन्त्रिमण्डलों को बनाना, उसका समर्थन करना और पदच्युत करना है। सिद्धान्त रूप में मन्त्रिमण्डल कामन सभा के प्रति उत्तरदायी होता है अर्थात् सदस्यों के बहुमत का समर्थन खो जाने पर मन्त्रिमण्डल को या तो त्याग-पत्र देना पड़ता है अथवा वह पार्लियामेंट का विघटन करा सकता है। सत्तारूढ़ मन्त्रिमण्डल को सदैव ही यह ध्यान रहता है कि विरोधी दल आवश्यकता पड़ने पर अपना मन्त्रिमण्डल बना सकता है।[1] **हेरिसन** के मतानुसार कामन सभा का आवश्यक कार्य यह है कि वह केबिनेट का, जो दिन प्रतिदिन के कार्यों में सर्वशक्तिशाली होती है, देश के जनमत से सम्बन्धित किये रक्खे, क्योंकि ब्रिटेन में जनमत कहीं अधिक शक्तिशाली है जो केबिनेट को बनाता तथा भंग करता है। कामन सभा के कार्यों द्वारा जनता को यह पता रहता कि केबिनेट क्या कर रही है और केबिनेट यह जान पाती है कि जनता उसके बारे में क्या सोचती है?[2] अतएव हम कह सकते हैं कि पार्लियामेंट शासन और शासितों के बीच होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया का केन्द्र बिन्दु है, जिसके द्वारा वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

दूसरे, **पार्लियामेंट का मुख्य कार्य विधि-निर्माण है।** सभी प्रकार के कानून पार्लियामेंट में पास होते हैं और इसके द्वारा पारित सभी विधेयकों पर ताज की अनुमति मिल जाती है। नये कानूनों को बनाना, पुराने कानूनों को बनाना, पुराने कानूनों में संशोधन करना तथा अधीनस्थ व्यवस्थापन (Delegated legislation) पार्लियामेंट के महत्वपूर्ण कार्य हैं। इस क्षेत्र में पार्लियामेंट और केबिनेट का वास्तविक भाग क्या है, इस प्रश्न का विवेचन आगे किया जायेगा। यह बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि कानूनी दृष्टि से पार्लियामेंट सर्वोपरि है अर्थात् यह किसी भी प्रकार का कानून बना सकती है। इसके बनाये कानूनों को न्यायालय अवैध घोषित नहीं कर सकते जैसे कि संयुक्त राज्य अमरीका या भारत में हो सकता

1. 'But the chief task of the House of Commons is to maintain a government...it involves the necessity for providing an alternative government.'
—*H. R. G. Greaves*, The British Constitution, pp. 44–48.
2. *W. Harrison*, The Government of Britain, pp. 53–4.

है। एक अन्य दृष्टि से भी पार्लियामेंट विधि-निर्माण कार्य में प्रभु (sovereign) है, ब्रिटेन का संविधान अलिखित तथा एकात्मक है अर्थात् पार्लियामेंट जब चाहे और जैसा चाहे साधारण कानून बनाने की प्रक्रिया द्वारा ही संवैधानिक कानून बना सकती है। ब्रिटेन में संविधान सर्वोपरि नहीं है, सर्वोपरिता पार्लियामेंट को ही प्राप्त है।

इंगलैंड में पार्लियामेंट को संविधान में परिवर्तन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। पार्लियामेंट विधान मण्डल और संविधान सभा दोनों ही है। पार्लियामेंट की शक्ति तथा अधिकार-क्षेत्र इतना सर्वोपरि तथा पूर्ण है कि उसकी सीमायें नहीं बाँधी जा सकतीं। **ब्लैकस्टोन** लिखता है कि पार्लियामेंट को धार्मिक या लौकिक (secular), नागरिक, सैनिक, समुद्री अथवा फौजदारी आदि सब तरह के विषयों पर कानून बनाने, उनकी सम्पुष्टि करने, उन्हें बढ़ाने तथा व्याख्या करने की सर्वोच्च तथा अनियन्त्रित सत्ता प्राप्त है।[1] पार्लियामेंट को सामान्य कानून के किसी भी नियम को संशोधित करने या समाप्त करने, न्यायालय के किसी भी निर्णय को अधिक्रांत (रद्द) करने और किसी भी परम्परागत अभिसमय को अवैध बनाने का अधिकार है। सच तो यह है कि यद्यपि पार्लियामेंट अनेक व्यावहारिक प्रतिबन्धों; नैतिक रुकावटों, जनमत, अन्तर्राष्ट्रीय कानून और अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के अन्तर्गत कार्य करती है, किन्तु यह कानूनी दृष्टि से अप्रतिबन्धित है और इसके कोई अथवा सभी कार्य अन्य किसी के द्वारा संशोधित नहीं हो सकते, यहां उसमें संशोधन कर सकती है। संक्षेप में, पार्लियामेंट कोई भी कार्य कर सकती है और कोई ऐसा परिणाम प्राप्त कर सकती है जिसे मनुष्य निर्मित कानूनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

तीसरे, **पार्लियामेंट का राष्ट्र की आय-व्यय पर नियन्त्रण** है। सभी आयकर सम्बन्धी प्रस्ताव तथा व्यय की मदें इसी के द्वारा स्वीकृत की जाती हैं। इस विषय का विस्तृत आगे के पृष्ठों में किया जायेगा। चौथे, पार्लियामेंट राष्ट्र का मुख्य प्लेटफार्म है, जहाँ पर मन्त्री केबिनेट की नीति का स्पष्टीकरण करते हैं और सरकार के पक्ष में बहुमत का समर्थन पाने के प्रयत्न करते हैं। वास्तव में, सरकारी नीति और कार्यक्रम की आलोचना के लिए यह मुख्य अवसर प्रदान करती है। पार्लियामेंट के सदस्य सरकारी कार्यों की खुलकर आलोचना कर सकते हैं तथा निर्वाचकों की शिकायतों को भी खोलकर रख सकते हैं इन कार्यों को सदस्यगण विभिन्न प्रकार से कर सकते हैं।

1. Parliament 'hath sovereign and uncontrollable authority in the making, confirming, enlarging, restraining, abrogating, repealing, revising and expounding of laws, concerning matters of all possible denominations.'
—Blackstone in Commentaries on the Laws of England.

पार्लियामेंट के अन्य कार्य

याचिकायें पेश करना—आजकल इस अधिकार का प्रयोग 'नहीं' के समान होता है, अतएव इसका महत्व सबसे कम है। याचिकायें बहुत ही कम पेश की जाती हैं और उनके पेश करने पर साधारणतया कोई वाद-विवाद नहीं होता। उनकी जाँच करने के लिए एक समिति होती है।

प्रश्न—प्रश्न पूछने का अत्यधिक महत्व है। सदस्य सभी सरकारी कार्यों के बारे में प्रश्न पूछने का नोटिस दे सकते हैं। यदि वे उनका सदन में मौखिक उत्तर चाहते हैं तो वे उन पर चन्द्र बिन्दु लगाते हैं। कोई भी सदस्य एक दिन में तीन से अधिक प्रश्न नहीं पूछ सकता। ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर उस समय न दिया जा सके, पार्लियामेंट के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्टों में छपे रूप में दिया जाता है। जब किसी प्रश्न का मौखिक उत्तर दे दिया जाता है तो उस पर पूरक प्रश्न पूछे जा सकते हैं, जिनका पहले से कोई नोटिस नहीं देना होता और उन्हें कोई भी सदस्य पूछ सकता है। साधारणतया प्रश्न पूछने का उद्देश्य विभिन्न प्रकार की सूचना को प्राप्त करना होता है और इसके लिए प्रश्न पूछने से कोई और अधिक अच्छा अथवा प्रभावी उपाय नहीं है, परन्तु बहुत से प्रश्न जनता की शिकायतों की अभिव्यक्ति करने तथा मन्त्रियों को परेशान करने के उद्देश्यों से भी पूछे जाते हैं। मन्त्रीगण कुछ प्रश्नों का उत्तर यह कहकर नहीं देते कि उनके विषय में गोपनीयता आवश्यक है अथवा उसका चल रही वार्त्ता पर अनुचित प्रभाव पड़ेगा। अध्यक्ष अपने विवेक में कुछ विशिष्ट प्रकार के प्रश्न पूछने की आज्ञा देने से मना कर सकता है जैसे प्रभु अथवा मित्र-राष्ट्रों के सम्बन्ध में पूछे गए अशिष्ट प्रश्न।

प्रस्ताव (Motions)—पार्लियामेंटरी प्रक्रिया में इनका बड़ा महत्व है; क्योंकि सदन में किसी प्रस्ताव के पेश होने पर ही वाद-विवाद हो सकता है और इनके द्वारा उसे समाप्त भी कराया जा सकता है। सदन के नियमों में दिया हुआ है कि प्रस्ताव कब और किन विषयों पर पेश किए जा सकते हैं। कुछ प्रस्तावों का सम्बन्ध तो विधेयकों पर विचार करते समय उनके लिए निहित प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न स्टेजों से होता है। इनके अतिरिक्त विरोधी पक्ष निन्दा का प्रस्ताव (Vote of Censure), अविश्वास का प्रस्ताव (Motion of No-confidence) अथवा काम रोको प्रस्ताव (Adjorunment Motions) पेश कर सकते हैं जिन पर खुलकर वाद-विवाद होता है और यदि वे बहुमत द्वारा पास हो जायें तो मन्त्रिमण्डल को त्याग-पत्र देना पड़े। वाद-विवाद के अन्य अवसरों में राजगद्दी से भाषण (Speech from the throne) प्रमुख है; जिस पर लगभग एक सप्ताह तक सदन में वाद-विवाद चलता है। वित्तीय प्रस्तावों पर सम्पूर्ण सदन की समितियों में काफी दिन तक वाद-विवाद होता है और अन्य विधेयकों पर समिति की रिपोर्ट पेश होने पर दूसरे वाचन के दौरान काफी वाद-विवाद होता है।

अन्त में, पार्लियामेंट (विशेष रूप से कॉमन सभा) में हुए वाद-विवाद जनता की राजनीतिक शिक्षा के बहुत ही महत्वपूर्ण साधन हैं। पार्लियामेंट की कार्यवाही की रिपोर्टें सभी समाचार-पत्रों में प्रकाशित होती हैं और वे अधिकांश जनता को आकर्षित करती हैं। चाहे उसके पढ़ने वालों की संख्या कम ही हो, किन्तु देश की बहुत बड़ी जनसंख्या उसके बारे में जानकारी पाने की इच्छुक रहती है। कॉमन सभा का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य राजनीतिक नेताओं की छाँट करना है। यह राजनीतिक ख्याति व ऊँचा नाम पाने का प्रमुख मार्ग है। सदन में ही ख्यातियाँ खोई जाती हैं तथा प्राप्त की जाती हैं। सदन में दिया गया पहला भाषण ही, यदि वह बहुत ही उच्च कोटि का हो, मन्त्रि-पद पाने के मार्ग का प्रथम पग होता है। प्राय: सभी केबिनेट मन्त्री ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिन्हें संसदीय जीवन का काफी अनुभव प्राप्त होता है। जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में राजनीतिक नेतृत्व पाने - लिए अनेक मार्ग हैं, ब्रिटेन में ऐसा कॉमन सभा के द्वारा ही हो सकता है।

२. पार्लियामेंट में विधायी प्रक्रिया

कानून बनाने की शक्ति—किसी भी विषय पर कोई विधेयक तभी कानून का रूप धारण करता है जबकि वह दोनों सदनों में पास हो जाता है और उस पर ताज की अनुमति मिल जाती है। ताज की अनुमति आजकल केवल एक औपचारिक बात है, वास्तव में पार्लियामेंट द्वारा पारित विधेयक पर ताज अनुमति देने से इन्कार नहीं कर सकता। सन् १९११ के 'पार्लियामेंटरी एक्ट' से, जिसे सन् १९४८ में संशोधित किया गया लार्ड सभा की शक्तियाँ बहुत ही सीमित कर दी गई हैं। विधायी क्षेत्र में वास्तविक शक्ति कॉमन सभा के हाथ में निहित है। साधारण नियम यह है कि विधेयक किसी भी सदन में आरम्भ हो सकते हैं और उन्हें मन्त्री अथवा अ-सरकारी सदस्य पेश कर सकता है, परन्तु कुछ विशिष्ट प्रकार के विधेयकों को किसी एक सदन में ही आरम्भ किया जा सकता है—धन-विधेयक कॉमन सभा में और न्यायिक विधेयक लार्ड सभा में।

दोनों सदनों के बीच किसी विधेयक पर उत्पन्न हुआ मतभेद कैसे दूर किया जा सकता है? कुछ समय पूर्व तक दोनों सदनों के दृष्टिकोणों को एक दूसरे तक पहुँचाने और मतभेद को दूर करने के लिए दो साधनों का प्रयोग किया जाता था। इनमें से एक साधन दोनों सदनों द्वारा नियुक्त प्रतिनिधियों के बीच मौखिक सम्मेलन था और दूसरा लिखित सन्देशों का एक दूसरों को भेजना था। प्रथम साधन का प्रयोग तो बहुत समय से हुआ नहीं है और दूसरे का प्रयोग कभी-कभी हो जाता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है सन् १९११ के 'पार्लियामेंट एक्ट' से वास्तविक शक्ति कॉमन सभा के हाथों में ही आ गई है। व्यवहार में दोनों सदनों के सदस्यों के बीच सामाजिक सम्पर्क द्वारा मित्रतापूर्ण समझौते हो सकते हैं। कभी-कभी ताज द्वारा दलीय नेताओं के अनौपचारिक सम्मेलन भी बुलाए गए हैं,

जिन्होंने इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहयोग दिया है। इन सबसे बढ़कर और महत्वपूर्ण बात यह है कि केबिनेट विधि-निर्माण कार्य में मार्ग-दर्शक का कार्य करती है। यथार्थ में केबिनेट ही इन उद्देश्यों को प्राप्ति के लिए एक प्रकार की अनवरत सम्मेलन समिति है।

विभिन्न प्रकार के विधेयक—मोटे रूप में सभी विधेयकों को एक महत्वपूर्ण आधार पर सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत विधेयकों की श्रेणी में रक्खा जा सकता है। परन्तु सार्वजनिक विधेयक तीन प्रकार के हो सकते हैं—(१) धन विधेयक, (२) सरकारी विधेयक (Government Bills) और (३) अ-सरकारी सदस्यों द्वारा पेश किए गए विधेयक।

सार्वजनिक विधेयक (Public Bills)—ब्रिटिश पार्लियामेंट सार्वजनिक और व्यक्तिगत विधेयक में बहुत समय से अन्तर मानती है, यद्यपि संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस में ऐसा नहीं है। सार्वजनिक विधेयक यह होता है जिसका प्रभाव सर्वसाधारण के हित पर पड़ता हो और जो या तो सम्पूर्ण जनता अथवा उसके बड़े भाग से सम्बन्ध रखता है। उदाहरण के लिए करों के कानून में परिवर्तन करने वाला तथा नया प्रशासन विभाग कायम करने वाले विधेयक इस श्रेणी में आते हैं। इसके विपरीत **व्यक्तिगत विधेयक** (Private Bill) वह होता है जिसका सम्बन्ध किसी स्थानीय क्षेत्र, निगम या म्यूनिसिपैलिटी अथवा किसी हित विशेष से होता है। इस प्रकार किसी नगर में नए मार्ग का निर्माण करने या पुराने को विस्तृत करने या किसी नगर को अपनी रोशनी व्यवस्था को उन्नत करने के लिए ऋण लेने की आज्ञा या किसी निगम को किसी नए कार्य करने का अधिकार देने आदि सम्बन्धी विधेयक इस श्रेणी में आते हैं। सन् १९११ के पार्लियामेंट एक्ट के अन्तर्गत, **धन विधेयक** (Money Bill) वह होता है जिसका सम्बन्ध केवल कर, ऋण चुकाने, सार्वजनिक लेखा तथा ऋण लेने आदि से होता है। धन विधेयक पर कॉमन सभा के अध्यक्ष का प्रमाण-पत्र भी होता है। धन विधेयक कॉमन सभा में [ही] आरम्भ होते हैं; लार्ड सभा उनमें न सशोधन कर सकती है और न उनके पास [ह]ोने में देरी ही कर सकती है।

सरकारी विधेयक (Government Bills) **और अ-सरकारी सदस्यों के [वि]धेयक** (Private Members Bills)—जब सार्वजनिक विधेयकों को मन्त्रिमण्डल [के] सदस्य पेश करते हैं तो उन्हें सरकारी विधेयक कहते हैं। सभी धन विधेयक [इ]सी श्रेणी में आते हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त अन्य सार्वजनिक विधेयकों को [अ]-सरकारी सदस्य (अर्थात् जो मन्त्री अथवा सरकार का अंग नहीं है) भी पेश कर [स]कते हैं। ऐसे सार्वजनिक विधेयकों को अ-सरकारी सदस्यों के विधेयक कहते हैं। [व्य]क्तिगत विधेयक और अ-सरकारी सदस्य के विधेयक में अन्तर है, इस बात को [ध्]यान में रखना चाहिए। सभी धन विधेयक, सरकारी विधेयक तथा अ-सरकारी [स]दस्यों के विधेयक सार्वजनिक विधेयक होते हैं। व्यक्तिगत विधेयकों का सम्बन्ध

किन विषयों से होता है। यह पीछे बताया जा चुका है। जब तक अधीनस्थ विधि-निर्माण (Delegated legislation) का प्रयोग बहुत कम था और जनरल एनेब्लिग कानूनों को लोग जानते भी न थे तो व्यक्तिगत विधेयकों की संख्या बहुत कम होती थी।

सार्वजनिक सरकारी विधेयकों के सम्बन्ध में विधि-निर्माण प्रक्रिया—इन विधेयकों को प्रस्तुत करने के लिए प्रेरणा किसी भी स्रोत से मिल सकती है। प्रत्येक विधेयक पार्लियामेंट के सदस्य द्वारा ही पेश किया जाता है। चूंकि इस श्रेणी में आने वाले विधेयकों में बहुत बड़ी संख्या सरकारी विधेयकों की होती है, अतएव वे किसी मन्त्री द्वारा पेश किए जाते हैं। सार्वजनिक विधेयक का राज्य की आय अथवा व्यय पर क्या प्रभाव पड़ेगा इस सम्बन्ध में एक स्मृति-पत्र प्रसारित किया जाता है और इसके ऊपर एक रिपोर्ट तैयार की जाती है, जो केबिनेट के सामने रक्खी जाती है। केबिनेट विधेयक पर अन्तिम स्वीकृति देती है और यह भी निर्णय करती है कि विधेयक कौन से सदन में और किस तारीख को पेश किया जाएगा तब ट्रेजरी के अधीन संसदीय परामर्शदाता के कार्यालय (Parliamentary Counsel Office) द्वारा विधेयक का प्रारूप तैयार किया जाता है।

विधेयक को पेश किए जाने के लिए नियत दिन के कार्यक्रम की सूची में सम्मिलित किया जाता है। नियत दिन समय आने पर विधेयक के शीर्षक को सदन का क्लर्क जोर से पढ़कर सुनाता है। सदन के क्लर्क द्वारा शीर्षक को पढ़े जाने के बाद ही विधेयक पर प्रथम वाचन (First reading) की कार्यवाही पूर्ण हो जाती है। वास्तव में, **प्रथम वाचन** तो एक प्रकार की अपने आप हो जाने वाली क्रिया है, इस समय विधेयक पर न तो कोई वाद-विवाद होता है और न कोई मतदान ही। विधेयक को छपवाकर सदस्यों में बाँटा जाता है और उस पर पार्लियामेंट के बाहर चर्चा तथा वाद-विवाद होने लगता है।

दूसरे वाचन के लिए नियत दिन विधेयक को पेश करने वाला मन्त्री प्रस्ताव रखता है 'कि विधेयक का दूसरा वाचन हो।' दूसरे वाचन में जिन विधेयकों पर वाद-विवाद किया जाता है वे अधिकांशतः सरकारी विधेयक होते हैं; क्योंकि सरकारी पक्ष के समर्थन बिना कोई विधेयक इस वाचन को पार नहीं कर सकता। जब पेश करने वाला मन्त्री दूसरे वाचन के लिए प्रस्ताव रखता है तो वह विधेयक की धाराओं का स्पष्टीकरण करता है और उसके आधारभूत सिद्धान्तों के पक्ष में तर्क देता है। इस प्रकार विधेयक पर वाद-विवाद आरम्भ होता है। इस समय होने वाला वाद-विवाद अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है और नियमों के अनुसार सदन के अनेक सदस्य उसमें भाग लेते हैं। विधेयक प्रस्तुत करने वाले मन्त्री के बोलने के बाद विरोधी पक्ष का कोई नेता उस विधेयक के विरुद्ध पेश किए गये तर्कों को सारांश में रखता है और अन्त में मन्त्री आलोचनाओं का उत्तर देता है। यदि किसी विधेयक का अत्यधिक विरोध होता है तो सरकार कभी-कभी ऐसे विधेयक को

वापिस ले लेती है, किन्तु साधारणतया बहुसंख्यक सदस्यों के समर्थन से विधेयक पर मतदान का फल सरकार के पक्ष में होता है। यदि किसी विधेयक पर सरकारी पक्ष की हार हो जाय तो मन्त्रिमण्डल को त्याग-पत्र देना पड़ेगा, क्योंकि मतदान का फल मन्त्रिमण्डल में सदन के अविश्वास का सूचक माना जाता है।

दूसरे वाचन के वाद विधेयक किसी स्थायी समिति की रिपोर्ट के लिए भेजा जाता है या इस पर प्रवर समिति नियुक्त कर दी जाती है। अति महत्वपूर्ण विधेयकों पर सम्पूर्ण सदन की समिति में भी विचार किया जा सकता है। **कमेटी** स्टेज में अर्थात् जब उस पर समिति में विचार होता है, तो उसके प्रत्येक अनुच्छेद की परीक्षा की जाती है और उनसे सम्बन्धित सभी संशोधनों पर भी विचार किया जाता है। समिति में विचार होने के वाद विधेयक समिति की रिपोर्ट के साथ फिर से सदन के सामने लाया जाता है। **रिपोर्ट स्टेज** पर सदन समिति द्वारा किये गये संशोधनों पर विचार कर उन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार करता है। यदि विधेयक पर स्थायी समिति में विचार हुआ है तो रिपोर्ट स्टेज पर सदन में एक बार वाद-विवाद होता है, परन्तु यदि उस पर सदन की समिति में विचार हुआ है तो उस पर फिर वाद-विवाद नहीं होता। सदन के लिए विधेयक में किसी भी प्रकार का संशोधन करने का यह अन्तिम अवसर होता है।

विधेयक पर तीसरा वाचन रिपोर्ट स्टेज के शीघ्र वाद ही हो सकता है, जिसके लिए पेश करने वाला मन्त्री प्रस्ताव रखता है कि विधेयक पर तीसरा वाचन किया जाये। इस अवसर पर भी वाद-विवाद हो सकता है, परन्तु केवल भाषा सम्बन्धी अथवा जबानी संशोधन ही पेश किये जा सकते हैं। इस समय यदि वाद-विवाद होता भी है तो बहुत ही प्रतिवन्धित और वह केवल कुछ टीका-टिप्पणियों तक ही सीमित रहता है। एक सदन में तीसरा वाचन हो जाने पर विधेयक दूसरे सदन में जाता है। यहाँ पर इसी प्रकार विधेयक पर विचार किया जाता है। जब दोनों सदनों द्वारा विधेयक पास कर दिया जाता है तो उसे ताज की अनुमति के लिए भेजा जाता है।

अ-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के सम्बन्ध में विधायी प्रक्रिया—इनके पेश किए जाने के लिए दो तरीके हैं—(१) प्रत्येक सत्र के पूर्व ऐसे विधेयक पेश करने वाले सदस्यों के लिए बैलट होता है अर्थात् बैलट द्वारा उनमें छाँट होती है; क्योंकि आजकल इस उद्देश्य के लिए केवल १० शुक्रवार ही निहित हैं। वैलट में सफल हुआ सदस्य अपना विधेयक या दल द्वारा सुझाया हुआ विधेयक पेश कर सकता है। (२) १० मिनट वाले नियम के अन्तर्गत सप्ताह में सार्वजनिक कार्यों के लिए नियत दो दिन ३·४५ बजे सांय अन्य कार्य आरम्भ होने से पूर्व पेश करने वाला सदस्य अपने विधेयक के पक्ष में १० मिनट तक वोल सकता है, जिसका कोई दूसरा सदस्य विरोध कर सकता है और उसे भी १० मिनट मिलते हैं। हो सकता है कि सदन विना मतदान के ही सहमति प्रकट करदे, इस प्रकार विधेयक का प्रथम वाचन पूर्ण

हो जाता है। ऐसा तभी सम्भव होता है जबकि विधेयक का विरोध न हो या उसे सरकार ले ले। प्रथम तरीका अधिक महत्वपूर्ण है; परन्तु अत्यन्त कठिन भी, क्योंकि शुक्रवार को सदन में गणपूर्ति (Quorum) करना भी बड़ा कठिन कार्य है। इसके अतिरिक्त पेश करने वाले सदस्य को विधेयक के पक्ष में बहुमत पाने और उसे समिति स्टेज से सफलतापूर्वक निकलवाने के भी कठिन कार्य करने होते हैं। इसी कारण ऐसे बहुत ही कम विधेयक दूसरे वाचन तक पहुँच पाते हैं। परन्तु इन कठिनाइयों के होते हुए कभी-कभी ऐसे विधेयक पास होते हैं।

व्यक्तिगत विधेयक (Private Bills) के सम्बन्ध में प्रक्रिया—इनमें से अधिकतर विधेयक स्थानीय निकायों व निगमों द्वारा प्रस्तावित किये जाते हैं। कुछ व्यक्तिगत विधेयक जिनका सम्बन्ध देशीकरण व तलाक आदि से होता है, लार्ड सभा में पेश किये जाते हैं। व्यक्तिगत विधेयकों के सम्बन्ध में प्रक्रिया इस प्रकार है—प्रस्तावकों की ओर से पार्लियामेंट के सामने एक याचिका पेश की जानी चाहिए। याचिका की परीक्षा किये जाने से पूर्व विधेयक से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों को उसके बारे में सूचित किया जाता है और उन्हें एतराज करने का अवसर दिया जाता है। प्रत्येक पार्लियामेंट याचिकाओं की परीक्षा के लिए 'याचिकाओं के परीक्षक' नियुक्त करती है और प्रस्तावक उनके सामने बिधेयक के पक्ष में सामग्री रखते हैं। यदि परीक्षकों का समाधान हो जाता है तो वे दोनों सदनों के सामने अपनी रिपोर्ट रखते हैं और तब यह निर्णय होता है कि विधेयक कौन से सदन में पेश किया जायेगा।

विधेयक का प्रथम वाचन केवल एक औपचारिक कार्य होता है; विधेयक को सदन की मेज पर रख दिया जाता है। विधेयक पर दूसरा वाचन, यदि इसका विरोध न हो, व्यक्तिगत कार्य के दौरान लिया जाता है अर्थात् इस पर ७–३० बजे सांय वाद-विवाद होता है। इस पर कमेटी स्टेज सबसे महत्वपूर्ण होती है। यदि विधेयक का विरोध होता है, तब इसे ४ सदस्यों की व्यक्तिगत विधेयक समिति (Private Bills Committee) में भेजा जाता है। यह समिति विधेयक के पक्ष और विपक्ष में पेश किये जाने वाले तर्कों को सुनती है और इसे विधेयक को अस्वीकृत तथा संशोधित करने का अधिकार है। यदि विधेयक का विरोध नहीं होता तो इसे निर्विरोध विधेयक समिति (Unopposed Bills Committee), जिसमें ५ सदस्य होते हैं, को भेजा जाता है। ऐसे विधेयक पर समिति में बहुत ही संक्षिप्त सी औपचारिक कार्यवाही होती है। समिति अपनी रिपोर्ट सदन के सामने रखती है और सदन साधारणतया उसे बिना संशोधन किये ही स्वीकार कर लेता है, यद्यपि उसे इन बिधेयकों को अस्वीकृत व संशोधित करने का अन्य विधेयकों की तरह पूर्ण अधिकार है। कभी कोई विधेयक ऐसा होता है जो साधारण नीति सम्बन्धी किसी प्रश्न को उत्पन्न कर देता है। ऐसे विधेयक पर सदन में वाद-विवाद

होता है और मतदान भी। परन्तु जब सदन समिति की रिपोर्ट को स्वीकार कर लेता है तब उस पर आगे उसी प्रकार से कार्यवाही होती है जैसे सार्वजनिक विधेयक पर।

आदेशों अथवा अस्थायी आदेशों की व्यवस्था—आदेशों के प्रयोग द्वारा व्यक्तिगत विधेयकों की आवश्यकता बहुत कम हो गई है। ये आदेश किसी भी केन्द्रीय (प्रशासन) विभाग द्वारा जारी किये जाते हैं और या तो अपने आप प्रभावी हो जाते हैं अथवा पार्लियामेंट के अनुसमर्थन के बाद। जिन आदेशों पर पार्लियामेंट का अनुसमर्थन आवश्यक होता है, वे **अस्थायी आदेश** कहलाते हैं। ऐसे आदेश जारी करने का कारण यह है कि पार्लियामेंट द्वारा पास किये गये बहुत से कानून (जैसे सार्वजनिक गलियों में चलने वाली रेलें, सार्वजनिक रोशनी, गरीबों की सहायता, पेन्शन, श्रम और शिक्षा आदि विषयों से सम्बन्धित) विभिन्न सरकारी विभागों को यह अधिकार है कि वे उनके अन्तर्गत आदेश जारी कर सकें। प्रतिवर्ष विभिन्न विभागों द्वारा जारी किये गये अस्थायी आदेशों को कई **अस्थायी आदेश अनुसमर्थन विधेयकों** में रखकर पार्लियामेंट का अनुसमर्थन प्राप्त किया जाता है। इसका पार्लियामेंट में न तो कोई विरोध ही होता है और न इन पर वाद-विवाद ही होता है।

कानून बनाने का अधिकार देना (De'egated Legislation)—यह, विधि-निर्माण कार्य जो पार्लियामेंट द्वारा विधि-निर्माण नहीं हैं, परिषद् आदेशों, (Order-in-Council), विनियमों और नियमों (Regulations and Rules) द्वारा होता है। इस प्रकार के कानून बनाने का अधिकार का प्रयोग पार्लियामेंट सैकड़ों वर्षों से करती आई है, किन्तु जब से राज्य ने सामाजिक सेवाओं और आर्थिक कार्यों के करने का उत्तरदायित्व ग्रहण किया तब से इस प्रकार के विधि-निर्माण में बहुत वृद्धि हुई है। गत ६० वर्षों में सरकार के कार्य-क्षेत्र में निरन्तर वृद्धि होती रही है, फलतः पार्लियामेंट के समय पर कार्यों का भार बहुत बढ़ गया है। अब इस प्रकार की विधि-निर्माण पद्धति को व्यापक रूप से स्वीकार कर लिया गया है और पार्लियामेंट द्वारा पास किये गये कानूनों में बहुत कम ऐसे होते हैं, जो अधीन अधिकारियों को कानून अर्थात् विनियम व नियम बनाने का अधिकार न देते हों।

३. पार्लियामेंट का वित्त पर नियन्त्रण

वित्तीय विधि निर्माण प्रक्रिया के आधारभूत सिद्धान्त, संक्षेप में ये हैं—(१) व्यय के लिए रखी गई विभिन्न रकमों तथा कर-सम्बन्धी प्रस्तावों पर पार्लियामेंट की स्वीकृति आवश्यक है। (२) वित्त पर कामन सभा को अनन्य नियन्त्रण प्राप्त है। (३) वित्तीय कार्य आरम्भ में सदन में न होकर सम्पूर्ण सदन की समिति—सप्लाई समिति या मार्गोपाय समिति में होता है। (४) केवल मन्त्री ही व्यय और धन सम्बन्धी प्रस्तावों को आरम्भ कर सकते हैं। (५) पार्लियामेंट द्वारा धन-राशि विशिष्ट

प्रयोजन के लिए स्वीकार की जाती है और उसे अन्य प्रयोजनों पर व्यय नहीं किया जा सकता।

वित्त सम्बन्धी अन्य बातें—उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि वित्तीय व्यवस्था का पूर्ण नियोजन सरकार के नियन्त्रण में है और सरकार ही वित्तीय प्रस्तावों के पेश करने के लिए उत्तरदायी है, जबकि कामन सभा को उन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार करने की शक्ति प्राप्त है। वित्तीय वर्ष का आरम्भ प्रथम अप्रैल से होता है। विभिन्न विभागों व सेवाओं के लिए स्वीकृत धन-राशि ३१ मार्च तक व्यय की जा सकती है, किन्तु जो धन शेष बच जाता है वह संचित निधि (Consolidated Fund) में ही वापस आ जाता है। इस निधि को एक्सचेकर लेखा (Exchequer Account) भी कह देते हैं और इसका धन 'बैंक ऑफ इंगलैंड' में जमा रहता है। इसी निधि में विभिन्न स्रोतों से होने वाली आय संचित की जाती है और इसी से सभी व्यय के लिए धन निकाला जाता है। इस निधि से धन तभी निकाला जाता है जबकि ट्रेजरी का समाधान हो जाये कि कामन सभा ने उसे स्वीकार किया है और नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक ने व्यय करने का अधिकार दिया है। निधि से निकाला हुआ रुपया 'पे-मास्टर जनरल' को दिया जाता है और वह उस धन को विभिन्न विभागों को देता है।

व्यय के मुख्य अनुमान—कुछ व्यय की मदें कानून द्वारा नियत हैं और उनमें तभी परिवर्तन हो सकता है जब सम्बन्धित कानून में परिवर्तन हो। इस श्रेणी में ये व्यय आते हैं— शाही परिवार के लिए धन, राष्ट्रीय ऋण पर सूद, न्यायाधीशों, नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक और विरोधी पक्ष के नेता आदि के वेतन। ये संचित निधि पर भारित व्यय हैं अर्थात् इन पर प्रति वर्ष पार्लियामेंट की स्वीकृति प्राप्त नहीं की जाती। अन्य सरकारी विभागों पर होने वाले व्यय के अनुमानों के विवरण प्रतिवर्ष तैयार किये जाते हैं, जिनमें आगामी वर्ष के लिए उनकी आवश्यकताओं को दिया जाता है और यह भी कि कितनी धनराशि किन प्रयोजनों के लिए रखी जानी है। ये अनुमान विभागों द्वारा ट्रेजरी की सहायता से तैयार किये जाते हैं और इन्हें ५ समूहों में विभाजित किया जाता है—थल-सेना, नभ-सेना, नाविक-सेना, नागरिक अनुमान और आय करने वाले विभाग। नागरिक अनुमानों को विभिन्न विभागों के अनुसार कई उप-विभागों में बांटा जाता है, जैसे केन्द्रीय शासन और वित, राष्ट्र-मण्डल और विदेश, गृह-विभाग, कानून और न्याय, शिक्षा व ब्रॉडकास्टिंग; स्थानीय शासन, गृह-निर्माण, स्वास्थ्य और श्रम, व्यापार, परिवहन और उद्योग आदि। इनमें से प्रत्येक उप-विभाग को कई 'वोटों' में बांटा जाता है और प्रत्येक 'वोट' उप-शीर्षकों में बंटी रहती है।

इन अनुमानों को पार्लियामेंट के सामने प्रत्येक सत्र के आरम्भ में प्रस्तुत किया जाता है। सैनिक अनुमानों को उनके मन्त्री पेश करते हैं और नागरिक अनुमान ट्रेजरी के वित्तीय सेक्रेटरी द्वारा पेश किये जाते हैं। ये सभी अनुमान सम्पूर्ण सदन

की सप्लाई समिति में पेश किये जाते हैं और यह समिति अनुमानों पर विभिन्न 'वोटों' में विचार करती है। आजकल इस कार्य के लिए लगभग २६ दिन नियत हैं, साधारणतया फरवरी और अगस्त के बीच प्रत्येक बृहस्पतिवार। प्रथा के अनुसार वाद-विवाद के लिए विषयों की छांट विरोधी पक्ष द्वारा की जाती है; परन्तु चूंकि सभी अनुमानों पर वाद-विवाद के लिए मिलने वाला समय अपर्याप्त होता है, अतएव उनमें से बहुत-सों पर वाद-विवाद भी नहीं हो पाता। २५ वें दिन सप्लाई समिति को विभिन्न वोटों के सम्बन्ध में पास किये गये संकल्पों (Resolution of supply) को सदन के सामने रिपोर्ट रूप में रखना होता है और सदन को उन्हें एक ही दिन में स्वीकार करना जरूरी है। अनुमानों की सदन द्वारा स्वीकृति ही काफी नहीं होती। संचित निधि से निकालने के लिए मार्गोपाय समिति से आज्ञा लेनी पड़ती है। विभिन्न प्रयोजनों के लिए धनराशि विनियुक्त करने के हेतु प्रस्ताव पास किये जाते हैं जो आवश्यक धन निकालने की आज्ञा देते हैं। इन प्रस्तावों पर सदन स्वीकृति देता है और उन्हें **विनियोग कानून** (Appropriation Act) में सम्मिलित किया जाता है, जो जुलाई के अन्त में पास किया जाता है। इस कानून द्वारा विभिन्न 'वोटों' के लिए धन विनियुक्त किया जाता है।

कर-सम्बन्धी प्रस्ताव—अप्रैल में वित्त-मन्त्री (Chancellor of Exchequer) सदन की मार्गोपाय समिति (Committee of Ways and Means) में सरकार का वार्षिक बजट पेश करता है। वास्तव में यह वित्त-मन्त्री का भाषण होता है। बजट पर वाद-विवाद कई दिन तक चलता है और इस बीच में सरकारी नीति व उसके सम्पूर्ण वित्तीय कार्यक्रम पर सबसे अधिक और पूर्ण व्यापक वाद-विवाद का अवसर मिलता है। वित्तीय प्रस्तावों पर मार्गोपाय समिति में संकल्पों के रूप में विचार किया जाता है। कुछ प्रस्तावों पर जिनका सम्बन्ध आय-कर, आयात-निर्यात, महसूल, उत्पादन महसूल आदि से होता है, शीघ्र ही विचार किया जाता है और शेष पर आने वाले समय में, किन्तु अगस्त से पूर्व ही। ये संकल्प पास हो जाने पर समिति की रिपोर्ट रूप में सदन के सामने रखे जाते हैं और वहाँ पर उन पर फिर एक बार वाद-विवाद होता है तथा उन्हें **वित्त विधेयक** (Finance Bill) में सम्मिलित किया जाता है।

वित्त सम्बन्धी समितियाँ ये दो हैं। प्रथम, *अनुमानों पर प्रवर समितिया* (Select Committee on Estimates) में कामन सभा के ३६ सदस्य होते हैं। समिति में सदस्यों का प्रतिनिधित्व प्रमुख दलों की सदन संख्या के अनुपात में होता है, परन्तु समिति के कार्य दलीय दृष्टिकोण से नहीं किये जाते। समिति का कार्य सरकारी नीति पर विचार अथवा वाद-विवाद करना नहीं है। इसका सम्बन्ध तो प्रशासन व्यय में बचत का सुझाव देना है। यह समिति उप-समितियों के द्वारा कार्य करती है, प्रत्येक उप-समिति को कई-कई अनुमानों की परीक्षा करनी होती है। ये उप-समितियाँ व्यय के कारणों की परीक्षा करती हैं, विभागों के कार्यों की जाँच

करती हैं और यह देखती हैं कि कहीं अकुशल प्रशासन या बुद्धिहीन व्यय तो नहीं हुआ है।

दूसरी, **सार्वजनिक लेखा समिति** (Select Committee on Accounts) में केवल १५ ही सदस्य होते हैं, जिन्हें प्रतिवर्ष नियुक्त किया जाता है। इस समिति का सभापति विरोधी दल का कोई ज्येष्ठ सदस्य होता है। यह समिति विभागों के लेखों की जाँच करती है। यह देखती है कि वे सही तरीके से रखे गये हैं और यह पता लगाने का प्रयत्न करती है कि धन पार्लियामेंट के इरादे के अनुसार व्यय किया गया है। इसे यह देखने की भी विवेकीय शक्ति है कि कोई अपव्यय तो नहीं हुआ है और यह भी कि ठेके आदि ठीक तरीके से किये गये हैं। यह गवाहों को बुलाकर गवाही ले सकती है और साधारणतया विभागों के स्थायी अध्यक्ष इस समिति के सामने लेखा अधिकारियों के रूप में आता है।

नियन्त्रक और महा-लेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General)—यह एक बहुत ही ज्येष्ठ नागरिक अर्थात् स्थायी अधिकारी होता है और उसकी नियुक्ति प्रधान मन्त्री द्वारा की जाती है। उसकी स्थिति न्यायाधीश के समान होती है, क्योंकि उसका वेतन संचित निधि पर भारित होता है और उसे पार्लियामेंट के दोनों सदनों द्वारा किये गये सम्बोधन पर ही उसके पद से हटाया जा सकता है। वह अपने कार्य में स्वतन्त्र होता है अर्थात् वह किसी मन्त्री के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। उसे सहायता देने के लिए अनेक लेखा जाँचने वाले अधिकारी होते हैं। उसका कार्य लेखों की जाँच कर यह देखना है कि धन उसी प्रयोजन के लिए व्यय किया गया है जिसके लिए वह निर्धारित था। वह सरकारी अधिकारियों के वित्तीय कार्यों तथा व्यापारिक मामलों आदि पर भी अपनी टीका-टिप्पणी करता है। उसकी रिपोर्ट के आधार पर सार्वजनिक लेखा समिति अपना कार्य करती है।

४. पार्लियामेंट और कार्यपालिका

ब्रिटेन में संसदीय पद्धति है अतएव संसद का कार्यपालिका पर नियन्त्रण रहना ही चाहिए। सिद्धान्त में ऐसा ही है, किन्तु व्यवहार में स्थिति बहुत भिन्न है। पूर्वगामी पृष्ठों में हमने देखा है कि वित्तीय क्षेत्रों में पार्लियामेंट का नियन्त्रण केवल औपचारिक बात है। अन्य क्षेत्रों में भी वास्तविक स्थिति लगभग इसी के समान है। विधायी क्षेत्र में कानून तो पार्लियामेंट ही बनाती है, किन्तु प्रायः सभी विधेयकों के प्रस्तावों का आरम्भ सरकार से होता है। अ-सरकारी सदस्यों के विधेयक के लिए जैसा पहले बताया जा चुका है, बहुत ही कम समय दिया जाता है और उनके पास करने में अनेक बड़ी कठिनाइयाँ आती हैं। परिणामस्वरूप कभी कोई एक दो विधेयक ऐसे होते हैं जिनमें अ-सरकारी सदस्य का पहल रहा हो। इस क्षेत्र में भी पार्लियामेंट की शक्तियाँ केबिनेट के हाथों में आ गई हैं। पार्लियामेंट तो केवल

सरकार द्वारा पेश किये गये विधेयकों पर अपनी सहमति प्रदान करती है।[1] अस्तु, यह कथन कि पार्लियामेंट कानून बनाती है यथार्थ में सच नहीं है। ग्रीव्ज कहता है कि पार्लियामेंट कुछ भी करती हो; किन्तु इसका मुख्य कार्य विधायी नहीं है। पार्लियामेंट तो कानून बनाने का औपचारिक यन्त्र है। जब तक मन्त्रिमण्डल के साथ बहुमत का समर्थन रहता है, दलीय अनुशासन और सदन के समय विभाजन पर नियन्त्रण द्वारा केबिनेट ही यह निर्धारित करती है कि किस विधेयक पर विचार हेतु कितना समय दिया जायेगा।[2]

केबिनेट पर नियन्त्रण—सिद्धान्त रूप में तो मन्त्रिमण्डल कामन सभा के प्रति उत्तरदायी है, किन्तु जब तक इसे बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है, कामन सभा केबिनेट पर नियन्त्रण नहीं करती, अपितु केबिनेट सदन पर नियन्त्रण रखती है। 'कामन सभा का कार्य सरकार पर नियन्त्रण रखना नहीं है, वरन् आलोचना के स्थान रूप में कार्य करना है तथा वाह्य जनमत का प्रतिनिधित्व करना है।' संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि वित्तीय तथा विधायी मामलों में पहले और अन्तिम निर्णय केबिनेट के हाथ में हैं। यह सच है कि सदन की बहुत कुछ सत्ता और कार्यकुशलता अन्य अभिकर्त्ताओं के हाथों में आ गई है। केबिनेट जो ,इसके अधीन होती थी आज इसकी स्वामी बन गई है, क्योंकि द्वि-दलीय पद्धति और कठोर दलीय अनुशासन के परिणामस्वरूप केबिनेट ने इसकी सत्ता हथिया ली है और पार्लियामेंट का केबिनेट पर नियन्त्रण बहुत ही कमजोर पड़ गया है।

गत ८०-६० वर्षों में बहुत परिवर्तन हो गया है। पार्लियामेंट की सत्ता एक ओर केबिनेट ने और दूसरी ओर निर्वाचक-मण्डल ने पा ली है। जब तक केबिनेट के साथ बहुमत का समर्थन रहता है यह कामन सभा पर नियन्त्रण रखती है और जब कभी केबिनेट को समर्थन की कमी अनुभव होती है यह सदन के विघटन हेतु ताज को परामर्श देती है और सदन विघटित हो जाता है। अब यह सिद्धान्त स्वीकार किया जाने लगा है कि सरकार के भाग्य का निर्णय कामन सभा को नहीं वरन् जनता को करना चाहिए। सन् १८६७ से किसी भी मन्त्रिमण्डल ने, सिवाय युद्ध काल के, केवल पार्लियामेंटरी कार्य के फलस्वरूप ही बिना निर्वाचक-मण्डल के निर्णय के त्यागपत्र नहीं दिया।

रेम्जे म्यूर के अनुसार सरकार पर कामन सभा द्वारा नियन्त्रण न रख सकने में असफलता का मुख्य कारण यह है कि जब तक केबिनेट के साथ बहुमत रहता है यह अधिनायकशाही चलाती है। विशेष रूप से ऐसी प्रथा पड़ गई है कि जब कभी किसी विभाग के कार्य की कटु आलोचना होती है तो केबिनेट उसे अपने ऊपर

1. 'So far as legislation is concerned what Parliament does is to consent to laws" —*Carter et al,* Major Foreign Powers. p 90.
2. 'The British legislature is anything but legislative in its main function... But it is not adequate to say that Parliament legislates.' —*H. R. G. Greaves,* The British Constitution, p, 40

आक्रमण के रूप में ले लेती है और उसका मुकावला अपने पीछे बहुमत की शक्ति से करती है। यह दोष तब दूर हो सकता है जबकि किसी भी दलीय केबिनेट के साथ बहुमत न हो, परन्तु हमारे विचार में दोष को इस प्रकार दूर करने के परिणाम कहीं अधिक बुरे होंगे। केबिनेट का स्थायित्व इस प्रकार समाप्त हो जायेगा। रेम्जे म्यूर तथा अन्य विद्वान लेखकों के अनुसार कामन सभा के प्रभावहीन होने का दूसरा कारण सदन पर कार्य का अत्यधिक भार है। वास्तव में यह वहुत सीमा तक केबिनेट की अधिनायकशाही के लिए भी उत्तरदायी है। कार्य के दवाव के आधार पर ही वाद-विवाद की समाप्ति के विभिन्न रूपों के कठोर प्रयोग को न्यायोचित ठहराया जाता है।[1]

वहुत से आलोचक यह भी बताते हैं कि सदस्यों के व्यक्तिगत रूप में महत्व और प्रभाव का अन्त हो गया है और इसका प्रमुख कारण दलीय अनुशासन की कठोरता है। आजकल निर्वाचन राष्ट्रीय प्रश्नों को लेकर लड़े जाते हैं और चुनाव संघर्ष दो प्रमुख दलों में होता है, अतएव स्वतन्त्र सदस्यों का चुनाव सम्भव नहीं रहा है। चुने जाने पर सदस्यगण दलीय अनुशासन से बंध जाते हैं। इसके अतिरिक्त कार्य भार बढ़ जाने के कारण भी सदस्यों को वोलने के अवसर कम मिलते हैं, विशेप रूप से पीछे वैठने वालों को। संक्षेप में, कामन सभा के पतन के लिए मुख्य कारण ये हैं—(१) कार्य की अधिकता, (२) केबिनेट की मनचाही, और (३) सदस्यों के व्यक्तिगत महत्व में अत्यधिक कमी।

निष्कर्ष—उपरोक्त विवेचन का यह अर्थ कदापि नहीं कि पार्लियामेंट अथवा कामन सभा का सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह बात अव भी सच है कि पार्लियामेंट वह स्थान है जहाँ प्रस्तावित विधेयकों को दोहराया जाता है। कोई भी हित विना सदस्यों की सेवाओं के सरकारी प्रस्तावों की आलोचना से अच्छा फल नहीं पा सकता। विभिन्न हित सम्बन्धित मन्त्रियों तक पहुँचने के लिए शिष्टमण्डल संगठित करते हैं और उनके सामने यह वात रखते हैं कि प्रस्तावित विधेयक की अमुक धाराओं में परिवर्तन न किये जाने पर उसका हित अथवा मतदाताओं का समूह अगले चुनाव में मन्त्रिमण्डल का समर्थन न कर सकेगा। इस प्रकार वहुत से हित अथवा संगठित समूह सदस्यों के द्वारा मन्त्रियों तक पहुँचते हैं और विधि-निर्माण कार्य में सदस्यों के व्यक्तिगत प्रयत्न अवश्य ही कुछ प्रभाव रखते हैं।

इस विपय में जैनिंग्स कहता है—'व्यवहार में केविनेट जैसा चाहती है कानून वनवा सकती है, क्योंकि दल के समर्थक उसका विरोध नहीं कर सकते, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सरकार सदन में कही जाने वाली वातों पर कोई ध्यान नही देती। सरकार का अस्तित्व चुनावों में जनसमर्थन पर निर्भर करता है अर्थात् मन्त्रिमण्डल को वहुमत तभी मिलेगा जवकि इसके सदस्यों को अपने-अपने निर्वाचन

1. *R. Muir*, How Britain is Governed, pp. 148-49.

क्षेत्रों में बहुमत मिले। अतएव सदस्यों को जनमत में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन का पता रहता है और वे उसे मन्त्रियों तक पहुंचाते हैं। यदि सरकार के किसी कार्य से उन्हें यह अनुभव हो कि अगली बार चुनाव में मत कम मिलेंगे तो वे चाहे सदन में सरकार का विरोध न कर सकें, किन्तु सचेतकों से अवश्य ही इस बात की शिकायत कर सकते हैं। सुदृढ़ मन्त्रिमण्डल को भी सदन के मत व भावना का ध्यान रखना पड़ता है। इसी कारण इसे जनता द्वारा शासन कहा जाता है। इतना ही नहीं, सरकार के सभी समर्थक 'हां, कहने वाले नहीं होते। उन्हें आसानी से जैसा चाहे मत देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, सरकार को उनकी बातों का अवश्य ही कुछ ध्यान रखना पड़ता है।"[1]

सदन में विरोधी पक्ष का महत्व—ब्रिटेन में विरोधी पक्ष (Opposition) का कितना अधिक महत्व है इसका अनुमान इन दो बातों से लगाया जा सकता है—प्रथम, विरोधी पक्ष के नेता को सरकारी कोष से वेतन दिया जाता है और दूसरे, विरोधी पक्ष अवसर आने पर सत्तारूढ़ मन्त्रिमण्डल का स्थान ले सकता है। वास्तव में, विरोधी पक्ष ब्रिटिश शासन पद्धति का एक आवश्यक और अनिवार्य अंग है। पार्लियामेंट का मुख्य कार्य सरकार की आलोचना करना है, तो विरोधी पक्ष इसका सबसे महत्वपूर्ण अंग है। सरकार को बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है और इस आधार पर वह शासन करती है, किन्तु उसे विरोधी पक्ष की आलोचना का सदा ही मुकाबला करना पड़ता है। मन्त्री यह कभी नहीं भूल सकते कि उनकी राजनीतिक मृत्यु हो सकती है।

जो कुछ विरोधी पक्ष कहता है वह इतना प्रभावोत्पादक हो सकता है कि दोनों प्रमुख दलों के पक्के समर्थकों को छोड़कर बचे मतदाता अगले चुनाव में दूसरे पक्ष का समर्थन कर सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप सत्तारूढ़ मन्त्रिमण्डल का स्थान विरोधी पक्ष का मन्त्रिमण्डल ले सकता है। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि विधि-निर्माण में विरोधी पक्ष काफी देरी कर सकता है। जैनिंग्स कहता है कि जनमत ने बहुत से विधेयकों का अन्त कराया है और बहुत सी सरकारी नीतियों को उल्टा भी है। सरकार पर आक्रमण का मुख्य कार्य विरोधी पक्ष करता है। यह जानने के लिए कि कोई जाति स्वतन्त्र है या नहीं यह पूछना ही काफी है कि वहाँ विरोधी पक्ष है या नहीं। परन्तु विरोधी पक्ष का उद्देश्य सरकार के कार्यों में बाधा डालना नहीं है, सरकार की आलोचना करना अवश्य है।

पार्लियामेंट के दोषों को दूर करने के लिए सुझाव—प्रथम, जिससे कि केबिनेट की अधिनायकशाही स्थापित न हो अर्थात् उस पर पार्लियामेंट का नियन्त्रण कुछ

1, 'It is the Government in Parliament It is a Government, too, whose only authority is the support of public opinion......It can not be said that this is dictatorship.' —*I. Jennings*, English Institutions, pp. 76-77

अर्थमय रहे यह अति आवश्यक है कि विरोधी पक्ष इतना सुदृढ़ हो कि आवश्यकता पड़ने पर वह अपना मन्त्रिमण्डल बना सके । ब्रिटेन में द्वि-दलीय पद्धति के कारण पहले से ही ऐसी स्थिति है, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, अतएव इस सुझाव का अधिक महत्व नहीं है। दूसरे, विभागीय समितियों की रचना होनी चाहिए, जैसा कि कुछ देशों में है। इस पद्धति के ये लाभ होंगे—(१) अधिकतर सदस्यों को विभिन्न विभागों के कार्यों के बारे में विशेष ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। (२) सदस्यों को शासन प्रक्रिया में सहयोग देने का अवसर मिलेगा, वे समय-समय पर सुझाव दे सकेंगे, प्रस्तावित विधेयकों तथा कानूनों के अधीन बनने वाले विनियमों व नियमों की आलोचना कर सकेंगे और कुछ मात्रा में सरकारी निर्णयों में भाग ले सकेंगे। (३) इस कार्य में सदस्यगण दलीय आदेशों से स्वतन्त्र रहकर महत्वपूर्ण कार्य करने का अवसर पायेंगे। (४) सदन के समय की बचत होगी।

कई लेखकों ने पार्लियामेंट के कार्यभार को हल्का करने के लिए इसकी शक्तियों को अन्य निकायों को सौंपने का सुझाव दिया है। रेम्जे म्यूर के विचार इस विषय में बहुत महत्वपूर्ण हैं। वह कहता है कि पार्लियामेंट के अन्तर्गत राज्य के भौगोलिक प्रदेशों के लिए छोटी-छोटी विधायिकायें हों, जिन्हें इन विषयों पर कानून बनाने के अधिकार दिये जा सकते हैं—कृषि और मछली उद्योग, जनस्वास्थ्य, गृह-निर्माण, शिक्षा, गरीबों की सहायता, स्थानीय शासन और व्यवस्था बनाये रखना। इनमें से बहुत से विषयों का प्रशासन अब भी स्थानीय अधिकारियों के हाथ में है। यह प्रादेशिक आधार पर पार्लियामेंट द्वारा शक्तियों का सौंपा जाना है। इसका एक दूसरा तरीका भी है; वह है विशिष्ट विषयों के लिए राष्ट्रीय पैमाने पर विशेष निकायों की रचना, जिनसे उनसे सम्बन्धित हितों का प्रतिनिधित्व हो। इसे प्रादेशिक के स्थान पर कार्य सम्बन्धी शक्तियों का सौंपा जाना कह सकते हैं।[1]

इस सम्बन्ध में सिडनी वैब ने **'समाजवादी कामनवैल्थ के लिए संविधान'** (Constitution for a Socialist Commonwealth) नामक ग्रन्थ में यह प्रस्ताव रखा कि ब्रिटेन में दो पार्लियामेंट होनी चाहिएँ—एक राजनीतिक और दूसरी आर्थिक मामलों के लिए जिनकी शक्तियाँ बराबर हों। अन्य लेखकों ने आर्थिक परिषद् या ऐसी अन्य परिषद् की रचना का सुझाव दिया है। ऐसी संस्था से ये लाभ होंगे—(१) यह उद्योगों, व्यवसायों और श्रमिकों के हितों का प्रतिनिधित्व करेगी और इससे सदस्यों को अपने क्षेत्रों के कार्यों का विशेष ज्ञान व अनुभव होगा। (२) इन विषयों से सम्बन्धित प्रस्तावों पर राजनीतिक नेताओं के स्थान पर विशेषज्ञों द्वारा विचार किया जायेगा। (३) इसके संगठन में जहाँ तक हो सकेगा दलीय अनुशासन और आदेशानुसार मतदान से बचा जा सकेगा। देखने में यह प्रस्ताव बड़ा आकर्षक है, किन्तु इसे कार्य-रूप देने में कई कठिनाइयाँ आयेंगी।

1. R. Muir, op-cit, p. 209.

प्रश्न

१. ब्रिटिश संसद में कितने प्रकार के विधेयक पेश होते हैं ?
२. सरकारी विधेयक कानून बनने से पूर्व किन स्टेजों से गुजरता है ? अ-सरकारी सदस्य द्वारा पेश किये गये सार्वजनिक विधेयक के पास होने में क्या कठिनाइयाँ आती हैं ?
३. व्यक्तिगत विधेयक के सम्बन्ध में प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
४. अधिनस्थ (प्रदत्त) विधि-निर्माण से आप क्या समझते हो ? इसकी आवश्यकता और उपयोगिता पर टिप्पणी लिखिए।
५. पार्लियामेंट में वित्तीय प्रक्रिया का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।
६. सिद्धान्त और व्यवहार की दृष्टियों से पार्लियामेंट तथा कार्यपालिका का सम्बन्ध बताइये।
७. विधि-निर्माण और प्रशासन में पार्लियामेंट का क्या महत्व है ?
८. पार्लियामेंट में विरोधी पक्ष का महत्व बताइये।
९. पार्लियामेंट की कार्य-प्रणाली में क्या दोष हैं ? उन्हें दूर करने के लिए सुझाव दीजिए।
१०. पार्लियामेंट की शक्तियों और कार्यों का संक्षेप में, विवेचन कीजिए।

७. शासन के अन्य महत्वपूर्ण पहलू

१. न्याय पद्धति की विशेषतायें और विभिन्न प्रकार के कानून

मुख्य विशेषतायें—न्याय पद्धति के क्रियात्मक रूप के पीछे बहुत से प्राचीन अथवा परम्परागत सिद्धान्त देखे जा सकते हैं। ये सिद्धान्त न्याय पद्धति की निष्पक्ष, प्रक्रिया और औचित्य की प्रत्याभूति हैं। अपराधियों के विरुद्ध सभी मुकदमों की सुनवाई खुले में अर्थात् सार्वजनिक रूप से होती है, दोनों पक्ष वकीलों द्वारा अपना प्रतिनिधित्व करा सकते हैं और मुकदमों के दोनों पक्षों की पूरी तरह सुनवाई होती है। न्यायाधीश स्वतन्त्र होते हैं अर्थात् सरकार उनके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। प्रायः सभी दण्ड (फौजदारी) के मुकदमों की सुनवाई जूरी द्वारा की जाती है। सभी व्यक्तियों के लिए एकरूप कानून व न्यायालय हैं। इन्हीं कारणों से ब्रिटिश न्याय-पद्धति अपनी उत्तमता के लिए प्रसिद्ध है। इस पद्धति की मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन यहाँ दिया जाता है।

(१) **विधि का शासन (Rule of Law)**—ब्रिटेन में 'विधि के शासन' की पद्धति है, न कि प्रशासनिक कानून की, जैसी की फ्रांस व अन्य महाद्वीपीय देशों में पाई जाती है। इस सन्दर्भ में विधि के शासन का अर्थ यह है कि वहाँ पर सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों तथा अ-सरकारी व्यक्तियों के लिए एक ही प्रकार के कानून तथा न्यायालय हैं।[1] प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसका पद कितना ही ऊँचा हो, एक ही प्रकार के कानूनों के अधीन है और देश के साधारण न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत है, अर्थात् सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध मुकदमे चलाने की पृथक व्यवस्था नहीं है। फ्रांस आदि देशों में सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध मुकदमों की सुनवाई के लिए पृथक कानूनों का संग्रह तथा प्रशासनिक न्यायालय हैं। मन्त्रीगण भी अपने कार्यों तथा अपराधों के लिए साधारण न्यायालयों के सामने उत्तरदायी होते हैं।

इस 'विधि के शासन' के अन्तर्गत पहले राजा और सरकारी अधिकारी अपवाद माने जाते थे; जिसका आधार यह सिद्धान्त था : 'राजा कोई भूल नहीं करता।' परन्तु सन् १९४७ के कानून 'दी क्राऊन प्रोसिडिंग्स एक्ट'—के अन्तर्गत अब सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध मुकदमे चलाये जा सकते हैं, और अब एक सरल व सीधी प्रक्रिया द्वारा अ-सरकारी व्यक्ति अधिकारियों से कर्त्तव्य पालन में हुई

1. Every official, from the Prime Minister down to a constable or a collector of taxes, is under the same responsibility for every act done without legal justification as any other citizen." —*Dicey.*

हानि के लिए हर्जाने के लिए कानूनी कार्यवाही कर सकते हैं। प्रत्येक ज्यादती के लिए कानून के अन्तर्गत उपचार की व्यवस्था है और इस प्रकार नागरिक के अधिकारों की रक्षा होती है अवैध रूप से बन्दी बनाये जाने के विरुद्ध 'बन्दी प्रत्यक्षीकरण' के लेख (Writ of Habeas Corpus) का प्रयोग किया जाता है। अन्य सामान्य कानूनों के अन्तर्गत नागरिकों के स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकारों की रक्षा होती है। इस दृष्टि से ब्रिटेन में कानूनों का शासन है, व्यक्तियों का स्वेच्छाचारी शासन नहीं। यह 'विधि के शासन' का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है।

(२) **न्यायपालिका की स्वतन्त्रता**—ब्रिटेन के न्यायाधीश अपने कार्य में निष्पक्ष व स्वतन्त्र हैं। उनकी स्वतन्त्रता की व्यवस्था निम्नलिखित व्यवस्था द्वारा की गई है : (अ) न्यायाधीशों की नियुक्ति ताज द्वारा लार्ड चांसलर अथवा प्रधान मन्त्री की सिफारिश पर की जाती है और उनकी छाँट अनुभवी बैरिस्टरों में से की जाती है। (आ) न्यायाधीशों को पद की सुरक्षा प्राप्त है। उनकी नियुक्ति जीवन भर के लिए होती है और वे अपने पदों पर सदाचरण काल तक रहते हैं। उन्हें केवल ताज ही उनके पद से हटा सकता है और वह तब जबकि पार्लियामेंट के दोनों सदन इस उद्देश्य से ताज की सेवा में सम्बोधन प्रस्तुत करें। इस प्रक्रिया का २०० वर्ष से भी अधिक काल से कभी प्रयोग नहीं हुआ है। सिद्धान्त रूप में ताज निम्न स्तरीय न्यायालयों के न्यायाधीशों को उनके पद से हटा सकता है; परन्तु वास्तव में उन्हें भी पद की सुरक्षा का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। (इ) न्यायाधीशों के वेतन इतने पर्याप्त हैं कि वे घूस आदि के आकर्षण से बचे रहें। मुख्य न्यायाधिपति (Lord Chief Justice) को ११,००० पौण्ड वार्षिक वेतन मिलता है, उससे नीचे के स्तर के न्यायाधीशों को ८,००० पौण्ड तथा निम्नस्तरीय न्यायालयों के न्यायाधीशों को २,००० से लेकर २,८०० पौण्ड। न्यायाधीशों के लिए पद निवृति की आयु नियत नहीं है। अतः उन्हें पद-निवृति के बाद अन्य पद की तलाश नहीं करनी पड़ती। (ई) न्यायाधीशों के वेतन का व्यय राज्य की संचित निधि पर भारित होता है अर्थात् उस पर मतदान नहीं होता और उसमें साधारण रूप से कमी या वृद्धि नहीं की जा सकती। (उ) न्यायाधीश अपने कर्त्तव्य-पालन में जो कुछ करते हैं, उसके लिए उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। न्यायाधीशों के कार्यों की पार्लियामेंट में अथवा बाहर कोई आलोचना नहीं की जा सकती; क्योंकि ऐसा करने वालों के विरुद्ध 'न्यायालय के अवमान' की कार्यवाही की जा सकती है।

(३) **पार्लियामेंट की सर्वोपरिता**—जैसा कि पूर्वगामी अध्याय में बताया जा चुका है, ब्रिटेन में पार्लियामेंट सर्वोपरि है अर्थात् वहाँ पर भारत अथवा संयुक्त राज्य अमरीका की भाँति संविधान की सर्वोपरिता नहीं है; फलतः पार्लियामेंट साधारण विधि द्वारा ही कैसा भी कानून बना सकती है और न्यायालय उसके द्वारा निर्मित किसी भी कानून को अवैध घोषित नहीं कर सकते, जैसा कि सं० रा० अमरीका तथा भारत के सर्वोच्च न्यायालय कर सकते हैं।

(४) जूरी-पद्धति—ब्रिटेन में जूरियों का विस्तृत रूप से प्रयोग किया जाता है। दण्ड (फौजदारी) के मुकदमों में तथ्यों का निर्णय करने के लिए तथा कुछ प्रकार के व्यवहार (दीवानी) मुकदमों में भी जूरियों का प्रयोग किया जाता है। साधारणतया न्यायाधीशों को यह विवेकाधिकार प्राप्त है कि वे बहुत से मुकदमों में जूरी का प्रयोग कर सकते हैं, विशेष रूप से ऐसे मुकदमों में जिनमें व्यक्ति के मान का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता है। जूरी में १२ व्यक्ति होते हैं और वे मुकदमे की पूरी कार्यवाही सुनने पर निर्णय देते हैं कि अभियुक्त अपराधी है या नहीं। उनके निर्णय का न्यायाधीश बहुत ध्यान रखता है। जब जूरी अभियुक्त के पक्ष में निर्णय देती है तो पुलिस उसके विरुद्ध निगरानी की अपील भी नहीं कर सकती। इस प्रकार जूरी न्याय के साथ दया का सुन्दर सम्मिश्रण कर देती है।

(५) सर्किट न्यायालय—अर्थात् बहुत से न्यायालय मुकदमों की सुनवाई एक नियत स्थान पर नहीं करते वरन् स्थान-स्थान पर जाकर करते हैं। इस प्रकार न्यायालयों की व्यवस्था विकेन्द्रित है और मुकदमे वालों को न्याय पाने में बड़ी सुविधा रहती है। काउन्टी न्यायालय, जिन्हें दीवानी मामलों में विस्तृत अधिकार-क्षेत्र प्राप्त है (जिन मामलों में विवादग्रस्त धन-राशि २०० या ३०० पौण्ड से अधिक नहीं होती) लगभग ६० सर्किट समूहों में विभाजित हैं। इसी प्रकार बहुत से प्रकार के फौजदारी मुकदमों की सुनवाई 'एसाइज न्यायालयों' (Assize)[1] द्वारा की जाती है और ऐसे न्यायालय वर्ष में ३–४ बार अपने क्षेत्र के विभिन्न नगरों में मुकदमे सुनते हैं। इसलिए इन्हें क्वार्टर सैशन्स न्यायालय भी कहते हैं। अन्त में, अन्य देशों की तरह दो प्रकार के कानून-दण्ड तथा व्यवहार हैं और दो ही प्रकार के न्यायालय। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड व स्कॉटलैण्ड की कानूनी पद्धतियों में अन्तर है।

विभिन्न प्रकार के कानून—सभी देशों की तरह ब्रिटेन में आजकल संविधियों (statutes) की संख्या वृद्धि पर है, किन्तु ब्रिटेन दो अन्य प्रकार के कानूनों के लिए विख्यात है, वे हैं सामान्य विधि (Common Law) और साम्य विधि (Law of Equity)। इन विभिन्न प्रकार के कानूनों का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

(१) संविधियाँ—गत ८–६ शताब्दियों में पार्लियामेंट ने विविध विषयों के बारे में बहुत बड़ी संख्या में कानून बनाए हैं, जो संविधियाँ कहलाती हैं। इन कानूनों की संख्या आरम्भ में कम थी, किन्तु समय बीतने के साथ-साथ इनकी संख्या बढ़ती गई। इन कानूनों का सम्बन्ध साधारणतया सभी विषयों से है, किन्तु विशेष रूप से संविधान अर्थात् शासन के अंगों का सम्बन्ध उनके निर्माण व उनकी कार्यविधि तथा प्रशासन आदि से है। सभी संविधियाँ और अधीन कानून लिखित

1. '(Assizes), the courts which judges still hold under the King's commission when they tour the country on circuit.'

रूप में हैं, जो कानूनों की किताब (Statute book) में संग्रहित हैं; इसी कारण इन कानूनों को संग्रहित अथवा लिखित कानून कहते हैं।

(२) सामान्य कानून—ब्रिटिश (कानूनी) पद्धति का आधारभूत तत्व अभी तक सामान्य कानून हैं। जैसा कि प्रथम अध्याय में बताया गया है ब्रिटिश नागरिकों की विभिन्न स्वतन्त्रताओं की रक्षा ऐसे ही कानूनों द्वारा होती है। ऐसे कानूनों का सम्बन्ध साधारणतया इकरार, व्यवहार सम्बन्धी ज्यादतियों आदि से है। अतीत में अधिकांश फौजदारी कानून भी सामान्य कानून थे, किन्तु अब उनको उत्तरोत्तर संविधियों का रूप मिलता जा रहा है। सामान्य विधि को न्यायाधीशों द्वारा निर्मित कानून भी कहा जाता है। क्योंकि इस प्रकार के कानून का विकास न्यायाधीशों द्वारा दिए गए निर्णयों और उनके रिकार्डों से हुआ है, उन्हें संविधियों की तरह पार्लियामेंट ने नहीं बनाया। ऐसे कानूनों को संविधियों के विरुद्ध अलिखि कानून कहा जाता है; परन्तु वास्तव में अब ये भी अलिखित नहीं रहे, क्योंि इनके नियमों और चलनों को न्यायविदों ने लिखित रूप प्रदान कर दिया है। कानून चलनों पर आधारित होने के कारण प्रथागत कहलाते हैं।[1]

(३) साम्य विधि—इन कानूनों का स्वरूप समझने के लिए हमें इनकी उत्पत्ति और विकास का संक्षिप्त परिचय इतिहास से करना होगा। १५वीं शताब्दी के आस-पास ऐसा समय आया कि जब सामान्य कानून बदलते हुए समय व परिस्थिति के अनुसार विस्तृत न हो सका और न्यायाधीशों ने सामान्य कानूनों को समाज की बदलती हुई आवश्यकता के अनुसार ढालना प्रायः बन्द सा कर दिया। ऐसी परिस्थितियों में साम्य-विधि का आरम्भ हुआ। कानूनी दृष्टि से राजा को सदा ही '**न्याय का निर्झर या स्रोत**' माना गया है और न्यायालय राजा के न्यायालय रहे हैं। ऐसा होने पर जब न्यायालयों में प्रजा को न्याय न मिल सका तो अन्याय से पीड़ित व्यक्तियों ने राजा से न्याय के लिए अपीलें कीं, जिनमें राजा से प्रार्थना की जाती थी कि वह कृपा करके उन्हें होने वाले अन्याय अथवा न्याय की कठोरता से बचाए। राजा ऐसी अपीलों को चांसलर के पास विचार के लिए भेज दिया करता था। उस समय चांसलर कोई न्यायाधीश न होता था, वरन् राजा की परिषद् का कानूनी सदस्य और जैसा कहा जाता था राजा की अन्तरात्मा का रक्षक था। जब कभी चांसलर समझता था कि अपील करने वाले का मामला वास्तव में मानने योग्य

1. 'But it ceased to be *unwritten* law in a strict sense, for its rules and usages, as they grew, were put into written form by the succeeding jurists.. It was unwritten law in the sense that it did not originate in statutes passed by Parliament. It was customary law in that usages supplied its basis. It was judge-made law in that the courts had evolved most of it.'

—*Munro and Ayearst,* The Government of Europe, p. 256.

है, तो वह सामान्य कानून में तो परिवर्तन नहीं करता था, परन्तु वह सम्बन्धित पक्षों को जुर्माना या दूसरे प्रकार का दण्ड दे सकता था। उचित मामलों में वह दूसरे पक्ष को प्रार्थी के विरुद्ध कानूनी निर्णय को लागू कराने से रोक सकता था अथवा उसे सामान्य कानून के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों को एक विशेष रीति से प्रयोग करने का आदेश दे सकता था।

जैसे यह व्यवहार बढ़ा, कुछ ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ जिनके अनुसार, ऐसी आशा की गई, कि चांसलर चलेगा। फलतः १८वीं शताब्दी में साम्य-विधि इच्छा पर आधारित न रही; यथार्थ में इसके सिद्धान्त सामान्य विधि की भांति निश्चित होते चले गए। इसका परिणाम यह निकला कि चांसलर ने एक न्यायाधीश का रूप पाया और उसका प्रशासनिक कार्यालय (Chancery) एक न्यायालय बन गया। इस प्रकार इंगलैंड में दो प्रकार के न्यायालय (जो एक दूसरे से स्वतन्त्र थे) चलते रहे और वे दो प्रकार के पृथक् कानूनों को लागू करते रहे। ऐसी स्थिति सन् १८७३ तक चली, क्योंकि उस वर्ष के न्यायपालिका कानून (Judicature Act) ने एक ही प्रकार की न्यायालय पद्धति को स्थापित किया। उसने साम्य-विधि को सामान्य विधि से नहीं मिलाया, किन्तु उसके आपसी सम्बन्धों को निश्चित कर दिया और इस सिद्धान्त को कानूनी रूप दे दिया कि जहां दोनों में विरोध हो, साम्य विधि का पालन हो। अतएव दोनों प्रकार के कानूनों में अभी तक अन्तर है।

निष्कर्ष—पार्लियामेंट द्वारा निर्मित प्रायः सभी संविधियों का आधार प्रचलित सामान्य या साम्य विधियां हैं। संविधि द्वारा स्थापित कानून में परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु किसी भी मुकदमे में संविधि का किस प्रकार से निर्वचन किया जाए इसके लिए सामान्य विधि का सहारा लेना आवश्यक है। इंगलैंड के दण्ड तथा व्यवहार कानूनों के आधारभूत सिद्धान्त सामान्य तथा साम्य-विधियों में ही मिलते हैं। इनमें सदैव ही परिवर्तन होता रहा है। पार्लियामेंट ने बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार संविधियां बनाई हैं, परन्तु अब भी जिन बातों के बारे में संविधियां चुप होती हैं अर्थात् जिनकी निश्चित व्याख्या नहीं करतीं उनके सम्बन्ध में निर्णय न्यायालयों के पूर्व-निर्णयों अर्थात् सामान्य विधि के अनुसार होता है।

२. न्यायालयों का संगठन

व्यवहार अथवा दीवानी न्यायालय (Civil Courts)—इंगलैंड और वेल्स में सबसे महत्वपूर्ण न्यायालय निम्नलिखित हैं—

काउन्टी न्यायालय—इन न्यायालयों का संगठन इस प्रकार किया गया है कि देश का कोई भी भाग इनसे अधिक दूर न रहे। इनका सम्बन्ध अधिकांश दीवानी मुकदमों से है। इन न्यायालयों के अध्यक्ष वैतनिक न्यायाधीश होते हैं; वे साधारणतया अकेले ही मुकदमों की सुनवाई करते हैं; यद्यपि वे जूरी का प्रयोग भी

कर सकते हैं। ऐसे न्यायाधीशों की वर्तमान संख्या ७४ है, यद्यपि न्यायालयों की संख्या लगभग ४०० है। वास्तव में एक ही न्यायाधीश कई न्यायालयों में समय-समय पर बैठता है। इनका साधारण अधिकार-क्षेत्र इस प्रकार है—सभी मुकदमें जिनमें अन्तर्ग्रस्त धनराशि ४०० पौंड से कम हो या भूमि सम्बन्धी मामले जिनमें भूमि का लगान १०० पौंड से अधिक न हो। इनसे ऊपर की मालियत के मुक़दमों की सुनवाई दोनों पक्षों की सहमति से या तो इन्हीं न्यायालयों में या उच्च न्यायालय में होती है। इन साधारण काउन्टी न्यायालयों के अतिरिक्त इन्हीं के स्तर के कुछ स्थानों में पुराने न्यायालय अभी तक चले आ रहे हैं, जैसे लन्दन शहर का न्यायालय (City of London Court) तथा मेयर का न्यायालय।

उच्च न्यायालय (High Court of Justice)—उच्च न्यायालय तीन विभागों में बैठता है—(१) क्वीन्स बेन्च डिवीजन। (२) चांसरी डिवीजन और (३) प्रोबेट, डाइवोर्स व एडमिरलटी डिवीजन। प्रथम डिवीजन में लार्ड चीफ जस्टिस तथा अन्य २७ न्यायाधीश बैठते हैं। इसमें हर्जाने, ऋण, वाणिज्य, भूमिकर सम्बन्धी मुकदमे आते हैं। चांसरी डिवीजन में नाम का अध्यक्ष लार्ड चांसलर होता है; परन्तु इसका कार्य ६ न्यायाधीश करते हैं, जो वर्ष भर लन्दन में ही रहते हैं। इसके अधिकार-क्षेत्र का सम्बन्ध साम्य-विधि से है और इसमें बड़ी जायदादों, साझेदारी न्यास और बेनामे, कुछ प्रकार के करों, कम्पनियों व दिवालियेपन से सम्बन्धित मुकदमों की सुनवाई होती है। तीसरे डिवीजन में जैसा कि नाम से ही पता लगता है, वसियतों के सबूत, तलाक, समुद्री व जहाजरानी सम्बन्धी मुकदमे सुने जाते हैं।

अपीलीय न्यायालय (Court of Appeal)—दीवानी कानून के सम्बन्ध में अपीलें सुनने के लिए दो न्यायालय हैं—प्रथम, अपील का न्यायालय (Court of Appeal) और दूसरा, लार्ड सभा। अपील के न्यायालय का अध्यक्ष एक न्यायाधीश होता है, जिसे **'मास्टर ऑफ दी रॉल्स'** कहते हैं और उसकी सहायता के लिए ८ अपीलीय लार्ड न्यायाधीश हैं। इसमें काउन्टि न्यायालयों तथा अन्य समान न्यायालयों और उच्च न्यायालय के सभी डिवीजनों में आने वाली अपीलें सुनी जाती हैं। यह न्यायालय भी ३–३ न्यायाधीशों के तीन विभागों में बैठता है। अपील के न्यायालय से आगे अपीलें लार्ड सभा अथवा अपील न्यायालय की आज्ञा से लार्ड सभा में सुनी जा सकती हैं। ऐसी अपीलों की सुनवाई ९ साधारण अपीलीय लार्डों में से किन्हीं ५ द्वारा सुनी जाती हैं। ये साधारण अपीलीय लार्ड वैतनिक होते हैं और आजीवन पीयर भी। इस प्रकार युनाइटेड किंगडम के सभी भागों से आने वाले सभी दीवानी मुक़दमों के लिए लार्ड सभा सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है।

इंगलैंड और वेल्स में दण्ड या फौजदारी न्यायालय

पैटी सेशन या दण्डाधीशों के न्यायालय—दण्डाधीशों के न्यायालय सबसे नीचे के न्यायालय हैं, जहाँ पर सभी प्रकार के छोटे मुकदमों की सुनवाई होती है। ये ही

व्यक्ति, भी न्याय पा सकें। इस दृष्टि से ब्रिटेन में न्याय की तराज़ू का पलड़ा निर्धन के विरुद्ध रहा है, क्योंकि वकीलों की फीस काफी ऊँची है, जिसके कारण न्याय बड़ा महँगा है। परन्तु अब निर्धनों को कानूनी सहायता देने की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण पग उठाए गए हैं। सन् १९४९ में कानूनी सहायता देने की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण पग उठाए गए। सन् १९४९ में **कानूनी सहायता और परामर्श कानून** में निर्धन व्यक्तियों के लिए दीवानी कार्यवाहियों में सहायता देने की व्यापक योजना अपनाई गई है। एक नियत आय से कम आय वाले व्यक्तियों को बिना फीस कानूनी सहायता देने की व्यवस्था की गई है और जिनकी वार्षिक आय लगभग इससे दुगुनी है, उन्हें कानूनी सहायता पाने के लिए अंशदान की योजना बनी है। कानूनी सहायता का कार्य-संचालन कानून सोसाइटी करती हैं और लार्ड चांसलर उसका मार्ग-दर्शन करता है। स्कॉटलैंड में कानूनी सहायता देने का कार्य वहाँ की कानून सोसाइटी करती है।

फौजदारी के मामलों में इंगलैंड और वेल्स के दण्ड न्यायालयों में सन् १९३० के **निर्धन बन्दियों के बचाव कानून** यथा अन्य कानूनों के अन्तर्गत बिना फीस कानूनी सहायता देने की व्यवस्था है। सन् १९५२ के **फौजदारी मुकदमों में व्यय कानून** के अन्तर्गत न्यायालयों को दण्डनीय अपराधों के सम्बन्ध में, जबकि अभियुक्तों को दण्डधीशों के न्यायालयों से मुक्त कर दिया जाता है, यह शक्ति प्राप्त है कि वे अभियुक्तों के बचाव में व्यय हुई धनराशि का एक उचित अंश स्थानीय कोष से दिलवा दें। कानूनी सहायता योजना के अन्तर्गत वकीलों की फीस भी नियत कर दी गई है। सौलिसिटरों द्वारा कानूनी मामलों पर निर्धन व्यक्तियों को बिना फीस जबानी परामर्श भी प्राप्त होता है। इस कार्य के लिए सौलिसिटरों को कानून सोसाइटी विहित फीस देती है।

उपर्युक्त विवेचन से ब्रिटिश न्याय पद्धति के गुणों का स्पष्ट पता लगता है। न्यायाधीश अपना कार्य स्वतन्त्रतापूर्वक तथा निष्पक्षता अर्थात् बिना भय और अनुराग के करते हैं। न्यायालयों की व्याख्या ऐसी है कि न्याय पाने के लिए अधिक दूर नहीं जाना पड़ता। निर्धन व्यक्तियों को बिना फीस या कम फीस पर कानूनी परामर्श व सहायता मिल जाती है। इनसे भी बढ़कर यह बात है कि किसी व्यक्ति को बिना कानून के दण्ड नहीं दिया जा सकता। ब्रिटिश न्याय-पद्धति कितनी अच्छी है इसका प्रमाण तो वे अनेक देश हैं, जिन्होंने इसे अपनाया है।

३. मन्त्री और उच्चतर नागरिक सेवक

मन्त्रियों का पद राजनीतिक होता है, जबकि नागरिक सेवकों का स्थायी। नीति और कार्यक्रम सम्बन्धी अन्तिम निर्णय मन्त्री करते हैं, किन्तु उन्हें इस कार्य के लिए सभी प्रकार की आवश्यक सूचना, सहायता व परामर्श प्रशासन अधिकारियों से मिलते हैं। इनके आपसी सम्बन्ध के विषय में कुछ अन्य बातें इस प्रकार है—पार्लियामेंट के सदस्यों को प्रशासन व नागरिक सेवाओं की आलोचना करने का

अधिकार प्राप्त है, किन्तु वे किसी नागरिक सेवक की नाम लेकर आलोचना नहीं करते; क्योंकि स्थायी सेवक के अच्छे और बुरे कार्यों का उत्तरदायित्व मन्त्री पर है। मन्त्री का कर्त्तव्य है कि वह अपने विभाग के प्रशासन कार्यों और नागरिक सेवकों की विरोधियों तथा आलोचकों से रक्षा करे अर्थात् उनके बचाव में बोले। इसकी आवश्यकता इसलिए है कि नागरिक सेवक पार्लियामेंट से अथवा बाहर अपना बचाव नहीं कर सकते। इसी कारण ब्रिटेन में यह सुस्थापित परम्परा है कि स्थायी सेवक राजनीतिक दलबन्दी से दूर रहते हैं अर्थात् वे राजनीतिक रूप से तटस्थ होते हैं।

यदि हम मन्त्रियों व प्रशासकों की तुलना करें तो हम यह कह सकते हैं कि मन्त्री अपने कार्यों के बारे में बहुत कम ज्ञान व अनुभव प्राप्त होते है, अतएव उन्हें प्रशासकों की अपेक्षा नौसिखिया कहते हैं, प्रशासक अपने कार्यों का विशेष ज्ञान व अनुभव रखते हैं। इसी कारण निर्णय तो मन्त्री करते हैं, किन्तु निर्णय पर पहुंचने के लिए सभी प्रकार के आवश्यक आँकड़े सूचना व परामर्श विशेष ज्ञान व अनुभव प्राप्त प्रशासक देते हैं। इस सम्बन्ध में स्थापित परम्पराओं के विषय में **थियोडोर मौरिसन** ने लिखा है—(१) नागरिक सेवक के लिए अपने मुख्य के समक्ष प्रत्येक मामले के दोनों पक्ष में पूर्ण तथा निष्पक्ष सूचना रखनी आवश्यक है। (२) जब कोई निर्णय कर लिया जाए तो उसे पूर्ण वफादारी से उस निर्णय को कार्यान्वित करना चाहिए, चाहे उसका व्यक्तिगत मत उसके विरुद्ध रहा हो। (३) संसदीय पद्धति में नीति सम्बन्धी जितनी भी निरन्तरता रह सकती है, उसके लिए नागरिक सेवक उत्तरदायी हैं। (४) कार्यालय में जो कुछ भी होता है उसके बारे में नागरिक सेवक को चुप्पी और विवेक का पालन करना चाहिए।

परन्तु इस विषय में **रेम्जे म्यूर** का मत यह है कि ब्रिटेन में स्थायी अधिकारियों की शक्तियाँ बहुत बढ़ी हुई हैं। वह कहता है कि सिद्धान्त रूप में तो मन्त्री और प्रशासकों का सम्बन्ध ऊपर वर्णित जैसा है; किन्तु व्यवहार में प्रशासन तथा विधि-निर्माण दोनों ही क्षेत्रों में प्रशासकों की शक्तियाँ बहुत व्यापक तथा वास्तविक हैं। प्रशासन के क्षेत्र में प्रशासक मन्त्री के सामने निर्णय के लिए सैंकड़ों मामले या बातें रखते हैं, जिनके बारे में वे अनभिज्ञ होते हैं, अतएव साधारणतया मन्त्री प्रशासकों द्वारा दिए गए सुझावों को उनके तर्कों के आधार पर मान लेते हैं। पार्लियामेंट में मन्त्री को अनेक प्रश्नों का उत्तर देना होता है, परन्तु उनके लिखित उत्तर कार्यालय द्वारा तैयार किए जाते हैं। यदि विभाग में कोई भूल होती है तो उसका उत्तरदायित्व मन्त्री पर रहता है; मन्त्री स्थायी सेवकों का पक्ष ग्रहण करता है, और बहुमत समर्थन के बल पर सरकार उनकी रक्षा करने में सफल रहती है, जिस कारण उनके कार्यों की जाँच आदि का प्रस्ताव पास नहीं हो पाता। वस्तु, मन्त्रियों के उत्तरदायित्व की आड़ में नौकरशाही खूब पनप रही है।

विधि-निर्माण के क्षेत्र में जहाँ तक विनियमों, नियमों अर्थात् विभागीय विधि-निर्माण का सम्बन्ध है, उसके निर्माण के लिए उत्तरदायित्व प्रायः पूर्णरूप से प्रशासकों का है यद्यपि मन्त्री उसमें परिवर्तन कर सकता है और उस पर अपनी स्वीकृति देता है। गत वर्षों में इस प्रकार के विधि-निर्माण में बहुत वृद्धि हुई है। इन शक्तियों का प्रयोग मन्त्री करता है और मन्त्री पालियामेंट के प्रति उत्तरदायी समझा जाता है। परन्तु वास्तव में, रेम्जे म्यूर के मतानुसार, केबिनेट की अधिनायक-शाही के अन्तर्गत नौकरशाही की शक्ति बहुत बढ़ गई है।[1]

४. स्थानीय शासन

ब्रिटिश पद्धति के तीन आधारभूत पहलू हैं—(१) इस पद्धति की जड़ अतीत में गहरी गड़ी है। अर्द्ध-स्वतन्त्र सेक्सन नगरों और शायरों के समय से अंग्रेजों में सामुदायिक भावना बड़ी सुदृढ़ रही है और उन्होंने अपने स्थानीय मामलों व अधिकार की हर प्रकार से रक्षा की है। (२) स्थानीय शासन पद्धति में समय के अनुसार परिवर्तन होते हैं। अभी तक ऐतिहासिक काउन्टि और बरो जीवित हैं, परन्तु उनके संगठन व कार्यों में अन्तर हो गया है। इनके अतिरिक्त स्थानीय शासन के क्षेत्र में नई निर्वाचित इकाइयों का विकास हुआ है। (३) यद्यपि स्थानीय क्षेत्र स्वतन्त्र नागरिक जीवन को अपनाये हुए हैं, किन्तु उनकी शक्तियों व कार्यों पर केन्द्र का नियन्त्रण काफी बढ़ा है।

स्थानीय संस्थाओं के मुख्य प्रकार—स्थानीय शासन के लिए इंगलैंड, वेल्स और उत्तरी आयरलैंड को काउन्टि, बरो और प्रशासनिक काउन्टियों में विभाजित किया गया है। प्रशासनिक काउन्टियों को तीन प्रकार के क्षेत्रों में बाँटा गया है—(१) म्यूनिसिपल बरो (Non-county boroughs), (२) शहरी जिले, और (३) ग्रामीण जिले। ग्रामीण जिले पेरिशों में उप-विभाजित हैं। इनमें से प्रत्येक की अपनी निर्वाचित कौन्सिल होती है। स्कॉटलैंड में बरो के स्थान पर बड़े बर्ग (Burgh) हैं। इनके अतिरिक्त लन्दन की अपनी स्थानीय संस्थायें हैं, जो देश की अन्य संस्थाओं से भिन्न हैं। इन संस्थाओं में ये सम्मिलित हैं—(अ) लन्दन काउन्टि कौन्सिल, (आ) लन्दन शहर का निगम और (इ) मेट्रोपोलिटन बरो, जिनकी संख्या २८ है। इङ्गलैंड, वेल्स व उत्तरी आयरलैंड में लगभग ४,१०० पेरिश सभायें और ७,००० पेरिश कौन्सिलें हैं।

1. 'Cabinet dictatorship is the bulwark behind which the power of bureaucracy has grown.'

—*R. Muir*, How Britain is Governed, pp. 55–63.

ब्रिटेन में विभिन्न प्रकार की स्थानीय संस्थायें

	इंगलैंड और वेल्स	स्कॉटलैंड	उत्तरी आयरलैंड
काउन्टी वरो या स्कॉटलैंड में बड़े बर्घ	८३	४	२
प्रशासनिक काउन्टियाँ	६२	३३	६
मेट्रोपोलिटन बरो	२८	—	—
म्यूनिसिपल बरो या बर्घ	३१८	१९३	६
शहरी जिले	५६२		२४
ग्रामीण जिले	४७५		३२

उपरोक्त संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय—स्थानीय शासन संस्थाओं में सबसे नीचे के स्तर पर पैरिश (Parish) हैं। जिन पैरिशों (गाँवों) की आबादी ३०० से अधिक है, उनकी तो कौन्सिलें हैं, २०० से ३०० तक आबादी वाले पेरिशों को स्वेच्छा से कौन्सिल बनाने का अधिकार है, शेष में केवल एक सभायें हैं, कौन्सिलें नहीं। प्रत्येक पैरिश को सभा (Meeting) करनी जरूरी है, जिसमें वे सभी व्यक्ति भाग ले सकते हैं जिनके नाम चुनाव रजिस्टर में लिखे हों। पैरिश कौन्सिलें मार्गों की रोशनी, स्नानागारों, पानी-घरों, आग बुझाने वाले एन्जिनों, पार्कों, मनोरंजन के स्थानों, पुस्तकालय व पद-मार्गों को अच्छी व्यवस्था में रखने के अतिरिक्त तालावों व खाइयों की सफाई तथा पानी की व्यवस्था के कार्य भी कर सकती हैं। कोई भी पैरिश कौन्सिल स्वतन्त्र रूप से किसी प्रकार का रेट नहीं लगा सकती, इन्हें व्यय के लिए आवश्यक धन ग्रामीण जिले की परिषद् से मिलता है।

शहरी व ग्रामीण जिले—जिला कौन्सिल में एक सभापति और निर्वाचित सदस्य होते हैं। सदस्यों का चुनाव ३ वर्ष की अवधि के लिए होता है और साधारणतया $\frac{1}{3}$ सदस्य प्रतिवर्ष अपने पद से अलग होते हैं। जिला कौन्सिल अपना कार्य मुख्यत: समितियों द्वारा करती है, किन्तु समितियों के निर्णयों पर कौन्सिल की स्वीकृति प्राप्त की जानी आवश्यक है। ये कौन्सिलें सफाई, पानी व्यवस्था, जन-स्वास्थ्य, मार्गों और प्रकाश आदि की व्यवस्था करती हैं।

बरो, काउन्टि वरो और काउन्टि कौन्सिलें—शहरी क्षेत्रों में स्थानीय शासन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्था वरो है। इन्हें कुछ ऐसे छोटे अधिकार भी प्राप्त हैं जो शहरी जिलों कौन्सिलों को भी प्राप्त नहीं, जैसे ये स्थानीय पुलिस का प्रबन्ध भी अपने हाथों में ले सकती हैं। काउन्टि वरो पृथक् इकाइयाँ हैं और ये किसी भी रूप में प्रशासनिक काउन्टि के अधीन नहीं हैं। कोई भी बड़ा नगर जिसकी जनसंख्या ७५ हजार से बढ़ जाये काउन्टि वरो का पद प्राप्त करने के

लिए स्वास्थ्य मन्त्रालय से प्रार्थना कर सकता है। उसकी स्वीकृति का अनुसमर्थन पार्लियामेंट द्वारा होना आवश्यक है। इस पद की प्राप्ति से नगर संस्थाओं के कार्यों में वृद्धि हो जाती है। इंगलैंड, वेल्स और उत्तरी आयरलैंड में ६८ प्रशासनिक काउन्टियाँ हैं। ये एक प्रकार से प्रादेशिक क्षेत्र हैं जिनके कार्य भी स्वभावतः बड़े हैं। इनके कार्यों में मुख्य सड़कें, पुल, पुलिस, नगर व ग्रामीण क्षेत्रों का नियोजन, नाप और तोल के बाटों आदि की देख-रेख, मनोरंजन के स्थानों को लाइसेंस देना इत्यादि आते हैं। इन काउन्टियों की कौन्सिलें ही जिला कौन्सिलों के सहयोग से शिक्षा का प्रशासन भी करती हैं।

स्थानीय शासन की संस्थाओं के कार्य और सेवायें—प्रत्येक स्थानीय संस्थाओं को पार्लियामेंट के कानूनों के अन्तर्गत अनेक सामाजिक सेवायें और अन्य कार्य करने आवश्यक हैं। ये अन्य साधारण कानूनों द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अन्तर्गत अथवा विशेष शक्तियाँ पाने पर अतिरिक्त सेवाओं की भी व्यवस्था करती हैं। इन संस्थाओं के उत्तरदायित्व इनके पृथक्-पृथक् रूप पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए इंगलैंड, वेल्स व उत्तरी आयरलैंड में काउन्टि बरो कौन्सिलें सभी प्रकार के कार्य करती हैं, जबकि काउन्टि व काउन्टि जिला कौन्सिलें केवल कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्य ही करती हैं। पैरिश की स्थानीय संस्थायें बहुत ही सीमित कार्य करती हैं। विभिन्न कौन्सिलों द्वारा जिन सेवाओं की व्यवस्था की जाती है, उन्हें तीन समूहों में रखा जा सकता है

(१) **पर्यावरण सम्बन्धी सेवायें**—इनका उद्देश्य नागरिकों के पर्यावरण को सुधारना तथा अच्छा बनाना है। इन सेवाओं में इन्हें गिना जा सकता है—पानी के बहाव व नालियों की व्यवस्था, मार्गों की रोशनी, शहर की गन्दगी को हटवाना और उसका उचित प्रयोग करना, पानी की व्यवस्था, खाद्य पदार्थों की देख-रेख, वातावरण को गन्दा होने से रोकना, पार्कों व मनोरंजन स्थानों की व्यवस्था करना, सार्वजनिक कण्टकों को रोकना। इंगलैंड और वेल्स में काउन्टि बरो, कौन्सिलें नगर तथा क्षेत्रीय नियोजन कार्य भी करती हैं।

(२) **रक्षा सेवायें**—इनमें नागरिकों की अग्नि से रक्षा, पुलिस व्यवस्था तथा नागरिक प्रतिरक्षा सम्मिलित है। इंगलैंड तथा वेल्स में अग्नि से रक्षा सेवा की व्यवस्था काउन्टि, बरो और काउन्टि कौन्सिलें स्वतन्त्र अथवा संयुक्त रूप से करती हैं। पुलिस व्यवस्था स्थायी संयुक्त समितियों द्वारा की जाती है। स्कॉटलैंड में पुलिस व्यवस्था नगर बर्ग व काउन्टि कौन्सिलों के अधीन है।

(३) **व्यक्तिगत सेवायें**—इनका उद्देश्य व्यक्तियों की श्रेष्ठ शारीरिक, मानसिक व नैतिक सुप्त शक्तियों को विकसित करना है। इन सेवाओं में जच्चाखाने शिशु-कल्याण, शिक्षा, गृह-निर्माण और मनोविनोद की व्यवस्था आदि आते हैं। इसी समूह में कुछ स्वास्थ्य सेवायें, वूढ़ों और अगहीन व्यक्तियों की सेवा, पुस्तकालयों, अजायबघर और कला-गैलरियों की व्यवस्था भी सम्मिलित है। इनके अन्तर्गत इसी

शीर्षक के अन्तर्गत कुछ व्यापारिक सेवायें तथा यात्रियों के लिए परिवहन, पानी की व्यवस्था, जहाजों के लिए डॉक आदि की व्यवस्था भी आती है।

स्थानीय कौन्सिलों में सभी सदस्य निर्वाचित होते हैं, कुछ कौन्सिलों में सदस्यों के अतिरिक्त एल्डरमेनों की व्यवस्था भी है। अधिकार वरो की कौन्सिलों के प्रमुख मेयर कहलाते हैं, लन्दन व अन्य बड़े नगरों की वरो में लार्ड मेयर होते हैं साधारणतया कौन्सिलों के सदस्यों का कार्य-क्रम ३ वर्ष है। कुछ क्षेत्रों में पूर्ण कौन्सिल का प्रति वर्ष चुनाव होता है और शेष में ⅓ सदस्य चुने जाते हैं। इन चुनावों में २१ वर्ष से अधिक आयु वाला प्रत्येक ब्रिटिश नागरिक जिसका नाम क्षेत्र के चुनाव रजिस्टर में लिखा हो मत दे सकता है। उम्मीदवार स्वतन्त्र रूप से अथवा किसी दल की ओर से खड़े होते हैं।

स्थानीय शासन संस्थाओं का आन्तरिक संगठन—ये संस्थायें अपने आन्तरिक संगठन में बहुत सीमा तक स्वतन्त्र हैं। संगठन सम्बन्धी व्यवस्था साधारणतया कुछ इस प्रकार है। नीति सम्बन्धी प्रश्नों पर निर्णय कौन्सिलें करती हैं और ये विभिन्न कार्यों के संचालन के लिए समितियाँ नियुक्त करती हैं। बड़ी संस्थाओं की महत्वपूर्ण समितियाँ उप-समितियों का भी प्रयोग करती हैं। कौन्सिलों तथा समितियों के निर्णयों को कार्यकारी अधिकारियों द्वारा कार्यान्वित किया जाता है। बहुत सी संस्थायें कई सेवाओं को संयुक्त रूप से संचालित करती हैं और इस हेतु संयुक्त समितियाँ अथवा वोर्ड नियुक्त करती हैं।

अधिकारी व कर्मचारीगण—प्रत्येक कौन्सिल आवश्यक अधिकारी तथा कर्मचारी नियुक्त करती है। कुछ अधिकारियों की नियुक्ति करना अनिवार्य हैं जैसे क्लर्क, कोषाध्यक्ष, चिकित्सा व स्वास्थ्य अधिकारी, सर्वेयर और जन-स्वास्थ्य निरीक्षक। अन्य अधिकारी व कर्मचारी नियुक्त करना कौन्सिलों की इच्छा पर निर्भर करता है। अधिकारी व कर्मचारी तीन प्रकार के समूहों में रखे जा सकते हैं—(१) विभिन्न विभागों के अध्यक्ष और कर्मचारी; (२) दफ्तरों में काम करने वाले अधीन अधिकारी व कर्मचारी; और (३) शारीरिक कार्य करने वाले कर्मचारी। अधिकतर अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति व सेवा की शर्तें आवश्यक योग्यताओं के अनुसार कौन्सिलों व उनके अधिकारियों द्वारा नियन्त्रित हैं। अधिकारी व कर्मचारी योग्य और कुशल होने के साथ अपना कार्य ईमानदारी से करते हैं।

स्थानीय शासन संस्थाओं का वित्त—ये संस्थायें प्रति वर्ष १५० करोड़ पौंड से भी अधिक व्यय करती हैं। इनकी आय के स्रोत मुख्यतः ये हैं—स्थानीय कर, सरकारी अनुदान, म्युनिसिपल व्यापार, किराये, फीस इत्यादि। सरकारी अनुदान से लगभग ३०% आय होती है; ये अनुदान मुख्यतः ५ प्रकार के हैं—(१) कुछ राष्ट्रीय करों से होने वाली आय जो इन्हें मिल जाती है यथा कुत्तों, शिकार व बन्दूक आदि के लायसेंसों से होने वाली आय, (२) प्रतिशत अनुदान अर्थात् वे अनुदान जो केन्द्रीय सरकार कुछ सेवाओं के लिए कुल व्यय के नियत प्रतिशत के

अनुसार इन्हें देती है, जैसे शिक्षा, जन-स्वास्थ्य, मार्ग, पुलिस और अग्निरक्षा आदि सेवाओं की व्यवस्था के लिए; (३) इकाई अनुदान जो की जाने वाली सेवा पर निर्भर करती है, जैसे गृह-निर्माण पर व्यय, (४) समकरण अनुदान, जो कम आय वाली संस्थाओं को अंशदान के रूप में दिये जाते हैं; और (५) विशेष अनुदान, जो समय-समय पर विशिष्ट प्रयोजनों के लिए दिये जाते हैं।

स्थानीय कर (Local rates)—ये कर स्थान या भवनों के स्वामियों पर स्थानीय सेवाओं की व्यवस्था के लिए कौन्सिलों द्वारा लगाये जाते हैं। विभिन्न प्रकार के नये कार्य आरम्भ करने के लिए आवश्यक पूंजी व्यय के हेतु ये संस्थायें ऋण ले सकती हैं। ऐसे ऋण या तो खुले बाजार अथवा **सार्वजनिक कार्य ऋण बोर्ड** से लिए जा सकते हैं। स्थानीय संस्थायें अपनी कुल आय का लगभग १६% सरकार से ऋण रूप में पाती हैं। प्रत्येक कौन्सिल में वित्त पर नियन्त्रण हेतु एक वित्त समिति होती है। व्यय पर बाह्य नियन्त्रण जिला आडिटरों की जाँच द्वारा किया जाता है। आडीटर गृह तथा स्थानीय शासन मन्त्रालय द्वारा नियुक्त किये जाते हैं और ये शिक्षा, राष्ट्रीय सहायता, जनस्वास्थ्य, पुलिस, अग्निरक्षा व प्रतिरक्षा आदि सभी महत्वपूर्ण सेवाओं के व्यय की जाँच करते हैं।

लन्दन का स्थानीय-शासन—लन्दन शहर का शासन एक कामन कौन्सिल द्वारा किया जाता है। इन कौन्सिल में २६ एल्डरमेन और २६० कामन कौन्सिलर होते हैं। इन सदस्यों का चुनाव सभी व्यक्तियों द्वारा नहीं होता वरन् सम्पत्ति पर आधारित अर्हता रखने वाले व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। लार्ड मेयर का चुनाव कौन्सिल तथा शहर के बड़े गिल्डों द्वारा किया जाता है। लार्ड मेयर स्वयं कोई बड़ा समृद्धिशाली व्यवसायी होता है, जिसका कार्य लन्दन के प्रतिनिधि रूप में महत्वपूर्ण विदेशी दर्शकों का स्वागत करना है। लार्ड मेयर कामन कौन्सिल का सभापति भी है; और कौन्सिल के कार्य अन्य नगर कौन्सिलों के समान ही हैं। लन्दन शहर की अपनी पुलिस व्यवस्था है।

लन्दन की काउन्टि का शासन लन्दन काउन्टि कौन्सिल द्वारा किया जाता है। लन्दन काउन्टि २८ मेट्रोपोलिटन बरो में विभाजित है। प्रत्येक बरो की एक कौन्सिल है, जो आगे लिखी कुछ सेवाओं के लिए उत्तरदायी है—मार्गों पर रोशनी, गन्दगी को हटाना, पुस्तकालयों और तैरने वाले स्नानागार आदि। अधिक महत्वपूर्ण विषयों, जैसे शिशु-कल्याण, नगर-नियोजन, गृह-निर्माण, शिक्षा आदि कार्यों के लिए काउन्टि कौन्सिल उत्तरदायी है। बरो कौन्सिल और लन्दन काउन्टि कौन्सिल के बीच कुछ ऐसा ही सम्बन्ध है जैसा कि किसी ग्रामीण कौन्सिल और काउन्टि कौन्सिल के बीच होता है। मेट्रोपोलिटन क्षेत्र के लिए अलग पुलिस व्यवस्था है, जिसका अध्यक्ष पुलिस-कमिश्नर होता है। लन्दन की पानी व्यवस्था मेट्रोपोलिटन पानी बोर्ड के हाथ में है, जिसका लन्दन काउन्टि कौन्सिल से कोई सम्बन्ध नहीं है।

५. राजनीतिक दल

दलीय पद्धति की विषशेतायें

द्वि-दलीय पद्धति—ब्रिटिश दलगत राजनीति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता दो प्रमुख दलों का अस्तित्व है। कुछ समय को छोड़कर कभी एक और कभी दूसरा दल सत्तारूढ़ रहा है और तीसरे दल का महत्व ब्रिटिश राजनीति में बहुत कम रहा है। ब्रिटिश संसदीय पद्धति के अन्य पहलुओं की अपेक्षा द्वि-दलीय पद्धति ने अन्य देशों के प्रेक्षकों और लेखकों को कहीं अधिक आकर्षित किया है। इसके तीन मुख्य गुण ये हैं—(१) यह ससदीय पद्धति को प्रजातन्त्रात्मक बनाता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत जनता को अपनी सरकार चुनने का अवसर मिलता है। इस पद्धति के अन्तर्गत दोनों दल निर्वाचकों के सामने महत्वपूर्ण प्रश्नों को स्पष्ट रूप से उनके निर्णय के लिए रख पाते हैं और इस प्रकार निर्वाचक स्वयं अपनी सरकार का चुनाव करते हैं। जिस सरकार के साथ स्पष्ट बहुमत रहता है वह अपनी नीति और कार्यक्रम के लिए पूरी तरह से उत्तरदायी रहती है। (२) इसके कारण मन्त्रिमण्डल सुदृढ़ और स्थायी रहते हैं। अतएव सदस्यों और छोटे दलों को इस पद्धति में चालें चलने का अवसर नहीं मिलता और शान्तिकाल में साधारणतया मिले-जुले मन्त्रिमण्डलों की आवश्यकता नहीं पड़ती। (३) इस पद्धति के अन्तगत एक सरकारी विरोधी पक्ष और 'छाया केबिनेट' का अस्तित्व रहता है; जो आवश्यकता पड़ने पर वैकल्पिक सरकार का निर्माण करा सकता है। फलत: विरोधी पक्ष भी अपने उत्तरदायित्व को समझता व निभाता है और विनाशात्मक व अनुत्तरदायी आलोचना से दूर रहता है। परन्तु इस पद्धति की दो आधारों पर आलोचना की गई है। प्रथम, यह आधुनिक राजनीति की पेचीदगी के लिए उपयुक्त नहीं है। इसके अन्तर्गत मतदाता को अपने विश्वास के अनुसार मतदान का अवसर नहीं मिलता। दूसरे, इसके परिणामस्वरूप जब तक सत्तारूढ़ दल का बहुमत बना रहता है उसकी अधिनायकशाही कायम रहती है।

ब्रिटिश-दलीय पद्धति की अन्य विशेषतायें—प्रथम, यह सच है कि मजदूर दल श्रमिक और कन्जरवेटिव दल धनिक वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं, किन्तु दोनों ही दलों में प्राय: सभी वर्गों के समर्थक मिलते हैं और वे अपना कार्यक्रम वर्गीय दृष्टिकोण से नहीं बनाते। वास्तव में, ब्रिटिश जाति में एकरसता अधिक है और विविधतायें कम। इसी कारण सन् १९२४ तक सरकार चाहे कन्जरवेटिव दल की रही अथवा लिबरल दल की, उनके बीच गहरे सैद्धान्तिक मतभेद नहीं रहे और समाज की आधारभूत रचना के विषय में कभी कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं उठा। उसके बाद यद्यपि चुनावों के अवसर पर दलों के नेता एक दूसरे दल की कटु आलोचना करते हैं, फिर भी उनके कार्यक्रम में आधारभूत अन्तर नहीं होता। वास्तव में, मजदूर दल व कन्जरवेटिव दल दोनों ही मध्यम वर्ग का समर्थन पाने

का प्रयत्न करते हैं। दोनों दलों की नीतियों और कार्यक्रम में बहुत बड़ा अन्तर नहीं रहता। विदेशी क्षेत्र में दोनों ही दल संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन करते हैं, राष्ट्र-मण्डल के प्रति अपनी निष्ठा दर्शाते हैं, संयुक्त राज्य अमरीका व पश्चिमी यूरोप से सहयोग का समर्थन करते हैं और साम्राज्य के अधीन उपनिवेशों के विकास को स्वीकार करते हैं। आन्तरिक नीति के क्षेत्र में भी उनमें कई प्रश्नों पर सहमति है।

दूसरी, परन्तु उद्देश्यों के बारे में सहमति के पीछे उनकी प्राप्ति के साधनों के बारे में दोनों प्रमुख दलों में मतभेद रहा है। दोनों के दृष्टिकोण भिन्न राजनीतिक सिद्धान्तों में विश्वास का परिणाम हैं। उनके बीच मत वैभिन्य रहता है और यह इतना व्यापक है कि मतदाता को वास्तविक छाँट का अवसर मिलता है। उनके मतभेद सैद्धान्तिक हैं केवल दलीय नहीं। मतदाता को सदस्य छाँटने के साथ-साथ कार्यक्रम की छाँट करनी होती है। मजदूर दल समाजवाद में विश्वास करता है और कन्जरवेटिव दल स्वतन्त्र तथा निजी उद्योग का समर्थक है। मजदूर दल का विश्वास राष्ट्रीयकरण अथवा एकाधिकारी उद्योगों के समाजीकरण अर्थात् उन पर राज्य के स्वामित्व की स्थापना में है। मजदूर दल ने उद्योगों व मूल्यों पर नियन्त्रण का समर्थन किया है। कन्जरवेटिव 'राजकीय केन्द्रीयकरण' अथवा समाजवादी नौकरशाही के विरोधी रहे हैं। परन्तु साधनों के सम्बन्ध में दोनों के बीच एक आधारभूत सहमति है, दोनों ही दल प्रजातन्त्रात्मक साधनों में विश्वास रखते हैं।

तीसरी, मुनरो के अनुसार ब्रिटेन में राजनीतिक संगठन हैं, परन्तु राजनीतिक मशीनें नहीं, जैसा कि संयुक्त राज्य अमरीका में है। ब्रिटेन के राजनीतिक संगठन टेम्मने-हॉल की मशीन जैसी नियम सूक्ष्मता की भाँति कार्य नहीं करते। यह सच है कि इंगलैंड के नगरों व काउन्टियों में अमरीका की तरह अत्यधिक प्रभावशाली नेताओं के गुट व सरदार नहीं होते, यद्यपि कुछ क्षेत्रों में दलीय नेताओं का काफी अधिक प्रभाव पाया जा सकता है। इसका फल यह है कि संयुक्त राज्य अमरीका की तुलना में ब्रिटेन में व्यवसायी राजनीतिज्ञों की संख्या बहुत कम है।

चौथी, कन्जरवेटिव दल दक्षिणपंथी है, क्योंकि यह सुधारों और नए परिवर्तनों का विरोधी है। मजदूर दल वामपंथी है, जो शासन व समाज की व्यवस्था में बड़े परिवर्तन लाना चाहता है। मजदूर दल की अपेक्षा साम्यवादी अधिक उग्र और आधारभूत परिवर्तनों के समर्थक हैं, अतएव साम्यवादी दल मजदूर दल की अपेक्षा अधिक वामपंथी है, इसके अतिरिक्त प्रत्येक दल में दक्षिणपंथी, वामपंथी तथा मध्यमार्गी सदस्य पाए जाते हैं। दक्षिणपंथियों की अपेक्षा वामपंथी अधिक उग्र परिवर्तनों का समर्थन करते हैं और मध्यमार्गी दोनों के बीच मार्ग को अपनाते हैं।

प्रमुख राजनीतिक दल

कन्जरवेटिव दल—यह दल सिद्धान्त रूप में तो यह विश्वास करता है कि राष्ट्र की राजनीतिक परम्पराओं के श्रेष्ठ तत्वों को कायम रखा जाए और परम्पराओं

को बदलती हुई दशाओं के अनुसार ढाला जाए। प्राचीन काल से लेकर अभी तक कन्जरवेटिव राजतन्त्र, चर्च और साम्राज्य के समर्थक हैं और उन्हें किसी भी प्रकार के खतरों से बचाना चाहते हैं, परन्तु राजतन्त्र और चर्च के सम्बन्ध में अब कोई प्रवाद नहीं है। दल के सामने मुख्य समस्या समाजवाद का मुकाबला करने की है। इस प्रश्न पर दल के दक्षिणपंथी तथा वामपंथी समूहों में मतभेद है। दक्षिणपंथी अभी तक स्थापित सामाजिक व्यवस्था को बुद्धि और न्याय का सार मानते हैं; परन्तु दल में ऐसे भी सदस्य हैं जिनका विश्वास है कि देश जीवित नहीं रह सकता यदि समय की मांग के अनुसार सामाजिक और आर्थिक सुधार न किए गए। सिद्धान्त में, दल अभी तक निजी अथवा स्वतन्त्र उद्यमों के पक्ष में है; व्यवहार में, यह विस्तृत सार्वजनिक स्वामित्व को आवश्यक बुराई के रूप में मानने को तैयार है और सिवाय फौलाद उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के अन्य उद्योगों के राष्ट्रीयकरण को स्वीकार करता है।

संक्षेप में, दल का दृष्टिकोण अभी तक पुराने ही मतों पर आधारित है, जैसा कि इसके चर्च, आयरिश गृह-शासन, लार्ड सभा, साम्राज्य, आर्थिक नीति आदि के प्रति अपनाए गए रुखों तथा सामाजिक व आर्थिक सुधारों के प्रति बहुत धीमे से और सोच-विचार कर चलने से विदित होता है। यह दल अभी तक कुलीन वर्ग, धनी वर्गों, बड़े व्यावसायियों तथा उन लोगों से जो कृषि व उदार पेशे में लगे हैं, समर्थन पाता है। इसके समथकों मे धनी और साधारण आय वाले ऐसे व्यक्ति हैं जो समाजवाद को अपनी सुरक्षा के लिए खतरा समझते हैं। स्त्रियों को मताधिकार मिलने से कन्जरवेटिव दल के समर्थकों की संख्या कुछ बढ़ी है। सन् १६५० के चुनाव में कन्जरवेटिव दल को मिले मतों में ५३ प्रतिशत स्त्रियों द्वारा डाले गए थे। आयु की दृष्टि से नए-नए युवक मतदाताओं का कम समर्थन प्राप्त है; इससे पता चलता है कि आयु और साधन बढ़ने के साथ लोग कन्जरवेटिव हो जाते हैं।

दल का संगठन—सन् १८३२ के सुधार कानून के बाद दल को केन्द्रीय संगठन की आवश्यकता अनुभव हुई और सन् १८६७ में कन्जरवेटिव तथा यूनियनिस्टों का राष्ट्रीय संघ (National Union of Conservative and Unionists Association) स्थापित हुआ। डिजरेली ने सन् १८७० में दल का केन्द्रीय कार्यालय खोला और दल का एक प्रबन्धक नियुक्त किया। उसके कुछ वर्षों बाद ही दल के राष्ट्रीय संघ (National Union) में आवश्यक परिवर्तन हुए और निर्वाचन-क्षेत्रों में भी शाखायें खोली गईं। अब दल के संगठन में प्रमुख अंग नेशनल यूनियन, दलीय संगठन, सभापति, संसदीय-दल और नेता, प्रान्तीय परिषदें, निर्वाचन-क्षेत्रों के संघ और अनेक परामर्शदात्री समितियाँ हैं।

नेशनल यूनियन अनेक निर्वाचन क्षेत्रीय संघों व १२ प्रान्तीय क्षेत्रों की परिषदों का संघ है। यह संगठन को सहायता देने और निर्वाचन-क्षेत्रीय संघों के विकास के

लिए उत्तरदायी है। यह दल के नेता, सभी दलीय संगठनों व केन्द्रीय कार्यालय के बीच सम्बन्ध स्थापित रखती है। दल का कार्य सुविधापूर्वक चलाने के लिए इंगलैंड और वेल्स में १२ **प्रान्तीय परिषदें** तथा स्कॉटलैंड व उत्तरी आयरलैंड में पृथक् परिषदें हैं। प्रत्येक **निर्वाचन क्षेत्रीय संघ** प्रायः पूर्णतया स्वाधीन होता है; यह अपने पदाधिकारी चुनता है, व्यय के लिए स्वयं धन एकत्रित करता है और यह क्षेत्रीय व केन्द्रीय परिषदों व **वार्षिक दलीय सम्मेलन** में प्रतिनिधि भेजता है।

नेशनल यूनियन का प्रबन्धक निकाय केन्द्रीय परिषद् है, जिसमें नेता व मुख्य पदाधिकारियों के अतिरिक्त पार्लियामेंट के सदस्य व उम्मीदवार और विभिन्न क्षेत्रीय परिषदों के कुछ प्रतिनिधि लिए जाते हैं। इसका निर्माण प्रतिवर्ष होता है और यह अपना एक प्रधान, नेशनल यूनियन का एक सभापति व तीन उपसभापति चुनता है। इसका छोटा निकाय **कार्यकारिणी समिति** है जिसके अधिकतर सदस्य निर्वाचित होते हैं। इसे परामर्शदात्री समितियां नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त है, इनमें से मुख्य का सम्बन्ध इनसे है—साधारण प्रयोजनों, महिलाओं, युवकों, ट्रेड यूनियनों, शिक्षकों, राजनीतिक शिक्षा, स्थानीय शासन आदि केन्द्रीय संगठन से सम्बद्ध एक नीनि समिति, वित्त समिति और संसदीय उम्मीदवारों की परामर्शदात्री समिति भी है।

प्रति वर्ष दल का **सम्मेलन** होता है जिसमें प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्रीय संघ व प्रतिनिधि भेजता है। दलीय संगठन में नेता का सर्वाधिक महत्व है। वह दल की नीति के लिए उत्तरदायी होता है और वही दल का सभापति नियुक्त करता है। उसका चुनाव करने वाले निकाय में संसदीय दल, उम्मीदवार और नेशनल यूनियन की कार्यकारिणी समिति सम्मिलित रहते हैं। नीति निर्धारण कार्य में नेता को नीति समिति से सहायता मिलती है। संसदीय दल में पार्लियामेंट के सभी कन्जरवेटिव सदस्य होते हैं, जो दल के अनुशासन को मानते हैं। इसका प्रबन्धक मुख्य सचेतक होता है, जिसकी नियुक्ति नेता द्वारा की जाती है। संसदीय दल कई समितियाँ नियुक्त करता है, यथा विदेशी मामले, राष्ट्रमण्डलीय मामले, प्रतिरक्षा, वित्त आदि विषयों से सम्बन्धित जिन्हें दल के अनुसंधान विभाग की सेवा प्राप्त होती है।

मजदूर दल—इसका आरम्भ पार्लियामेंट से बाहर दल के रूप में हुआ और यह ट्रेड यूनियन आन्दोलन का परिणाम था। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप ट्रेड यूनियनों का विकास सन् १८२५ से होने लगा था। मजदूरों के आन्दोलन का उदय चार्टिज्म और समाजवाद से हुआ। १९वीं शताब्दी के अन्त से पूर्व 'समाजवादी प्रजातन्त्रात्मक संघ' और फेवियन सोसायटी की स्थापना हुई। सन् १८९९ में ट्रेड यूनियनों, सं० प्र० संघ व अन्य समाजवादी संगठनों के सम्मेलन ने एक मजदूर प्रतिनिधि समिति नियुक्त की, जिसने सन् १९०६ में मजदूर दल का नाम धारण किया। दल ने सन् १९११ में 'डेली हेरल्ड' नाम का दैनिक पत्र निकाला। दल को सन् १९२३ में चुनाव में ही १९१ स्थान प्राप्त हुए थे और सन् १९४५ में पूर्ण

बहुमत प्राप्त हुआ था। यह प्रजातन्त्रात्मक (संसदात्मक) तरीकों द्वारा ही समाजवाद की स्थापना में विश्वास करता है।[1]

समाजवादी ऐसे समाज की स्थापना का समर्थन करते हैं, जिसमें धन उत्पादन के साधनों का स्वामित्व सम्पूर्ण जनता में निहित हो, और जिन्हें सहमति के आधार पर तैयार की गई योजना के अनुसार नियन्त्रित किया जाए; अर्थात् धन का वितरण व्यापक सामाजिक और आर्थिक न्याय पर आधारित हो। अतएव मजदूर दल के कार्यक्रम में ये पग सम्मिलित हैं—देश के बड़े उद्योगों को समुदाय के स्वामित्व तथा नियन्त्रण में लाना अर्थात् उनका राष्ट्रीयकरण करना और कुछ सीमा तक भूमि का समाजीकरण। सन् १९४६ में 'बैंक ऑफ इंगलैंड' का राष्ट्रीयकरण करके मजदूर दली सरकार ने वित्त और पूँजी लगाने पर भी कुछ नियन्त्रण स्थापित किया। कृषि क्षेत्र में मजदूर दल आयात की जाने वाली वस्तुओं और उनके वितरण पर इस प्रकार से नियन्त्रण करना चाहता है कि उत्पादकों को अपनी वस्तुओं के लिए एक निश्चित मूल्य प्राप्त हो सके। ऐसे तरीकों से मजदूर दल देश के आर्थिक जीवन को काफी सीमा तक नियन्त्रित तथा विनियमित करना चाहता है। सामाजिक क्षेत्र में दल की नीति सर्वसाधारण के लिए सामाजिक सुरक्षा तथा विस्तृत समाज सेवाओं की व्यवस्था करने में विश्वास रखना है। दल साम्राज्यवाद का विरोधी है और राष्ट्रमण्डल व संयुक्त राष्ट्र संघ का बड़ा समर्थक है। सन् १९४५ के चुनाव घोषणा-पत्र में मजदूर दल ने 'समाजवादी कॉमनवेल्थ' की स्थापना का विश्वास दिलाया था। दल को मजदूर वर्ग के व्यापक समर्थन के अतिरिक्त मध्यम वर्ग में शिक्षकों तथा अन्य बुद्धिजीवियों का काफी समर्थन प्राप्त है।

दल का संगठन—सन् १९१८ तक दल की सदस्यता केवल किसी सम्बद्ध संगठन की सदस्यता द्वारा ही प्राप्त हो सकती थी। आजकल दल का संगठन राष्ट्रव्यापी हो गया है और इसके सदस्यों की संख्या ७० लाख के लगभग है; परन्तु यह अभी तक विभिन्न प्रकार के संगठनों का संघ ही है। इससे सम्बद्ध संगठनों में ये सम्मिलित हैं—(१) ६०० से अधिक दल की निर्वाचन-क्षेत्रीय इकाइयाँ जिनके लगभग १० लाख व्यक्ति सदस्य हैं। ये दल के वार्षिक सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भेजते हैं। इन निर्वाचन-क्षेत्रों के ११ क्षेत्रीय समूह बनाए गए हैं। (२) ७० से ऊपर ट्रेड-यूनियनें, जिनके आकार में बड़ी भिन्नता है। एक ओर परिवहन और साधारण श्रमिकों का संघ है जिसमें लगभग १० लाख सदस्य हैं और दूसरी ओर १०० से

1. 'The Labour Party is the Political expression of a working class movement...This movement manifested itself in Trade Unions and in Co-operative Societies, and in the great Chartist agitation of the mid-19th century...Labour proposes to use the democratic system of government so as to transform Britain from a capitalist country.'

—*M. Stewart,* The British Approach to Politics, p. 14[illegible]

कम सदस्यों वाली यूनियनें भी हैं। बड़ी ट्रेड-यूनियनें, अपने उम्मीदवार खड़ा करती हैं और उनके उम्मीदवारों की सफलता निश्चित सी रहती है। (३) सहकारी सोसाइटियाँ, जो निर्वाचन-क्षेत्रों के संगठनों से सहयोग करती हैं और अपने कुछ उम्मीदवार भी खड़े करती हैं। (४) समाजवादी सोसाइटियाँ, जैसे फेबियन सोसाइटी, समाजवादी मेडीकल एसोसियेशन, नेशनल एसोसियेशन ऑफ लेबर, टीचर्स अर्थात् समाजवादी चिकित्सकों व शिक्षकों के संघ।

दल की नीति निर्धारण करने वाला मुख्य अंग **वार्षिक सम्मेलन** है, जिसमें प्रत्येक सम्बद्ध संगठन को ५,००० सदस्यों के पीछे १ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है, परन्तु पार्लियामेंट के सदस्य और उम्मीदवार इसके पदेन सदस्य होते हैं। सन् १९५३ के सम्मेलन में ट्रेड यूनियनों के हाथ में लगभग ६४ लाख मतों में से ५० लाख मत थे। दल की नियन्त्रक व प्रशासक सत्ता **राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति** में निहित है। इसका चुनाव वार्षिक सम्मेलन द्वारा होता है। इसके कुल २५ सदस्यों में से १२ ट्रेड यूनियनों, ७ निर्वाचन-क्षेत्रीय संगठनों, १ सहकारी समितियों और ५ महिलायें सम्पूर्ण सम्मेलन द्वारा चुने जाते हैं। संसदीय दल के नेता, उपनेता और दल का कोषाध्यक्ष इस समिति के पदेन सदस्य रहते हैं। यही निकाय सम्मेलनों के बीच में नीति सम्बन्धी प्रश्नों पर निश्चय करने, नियमों को लागू करने और उनके संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने के लिए उत्तरदायी है। इसे अनुशासन बनाये रखने के सम्बन्ध में बड़े अधिकार प्राप्त हैं। राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति पार्लियामेंट के लिए निर्वाचन क्षेत्रीय संगठनों द्वारा छाँटे जाने वाले उम्मीदवारों की छाँट में भी महत्वपूर्ण भाग लेती है।

दल के **संसदीय अंग** में सभी सदस्य सम्मिलित रहते हैं। इसके अधिकारियों में सभापति, उप-सभापति, मुख्य-सचेतक और सदस्यों द्वारा निर्वाचित एक समिति है। **मजदूरों की राष्ट्रीय परिषद्** एक प्रकार का समन्वय स्थापित करने वाला निकाय है, यह मजदूरों को प्रभावित करने वाले सभी मामलों के बारे में सामान्य नीति व संयुक्त कार्यवाही का निर्धारण करता है। इसके सदस्यों में ७–७ प्रतिनिधि ट्रेड यूनियन कांग्रेस, सहकारी समितियों के संघ के होते हैं। इनके अतिरिक्त संसदीय दल और राष्ट्रीय कार्यकारिणी परिषद् दोनों के मिलाकर ७ प्रतिनिधि तथा इन निकायों के सभापति और डेली हेरल्ड का सम्पादक व लेवर पीयरों के एक-एक प्रतिनिधि होते हैं।

लिबरल दल—ऐतिहासिक दृष्टि से उदारवादी स्वेच्छाचारी शासन के विरोध की उस परम्परा के समर्थक हैं, जिसने १७वीं और १८वीं शताब्दी में दल के सदस्यों को प्रेरित किया था। तदनुसार उन्होंने जनता की सत्ता पर बल दिया और १९वीं शताब्दी में कुलीन ह्विग प्रजातन्त्री लिबरल बने, जिन्होंने मताधिकार के विस्तार के लिए कार्य किया। सरकारी प्रतिबन्धों के विरोधी होने के कारण उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्र व्यापार और उद्योग (Laissez faire) का समर्थन किया, परन्तु

अब लिबरल दल में लोकप्रिय तत्वों ने इस नीति के विरुद्ध सामाजिक सुधारों का समर्थन किया है। जबकि आजकल उदारवादी समाजवाद को अस्वीकार करते हैं, वे पूँजीवादी व्यवस्था में बहुत से सुधार करना चाहते हैं। समाज की अच्छी व्यवस्था के लिए वे समाजीकरण को आवश्यक नहीं समझते, किन्तु यदि उससे औद्योगिक कुशलता में वृद्धि हो तो वे उसे स्वीकार कर सकते हैं। उनका यह भी विचार है कि सामाजिक सेवाओं को उस सीमा से आगे बढ़ाया जा सकता है जिस सीमा तक कन्जरवेटिव जाना चाहते हैं।

उदारवादियों की दृष्टि में एक ओर कन्जरवेटिवों पर धनिकों का अधिक प्रभाव है, जिस कारण से वे सर्वसाधारण की सहायता करने में तत्पर नहीं हैं, दूसरी ओर वे यह मानते हैं कि मजदूर दल ट्रेड यूनियनों व समाजवादी सिद्धान्तों से अत्यधिक प्रभावित हैं, फलतः वे व्यावहारिक सुधारों की ओर उचित ध्यान नहीं दे पाते। उनका यह दावा है कि वे इन अतियों से बचे हैं, अतएव उनका दल किसी वर्ग विशेष के स्थान पर सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। इस दल के समर्थकों में अधिकांशतः साधारण आय वाले व्यक्ति और कुछ धनी व निर्धन व्यक्ति भी हैं। लिबरल दल का विश्वास है कि यदि आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति अपना ली जाये तो पार्लियामेंट में उनके दल की सदस्य संख्या काफी बढ़ जाए और उनके समर्थकों का उचित अनुपात में प्रतिनिधित्व हो जाए।

अन्य दल—इस समय तो कामन सभा में ऊपर वर्णित ३ दलों का ही प्रतिनिधित्व है। सन् १९५४ के चुनाव में इन तीनों दलों ने कुल १,४०९ उम्मीदवारों में से १,३५१ उम्मीदवारों को खड़ा किया था। अतीत में विभिन्न अवसरों पर कुछ समय के लिए अन्य राजनीतिक दलों का उदय हुआ। स्कॉटलेंड, वेल्स व आयरलैंड के राष्ट्रवादी भी कामन सभा के सदस्य रहे हैं। दूसरे विश्व-युद्ध के दौरान कुछ समय के लिए 'कामनवैल्थ दल' का अभ्युदय हुआ था। स्वतन्त्र मजदूर दल अब भी राजनीतिक प्रचार करता है और चुनाव में भाग लेता है। इस समय पार्लियामेंट में साम्यवादी दल का कोई प्रतिनिधि नहीं है।

साम्यवादी दल—इस दल का संगठन महत्वपूर्ण नहीं है। सन् १९२०–४८ के बीच में दल के सदस्यों की संख्या १० से लेकर ५० हजार तक रही। दल का मुख्य-पत्र 'डेली वर्कर' है और दल अन्य प्रकाशन भी निकालता है। ये सभी वही बातें कहते और प्रकाशित करते हैं जो मास्को के दलीय अधिकारी चाहते हैं। साम्यवादी दल का प्रभाव फिर भी सदस्यों की थोड़ी संख्या की दृष्टि से अधिक है। कभी-कभी औद्योगिक नगरों की स्थानीय सभाओं में दल का कोई १–२ प्रतिनिधि चुना जाता है। सन् १९४५ के चुनावों में दो प्रतिनिधि कामन सभा के लिए भी चुने गये थे। साम्यवादी दल के सदस्यों ने मजदूर दल में घुसकर अन्दर से उस पर प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न किया है, किन्तु मजदूर दल ने साम्यवादियों के ऐसे प्रयत्न सफल नहीं होने दिए हैं।

फासिस्ट दल—फासिस्टों की दशा तो और भी बुरी है। इटली में मुसोलिनी के उत्थान के बाद ब्रिटेन में भी कुछ धनी घरानों के नवयुवक फासिस्ट बने थे और वे अव्यवस्था के समय पुलिस की सहायता करने की आशा करते थे। **सर ओस्वाल्ड मोरले** ने दूसरे विश्व-युद्ध से पूर्व ब्रिटिश सैन्यवादी फासिस्टों का संघ बनाया था; ये लोग काली कमीज वाले थे और इन्होंने एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था। बाद में मोस्ले का झुकाव हिटलर की नाजी पार्टी के संगठन की ओर हो गया। दूसरे विश्व-युद्ध काल में देशभक्त उनसे अलग हो गये और मोस्ले को बन्दी बना लिया गया। छूटने पर उसने फिर से संगठन बनाया और एक पत्र भी निकाला। फासिस्ट यहूदियों को नाराजगी का अवसर देते हैं और साम्यवादियों से लड़ते हैं। उन्हें अपने कार्य में सफलता नहीं मिली और उनका स्थानीय संस्थाओं तथा पार्लियामेंट में कोई प्रतिनिधित्व नहीं रहा।

प्रश्न

१. ब्रिटिश न्याय पद्धति की मुख्य विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
२. ब्रिटेन में न्यायालयों के संगठन का वर्णन कीजिए।
३. मन्त्रियों और नागरिक सेवकों के बीच सम्बन्ध के बारे में आप क्या जानते हैं?
४. ब्रिटिश स्थानीय शासन की संस्थाओं के संगठन और कार्यों का वर्णन कीजिए।
५. ब्रिटिश दलीय पद्धति की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
६. ब्रिटेन की द्वि-दलीय पद्धति के गुण और दोष बताइये।
७. ब्रिटेन के दोनों प्रमुख दलों के बीच संगठन व कार्यक्रम का अन्तर बताइये।
८. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए:
(१) साम्य कानून (Law of Equity)।
(२) न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता।
(३) स्थानीय शासन का महत्व।
(४) लिबरल दल।

संयुक्त राज्य अमरीका

का

शासन

(GOVERNMENT OF U. S. A.)

१. परिचयात्मक

१. देश और निवासी

देश—संयुक्त राज्य अमरीका पश्चिमी गोलार्द्ध एवं उत्तरी अमरीका का सबसे प्रमुख देश है। इसके उत्तर में कनाडा और दक्षिण में मैक्सिको है। सं० रा० अमरीका का क्षेत्रफल लगभग ३० लाख वर्गमील है। यह देश पूर्व और पश्चिम में क्रमशः अटलांटिक और प्रशान्त महासागरों से घिरा है। पूर्व से पश्चिम तक इसका विस्तार लगभग ३,००० मील है और उत्तर से दक्षिण को इसका फैलाव लगभग १६,००० मील है। जलवायु की दृष्टि से इसका उत्तरी भाग अधिक ठंडा और दक्षिणी भाग साधारण रूप में गर्म है। इसके पश्चिम में विशाल रॉकी पर्वत और पूर्व में अपलेशियन पर्वतमाला है। इसकी प्रमुख नदियाँ—मिसौरी और मिसीसिपी हैं, जिनकी गिनती संसार की सबसे बड़ी नदियों में है। इस देश की भौगोलिक दशायें व स्थिति उत्तम है। इसकी जलवायु शारीरिक और मानसिक काम करने के लिए बहुत ही उपयुक्त है। यह संसार का सबसे अधिक धनाढ्य देश है; वास्तव में यहाँ खाद्य पदार्थों और औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन इतना अधिक है कि आन्तरिक खपत के बाद यह सभी प्रकार का सामान विदेशों को निर्यात कर सकता है।

सं० रा० अमरीका को प्रकृति ने प्रायः सभी प्रकार के प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा में दिये हैं। यहाँ के निवासियों के पास खेती और अन्य कार्यों के लिए आवश्यकता से अधिक भूमि है जो खूब उपजाऊ है। सभी प्रकार के खनिज पदार्थों में यह देश विशेष रूप से धनी है। यहाँ पर सोना, लोहा, तेल और कोयला बहुत बड़ी मात्रा में निकलते हैं। औद्योगिक कारखानों को चलाने के लिए लोहा, तेल व बिजली प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। देश की नदियाँ आन्तरिक जहाजरानी के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं। अपने प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता और अच्छी जलवायु के कारण यहाँ के निवासियों ने कृषि, उद्योग, आधुनिक विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में आश्चर्यजनक उन्नति की है। सं० रा० अमरीका अत्यधिक समृद्धिशाली और शक्तिशाली देश है। यहाँ के निवासियों की औसत वार्षिक आय संसार के सभी देशों के निवासियों से कहीं अधिक है और उनका जीवन-स्तर बहुत ऊँचा है। वास्तव में प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से अन्य कोई देश इतना धनी नहीं है जितना कि सं० रा० अमरीका। नई दुनिया की खोज से पूर्व यह सारा देश जंगलों से ढका था, किन्तु गत ४ शताब्दियों में ही यह देश अपने प्राकृतिक साधनों के कारण संसार के देशों में सबसे अधिक समृद्धिशाली, धनवान और शक्तिशाली बन गया है।

इस देश की भौगोलिक स्थिति विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इस देश का पूर्वी तट यूरोप तथा पश्चिमी तट एशिया व आस्ट्रेलिया के समीप पड़ता है और केन्द्रीय व दक्षिणी अमरीका भी इसके निकट हैं। इस कारण से देश ने विदेशी व्यापार के क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। इसकी स्थिति का एक अन्य दृष्टि से भी बड़ा महत्व है। लगभग ३ शताब्दियों तक यह देश विश्व राजनीति के झगड़ों से अलग रह सका और दो ओर समुद्र से घिरा होने के कारण यह अत्यधिक सुरक्षित भी रहा है। इसी कारण यहाँ के निवासी शान्तिपूर्वक रहे और विभिन्न क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति करने में सफल हुए। इसी कारण वे अपने देश में स्वतन्त्र संस्थाओं का विकास भी कर सके। इनकी स्वतन्त्रता की भावना को सुदृढ़ बनाने में पश्चिम के खाली प्रदेश का सबसे बड़ा भाग रहा है।

निवासी—आधुनिक काल में इसकी खोज के पूर्व यहाँ थोड़ी संख्या में आदि निवासी रहते थे, जो यूरोपीय देशों की तुलना में असभ्य और पिछड़े हुए थे। अमरीका की खोज के बाद यहाँ पर यूरोप के विभिन्न देशों विशेषकर ब्रिटेन के निवासी आकर बसे और उन्होंने पूर्वी तट के निकट नई आबादियाँ (Colonies) बसाई। क्रमिक रूप से आकर बसने वालों की संख्या बढ़ती गई और वे पश्चिम की ओर को फैलते गये। जब सं० रा० अमरीका का निर्माण हुआ था, इसमें १३ स्वतन्त्र राज्य (जो पहले अंग्रेजी उपनिवेश थे) सम्मिलित हुए थे और उनके निवासियों की संख्या लगभग ४० लाख थी। सं० रा० अमरीका की वर्तमान जनसंख्या लगभग १६ करोड़ है, जो गत १८७ वर्षों में ४० गुना हो गई है। इसके निवासियों में लगभग ६०% गोरी जातियों के मनुष्य हैं, जिनके पूर्वज अंग्रेज, फ्रांसीसी तथा अन्य यूरोपीय देशों से आए थे। अब लगभग ३½ लाख आदि निवासी (American Indians), २½ लाख चीनी और जापानी वंशज तथा काफी संख्या में नीग्रो जाति के लोग यहाँ रहते हैं। वास्तव में सं० रा० अमरीका संसार के विभिन्न देशों से आकर बसे लोगों का देश है। यहाँ पर आकर बसे लोगों का मूल वंश, धर्म व संस्कृतियाँ विविध थे किन्तु अब वे सभी अमरीकी हैं और अपने को ऐसा मानने में गर्व अनुभव करते हैं। इस प्रकार अमरीकी राष्ट्र अनेक राष्ट्रों व उपराष्ट्रों के वंशजों से मिलकर बना है। अनेक विविधताओं के होते हुए भी सं० रा० अमरीका के निवासियों में देश के प्रति प्रेम व निष्ठा और सुदृढ़ राष्ट्रीय भावनायें पाई जाती हैं।

सं० रा० अमरीका के बहुत से निवासी अब भी कृषि करते हैं और पशु पालते हैं; किन्तु अमरीका के लोगों ने उद्योगों के क्षेत्र में बहुत ऊँचा स्थान पाया है। बहुत से अमरीकन अभी तक छोटे गाँवों में रहते हैं, किन्तु सं० रा० अमरीका बड़े नगरों का देश है और यहाँ के गाँवों में भी शहरों की सभी जीवन-सुविधायें उपलब्ध हैं। सं० रा० अमरीका के निवासी प्रधानत. शहरी हैं और उद्योगों में बढ़े-चढ़े हैं। सं० रा० अमरीका में शत-प्रतिशत शिक्षा है; साधारण निवासियों का

जीवन भी बहुत सुखी और सभी प्रकार की जीवन सुविधाओं से युक्त है। वहाँ पर धनी और निर्धन, पूँजीपति और श्रमिक सभी प्रकार के लोग रहते हैं, किन्तु उनका समाज ऊँचे और नीचे वर्गों में नहीं बँटा है।

राजनीतिक दृष्टि से सं० रा० अमरीका के निवासी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र के आदर्शों में विश्वास करते हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और स्वातन्त्र्य अधिकारों पर वहाँ के निवासियों ने आरम्भ से ही बहुत बल दिया है, जैसा कि सं० रा० अमरीका की **'स्वतन्त्रता की घोषणा'** तथा उसके संविधान के अध्ययन से स्पष्ट होगा। यहाँ के निवासी सीमित शासन के समर्थक रहे हैं। यदि यह कहा जाए कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अमरीकी जीवन शैली की आधारशिला है तो कोई अत्युक्ति न होगी। सं० रा० अमरीका के निवासी प्रजातन्त्र के समर्थक रहे हैं अर्थात् वे स्वेच्छाचारी, सर्वाधिकारवाद तथा अधिनायकतन्त्र के विरोधी हैं। सं० रा० अमरीका निवासियों के शासन सम्बन्धी विचार और सिद्धान्तों के निर्माण में अंग्रेजी राजनैतिक विचारों और संस्थाओं का महत्वपूर्ण भाग रहा है। वे आरम्भ से ही शासन के अत्याचार के विरोधी रहे हैं और उन्होंने गणतन्त्रीय शासन प्रणाली का समर्थन किया है। आरम्भ में सं० रा० अमरीका में प्रजातन्त्र का रूप सीमित था, क्योंकि मताधिकार का आधार सम्पत्ति था, किन्तु अब वहाँ पर पूर्ण प्रजातन्त्र की स्थापना हो गई है।

सं० रा० अमरीका के निवासियों का विश्वास व्यक्तिवाद और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में रहा है, किन्तु संविधान निर्माण के समय से ही वहाँ ऐसे व्यक्तियों की काफी बड़ी संख्या रही है, जिनका विश्वास सुदृढ़ संघीय सरकार तथा राज्य के विस्तृत कार्य-क्षेत्र में रहा है। फिलाडेलफिया सम्मेलन में एक ओर जेफरसन और उसके समर्थक थे, जिन्होंने व्यक्तिवाद पर अत्यधिक बल दिया, किन्तु दूसरी ओर हेमिल्टन और उसके साथी थे जिन्होंने सुदृढ़ राष्ट्र व संघ के निर्माण का समर्थन किया और संघटन (Confederation) के स्थान पर संघ (Federation) का निर्माण, एक अर्थ में, उनके पक्ष की जीत का द्योतक है। वर्तमान काल में सं० रा० अमरीका की सरकार जन-कल्याणकारी राज्य की स्थापना में लगी है। अतएव अमरीकावासियों के विचार में बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन हुए है और इसी कारण वे इतनी प्रगति कर सके हैं। वे अभी तक व्यक्तिगत उद्योग और निजी व्यावसायिक प्रतियोगिता के पक्ष में हैं, किन्तु वे सरकारी हस्तक्षेप अथवा विस्तृत सरकार को भी आवश्यक मानते हैं।

अन्त में, सं० रा० अमरीका के निवासी समाजवाद के समर्थक नहीं हैं और वे साम्यवाद के कट्टर विरोधी हैं। साम्यवाद को वे अपनी सभ्यता व जीवन-शैली के लिए सबसे बड़ा खतरा मानते हैं। इसलिए सं० रा० अमरीका साम्यवाद विरोधी आन्दोलन व कार्यवाहियों का प्रमुख गढ़ है। यही एक ऐसा देश है जहाँ समाजवादी विचारधारा का प्रवेश बहुत कम हुआ है और जहाँ साम्यवादी दल का

अस्तित्व भी नहीं है। वे सभी विचारों को सहन कर सकते हैं, किन्तु साम्यवाद को सबसे बड़ा शत्रु मानते हैं। कई वर्षों तक सं० रा० अमरीका की सरकार ने साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनाये जाने का विरोध किया। परन्तु कुछ समय से उसकी विदेश नीति में बड़ा परिवर्तन आया है। अब अमरीका के चीन से अच्छे सम्बन्ध स्थापित हुए हैं और वह सोवियत संघ के साथ भी तनाव कम करने की नीति पर चल रहा है।

२. संविधान का निर्माण

सं० रा० अमरीका की शासन-पद्धति के अध्ययन से पूर्व उसके संविधान निर्माण की पृष्ठ-भूमि को जान लेना उचित होगा, इसलिए उसका संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया जाता है। सन् १७८७ तक सं० रा० अमरीका का संवैधानिक विकास तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है—प्रथम, उपनिवेशवाद अथवा स्वतन्त्रता की प्राप्ति तक, दूसरा, संघटन (Confederation) की स्थापना तक और तीसरा, वर्तमान संविधान के निर्माण अथवा सं० रा० अमरीका के संघ-निर्माण तक।

उपनिवेशवाद का काल (Colonial Period)—उत्तरी अमरीका के पूर्वी तट पर आकर बसने वाले अंग्रेज तथा अन्य निवासी प्रथम स्थायी आबादियों के बाद लगभग १५० वर्ष तक बहुत सीमा तक मातृ-देश के हस्तक्षेप व सहायता के बिना स्वयं अपना शासन चलाते रहे। इसका कारण शायद यह था कि ये आबादियाँ मातृ-देश से बहुत दूर थीं। कारण कुछ भी हो, इसका परिणाम यह रहा है कि उपनिवेशों की जनता को आरम्भ से ही स्वशासन करना सीखना पड़ा। चूँकि सं० रा० अमरीका का आरम्भ ग्रेट-ब्रिटेन के उपनिवेशों के रूप में हुआ और चूँकि इनके निवासियों की बहुत बड़ी संख्या अंग्रेजी थी, यह स्वाभाविक ही था कि अंग्रेजी संस्थाओं और विचारों का उनकी शासन संस्थाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता।

उपनिवेश और उनका शासन—उपनिवेश तीन प्रकार के थे—सम्राट के उपनिवेश (Royal or crown colonies), स्वाम्याधीन उपनिवेश (Proprietory colonies) और चार्टर उपनिवेश (Charter colonies)। तीनों प्रकार के उपनिवेशों की शासन-पद्धतियों में साधारण अन्तर थे, किन्तु उनमें बहुत सी विशेषतायें सामान्य थीं। प्रत्येक उपनिवेश में एक गवर्नर, एक विधायिका और न्याय पद्धति पाई जाती थी। सम्राट के उपनिवेशों में गवर्नर और उनकी परिषद् की नियुक्ति इंगलैंड के राजा द्वारा की जाती थी। स्वाम्याधीन उपनिवेशों में गवर्नर की छांट स्वामियों द्वारा की जाती थी और चार्टर उपनिवेशों में गवर्नर जनता द्वारा चुने जाते थे। परिषद् के सदस्य साधारणतया धनी निवासियों में से छांटे जाते थे, यह गवर्नर की कार्यपालिका और विधायिका के ऊपर वाले सदन का कार्य करती थी। निचले सदन का चुनाव जनता द्वारा होता था, किन्तु मताधिकार बहुत सीमित था। गवर्नरों के अतिरिक्त राजा अन्य अधिकारी भी भेजा करता था।

उपनिवेशों में प्रमुख अधिकारी **गवर्नर** होता था, अधिकतर उपनिवेशों में राजा द्वारा नियुक्त किए जाने के कारण उसे राजा का प्रतिनिधि समझा जाता था और उसका मुख्य कर्त्तव्य यह देखना था कि पार्लियामेंट के कानूनों और राजा के आदेशों का सुचारु रूप से पालन हो। वह स्थानीय विधायकों द्वारा पास किए गए कानूनों को भी लागू करता था। चूँकि गवर्नर को अंग्रेज सरकार का प्रतिनिधि समझा जाता था, अतः इंगलैंड के विरुद्ध शिकायतों का निशाना उसे ही बनाया जाता था। अधिकतर उपनिवेशों में गवर्नर से नाराजगी व घृणा थी और निवासी उससे डरते भी थे। जब कभी वह यह समझता था कि स्थानीय विधायिका ब्रिटिश साम्राज्य की नीति के विरुद्ध कार्य कर रही है तो वह उनका विरोध करता था, इसी कारण गवर्नर की अप्रियता बढ़ना स्वाभाविक था। जैसे-जैसे उपनिवेशों में मातृ-देश के विरुद्ध भावना उग्र हुई और दोनों के बीच संघर्ष बढ़ा, गवर्नर के प्रति उनकी नाराजगी बढ़ती गई और क्रान्ति के उपरान्त यद्यपि नए अमरीकी राज्यों ने गवर्नर पद कायम रक्खा, फिर भी उसके अधिकारों व शक्तियों पर सीमायें लगा दीं।

अमरीकी क्रांति और स्वतन्त्रता की प्राप्ति—सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न, जिसके ऊपर मातृ-देश (Mother country) और उपनिवेशों के बीच मतभेद पैदा हुआ, कर लगाने का था। उपनिवेशों के निवासी इंगलैंड के आयात पर कर तथा व्यापार को विनियमित करने के अधिकार का विरोध नहीं करते थे, परन्तु उन्होंने अपनी स्थानीय विधायिकाओं के सिवाय किसी भी सरकार द्वारा प्रत्यक्ष आन्तरिक कर लगाने के अधिकार का विरोध किया। बिना प्रतिनिधित्व के कर लगाने का अधिकार नहीं (no taxation without representation) अमरीकी क्रांति का नारा बन गया। मतभेद के अन्य प्रश्न ये थे—शान्तिकाल में उपनिवेशों में इंगलैंड द्वारा इनकी सहमति के बिना सेना का भेजा जाना, पार्लियामेंट का यह अधिकार कि वह कानून बनाकर नगर सभाओं या विरोध-प्रदर्शन हेतु सभाओं को करने की मनाई करे, इत्यादि। स्वतन्त्रता की घोषणा में इन शिकायतों का उल्लेख किया गया है। संक्षेप में, उपनिवेशों के निवासी स्वशासन के उन्हीं अधिकारों तथा विशेषाधिकारों पर जोर दे रहे थे जिनका इंगलैंडवासी उपभोग करते थे। विभिन्न उपनिवेशों के निवासियों ने एकता के आधार पर क्रान्ति का संचालन किया। सन् १७७४ में उन्हें युद्ध न करना पड़े, इस उद्देश्य से एक प्रतिनिधि सम्मेलन किया; सम्मेलन की दूसरी बैठक अगले वर्ष हुई, किन्तु इसी बीच में युद्ध आरम्भ हो गया था, अतएव एकत्रित प्रतिनिधियों ने **महाद्वीपीय कांग्रेस** (Continental Congress) बुलाई और युद्ध का निर्देशन किया। १३ उपनिवेशों की एकता की दिशा में यह प्रथम सफल प्रयत्न था।

युद्ध में उपनिवेशों की जीत हुई और ४ जुलाई सन् १७७६ को **अमरीकी स्वतन्त्रता की घोषणा** की गई, जिसका एक अंश अग्रलिखित है : 'हम इन सत्यों को स्वयंसिद्ध मानते हैं कि सब मनुष्य समान उत्पन्न हुए हैं, उनके विधाता ने

उन्हें कुछ अनपहरणीय अधिकारों से सम्पन्न किया है और उनमें जीवन, स्वतन्त्रता और सुख प्राप्ति के प्रयत्न भी हैं। इन अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए ही मनुष्यों में राज्य पद्धतियों की स्थापना होती है और उनको उचित अधिकार भी शासितों की अनुमति से प्राप्त होते हैं। जब कभी कोई शासन इन उद्देश्यों के लिए विनाशकारी बन जाए, तब लोगों को अधिकार है कि वे उसे बदल दें या समाप्त कर दें और एक नए शासन की स्थापना करके उसका आधार ऐसे सिद्धान्तों पर रक्खें और उसके अधिकारों का संगठन ऐसे रूप में करें, जिनसे उनको अपनी सुरक्षा और सुख व समृद्धि स्थायी रखने की सर्वाधिक आशा हो।[1]

संघटन काल—स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त ही उपनिवेशों के बीच आपसी मतभेद और ईर्ष्या उत्पन्न हुई, जिन्हें महाद्वीपीय काँग्रेस के औपचारिक संगठन के अन्तर्गत दूर न किया जा सकता था। अतएव इन कठिनाइयों का सामना करने के उद्देश्य से सन् १७७७ में एक नई योजना बनाई गई, जो सन् १८७१ में सभी उपनिवेशों के अनुसमर्थन की प्राप्ति के बाद लागू हुई। एकता की नई योजना को ही **संघटन की धाराओं** (The Articles of the Confederation) का आलेख (documents) कहते हैं। इन धाराओं के अनुसार १३ उपनिवेशों ने एक ढीले-ढाले संघ (loose union) की स्थापना की, जिसकी एक केन्द्रीय सरकार भी थी। अपने-अपने मामलों का निदेशन उपनिवेशों के हाथों में रहा, केन्द्रीय सरकार को ये शक्तियाँ प्रदान की गई थीं—युद्ध और शान्ति करना, राजदूत स्वीकार करना और भेजना, सन्धियाँ और समझौते करना, सिक्के, नाप और तौल को विनियमित करना, सेना संगठित करना, इत्यादि।

संघटन का ८ वर्ष का जीवन अयोग्यता और असफलता से युक्त रहा, पृथकता की प्रवृत्ति बढ़ रही थी जैसा कि वर्जीनिया के एक बागवान की उक्ति से स्पष्ट होगा—'मैं प्रथम वर्जीनियन हूँ और अमरीकन दूसरे स्थान पर।' **मनरो के अनुसार** संगठन में इन बातों का अभाव था—(१) इसके स्वतन्त्र आय-स्रोत न थे, क्योंकि यह कर न लगा सकती थी; (२) यह ऋण भी न ले सकती थी; (३) यह वाणिज्य को विनियमित भी न कर सकती थी, और (४) सामान्य प्रतिरक्षा के लिए सेना रखने की भी यह पर्याप्त व्यवस्था न कर सकती थी। कांग्रेस (संघटन का केन्द्रीय संगठन) राज्यों से धन माँग सकती थी, परन्तु उन्हें देने के लिए विवश न कर सकती थी। यह उनसे सेना माँग सकती थी, परन्तु उसे मनवाने के लिए कांग्रेस को राज्यों

1. "We hold these truths to be self-evident, that all men are created equal, that they are endowed by their creator with certain inalienable rights, that among these are Life, Liberty and the pursuit of Happiness..., that whenever any form of government becomes destructive of these ends, it is the right of the people to alter or to abolish it, and to institute new government...,' Declaration of Independence, 1776.

पर निर्भर रहना पड़ता था। यह एक ऐसा निकाय थी जिसके पास अधिकार बहुत थे, परन्तु शक्ति कम थी। वास्तव में, कांग्रेस एक परामर्शदात्री संस्था थी।

फिलेडलफिया सम्मेलन और नया संविधान—उपरोक्त परिस्थितियों में एक सुदृढ़ केन्द्रीय अथवा राष्ट्रीय सरकार की आवश्यकता का अनुभव हुआ और संघटन की धाराओं को दोहराने का निश्चय किया गया। इस उद्देश्य से सन् १७८७ में फिलेडलफिया नगर में राज्यों के प्रतिनिधियों का महत्वपूर्ण सम्मेलन हुआ, जिसमें लगभग ५० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इन प्रतिनिधियों में आधे से अधिक वकील थे और शेष सभी हितों तथा व्यवसायों के प्रतिनिधि—व्यापारी, डॉक्टर, किसान, शिक्षक, बैंकर व सैनिक थे। वे प्रायः सभी व्यवहारकुशल और धनी व्यक्ति थे। चार महीने तक प्रतिनिधि विवादग्रस्त प्रश्नों पर वाद-विवाद और अपने विशेष स्वार्थों की वकालत तथा उपायों पर विचार करते रहे। परन्तु सम्मेलन आरम्भ होने के कुछ समय बाद ही उन्होंने संघटन की धाराओं को दोहराने का विचार त्याग दिया था और उसके स्थान पर नई सरकार बनाने का निर्णय किया था। प्रतिनिधियों में कुछ का आधारभूत प्रश्नों पर एकमत था, जैसे नई सरकार की शक्तियाँ पहले से कहीं अधिक हों और उसे देश के सामने आने वाली समस्याओं को हल करने की शक्ति प्राप्त हो। सम्मेलन में कई महत्वपूर्ण समझौते हुए और सम्मेलन सफल रहा। छोटे राज्यों के भय का निवारण करने के लिए उन्हें कांग्रेस के उच्च सदन (Senate) में सम प्रतिनिधित्व अर्थात् प्रत्येक राज्य को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्रदान किया। निचले सदन (House of Representatives) में प्रतिनिधित्व का आधार जनसंख्या रक्खी गई।

यह भी समझौता हो गया कि संघीय आय एकत्र करने और संघीय व्यय के सम्बन्ध में विधि-निर्माण का आरम्भ प्रतिनिधि सदन में ही हो सकेगा, जिसमें कि बहुमत बड़े राज्यों का रहेगा। इसी प्रकार अन्तर्राज्यिक वाणिज्य (Inter-State Commerce) और राष्ट्रपति पद के सम्बन्ध में समझौते हो गए। अतएव एक नवीन शासन-प्रणाली (संघीय शासन प्रणाली) का आधार-पत्र लिखा गया। राज्यों द्वारा आवश्यक अनुसमर्थन के बाद नया संविधान लागू हुआ जबकि संघटन की धाराओं के निर्माण के समय कमजोर शासन के समर्थकों की जीत हुई थी, फिलेडलफिया सम्मेलन में राष्ट्रवादियों अथवा सुदृढ़ राष्ट्रीय सरकार के समर्थकों की जीत हुई क्योंकि नई राष्ट्रीय सरकार को अपनी शक्तियों को प्रभावी बनाने के साधन प्राप्त हुए। संक्षेप में, इस संविधान ने सं० रा० अमरीका के नए संघ की स्थापना की। संघीय शासन के तीन प्रमुख अंग—राष्ट्रपति (कार्यपालिका), कांग्रेस (दो सदन वाली विधायिका) और सर्वोच्च न्यायालय (न्यायपालिका) रहे। इनका आपसी सम्बन्ध शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त पर आधारित किया गया। संघीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन हुआ और संविधान के निर्वचन का कार्य सर्वोच्च न्यायालय को सौंपा गया।

२. शासन की आधारभूत बातें

१. संविधान की विशेषतायें

सं० रा० अमरीका के संविधान अथवा शासन पद्धति की प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है :

(१) यह जनता का अपना संविधान है—संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है : 'हम अमरीका के संयुक्त राज्यों के नागरिक अधिक पूर्ण यूनियन के निर्माण, न्याय की स्थापना, आन्तरिक शान्ति की निरन्तरता, सामूहिक रक्षा व्यवस्था, सार्वजनिक सुख समृद्धि में वृद्धि और अपने तथा अपनी भावी सन्ततियों के लिए स्वतन्त्रता की आशीषें सुरक्षित करने के प्रयोजन से, सं० रा० अमरीका के इस शासन-विधान की रचना और प्रतिष्ठापना करते हैं।' इन लक्ष्यों की पूर्ति का एकमात्र साधन जनता का, जनता और जनता के लिए शासन रहा है, अर्थात् शासन संचालन शासितों के लिए और शासितों की अनुमति से होता है। यह संविधान जनता की प्रभुता के सिद्धान्त पर आधारित है और इसके अन्तर्गत सं० रा० अमरीका में प्रतिनिधि गणतन्त्र की स्थापना हुई है। संक्षेप में, संयुक्त राज्य अमरीका के निवासी एक संवैधानिक पद्धति के अन्तर्गत रहते हैं और अपने ऊपर (प्रतिनिधियों द्वारा) शासन करते हैं।

(२) संविधान की सर्वोपरिता—स० रा० अमरीका का संविधान देश का सर्वोपरि और शासन-पद्धति का आधारभूत कानून है। संविधान की धारा ६ में लिखा है : 'यह संविधान और इसके अन्तर्गत बनाये गये सं० रा० अमरीका के समस्त कानून तथा सं० रा० अमरीका की ओर से की गई या की जाने वाली समस्त सन्धियाँ, इस देश के सर्वोच्च कानून होंगे।' जबकि ग्रेट ब्रिटेन में पालिया-मेंट की सर्वोपरिता है और वह कैसा भी कानून बना सकती है; सं० रा० अमरीका में संविधान सर्वोपरि है। इसका अर्थ यह है कि वहाँ पर संघ और राज्यों की विधायिकायें तथा कार्यपालिकायें कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर सकतीं जो संविधान का अतिक्रमण करें। संविधान की सर्वोपरिता न्यायिक पूनर्वलोकन द्वारा सुरक्षित है।[1]

1. "In England there is in effect parliamentary sovereignty, in the United States the constitution is supreme and that supermacy is maintained by the power of judicial review."
—*H. Fines*, Theory and Practice of Modern Government, p. 139.

(३) संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान संक्षिप्त है—सं० रा० अमरीका का संविधान अति संक्षिप्त है। इसमें केवल २१ धारायें (Articles) हैं, जिन्हें १ घण्टे से कम समय में अच्छी प्रकार से पढ़ा जा सकता है। मनरो के मतानुसार यह संक्षिप्तता का नमूना है। परन्तु मौलिक संवैधानिक आलेख सम्पूर्ण संविधान का केवल आधार है। इसमें अब तक २५ संशोधन हो चुके हैं तथा विभिन्न प्रकार के निर्वाचनों; न्यायिक निर्णयों और चलनों द्वारा यह काफी विस्तृत हो गया है। संविधान एक छोटा सा आलेख है किन्तु यह केवल ढाँचा है जिसे प्रथाओं, दलीय परम्पराओं, राष्ट्रीय आपातों और आर्थिक विकास, आदि ने मांस व जीवन प्रदान किया है।

(४) सं० रा० अमरीका का संविधान लिखित और दुस्संशोध्य (rigid) **है**—सं० रा० अमरीका का संविधान लिखित है; इसका निर्माण फिलेडलफिया सम्मेलन ने सन् १७८७ में किया था। इसलिए इसे निर्मित संविधान भी कहते हैं। इसमें संशोधन करने के लिए एक विहित विधि दी गई है, अतएव संशोधन की प्रक्रिया दुस्संशोध्य है। जैसा कि ऊपर बताया गया है—संविधान में अब तक २५ संशोधन हो गये हैं और इसका अन्य कई प्रकार से भी विकास हुआ है। यह संविधान पूर्णतया लिखित नहीं रहा है, क्योंकि इसके साथ अनेक अभिसमय और चलन जुड़ गये हैं; फिर भी अमरीका के आधारभूत कानून का लिखित संविधान सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश है। दुस्संशोध्य होते हुये भी इसमें समयानुसार आवश्यक संशोधन हुए हैं। यह मत पूर्णतया सत्य है कि सं० रा० अमरीका के संविधान का महत्व अधिकांशतः उसके संघीय रूप के कारण है।

(५) न्यायिक सर्वोपरिता का सिद्धान्त—ऊपर बताया गया है कि सं० रा० अमरीका में संविधान सर्वोच्च कानून है, जिसके विरुद्ध कोई भी सत्ताधारी कार्य नहीं कर सकते। संविधान के निर्वचन का कार्य सर्वोच्च न्यायालय को सौंपा गया है। सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य संघीय न्यायालयों का यह अति महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है कि वे संविधान का अतिक्रमण करने वाले कानूनों व कार्यों को अवैध घोषित करें। सर्वोच्च न्यायालय की यही शक्ति न्यायिक पुनर्वलोकन (Judicial review) की शक्ति कहलाती है। न्यायिक सर्वोपरिता संवैधानिक पद्धति का आधारभूत अंश है। वास्तव में, यह सिद्धान्त भी संघात्मक शासन प्रणाली की एक आवश्यक शर्त है, जिसे अन्य संघात्मक राज्यों ने अपनाया है। इसी दृष्टि से यह कहा जाता है कि ग्रेट-ब्रिटेन में विधायिका की सर्वोपरिता है और सं० रा० अमरीका में न्यायपालिका की सर्वोपरिता है।

(६) संघात्मक शासन प्रणाली—सं० रा० अमरीका का संविधान विश्व का सबसे पूर्ण, वास्तविक और सफल संघात्मक संविधान है। इसमें संघात्मक शासन के तीनों ही आवश्यक लक्षणों—(१) संविधान की सर्वोपरिता, (२) शक्तियों का विभाजन, और (३) संघीय न्यायपालिका की सर्वोपरिता सत्ता का अत्यधिक मात्रा में समावेश

किया गया है।[1] सं० रा० अमरीका का संविधान सर्वोपरि कानून है और वह न्यायिक सर्वोपरिता के सिद्धान्त को अपनाया गया है, इन दोनों बातों का विवेचन ऊपर किया जा चुका है। सं० रा० अमरीका के संविधान के अन्तर्गत एक संघीय सरकार और विभिन्न राज्यों में राज्य सरकारें हैं, संघ व राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन संविधान द्वारा किया गया है।

(७) अधिकार-पत्र (Bill of Rights)—संविधान के मौलिक आलेख में नागरिकों के अधिकारों का समावेश नहीं किया गया था। इस महत्वपूर्ण अभाव की पूर्ति प्रथम १० संशोधनों के द्वारा की गई, जिन्हें सामूहिक रूप में नागरिकों के अधिकारों का अधिकार-पत्र कहा जाता है। इन संशोधनों के द्वारा नागरिकों के लिए सभी आवश्यक अधिकारों की व्यवस्था की गई है। नागरिकों के अधिकारों का विशद विवेचन दूसरे अध्याय में किया गया है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि सं० रा० अमरीका में नागरिकों के अधिकारों को संविधान में प्रगणित किया गया है; इसके विपरीत ग्रेट-ब्रिटेन में नागरिकों के अधिकारों का आधार सामान्य कानून है। भारत ने सं० रा० अमरीका का अनुकरण किया है।

(८) शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त (Doctrine of Separation of Powers)—इस सिद्धान्त का प्रमुख प्रतिपादक मॉन्टेस्क्यू था, जिसने इस विषय में कहा है : 'जब विधायिका और कार्यपालिका की शक्तियाँ एक ही व्यक्ति या व्यक्ति समुदाय के हाथ में केन्द्रित होती हैं, तो किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं होती...। यदि न्यायाधीश की शक्तियों को विधायिका और कार्यपालिका की शक्तियों से पृथक् नहीं किया जाये तो भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती।' इसका तात्पर्य यह है कि यदि शासन के तीनों अंगों की शक्तियाँ एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह में केन्द्रीभूत होती हैं, तो शासन अत्याचारी होता है।

संविधान के निर्माताओं ने इस सिद्धान्त के महत्व को स्वीकार करते हुए संघ सरकार की शक्तियों को तीन अंगों के बीच विभाजित तथा पृथक किया और राज्यों में भी इस सिद्धान्त को अपनाया गया है। इस सिद्धान्त का संविधान के किसी खण्ड में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है; परन्तु इसका समावेश तीनों अंगों से सम्बन्धित धाराओं के आरम्भ में किया गया है। सम्पूर्ण विधायी शक्तियाँ कॉंग्रेस में, कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में और न्यायिक शक्ति सर्वोच्च तथा अन्य अधीन न्यायालयों में निहित की गई हैं। शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त का इस प्रकार से

1. 'The constitution of the United States is the most completely federal constitution in the world. By this is meant that it exemplifies in the most marked degree the three essential characteristics of federalism, namely, the supremacy of the constitution, the distribution of powers, and the authority of the federal judiciary.'

—*C. F Strong*, *Modern Political Constitutions, p. 103.*

अपनाया जाना सं० रा० अमरीका के संविधान की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता है। वैसे तो ग्रेट ब्रिटेन और भारत में भी इस सिद्धान्त को सीमित रूप में अपनाया गया है, किन्तु संसदात्मक पद्धति में विधायी और कार्यपालिका शक्तियाँ काफी सीमा तक केबिनेट में केन्द्रीभूत रहती हैं। वास्तव में, सं० रा० अमरीका की अध्यक्षात्मक कार्यपालिका का आधारभूत सिद्धान्त शक्तियों का पृथक्करण ही है। सं० रा० अमरीका का राष्ट्रपति और उनकी केबिनेट के सदस्य कांग्रेस की कार्यवाही में भाग नहीं लेते। अतएव कुछ आलोचक यह कहते हैं कि अमरीकन शासन पद्धति को अपनाने से दूर हो सकता है। परन्तु सं० रा० अमरीका की शासन पद्धति के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि यह बड़ी मात्रा में सफल सिद्ध हुई है और इसमें उग्र परिवर्तनों की आवश्यकता नहीं है। वैसे भी शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त व्यवहार में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित अथवा संशोधित हो गया है।

(९) निरोध और सन्तुलन का सिद्धान्त (Doctrine of Checks and Balances)—शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त को कार्यरूप में सफल बनाने के उद्देश्य से संविधान निर्माताओं ने इसके साथ-साथ निरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त को अपनाकर शासन के तीनों अंगों के बीच आवश्यक सम्बन्ध स्थापित किये। वास्तविक स्थिति यह है कि किसी भी अंग की शक्तियाँ अपने क्षेत्र में पूर्ण नहीं हैं। एक के ऊपर दूसरा अंग किसी प्रकार की रोक लगाता है, किन्तु यह रोक ऐसी नहीं है कि सन्तुलन बिगड़ जाए। इसके कुछ उदाहरण ये हैं—(१) कांग्रेस के ऊपर यह रोक लगी है कि इसके कानून दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत हों और उन पर राष्ट्रपति की अनुमति भी मिले। कानून बन जाने पर उसे संविधान का अतिक्रमण करने के आधार पर संघाय न्यायालय अवैध घोषित कर सकते हैं। विधेयक पर राष्ट्रपति का प्रतिषेध अधिकार एक प्रकार से अन्तिम नहीं है, क्योंकि यदि ऐसे विधेयक को कांग्रेस के दोनों सदन २/३ के बहुमत से दूसरी बार पास कर दें तो वह कानून का रूप धारण करेगा। (२) राष्ट्रपति पर यह रोक लगी है कि वह कानून नहीं बना सकता और वह कांग्रेस द्वारा स्वीकृत धनराशि के अतिरिक्त किसी प्रकार के व्यय का अधिकार नहीं रखता। राष्ट्रपति के विरुद्ध कांग्रेस महाभियोग की कार्यवाही भी कर सकती है; कार्यपालिका द्वारा की गई संधियों पर सीनेट की स्वीकृति और राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों का अनुसमर्थन आवश्यक है। (३) न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, जिस पर सीनेट की सहमति प्राप्त की जाती है, और न्यायाधीशों के विरुद्ध कांग्रेस महाभियोग की कार्यवाही भी कर सकती है। (४) प्रशासन के सभी प्रमुख विभागों तथा अन्य अभिकरणों की रचना कांग्रेस ने की है, जो इनके संगठन में किसी भी प्रकार का परिवर्तन कर सकती है। सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य संघीय न्यायालयों की स्थापना भी कांग्रेस के कानूनों के अन्तर्गत हुई है।

निरोध की व्यवस्था एक-तरफा नहीं है। निरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त के अनुसार शासन की प्रत्येक शाखा को अन्य दोनों शाखाओं के कार्यों में हस्तक्षेप करने या उनके कार्यों पर रोक लगाने का अधिकार है; परन्तु रोक इस प्रकार से लगाई जा सकती है कि शासन का सन्तुलन बना रहे। संविधान में सोच समझकर निरोध और सन्तुलन के सिद्धान्त की व्यवस्था की गई है, जिससे कि शासन की कोई शाखा पागलपन न कर बैठे।[1] एक लेखक के अनुसार संविधान निर्माताओं का इस पद्धति को अपनाने में यह उद्देश्य था कि 'बहुमत का अनुचित मेल' न हो सके। साधारण रूप में यह पद्धति सफल रही है।

(१०) **सीमित शासन का सिद्धान्त**—जैसा कि पहले विभाग में बताया गया है अमरीका के नागरिकों का विश्वास व्यक्ति के अधिकारों में रहा है और उन्होंने अत्याचारी शासन का सदा ही विरोध किया है। इसी दृष्टि से संविधान निर्माताओं ने शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त को अपनाया। फलतः सं० रा० अमरीका की शासन पद्धति में सभी शाखाओं की शक्तियाँ सीमित रखी गई हैं। इन सीमाओं का उद्देश्य व्यक्तियों की सम्पत्ति और नागरिक स्वतन्त्रताओं की रक्षा करना है। कुछ बातों में व्यक्तियों की रक्षा संघीय शासन के विरुद्ध और कुछ में राज्य सरकारों के विरुद्ध तथा कुछ अन्य बातों में सभी प्रकार की सरकारों के विरुद्ध की गई है। ५वें और १४वें संशोधन कांग्रेस और राज्यों को किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन, स्वतन्त्रता अथवा सम्पत्ति से उचित कानूनी प्रक्रिया (due process of law) के बिना वंचित करने की मनाही करते हैं।

इस सिद्धान्त को दूसरी प्रकार से भी रक्खा जाता है—जबकि ग्रेट ब्रिटेन में पार्लियामेंट सर्वोपरि है और कैसा भी कानून बना सकती है, सं० रा० अमरीका में सभी शासन सत्ताओं की शक्तियाँ सीमित हैं। बेंक ने लिखा है: 'उनका विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति उत्तरदायी नैतिक प्राणी के कुछ अनपहरणीय अधिकार हैं जिन्हें न तो राज्य और न व्यक्ति ही उससे छीन सकते हैं। व्यक्तिवाद की यह धारणा, *जिसे कार्यपालिकाओं और विधायिकाओं के विरुद्ध न्यायालयों में मनवाया* जाता है, अमरीकी संवैधानिकता की पूर्णतया नई और विभेदात्मक विशेषता है। शासन के इस सिद्धान्त ने मनुष्य को नई प्रतिष्ठा प्रदान की।'

(११) संविधान में कुछ महत्वपूर्ण बातें नहीं दी गई हैं—चूँकि सं० रा० अमरीका का संविधान बहुत ही संक्षिप्त है और उनमें शासन पद्धति की रूपरेखा ही दी गई है, यह स्वाभाविक था कि कुछ महत्वपूर्ण बातें छूट जायें। उदाहरण के लिए

1. "The Constitution was carefully designed to provide a 'system of checks and balances', to prevent any branch of the government running amuck."

—*D. C. Coyle*, The United States Political System, p. 16.

प्रत्येक कानून के पास होने के लिए कांग्रेस के दोनों सदनों की स्वीकृति आवश्यक है, परन्तु उनके बीच उठने वाले मतभेदों को दूर करने की प्रक्रिया नहीं दी गई है। संविधान में यह दिया है कि प्रतिनिधि सदन अपने अध्यक्ष को चुनेगा, परन्तु उसकी शक्तियाँ क्या होंगी, इसमें यह नहीं बताया गया। संविधान में संघीय अधिकारियों की नियुक्ति के विषय में उपबन्ध है, किन्तु उन्हें पदच्युत करने के विषय में कुछ नहीं लिखा। इनके अतिरिक्त संविधान में आर्थिक और सामाजिक मामलों जैसे—कार्पोरेशन, बैंक, सिविल सर्विस, शिक्षा, आदि विषयों के बारे में अन्य संविधानों की तुलना में बहुत कम बताया गया है। परन्तु कांग्रेस की शक्तियों की भाषा ऐसी है कि उनके विस्तृत अर्थ से इनमें से बहुत सी छुटी हुई बातों के अभाव को कानून द्वारा पूरा कर लिया गया है। वैसे भी संविधान निर्माताओं से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे १००–२०० वर्ष बाद उठने वाली सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के बारे में कुछ सोचते।

निष्कर्ष—लार्ड ब्राइस का यह मत उल्लेखनीय है कि 'सं० रा० अमरीका का संविधान सब कुछ काट-छांट के बाद संसार के सभी संविधानों में श्रेष्ठ है, क्योंकि इसकी योजना अति सुन्दर है। यह जनता की आवश्यकताओं के अनुकूल है, यह सरल और संक्षिप्त है, इसकी भाषा स्पष्ट है और इसमें सिद्धान्तों की निश्चितता के साथ-साथ विस्तृत व्याख्या के लिए सुसंशोध्यता है।' लगभग १८० वर्ष की अवधि में, जबकि इसके निर्माणकाल से सं० रा० अमरीका और वर्तमान अमरीका में आश्चर्यजनक अन्तर हो गया है, यह संविधान सफल सिद्ध हुआ है और इसमें केवल २५ संशोधन हुए हैं। वास्तव में, अमरीका का संविधान उनके राष्ट्रीय इतिहास का ताना बाना है, यह आरम्भ में आकर बसे व्यक्तियों और कल तक बाहर से आये अमरीकी नागरिकता प्राप्त करने वाले व्यक्तियों में नाता जोड़ने वाला है, यह वाल्ट विटमेन के शब्दों में वर्णित 'राष्ट्रों के राष्ट्र' की एकता को सुदृढ़ बनाने वाला है।

२. संविधान में परिवर्तन

सं० रा० अमरीका का संविधान लिखित और दुस्संशोध्य है, किन्तु इसमें बदलते हुए समय के अनुसार संशोधनों तथा अन्य विधियों द्वारा आवश्यक परिवतन हुए हैं। सभी संविधानों का विकास होता है और सं० रा० अमरीका के संविधान का भी विकास हुआ है, यदि ऐसा न हो तो जनता को कष्ट उठाने पड़ें। सं० रा० अमरीका का संविधान एक जीवित और परिवर्तनशील व्यवस्था है, तभी तो अमरीकी राष्ट्र गृह-युद्ध और अन्य संकटों का सफलतापूर्वक सामना कर सका। संविधान के कुछ आलोचकों ने इसे 'नष्ट हुई आशाओं, विगत आदर्शों, प्राचीन भयों तथा प्राचीन काल के आर्थिक और सामाजिक तथ्यों का समूह बताया है', परन्तु हम इस आलोचना को सत्य नहीं मानते। वास्तव में अमरीकी संविधान का अध्ययन

एक स्थिर यन्त्र रूप में नहीं वरन् एक जीवित व्यवस्था के रूप में करना चाहिए। इसके बारे में राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने लिखा है 'अमरीका का संविधान ब्रिटिश संविधान की भाँति ही एक जीवित और उर्वर व्यवस्था है'।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि ब्रिटिश संविधान सबसे अधिक जीवित और उर्वर प्रणाली है; क्योंकि पार्लियामेन्ट साधारण कानून की तरह जब चाहे संविधान सम्बन्धी कानून बनाती रही है। साथ ही उसका अभिसमयों तथा अन्य विधियों द्वारा निरन्तर विकास हुआ है। सं० रा० अमरीका के संविधान में भी विभिन्न विधियों द्वारा आवश्यक परिवर्तन हुए हैं, इसके लिखित रूप तथा दुस्संशोध्य लक्षण ने इसके विकास में कोई विशेष बाधा नहीं डाली है। सं० रा० अमरीका के संविधान का विकास अथवा विस्तार संशोधनों, न्यायायिक निर्णयों व प्रथाओं, आदि से हुआ है। यह संविधान स्थिर नहीं, गतिशील है। यह एक विस्तृत और संशोधित आलेख है, जो आज औद्योगिक व शहरी समाज की समस्याओं का सफलतापूर्वक सामना कर सका है। यह अतीत की जीवनदायिनी वसीयत है और आज का जीवित व गतिशील आलेख है। संविधान में विभिन्न विधियों द्वारा आवश्यक परिवर्तन हुए हैं, जैसा कि निम्नलिखित विवेचन से स्पष्ट होगा—

प्रथम, विधान मण्डल (काँग्रेस) द्वारा विस्तार—काँग्रेस ने संविधान को दो प्रकार से विस्तृत बनाया है: (१) संविधान की कुछ धाराओं में वर्णित आदेशों को कार्यान्वित करके, और (२) संविधान द्वारा स्पष्ट तथा निहित रूप में प्रदान की गई शक्तियों के अनुसार आवश्यक कानून बनाकर। प्रथम श्रेणी में हम इन बातों को सम्मिलित कर सकते हैं—सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य संघीय न्याया-लयों की रचना, जिसका उत्तरदायित्व संविधान ने काँग्रेस पर छोड़ दिया था; प्रशासनिक विभागों की स्थापना; राष्ट्रपति की अयोग्यता की दशा में उसके उत्तराधिकारी की व्यवस्था, इत्यादि।

दूसरी श्रेणी में ये बातें सम्मिलित की जा सकती हैं। इतिहास के आरम्भ में ही काँग्रेस ने निर्णय किया कि 'आवश्यक और उचित' अनुच्छेद के अन्तर्गत उसे राज्य के वित्तीय कार्यों की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय बैंक को चार्टर करने का अधिकार है। उसके बाद काँग्रेस ने वाणिज्य, कर लगाने तथा कल्याण सम्बन्धी शक्तियों का खूब प्रयोग किया है। काँग्रेस के कानूनों द्वारा कारखानों में उत्पादन, कृषि, शिक्षा, आदि सभी प्रभावित हुए हैं। काँग्रेस ने एकाधिकार को सीमित करने, स्वामी और श्रमिकों के सम्बन्धों को विनियमित करने, कृषि मूल्यों को स्थिर रखने, विद्युत शक्ति के कारखाने स्थापित करने और सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था के सम्बन्ध में अनेक कानून बनाये हैं। इस प्रकार काँग्रेस ने अपनी रचना और कार्यों

की दृष्टि से अमरीका के पूर्ण संविधान में बहुत कुछ जोड़ा है।[1] कहीं-कहीं तो संविधान के वाक्यांशों को नया अर्थ दिया गया है और इसका परिणाम प्रायः वैसा ही महत्वपूर्ण रहा है जैसा कि औपचारिक संशोधनों का होता। संविधान की दूसरी धारा के खण्ड-खण्ड में केवल यह कहा गया है कि संघीय अधिकारियों की नियुक्ति की शक्ति राष्ट्रपति, न्यायालयों अथवा विभागीय अध्यक्षों में निहित होगी। इस पर भी बहुत वर्ष पूर्व ही कांग्रेस ने नागरिक सेवाओं के बारे में कानून बनाया, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त 'सिविल सर्विस कमीशन' की रचना की व्यवस्था है।

दूसरे, न्यायिक निर्वचन द्वारा—प्रत्येक संविधान का इस प्रकार से विकास होता है, किन्तु यह बात सं० रा० अमरीका के संविधान के विषय में विशेष रूप से सत्य है, क्योंकि इसका लिखित रूप अति संक्षिप्त है और इसमें ऐसी भाषा का प्रयोग हुआ है जिसका विभिन्न प्रकार से निर्वचन हो सकता है। अब तक संविधान के प्रायः सभी अनुच्छेदों पर न्यायालयों में विचार किया जा चुका है, अतएव संविधान को पूर्णतया न्यायिक निर्णयों के प्रकाश में ही समझा जा सकता है। एक भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति ने सुन्दर शब्दों में कहा था—"हम संविधान के अन्तर्गत हैं, परन्तु संविधान वह है जैसा कि न्यायाधीश इसे बनाते हैं।" इसका अर्थ कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा। न्यायालयों ने मत प्रकट किया है कि संविधान की प्रस्तावना कोई शक्तियाँ प्रदान नहीं करती, यह तो केवल उसके उद्देश्य की घोषणा है; आय पर कर प्रत्यक्ष कर होता है, परोक्ष नहीं; प्रथम १० संशोधन केवल राष्ट्रीय शासन में लागू होते हैं; संघीय न्यायालयों को कांग्रेस के द्वारा बने कानूनों को (संविधान का अतिक्रमण करने पर) अवैध घोषित करने की शक्ति प्राप्त है; कांग्रेस प्रदत्त शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिए बैंक व कार्पोरेशनों की रचना कर सकती है।

वास्तव में, कांग्रेस कारखानों में उत्पादन, खानें खोदना, विद्युत शक्ति का उत्पादन करना, कृषि उत्पादन, परिवहन, शिक्षा, सामाजिक कल्याण, आदि का कार्य न कर पाती; क्योंकि उसे इन कार्यों के करने की प्रत्यक्ष या स्पष्ट शक्ति प्राप्त नहीं है। इन कार्यों के बारे में कांग्रेस न्यायालयों द्वारा प्रतिपादित अथवा मान्यता प्राप्त **निहित शक्तियों के सिद्धान्त** (Theory of Implied Powers) के अन्तर्गत ही अनेक कानून बना सकी है। जस्टिस मार्शल ने सन् १८१९ में एक मुकदमे (Mc. Culloch vs. Maryland) में ऐतिहासिक निर्णय देते हुए कहा

1. 'The Constitution is also what Congress says it is. Simple, general phrases may be elaborated by statutes in such a way as to give them unexpected meaning. Where this occurs the effect is often as significant as if amendment were formally enacted......'

–*Ferguson* and *Mc. Henry*, The American System of Government. p. 74-75.

था : "सरकार की शक्तियाँ सीमित हैं और सरकार उन सीमाओं से बाहर नहीं जा सकती। परन्तु हमारे विचार में राष्ट्रीय (संघीय) सरकार को प्रदत्त शक्तियों की पूर्ति के लिए उन साधनों के प्रयोग का अधिकार है जो आवश्यक और उचित समझे जायें। यदि उद्देश्य उचित और वैध है, संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों के क्षेत्र में आता है, तो वे सभी साधन जो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उचित समझे जायें और जिनके प्रयोग पर संविधान में मनाही न हो, संवैधानिक हैं।"[1]

इस प्रकार निहित शक्ति वह शक्ति है जिसे संविधान में प्रगणित किसी दूसरी शक्ति से निकाला गया हो। तब से निहित शक्तियों के सिद्धान्त का प्रयोग कई बार हुआ और ऐसा करने में न्यायालयों ने संविधान की धाराओं का उदार तथा विस्तृत अर्थ लिया है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सरकार की शक्तियों में महत्वपूर्ण विस्तार हुआ है। इस सम्बन्ध में **मनरो** ने लिखा है कि सं० रा० अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की शब्दावली में कोई परिवर्तन करने के अधिकार का दावा नहीं किया है। यह उसमें कोई नई बात नहीं रखता, परन्तु उसकी धाराओं से नए अर्थ निकालता है। इसी आधार पर जस्टिस हॉम्स ने एक बार कहा था कि न्यायाधीश कानून बनाते हैं और उन्हें कानून बनाने पड़ते हैं।

इस सिद्धान्त के दो महत्वपूर्ण उदाहरण अग्रलिखित हैं—(१) संविधान से काँग्रेस को वैदेशिक तथा अन्तर्राज्य वाणिज्य को विनियमित करने की शक्ति मिली है। 'वाणिज्य' क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में समय के परिवर्तनों के अनुसार न्यायालयों ने इस शब्द की लगभग १०० व्याख्यायें की हैं। इनके परिणामस्वरूप ही काँग्रेस ने रेल, मोटर, तार व टेलीफोन कम्पनियों, हवाई यातायात, जहाजरानी, रेडियो संचार स्टेशनों, स्टॉक एक्सचेंजों, आदि विषयों के बारे में अनेक कानून बनाए हैं और न्यायालयों ने उन्हें अवैध नहीं माना है। (२) संविधान की एक धारा के अनुसार काँग्रेस को जन-कल्याण हेतु कानून बनाने की शक्ति मिली है, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय सरकार ने बुढ़ापे में पेंशन व बेकारी की अवस्था में आर्थिक सहायता देने की कानून द्वारा व्यवस्था की है।

तीसरे, कार्यपालिका के निर्वचन द्वारा—काँग्रेस और न्यायालयों द्वारा निर्वचन के साथ-साथ कार्यपालिका ने भी संविधान का निर्वचन किया है। कई अवसरों पर राष्ट्रपति ने संविधान का निर्वचन किया है। लिंकन ने इस बात पर जोर दिया कि दक्षिणी राज्य संघ से बाहर कभी न जायें। **विलसन व फ्रेंकलिन रूजवेल्ट** ने जोर के साथ यह मत प्रकट किया कि कांग्रेस कार्यपालिका कर्मचारियों को पद से

1. 'Let the end be legitimate, let it be within the scope of the Constitution, and all means which are appropriate......which are not prohibited, but are consistent with the letter and spirit of the Constitution, are Constitutional.' (Supreme Court)

हटाए जाने के अधिकार पर प्रतिवन्ध नहीं लगा सकती। कई राष्ट्रपतियों ने अमरीकनों के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा के लिए कांग्रेस की स्वीकृति प्राप्त किए बिना ही सं० रा० अमरीका के किसी भी राज्य में सशस्त्र सेना भेजने को न्यायोचित ठहराया। फ्रेंकलिन रूजवेल्ट ने इस मत के मनवाने में सफलता पाई कि संविधान का अर्थ इतना विस्तृत है कि उसके अन्तर्गत आर्थिक संकट को दूर करने के लिए राज्य आर्थिक क्षेत्र में काफी दूर तक कानूनों द्वारा हस्तक्षेप कर सुधार कर सकता है।

प्रथम विश्व-युद्ध में कांग्रेस ने राष्ट्रपति **विल्सन** को वहुत-सी शक्तियाँ सौंपी, विशेष रूप से आर्थिक क्षेत्र में, और राष्ट्रपति ने उन शक्तियों को प्रशासनिक अध्यादेशों द्वारा विभिन्न प्रशासनिक निकायों को सौंपा। विल्सन ने कांग्रेस से विशिष्ट अधिकार प्राप्त किए बिना भी बहुत से प्रशासनिक अभिकरण कायम किए। इसी प्रकार दूसरे विश्व युद्ध के दौरान इनमें से वहुत-सी शक्तियों का प्रयोग **फ्रेंकलिन रूजवेल्ट** ने किया, जिसने अपने पहल द्वारा ही अनेक अभिकरण स्थापित किए। उसने तो वहुत से निजी कारखानों पर भी सरकारी अधिकार जमाया और उनका संचालन सरकार द्वारा कराया; क्योंकि उनमें हड़तालों, अकुशल प्रवन्ध और अन्य कारणों से उत्पादन को खतरा था। इस सबका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रपतियों द्वारा संविधान के उद्देश्यों में नया अर्थ देखा गया है, जिससे उनकी शक्तियों में वृद्धि हुई है।

चौथे, प्रथाओं द्वारा—अन्य संविधानों की तरह सं० रा० अमरीका का संविधान भी चलनों, प्रथाओं अथवा अभिसमयों द्वारा विकसित हुआ है। इस सम्वन्ध में **मनरो** ने लिखा है—व्यक्ति के लिए जैसे आदत है, वैसे ही राज्य के लिए चलन हैं। राष्ट्र भी मनुष्यों की तरह बहुत से कार्य एक ही ढंग से करने लगते हैं। आदत से ही चलन पड़ जाता है। इस प्रकार अमरीका में लिखित संविधान के ऊपर पिरेमिड के समान राजनीतिक चलनों का एक समूह बन गया है। इसने अमरीकनों को काफी मात्रा में एक 'अलिखित संविधान' दिया है। कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण अग्रलिखित हैं : (१) संविधान में दलों का कोई उल्लेख नहीं है, वैसे भी संविधान निर्माताओं को यह आशा थी कि दलों का विकास न होगा; किन्तु आजकल अमरीकी संविधान को दलों के महत्वपूर्ण भाग के बिना समझना भी सम्भव नहीं। अब तो दलीय व्यवस्था को विनियमित करने के लिए कानून भी बन गए हैं; उनकी उत्पत्ति और विकास वास्तव में प्रथाओं द्वारा ही हुए।

(२) संविधान में कांग्रेस की समितियों का भी कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु अव विधि-निर्माण कार्य बड़ी सीमा तक उनके द्वारा नियन्त्रित है। (३) संविधान में लिखा है कि प्रतिनिधि सदन अपने अध्यक्ष का चुनाव करेगा, परन्तु प्रथा यह पड़ गई है कि वहुमत दल का कॉकस या सम्मेलन उसकी छांट करता है और सदन उसका अनुसमर्थन कर देता है। (४) संविधान का उद्देश्य स्पष्टतया यह प्रतीत

होता है कि राष्ट्रपति का चुनाव (अप्रत्यक्ष रूप से) राज्यों की विधायिकाओं द्वारा चुने हुए निर्वाचकों द्वारा हो; किन्तु शीघ्र ही ऐसी प्रथा पड़ गई कि निर्वाचकों का चुनाव दलीय आधार पर होने लगा और अब वे राष्ट्रपति के चुनाव में दलीय आदेशों के अनुसार मत देते हैं। अतः व्यवहार में राष्ट्रपति का चुनाव एक प्रकार से प्रत्यक्ष रूप में ही होने लगा है।

(५) यह प्रथा पड़ गई थी कि कोई व्यक्ति दो बार से अधिक राष्ट्रपति पद पर न रहे; परन्तु फ्रेंकलिन रूजवेल्ट ने इस प्रथा को तोड़ दिया, जिसके कारण बाद में इस उद्देश्य से संविधान में संशोधन किया गया। (६) प्रतिनिधि सदन के सदस्य उसी निर्वाचन-क्षेत्र से खड़े होते हैं, जिसकी सूची में उनका नाम होता है। (७) राष्ट्रपति द्वारा केबिनेट के सदस्यों की छाँट पर सीनेट साधारणतया अपनी स्वीकृति दे देती है। (८) राज्यों में संघीय अधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति सीनेट में उस राज्य द्वारा भेजे गए अपने दल के प्रतिनिधियों के परामर्श से करता है, इसे ही **सीनेटोरियल कर्टसी** कहते हैं। (९) राष्ट्रपति की केबिनेट का विकास भी प्रथा का ही फल है और यदि राष्ट्रपति केबिनेट का निर्माण करना न चाहे तो उसके विरुद्ध कोई कानूनी अथवा संवैधानिक प्रश्न नहीं उठ सकता। (१०) कांग्रेस की समितियों में सभापति (बहुमत दल से) ज्येष्ठता के नियम के अनुसार बनते हैं। ज्येष्ठता आयु की नहीं वरन् समिति की सदस्यता के आधार पर मानी जाती है।

अन्त में, **संशोधनों द्वारा**—अब तक संविधान में २५ संशोधन हो चुके हैं। संशोधन प्रक्रिया में दो पग अन्तर्ग्रस्त हैं—(१) प्रस्ताव और (२) सम्पुष्टिकरण। संशोधन का प्रस्ताव दो विधियों में से किसी एक के द्वारा रक्खा जा सकता है। प्रथम, जब कभी कांग्रेस के सदन आवश्यक समझें और २/३ के बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पास करें। दूसरा, २/३ राज्यों की प्रार्थना पर कांग्रेस राज्यों का सम्मेलन बुलाए और उसमें संशोधन प्रस्ताव पास हो जाए। अभी तक दूसरी पद्धति का प्रयोग नहीं हुआ है; क्योंकि प्रस्ताव पेश करने की पहली पद्धति अपेक्षाकृत बहुत सरल है। संशोधन के प्रस्ताव का सम्पुष्टिकरण राज्यों की कार्यवाही द्वारा होता है, प्रस्तावित संशोधन की पुष्टि कम से कम तीन-चौथाई राज्यों द्वारा होनी आवश्यक है। यह सम्पुष्टि भी दो प्रकार से हो सकती है—(१) या तो प्रस्तावित संशोधन पर ३/४ राज्यों की विधायिकायें अपनी स्वीकृति अथवा सहमति दें; या (२) राज्यों में इस उद्देश्य से बुलाए गए सम्मेलन उस पर स्वीकृति प्रदान करें। सम्पुष्टिकरण के लिए कौन-सी पद्धति अपनाई जाए यह कांग्रेस स्पष्ट कर सकती है। यदि कांग्रेस ऐसा न करे तो राज्य स्वयं निर्णय करेंगे। अब तक केवल २१वें संशोधन का सम्पुष्टिकरण राज्य-सम्मेलनों द्वारा हुआ है। सम्पुष्टिकरण कितने समय के भीतर हो, इस प्रकार का प्राविधान संविधान में नहीं है; पहले यह समझा जाता था कि इसकी कोई सीमा नहीं किन्तु १८वें, २१वें और २२वें संशोधनों के

सम्पुष्टिकरण काल की सीमा कांग्रेस ने ७ वर्ष रक्खी थी और उससे पूर्व ही उनकी सम्पुष्टि हो गई।

साधारण रूप में संशोधन प्रक्रिया इस प्रकार है—एक या अधिक सदस्य काँग्रेस के किसी भी सदन में संशोधन का प्रस्ताव रखते हैं। उस पर साधारण विधायी प्रक्रिया के अनुसार विचार होता है और यदि वह उस सदन में २/३ के बहुमत से स्वीकृत हो जाता है तो उस पर दूसरे सदन में भी विचार होता है और वहाँ भी २/३ के बहुमत से स्वीकृति हो जाने पर संशोधन प्रस्ताव प्रत्येक राज्य के कार्यपालिका अध्यक्ष के पास जाता है, वह उसे सम्पुष्टि के लिए राज्य की विधायिका के पास भेज देता है या सम्मेलन बुलाने की कार्यवाही की जाती है। ३/४ राज्यों द्वारा सम्पुष्टि हो जाने पर संशोधन लागू हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि संशोधन के विषय में राष्ट्रपति का कोई भाग नहीं है। संविधान में यह बात भी स्पष्ट की गई है कि किसी राज्य को उसकी सहमति के बिना सीनेट में प्रतिनिधित्व की समता के अधिकार से वंचित न किया जा सकेगा।

संशोधन विधि की समालोचना—इस विधि पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करने पर ये बातें सामने आती हैं—(१) कुछ लेखकों के अनुसार संशोधन-विधि अति धीमी तथा कठिन है। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि इतने लम्बे काल में अब तक केवल २६ संशोधन हुए हैं और प्रथम १० संशोधन सामूहिक रूप से एक के बराबर हैं, क्योंकि उनमें नागरिकों के अधिकारों का वर्णन है। साथ ही किसी संशोधन की सम्पुष्टि केवल १३ राज्यों के विरोध से रुक सकती है। परन्तु कुछ लेखकों ने इस विधि को अधिक सरल बताया है। संविधान में आवश्यकतानुसार संशोधन हुए हैं और कोई विशेष कठिनाई सामने नहीं आई है। हम इस मत को उचित मानते हैं कि संशोधन विधि न तो अधिक कठोर है और न अधिक सरल ही है। (२) कुछ विचारकों के मतानुसार संशोधन विधि का आधार पूर्णत: प्रजातन्त्रात्मक नहीं है, क्योंकि इसमें (स्विटजरलैंड की तरह) जनता को प्रस्तावाधिकार तथा लोक निर्णय द्वारा संशोधनों की सम्पुष्टि करने के अधिकार नहीं हैं। हमारे विचार में इन अधिकारों का होना सं० रा० अमरीका जैसे बड़े राज्य में अनावश्यक तथा व्यावहारिक कठिनाइयों से युक्त होता। (३) संशोधन विधि में प्रयुक्त शब्दावली जैसे सदनों के २/३ सदस्य दोषपूर्ण हैं; क्योंकि इसमें २/३ उपस्थित सदस्य तथा कुल संख्या के २/३ सदस्य दोनों ही अर्थ निकलते हैं।

अब तक हुए मुख्य संशोधन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—प्रथम १० संशोधनों को तो संघ सरकार के निर्माण के बाद ही सन् १७९१ में जोड़ा गया था। उन्हें कभी-कभी सामूहिक रूप में एक संशोधन समझा जाता है; क्योंकि उनका सम्बन्ध नागरिकों के अधिकारों से है। वास्तव में, प्रथम ८ संशोधन तो वे हैं जिन्हें साधारणतया नागरिकों के अधिकार-पत्र में सम्मिलित किया जाता है। ९वें संशोधन में यह कहा गया है कि 'संविधान में कुछ अधिकारों के प्रगणन का नागरिकों

के अन्य अधिकारों पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा १०वें संशोधन में स्पष्ट किया गया है कि जिन शक्तियों को संविधान द्वारा सं० रा० अमरीका को नहीं सौंपा गया और जिन्हें संविधान द्वारा राज्यों को मना नहीं किया गया, वे क्रमशः राज्यों तथा जनता के लिये आरक्षित हैं। १२वें संशोधन में कहा गया है कि राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन पृथक हो। १३वाँ, १४वाँ, और १५वाँ संशोधन मिलकर **गृह-युद्ध संशोधन** कहलाते हैं। १३वें संशोधन से सन् १८६५ में दासता की मनाही की। १४वें संशोधन द्वारा नीग्रो जाति के लोगों को भी नागरिकता के अधिकारों व उन्मुक्तियों की गारण्टी दी गई। १५वें संशोधन में प्राविधान है कि न तो सं० रा० अमरीका और न कोई राज्य ही किसी भी नागरिक को 'मूल-जाति, रंग या दासता की पूर्व दशा' के कारण मताधिकार से वंचित करेंगे।

१६वां संशोधन आय के स्रोत का ध्यान करते हुए और उसे राज्यों में बाँटे बिना काँग्रेस को विभिन्न प्रकार के आय-कर लगाने की शक्ति देता है। १७वें संशोधन के अन्तर्गत सीनेटरों का चुनाव सन् १९१३ से अप्रत्यक्ष के स्थान पर प्रत्यक्ष विधि से होने लगा है। सन् १९१३ में ही १८वाँ संशोधन जुड़ा, जिसके अन्तर्गत नशा करने वाली शराब का बनाना, बेचना या परिवहन वर्जित किया गया, किन्तु सन् १९३३ में २१वें संशोधन से शराबबन्दी वाला संशोधन वापिस ले लिया गया, **१९वाँ, २०वाँ और २२वाँ संशोधन** क्रमशः १९२० और १९३३ में प्रभावी हुए। प्रथम के अनुसार स्त्रियों के विरुद्ध मताधिकार सम्बन्धी भेद-भाव का अन्त किया गया अर्थात् स्त्रियों को भी पुरुषों के समान मताधिकार मिला। २०वें संशोधन ने राष्ट्रपति के कार्यकाल का आरम्भ ४ मार्च के स्थान पर २० जनवरी कर दिया। २२वें संशोधन ने सन् १९५१ में राष्ट्रपति के कार्यकाल को २ अवधियों अर्थात् ८ वर्ष के लिए सीमित कर दिया है। सन् १९६१ में हुए २३वें संशोधन के अनुसार अमरीकी सरकार की राजधानी के जिले को राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव हेतु उतने निर्वाचक नियुक्त करने का अधिकार मिला है जितने कि उसका प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य प्रतिनिधि सदन और सीनेट में होते, यदि वह एक राज्य होता। सन् १९६४ में लागू हुए २४वें संशोधन में सभी नागरिकों के इस अधिकार को माना है कि वे राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के लिए प्राइमरी अथवा चुनाव में भाग ले सकेंगे, चाहे उन्होंने पोल या कोई अन्य कर न चुकाया हो। इस धारा को लागू करने के लिये कांग्रेस उपयुक्त कानून बना सकेगी। २५वें संशोधन ने राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति पद के उत्तराधिकार के लिये समुचित व्यवस्था की है।

यहाँ यह उचित होगा कि सं० रा० अमरीका और ग्रेट-ब्रिटेन के संविधानों (अथवा शासन पद्धतियों) की मुख्य बातों पर एक तुलनात्मक दृष्टि डाली जाये। प्रथम, जबकि सं० रा० अमरीका का संविधान प्रधानतः लिखित है, ग्रेट ब्रिटेन का संविधान प्रधानतः अलिखित है। इसी कारण सं० रा० अमरीका की शासन-पद्धति की अपेक्षा ग्रेट-ब्रिटेन के शासन में अभिसमयों की संख्या और उनका महत्व

अधिक है। ग्रेट-ब्रिटेन में पार्लियामेंट सर्वोपरि है, वह संवैधानिक कानून उसी प्रकार से बनाती है जैसे अन्य साधारण कानून। इसीलिए ब्रिटेन के संविधान को संसार का सर्वाधिक सुपरिवर्तनीय संविधान माना जाता है। इसके विपरीत सं० रा० अमरीका में संविधान की सर्वोपरिता है और न्यायपालिका उसकी संरक्षक है। सं० रा० अमरीका में न्यायिक पुनर्वलोकन के सिद्धान्त का बड़ा महत्व है और संविधान में संशोधन की प्रक्रिया कठिन है। (३) सं० रा० अमरीका की शासन पद्धति संघात्मक है, ग्रेट ब्रिटेन की शासन पद्धति एकात्मक है। (४) सं० रा० अमरीका में अध्यक्षात्मक कार्यपालिका है, जिसका आधार शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त है। इसके विपरीत ग्रेट ब्रिटेन में संसदात्मक कार्यपालिका है और विभिन्न कारणों से शासन शक्तियाँ उसमें केन्द्रीभूत हो गई हैं।

अन्त में, पूर्वोक्त विवेचन के आधार पर यह कहना सत्य है कि सं० रा० अमरीका का संविधान एक जीता-जागता आलेख है। यद्यपि यह लिखित संविधान है, जिसमें संशोधन भी बहुत कम हुए हैं, फिर भी इसने अमरीकी राष्ट्र के साथ-साथ प्रगति की है। इसने उन्हें अधिकतम स्वतन्त्रता प्रदान करते हुए ऐसी व्यवस्था प्रदान की है जिसके द्वारा आन्तरिक समस्यायें बिना हिंसा के हल की जा सकें और राष्ट्रीय आकांक्षायें पूरी हो सकें। आवश्यकतानुसार इसमें समय-समय पर संशोधन होते रहे हैं; परन्तु बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार संविधान को उपयुक्त बनाये रखने में न्यायिक निर्वाचन, कार्यपालिका और विधायिका द्वारा विस्तृत किये जाने तथा प्रथाओं और चलनों का महत्व संशोधन से भी अधिक है। अस्तु, हम कह सकते हैं कि अमरीकी संविधान, ब्रिटेन के संविधान की भाँति एक जीवित और उर्वर पद्धति है।

३. संघ का स्वरूप

सं० रा० अमरीका के संघान्तरित राज्य—इस समय सं० रा० अमरीका के संघ में ५० राज्य हैं। इन राज्यों में क्षेत्रफल, जनसंख्या और आर्थिक साधनों की दृष्टि से बहुत सी विभिन्नतायें हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से र्होड द्वीप सबसे छोटा और टेक्सास सबसे बड़ा राज्य है। जनसंख्या की दृष्टि से सन् १९४० की जनगणना के अनुसार नेवादा और न्यूयार्क की जनसख्या क्रमश: १,१०,२४७ और १,३४,७९ १४२ थी। जलवायु और आर्थिक साधनों की दृष्टि से विभिन्न राज्यों में अनेक प्रकार के अन्तर हैं। दक्षिणी राज्यों की जलवायु गर्म है और पश्चिमी राज्यों की अपेक्षा पूर्वी राज्य औद्योगिक विकास में बहुत बढ़े हुए हैं।

राज्यों का संघ में प्रवेश—संविधान की धारा ४, सैक्शन ३ के अन्तर्गत कांग्रेस को नये राज्यों के प्रवेश के बारे में पूर्ण शक्ति प्राप्त है। जब किसी प्रदेश की जनसंख्या कम से कम ६०,००० हो जाये, तो वहाँ की जनता कांग्रेस से उसे नया राज्य मनवाने के लिये प्रार्थना कर सकती है। प्रवेश प्रक्रिया में साधारणतया ये पग अन्तर्ग्रस्त हैं—(१) उस प्रदेश का शासन संगठित किया जाता है। (२) प्रदेश

संघ में सम्मिलित होने के लिये प्रार्थना-पत्र देता है। (३) कांग्रेस कानून बनाती है, जिसमें उस प्रदेश के लिये अपना संविधान बनाने की रूपरेखा दी जाती है। (४) प्रदेश संविधान बनाता है। (५) कांग्रेस प्रवेश के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास करती है। कांग्रेस किसी प्रदेश की प्रार्थना स्वीकार करने से पूर्व कुछ शर्तें पूरी करा सकती है। अलास्का और हवाई द्वीप समूह सं० रा० अमरीका के नये राज्य हैं।

संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन—संविधान द्वारा संघ सरकार और राज्य सरकारों की शक्तियाँ विभाजित कर दी गई हैं। शक्तियों का विभाजन इन आधारों पर हुआ है—(१) संघ सरकार को अनेक महत्वपूर्ण शक्तियाँ स्पष्ट रूप से संविधान द्वारा दी गई हैं। (२) संघ सरकार को कुछ निहित शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। (३) कुछ शक्तियाँ ऐसी हैं जो राज्य के लिए आरक्षित हैं। (४) कुछ शक्तियाँ समवर्ती हैं अर्थात् जिनका प्रयोग संघ व राज्य सरकारें कर सकती हैं। (५) कुछ शक्तियों की मनाई संघ सरकार को की गई है। (६) कुछ शक्तियों की मनाई राज्य सरकारों को की गई है। इन आधारों पर शक्तियों का संवैधानिक वितरण निम्न प्रकार है :

संघ सरकार (कांग्रेस) को दी गई

१. कर लगाना।
२. ऋण लेना और सिक्के बनाना।
३. डाकखाने और डाक-मार्ग स्थापित करना।
४. पेटेण्ट और कॉपीराइट स्वीकार करना।
५. युद्ध घोषित करना।
६. अन्तर्राज्य और वैदेशिक वाणिज्य के विनियमित करना।
७. सेना रखना।
८. नाप और तौल के मान नियत करना।
९. नाविक बेड़ा रखना।
१०. वैदेशिक सम्बन्धों को विनियमित करना

राज्यों के लिये आरक्षित

१. राज्य के भीतर वाणिज्य को विनियमित करना।
२. स्थानीय शासन स्थापित करना।
३. जीवन व सम्पत्ति की रक्षा करना और व्यवस्था बनाये रखना।
४. स्वास्थ्य, सुरक्षा और नैतिक आचार की रक्षा करना।
५. चुनाव कराना।
६. संशोधनों की सम्पुष्टि करना।
७. राज्य संविधान और शासन को बदलना।

कांग्रेस के लिये जिनकी मनाई की गई है

१. निर्यात पर कर न लगाना।
२. प्रत्यक्ष कर राज्यों की जनसंख्या के अनुपात में ही हों
३. अप्रत्यक्ष कर एकरूप हों।
४. राज्य की सीमाओं में अन्य सम्बन्धित राज्यों की सहमति

५. अधिकार-पत्र में दी गई प्रत्याभूतियों को सीमित किया जाये।

के बिना परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

६. दासता की प्रथा की आज्ञा नहीं दी जा सकती।

निहित शक्तियाँ

१. कर लगाने व ऋण लेने की शक्ति के अन्तर्गत बैंक और अन्य निगम स्थापित करना।

२. डाक-मार्ग स्थापित करने और सामान्य कल्याण की व्यवस्था करने की शक्तियों के अन्तर्गत मार्गों, स्कूलों, स्वास्थ्य और बीमे आदि की व्यवस्था और व्यय करना।

३. सेना और नाविक सेना रखने की शक्तियों के अन्तर्गत सैनिक और नाविक शिक्षण संस्थायें कायम करना।

समवर्ती शक्तियाँ

१. काँग्रेस और राज्य दोनों ही कर लगा सकते हैं।

२. दोनों ऋण ले सकते हैं।

३. दोनों कानून बना सकते और लागू कर सकते हैं।

४. दोनों न्यायालय कायम कर सकते हैं।

५. सार्वजनिक प्रयोजनों के लिये दोनों ही सम्पत्ति अर्जित कर सकते हैं।

राज्यों के लिये मनाई की गई है

१. सिक्के नहीं बना सकते और शान्ति काल में युद्ध-सेना नहीं रख सकते।

२. सन्धियाँ नहीं कर सकते।

३. संघीय संविधान और कानूनों में बाधा नहीं डाल सकते।

४. व्यक्तियों को कानूनों के समरक्षण से वंचित नहीं रख सकते।

५. आयात व निर्यात पर कर नहीं लगा सकते।

सर्वोपरि सत्ता का अधिवास—जिस समय संघ का निर्माण हुआ, विभिन्न राज्य स्वतन्त्र और प्रभुतापूर्ण थे। संघ निर्माण के बाद से संविधान सर्वोपरि कानून है, यद्यपि कुछ विचारकों का प्रारम्भिक काल में यह मत रहा कि संघ सरकार की शक्तियाँ राज्यों द्वारा सौंपी गई थीं, अतएव वह सम्प्रभू नहीं हो सकतीं तथा जो शक्तियाँ राज्यों के पास अवशिष्ट रहीं उस क्षेत्र में राज्य ही सम्प्रभू रहे। वर्तमान स्थिति यह है कि कानून की दृष्टि से संविधान सर्वोपरि है और अपने-अपने क्षेत्र में संघ व राज्य सरकारें सम्प्रभू हैं। वास्तव में देखा जाये तो, जैसा स्वतन्त्रता की

घोषणा में कहा गया है, सभी सरकारें अपनी शक्तियाँ शासितों की सहमति से प्राप्त करती हैं। अतः अन्तिम सत्ता अथवा प्रभुता जनता में निहित है, सरकारें तो केवल उसका प्रयोग करती हैं। अब यथार्थ स्थिति यह है कि प्रभुता का अधिवास कहीं भी हो, संघ सरकार की सर्वोपरिता स्थापित हो गई है।

संघ सरकार की शक्तियों में वृद्धि—विभिन्न कारणों से संघ सरकार की सत्ता में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। इन कारणों का उल्लेख यहाँ किया जाना उचित और आवश्यक प्रतीत होता है—(१) संघ सरकार को सौंपी गई शक्तियों का प्रयोग सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र और सभी नागरिकों के ऊपर किया जाता है। स्वभावतः उसकी शक्तियों का राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है। वर्तमान युग में सभी देशों में केन्द्रीयकरण की दिशा में वृद्धि हुई और यह बात सं० रा० अमरीका के सम्बन्ध में पूर्णतः सत्य है। वैदेशिक सम्बन्धों और अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास के परिणाम-स्वरूप संघ सरकार की शक्तियों का महत्व बढ़ गया है। (२) संघ सरकार की स्थापना से पृथक्कत्व की भावना कम हुई और राष्ट्रीय एकता बहुत सीमा तक सुदृढ़ हो गई है। गृह-युद्ध के परिणाम राष्ट्रीयता को सुदृढ़ बनाने वाले सिद्ध हुए। संघ सरकार के प्रायः सभी विभागों ने राष्ट्रीयता, केन्द्रीयकरण व एकत्व की प्रवृत्तियों को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है। (३) निहित शक्तियों के सिद्धान्त के अनुसार संघ सरकार की शक्तियों का विस्तार बहुत बढ़ गया है।[1]

(४) विश्व-युद्धों तथा राष्ट्रीय आपातों के दौरान संघ सरकार की शक्तियों में विशेष रूप से वृद्धि हुई है। (५) संघ सरकार राज्यों को बहुत से कार्यों के लिए अनुदान देती है। इस अनुदान पद्धति से संघ सरकार के कार्यों का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत हो गया है और उसका महत्व भी अत्यधिक बढ़ा है। संघ सरकार राज्यों को बहुत से कार्यों व योजनाओं के लिए पूर्ण धन-राशि अनुदान के रूप में देती है या कुल व्यय का कुछ प्रतिशत देती है और शेष व्यय राज्य सरकारें करती हैं। इन कार्यों व योजनाओं के संचालन की देख-रेख में संघ सरकार का कम या अधिक भाग रहता है। इस पद्धति के द्वारा सं० रा० अमरीका में एक प्रकार से सहयोगी-संघवाद का विकास हुआ है। (६) लगभग गत १०० वर्षों में राष्ट्रपति के पद के महत्व और उसकी प्रतिष्ठा में अत्यधिक वृद्धि हुई है। एक प्रकार से राष्ट्रपति का चुनाव जनता द्वारा होने लगा है और सम्पूर्ण अमरीका राष्ट्रपति के नेतृत्व को स्वीकार करने लगा है। इन सब कारणों से संघ सरकार के कार्यों व अधिकारों में

1. 'The centralization of power in the federal government has taken place largely through Acts of Congress and the Supreme Court interpretation of many of these Acts Congress has made wide use of implied powers and has given the expressed powers a liberal interpretation.'
—*H. Ader*, American Government, p. 103.

आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। ब्रोगन के अनुसार सं० रा० अमरीका का संवैधानिक इतिहास राज्यों की महत्वपूर्ण शक्तियों के संघ सरकार को हस्तांतरण की लम्बी प्रक्रिया है।[1]

४. नागरिकों के अधिकार

नागरिक (civil) अधिकार—सं० रा० अमरीका के संविधान निर्माताओं का आरम्भ से ही यह विश्वास रहा है कि व्यक्तियों के कुछ अधिकार अनपहरणीय होते हैं। इसी उद्देश्य से उन्होंने संविधान में सीमित शासन के सिद्धान्त को अपनाया अर्थात् सरकारों पर विभिन्न प्रकार की सीमायें लगाईं। संविधान के कई अनुच्छेदों में कहा गया है कि 'संघ सरकार ऐसा कानून न बनायेगी…' अथवा 'कोई राज्य ऐसा न करेगा…।' मौलिक संवैधानिक आलेख में नागरिकों के अधिकारों का प्रगणन न किया गया था, अतएव इस कमी को प्रथम १० संशोधनों द्वारा पूरा किया गया। इसी कारण इन दसों संशोधनों को नागरिकों के अधिकारों का अधिकार-पत्र (Bill of Rights) कहते हैं। नागरिकों को बहुत से अधिकार संविधान अथवा संघ सरकार से प्राप्त हैं, साथ ही राज्यों के संविधान भी नागरिकों को कुछ अधिकार प्रदान करतें हैं। उदाहरण के लिए जूरी द्वारा मुकदमे की सुनवाई का संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार संघीय न्यायालयों में ही लागू हो सकता है, किन्तु अधिकतर राज्यों के संविधानों ने अपने-अपने क्षेत्र में अर्थात् राज्य कानूनों के लिए भी इस अधिकार को प्रदान किया है। यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार पूर्ण नहीं हैं अर्थात् उनके दुरुपयोग को रोकने के उद्देश्य से उन पर प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं, विशेष रूप से युद्ध काल में। यहाँ यह भी बताना उचित होगा कि संविधान में मताधिकार तथा सरकारी पद धारण करने, आदि का समावेश नहीं है।

व्यक्तिगत अधिकार—इस समूह में सम्मिलित मुख्य अधिकार, जिन्हें सामूहिक रूप से जीवन और स्वतन्त्रता के अधिकार कह सकते हैं, इस प्रकार हैं—
धर्म की स्वतन्त्रता—प्रथम संशोधन में कहा गया है कि काँग्रेस किसी धर्म की स्थापना के विषय में कोई कानून न बनायेगी और न ही उसके स्वतंन्त्र रूप से पालन करने की मनाई करेगी। **भाषण व लेखन की स्वतन्त्रता**—पाँचवें संशोधन में व्यवस्था है कि काँग्रेस कोई ऐसा कानून न बनायेगी जिससे भाषण व लेखन की स्वतन्त्रता कम की जा सके। **सभा करने और याचिका देने की स्वतन्त्रता**—इन अधिकारों की प्रत्याभूति प्रथम और १४वें संशोधनों द्वारा दी गई है। इनके अनुसार यह आवश्यक है कि सभा शान्तिपूर्ण हो और याचना का उद्देश्य वैध हो और उससे

1. 'American constitutional history has been one long process of transfering the more important functions of government from the States to the union.' —*D. W. Brogan*, The American Political System. p. 13.

सार्वजनिक सुरक्षा को खतरा न हो। **शस्त्र रखने का अधिकार**—संविधान के दूसरे संशोधन में कहा गया है : 'राज्य की सुरक्षा के लिए एक अच्छी विनियमित सैन्य शक्ति आवश्यक है, किन्तु नागरिकों का शस्त्र धारण करने का अधिकार कम न किया जायेगा। **उच्चता की उपाधियों की मनाई**—समता बनाये रखने के उद्देश्य से संविधान कहता है कि राष्ट्रीय तथा राज्य सरकारें व्यक्तियों को इस प्रकार की उपाधियाँ न प्रदान करेंगी, किन्तु अमरीकन नागरिक विदेशी उपाधियाँ स्वीकार कर सकते हैं। **दासता की मनाई**—१३वें संशोधन में दासता की मनाई की गई है।

शिक्षा का समान अधिकार—हाल में संघीय न्यायालयों ने १४वें संशोधन के अन्तर्गत नीग्रो जाति के लोगों के लिए समान शिक्षा के अधिकार को स्वीकार किया है। सन् १९५४ के निर्णयों ने विद्यालयों में भेदभाव का अन्त कर दिया है अर्थात् नीग्रो जाति के लोगों को सभी उच्च विद्यालयों में बिना भेद-भाव के शिक्षा पाने का अधिकार प्राप्त हो गया है। पहले उनके लिए अलग विद्यालयों की व्यवस्था थी।

कानूनों व कानूनी प्रक्रिया के सम्बन्ध में अधिकार—सर्वप्रथम, १४वें संशोधन के अन्तर्गत सं० रा० अमरीका के सभी नागरिकों को चाहे वे घर पर रहें या सं० रा० अमरीका के राज्य-क्षेत्र में कहीं भी जायें, कानूनों का समरक्षण प्राप्त है। दूसरा, नागरिकों को **बिल्स ऑफ अटेंडर** और **एक्स पोस्ट फेक्टो** से स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। बिल ऑफ अटेंडर ऐसा कानून होता है जो किसी अपराधी को बिना कानूनी कार्यवाही के दण्डित करने का अधिकार दे। राष्ट्रीय या राज्य सरकारें अपराधियों को अदालत में कार्यवाही के बाद ही दण्ड दे सकती हैं और यह दण्ड अपराधी के सम्बन्धी तक विस्तृत नहीं हो सकता। एक्स पोस्ट फेक्टो कानून बाद में बना होता है जो किसी कार्य को अपराध ठहराये जबकि वह कार्य करते समय अपराध न था या अपराध को पहले की अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर घोषित करे और अपराधी को अधिक कठोर दण्ड देने के लिए बना हो।[1]

तीसरा, **बन्दी प्रत्यक्षीकरण का लेख** (Writ of Habeas Cropus)—राष्ट्रीय संविधान राष्ट्रीय सरकार को विद्रोह या आक्रमण के सिवाय, जबकि सार्वजनिक सुरक्षा के लिए ऐसा करना आवश्यक हो, इस लेख के विशेषाधिकार को निलम्बित करने की मनाई करता है। इस अधिकार के बिना सेना या पुलिस चाहे जिस व्यक्ति को बन्दी बनाकर उसे अनिश्चित काल तक बिना मुकदमा चलाये बन्दी-गृह

1. 'A bill of attainder is a legislative act which inflicts punishment without a judicial trial. An ex post facto law makes a deed criminal which was innocent when done before passage of the law or aggravates a crime after its commission.'

में बन्द रख सकते हैं। चौथा, अपराधियों को शीघ्र एवं सार्वजनिक मुकदमों की सुनवाई का अधिकार है। पाँचवाँ, अभियुक्तों को अपने बचाव के लिए गवाही पेश करने, वकील करने, जूरी द्वारा मुकदमे की सुनवाई कराने के अधिकार भी प्राप्त हैं। अन्त में, सबसे महत्वपूर्ण अधिकार उचित कानूनी प्रक्रिया (due process of law) का है। पाँचवें संशोधन में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को उसके जीवन, स्वतन्त्रता व सम्पत्ति से बिना उचित कानूनी प्रक्रिया के वंचित न किया जायेगा। उचित कानूनी प्रक्रिया में साधारणतया ये बातें आती हैं—(अ) मुकदमे की अच्छी प्रकार से सुनवाई; (आ) न्यायालय या मुकदमा सुनने वाले अधिकारी को कानून द्वारा उसकी सुनवाई का अधिकार हो; (इ) अभियुक्त को अपना बचाव पेश करने का अवसर दिया जाये, और (ई) उसे गवाहों तथा वकीलों, आदि से सहायता पाने का अधिकार हो।

सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार—सं० रा० अमरीका में निजी सम्पत्ति का अधिकार सुरक्षित है; संविधान कहता है कि किसी व्यक्ति की निजी सम्पत्ति सार्वजनिक प्रयोग के लिए उचित प्रतिकर दिए बिना संघ सरकार नहीं ले सकती। ऐसा अधिकार राज्यों के संविधानों में भी है। इसके अतिरिक्त संविधान में यह भी प्राविधान है कि संघ व राज्य सरकारें इकरार के दायित्वों को कम नहीं कर सकतीं।

सन् १९५७ और १९६४ के नागरिक अधिकार कानून—सन् १९४६ में राष्ट्रपति ट्रूमेन द्वारा बैठाई गई नागरिक अधिकार समिति से आरम्भ करके राष्ट्रीय सरकार अल्पसंख्यक समूहों, विशेषकर नीग्रो जाति के सदस्यों, की रक्षा के लिए अपनी भूमिका को बढ़ाती रही है। राष्ट्रपति ट्रूमेन और आइजनहावर के कार्यपालिका आदेशों के बाद प्रगतिशील रूप से व्यापक सन् १९५७ और १९६४ के नागरिक अधिकार कानून बने। उन कानूनों ने राष्ट्रीय सरकार द्वारा नागरिक अधिकारों के रक्षण को निम्नलिखित प्रकार से विस्तृत किया : (१) न्याय विभाग के नागरिक अधिकार कार्यों को एक सहायक एटॉर्नी-जनरल के अधीन प्रमुख इकाई के स्तर तक उठा दिया। (२) एक नागरिक अधिकार आयोग स्थापित किया जिसके कार्य नागरिक अधिकार सम्बन्धी विधायन की छानबीन व मूल्यांकन करना तथा ऐसे कानूनों को लागू करना है। (३) सार्वजनिक स्थानों, मतदान और शिक्षण में संघ द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों को सुदृढ़ बनाना। (४) न्याय विभाग की शक्तियों को बढ़ाना जिससे कि वह नागरिक अधिकारों के क्षेत्र में अपनी पहल पर निषेधादेश तथा अन्य न्यायिक कार्यवाही द्वारा कार्य कर सके।

नागरिकों के दायित्व—इनकी सूची बनाना कठिन कार्य है। संविधान में सोवियत संघ के संविधान की तरह से नागरिकों के कर्त्तव्यों का वर्णन नहीं है। परन्तु प्रजातन्त्र में नागरिकों को अपने दायित्वों का पालन करना होता है। उनके कुछ दायित्व स्पष्ट हैं, यथा कर देना, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा में सहयोग देना और

कानूनों का पालन करना। अन्य अस्पष्ट दायित्व भी हैं जैसे नागरिकों को भाषण, लेखन, धर्म पालन की स्वतन्त्रता के अधिकार प्राप्त हैं, उनका यह कर्त्तव्य भी है कि वे दूसरों के इन अधिकारों का पूरा ध्यान रखें तथा स्वयं इनका उचित उपभोग कर।

५. मताधिकार

संयुक्त राज्य अमरीका में मताधिकार की एकरूपता नहीं है क्योंकि वहाँ पर भारत की तरह सब नागरिकों को संविधान से मताधिकार नहीं मिला है। वास्तव में जब संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान बना था, उस समय वयस्क मताधिकार, नीग्रो व स्त्रियों के लिए समान मताधिकार के विचार भी निर्माताओं के ध्यान में न थे। संविधान ने तो मताधिकार पर नियन्त्रण राज्यों को सौंपा हुआ है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय हैं कि सं० रा० अमरीका में नागरिक व मतदाता होना एक ही बात नहीं है अर्थात् बहुत से व्यक्ति नागरिक हैं किन्तु मतदाता नहीं हैं। २१ वर्ष से कम आयु वाले व्यक्तियों को तो मताधिकार प्राप्त है ही नहीं; फिर भी मतदाता केवल वे ही नागरिक हैं जिन्हें यह अधिकार प्राप्त हो गया है। मतदाताओं के प्रतिशत में क्रमिक रूप से विकास हुआ है और अब प्रायः सभी वयस्क मतदाता हैं।

नीग्रो मताधिकार—गृह-युद्ध के बाद १५वाँ और १६वाँ संशोधन पास किये गये, जिन्होंने नीग्रो जाति के लिए मताधिकार का मार्ग खोला। काँग्रेस ने सन् १८६७ के पुनर्निर्माण कानून द्वारा दक्षिणी राज्यों पर नीग्रो मताधिकार लागू किया और सन् १८७० में १५वें संशोधन ने राज्यों को 'मूल जाति, रंग अथवा दासता की पूर्व दशा के आधार पर किसी नागरिक को मताधिकार से वंचित करने की मनाई कर दी।' फिर भी नीग्रो मताधिकार का विकास बहुत धीमे हुआ; क्योंकि विभिन्न राज्यों ने इस सम्बन्ध में कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये। वास्तव में, दक्षिण राज्य नीग्रो जाति को मताधिकार देने के विरुद्ध थे, अतएव उन्होंने संविधान की धाराओं से बचने के उपाय निकाले। कुछ दक्षिणी राज्यों ने 'महाजनक अनुच्छेद' का प्रयोग किया। इसके अन्तर्गत साक्षरता सम्बन्धी शर्त उन नागरिकों के मताधिकार पर लागू न की गई जिन्हें स्वयं या जिनके जनकों अथवा महाजनकों को १ जनवरी १८६७ से पूर्व मताधिकार प्राप्त था। परन्तु कुछ ही समय बाद इस प्रतिबन्ध को संघीय न्यायालय ने अवैध घोषित कर दिया।

पोल टैक्स तथा गोरों की प्राइमरी—कुछ राज्यों ने निवास व पोल टैक्स के सम्बन्ध में कठोर नियम बनाये। २–३ वर्ष के निवास की शर्त नीग्रो जाति के अधिकतर घूमने-फिरने वाले व्यक्ति पूरा न कर सके। ऐसे ही नीग्रो जाति के बड़े भाग ने पोल टैक्स समय पर जमा न किया, विशेष रूप से इस कारण भी कि गोरे कर एकत्रित करने वालों ने इसे जमा करने में दबाव न डाला, यहाँ तक कि

नोटिस भी न भेजा। इस प्रकार नीग्रो जाति के बहुसंख्यक नागरिकों को मताधिकार से वंचित रक्खा गया।

गोरी प्राइमरी—यद्यपि नीग्रो जाति के नागरिकों के नाम मतदाता सूची में लिख लिए जाते हैं, फिर भी उन्हें निर्वाचनों में भाग लेने से वंचित रक्खा जाता है। यह कार्य दलीय संगठन द्वारा किया जाता है। दक्षिण के अधिकतर राज्य डेमोक्रेटिक दल के समर्थक हैं; जो उम्मीदवार उस दल के प्राइमरी चुनाव में नामजदगी कराने में सफल हो जाते हैं, वे चुनाव में भी जीत जाते हैं। इसलिए टेक्सास राज्य ने सन् १६२३ में यह चाल अपनाई कि दल की प्राइमरी में नीग्रो मतदाताओं को भाग न लेने दिया जाए। परन्तु उस प्रश्न पर भी सर्वोच्च न्यायालय ने हस्तक्षेप किया और इस प्राविधान को इस आधार पर अवैध ठहराया कि यह नीग्रो जाति के सदस्यों को कानूनों का समान रक्षण प्रदान न करता था।

अन्त में, यद्यपि नीग्रो जाति के सदस्यों के नाम मतदाता सूची में लिख लिए जाते हैं और उन्हें प्राइमरी में भी भाग लेने से वंचित नहीं किया जाता, फिर भी उन्हें मतदान से अलग रखने का प्रयत्न किया जाता है। उन्हें यह सिद्ध करने के लिए कहा जाता है कि उन्हें कभी भी किसी अपराध के लिए दण्डित नहीं किया गया; उन्हें पोलिंग अधिकारी डराते व धमकाते हैं; या उन्हें मतदान से पूर्व धमकी दी जाती है कि वह मतदान में भाग न लें। परन्तु अब ये चालें प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो रही हैं; क्योंकि नीग्रो जाति में भी चेतना उत्पन्न हो गई है। अब सं० रा० अमरीका में प्रायः सर्वव्यापी मताधिकार स्थापित हो गया है।

मतदाता बनने के लिए नागरिक को निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं—(१) सं० रा० अमरीका का नागरिक होना। (२) कम से कम २१ वर्ष की आयु हो। (३) किसी राज्य अथवा स्थानीय क्षेत्र में विहित समय के लिए निवास की शर्तें पूरी करना। (४) जिन राज्यों में साक्षरता की शर्त है, पढ़ने और लिखने की योग्यता रखना। (५) जिन राज्यों में आवश्यक हो, करदाता होना। (६) किसी अन्य आधार पर अयोग्य न ठहराया जाना। (७) नियत समय के भीतर अपना नाम रजिस्टर कराना।

सन् १६६५ के मताधिकार कानून ने जिसका उद्देश्य मतदान में मूल जातीय भेदभाव का विलोपन है, ऐसे राज्यों व काउन्टियों में साक्षरता व अन्य समान योग्यता सम्बन्धी शर्तों को निलम्बित कर दिया जहाँ वे प्रथम नवम्बर १६६४ तक प्रभावी थीं तथा जहाँ मतदान आयु की जनसंख्या के ५० प्रतिशत से कम व्यक्ति मतदाता थे या मतदान में भाग लेते थे। राज्यों के कानूनों द्वारा राज्य और स्थानीय पोल करों का अन्त हो गया है। मार्च १६४६ में सर्वोच्च न्यायालय ने वर्जीनिया के पोल कर को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित किया कि वह १४वें संशोधन में समविष्ट 'कानून के समरक्षण अधिकार का अतिक्रमण करता था।'

उस निर्णय को अन्य राज्यों में पोल कर सम्बन्धी शर्तों को अवैध ठहराने के लिए पूर्णतया व्यापक समझा गया।

६. संयुक्त राज्य अमरीका की शासन-पद्धति के अध्ययन का महत्व

आज की विश्व राजनीति में सं० रा० अमरीका का प्रमुख स्थान है। यह पाश्चात्य देशों, विशेषकर साम्यवाद विरोधी राज्यों के समूह में सबसे महत्वपूर्ण है। प्रथम और दूसरे विश्व-युद्ध में मित्र-राष्ट्रों की विजय का श्रेय बहुत सीमा तक सं० रा० अमरीका को ही है। यह बात उल्लेखनीय है कि यह देश विश्व की नीति में सक्रिय रूप से प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान ही प्रविष्ट हुआ था; फिर भी सन् १६२० में स्थापित राष्ट्र संघ में, जिसकी स्थापना में राष्ट्रपति विल्सन का प्रमुख हाथ था, सं० रा० अमरीका सम्मिलित नहीं हुआ था, परन्तु वर्तमान संयुक्त-राष्ट्र-संघ का यह मुख्य संस्थापक तथा अत्यधिक प्रभावशाली सदस्य राष्ट्र है। सं० रा० अमरीका विज्ञान, उद्योग, समृद्धि और सैन्य शक्ति की दृष्टि से सब देशों में अग्रणी है और इसे वर्तमान महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में एक ओर इसके प्राकृतिक साधनों के निवासियों का बड़ा योग है, दूसरी ओर इसकी शासन पद्धति का योग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अस्तु, ऐसे राज्य की शासन पद्धति का अध्ययन केवल विद्यार्थियों के लिए ही नहीं वरन् राजनीति में साधारण अभिरुचि रखने वाले सभी व्यक्तियों के लिए उपयोगी है।

सं० रा० अमरीका की शासन पद्धति का आधार सन् १७८७ में निर्मित संविधान है। यह संविधान संसार का सबसे प्राचीन लिखित संविधान (oldest written constitution) है। यदि अमरीकी राष्ट्र अन्य राष्ट्रों की तुलना में अभी कम आयु वाला है, किन्तु उसका संविधान सबसे प्राचीन लिखित संविधान है, जो १८४ वर्ष पूर्व एक साधारण से खेतिहर देश के लिए बना था और जो अब संसार का सबसे अग्रणी राज्य है। 'सं० रा० अमरीका में संविधान उसी प्रकार से सम्मान का प्रतीक है जिस प्रकार कि ब्रिटेन में ताज है।'[1] इसी कारण संवैधानिक आलेखों में इस संविधान जैसा अन्य कोई लिखित संविधान महत्वपूर्ण नहीं है (*It has acquired significance almost unrivalled among constitutional documents*)। यद्यपि मौलिक सविधान में अब तक २२ संशोधन हो चुके हैं और अन्य प्रकार से भी यह विकसित हुआ है, फिर भी यह कथन सत्य है कि सं० रा० अमरीका की शासन-पद्धति सबसे पुरानी अपरिवर्तित शासन-व्यवस्था है, क्योंकि संविधान की मौलिक धाराओं और सिद्धान्तों में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

ब्रोगन के अनुसार यह संविधान अभी तक जीवित है, इसकी लोग सराहना करते हैं और अमरीकावासी तो इसे पूज्य मानते हैं। ऐसा उचित भी है, क्योंकि इस

1. 'In America there is no king, in his place there is the Constitution....'
—*H. Stannard*: The Two Constitutions, p. 19.

संविधान के अन्तर्गत स्थापित शासन-पद्धति के द्वारा अमरीकन राष्ट्र समृद्धिशाली और सुदृढ़ बना है, उसने अपनी स्वतन्त्रता और सुरक्षा की रक्षा की है तथा विश्व इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला है। अमरीकी शासन-पद्धति का आधारभूत तथ्य यह है कि विकृत होकर भी यह न कभी अत्याचारी बनी है और न ही अराजक। इस पद्धति के अन्तर्गत लगभग यूरोप के बराबर विशाल क्षेत्र में एकता स्थापित हुई है और यह बदलती हुई दशाओं में आशा से भी कहीं अधिक ढलती चली गई है।[1] संक्षेप में, यह शासन-पद्धति काफी मात्रा में सुदृढ़ और सुसंशोध्य (flexible) सिद्ध हुई है।

सन् १७८७ में १३ राज्यों के लिए बना संविधान संघात्मक प्रजातन्त्र (Federal Democracy) का अनूठा उदाहरण है। सं० रा० अमरीकी संघ आधुनिक युग का सबसे बड़ा सुन्दर और सफल संघ है, जिसके अन्तर्गत अब तक विशाल जन-समूह और ५० इकाई राज्य सुदृढ़ केन्द्रीय शासन और राज्य के क्षेत्र में स्वाधीन शासन का लाभ उठा रहे हैं। जिस समय यह संविधान और संघ बने थे, बहुत से व्यक्तियों को यह विश्वास था कि संघीय व्यवस्था सुदृढ़ न रहेगी, परन्तु इसकी सफलता से यह सिद्ध हो गया है कि संघीय व्यवस्था सुदृढ़ होने के साथ-साथ विशाल क्षेत्र और जनसंख्या वाले राज्यों के लिए बहुत अधिक उपयुक्त है। इसी कारण आज अनेक देशों ने संघ प्रणाली को अपनाया है। कनाडा, आस्ट्रेलिया और भारत ने संघीय व्यवस्था सं० रा० अमरीका से ही ली है।

सं० रा० अमरीका की शासन पद्धति की तीन अन्य विशेषताओं ने अनेक देशों की शासन-पद्धतियों को प्रभावित किया है। प्रथम गणतन्त्रीय प्रजातन्त्र (Republican Democracy) है, सं० रा० अमरीका की भाँति अनेक देशों ने राजत्व का अन्त करके गणतन्त्रीय शासन व्यवस्था को अपनाया है। वास्तव में, आजकल राज्यों के प्रमुख राजा के स्थान पर निर्वाचित राष्ट्रपति होने लगे हैं। फ्रांस, भारत, बर्मा, यू० ए० आर०, घाना और पाकिस्तान आदि सभी नए देशों ने गणतन्त्र शासन स्थापित किये हैं। दूसरे, अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली (presidential form of government) है। दक्षिण अमरीका के कई देशों ने इस प्रकार की शासन व्यवस्था को अपनाया है। तीसरे, न्यायपालिका की सर्वोपरिता (judicial

---

1. "It has survived, it has been admired and almost quite worshipped by those whom it most effected. And the 'people of the United States, under the Constitution and through the political system of which the Constitution is the core, have waxed strong and prosperous, have defended their own independence and security and have profoundly effected the history of the world.'

—*D. W. Brogan*: The American Political System, pp. v-vi.

supremacy) है। जिन राज्यों में वास्तविक संघीय व्यवस्था है, वहाँ पर इस सिद्धान्त को अपनाया गया है। भारत उनमें से प्रमुख है।

सं० रा० अमरीका अनेक राजनीतिक प्रयोगों की प्रयोगशाला है। अब तक सं० रा० अमरीका के राष्ट्रीय क्षेत्र में तथा राज्य व स्थानीय स्तरों पर शासन कला में बहुत से नवीन प्रयोग हुए हैं। उदाहरण के लिए सं० रा० अमरीका में सरकारी विभागों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के स्वतन्त्र अभिकरण (independent agencies), आर्थिक कार्यों के संचालन के लिए निगम (corporations) जैसे— टेनेसी वेली अथॉरिटी (T. V. A.), अन्तर्राज्य वाणिज्य कमीशन (Inter State Commerce Commission), स्थानीय शासन के क्षेत्र में आयोग योजना (Commission Plan) और कौन्सिल मैनेजर योजना (Council Manager Plan), इत्यादि।

डिमॉक के अनुसार सं० रा० अमरीका राजशास्त्र के अध्ययन के लिए एक आदर्श प्रयोगशाला है। प्रथम, यह एक वृहत् और विशाल राष्ट्र है, जिसमें व्यापक भौगोलिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। अमरीकी राष्ट्र में प्राय: सभी देशों से आए व्यक्ति सम्मिलित हैं, अमरीकी राष्ट्र के आकार और पेचीदगियों के कारण प्रयोग के लिए अनेक अवसर आए हैं। सं रा० अमरीका में केवल एक शासनिक प्रयोगशाला नहीं है, वरन् अनेक प्रयोगशालायें हैं। वहाँ पर स्थानीय शासन के बहुत से रूप हैं और राज्य सरकारों के भी विभिन्न रूप हैं। दूसरे, इसके साथ राजनीतिक विचारधाराओं और व्यवहार का संचित अनुभव है। मेडिसन, जेफरसन और हेमिल्टन जैसे राजनीतिज्ञ और विचारक हुए हैं। तीसरे, सं० रा० अमरीका शक्तियों के वितरण के अध्ययन के लिए एक अच्छी प्रयोगशाला है। अन्त में, सं० रा० अमरीका एक महान् औद्योगिक राष्ट्र होने के नाते शासन और व्यापार के बीच सम्बन्धों के अध्ययन के लिए सबसे अच्छा अवसर प्रदान करता है।[1]

पूर्वोक्त कारणों के अतिरिक्त, भारतीय विद्यार्थियों के लिए सं० रा० अमरीका की शासन-पद्धति के अध्ययन के लिए कुछ विशेष कारण ये हैं :— (अ) सं० रा० अमरीका आकार की दृष्टि से भारत से भी बड़ा है और वहाँ की जनसंख्या भी अधिक है। अमरीकी राष्ट्र, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, विभिन्न मूलवंशों, धर्मों, संस्कृतियों और देशों के वंशजों से मिलकर बना है। वहाँ

1. *W. B. Munro writes* : 'For more than a hundred years the United States has been serving as a great laboratory for political experimentation. In the nation, in the several states, and in the thousands of local areas, almost every conceivable experiment in the art of ruling people has been given a trial'

—The Government of the United States, p. 14,

अनेक विविधताओं के होते हुए भी एकता और राष्ट्रीयता की सुदृढ़ भावनायें पाई जाती हैं; भारत में भी विविधताओं के पीछे एक मूलभूत एकता है, जो अब पहले की *अपेक्षा अधिक सुदृढ़ होनी चाहिए।* (*आ*) *सं० रा० अमरीका की शासन-पद्धति से* हमने कई बातें ली हैं, जिनमें से प्रमुख ये हैं—संघात्मक शासन प्रणाली, न्याय-पालिका की सर्वोपरिता का सिद्धान्त, गणतन्त्रीय प्रजातन्त्र, उप-राष्ट्रपति का पद और राष्ट्रपति की कुछ शक्तियाँ। (इ) सं० रा० अमरीका के निवासियों का भारतीयों की तरह प्रजातन्त्र और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में विश्वास है, अर्थात् दोनों राष्ट्रों के राजनीतिक आदर्शों में बहुत समानता है। (ई) सं० रा० अमरीका के महान् नेताओं—जार्ज वाशिंगटन, अब्राहम लिंकन व फ्रेंकलिन रूजवेल्ट से भारतीय नेताओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रेरणा पाई।

३. राष्ट्रपति और उसका मंत्रिमण्डल

१. राष्ट्रपति का निर्वाचन, आदि

राष्ट्रपति का पद—सं० रा० अमरीका के शासन में राष्ट्रपति का पद सर्वाधिक महत्वपूर्ण, सम्मानित और शक्तिशाली है। वह राज्य और कार्यपालिका दोनों का ही अध्यक्ष है। एक दृष्टि से उसके पद में संसद् प्रणाली के अन्तर्गत राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष और वास्तविक कार्यपालिका के प्रमुख सरल शब्दों में, ब्रिटेन के राजा तथा प्रधान मन्त्री का मेल है। इसी कारण सं० रा० अमरीका के राष्ट्रपति का पद संसार के राजनीतिक क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सं० रा० अमरीका का राष्ट्रपति एक प्रकार से जनता द्वारा निर्वाचित पदाधिकारी होता है। यहाँ पर हम उसके निर्वाचन की प्रक्रिया का वर्णन करेंगे। राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया को भली प्रकार समझने के लिए हम उसका विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे—

संवैधानिक उपबन्ध—संविधान की दूसरी धारा में कहा गया है कि राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति का चुनाव 'निर्वाचक-मण्डल' द्वारा हो। इस मण्डल में प्रत्येक राज्य के निर्वाचकों की संख्या उस राज्य के सीनेटरों और प्रतिनिधि सदन में प्रतिनिधियों के जोड़ के बराबर होती है। मौलिक पद्धति के अनुसार निर्वाचक-मण्डल के सदस्यों का चुनाव अथवा उनकी छाँट प्रति चार वर्ष बाद प्रत्येक राज्य में उस प्रकार से होती थी जैसा कि वहाँ की विधायिका निर्देश देती थी। ये निर्वाचक अपने-अपने राज्यों में काँग्रेस द्वारा नियत समय पर एकत्रित होते थे और गुप्त मत-पत्र द्वारा दो व्यक्तियों के लिए मतदान करते थे। ये मत-पत्र बाद में काँग्रेस के पास भेजे जाते थे और उनकी गिनती दोनों सदनों के समक्ष की जाती थी। जिस व्यक्ति को सबसे अधिक मत प्राप्त होते थे वह राष्ट्रपति घोषित होता था और जिसको उससे कम मत मिलते थे वह उप-राष्ट्रपति घोषित होता था, परन्तु दोनों के लिए यह शर्त थी कि उनके मत आधे से अधिक हों। यदि किसी भी उम्मीदवार को बहुमत मिलता था तो प्रतिनिधि सदन सबसे अधिक मत पाने वाले उम्मीदवारों में से किसी एक को राष्ट्रपति चुन सकता था, परन्तु ऐसा करते समय प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों का केवल एक सामूहिक मत होता था।

मौलिक पद्धति में राष्ट्रपति व उप-राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों के नामजदगी के विषय में कोई उल्लेख नहीं था, किन्तु वर्तमान पद्धति में नामजदगी का महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में, यह दलीय पद्धति के विकास का परिणाम है। सन् १८४५ के एक राष्ट्रीय कानून के अनुसार तो यह आवश्यक है कि उनका चुनाव नवम्बर मास के प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार को हो (अर्थात् उस

वर्ष जबकि राष्ट्रपति का चुनाव होता है), परन्तु जहाँ तक उनकी छाँट के ढंग का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में कोई राष्ट्रव्यापी नियम नहीं बना है, क्योंकि यह अधिकार प्रत्येक राज्य की विधायिका को प्राप्त है। सन् १७६२ में निर्वाचकों का ६ राज्यों में विधायिकाओं द्वारा चुनाव हुआ और केवल ५ राज्यों में जनता द्वारा। परन्तु एक के बाद दूसरे राज्य में इनका चुनाव लोकप्रिय आधार पर होने लगा। अब सभी राज्यों में निर्वाचकों का चुनाव जनता द्वारा होता है। जनता निर्वाचकों का चुनाव करते समय दलों के प्रतिनिधियों को मत देती है और दलीय आधार पर चुने गए निर्वाचक अपना मत दल के आदेशानुसार देते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि अब भी राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से ५३५ निर्वाचकों द्वारा होता है, किन्तु अब वह वास्तव में **जनता द्वारा निर्वाचित कार्यपालिका का अध्यक्ष** (plebiscitary executive) है। राष्ट्रपति के निर्वाचन की वर्तमान पद्धति के दो मुख्य स्टेज हैं—प्रथम, नामजद किया जाना और दूसरा, निर्वाचकों का चुनाव तथा निर्वाचकों द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव।

राष्ट्रपति (व उप-राष्ट्रपति) की नामजदगी—इन महत्वपूर्ण पदों के लिए अपने-अपने उम्मीदवारों की नामजदगी दोनों प्रमुख दल **राष्ट्रीय सम्मेलनों** में करते हैं। सम्मेलन के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव होता है, जिसके लिए दलों ने आवश्यक नियम बनाए हुए हैं। आरम्भ में इन प्रतिनिधियों का चुनाव विभिन्न प्रकार से होता था—आम सभाओं, कॉकस, जिला व सम्मेलनों द्वारा। आगे चलकर रिपब्लिकन दल ने इनका चुनाव राष्ट्रीय सम्मेलन में करने की प्रथा डाली और डेमोक्रेटिक दल राज्य सम्मेलनों अथवा समितियों द्वारा इनके चुनाव के पक्ष में रहा, किन्तु सन् १९०० के बाद बहुत से राज्यों ने राज्य व स्थानीय अधिकारियों के चुनाव के लिए प्रत्यक्ष प्राइमरी (Direct primary) की पद्धति अपनाई और आगे चलकर इसी पद्धति को अधिकतर राज्यों ने राष्ट्रीय सम्मेलनों में अपने प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए अपनाया, परन्तु सन् १९१६ के बाद शेप राज्यों ने इस पद्धति को पसन्द नहीं किया। अतएव अब कुछ राज्यों में प्रतिनिधियों का चुनाव प्राइमरी द्वारा होता है और अन्य में क्षेत्रीय अथवा राज्य सम्मेलनों द्वारा।

राष्ट्रीय सम्मेलन—सिवाय इसके कि राज्य के कानून सम्मेलन के लिए प्रतिनिधियों की निर्वाचन पद्धति को विनियमित करते हैं, प्रत्येक दल यह निर्धारित करता है कि सम्मेलन की रचना किस प्रकार होगी। सम्मेलन में दल के नेता, पदाधिकारी, व्यापारी, वकील, पत्रकार, राज्यों के गवर्नर, वर्तमान तथा भूतकालीन सीनेटर, प्रतिनिधि सदन के सदस्य आदि भाग लेते हैं। सम्मेलन किसी बड़े नगर के बड़े हाल में होता है, जिसे खूब सजाया जाता है। सम्मेलन की कार्यवाही का आरम्भ ४ वर्ष पूर्व हुए सम्मेलन के नियमानुसार आरम्भ होता है और सम्मेलन ४ मुख्य समितियां नियुक्त करता है—(१) प्रमाणीकरण, (२) स्थायी सगठन, (३) नियम और कार्यक्रम, और (४) प्रस्ताव अथवा प्लेटफार्म। ये समितियां अपनी

रिपोर्ट देती हैं और उन्हें सम्मेलन के सामने पेश किया जाता है। अन्त में उम्मीदवारों के नाम घोषित होते हैं। दोनों ही दलों के सम्मेलनों में राष्ट्रपति व उप-राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों की नामजदगी की प्रणाली प्रायः एक समान है।

मतदान प्रक्रिया और मतगणना—जिस वर्ष राष्ट्रपति का निर्वाचन होता है, नवम्बर मास के प्रथम सोमवार के बाद वाले मंगलवार को संयुक्त राज्य अमरीका के लगभग ६ करोड़ मतदाता केन्द्रों पर राष्ट्रपति निर्वाचकों को चुनने के लिए जाते हैं। चुनाव से पूर्व प्रत्येक दल प्रत्येक राज्य के लिए अपने-अपने उम्मीदवारों की सूची निकाल देता है। २७ राज्यों में तो मत-पत्रों पर उम्मीदवारों के नाम भी नहीं दिए जाते; उनके स्थान पर मत-पत्रों पर केवल दलों के राष्ट्रपति व उप-राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों के नाम लिखे रहते हैं, इसे ही **'राष्ट्रपति लघु मत-पत्र'** कहते हैं। निर्वाचकों के चुनाव के बाद ही यह कहा जा सकता है कि किस दल के उम्मीदवार राष्ट्रपति व उप-राष्ट्रपति बनेंगे; किन्तु दोनों उच्च पदाधिकारियों के चुनाव हेतु निर्वाचकगण संघीय कानून के अन्तर्गत दिसम्बर मास के किसी नियत दिन अपने-अपने राज्यों की राजधानियों में इकट्ठे होते हैं और मतदान करते हैं। निर्वाचक-मण्डल के सदस्यों द्वारा डाले गए मतों का परिणाम सरकारी रूप से तब तक मान्य नहीं होता जब तक कि नई कांग्रेस जनवरी में एकत्रित हो, क्योंकि मत पत्रों की गिनती कांग्रेस के दोनों सदनों के सामने होती है।

निर्वाचन प्रक्रिया में दोष—निर्वाचक अपने-अपने दल के उम्मीदवारों को मत देते हैं। पद्धति में ऐसा सम्भव है कि विजयी उम्मीदवार को मिले निर्वाचकों के मत दूसरे उम्मीदवार के पक्ष में जनता द्वारा डाले गए कुल मतों से कम हों। वर्तमान निर्वाचन पद्धति का गम्भीर दोष वह है कि किसी राज्य में जिस उम्मीदवार को जनता के मतों की सबसे अधिक संख्या प्राप्त होती है उस राज्य के सभी निर्वाचकों के मत उसी उम्मीदवार को मिलते हैं। अतः यह सम्भव है कि जीते हुए उम्मीदवार को जनता के मतों की अल्पसंख्या प्राप्त हुई हो, किन्तु उसे निर्वाचकों के मतों का बहुमत मिल जाए। यह बात निम्नलिखित उदाहरण द्वारा सरलता से समझ में आ जाएगी। मान लो कि दो उम्मीदवार 'अ' और 'ब' को दो राज्यों में निम्नलिखित मत प्राप्त हुए—

	जनता के मत		निर्वाचकों के मत	
	अ	ब	अ	ब
न्यूयार्क	३१,००,०००	३०,००,०००	४५	०
पेंसिलवेनिया	९,००,०००	३४,००,०००	०	३२
कुल	४०,००,०००	६४,००,०००	४५	३२

वर्तमान नियम के अन्तर्गत अ को न्यूयार्क के और ब को पेंसिलवेनिया के सभी निर्वाचक मत प्राप्त होते हैं। संक्षेप में, गत निर्वाचकों के रिकार्ड से पता लगता है कि निर्वाचकों के मतों का जनता की छांट से बहुत ही अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए सन् १६५६ के चुनाव को लीजिए, जिससे स्पष्ट होगा कि जनता के मतों और निर्वाचकों के मत में कितना अन्तर है—

उम्मीदवार	निर्वाचकों के मत	प्रतिशत	जनता का मत	प्रतिशत
आइजनहॉवर	—	८६·१	३,५५,८२,२३६	५७·२
स्टीवेन्सन	७३	१३·७	२,६०,२८,८८७	४२·६
जोन्स	१	०·२	—	—

संविधान में कोई ऐसा प्राविधान नहीं है जो निर्वाचकों को जनता के मत के अनुसार मत देने पर वाध्य करे। इस पद्धति का दूसरा दोष यह है कि यदि किसी उम्मीदवार को निर्वाचकों के कुल मतों का वहुमत नहीं मिलता तो उसका चुनाव प्रतिनिधि सदन को करना होता है। संविधान में यह प्राविधान है कि यदि राष्ट्रपति पद के किसी उम्मीदवार को निर्वाचक-मण्डल का वहुमत प्राप्त हो तो सदन सवसे अधिक मत पाने वाले ३ उम्मीदवारों में से एक को राष्ट्रपति पद के लिए चुनेगा। ऐसा करते समय सदन में राज्य-वार मतदान होता है और वहुमत से विजेता का निर्णय किया जाता है। सन् १८०० में सदन को ऐसा निर्वाचन करने का अवसर मिला था, जवकि टॉमस जैफरसन और उसके प्रतिद्वन्द्वी के वीच सदन को छाँट करनी पड़ी थी। ऐसे ही यदि उप-राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को वहुमत प्राप्त न हो तो १२वें संशोधन के अनुसार सीनेट सवसे अधिक मत पाने वाले दो उम्मीदवारों में से किसी एक को उप-राष्ट्रपति चुनती है। इसके लिए सीनेट के कुल सदस्यों का वहुमत आवश्यक है।

राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवार की अर्हतायें—उम्मीदवार को ये शर्तें पूरी करनी आवश्यक हैं—(१) उसकी आयु कम से कम ३५ वर्ष हो; (२) वह संयुक्त राज्य अमरीका में कम से कम १४ वर्ष का निवासी रहा हो; और (३) वह संयुक्त राज्य अमरीका का जन्मजात नागरिक हो अर्थात् देशीकरण द्वारा नागरिकता प्राप्त नागरिक राष्ट्रपति पद नहीं पा सकता। चूंकि उप-राष्ट्रपति को कभी भी राष्ट्रपति पद सम्हालना पड़ सकता है, अतएव उसमें भी ये अर्हताएं होनी आवश्यक हैं।

पद की अवधि—संविधान द्वारा पद की अवधि ४ वर्ष नियत है, जिसमें कोई कमी या वृद्धि नहीं हो सकती। वहुत समय तक यह प्रथा चली कि कोई व्यक्ति दो अवधियों तक राष्ट्रपति रहने के वाद तीसरी अवधि के लिए नहीं खड़ा होता था, किन्तु राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने इस प्रथा को तोड़ा और वह तीन वार राष्ट्रपति चुना

गया। उसके बाद संविधान के १२वें संशोधन से यह प्रतिबन्ध लग गया है कि कोई व्यक्ति दो अवधि के बाद तीसरी अवधि के लिए खड़ा नहीं हो सकता।

पद धारण करने की तिथि और पद की शपथ—सन् १९३३ से पूर्व तक, जिस वर्ष कि २०वाँ संशोधन पास हुआ, नया राष्ट्रपति अपने पद का कार्यभार ४ मार्च से सम्भालता था अर्थात् दिसम्बर में चुनाव हो जाने के लगभग ३ माह बाद। इस बीच के काल में पद से निवृत्त हो जाने वाले राष्ट्रपति की स्थिति कुछ अजीब सी रहती थी और वह कोई महत्वपूर्ण कार्य न कर पाता था। अब २०वें संशोधन के अनुसार नव-निर्वाचित राष्ट्रपति अपना पद ३० जनवरी से ग्रहण करता है। यदि इस बीच में राष्ट्रपति पद असामयिक मृत्यु के कारण रिक्त हो जाए तो उप-राष्ट्रपति उसका पद सम्भाल लेगा। यदि २० जनवरी तक राष्ट्रपति व उप-राष्ट्रपति के चुनाव पूर्ण न हुए हों तो ऐसी स्थिति में काँग्रेस कानून द्वारा उचित व्यवस्था कर सकती है। पद ग्रहण के अवसर पर राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के समक्ष यह शपथ लेनी होती है—"मैं गम्भीरतापूर्वक शपथ लेता हूँ या घोषणा करता हूँ कि मैं सं० रा० अमरीका के राष्ट्रपति का कार्य ईमानदारी से करूँगा और अपनी पूरी सामर्थ्य से सं० रा० अमरीका के संविधान का पालन और रक्षण करूँगा।" इस अवसर पर बड़ा शानदार समारोह होता है और देश-विदेश के हजारों व्यक्ति दर्शक के रूप में भाग लेते हैं। इस अवसर पर राष्ट्रपति एक छोटा सा भाषण भी देता है, जिसमें वह अपनी नीति की घोषणा करता है।

राष्ट्रपति का वेतन, आदि—राष्ट्रपति को वेतन तथा अन्य भत्ते मिलते हैं। उसके निवास के लिए भव्य सरकारी निवास गृह (White House) है, जो सं० रा० की राजधानी वाशिंगटन में स्थित है। राष्ट्रपति को मोटरकारों, फर्नीचर, कर्मचारी तथा यात्रा, आदि के लिए विशेष भत्ते मिलते हैं, जो लगभग ३–४ लाख डॉलर के होते हैं। सन् १७९३ के कानून द्वारा राष्ट्रपति को २५ हजार डॉलर प्रतिवर्ष वेतन मिलता था; परन्तु उसके वेतन में कई बार वृद्धि हुई है। अब सन् १९४९ के कानून से उसका वार्षिक वेतन एक लाख डॉलर है। राष्ट्रपति के बारे में फिर भी कहा जाता है कि उसे अपने महान् पद की मर्यादा निभाने के लिए वेतन और भत्तों से भी अधिक व्यय करना पड़ जाता है। फलतः कोई राष्ट्रपति पद-ग्रहण के समय जितना सम्पन्न होता है, उससे कुछ निर्धन होकर ही वह पद से निवृत्त होकर बाहर आता है।

उप-राष्ट्रपति और राष्ट्रपति पद का उत्तराधिकारी—उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन का वर्णन तो ऊपर हो गया है। संविधान के अनुसार यह सीनेट का सभापति रहता है, यद्यपि वह सीनेट का सदस्य नहीं होता। इसी कारण उसे किसी विधेयक पर केवल दोनों पक्ष में सम-मत आने पर ही अपना निर्णायक मत देने का अधिकार है। उसे सदन की समितियाँ नियुक्त करने का भी अधिकार नहीं है; संक्षेप में, उसके

अधिकार और कर्त्तव्य तो साधारण सभापति जैसे हैं। इसी कारण थियोडोर रूजवेल्ट ने एक वार कहा था कि उप-राष्ट्रपति का पद ऐसा है जिसके कार्य अनोखे हैं अथवा हैं ही नहीं। इसी कारण उप-राष्ट्रपति पद पर कुछ अपवादों को छोड़कर महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने आना पसन्द नहीं किया। राष्ट्रपति का नैत्यक कार्य तो सीनेट की बैठकों में सभापतित्व करना ही रहा है। परन्तु कभी-कभी राष्ट्रपतियों ने उप-राष्ट्रपतियों को घरेलू अथवा विदेशी मामलों के क्षेत्र में कुछ जिम्मेदारियाँ सौंपीं। राष्ट्रपति आइजनहावर के काल में उप-राष्ट्रपति निक्सन ने केबिनेट की बैठकों का सभापतित्व किया। कुछ लेखकों का मत है कि आज के युग में जबकि राष्ट्रपति पर कार्यों का भार बहुत बढ़ गया है, यह अच्छा रहे कि राष्ट्रपति अपने कुछ कार्य, विशेषकर शिष्टाचारिक (Ceremonial) उपराष्ट्रपति को सौंप दे।

संविधान में कहा गया है कि यदि राष्ट्रपति त्याग-पत्र दे दे या उसे हटा दिया जाय या उसकी मृत्यु हो जाए तो उसका कार्य-भार उप-राष्ट्रपति सम्भालेगा और राष्ट्रपति की शेष अवधि के लिए उप-राष्ट्रपति ही राष्ट्रपति बन जाएगा। ४ वर्ष की नियत अवधि के पूर्व नए राष्ट्रपति का निर्वाचन नहीं होता। कांग्रेस ने सन् १८८६ में राष्ट्रपति पद के उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में कानून बनाया, जिसके

२. राष्ट्रपति की शक्तियाँ—कार्यपालिका के क्षेत्र में

सं० रा० अमरीका के राष्ट्रपति के तीन महत्वपूर्ण कार्य हैं—(१) वह राजनीतिक नेता—दल का नेता, कांग्रेस का नेता तथा देश का नेता, होता है; (२) वह राष्ट्र का एक प्रमुख अथवा राज्य का अध्यक्ष तथा अमरीकी राष्ट्र की एकता का प्रतीक है; और (३) संघीय शासन के क्षेत्र में वह मुख्य कार्यपाल (Chief Executive) तथा प्रशासक होता है। उसके कर्त्तव्यों के कानूनी दृष्टि से, दो प्रमुख स्रोत हैं—सवैधानिक तथा संविधान के अतिरिक्त। प्रथम श्रेणी में उसके मुख्य कर्त्तव्य राज्य के प्रमुख, मुख्य कार्यपाल, मुख्य प्रशासक, वैदेशिक मामलों के क्षेत्र में प्रमुख सेनापति तथा बजट व अन्य कानूनों के निर्माण में आरम्भकर्त्ता के रूप में। दूसरी श्रेणी में ये कर्त्तव्य सम्मिलित किये जा सकते हैं—वह दल का नेता तथा राष्ट्रीय नेता होता है। उसके कर्त्तव्य चाहे कितने ही व्यापक हैं और अन्य क्षेत्रों में अति महत्वपूर्ण भी हैं, किन्तु संविधान की दृष्टि से वह प्रधानतः मुख्य कार्यपाल ही है।[1] यहां हम राष्ट्रपति के राज्य के प्रमुख, मुख्य कार्यपाल, सेनापति तथा प्रशासन के अध्यक्ष के रूप में विभिन्न कार्यों और उसकी शक्तियों का संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

राज्य का प्रमुख—सं० रा० अमरीका में राष्ट्रपति राज्य का प्रमुख होता है। यह देशवासियों और शेष संसार के लिए सं० रा० अमरीका के शासन की शक्तियों व शान का प्रतीक है। राज्य का प्रमुख होने के नाते राष्ट्रपति और उसकी पत्नी को अनेक समारोह में भाग लेना होता है। राष्ट्रपति से आशा की जाती है कि वह अनेक सामाजिक अवसरों पर उपस्थित रहे और अनेक प्रकार के समारोहों, प्रदर्शनों, आदि का उद्घाटन करे। इन कार्यों के करने तथा जनता को मिलने का अवसर देने में उसका बहुत सा समय व्यतीत होता है, परन्तु इनसे उसे अपने कठिन और दायित्वपूर्ण कार्यों से कुछ मनोरंजन के अवसर मिल जाते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में इस प्रकार के कार्यों का भार राज-परिवार के सदस्यों तथा प्रधानमन्त्री के सहयोगियों में बँट जाता है, अर्थात् सबका सब भार प्रधानमन्त्री को सहन नहीं करना पड़ता। मुख्य कार्यपाल होने के नाते राष्ट्रपति के कार्यों को हम अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रख सकते हैं—

कानूनों का परिपालन—संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के लिए यह आवश्यक है कि वह यह देखे कि कानूनों का ठीक से पालन होता है। कानून बनाने का कार्य कांग्रेस का है और कानूनों के अन्तर्गत सन्धियाँ भी आती हैं। यदि आवश्यकता

1. 'Whatever else he may be—guide and co-worker in legislation, party leader, general custodian of national interests—the president is first of all the chief executive.'
—*Ogg and Ray*, Introduction to American Government, p. 246.

पड़े तो राष्ट्रपति कानूनों व सन्धियों के उचित पालन के लिए सैनिक शक्ति का भी प्रयोग कर सकता हैं। इस कार्य में उसे एटॉर्नी-जनरल से विशेष सहायता मिलती है। राष्ट्रपति इस अधिकारी को कानूनों का उचित पालन न करने पर किसी व्यक्ति और राज्य के विरुद्ध न्यायिक कार्यवाही करने का भी आदेश दे सकता है।

नियुक्ति और पदच्युति की शक्तियाँ—संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति की नियुक्ति सम्वन्धी शक्तियाँ दो प्रकार की हैं—(१) वे नियुक्तियाँ जो राष्ट्रपति द्वारा सीनेट की सहमति से की जाती हैं, और (२) वे नियुक्तियाँ जो राष्ट्रपति स्वंयं कर सकता है। राष्ट्रपति की केविनेट के सदस्य, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, राजदूत, संघीय सरकार के अन्य अनेक उच्च अधिकारियों की नियुक्तियाँ प्रथम श्रेणी में आती हैं। इनसे नीचे के स्तरों पर अन्य अधिकारियों की नियुक्तियाँ, जिनके लिए उसे कांग्रेस ने अधिकार दिया हो, राष्ट्रपति स्वयं करता है। साधारणतया नीचे की श्रेणियों के अधिकारियों की नियुक्तियाँ विभागीय अध्यक्ष व न्यायालयों द्वारा की जाती हैं। अव संघीय सरकार की स्थायी सेवाओं में भरती करने का दायित्व सेवा आयोग पर है। उच्च अधिकारियों की नियुक्ति के लिए नाम राष्ट्रपति छाँटता है और उन पर सीनेट का अनुसमर्थन प्राप्त किया जाता है। प्रथानुसार केविनेट के सदस्यों के लिए सीनेट राष्ट्रपति द्वारा सुझाए गए नामों को स्वीकार कर लेती है। उनका अनुसमर्थन न होना साधारण नियम नहीं अपवाद है। परन्तु राजदूतों, आदि के लिए जिन नामों की सिफारिश राष्ट्रपति करता है, सीनेट उनमें से वहुत सों को अस्वीकार कर देती है। इस प्रकार सीनेट द्वारा अनुसमर्थन राष्ट्रपति की नियुक्तियाँ सम्वन्धी शक्ति पर एक महत्वपूर्ण सीमा है।

राष्ट्रपति द्वारा विभिन्न राज्यों में अनेक संघीय अधिकारियों की नियुक्ति की जाती.है। इनके सम्वन्ध में एक प्रथा यह पड़ गई है कि राष्ट्रपति उनकी नियुक्ति के लिए नाम तय करने से पूर्व उस राज्य से निर्वाचित अपने दल के सीनेटरों से परामर्श कर लेता है। यदि राष्ट्रपति ऐसा नहीं करता तो सीनेटर अपने साथियों से उन नामों को अस्वीकार करने के लिए कह सकते हैं। प्रथानुसार एक दूसरे का ध्यान रखते हुए सीनेट राष्ट्रपति द्वारा पेश किए गए नामों को अस्वीकार कर देती है। इसके अतिरिक्त जिन सीनेटरों से परामर्श नहीं लिया जाता वे अन्य उच्च अधिकारियों के लिए पेश किए गए नामों का भी विरोध कर सकते हैं। परन्तु जिस राज्य में संघीय अधिकारी नियुक्त होते हैं यदि उसके सीनेटर राष्ट्रपति के दल के नहीं होते तो राष्ट्रपति राज्य के दलीय संगठन के सभापति से ऐसा परामर्श करता है। राष्ट्रपति को अव वहुत से संघीय अधिकारियों को उनके पद से हटाने की शक्ति भी प्राप्त है। किन्तु तीन श्रेणियों के अधिकारियों को वह पदच्युत नहीं कर सकता—प्रथम, संघीय न्यायालयों के न्यायाधीश जिन्हें केवल महाभियोग की कार्यवाही द्वारा ही पदच्युत किया जा सकता है; दूसरे, कांग्रेस द्वारा स्थापित वोर्डों

के सदस्य, जिन्हें केवल कांग्रेस द्वारा निर्धारित शर्तों के अनुसार ही उनके पदों से हटाया जा सकता है; और तीसरे, वे अधिकारी तथा कर्मचारी जिनकी नियुक्ति सिविल सर्विस नियमों के अधीन की जाती है।

क्षमादान, आदि की शक्तियाँ—राष्ट्रपति को क्षमादान, दण्ड दिए जाने को स्थगित रखने और अनेक अपराधियों को सामान्य क्षमादान की शक्तियाँ प्राप्त हैं। क्षमादान आंशिक अथवा पूर्ण हो सकता है अर्थात् इसके साथ शर्तें लगाई जा सकती हैं या यह बिना शर्त होता है। राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति पर एक सीमा यह है कि वह महाभियोग की कार्यवाही द्वारा दण्डित व्यक्तियों को क्षमादान नहीं कर सकता।[1] क्षमादान के साथ राष्ट्रपति को दण्ड दिए जाने को स्थगित करने (reprieve) तथा सामान्य क्षमादान की शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। इन सभी शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति न्याय विभाग की सिफारिशों के आधार पर कर सकता है।

प्रशासन का निदेशन (Direction of Administration)—अब राष्ट्रपति कार्यपालिका का अध्यक्ष होने के नाते प्रशासन का भी अध्यक्ष अथवा प्रमुख संचालक है। प्रशासन के सभी विभागों के ऊपर उसे देख-रेख व निदेशन के अधिकार प्राप्त हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वह आदेश व निदेश जारी करता है और विनियम और नियम भी बनाता है।

सेनापति अथवा सशस्त्र सेनाओं का प्रमुख—संविधान के अनुसार राष्ट्रपति सेना, नाविक सेना और विभिन्न राज्यों के सैनिक संगठनों (militia of the several states) का, जबकि उन्हें सं० रा० अमरीका की सेवा के लिए बुलाया जाए, सेनापति है। इस प्रावधान के अनुसार सेना पर सर्वोच्च नागरिक अधिकारी का नियन्त्रण है और राष्ट्रपति को सेनापति की शक्तियाँ प्राप्त हैं। परन्तु इस क्षेत्र में उसकी शक्तियों पर कांग्रेस द्वारा सीमा लगी है। केवल कांग्रेस ही युद्ध की घोषणा कर सकती है और वही सेनाओं के लिए आवश्यक धन स्वीकार करती है। युद्ध काल में देश की सुरक्षा व प्रतिरक्षा का अन्तिम उत्तरदायित्व राष्ट्रपति पर ही है। गत विश्व-युद्धों के दौरान राष्ट्रपति की शक्तियों में विशेष रूप से वृद्धि हुई चूंकि वर्तमान काल में कभी भी युद्ध का खतरा पैदा हो सकता है, अतएव सशस्त्र सेनाओं को हर समय तैयारी की स्थिति में रखा जाता है।

मुख्य सेनापति के रूप में राष्ट्रपति को युद्ध के संचालन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णय करने होते हैं। सन् १९४१ में जब जापान ने पर्ल हारबर पर आक्रमण

1. जब राष्ट्रपति निक्सन ने वाटरगेट काण्ड के कारण त्यागपत्र दे दिया तो उसके विरुद्ध (सितम्बर १९७४) न्यायालयों में कुछ फौजदारी मुकदमे दायर थे और कांग्रेस सदस्यों के सामने उस पर महाभियोग (unpeachment) चलाने का प्रस्ताव भी था, उस समय राष्ट्रपति फोर्ड ने अपने पूर्वगामी राष्ट्रपति निक्सन को पूर्ण क्षमा (absolute pardon) प्रदान की।

किया तो राष्ट्रपति ने उसके विरुद्ध सेनाओं के प्रयोग का आदेश दिया, ऐसे ही कोरिया के युद्ध के सम्बन्ध में हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि कांग्रेस द्वारा युद्ध की घोषणा किए जाने के पूर्व ही राष्ट्रपति ऐसी सैनिक कार्यवाही आरम्भ कर सकता है कि कांग्रेस के सामने युद्ध की घोषणा करने के अतिरिक्त कोई और विकल्प ही न रहे।[1] आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति देश में भी सैनिक कानून लागू कर सकता है और आन्तरिक अव्यवस्था, आदि को दवाने के लिए सेना के प्रयोग के लिए आदेश दे सकता है। युद्ध काल में राष्ट्रपति की शक्तियों में बहुत वृद्धि हो जाती है, परन्तु फिर भी उसे तानाशाह नहीं कह सकते, यद्यपि वह एक ऐसा अधिकारी बन जाता है जिसकी शक्तियाँ बहुत विस्तृत और अपारिभाषित हो जाती हैं।

अन्त में, **वैदेशिक मामलों का संचालन**—शासन व राज्य का अध्यक्ष होने के नाते सं० रा० अमरीका के विदेशों से सम्बन्धों के संचालन का उत्तरदायित्व उसी पर है। इस कार्य को वह **राज्य-विभाग** (Department of State) तथा उसके अध्यक्ष (Secretary of State), सहायक सेक्रेटरियों की सहायता से चलाता है। राष्ट्रपति के कूटनीतिक कर्त्तव्यों में ये मुख्य हैं—विदेशों में राजदूत भेजना और विदेशी राजदूतों के प्रमाण-पत्रों को स्वीकार करना; विदेशों से सन्धियों के सम्बन्ध में वार्ता चलाना; नए शासनों अथवा राज्यों को मान्यता प्रदान करना; अमरीकी हितों की रक्षा करना तथा अमरीकी व्यापार को प्रोत्साहन देना। सं० रा० अमरीका के शासन में वही एक अधिकारी है जो विदेशी सरकारों से सरकारी पत्र-व्यवहार कर सकता है।

विदेशों से सन्धियाँ करने में निम्नलिखित तीन पग अन्तर्गस्त हैं: (१) सन्धि के लिए वार्ता राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, यह कार्य दोनों देशों के प्रतिनिधि आपसी वार्ता से करते हैं। (२) सन्धि की शर्तें तय हो जाने पर सन्धि सम्पुष्टि के लिए सीनेट में रक्खी जाती है। सन्धि पर सीनेट की स्वीकृति २/३ के बहुमत से प्राप्त की जानी आवश्यक है। अतः राष्ट्रपति और सरकारी अधिकारी वार्ता के दौरान सीनेट से आवश्यक परामर्श करते हैं। (३) सन्धि की सम्पुष्टि हो जाने पर उसे लागू किया जाता है। सन्धियों के अतिरिक्त राष्ट्रपति अन्य देशों से कुछ कार्यांग समझौते (executive agreements) कर लेता है जो एक प्रकार से सन्धि का सा ही कार्य करते हैं और जिनका लाभ यह है कि उन पर सीनेट की स्वीकृति लेना आवश्यक नहीं।

1. 'The President may bring on a war by taking actions that are within his power and thus create a war situation......Often in fact, the President is obliged to decide questions of war or peace without waiting for Congress......'
D. C, Coyle: The United States Political System, pp. 45–9.

वर्तमान काल में शीत युद्ध (Cold War) और अर्द्ध युद्धों के कारण कांग्रेस द्वारा 'युद्ध की घोषणा' किए जाने की शक्ति वस्तुत: राष्ट्रपति के हाथों में आ गई थी। कांग्रेस ने ही उसे यह शक्ति भी दे दी कि वही यह तय करे कि अणु शस्त्रों का प्रयोग कब किया जाए। सन् १९६४ में कांग्रेस ने वियतनाम में चल रहे युद्ध के बारे में उसे प्राय: सभी प्रकार के निर्णय करने की शक्ति प्रदान कर दी। परन्तु सन् १९६९ में सीनेट ने एक प्रस्ताव पास किया जिसके द्वारा राष्ट्रपति को सन् १९६४ में प्रदान की गई शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता था। फिर भी सन् १९७० में राष्ट्रपति निक्सन ने कम्बोडिया में सैनिक दस्ते भेजकर ऐसा निर्णय किया जिसे कांग्रेस को मानना ही पड़ा। कम्बोडिया और लाओस में राष्ट्रपति निक्सन ने अपने देश को बिना कांग्रेस की स्वीकृति के युद्ध में अन्तर्ग्रस्त कर दिया। उसके कारण राष्ट्रपति और कांग्रेस के बीच संघर्ष हो गया और कांग्रेस ने अपनी धन स्वीकार करने की शक्ति का प्रयोग कर राष्ट्रपति को विवश किया कि वह हिन्द-चीन में १५ अगस्त सन् १९७३ तक युद्ध में भाग लेना बन्द करने का आदेश जारी करे। इसका परिणाम यह निकला कि काँग्रेस को युद्ध की घोषणा करने की शक्ति पुन: प्राप्त हो गई।

ऐसे ही जब राष्ट्रपति निक्सन के प्रशासन ने 'कार्यपालिका समझौते' (executive agreement) के तरीके का प्रयोग पुर्तगाल को ४३·५ करोड़ डॉलर ऋण और सहायता के रूप में अजोर्स द्वीपों (Azoie's Islands) पर सैनिक अड्डा बनाने के बदले में देने हेतु समझौता किया तो सीनेट ने बहुमत से एक प्रस्ताव पास किया कि राष्ट्रपति पुर्तगाल के साथ कोई समझौता तब तक न करे जब तक कि उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राष्ट्रपति सीनेट के परामर्श और सहमति के लिए सन्धि प्रस्तुत न करे। यह प्रस्ताव मार्च सन् १९७२ में पास किया गया। इसके द्वारा भी कांग्रेस शक्ति पर बल दिया गया।

३. राष्ट्रपति की शक्तियाँ विधायी क्षेत्र में

शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त के अन्तर्गत यह कहना कि मुख्य कार्यपालिका की विधायी शक्तियाँ होती हैं, कुछ आश्चर्यजनक लगता है; परन्तु संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को विधायी क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण शक्तियाँ मिली हैं। इन शक्तियों का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जायेगा—

कांग्रेस को आहूत तथा स्थगित करने के सम्बन्ध में—संविधान द्वारा ही कांग्रेस के सत्र की तिथि नियत की गई है, अत: राष्ट्रपति उसका नियमित सत्र तो बुला नहीं सकता, परन्तु उद्घोषणा द्वारा राष्ट्रपति कांग्रेस को विशेष सत्र के लिए आहूत कर सकता है। इस उद्घोषणा में राष्ट्रपति सत्र के प्रयोजन और उन विषयों का भी उल्लेख करता है, जिन पर कांग्रेस को विशेष सत्र में विचार करना हो, परन्तु सत्र होने पर कांग्रेस उनके अतिरिक्त अन्य किसी मामले पर भी विचार कर सकती

है। राष्ट्रपति को कांग्रेस के सत्र को केवल उसी दशा में स्थगित करने का अधिकार है, जबकि दोनों सदनों की सहमति से इस विषय में निर्णय न हो सके।

विधायी प्रस्तावों की सिफारिश करने की शक्ति—संविधान में यह उपबन्ध है कि राष्ट्रपति समय-समय पर कांग्रेस को सं० रा० अमरीका की स्थिति के विषय में सूचित करता रहे और उसके द्वारा विचार के लिए ऐसे विधायी प्रस्तावों की सिफारिश करता रहे जिन्हें वह आवश्यक और उपयोगी समझे। इसी आधार पर राष्ट्रपति कांग्रेस को सन्देश भेजता है और उनके द्वारा वह कांग्रेस को संघ की स्थिति के विषय में सूचना देता रहता है। इस प्रकार के सन्देश वह प्रतिवर्ष कांग्रेस का सत्र प्रारम्भ होने पर भेजता है, जिनमें वह देश की स्थिति, उसके सामने आने वाली प्रमुख समस्याओं और उनके निराकरण के लिए अपने सुझाव, आदि देता है। इन वार्षिक सन्देशों के अतिरिक्त सत्र के दौरान भी वह समय-समय पर अन्य सन्देश भेजता है। इन सन्देशों में वह विधायी प्रस्ताव सुझाता है और इन सुझावों का कांग्रेस मान करती है। प्रति वर्ष कांग्रेस उसके प्रस्तावों के आधार पर अनेक कानून बनाती है।

प्रतिषेध की शक्ति—संविधान में यह उपबन्ध है कि प्रत्येक विधेयक जिसे प्रतिनिधि सदन और सीनेट ने पास कर दिया हो, राष्ट्रपति के समक्ष पेश किया जायेगा। राष्ट्रपति को विधेयकों के सम्बन्ध में दो प्रकार की प्रतिषेध (veto) शक्ति प्राप्त है। प्रथम, जबकि कांग्रेस का सत्र चल रहा हो, वह विधेयक प्रस्तुत किए जाने के १० दिन के भीतर (रविवार को छोड़कर) उसे उचित समझे तो अपने सुझाव अथवा आक्षेपों सहित उसे सदन के पास लौटा सकता है, जिसमें वह आरम्भ हुआ हो। इस प्रकार से लौटाया गया विधेयक कानून बन जाता है, यदि कांग्रेस के दोनों सदन उसे दूसरी बार २/३ के बहुमत से पास कर दें। इस प्रकार उसकी यह प्रतिषेध शक्ति अन्तिम नहीं होती। यदि इस प्रकार से आये हुए विधेयक को राष्ट्रपति १० दिन के भीतर नहीं लौटाता तो वह उसके हस्ताक्षर बिना भी कानून बन जायेगा। दूसरी, जब कांग्रेस द्वारा पास किए गए विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजे जायें और उसके १० दिन के भीतर ही कांग्रेस का सत्र स्थगित हो जाए, तो इन विधेयकों में से राष्ट्रपति जिन पर हस्ताक्षर न करे वे कानून नहीं बन सकते। इसे 'पाकिट विटो' कहते हैं, जो एक प्रकार से पूर्ण होती है अर्थात् उन पर कांग्रेस को फिर से विचार करने का अवसर नहीं मिल पाता।

इस प्रकार सन्देशों में सुझाव देकर राष्ट्रपति विधि-निर्माण में पहल करता है और अन्त में भी विधेयक कानून बनाने से पूर्व राष्ट्रपति के पास हस्ताक्षर के लिए आते हैं। आजकल राष्ट्रपति ही अधिकतर विधेयकों के लिए कांग्रेस को सुझाव देता है। इसलिए बहुत से लेखक उसे मुख्य कार्यपालिका होने के साथ-साथ मुख्य विधायक

(cheif legislator) भी कहते हैं।[1] यदि राष्ट्रपति किन्हीं विधेयकों के विरोध में होता है तो वह पहले ही बता देता है कि वह उनके विरुद्ध अपनी प्रतिषेध शक्ति का प्रयोग करेगा। अतएव कांग्रेस पर उसके मत का प्रभाव पड़ता है और कांग्रेस ऐसे विधेयकों को पास नहीं करती। राष्ट्रपति के दल के सदस्य, जो कांग्रेस के भी सदस्य होते हैं, साधारणतया राष्ट्रपति का समर्थन करते हैं। इस प्रकार वह कांग्रेस को विधि-निर्माण कार्य में काफी सीमा तक प्रभावित करता है।

इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति के हाथ में **नियुक्तियां करना और कार्यपालिका आदेश** जारी करने की शक्तियां भी हैं, जिनके द्वारा वह काँग्रेस तथा विधि-निर्माण को प्रभावित करता है। जैसा कि पूर्व खण्ड में बताया गया है, राष्ट्रपति को अनेक संघीय अधिकारियों को नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त है। इन अधिकारियों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति सीनेटरों और प्रतिनिधियों को उनके बारे में अपनी बात कहने का अवसर दे देता है। यह स्वाभाविक बात है कि काँग्रेस के सदस्य उन व्यक्तियों के लिए सिफारिश करते हैं जिन्होंने उनके निर्वाचन में सहायता दी हो और उनसे सहायता मिलती रहने की आशा हो। राष्ट्रपति काँग्रेस के सदस्यों की सिफारिश मान सकता है और उससे यह आश्वासन ले सकता है कि वे विधेयक विशेष पास करने में राष्ट्रपति के सुझावों का समर्थन करेंगे।

राष्ट्रपति कार्यपालिका आदेशों द्वारा कानूनों के अन्तर्गत नियम तथा विनियम भी बनाता अथवा बनवाता है और उन्हें लागू करता है। राष्ट्रपति और प्रशासनिक विभागों के अध्यक्ष प्रशासनिक (प्रदत्त) विधि-निर्माण अर्थात् नियमों तथा विनियमों का निर्माण करते हैं। आजकल विधायिकाओं के पास इतना समय नहीं होता कि प्रत्येक विधेयक बनाते समय उनकी सभी विस्तार सम्बन्धी बातों पर विचार करें और यदि ऐसा किया भी जाए तो कानूनों की लम्बाई सैकड़ों पृष्ठ हो जाए। कानून के अन्तर्गत नियम और विनियम बनाने का कार्य वैसे भी तकनीकी होता है, जिसे सरकारी अधिकारी अधिक कुशलता से कर सकते हैं। ऐसे कार्यपालिका आदेशों का सम्बन्ध शासन के सभी क्षेत्रों में प्रशासन सम्बन्धी विस्तार की बातों से होता है, उदाहरण के लिए डाक सेवा, बाहर से आकर बसने वाले व्यक्तियों की सेवा, आयात-निर्यात महसूल इकट्ठा करना, आन्तरिक आय, इत्यादि। इन नियमों और विनियमों का उद्देश्य कानूनों की पूर्ति अथवा व्याख्या करना होता है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति और प्रशासन विभागों के अध्यक्ष प्रशासनिक अधिकारियों व कर्मचारियों के आचरण सम्बन्धी अनेक नियम और विनियम भी बनाते हैं।

1. 'The President is the chief legislator. The Constitution puts the President at the beginning and end of the legislative process.'
A. M. Potter : American Government and Politics, p. 197.

गत विवेचन के आधार पर राष्ट्रपति का विधि-निर्माण में बहुत ही महत्वपूर्ण भाग रहता है। चूँकि कोई भी विधेयक कानून बनने से पूर्व उसके हस्ताक्षर के लिए भेजा जाता है और वह उसके सम्बन्ध में ऊपर वर्णित दो प्रकार के प्रतिषेधों में से किसी एक का प्रयोग कर सकता है, अतएव मनरो के अनुसार, **राष्ट्रपति पद एक प्रकार से तीसरा विधायी सदन बन गया है,** यद्यपि प्रतिषेध शक्ति का उद्देश्य कार्यपालिका को अपने बचाव हेतु एक प्रकार का अस्त्र प्रदान करना था।[1] राष्ट्रपति की प्रतिषेध शक्ति का एक बड़ा दोष यह है कि यह सम्पूर्ण विधेयक पर लागू होती है, उसकी किसी धारा या अंश पर नहीं। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति सम्पूर्ण विधेयक स्वीकार करे या अस्वीकार करे।

राष्ट्रपति और काँग्रेस—ऊपर यह बताया जा चुका है कि विधि-निर्माण कार्य में राष्ट्रपति का कितना महत्वपूर्ण भाग है और साथ में यह भी कि वह काँग्रेस को किस प्रकार प्रभावित कर सकता है। संक्षेप में, यहाँ पर यह और बताना उपयुक्त होगा कि काँग्रेस राष्ट्रपति पर किस प्रकार अपने नियन्त्रण का प्रयोग कर सकती है। काँग्रेस के सदस्य उससे प्रभावित होते हैं और उसे भी अपने मतों से प्रभावित करते हैं। उसे पहले ही बता सकते हैं कि उन्हें राष्ट्रपति का अमुक विधेयक या कार्यक्रम पसन्द नहीं है, अतः वे उसका समर्थन न कर सकेंगे। ऐसी स्थिति में या तो राष्ट्रपति अपने प्रस्तावों को दोहराता है या उनका अन्त कर देता है। सीनेट को राष्ट्रपति द्वारा उच्च अधिकारियों की नियुक्तियों के अनुसमर्थन की शक्ति प्राप्त है। इसके अतिरिक्त, सीनेट राष्ट्रपति के निर्देशन में की गई सन्धियों की सम्पुष्टि करने से इन्कार कर सकती है। कांग्रेस के दोनों सदन उससे प्राय: सभी प्रकार की सूचना माँग सकते हैं, साथ ही काँग्रेस कार्यपालिका तथा प्रशासनिक विभागों के किन्हीं भी कार्यों की जाँच करा सकती है। काँग्रेस ऐसे कानून बना सकती है जिनके अन्तर्गत राष्ट्रपति अथवा उसके अधीन अधिकारियों के कार्यों में वृद्धि हो सकती है। काँग्रेस ही प्रशासन व्यय के लिए सभी प्रकार की स्वीकृति प्रदान करती है। अन्त में, प्रतिनिधि सदन राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाही आरम्भ कर सकता है और सीनेट उसकी सुनवाई करती है। यदि सदन व सीनेट में इस प्रकार की कार्यवाही के पक्ष में आवश्यक मत आ जायें तो राष्ट्रपति पदच्युत हो जाए। वास्तव में, काँग्रेस और राष्ट्रपति के आपसी सम्बन्ध उसके अपने व्यक्तित्व, समय और इस बात पर निर्भर करते हैं कि काँग्रेस के दोनों सदनों में उसके दल का बहुमत है या नहीं।

1. 'What was intended, therefore, as a weapon of executive self defence has developed into a means of guiding and directing the law-making authority of a nation Enabling President to set up his own judgment against that of the legislature, it has developed the presidency into something like a third chamber of the Congress.'

—*W. B. Munro* : The Government of the United States, p. 178.

४. राष्ट्रपति की केबिनेट

केबिनेट का विकास—प्रशासन में राष्ट्रपति के मुख्य सहायकों में उसकी केबिनेट के सदस्य होते हैं। संविधान में केबिनेट शब्द का उल्लेख भी नहीं है, वास्तव में, केबिनेट का विकास प्रथा के आधार पर हुआ है। संविधान की दूसरी धारा में केवल यह उपबन्ध है कि राष्ट्रपति प्रत्येक कार्यपालिका विभाग के मुख्य अधिकारी से चाहे तो लिखित रूप में उसकी सम्मति माँग सकता है। इसका यह अर्थ लगाया जा सकता है कि प्रशासन विभाग हो, परन्तु उसके नाम, कर्त्तव्य और संगठन सम्बन्धी अन्य सभी बातें काँग्रेस पर छोड़ी हुई थीं। काँग्रेस ने अपनी रचना के बाद पहले सत्र में प्रथम चार विभाग—स्टेट (विदेशी), ट्रेजरी (वित्त), युद्ध और न्याय स्थापित किए थे। प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने चारों विभागों के अध्यक्षों से परामर्श लेना आरम्भ किया और विभागों के अध्यक्ष, जिन्हें बहुधा इस कार्य के लिए राष्ट्रपति बुलाता था, सामूहिक रूप में केबिनेट कहलाने लगे। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सन् १७९३ में हुआ। जैसे-जैसे देश बढ़ा और आवश्यकता पड़ी काँग्रेस ने नए विभाग खोले, अब इनकी कुल संख्या १२ है। इस समय विभागों के नाम ये हैं—राज्य विभाग (The Department of State) अर्थात् विदेश विभाग, ट्रेजर विभाग, न्याय विभाग, डाक विभाग, आन्तरिक विभाग (The Department of the Interior), कृषि विभाग, श्रम विभाग, वाणिज्य विभाग, प्रतिरक्षा विभाग, स्वास्थ्य, शिक्षा व कल्याण विभाग, गृह और शहरी विकास, और परिवहन विभाग।

केबिनेट की नियुक्ति—राष्ट्रपति के निर्वाचन के शीघ्र बाद ही राष्ट्रपति अपनी केबिनेट को छाँटता है। सदस्यों की छांट में साधारणतया राष्ट्रपति निम्नलिखित बातों का ध्यान रखता है—(१) किसी एक-दो व्यक्तियों ने राष्ट्रपति का निर्वाचन में इसी आधार पर सक्रिय साथ दिया हो कि उन्हें केबिनेट में लिया जाएगा, अथवा हो सकता है कि किसी प्रतिद्वन्द्वी ने दल के नामजदगी सम्मेलन में अपने नाम को राष्ट्रपति के पक्ष में इसी आश्वासन पर वापस लिया हो कि उसे केबिनेट में स्थान दिया जाएगा। (२) अपनी छाँट द्वारा राष्ट्रपति यह भी प्रयत्न करता है कि वह दल के प्रमुख विभागों (समूहों) को केबिनेट में प्रतिनिधित्व दे, जिससे दल की एकता बनी रहे। (३) राष्ट्रपति के अपने ऐसे मित्र हो सकते हैं जिन्हें वह केबिनेट की सदस्यता का मान देना चाहे। (४) सदस्यों की छाँट में देश के भौगोलिक प्रदेशों के प्रतिनिधित्व पर भी ध्यान दिया जाता है। (५) विभिन्न प्रमुख वर्गों अथवा हितों को भी प्रतिनिधित्व देने का ध्यान रखा जाता है। (६) छाँटे जाने वाले सदस्यों के विशेष ज्ञान व अनुभव का भी ध्यान रहता है। (७) राष्ट्रपति को मुख्य ध्यान इस बात का रहता है और रहना चाहिए कि उसकी केबिनेट के सदस्य ऐसे हों जो सामंजस्य के साथ कार्य कर सकें, क्योंकि केबिनेट को एक प्रकार से राष्ट्रपति का परिवार कहा जाता है।

जबकि ब्रिटेन का प्रधान मन्त्री अपनी केबिनेट के सदस्यों में केवल प्रथम होता है, **सं० रा० अमरीका का राष्ट्रपति केबिनेट निर्माण तथा उसकी कार्य प्रणाली में एक प्रकार से स्थिति का पूर्ण स्वामी होता है।** सं० रा० अमरीका में राष्ट्रपति को अपनी केबिनेट के सदस्यों को छाँटने में प्राय: पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है और उसकी स्थिति प्रधानमन्त्री से कहीं अधिक सुदृढ़ रहती है। प्रधानमन्त्री कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो, दल के मुख्य नेताओं को नहीं भुला सकता और उनकी छाँट दल के वाहर वाले व्यक्तियों से नहीं हो सकती। परन्तु संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति तो ऐसे व्यक्तियों को भी केबिनेट में सम्मिलित कर सकता है जिनका राष्ट्रपति से विशेष सम्बन्ध न रहा हो। यह सत्य है कि राष्ट्रपति को केबिनेट के सदस्यों की छाँट में बहुत अधिक स्वतन्त्रता रहती है, किन्तु उस पर विभिन्न प्रकार के दबाव पड़ते हैं जिनका कि उन्हें ध्यान रखना ही पड़ता है। इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्रपति जिन नामों को छाँटता है उन पर सीनेट का अनुसमर्थन आवश्यक है, यद्यपि साधारणतया सीनेट उसकी छाँट को स्वीकार कर लेती है। साधारण रूप में केबिनेट के सभी सदस्यों का पद समान है, फिर भी सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को अन्य सहयोगियों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, क्योंकि विदेश विभाग का अन्य विभागों की अपेक्षा महत्व भी बहुत अधिक है।

राष्ट्रपति और केबिनेट—केबिनेट के सदस्यों के कार्य तीन प्रकार के हैं—प्रथम, वे राष्ट्रपति के परामर्शदाता हैं और राष्ट्रपति को प्रशासन कार्यों के सम्बन्ध में आवश्यक परामर्श व सहायता देते हैं। **दूसरे, वे अपने-अपने विभागों के अध्यक्ष होते हैं।** उनका यह उत्तरदायित्व है कि वे अपने विभागों में होने वाले सभी प्रशासनिक कार्यों की देख-रेख करें, अनेक रिपोर्टों को सुनें, निर्णय करें, नीति-निर्धारित करें, इत्यादि। तीसरे, **उनका यह भी उत्तरदायित्व है कि वे अपने-अपने विभाग के लिए आवश्यक विधायी प्रस्तावों का सुझाव दें** और उनका प्रारूप भी तैयार करायें। अब यह प्रथा पड़ गई है कि राष्ट्रपति केबिनेट का नियमित रूप से प्रति सप्ताह एक बैठक बुलाता है, यद्यपि संकटकाल में इनकी मीटिंग और भी जल्दी-जल्दी होती हैं। केबिनेट के सभी विचार, वाद-विवाद और मतदान, आदि अनौपचारिक होते हैं; यद्यपि प्राय: सभी महत्वपूर्ण और अन्य मामलों पर विचार होता है। राष्ट्रपति ट्रूमेन ने साप्ताहिक बैठकों को अधिक उपयोगी बनाने की दृष्टि से विचारणीय विषय पहले घुमाने की प्रथा डाली। राष्ट्रपति आइजनहॉवर ने इस प्रथा को जारी रखने के साथ-साथ केबिनेट सचिवालय भी स्थापित किया। अब केबिनेट के सदस्य जिन विषयों पर विचार कराना चाहें, वे उन्हें एजेण्डा में सम्मिलित कराने के लिए केबिनेट के सेक्रेटरी के पास भेज सकते हैं। बैठक की कार्यवाही तथा उन्हीं प्रश्नों पर हुए मतदान का कोई रिकार्ड नहीं रखा जाता। केबिनेट

की कार्यवाही व निर्णयों के बारे में केवल राष्ट्रपति ही जनता अथवा पत्रकारों को कोई सूचना दे सकता है।

वास्तव में, केबिनेट के सदस्य राष्ट्रपति के परामर्शदाता हैं; यद्यपि वे कांग्रेस को चाही सूचना देते हैं, उसकी समितियों के सामने गवाही देते हैं; सार्वजनिक भाषण देते हैं और अपने-अपने विभाग की नीति में पहल भी करते हैं। राष्ट्रपति जब चाहे उनसे परामर्श लेता है और जैसा चाहे निर्णय स्वयं करता है, अर्थात् वह उनके परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। कहा जाता है कि एक बार राष्ट्रपति लिंकन ने किसी प्रश्न पर केबिनेट के तत्कालीन सातों सदस्यों का मत जाना और उन सभी ने 'ना' में मत प्रकट किया, परन्तु फिर भी राष्ट्रपति ने उस पर अपना निर्णय 'हाँ' में दिया।

राष्ट्रपति और केबिनेट का सम्बन्ध ब्रिटिश प्रधानमन्त्री और उसकी केबिनेट से सर्वथा भिन्न है। जबकि राष्ट्रपति की केबिनेट केवल परामर्शदाताओं का निकाय है, प्रधानमन्त्री की केबिनेट के सदस्य उसके सहयोगी होते हैं और केबिनेट संयुक्त अथवा सामूहिक रूप से नीति के लिए उत्तरदायी होती है. संयुक्त राज्य अमरीका में पूर्ण दायित्व राष्ट्रपति पर रहता है। 'अमरीका में केबिनेट इस प्रकार की सरकार नहीं है जैसी कि ब्रिटिश है, राष्ट्रपति अपनी केबिनेट के सामने कोई भी मामला रखने और उस पर अन्तिम निर्णय करने में स्वतन्त्र है।'[1] केबिनेट के निर्णय भी परामर्श से अधिक कुछ नहीं होते। ऐसा कहा जाता है कि राष्ट्रपति एन्ड्रयू जेक्सन की **'अन्तरंग केबिनेट'** (kitchen cabinet) साधारण केबिनेट से अधिक प्रभावशाली थी अर्थात् राष्ट्रपति उसके परामर्श को अधिक महत्व देता था। केबिनेट के सदस्यों को राष्ट्रपति की परछाई में अपनी अवधि पूरी करनी होती है; यदि कोई सदस्य मतभेद होने पर त्याग-पत्र भी दे तो उसका राष्ट्रपति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। राष्ट्रपति किसी भी सदस्य को जब चाहे हटा सकता है। अधिकतर केबिनेट के सदस्यों के लिए तो राजनीतिक नेतृत्व उनके जीवन में एक अन्तर्काल होता है, अर्थात् अपनी अवधि पूर्ण होने पर वे अपने जीवन काल में लग जाते हैं। परन्तु यहाँ यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि केबिनेट के सदस्यों का परामर्श प्रभावी नहीं होता। साधारणतया राष्ट्रपति उनके परामर्श को स्वीकार करता है। जहाँ तक विभागीय कार्यों का सम्बन्ध है उनका उत्तरदायित्व वास्तविक है।

५. राष्ट्रपति पद का महत्व

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राष्ट्रपति का पद अमरीकनों के लिए सबसे ऊँचा है और संसार में सबसे अधिक शक्तिशाली संवैधानिक पद है। राष्ट्रपति का

1. 'The American Cabinet is not a *government* as is the British; and just as the President is free to submit or not to submit any given matter for consideration, so is he free to make any final disposition of it that he chooses'
   —*Sydney D. Bailey (ed,),* Aspects of American Government, p. 30.

पद सं० रा० अमरीका की विश्व के लिए सबसे महान् देन है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अब राष्ट्रपति की शक्तियाँ इतनी विस्तृत हो गई हैं कि वह ऑग के शब्दों में संसार का सबसे महान् शासक हो गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जबकि ब्रिटेन का राजा केवल राज्य करता है और कुछ समय पूर्व तक फ्रांस का राष्ट्रपति न राज्य करता था और न शासन ही, **संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति राज्य और शासन दोनों करता है।** यह सच है कि वह ब्रिटेन के राजा की तरह राज्य का प्रतीक होता है और सभी समारोहों पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान पाता है। वह संयुक्त राज्य अमरीका में प्रथम नागरिक होता है, उसका राजकीय निवास अर्थात् व्हाइट हाऊस शान में ब्रिटेन के बर्मिघम महल से कम नहीं है। अपने सर्व-सम्मानित स्थान के कारण और शक्तियों के आधार पर राष्ट्रपति पद में राजा और प्रधानमन्त्री का मेल है। बेजहाट द्वारा वर्णित ब्रिटिश शासन के दोनों अंग-प्रतिष्ठित और कार्यकुशल भी राष्ट्रपति के पद में मिलते हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति के विषय में लास्की का निम्नलिखित कथन अत्यन्त अर्थमय है जिसकी व्याख्या करना आवश्यक प्रतीत होता है। **संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति एक राजा से कम व अधिक दोनों ही है, साथ ही वह एक प्रधानमन्त्री से कम और अधिक दोनों ही है।**[1] ऊपर यह बताया गया है कि सं० रा० अमरीका के राष्ट्रपति का पद सबसे अधिक सम्मानित है और राष्ट्रपति राजा की तरह राज्य का प्रमुख होता है, परन्तु वह जनता द्वारा निर्वाचित अधिकारी है, जो ४ या ८ वर्ष तक अपने पद पर रहता है। चुनाव से पूर्व और बाद में वह एक राजनीतिक दल का ही नेता रहता है, अतएव अमरीकी समाज में उसका स्थान सर्वोच्च होते हुए भी राजा के समान नहीं है। इस दृष्टि से वह राजा से कम होता है; परन्तु उसकी शक्तियां राजा से कहीं अधिक और वास्तविक हैं। यदि हम उसकी तुलना प्रधानमन्त्री से करें तो वह इन बातों में प्रधानमन्त्री से अधिक है— राष्ट्रपति राज्य का प्रतीक मुख्य कार्यपाल, मुख्य प्रशासक व मुख्य सेनापति होता है और उसकी केबिनेट के सदस्य उसके सहयोगी नहीं वरन् सहायक व परामर्शदाता होते हैं, जबकि अन्य मन्त्री प्रधानमन्त्री के सहयोगी होते हैं और उनके निर्णय सर्वसम्मति अथवा बहुमत से होते हैं।

परन्तु कुछ बातों में राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री से कम होता है—राष्ट्रपति का कांग्रेस में विरोध हो सकता है; कांग्रेस उसके सुझाये हुए विधायी प्रस्तावों और व्यय के लिए माँगे गये धन को अस्वीकार कर सकती है। इसके विपरीत जब तक प्रधानमन्त्री को बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है, उसकी शक्तियां अधिनायक

1. 'The President of the United States is both more and less than king, he is, also, both more and less than a Prime Minister.'
—*H. J. Laski,* American Presidency p. 23.

के समान होती हैं। संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति किसी भी समय काँग्रेस का प्रधानमन्त्री की तरह स्वामी नहीं हो सकता। वह नीति में पहल कर सकता है, परन्तु नीति का नियन्त्रण नहीं कर सकता। उसकी स्थिति एक अज्ञात समुद्र पर नाविक के समान है, जिसे अपने भाग्य के विषय में कभी निश्चिन्तता नहीं होती।

सं० रा० अमरीका के राष्ट्रपति की शक्तियाँ अत्यधिक विस्तृत और वास्तविक हैं। इस विषय में **मनरो** ने लिखा है कि अब तक लोकतन्त्र में किसी भी व्यक्ति ने इतनी अधिक सत्ता का प्रयोग नहीं किया जितना कि अमरीकी राष्ट्रपति करता है। संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति का प्रभाव संसार व्यापी है। वुडरो विल्सन, फ्रेंकलिन रूजवेल्ट, आइजनहॉवर और लिण्डन जॉनसन के शासनकाल इस बात की पुष्टि करते हैं। अमरीकी राष्ट्रपति का कार्य-क्षेत्र संयुक्त राज्य अमरीका की सीमाओं तक परिमित नहीं है; आज संयुक्त राज्य अमरीका विश्व के सबसे अधिक शक्तिशाली दो राष्ट्रों में से एक है। ये दोनों ही विश्व राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र व संघों में अपना प्रभाव डालते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति इस दृष्टि से विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली अधिकारियों और प्रभावशाली राजनीतिज्ञों में सबसे ऊपर है।

परन्तु पाठकों को यह नहीं भूलना चाहिये कि संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति जनता द्वारा निर्वाचित अधिकारी है। वह कभी अधिनायक नहीं बन सकता; वह एक व्यक्ति के स्वेच्छाचारी शासन का प्रतीक नहीं है। उसे शक्तियाँ जनता के प्रत्यक्ष आदेश से प्राप्त होती हैं और उस पर संवैधानिक सीमायें भी हैं। इस दृष्टि से वह अपने कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। वह जनता का नेता होता है, किन्तु साथ ही जनता का सेवक भी। उसकी शक्तियों पर काँग्रेस विशेष रूप से सीनेट, और संघीय न्यायालय वास्तविक प्रतिबन्ध लगाते हैं, अतएव वह कभी भी अधिनायक नहीं बन सकता। युद्ध काल में अमरीका का राष्ट्रपति एक संवैधानिक अधिनायक के समान हो जाता है। वह सभी सशस्त्र सेनाओं का निर्देशन करता है, वह राज्यों के सैनिक संगठनों को संघीय सेवा में प्रयोग कर सकता है; और वह विजित प्रदेश पर शासन करता है जब तक की काँग्रेस उसके लिए कानून द्वारा नागरिक शासन की व्यवस्था न करे।[1]

1. 'In time of war the president resembles a constitutional dictator. He directs the Armed forces in the air, on land and on sea he calls the state militias into Federal service; he governs conquered territory until Congress provides by law for its civil government.'
—*Ferguson and Mc Henry,* Elements of American Government, p. 183

प्रश्न

१. संयुक्त राज्य अमरीका में राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये। इस सम्बन्ध में 'नामजदगी सम्मेलन' व 'प्रारम्भिक चुनाव' का भी संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
२. संयुक्त राज्य अमरीका में उपराष्ट्रपति का चुनाव कैसे होता है? उसके क्या कार्य हैं? राष्ट्रपति पद खाली होने पर उसका उत्तराधिकारी किस प्रकार नियुक्त होता है?
३. 'संयुक्त राज्य अमरीका में राष्ट्रपति एक प्रकार से जनमत द्वारा चुना हुआ कार्यपालिका-अध्यक्ष है, जिसकी शक्तियाँ सीमित हैं, किन्तु उनमें वृद्धि होने की सम्भावनायें हैं। इस कथन का विवेचन कीजिए।
४. राज्य व कार्यपालिका के अध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति की विभिन्न शक्तियों का वर्णन कीजिये।
५. विधि-निर्माण कार्य में राष्ट्रपति किस प्रकार भाग लेता है? उसका विधायी प्रक्रिया में क्या महत्व है?
६. 'संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति एक राजा से कम व अधिक है, वह एक प्रधानमन्त्री से भी कम व अधिक दोनों ही है।' (लास्की) इस कथन के प्रकाश में राष्ट्रपति की स्थिति व शक्तियों की समीक्षा कीजिये और उसकी इंगलैण्ड के राजा व प्रधानमन्त्री से तुलना कीजिये।
७. राष्ट्रपति की केबिनेट किस प्रकार संगठित की जाती है? केबिनेट का राष्ट्रपति, कांग्रेस व प्रशासन से क्या सम्बन्ध है?
८. निम्नलिखित संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

अ) सं० रा० अमरीका के राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप में होता है। किन्तु उसकी प्रक्रिया प्रत्यक्ष के समान ही महत्वपूर्ण है।

ब) राष्ट्रपति मुख्य कार्यपाल (Chief Executiue) और प्रशासन का निदेशक है।

स) राष्ट्रपति की केबिनेट ब्रिटिश केबिनेट से सर्वथा भिन्न है।

द) राष्ट्रपति की शक्तियाँ अधिनायक (Dictator) के समान हैं, किन्तु वह अधिनायक नहीं है।

४. कांग्रेस

१. रचना

सं० रा० अमरीका की विधायिका-कांग्रेस—दो सदन वाली है; निचला आगार प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) कहलाता है और ऊपर वाला आगार सीनेट (Senate) कहलाता है। प्रतिनिधि सदन की रचना का आधार जनसंख्या है, जबकि सीनेट विभिन्न संघान्तरित राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। चूंकि सं० रा० अमरीका का संविधान संघात्मक है, इसलिये राज्यों की अपनी पृथक् विधायिकायें हैं और कांग्रेस सर्वोपरि नहीं है। कांग्रेस की रचना के विषय में संविधान में दिये गये उपबन्ध इस प्रकार हैं—मौलिक संविधान में कहा गया है कि प्रतिनिधि सदन के सदस्यों (Representatives) का चुनाव विभिन्न राज्यों की जनता द्वारा किया जायेगा। संविधान का १७वाँ संशोधन, जो १९१३ में पास हुआ, यही व्यवस्था करता है कि सीनेट के सदस्यों का चुनाव भी जनता द्वारा हो, जबकि मौलिक संविधान में उनकी छांट राज्य की विधायिकाओं द्वारा की जाने की व्यवस्था थी।

संविधान में यह उपबन्ध है कि सीनेट के ⅓ सदस्य प्रति दो वर्ष बाद पद से निवृत्त हों। इस उपबन्ध के अन्तर्गत ऐसी व्यवस्था की गई है कि ६ वर्ष में प्रति २ वर्ष बाद होने वाले ३ चुनावों में से २ में से एक-एक सीनेटर का चुनाव हो। प्रतिनिधि सदन के बारे में यह उपबन्ध भी दिया गया है कि प्रतिनिधियों की कुल संख्या को विभिन्न राज्यों में जनसंख्या के आधार पर बाँटा जाए। यदि संविधान में स्पष्ट रूप में नहीं कहा गया, यह समझा गया है कि विभिन्न राज्यों में स्थानों का वितरण प्रति १० वर्ष में जनगणना के बाद किया जाए। संविधान ने प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की कुल संख्या भी नियत नहीं की है, किन्तु १९१० से यह संख्या ४३५ चली आ रही है। चुनावों की व्यवस्था के बारे में सबसे महत्वपूर्ण उपबन्ध धारा १ सेक्शन ४ में इस प्रकार है—'प्रतिनिधियों और सीनेटरों के चुनाव के समय स्थान और विधि प्रत्येक राज्य में उसकी विधायिका द्वारा विहित किये जायेंगे, परन्तु कांग्रेस इस सम्बन्ध में बने विनियमों को कानून द्वारा बदल सकती है अथवा उनके सम्बन्ध में विनियम बना सकती है। इसी के आधार पर चुनावों का संचालन राज्यों द्वारा किया जाता है। अन्त में, संविधान की धारा १ के सेक्शन ५ में लिखा है—'प्रत्येक सदन चुनावों, उसके परिणामों और अपने सदस्यों की योग्यता का निर्णय करेगा।'

सीनेट की रचना—प्रत्येक राज्य से सीनेट में दो सदस्य चुनकर आते हैं, चाहे राज्य की जनसंख्या कितनी भी हो। फलतः नेवादा और न्यूयार्क के दो-दो प्रतिनिधि

सीनेट में हैं, यद्यपि उनकी जनसंख्या क्रमशः १ लाख ६० हजार और १ करोड़ ५० लाख है। इसी आधार पर कुछ लेखकों के मतानुसार सीनेट में सम-प्रतिनिधित्व नहीं है, क्योंकि प्रतिनिधित्व का आधार भौगोलिक इकाई न होकर जनसंख्या होनी चाहिये, परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह उपबन्ध छोटे राज्यों को आश्वासन के रूप में सम्मिलित किया गया था, वैसे भी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधि सदन के सदस्य चुने जाते हैं। भारत की राज्य सभा में प्रतिनिधित्व का आधार अधिक सम है; क्योंकि उसमें विभिन्न राज्यों को उनकी जनसंख्या, उनके क्षेत्र व महत्व के आधार पर प्रतिनिधित्व मिला है।

सीनेटरों की अर्हताओं के विषय में संविधान में कहा गया है कि उनकी आयु ३० वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये; वह जिस राज्य के लिये चुना जाए उसी का निवासी होना चाहिये; और कम से कम ६ वर्ष की अवधि से सं० रा० अमरीका का नागरिक होना चाहिये। इनके अतिरिक्त सीनेट ने ऐसा नियम बनाया है कि यदि कोई सीनेटर एक नियत सीमा से अधिक धन चुनाव में खर्च करता है तो सीनेट उसे अपना स्थान ग्रहण करने से वंचित कर देगी। सन् १९१३ के १७वें संशोधन के अन्तर्गत सीनेटर उन्हीं मतदाताओं द्वारा चुने जाते हैं, जो राज्य की विधायिका के बड़ी संख्या वाले सदन को चुनते। इस प्रकार सीनेटरों का प्रत्यक्ष चुनाव होता है और उसका आधार लोकप्रिय है। सीनेटरों का कार्यकाल ६ वर्ष है, परन्तु सीनेटर बहुधा फिर से दूसरी-तीसरी बार चुने जाते हैं। साधारणतया सीनेटर १२, १८, या २४ वर्ष तक सीनेट के सदस्य रहते हैं। १/३ सदस्यों का चुनाव प्रति २ वर्ष में होता है, इस प्रकार सीनेट एक स्थायी सदन है।

प्रतिनिधि सदन की रचना—सदन के सदस्यों की कुल संख्या ४३५ है, जो सन् १९१० की दस-वार्षिक जनगणना के बाद स्थायी रूप से नियत कर दी गई थी। प्रति १० वर्ष बाद होने वाली जनगणना के आधार पर कुल संख्या को विभिन्न राज्यों में बाँट दिया जाता है। संविधान ने यह सीमा लगा दी है कि प्रति ३०,००० जनसंख्या पर एक से अधिक प्रतिनिधि नहीं होगा। इन निर्वाचन-क्षेत्रों का निर्माण राज्यों की विधायिकायें करती हैं और ऐसा करते समय बहुसंख्यक दल यह प्रयत्न करता है कि निर्वाचन क्षेत्र इस प्रकार बनाये जायें कि उस दल के अधिक से अधिक सदस्य चुने जा सकें। इस अवांछनीय प्रथा को **जेरीमेण्डरिंग** (Gerrymandering) कहते हैं; क्योंकि इसका आरम्भ करने वाला जेरी नाम का गवर्नर था इसके अनुसार निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमायें इस प्रकार निर्धारित की जाती हैं कि बहुमत दल के समर्थकों को अधिक से अधिक स्थान प्राप्त हो सकें। इसके विपरीत विरोधी दल के समर्थकों को कुछ थोड़े से निर्वाचन-क्षेत्रों में केन्द्रीभूत कर दिया जाता है। **बोयर्ड** के अनुसार इस प्रथा के परिणामस्वरूप विचित्र राजनीतिक भूगोल की रचना होती है। उदाहरण के लिये जूते के फीते जैसा निर्वाचन क्षेत्र जो एक दक्षिणी राज्य के लम्बे प्रदेश में फैला हुआ था और काठी के थैले जैसा निर्वाचन-क्षेत्र जो

इलियोनोइस राज्य में था। इस प्रथा के कारण प्रतिनिधि सदन निर्वाचन के समय व्यक्त मतों का सही रूप में प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता। सन् १९५२ के चुनावों में रिपब्लिकनों, डेमोक्रेटों और स्वतन्त्र सदस्यों को क्रमशः ५०·६, ४७·४ और २% मिले थे, किन्तु सदन में बहुमत डेमोक्रेटों का रहा।[1] इस समय एक प्रतिनिधि औसतन ३½ लाख जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता है।

उम्मीदवारों के लिए अर्हतायें—प्रतिनिधि में ये अर्हतायें होनी आवश्यक हैं—(१) वह सं० रा० अमरीका का कम से कम ७ वर्ष की अवधि का नागरिक हो। (२) कम से कम उसकी आयु २५ वर्ष हो। (३) वह उसी राज्य का रहने वाला हो जिसके द्वारा वह चुना जाये। इसके अतिरिक्त वह संघ सरकार का सैनिक अथवा नागरिक अधिकारी नहीं होना चाहिए। प्रायः सभी राज्यों ने यह नियम भी बनाया है कि राज्य सरकार के अधिकारी भी संघीय सरकार में कोई उत्तरदायी स्थान ग्रहण न करें। कुछ राज्यों में यह भी प्रतिबन्ध है कि वह उसी निर्वाचन-क्षेत्र का निवासी हो जहाँ से वह चुना जाए। इसी को स्थानीयता का नियम कहते हैं। अन्य राज्यों में ऐसा नियम प्रथा पर आधारित है।

सदन के सदस्यों का कार्यकाल—प्रत्येक सदस्य दो वर्ष के लिए चुना जाता है। यह कार्यकाल इतना कम है कि इस व्यवस्था की व्यापक आलोचना की गई है। एक वर्ष में तो सदस्य को सदन के कार्य और कार्यवाही का कुछ ज्ञान व अनुभव हो पाता है और अगले ही वर्ष उसे नये चुनाव की तैयारी करनी पड़ जाती है; अतएव वह अपना कार्य लगन और कुशलता से नहीं कर पाता। अतः एक आलोचक ने ठीक ही कहा है—जबकि ब्रिटेन में उम्मीदवार कॉमन सभा के लिए खड़े होते हैं, सं० रा० अमरीका में प्रतिनिधि सदन के लिये उम्मीदवार दौड़ते हैं।

सदस्यों के विशेषाधिकार—सदस्यों के मुख्य विशेषाधिकार ये हैं : (१) काँग्रेस के दोनों सदनों के सदस्यों को सरकारी कोष से वेतन मिलता है। अब काँग्रेस के सदस्यों को २२,५०० डॉलर वार्षिक वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्हें अन्य प्रकार के भत्ते मिलते हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि को १२,५०० डॉलर प्रतिवर्ष क्लर्कों का व्यय मिलता है और सीनेटर को राज्य की संख्या के आधार पर ४० हजार से ५० हजार डॉलर तक प्रतिवर्ष इसी प्रयोजन के लिए मिलता है। इनके ऊपर काँग्रेस के सदस्यों को आवागमन व डाक की सुविधायें भी प्राप्त हैं। काँग्रेस के प्रति सदस्य पर लगभग १,५०,००० डॉलर व्यय होता है; इस पर भी बहुत से सदस्य

1. 'This (gerrymandering) is an old practice by which the political party that controls the legislature at the time of the apportionment arranges the districts in such a manner that members of its party have a majority of votes in each district, and thus will obtain the lion's share of the seats in the next Congress.'

—*George C. Bruntz*, Understanding Our Government, p. 245.

अपने वेतन और भत्तों से सन्तुष्ट नहीं हैं। इसका कारण यह है कि सं० रा० अमरीका में प्रति व्यक्ति आय और व्यय का स्तर अन्य देशों से कई गुना ऊँचा है। (२) सदस्यों को यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि जब वे अपने सदन के सत्र में भाग ले रहे हों, उस हेतु आ रहे हों या सत्र के बाद घर लौट रहे हों तो उन्हें राजद्रोह, शान्ति भंग अथवा महाअपराध के सिवाय अन्य किसी अपराध के लिए बन्दी नहीं बनाया जा सकता। (३) सदस्यों को अपने सदन के वाद-विवाद में भी भाषण की स्वतन्त्रता का विशेषाधिकार प्राप्त है। (४) राज्य की विधायिकायें सदस्यों से विधेयक पेश करने या काँग्रेस के विचार के लिए कोई मामला पेश करने के लिए कह सकती हैं, परन्तु उनकी प्रार्थना न मानने पर वे सदस्यों को त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य नहीं कर सकतीं और न ही उन्हें अन्य दण्ड दे सकती हैं।

आलोचना—प्रतिनिधि सदन जनमत का सच्चा प्रतिबिम्ब नहीं है—इसका कारण जैरीमेण्डरिंग की दोषपूर्ण प्रथा है। प्रतिनिधि (सदस्य) के लिए चुनाव में सम प्रतिनिधित्व के लोकतन्त्री सिद्धान्त का पालन नहीं हो पाता। इसके अतिक्रमण के लिए दो कारण उत्तरदायी हैं—प्रथम, सभी राज्य प्रति १० वर्षीय जनगणना के बाद चुनाव क्षेत्रों का फिर से वितरण नहीं करते, विशेषकर ऐसी दशा में जबकि उनके प्रतिनिधियों की कुल संख्या पूर्व जैसी ही रहे। इस बीच में जनसंख्या की काफी अदला-बदली हो सकती है। दूसरे, निर्वाचन-क्षेत्र एक सदस्य वाले हैं, जिनके कारण प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से वह सदस्य चुना जाता है, जिसे सभी उम्मीदवारों में सबसे अधिक मत मिले हों, चाहे उसके विरोधी उम्मीदवारों को प्राप्त हुए मतों का योग विजयी उम्मीदवार के मतों से कितना भी अधिक हो।

२. काँग्रेस का संगठन

सत्र—जब से काँग्रेस की स्थापना हुई है प्रति दो वर्ष के काल को पहली, दूसरी, तीसरी काँग्रेस कहा जाता है। इस प्रकार जिस काँग्रेस का पहला सत्र सन् १९६१ में हुआ वह ८७वीं काँग्रेस रही। सन् १९३३ में हुए २०वें संशोधन से पूर्व काँग्रेस के सदस्यों का कार्य-काल ४ मार्च से आरम्भ होता था, यद्यपि उनके चुनाव गत वर्ष के नवम्बर मास में पूर्ण हो जाते थे। इस प्रकार चुनाव के बाद लगभग ४ माह तक कानून बनाने की शक्ति पूर्वगामी काँग्रेस में ही रहती थी और उसमें ऐसे बहुत से सदस्य होते थे जो नई काँग्रेस के लिए नहीं चुने जाते थे। ऐसे सदस्यों को लोक-भाषा में 'लंगड़ी बत्तखें' (Lame ducks) कहा जाता था। अब २०वें संशोधन के अनुसार काँग्रेस का सत्र प्रतिवर्ष ३ जनवरी से आरम्भ होता है, जब तक वे कानून द्वारा दूसरी तारीख नियत न करें। नियमित अथवा वार्षिक सत्रों के अतिरिक्त राष्ट्रपति काँग्रेस का विशेष सत्र भी आहूत कर सकता है। इस प्रकार से दोनों ही सदनों या विशेष रूप से सीनेट को किसी सन्धि की सम्पुष्टि के लिए आहूत किया जा सकता है। साधारणतया काँग्रेस का

सत्र जुलाई में समाप्त होता है, किन्तु युद्ध या आपात-काल में पूरे वर्ष चल सकता है।

प्रतिनिधि सदन के अधिकारी—सदन का सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी उसका अध्यक्ष (Speaker) होता है। सदन के अध्यक्ष का चुनाव प्रत्येक नई काँग्रेस के पहले सत्र के आरम्भ में होता है। संविधान में कोई ऐसा उपबन्ध तो नहीं है, किन्तु प्रथा के अनुसार अध्यक्ष सदन का सदस्य ही होता है। अध्यक्ष की छाँट बहुमत दल अपने कॉकस[1] में कर लेता है, फिर भी सदन में उसके चुनाव की औपचारिक कानूनी कार्यवाही की जाती है। अध्यक्ष साधारणतः कोई अनुभवी और ज्येष्ठ सदस्य होता है, किन्तु व्यक्तिगत लोकप्रियता भी उसके चुनाव में सहायक होती है। अब यह प्रथा पड़ती जा रही है कि यदि दल अगली काँग्रेस में बहुमत प्राप्त करता है तो पूर्वगामी अध्यक्ष को ही नया अध्यक्ष बनाया जाता है। अध्यक्ष को वार्षिक वेतन, अन्य भत्ते व सुविधायें मिलती हैं।

अध्यक्ष के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं : (१) वह सदन की बैठकों में सभापति रहता है। (२) सदन की कार्यवाही को शान्ति और व्यवस्था के साथ चलाता है। (३) सदन की प्रक्रिया के नियमों का आवश्यकता पड़ने पर निर्वाचन करता है। साधारणतया नियमों को लागू करते समय वह निष्पक्ष रहता है, किन्तु उनके निर्वचन में कभी-कभी वह अपने दल को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करता है। (४) कोई भी सदस्य तब तक किसी विषय पर भाषण नहीं कर सकता जब तक कि अध्यक्ष उसे ऐसा करने की आज्ञा न दे। (५) अध्यक्ष ही विधेयकों को, जो सदस्यों द्वारा पेश किए जाते हैं, समितियों को उनके द्वारा विचार और कार्यवाही के लिए सुपुर्द करता है। (६) बहुधा सदन अध्यक्ष को जाँच करने वाली समितियाँ नियुक्त करने का अधिकार देता है। (७) वह सदन का सदस्य होने के रूप में किसी भी विषय पर बोल सकता है और मतदान भी कर सकता है। कभी-कभी वह वाद-विवाद में भी भाग लेता है। यदि वह किसी विषय पर मतदान कर चुकता है तो फिर उसे निर्णायक मत का अधिकार नहीं रहता।

प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष की ब्रिटिश कॉमन सभा के अध्यक्ष से तुलना—यह एक सर्वविदित बात है कि ब्रिटिश कॉमन सभा का अध्यक्ष पूर्णरूपेण निष्पक्ष होता है। अध्यक्ष बनने के बाद से वह राजनीतिक दल अथवा सक्रिय राजनीति से पृथक हो जाता है। वह सदन के सभापति रूप में सभी कार्य पूर्ण निष्पक्षता के साथ करता है, इसी कारण सम्पूर्ण सदन—विरोधी पक्ष का भी उसमें पूर्ण विश्वास रहता है। वास्तव में, वह सदन की प्रतिष्ठा और सदस्यों के अधिकारों

1. 'The term 'caucus' comes from the Algouquin Indian language and means "to talk." Hence, a caucus is a gathering of party leaders to talk over possible candidates."

—*George G. Brunty*, Under Standing our Government, p. 53.

का रक्षक होता है। उसकी निष्पक्षता इस सीमा तक मानी जाती है कि आगामी चुनाव में उसका विरोध नहीं किया जाता और यदि विरोधी पक्षों का बहुमत होता है तो भी उसे ही अध्यक्ष बनाया जाता है। इसके विपरीत सं० रा० अमरीका के प्रतिनिधि सदन का अध्यक्ष अपने दल से सम्बन्ध विच्छेद नहीं करता वरन् वह तो दल का सदन में महत्वपूर्ण नेता होता है। वह अपने कार्य में भी पूर्ण निष्पक्षता का पालन नहीं करता। अवसर पाने पर वह बहुमत दल के पक्ष-समर्थन का प्रयत्न करता है। इसके अतिरिक्त वह वाद-विवाद में भी भाग लेता है, जबकि कॉमन सभा का अध्यक्ष किसी विचारणीय विषय पर अपने विचार कभी भी प्रकट नहीं करता।

ऑग और रे ने लिखा है कि सं० रा० अमरीका में अध्यक्ष पद का विकास ब्रिटेन से बहुत भिन्न आधार पर हुआ है और वह खुले रूप में दलीय व्यक्ति रहता है। रीड और केनन के समय में तो वह राष्ट्रपति के दूसरे स्थान पर ही दल का नेता होता था। फाइनर के अनुसार जबकि ब्रिटिश कॉमन सभा अध्यक्ष केवल नियमों का उल्लेख करता है (अर्थात् उन्हें पूर्ण निष्पक्षता से लागू करता है) प्रतिनिधि सदन का अध्यक्ष उनके निर्वचन में अपनी व्यापक विवेकीय शक्ति के द्वारा उनके निर्माण में भी भाग लेता है। प्रतिनिधि सदन का अध्यक्ष कार्य-क्रम के निर्धारण, आदि में भी भाग लेता है।[1]

प्रतिनिधि सदन के अन्य अधिकारी—सदन में दलों के नेता भी होते हैं, क्योंकि सं० रा० अमरीका के सदन में **सदन का नेता** और **विरोधी पक्ष का नेता** तो होते नहीं। बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक दोनों ही दल अपने-अपने नेताओं को दलीय **कॉकस या सम्मेलन** में छाँट करते हैं। जिस प्रकार अपने देश में तथा ब्रिटेन में दलीय मीटिंग अथवा संगठन होता है, सं० रा० अमरीका में डेमोक्रेटिक दल और रिपब्लिकन दल का क्रमश: **कॉकस और कान्फ्रेंस** होते हैं। उनका काम अपने सदन की कार्यवाही की देख-रेख करना अथवा उस पर नियन्त्रण रखना है। दल का नेता सदस्यों से सम्पर्क रखता है और उन्हें दल की इच्छा के अनुसार मत देने के लिए कहता है और दलीय सचेतकों के कार्यों का भी निदेशन करता है। प्रत्येक सदन में बहुमत दल का नेता सदन के कार्यक्रम का साप्ताहिक आधार पर निर्धारण अथवा नियन्त्रण करने का भी प्रयत्न करता है, परन्तु इस कार्य का दायित्व दल की स्टीयरिंग अथवा नीति समितियों पर होता है और सदन में नियम समिति पर। दलीय

1. 'Whereas the Speaker of the House of Commons simply utters the rules of the House...the Speaker of the House of Representatives has often made the rules of the House by wide discretion in interpretation, in appointment of Committees, with power over the proceedings of the House.'

—*H. Finer*, Theory and Practice of Modern Government, p. 477.

नेताओं के अतिरिक्त दलीय सचेतक भी होते हैं, जिनका कार्य सदस्यों से दल के निर्णयों के अनुसार मतदान कराना होता है और यह देखना भी कि सदस्य महत्व-पूर्ण प्रश्नों पर मतदान के समय उपस्थित भी रहें। सदन में सम्पूर्ण समिति का सभापति उपाध्यक्ष का कार्य करता है।

सीनेट के अधिकारी—संविधान के अनुसार सं० रा० अमरीका का उप-राष्ट्रपति सीनेट का सभापति होता है। सभापति के कार्य और अधिकार लगभग वैसे ही हैं जैसे कि सदन के अध्यक्ष के; परन्तु सदन की कार्यवाही में उसका स्थान प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष के समान महत्वपूर्ण नहीं होता। उसका महत्व बहुत सीमा तक उप-राष्ट्रपति के व्यक्तित्व और इस बात पर निर्भर करता है कि सीनेट में उसके दल का बहुमत है या नहीं। सीनेट का उप-सभापति भी होता है जिसे एक प्रकार का अस्थायी अध्यक्ष कहते हैं। उसका निर्वाचन सदस्यों द्वारा दलीय आधार पर होता है और उसका कार्य उप-राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में सीनेट की बैठकों का सभापतित्व करना है।

वाद-विवाद सम्बन्धी नियम—प्रतिनिधि सदन में विचाराधीन विषय पर प्रत्येक सदस्य एक घण्टे तक बोल सकता है, परन्तु सभी को बोलने के लिए इतना समय नहीं मिल पाता। जब किसी विषय पर विचार अथवा वाद-विवाद जारी रहता है, किसी भी सदस्य को उसे समाप्त कराने के लिए इस उद्देश्य से प्रस्ताव पेश करने (अर्थात् पूर्व प्रश्न पर मतदान करा लिया जाए) का अधिकार है। जब ऐसा प्रस्ताव पेश हो जाता है तो उस पर तुरन्त मतदान कराया जाता है और यदि इस प्रस्ताव के पक्ष में बहुमत होता है तो वाद-विवाद का अन्त हो जाता है और विधेयक अथवा विचाराधीन विषय पर मतदान कराया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी महत्वपूर्ण विषयों पर सम्पूर्ण सदन की समिति में विचार होता है। इसमें वाद-विवाद दो भागों में होता है—पहले सम्पूर्ण विधेयक पर साधारण वाद-विवाद होता है और बाद में उसके प्रत्येक सैक्शन पर वाद-विवाद होता है तथा सम्बन्धित संशोधन पर विचार भी। साधारण वाद-विवाद में साधारणतया दो सदस्य—एक पक्ष में और दूसरा विपक्ष में—भाग लेते हैं और विस्तृत वाद-विवाद में सदस्यों को ५-५ मिनट के लिए प्रस्तावित संशोधन पर बोलने का अवसर मिलता है।

सीनेट में किसी भी विचाराधीन विषय पर वाद-विवाद को समाप्त करने के लिए प्रस्ताव पेश करने का नियम नहीं है। इसी कारण सीनेट में **फिलिबस्टरिंग** (Filibustering) नाम की प्रथा जारी है, जिसका अर्थ है कि अल्प मत वाले सदस्य किसी विधेयक या प्रस्ताव के विरोध में चाहे जितने समय तक बोल सकते हैं; जिससे कि बहुमत विचाराधीन विषय को पास न करा सके। इस प्रकार सीनेट में वाद-विवाद की समाप्ति के लिए कोई व्यवस्था न थी और सीनेट के सदस्यों को बोलने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उदाहरण के लिए, सन् १९०३ में एक

सीनेटर अंग्रेजी कवि बायरन के प्रसिद्ध काव्य चाइल्ड हेरॉल्ड को लेकर बोलने खड़ा हो गया और उसने कहा कि जब तक विचाराधीन प्रस्ताव में से कुछ अंश (जिनका वह विरोधी था) न निकाले जायेंगे वह उस काव्य में से पढ़कर बोलता रहेगा अर्थात् कुछ भी कहता रहेगा, चाहे उसका विषय से कोई भी सम्बन्ध न हो । अन्त में, उसकी माँग पूरी हुई । सन् १९०८ में एक सीनेटर फॉलेट एक विधेयक के विरोध में १८ घण्टे तक बोला । अगस्त सन् १९५४ में नागरिक अधिकार विधेयक पर विचार के दौरान केरोलिना राज्य का एक सीनेटर उस विधेयक के विरोध में लगातार २४ घण्टे और १९ मिनट तक बोला और वह विधेयक पास न हुआ ।

वाक् स्वातन्त्र्य का इससे बढ़कर दुरुपयोग नहीं हो सकता । इसी कारण संयुक्त राज्य अमरीका की सीनेट ही एक ऐसी वैधानिक संस्था है जिसमें अल्पमत बहुमत के कार्यों को रोक सकता है । इस दोष को दूर करने के लिए सन् १९१७ में एक नियम स्वीकार हुआ । इस नियम के अनुसार कोई भी १६ सदस्य विचाराधीन विषय पर वाद विवाद का अन्त कराने के लिए प्रार्थना कर सकते हैं । यदि ऐसी प्रार्थना को सीनेट के २/३ मतों से स्वीकार कर लिया जाए तो उसके बाद कोई भी सीनेटर उस विषय तथा उसके शेष संशोधनों पर १ घण्टे से अधिक नहीं बोल सकता । व्यवहार में इस नियम का पालन करा सकना अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ । सन् १९१७ से सन् १९५८ तक इस प्रकार की २२ प्रार्थनायें की गई, जिनमें से केवल ४ स्वीकृत हुईं और सन् १९२७ के बाद एक बार भी ऐसी स्वीकृति न मिल सकी । परन्तु अब एक अन्य प्रकार से वाद-विवाद की समाप्ति कराई जाती है । यह किसी भी महत्वपूर्ण विषय पर सर्व सहमति के समझौते द्वारा होता है, जिसके अनुसार पहले ही यह समझौता कर लिया जाता है कि विचाराधीन विषय पर एक नियत समय पर मतदान करा लिया जायेगा ।

३. समिति पद्धति

वर्तमान समिति-पद्धति का आधार सन् १९४६ का 'विधायिका पुनर्संगठन कानून' है । इसके पूर्व सदन और सीनेट की स्थायी समितियों की संख्या क्रमशः ४८ और ३३ थी, जो अब २० और १६ रह गई है । दोनों सदनों में अधिकतर समितियों के नाम और कार्य प्रायः समान हैं । उदाहरण के लिए दोनों ही सदनों में इन विषयों से सम्बन्धित समितियाँ हैं—कृषि, विनियोग, सशस्त्र सेनायें, बैंक और मुद्रा, नागरिक सेवा, सार्वजनिक निर्माण-कार्य, श्रम, विदेश सम्बन्ध, न्यायपालिका, अन्तर्राज्यिक और वैदेशिक वाणिज्य, इत्यादि । कांग्रेस के दोनों सदनों में स्थायी समितियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की समितियाँ भी हैं । अनेक समितियाँ व्यापक रूप से उप-समितियों का भी प्रयोग करती हैं; यहाँ तक कि इनमें से कुछ न्यूनाधिक स्थायी हैं और उन पर बड़ी समितियों का नियन्त्रण बहुत कम है । विभिन्न प्रकार की समितियों का संक्षिप्त विवेचन अग्रलिखित है—

स्थायी समितियाँ—इनकी संख्या और प्रमुख समितियों के कार्य क्षेत्र का वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। सन् १६११ से पूर्व प्रतिनिधि सदन की इन समितियों के सदस्यों की नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा की जाती थी, परन्तु अब इनका निर्वाचन सदन द्वारा होता है। इनमें दोनों ही दलों के सदस्य सम्मिलित किए जाते हैं और उनकी संख्या दलों की संख्या के अनुपात में रहती है। साधारणतया प्रत्येक सीनेटर २ समितियों का सदस्य रहता है और प्रतिनिधि किसी एक समिति का। समितियों के सभापतियों को ज्येष्ठता के नियम के आधार पर नियुक्त किया जाता है अर्थात् प्रत्येक समिति में बहुसंख्यक दल का वह सदस्य सभापति बनता है जिसकी समिति की सदस्यता सबसे अधिक होती है। सभापति समितियों की कार्यवाही का संचालन करते हैं। उनके ये कार्य बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि स० रा० अमरीका में मन्त्री नहीं होते।

सदन में प्रस्तुत किए गए प्राय: सभी विधेयक उनके विषयों से सम्बन्धित समितियों के सुपुर्द कर दिए जाते हैं। राष्ट्रपति का सत्र के आरम्भ में भेजा गया **'संघ की स्थिति सम्बन्धी सन्देश'** (State of the Union Message) भी खण्डों में विभाजित करके विभिन्न समितियों को उनके विचारार्थ भेंट दिया जाता है। प्रथा के अनुसार समितियों को विधेयकों के स्वरूप तथा सार पर सभी प्रकार के निर्णय करने का अधिकार है। उनका सबसे महत्वपूर्ण अधिकार तो यह है कि वे जिन विधेयकों को समाप्त करना चाहें, विचार करके अथवा बिना विचार किए ही वे उन पर सदन में रिपोर्ट नहीं देतीं। इस प्रकार प्रतिवर्ष हजारों विधेयक समितियों में ही मारे जाते हैं। सन् १६३६–४१ की काँग्रेस में ११,३५८ विधेयक पेश हुए थे, जिनमें से ८ हजार से ऊपर विधेयकों का समितियों ने ही उन पर रिपोर्ट न देकर अन्त कर दिया था। समितियों में जैसे कि ऊपर बताया गया है, सभी प्रकार के महत्वपूर्ण परिवर्तन व संशोधन भी पेश किए जाते हैं। इन्हीं कारणों से कुछ लेखकों ने सं० रा० अमरीका की समितियों को **लघु विधायिकायें** कहा है।[1]

नियम समिति—यह सदन की अत्यन्त महत्वपूर्ण समिति है। १०० वर्ष से अधिक लम्बे काल में इस समिति ने सदन की प्रक्रिया पर पूर्ण सत्ता कायम कर ली है, यहाँ तक कि अब इसे विधि-निर्माण पर जीवन व मरण की शक्ति प्राप्त है। अब प्रत्येक काँग्रेस में २०–३० हजार विधेयक पेश होते हैं, जिनके ऊपर विचार करना असम्भव है। उनमें से बहुत बड़ी संख्या की काट-छाँट तो विभिन्न समितियाँ ही कर देती हैं, परन्तु फिर भी महत्वपूर्ण विधेयकों पर विचार करने के लिए सदन को

1. 'The committes are in fact the real legislative bodies of the House of Representative. They have been called the 'little legislatures' by the critic...They have full power over bills committed to them except that they cannot change the title or subject; but amendment of a project may essentially change it.' —*Ibid*, p. 499.

काफी समय नहीं मिल पाता। इस उद्देश्य की प्राप्ति में नियम-समिति द्वारा बनाये गए विशेष नियम अथवा आदेश बहुत सहायक होते हैं। सन् १९१० तक इस समिति में सदन का अध्यक्ष ही इसका सभापति रहता था। परन्तु अब इसके सदस्यों की संख्या १२ कर दी गई है और इसके सदस्य दोनों प्रमुख दलों से लिए जाते हैं। अब अध्यक्ष इसका सभापति नहीं होता, किन्तु इसके सभापति का स्थान अब भी बड़ा महत्वपूर्ण है। महत्व की दृष्टि से वह अध्यक्ष और बहुमत दल के नेता के बाद ही आता है।

नियम समिति के मुख्य अधिकार निम्न प्रकार हैं—(१) प्रत्येक नई कांग्रेस के आरम्भ में प्रक्रिया सम्बन्धी नए नियमों और उन पर आये संशोधनों पर विचार करना। (२) वाद-विवाद समाप्त करने और पेश किये जाने वाले विधेयकों तथा प्रस्तावों के सम्बन्ध में प्रक्रिया विन्यास के लिए नियम बनाना। (३) यह जब चाहे कोई विधेयक तैयार करके, जो कि उस विषय पर उसके सामने आये विधेयक से भिन्न हो सकता है, सदन के विचारार्थ पेश कर सकती है। (४) विशेष अवसरों पर विशेष नियम बना सकती है अथवा ऐसे निश्चय कर सकती है—विचाराधीन विधेयकों में से कौनसा पहले या बाद में प्रस्तुत किया जाए और कितने तथा किस प्रकार के संशोधन उस पर रक्खे जा सकते हैं। इसी कारण सदन का अल्पसंख्यक दल सदा ही इसके द्वारा बनाए गए प्रतिबन्ध नियमों के विरुद्ध आवाज उठाता रहता है।

प्रवर (सैलेक्ट) समितियाँ—इनकी नियुक्ति समय-समय पर विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की जाती है। ये समितियाँ एक प्रकार से अस्थायी होती हैं और इनका काम की समाप्ति के साथ अन्त हो जाता है। प्रतिनिधि सदन की प्रवर समितियों के सदस्यों की नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा की जाती है तथा इनकी रचना सदन के साधारण प्रस्ताव पर की जाती है। साधारणतया किसी प्रवर समिति को विशेष समस्या के अध्ययन अथवा उसके विषय में छानबीन करने के लिए निश्चित समय के लिए नियुक्त किया जाता है। प्रवर समितियों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण समितियाँ वे होती हैं जिन्हें छानबीन के लिए नियुक्त किया जाता है। ऐसी समितियों को कांग्रेस के स्थगन के बाद भी अपना कार्य जारी रखने का अधिकार दिया जाता है। इन्हीं समितियों को **विशेष समितियाँ** भी कहा जाता है। सन् १९३८ से १९४५ तक प्रतिनिधि सदन की 'अमरीका-विरोधी कार्यवाहियाँ सम्बन्धी समिति' इसी प्रकार की समिति थी; जिसे सदन ने बाद में एक स्थायी समिति का रूप दे दिया। दोनों ही सदन इस प्रकार की समितियों का प्रयोग करते हैं।

संयुक्त समितियाँ—कभी-कभी कांग्रेस के दोनों सदन संयुक्त समितियाँ भी नियुक्त कर देते हैं। इनका मुख्य रूप में ऐसे विषयों से सम्बन्ध होता है जिन पर सदनों का समवर्ती अधिकार-क्षेत्र हो। ये समितियाँ स्थायी तथा प्रवर दोनों ही प्रकार की हो सकती हैं। स्थायी समितियाँ कांग्रेस के कानून के अनुसार बनती हैं और प्रवर

समितियाँ दोनों सदनों के प्रस्ताव पर। ऐसी समितियों में ये उल्लेखनीय हैं—मुद्रण, कांग्रेस के पुस्तकालय, अणु शक्ति और आन्तरिक आय व कर विषयों से सम्बन्धित समितियाँ।

सम्पूर्ण सदन की समिति—इस समिति का उद्देश्य महत्वपूर्ण कार्यों को शीघ्र कराना है। यह समिति यूनियन कलेण्डर पर आए सभी विधेयकों तथा संघ की स्थिति पर सम्पूर्ण सदन की समिति के रूप में विचार करती है। निजी विधेयकों के कलेण्डर पर आए विधेयकों पर भी सम्पूर्ण सदन की समिति में विचार होता है। साधारणतया किसी सदन के प्रस्ताव पर सम्पूर्ण सदन समिति का रूप धारण कर लेता है। इसका सभापति अध्यक्ष के स्थान पर कोई अन्य सदस्य होता है, जिसे अध्यक्ष नियुक्त करता है। इस समिति का मुख्य लाभ यह है कि इसमें संचालन सम्बन्धी नियमों का कठोरता से पालन नहीं होता, अतएव कार्य शीघ्रता से हो जाता है। इसकी बैठक के लिए गणपूर्ति केवल १०० है जबकि सदन की बैठकों में कम-से-कम बहुमत उपस्थित होना आवश्यक है। इसमें प्रत्येक सदस्य को बोलने की स्वतन्त्रता होती है, परन्तु केवल ५-५ मिनट के लिए ही। जिन विधेयकों पर यह समिति विचार तथा निर्णय कर लेती है, वे पास होने से पूर्व सदन में आते हैं। ऐसी समिति केवल प्रतिनिधि सदन ही नियुक्त करता है।

सम्मेलन समितियाँ—जब कभी दोनों सदनों के बीच किसी विधेयक पर मतभेद उत्पन्न हो जाता है, तो उसे दूर करने के लिए दोनों सदन इस प्रकार की समितियाँ नियुक्त करते हैं। ये समितियाँ, जिनमें दोनों ही सदनों के सदस्य होते हैं, मतभेद को दूर करने और सहमति अथवा समझौते के आधार पर विधेयक को स्वीकार करती हैं। ये समितियाँ भी एक प्रकार की संयुक्त समितियाँ होती हैं, किन्तु स्थायी सम्मेलन समितियों के सदस्यों को सदन का अध्यक्ष और उप-राष्ट्रपति (जो सीनेट का सभापति होता है) नियुक्त करते हैं। यदि सम्मेलन समिति सहमति के आधार पर विधेयक तैयार करने में सफल हो जाती है, तो इसकी रिपोर्ट दोनों सदनों में रक्खी जाती है। यदि दोनों सदन उसे स्वीकार कर लेते हैं तो विधेयक कानून बन जाता है, अन्यथा या तो विधेयक का अन्त हो जाता है अथवा उस पर फिर से सम्मेलन समिति बैठाई जाती है।

सदन की स्टीयरिंग समिति—दोनों ही सदन इस प्रकार की समितियाँ नियुक्त करते हैं। ये समितियाँ सदन व सीनेट में कार्यक्रम निर्धारित करती हैं। ये ही समितियाँ दल की नीति और कार्यवाही पर साधारण नियन्त्रण रखती हैं, जिस कारण इन्हें नीति समितियाँ भी कहा जाता है। इन समितियों के सभापति बहुमत दल के कॉकस द्वारा नियुक्त होते हैं। ऐसी समिति के दो कार्य प्रमुख हैं—(१) सदन के कलेण्डरों पर बहुत बड़ी संख्या में आए विधेयकों में से उन्हें छाँटना जिन्हें बहु-संख्यक दल शीघ्र ही पास कराना चाहता है। (२) ऐसे विधेयकों पर विचार किये जाने के मार्ग में आने वाली रुकावटों को दूर करना।

४. कांग्रेस की शक्तियाँ और उसके कार्य

कांग्रेस की शक्तियों और उसके कार्यों को एक आधार पर हम दो समूहों में रख सकते हैं—विधायी और अन्य। विधायी समूह में सम्मिलित कांग्रेस की मुख्य शक्तियों को तीन शीर्षकों के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है, जिनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

संविधान द्वारा प्रदत्त अथवा स्पष्ट शक्तियाँ—संविधान ने कांग्रेस को ये शक्तियाँ स्पष्ट रूप से प्रदान की हैं—कर लगाना, ऋण लेना और सिक्के बनाना। डाकखाने और डाक-मार्ग स्थापित करना, पेटेण्ट और कॉपीराइट देना, अन्तर्राज्यिक और वैदेशिक वाणिज्य को विनियमित करना, अधीन संघीय न्यायालय स्थापित करना, थल सेना व जल सेना रखना, प्रदेशों और सम्पत्ति का शासन करना, माप और तौल आदि के स्तर नियत करना, वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन और युद्ध की घोषणा, आदि।

निहित शक्तियाँ—ऊपर वर्णित स्पष्ट रूप से प्रदान की गई शक्तियों के अतिरिक्त कांग्रेस को बहुत सी निहित शक्तियाँ भी प्राप्त हो गई हैं, जिनमें से कुछ मुख्य ये हैं—(१) बैंक और अन्य कॉर्पोरेशन स्थापित करना, जो कर लगाने, ऋण लेने और वाणिज्य को विनियमित करने की शक्तियों में निहित हैं। (२) मार्गों, स्कूलों और स्वास्थ्य व बीमे, आदि पर व्यय करना, जो डाक-मार्ग स्थापित करने तथा सामान्य कल्याण के लिए व्यवस्था करने की शक्तियों में निहित है। (३) कृषि में सहायता देना तथा उसे विनियमित करना, जो कर लगाने, वाणिज्य को विनियमित करने तथा सामान्य कल्याण के लिए व्यय करने की शक्तियों में निहित हैं। (४) सैनिक और नाविक शिक्षालय खोलना, जो सेना व नाविक सेना के रखने की शक्तियों में निहित हैं।

समवर्ती शक्तियाँ—ये वे शक्तियाँ हैं जिनका प्रयोग कांग्रेस और राज्यों की विधायिकाएँ साथ-साथ करती हैं। इनमें प्रमुख ये हैं—कर लगाना, ऋ लेना, बैंकों तथा अन्य कॉर्पोरेशनों को चार्टर देना, न्यायालय स्थापित करना (अपने-अपने क्षेत्र में), कानून बनाना और लागू करना, सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए सम्पत्ति लेना, सामान्य कल्याण के लिए व्यय की व्यवस्था करना।

उपर्युक्त शक्तियों के प्रगणन के साथ-साथ यहाँ यह भी बताना आवश्यक है कि कांग्रेस को निम्नलिखित शक्तियों के प्रयोग की मनाई की गई है—(१) निर्यात पर कर न लगाना, (२) राज्यों की जनसंख्या के अनुपात के अतिरिक्त अप्रत्यक्ष कर न लगाना, (३) एकरूपता के आधार के अतिरिक्त अप्रत्यक्ष कर न लगाना, (४) अधिकार पत्र में दी गई प्रत्याभूतियों को कम न करना, (५) वाणिज्य के क्षेत्र में से एक राज्य को दूसरे के ऊपर कोई विशेष सुविधा या अधिमान्यता न देना, (६) सम्बन्धित राज्यों की सहमति के बिना राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन न करना, (७) नये राज्यों को मौलिक राज्यों के समान पद न देना, (८) दासता की आज्ञा न देना और, (९) उपाधियाँ न प्रदान करना।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि सं० रा० अमरीका का संविधान संघात्मक है, अतएव संविधान द्वारा काँग्रेस और राज्य की विधायिकाओं के बीच शक्तियों का वितरण किया गया है। दूसरे अर्थों में, काँग्रेस और राज्यों की विधायिकायें केवल अपने-अपने क्षेत्र में सर्वोपरि हैं। वास्तव में, संविधान की सर्वोपरिता है, जिसकी रक्षा संघीय न्यायालयों द्वारा की जाती है। अतएव अमरीकी काँग्रेस की स्थिति भारतीय संसद जैसी है और यह ब्रिटिश पार्लियामेंट से भिन्न है। पूर्व वर्णित शक्तियों के आधार पर काँग्रेस संघ सरकार की नीति निर्धारित करती है।

काँग्रेस की अन्य शक्तियों तथा अधिकारों को विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत निम्न प्रकार रक्खा जा सकता है :

वित्तीय—काँग्रेस को सं० रा० अमरीका के संघीय शासन के सुचारु संचालन के हेतु कर लगाने व ऋण लेने की शक्तियाँ प्राप्त हैं। काँग्रेस ही प्रशासन को कर लगाने का आदेश देती है और सभी प्रकार के प्रशासन व्यय की स्वीकृति देती है। काँग्रेस राज्यों को विभिन्न कार्यों के लिए अनुदान रूप में सहायता देती है तथा सं० रा० अमरीका के मित्र देशों व अविकसित देशों के विकास में आर्थिक सहायता के लिए अनुदान व ऋण स्वीकार करती है। संघ शासन की आय और व्यय की स्वीकृति के लिए काँग्रेस प्रतिवर्ष बजट स्वीकार करती है। वित्तीय शक्ति द्वारा ही काँग्रेस राष्ट्रीय कोष पर अपना नियन्त्रण रखती है।

न्यायिक शक्तियाँ—काँग्रेस को राष्ट्रपति तथा संघीय न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाही करने तथा उन्हें उनके परिणामस्वरूप पद से हटाने की शक्ति प्राप्त है। महाभियोग की कार्यवाही प्रतिनिधि सदन द्वारा आरम्भ की जाती है और सीनेट उसकी सुनवाई करके निर्णय करती है। जब महाभियोग की कार्यवाही राष्ट्रपति के विरुद्ध की जाती है और उसकी सुनवाई सीनेट करती है, उस समय सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति उसका अध्यक्ष रहता है। जिसके विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाही की जाती है उस। अधिकारी को उपस्थित होने और अपने बचाव में प्रमाण पेश करने का अधिकार है। किसी अधिकारी को दण्डित करने के लिए सीनेट में २/३ के बहुमत से निर्णय होना आवश्यक है। अब तक १२ महाभियोग के मुकदमे चले हैं, जिनमें से ९ न्यायाधीशों के विरुद्ध थे और उनमें से ४ को दण्ड दिया गया।

निर्वाचन सम्बन्धी अधिकार—संविधान में यह व्यवस्था है कि यदि राष्ट्रपति पद के किसी भी उम्मीदवार को निर्वाचकों का बहुमत प्राप्त हो तो प्रतिनिधि सदन सबसे अधिक मत पाने वाले तीन उम्मीदवारों में से किसी एक को राष्ट्रपति चुनेगा। अब तक ऐसे दो अवसर आये हैं। राष्ट्रपति का चुनाव करते समय प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों का केवल एक मत होता है। इसी प्रकार यदि उप-राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों में से किसी एक को भी निर्वाचकों के मतों का बहुमत प्राप्त न

हो तो सीनेट सबसे अधिक मत पाने वाले दो उम्मीदवारों में से एक को उपराष्ट्रपति चुनेगी।

संविधान में संशोधन करने की शक्ति—संविधान में संशोधन का प्रस्ताव काँग्रेस के दोनों सदनों में २/३ के बहुमत से पास होना चाहिए। प्रस्तावित संशोधन की सम्पुष्टि ३/४ राज्यों की विधायिकाओं अथवा उनके सम्मेलनों द्वारा होनी आवश्यक है। इस प्रकार काँग्रेस को संविधान में संशोधन प्रस्ताव रखने का अधिकार प्राप्त है उनकी स्वीकृति काँग्रेस स्वयं नहीं करती।

प्रशासनिक शक्तियाँ—सं० रा० अमरीका के प्रशासन के सभी प्रमुख प्रशासनिक विभागों की रचना समय-समय पर काँग्रेस ने ही की है। इनके अतिरिक्त काँग्रेस ने अनेक **स्वतन्त्र नियामक आयोगों** (Independent Regulatory Commissions) और अन्य अभिकरणों (agencies) की स्थापना भी की है। इनमें से प्रमुख अन्तर्राज्यिक वाणिज्य आयोग और सिविल सर्विस आयोग हैं। काँग्रेस ऐसे आयोगों व अभिकरणों की रचना के सम्बन्ध में आवश्यक कानून बनाती है और उनके कार्यों की देख-रेख, आदि के लिए उचित व्यवस्था करती है। काँग्रेस ने ही सन् १६२१ के बजट और लेखा कानून द्वारा ब्यूरो ऑफ दी बजट की रचना की और राष्ट्रपति को संघीय शासन के लिए एक बजट बनवाने का अधिकार दिया। इसी प्रकार काँग्रेस ने कानूनों द्वारा नागरिक सेवाओं में लूट की व्यवस्था (Spoils System) का अन्त करने, योग्यता के आधार पर भर्ती करने, सेवाओं में वर्गीकरण व उनके वेतन, आदि के सम्बन्ध में समय-समय पर आवश्यक कानून बनाये हैं।

उपर्युक्त के अतिरिक्त काँग्रेस को प्रशासन के कार्यों में छान-बीन कराने की महत्वपूर्ण शक्ति प्राप्त है। वास्तव में, कानून बनाना और छानवीन कराना काँग्रेस की शक्तियों के प्रयोग के **प्रमुख साधन** हैं। काँग्रेस के द्वारा छानवीन की प्रथा काफी पुरानी है और यह काँग्रेस की विभिन्न कार्यवाहियों में सार्वजनिक ध्यान व अभिरुचि को व्यापक रूप से खींचने वाली है। सन् १६३० के बाद के वर्षों में टी० वी० ए०, लॉबीइंग और नागरिक स्वतन्त्रताओं में की गई छानवीन तथा दूसरे विश्व युद्ध के दौरान अमरीका विरोधी गतिविधियों में छानवीन करने वाली समिति के कार्यों में जनता ने व्यापक अभिरुचि प्रदर्शित की। छानवीन के कई रूप हैं। प्रथम, काँग्रेस की विभिन्न स्थायी समितियाँ विचाराधीन विधेयकों के सम्बन्ध में साधारण छानवीन करती हैं और आवश्यकतानुसार उप-समितियाँ भी नियुक्त करती हैं। दूसरी, पूर्णतया औपचारिक रूप से छानवीन तब की जाती है जब काँग्रेस किसी विषय विशेष के अध्ययन और उसकी छानवीन के लिए कोई विशेष समिति नियुक्त करती है तथा काँग्रेस उस समिति के लिए आवश्यकतानुसार धनराशि स्वीकार करती है और उसे गवाही का अधिकार देती है।

साधारणतया दोनों सदन अलग-अलग छानबीन कराने का अधिकार देते हैं, किन्तु कभी-कभी दोनों सदन मिलकर संयुक्त छानबीन समिति भी नियुक्त करते हैं। सन् १९७३–७४ में सीनेट ने एक ऐसी समिति वाटरगेट काण्ड की छानबीन करने हेतु नियुक्त की थी, जिसके उस काण्ड से सम्बन्धित राष्ट्रपति के कार्यालय से अनेक आलेख और टेप किये हुए रिकार्डों की माँग की। उसके परिणामस्वरूप राष्ट्रपति और काँग्रेस के बीच एक प्रकार का संघर्ष चला और अन्त में राष्ट्रपति निक्सन को पदत्याग करना पड़ा।

सीनेट और सदन की शक्तियों की तुलना—साधारण रूप में काँग्रेस के दोनों सदनों की शक्तियाँ सम हैं, परन्तु कुछ बातों में सीनेट को विशेष शक्तियाँ अथवा अधिकार प्राप्त हैं और एक-दो बातों में प्रतिनिधि सदन के विशेष अधिकार हैं। कोई भी विधेयक तभी कानून का रूप धारण करता है जब वह दोनों सदनों में एक ही रूप में पास हो जाता है। वित्तीय क्षेत्र में भी दोनों सदनों की वास्तविक शक्तियाँ बराबर हैं, यद्यपि वित्तीय विधेयकों का आरम्भ प्रतिनिधि सदन में ही किया जा सकता है। सदन ही महाभियोग की कार्यवाही आरम्भ करता है। सीनेट की दो विशेष शक्तियाँ ये हैं—(१) अनेक उच्च संघीय अधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, किन्तु उसके द्वारा सुझाये गये नामों पर सीनेट अनुसमर्थन आवश्यक है। (२) विदेशों के साथ सन्धियों में पहल राष्ट्रपति और विदेश विभाग करते हैं, किन्तु वे सीनेट के परामर्श और सहमति से ही स्वीकार की जाती हैं। अपनी शक्तियों तथा रचना के कारण सीनेट संसार के सभी उच्च आगारों में सबसे अधिक शक्तिशाली सदन कहलाता है।

सीनेट के शक्तिशाली होने के प्रमुख कारणों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—(१) सीनेट एक स्थायी सदन है; वास्तव में राष्ट्रपति, उसकी केबिनेट और प्रतिनिधि सदन, आदि सभी का कार्यकाल नियत है; सीनेट ही एक स्थायी निकाय है। (२) इसके सदस्यों का कार्यकाल ६ वर्ष है, जबकि प्रतिनिधि सदन के सदस्य २ वर्ष के लिए चुने जाते हैं। सीनेट के अधिकतर सदस्य २–३ अवधियों तक रहते हैं। अतएव उनका सार्वजनिक जीवन और शासन के क्षेत्रों में बड़ा सम्मानित स्थान रहता है, वे राजनीति में विशेष रूप से योग्य और अनुभवी भी होते हैं। (३) सीनेट का आकार बहुत छोटा है; इसका प्रत्येक सदस्य संख्या की दृष्टि से प्रतिनिधि की अपेक्षा ४ गुनी जनता का प्रतिनिधि होता है और उसका भी चुनाव प्रत्यक्ष रूप से होता है। इसी कारण सीनेट के सदस्य साधारणतया २–३ समितियों के सदस्य रहते हैं जबकि सदन का सदस्य एक समिति में रहता है। (४) सीनेट में भाषण की पूर्ण स्वतन्त्रता है और बहुमत के प्रभुत्व के स्थान पर सीनेट में अल्पमत की अभिव्यक्ति के लिए व्यापक अवसर रहता है। (५) रचना के अतिरिक्त सीनेट की शक्तियाँ भी यथार्थ में प्रतिनिधि सदन से अधिक महत्वपूर्ण हैं।

ब्रिटेन, भारत तथा अन्य देशों में उच्च सदन की शक्तियाँ लोकप्रिय सदन की शक्तियों की तुलना में बहुत ही सीमित हैं, किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका में सीनेट की शक्तियाँ संवैधानिक दृष्टि से प्रतिनिधि सदन के बराबर तथा व्यवहार में अधिक विस्तृत और वास्तविक हैं। प्रथम, सीनेट ही एक ऐसा द्वितीय सदन है जिसे वित्तीय क्षेत्र में भी प्राय: प्रतिनिधि सदन के बराबर शक्तियाँ प्राप्त हैं। यह वित्तीय विधेयकों में सभी प्रकार के संशोधन कर सकती है। दूसरे, यह संघीय उच्च अधिकारियों की नियुक्ति में महत्वपूर्ण भाग लेती है। इसी कारण इसका कार्य-पालिका और प्रशासन के क्षेत्र में सदन की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभाव है। तीसरे, यह सन्धियों की स्वीकृति में भी महत्वपूर्ण भाग लेती है, जिस कारण से इसका वैदेशिक मामलों के क्षेत्र में भी व्यापक प्रभाव रहता है।

जबकि सं० रा० अमरीका की सीनेट संसार के द्वितीय सदनों में सबसे अधिक शक्तिशाली है, वहाँ का **प्रतिनिधि सदन अन्य देशों के लोकप्रिय सदनों की अपेक्षा बहुत कम शक्तिशाली है**। प्रतिनिधि सदन की स्थिति के लिए ये कारण उत्तरदायी हैं—(१) सीनेट को प्रतिनिधि सदन के बराबर ही नहीं वरन् व्यवहार में अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं; और रचना, आकार तथा कार्यप्रणाली की दृष्टियों से उसका स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण व प्रभावशाली है। (२) प्रतिनिधि सदन की अवधि केवल २ वर्ष है, जबकि सीनेट एक स्थायी सदन है। प्रतिनिधि सदन के सदस्य पहले वर्ष में कुछ ज्ञान व अनुभव प्राप्त करते हैं, किन्तु दूसरे वर्ष उन्हें फिर से अगले चुनाव की चिन्ता और तैयारी घेर लेती है। सीनेटरों की तुलना में सदन के बहुसख्यक सदस्य योग्यता व अनुभव में कम होते हैं। इसके अतिरिक्त जबकि सीनेट के दो सदस्य एक सम्पूर्ण राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, प्रतिनिधि सदन के सदस्य एक बहुत छोटी संख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। (३) प्रतिनिधि सदन संवैधानिक दृष्टि से तो लोकप्रिय सदन है, किन्तु व्यवहार में यह विभिन्न निर्वाचन-क्षेत्रों के प्रतिनिधियों का समूह है। ये प्रतिनिधि राष्ट्रीय हितों के स्थान पर स्थानीय हितों को अधिक महत्व देते हैं। स्थानीयता के नियम के कारण इनका दृष्टिकोण बहुत ही संकीर्ण रहता है। (४) प्रतिनिधि सदन में हुए वाद-विवाद का महत्व सीनेट की अपेक्षा कम रहता है; समाचार-पत्रों में भी प्रतिनिधियों के भाषणों को महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिल पाता, क्योंकि एक तो उनकी संख्या बहुत अधिक है, दूसरे, उनके भाषण का प्रयोजन मुख्यत: अपने निर्वाचकों को सन्तुष्ट करना होता है। सीनेट की अपेक्षा प्रतिनिधि सदन की कार्य-प्रणाली अधिक प्रतिबन्धित है। (५) अन्य देशों के लोकप्रिय सदनों की तुलना में इसे उनके समान कुछ महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं—प्रथम, इसका कार्यपालिका पर नियन्त्रण नहीं है। ब्रिटेन व भारत की तरह सं० रा० अमरीका की केबिनेट प्रतिनिधि सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं है। दूसरे, प्रतिनिधि सदन को वित्त पर नियन्त्रण की अनन्य शक्ति प्राप्त नहीं है। तीसरे, विधायी क्षेत्र में भी इसे कोई विशेष शक्ति नहीं मिली है, जबकि कॉमन

सभा को लार्ड सभा की तुलना में और भारतीय लोक सभा की राज्य सभा की तुलना में विधायी शक्तियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं।

५. विधि-निर्माण और वित्तीय प्रक्रिया

कांग्रेस में प्रस्तुत विधेयक दो प्रकार के होते हैं—सार्वजनिक और निजी सार्वजनिक विधेयक उसे कहते हैं जिसका सम्बन्ध प्रायः सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र से हो या जो सार्वजनिक हित में हो अर्थात् जिसका प्रयोजन सार्वजनिक हो। निजी विधेयक मुख्यतः कुछ व्यक्तियों या किसी व्यक्ति-समूह के हितों में होता है। इसे उनकी भलाई के लिए प्रस्तुत किया जाता है, अतएव इसका प्रयोजन निजी हित होता है। दूसरे शब्दों में सार्वजनिक विधेयकों और संकल्पों का सम्बन्ध सामान्य विषयों अथवा सर्वसाधारण जनता से होता है। इसके विपरीत निजी विधेयकों का रूप विशेष विधि-निर्माण का होता है। बहुत से निजी विधेयकों को इस उद्देश्य से पेश किया जाता है कि जिन व्यक्तियों को सरकारी कार्य से हानि पहुँची है, उन्हें उसके लिए प्रतिकर की व्यवस्था की जा सके, जबकि प्रचलित कानूनों के अन्तर्गत उपचार के लिए आवश्यक व्यवस्था न हो। निजी विधेयकों का एक महत्वपूर्ण उदाहरण वे विधेयक हैं जो साम्यवादी देशों से भाग कर आये हुए व्यक्तियों को सं० रा० अमरीका में स्थायी निवास का अधिकार देते हैं। निजी विधेयकों की कानून बनाने की सम्भावना प्रायः कम होती है, यदि उनके पक्ष में सभी की सहमति न हो।

कांग्रेस के दोनों सदनों में सम्पूर्ण विधि-निर्माण के चार रूप अथवा प्रकार हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ देना आवश्यक प्रतीत होता है—(१) **विधेयक**, जिनका प्रयोग अधिकांश विधि-निर्माण के लिए किया जाता है, चाहे वे सार्वजनिक हों या निजी। (२) **संयुक्त संकल्प**, जिनके कानून बनाने के लिए विधेयकों की तरह राष्ट्रपति के हस्ताक्षर आवश्यक हैं। विधेयकों और संयुक्त संकल्प में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है; विधेयक स्थायी होते हैं और संयुक्त संकल्प अस्थायी। संयुक्त सकल्प के सम्बन्ध में भी उसी प्रक्रिया का पालन होता है, जो विधेयक के लिए विहित है, परन्तु संविधान के संशोधन सम्बन्धी प्रस्तावों के लिए विशेष प्रक्रिया की व्यवस्था है। (३) **समवर्ती संकल्प**—इनका स्वरूप साधारणतया विधायी नहीं होता; परन्तु इनका सम्बन्ध केवल कांग्रेस से होता है या ये मतों, प्रयोजनों अथवा सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति करते हैं। इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण ऐसा समवर्ती संकल्प होगा कि कांग्रेस के मतानुसार साम्यवादी चीन को सं० रा० संघ का सदस्य न बनाया जाए। (४) साधारण संकल्प—इसका प्रभाव बहुत ही सीमित होता है; क्योंकि इसका सम्बन्ध कांग्रेस के केवल एक ही सदन से होता है। कोई भी सदन वैदेशिक नीति के किसी पहलू के सम्बन्ध में अपने मत की अभिव्यक्ति अथवा सदन सम्बन्धी नियमों में परिवर्तन ऐसे प्रस्ताव द्वारा कर सकता है। अब साधारणतया अधिकांश

विधि-निर्माण के लिए विधेयकों का प्रयोग किया जाता है ('Be it enacted...') न कि संकल्प के रूप का ('Resolved by the Senate and House...')।

किसी भी विधेयक के सम्बन्ध में प्रक्रिया के मुख्य स्टेजों और सम्बन्धित बातों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है—

(१) विधेयक का प्रारूप तैयार करना और उसे पेश करना—सं० रा० अमरीका में सरकारी विधेयक तो होते नहीं किन्तु फिर भी अधिकतर महत्वपूर्ण विधेयकों को कार्यपालिका शाखा में तैयार किया जाता है। बहुत से विधेयक दबाव समूहों द्वारा तैयार किए जाते हैं और अनेक विधेयकों की उत्पत्ति मार्गोपाय समिति में होती है। महत्वपूर्ण विधेयकों की भाषा और उनके प्रारूप तैयार करने में सदस्य और विशेषज्ञों का हाथ रहता है। विधेयक पेश करना अत्यन्त सरल कार्य है, कोई भी एक या अधिक सदस्य किसी विधेयक अथवा संकल्प को प्रतिनिधि सदन अथवा सीनेट में पेश कर सकते हैं। विधेयक पेश करने के लिए पेश करने वालों को विधेयक सदन के क्लर्क के डेस्क तक भेजना होता है। साधारण विधेयकों को जिस सदन में वे आरम्भ होते हैं उसके अनुसार, 'एच० आर०' अथवा 'एस' से अंकित कर दिया जाता है। इस प्रकार की कोई सीमा नहीं लगी है कि एक सदस्य कितने विधेयक पेश करे। पेश किए जाने वाले विधेयकों की संख्या बहुत बड़ी होती है और उनमें से १०वां या १२वां भाग कठिनाई से ही कानून का रूप पाता है शेष विधेयकों का कांग्रेस के अन्त के साथ ही अन्त हो जाता है, अर्थात् नई कांग्रेस में नये सिरे से विधेयक पेश किए जाते हैं।

(२) समिति में विचार—प्रत्येक विधेयक को पेश होने के बाद ही सदन का अध्यक्ष सम्बन्धित समिति के सुपुर्द कर देता है। विधेयक के सम्बन्ध में समिति विचार करती है और इनमें से किसी एक निर्णय पर पहुँचती है—(अ) विधेयक के पक्ष में सदन को रिपोट दे, उसके पास करने के लिए सिफारिश करे और सदन में उसके ऊपर विचार के दौरान उसका समर्थन करे। (आ) उसके विरुद्ध रिपोर्ट दे और उसका सदन में भी विरोध करे, यदि अन्य सदस्य उसे पास कराने का प्रयत्न करें। (इ) उस पर कोई कार्यवाही न करे और विधेयक को समिति के फाइलों में ही मर जाने दे।

जब किसी विधेयक पर समिति विचार कर लेती है और अपनी रिपोर्ट तैयार कर लेती है, तो विधेयक उसी सदन में विचार के लिए वापस भेजा जाता है जिसमें वह आरम्भ हुआ हो। परन्तु प्रत्येक ऐसा विधेयक सदन में विचार हेतु पहुँचने से पूर्व तीन मुख्य सूचियों (Calenders) में से किसी एक में सम्मिलित किया जाता है। आय कर, धन या सम्पत्ति के विनियोग से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित विधेयक 'संघ कलेण्डर' में रक्खे जाते हैं। अन्य सभी सार्वजनिक विधेयक, जिनका स्वरूप वित्तीय नहीं होता, 'सदन कलेण्डर' में सम्मिलित किए जाते हैं; और सभी निजी विधेयक 'निजी कलेण्डर' में सम्मिलित किए जाते हैं।

संघ व सदन कलेण्डरों से ऐसे विधेयकों को ! जिनके बारे में प्रवाद न हो 'सहमति कलेण्डर' में स्थानान्तरित किया जा सकता है। ऐसे विधेयक जिन्हें समितियों से वापिस ले लिया गया हो, सदन के सामने 'डिस्चार्ज कलेण्डर' पर रक्खे जाते हैं। प्रतिनिधि सदन के एक नियम के अनुसार विधेयकों को सदन में विचार के लिए उसी क्रम में लिया जाता है, जो क्रम उनका कलेण्डरों में होता है; किन्तु अधिक महत्वपूर्ण विधेयकों के सम्बन्ध में बहुधा अपवाद कर दिया जाता है।

(३) **सदन में विधेयकों पर विचार**—जब विधेयक सदन के सामने आता है तो उस पर वाद-विवाद होता है। सदन के नियमों के अनुसार प्रत्येक विधेयक के तीन वाचन होते हैं। **प्रथम वाचन** तो तभी पूर्ण हो जाता है जब विधेयक पेश होने के बाद उसका शीर्षक सदन के रिकार्ड और जरनल में छप जाता है। **दूसरा वाचन**, जो विस्तारपूर्ण होता है, तब किया जाता है जब विधेयक समिति से सदन के सामने आता है या उस पर सम्पूर्ण सदन की समिति में विचार किया जाता है। दूसरे वाचन के दौरान पहले साधारण वाद-विवाद होता है और जब विधेयक के खण्डों पर एक-एक करके विचार होता है तभी उनसे सम्बन्धित संशोधनों पर विचार किया जाता है। पूर्ण विधेयक पर विचार और वाद-विवाद हो चुकने के बाद अध्यक्ष कहता है—'प्रश्न **तीसरे वाचन** के लिए प्रस्तुत है।' यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो विधेयक पर तीसरा वाचन आरम्भ हो जाता है और सदन उसमें लग जाता है। तीसरे वाचन अथवा विचार के बाद अध्यक्ष कहता है—'प्रश्न विधेयक को अन्तिम रूप से पास करने का है।' जब विधेयक सदन में पास हो जाता है तो उसे सीनेट के विचार के लिए भेज दिया जाता है।

सदन में मतदान की पद्धतियाँ—सदन में मतदान के लिए चार पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है—(क) साधारणतया सबसे पहले **आवाज** द्वारा मत लिया जाता है। यदि यह अनिर्णित हो अथवा गणपूर्ति का १/५ ऐसी प्रार्थना करे तो दूसरी पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है। (ख) **मत-विभाजन** अर्थात् सदस्य खड़े हो जाते हैं और अध्यक्ष उनकी गिनती करता है। (ग) **गणकों** द्वारा मतों की गिनती का अर्थ यह है कि सदस्य खड़े होकर किसी एक नियत स्थान से गणकों के सामने से क्रमवार निकलते हैं। (घ) **'हाँ' या 'ना'** द्वारा अर्थात् सदन का क्लर्क सदस्यों के नाम पुकारता है और वे एक-एक करके 'हाँ' या 'ना' कहते हैं।

(४) **दूसरे सदन में विधेयक पर विचार**—उसी कांग्रेस में, शीघ्र ही अथवा कुछ समय बाद वही या न्यूनाधिक अंश में वैसा ही विधेयक दूसरे सदन के सामने आता है और उसके सम्बन्ध में प्रायः वैसी ही प्रक्रिया का पालन होता है जैसी कि वर्णित है। दूसरे सदन में विधेयक के सम्बन्ध में प्रगति प्रथम के साथ-साथ ही हो सकती है अथवा दोनों सदनों में एक ही विधेयक पर अलग-अलग समय में विचार किया जा सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि एक सदन तब तक रुका रहे जब तक कि

उस पर दूसरा सदन विचार पूर्ण करे। जैसा पहले बताया जा चुका है, सभी आय और कर सम्बन्धी विधेयकों व प्रस्तावों का आरम्भ प्रतिनिधि सदन में होता है; अन्य विधेयक व प्रस्ताव किसी भी सदन में आरम्भ हो सकते हैं। सीनेट में विधेयक पेश करने की कार्यवाही इस घोषणा के साथ पूरी हो जाती है कि अमुक सीनेटर विधेयक को पेश करता है। विधेयक का शीर्षक पढ़कर सुना दिया जाता है और इस प्रकार विधेयक का प्रथम वाचन पूर्ण हो जाता है। इसके उपरान्त विधेयक पर समिति में विचार होता है और समिति की रिपोर्ट पक्ष में होने पर विधेयक को सीनेट के कलेण्डर में सम्मिलित कर दिया जाता है। इसके बाद विधेयक पर सीनेट में विचार होता है।

(५) सम्मेलन समिति—यदि एक ही सदन पर दोनों सदनों द्वारा पास किए गए विधेयकों के रूप कुछ बातों में एक दूसरे से भिन्न हों, तो उनमें मतभेद की बातों पर विचार करने के लिए दोनों सदनों के अध्यक्ष सम्मेलन समिति में भाग लेने वाले सदस्यों को नियुक्त कर देते हैं और ये प्रतिनिधि मतभेद दूर करने अथवा समझौते का प्रयत्न करते हैं। जब समझौता हो जाता है और सहमति के आधार पर तैयार किया गया विधेयक दोनों सदनों में एक ही रूप में पास हो जाता है तो उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति अथवा उसके हस्ताक्षर के लिए भेजा जाता है।

(६) राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षर अथवा प्रतिषेध शक्ति का प्रयोग—राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो जाने पर विधेयक कानून बन जाता है। यदि राष्ट्रपति चाहे तो उसको अपने सुझावों सहित वापस लौटा सकता है। यदि कांग्रेस उस विधेयक को दूसरी बार २/३ के बहुमत से पास कर देती है तो वह कानून बन जाता है। जो विधेयक कांग्रेस के सत्र के समाप्त होने के १० दिन के भीतर राष्ट्रपति के पास आते हैं, राष्ट्रपति उन पर कोई कार्यवाही न करके उनका अन्त कर सकता है।

वित्तीय प्रक्रिया—सन् १९२१ से बजट कानून राष्ट्रीय बजट पद्धति का आधार बना है। इसके अन्तर्गत वित्तीय नियन्त्रण हेतु दो नए अभिकरणों की रचना की गई—प्रथम, बजट ब्यूरो और दूसरा, जनरल अकाउण्टिग ऑफिसर। दूसरे अभिकरण को राष्ट्रीय लेखों की जाँच का कार्य सौंपा गया है। इसका अध्यक्ष नियन्त्रक होता है, जिसे आय और व्यय सम्बन्धी मामलों की छानबीन करने का अधिकार भी प्राप्त है। बजट ब्यूरो को सन् १९३९ से राष्ट्रपति के कार्य के साथ जोड़ा गया है। उसका अध्यक्ष बजट-निदेशक होता है, जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करता है। वास्तव में, वह सभी वित्तीय मामलों में राष्ट्रपति का परामर्शदाता बन गया है। निदेशक की सहायता के लिए अनेक सहायक अधिकारी हैं और ब्यूरो का कार्यालय कई विभागों में संगठित है। अब राष्ट्रीय बजट को तैयार करने का पूरा उत्तरदायित्व राष्ट्रपति का है; और बजट राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित आगामी वित्तीय वर्ष के लिए शासन सम्बन्धी कार्यक्रम की वित्तीय अभिव्यक्ति होता है।

बजट के साथ राष्ट्रपति एक सन्देश भेजता है; जिसमें सम्पूर्ण बजट का सारांश दिया होता है। कांग्रेस सन्देश तथा बजट पर जनवरी से जुलाई तक विचार करती है। संविधान के अनुसार सभी धन विधेयक प्रतिनिधि सदन में आरम्भ होते हैं और सर्वप्रथम यही सदन बजट पर विस्तार पूर्ण विचार करता है। कर सम्बन्धी सिफारिशों पर २५ सदस्यों की **मार्गोपाय समिति** में विचार होता है और व्यय के प्रस्तावों पर ५० सदस्यों की **विनियोग समिति** में विचार किया जाता है। विनियोग समिति उप-समितियों का प्रयोग करती है। विनियोग समिति से निकले हुए प्रत्येक-विधेयक पर सदन में उसी प्रकार विचार होता है जैसे किसी अन्य विधेयक पर। विनियोग विधेयकों के आवश्यक वाचन होते हैं और उन पर सम्पूर्ण सदन की समिति में वाद-विवाद होता है। सदन को इसमें से कोई भी नया मद जोड़ने, किसी मद को निकालने तथा उसमें कमी या वृद्धि करने की शक्ति प्राप्त है। ब्रिटेन की कॉमन सभा ऐसा नहीं कर सकती।

सभी आय और विनियोग विधेयक समिति में विचार होने के बाद, सीनेट में जाते हैं, वहाँ भी उन्हें वित्त तथा विनियोग समितियों के विचार हेतु भेज दिया जाता है। ये भी उप-समितियों का उपयोग करती हैं; उप-समितियों द्वारा विचार के बाद उन पर पूर्ण समितियों में विचार होता है। जब ये विधेयक सीनेट के सामने आते हैं तो सीनेट इनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन कर सकती है। ब्रिटेन में लार्ड-सभा के वित्तीय अधिकार 'नहीं' समान हैं। यदि विधेयकों में कोई परिवर्तन किया जाता है तो फिर उन्हें प्रतिनिधि सदन की सहमति के लिए भेजा जाता है। दोनों सदनों के बीच मतभेद को सम्मेलन समितियों द्वारा दूर किया जाता है। यद्यपि अब राष्ट्रीय बजट की व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार किए गए हैं; फिर भी वर्तमान व्यवस्था में कुछ दोष हैं। राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत बजट में कांग्रेस कोई भी परिवर्तन कर सकती है; कांग्रेस के सदस्य आय और व्यय के सम्बन्ध में स्वयं भी नए प्रस्ताव पेश कर सकते हैं।

६. समालोचना

कांग्रेस की कार्यप्रणाली में आलोचकों ने कई दोष बताए हैं, जिनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

इनकी कार्यवाही **में स्थायी अथवा वर्गीय हितों को** अनुचित महत्व प्राप्त है—सीनेट व प्रतिनिधि सदन को सदस्यों के लिए निवास सम्बन्धी अर्हता आवश्यक है। प्रतिनिधि सदन के सदस्य विशेष रूप से अपने-अपने निर्वाचन-क्षेत्रों के स्थानीय अथवा वर्गीय हितों को बहुत अधिक महत्व देते हैं। वे बर्क के शब्दों में वास्तविक प्रतिनिधि की भाँति कार्य नहीं करते वरन् अपने निर्वाचकों के डेलीगेट की तरह होते हैं। विधेयकों को पेश करने और उन पर विचार करने में उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय नहीं होता। इसी कारण कांग्रेस में पोर्क-बेरल कानून और लॉग रोलिंग जैसे दोष प्रचलित हैं।

सदस्यों को प्रति २ वर्ष में चुनाव लड़ने पड़ते हैं, अतएव वे अपने निर्वाचकों को सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करते रहते हैं। सदस्यगण मिलकर ऐसे प्रयत्न करते हैं कि राष्ट्रीय धन की बड़ी से बड़ी धनराशि उनके निर्वाचन-क्षेत्र में व्यय के लिए स्वीकार की जाए। ऐसे विधेयकों को पास कराने का उद्देश्य मुख्यतः राजनीतिक प्रयोजन होते हैं, जिन्हें इस प्रथा के विरोधी पोर्क-बेरल कानून कहते हैं। पोर्क-बेरल कानून[1] उस पुराने समय की याद दिलाता है जब स्वामी अपने दासों में किसी दिन पोर्क (सूअर के गोश्त) के भरे ढोल बाँटता था। प्रत्येक प्रतिनिधि अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्र को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करता है अर्थात् सभी प्रतिनिधि राष्ट्रीय आय को अपने स्थानीय हितों के लिए बाँटने का प्रयत्न करते हैं और राष्ट्रीय हितों का उचित ध्यान नहीं रखते।

उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति कोई भी प्रतिनिधि अकेले नहीं कर सकता वह अन्य प्रतिनिधियों का सहयोग पाने का प्रयत्न करता है। इसी से लॉग-रोलिंग नाम की प्रथा उत्पन्न हुई है। यह दोषपूर्ण प्रथा भी उन पुराने दिनों की याद दिलाती है जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में आकर बसने वाले निवासी अपने-अपने मकान बनाने के लिए लकड़ी काटते थे और एक दूसरे के सहयोग से भारी लट्ठों को ऊपर उठाते थे। अतएव इस प्रथा का अर्थ है अपने लाभ के लिए मिलकर कार्य करना। यह आवश्यक और उचित ही है कि जब कोई प्रतिनिधि अपने क्षेत्र के लिए कोई धनराशि स्वीकृत करना चाहता है अथवा अपने निर्वाचकों के हित में कोई विधेयक पास कराना चाहता है तो उसे दूसरे सदस्यों की सहायता लेनी पड़ती है। एक लेखक के अनुसार दलीय नियन्त्रण के अभाव में संयुक्त राज्य अमरीका में कानून **लॉग-रोलिंग** द्वारा पास होते हैं।[2]

बाह्य दबाव—कांग्रेस द्वारा विधि-निर्माण पर विभिन्न दबाव समूहों और लॉबियों का बहुत प्रभाव पड़ता है। देश में अनेक आर्थिक तथा वर्गीय हितों के प्रभावशाली संगठन हैं जो काँग्रेस पर अपने हित साधन के लिए बहुधा प्रभाव डालते रहते हैं। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ये संगठन वाशिंगटन में अपने कार्यालय रखते हैं और उनके प्रतिनिधि कांग्रेस के सदस्यों को प्रभावित करते रहते हैं। ऐसा लॉबीइंग की प्रथा द्वारा किया जाता है। इस आधार पर भी कुछ आलोचकों ने कांग्रेस की कार्य-प्रणाली को दोष-युक्त बताया है। 'लॉबी' शब्द का

1. 'Bills which are enacted to provide appropriations for political purposes to special group or regions of the Country are known to opponents of the legislation as 'pork-barrel measures.'
—*Wright Pitman.*

2. 'In the absence of party control laws are passed by leg-rolling, that is by temporary alliances among small groups of congressmen.'
—*A. M. Patter*: American Government and Politics, p. 167.

मौलिक अर्थ बुरा नहीं है; प्रत्येक विधायिका भवन के साथ लगे हुए कमरे या बरामदे को प्रकोष्ठ (lobby) कह देते हैं; इसमें सदस्य अवकाश के समय बैठते हैं और जो व्यक्ति उनसे मिलने आते हैं उनसे बातचीत करते हैं। सदस्यों को मिलने वाले आकर, अपने मतों अथवा विचारों से प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। अतएव अब लॉबीइंग का अर्थ विधायिका अथवा उसके सदस्यों पर प्रभाव डालने की प्रथा से है। यह प्रभाव प्रत्यक्ष सम्पर्क अथवा जनमत व प्रचार द्वारा डाला जाता है और इसका उद्देश्य किसी विधेयक को पास कराना, उसमें इच्छित संशोधन कराना या उसे अस्वीकार कराना होता है।

आजकल संयुक्त राज्य अमरीका की राजधानी में इस प्रकार के प्रकोष्ठ प्रचारकों (lobbyists) की संख्या बहुत बढ़ गई है और ब्रोगन के शब्दों में यह सबसे बड़ा स्थानीय उद्योग बन गया है। संयुक्त राज्य अमरीका के विधायी संसार में लॉबीइंग एक आवश्यक विशेषता है। आज राज्य का कार्य-क्षेत्र अत्यधिक विकसित हो गया है, राज्य व्यवसाय और सभी आर्थिक पहलुओं के बारे में कानून बनाने लगा है। उनसे प्रभावित होने वाले व्यक्ति-समूह अथवा वर्ग यह प्रयत्न करते रहते हैं कि कोई भी कानून उनके हितों के विरुद्ध न बने। ब्रोगन के अनुसार ब्रिटेन जैसे देशों में, जहाँ केबिनेट नीति-निर्धारित करती है, लॉबीइंग के लिए विशेष क्षेत्र नहीं है, किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका में इस प्रकार की प्रथा का होना आवश्यक है। कुछ आलोचकों की दृष्टि में यह प्रथा औचित्य की सीमा से बाहर चली गई है।

विधि निर्माण की मात्रा—प्रत्येक कांग्रेस अपनी दो वर्ष की अवधि में लगभग १००० कानून बनाती है। उदाहरण के लिए ८२वीं कांग्रेस ने सन् १९५१—१९५२ में १६१७ कानून पास किये, इनमें १०० से ऊपर निजी कानून थे और लगभग १०० महत्वपूर्ण सार्वजनिक कानून थे। इससे स्पष्ट है कि कांग्रेस द्वारा पास किये गए कानूनों की संख्या बहुत अधिक है। परन्तु दोनों सदनों द्वारा पास किये गए कानूनों में बहुत बड़ी संख्या ऐसे कानूनों की होती है जिनका सम्बन्ध अत्यन्त महत्वहीन विषयों से होता है और जिन्हें प्रशासन विभाग तथा अभिकरण प्रदत्त विधि-निर्माण के रूप में अधिक अच्छी प्रकार से विनियमों व नियमों द्वारा कर सकते हैं। इसी प्रकार निजी दावों पर न्यायालयों द्वारा निर्णयों की व्यवस्था की जा सकती है। इन महत्वहीन कानूनों के पास करने में कांग्रेस का बहुत सा समय व्यर्थ ही व्यय होता है।

कानून बनाने की प्रक्रिया बहुत ही पेचीदा व कठिन है—कुछ लेखकों के मतानुसार कांग्रेस में कानून बनाने की प्रक्रिया बहुत ही पेचीदा और कठिन है। महत्वपूर्ण विषय पर कांग्रेस में कार्यवाही कराना काफी संघर्षमय होता है। ऐसे विषयों पर भी जिनके सम्बन्ध में राष्ट्रपति सन्देश भेजे, जिनका कांग्रेस में बहुमत समर्थन करे और जिनके पक्ष में जनमत भी हो कानून पास कराने में १ या १/२ वर्ष लग

जाना साधारण बात है। कानून में देरी लगने का कारण विधि-निर्माण प्रक्रिया पेचिदा व कठिन होना है।

विधायिका और कार्यपालिका के बीच सम्बन्ध—शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त के दो परिणाम स्पष्ट हैं—(१) कांग्रेस और कार्यपालिका के बीच सम्बन्ध सामञ्जस्य-पूर्ण नहीं रहते; वास्तव में दोनों ही शाखायें अपनी-अपनी शक्तियों में वृद्धि करने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं और कभी-कभी उनके बीच अनुचित प्रतिस्पर्द्धा, गम्भीर मतभेद व संघर्ष भी होते हैं। (२) कांग्रेस में प्रभावशाली नेतृत्व की कमी को सभी ने अनुभव किया है।

प्रश्न

१. संयुक्त राज्य अमरीका के प्रतिनिधि सदन की रचना और संगठन का वर्णन कीजिए।
२. अमरीकी सीनेट की रचना और संगठन का वर्णन कीजिए।
३. प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष के चुनाव और शक्तियों का वर्णन कीजिए। प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष की ब्रिटिश कॉमन-सभा के अध्यक्ष से तुलना कीजिए।
४. कांग्रेस की समिति पद्धति का वर्णन कीजिए।
५. कांग्रेस की विभिन्न शक्तियों का विवेचन कीजिए।
६. क्या संयुक्त राज्य अमरीका की सीनेट संसार के द्वितीय सदनों में सर्वाधिक शक्तिशाली है? सकारण उत्तर दीजिये।
७. लास्की अमरीकी प्रतिनिधि सदन को एक महान् राष्ट्र के उपयुक्त सदन नहीं समझता। क्या आप इस मत से सहमत हैं? कारण दीजिए।
८. कांग्रेस में विधायी और वित्तीय प्रक्रियायों का वर्णन कीजिए।
९. कांग्रेस की रचना व कार्यप्रणाली के मुख्य दोषों का विवेचन कीजिये।
१०. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
(अ) कांग्रेस का संगठन।
(आ) फिलिबस्टरिंग।
(इ) स्थायी समितियाँ लघु विधायिकायें हैं।
(ई) बजट प्रक्रिया।
(उ) लॉग-रोलिंग।
(ऊ) पोर्क-बेरल विधेयक और लॉग-रोलिंग।

५. संघीय न्यायपालिका

१. विशेषतायें

सं० रा० अमरीका के संविधान में न्यायपालिका का विशेष रूप से आधारभूत महत्व है और इसके दो कारण हैं। प्रथम, संविधान का आधार शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त है। इसीलिए संविधान निर्माताओं ने शासन की तीन प्रमुख शाखाओं में न्यायपालिका को विधायिका व कार्यपालिका के समान महत्वपूर्ण स्थान दिया है। दूसरे, संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान संघात्मक है, जिस कारण से न्यायपालिका संविधान की संरक्षक है। सं० रा० अमरीका की न्यायपालिका की प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

प्रथम, **संविधान में केवल सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था के लिए उपबन्ध हैं;** उसके संगठन और निम्नस्तरीय संघीय न्यायालयों के संगठन, आदि का दायित्व कांग्रेस पर छोड़ा गया है। न्यायपालिका के संगठन के सम्बन्ध में अन्य संवैधानिक उपबन्ध इस प्रकार हैं—संविधान की धारा ३ सैक्सन २ के अनुसार राष्ट्रीय न्यायपालिका शक्ति संविधान, संयुक्त राज्य के कानूनों और उनके अन्तर्गत बनी संधियों के अन्तर्गत कानून व साम्य में उठने वाले सभी मामलों तक विस्तृत है। सभी मामलों में वे विषय सम्मिलित हैं जिनका सम्बन्ध इनसे हो—राजदूतों, सार्वजनिक मन्त्रियों, वाणिज्य दूतों, सामुद्रिक अधिकार-क्षेत्र, जिन विवादों में संयुक्त राज्य एक पक्ष हों, दो या अधिक संघान्तरित राज्यों के बीच उठने वाले विवाद, विभिन्न राज्यों के नागरिकों के बीच उठने वाले विवाद, आदि। संविधान में यह प्राविधान है कि राष्ट्रपति संघीय न्यायालयों के न्यायाधीशों को नामजद कर उनकी नियुक्ति सीनेट की सहमति से करेगा। सविधान में यह भी प्राविधान है कि न्यायाधीश अपने पदों पर सदाचारण काल में आसीन रहेंगे और वेतन पायेंगे जो उनके कार्यकाल में घटाया न जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय के संगठन और निम्नस्तरीय न्यायालयों की स्थापना एवं संगठन के बारे में आवश्यक कानून कांग्रेस द्वारा बनाए गए हैं।

दूसरी, **संविधान में नागरिकों के अधिकारों का प्रगणन** (संशोधन १ से १० तक) **किया गया है।** संविधान की धारा १ सैक्शन ६ में दिया गया है कि विद्रोह अथवा आक्रमण को छोड़कर अन्य अवस्थाओं में 'बन्दी प्रत्यक्षीकरण के लेख' को निलम्बित नहीं किया जा सकता। कांग्रेस (तथा राज्यों की विधायिकाओं) को 'बिल ऑफ अटेण्डर और एक्स पोस्ट फैक्टो ला' बनाने की मनाई की गई है। संविधान के चौथे संशोधन में अनुचित तलाशियों और अनाधिकृत अधिकार की मनाई की गई है। संविधान के संशोधन में कहा गया है कि अभियुक्त को निष्पक्ष जूरी द्वारा शीघ्र

और सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार है। संविधान के ७वें संशोधन में जूरी द्वारा मुकदमे की सुनवाई की व्यवस्था है और ८वाँ संशोधन अत्यधिक जमानत व जुर्माने और असाधारण दण्ड की मनाई करता है। नागरिकों के संविधान में समाविष्ट अधिकारों की रक्षा संघीय न्यायालय करते हैं।

तीसरे, **सं० रा० अमरीका में दुहरी न्याय पद्धति है।** एक ओर संघीय न्यायपालिका है, जिसकी व्यवस्था संविधान और कांग्रेस के कानूनों के अन्तर्गत हुई है। इसमें सर्वोच्च न्यायालय सबसे ऊपर है, उसके नीचे १० सर्किट न्यायालय और उसके नीचे ८४ जिला न्यायालय हैं। इस प्रकार संघीय न्यायालयों की व्यवस्था पिरेमिड जैसी है। इन न्यायालयों का सम्बन्ध संविधान और कांग्रेस द्वारा बनाये गये कानूनों के अन्तर्गत उठने वाले मुकदमों में निर्णय करना है। संघीय न्यायिक शक्ति का विस्तार प्रथम विशेषता के अन्तर्गत किया गया है। दूसरी ओर प्रत्येक संघान्तरित राज्य की अपनी न्याय पद्धति है। राज्यों के न्यायालयों का सम्बन्ध राज्यों के अपने संविधानों और कानूनों के अन्तर्गत उठने वाले मुकदमों की सुनवाई से है। प्रत्येक राज्य में अपनी न्याय पद्धति और कई स्तरीय न्यायालय हैं, किन्तु एक बात में सभी राज्यों में एकरूपता है। प्रत्येक राज्य का उच्चतम न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय कहलाता है। इसके विपरीत भारत में संघात्मक संविधान के होते हुए भी संघठित न्यायपालिका है, अपने देश में सबके ऊपर उच्चतम न्यायालय है और उसके नीचे प्रत्येक राज्य में उच्च तथा अधीन न्यायालय हैं। इस प्रकार भारत में न्यायपालिका इकहरी है।

चौथी, **न्यायिक सर्वोपरिता तथा पुनर्वलोकन**—संघात्मक संविधान में शक्तियाँ संघीय सरकार और राज्य सरकारों में वितरित की जाती हैं और वे सरकार अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में सर्वोपरि होती हैं। कोई भी सरकार संविधान की सीमाओं को पार नहीं कर सकती अर्थात् संविधान का अतिक्रमण नहीं कर सकती। संविधान का सही निर्वाचन करने तथा संविधान की धाराओं को रोकने के लिए संघात्मक संविधान एवं स्वतन्त्र और उच्च शक्ति प्राप्त न्यायपालिका अत्यन्त आवश्यक है। संविधान के निर्वचन का कार्य विधायिका व कार्यपालिका को नहीं सौंपा जा सकता इस कार्य के लिए न्यायपालिका ही अपने स्वरूप और प्रशिक्षण से सर्वाधिक उपयुक्त है। इसी कारण न्यायापालिका, विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय, जो संवैधानिक मामलों पर अन्तिम निर्णय देता है, संविधान की संरक्षक है।[1] सं० रा० अमरीका में संविधान ही सर्वोपरि है और संविधान क्या है तथा उसकी धाराओं का क्या अर्थ है, इन बातों का निर्णय सर्वोच्च (तथा अन्य संघीय) न्यायालय करते हैं। अतएव सं० रा० अमरीका में न्यायिक सर्वोपरिता है; अर्थात न्यायालय

1. 'The U. S. Supreme court is the 'referee' in the federal system. It is the final interpreter of the constitution.'
—*W. A. Mclengahan*, American Government, p. 75.

कार्यपालिका तथा विधायिका को संविधान विरोधी कार्य करने से रोकने की शक्ति रखते हैं।

संघीय न्यायालय ने भी न्यायिक सर्वोपरिता के सिद्धान्त पर बल दिया है। इसका संक्षेप में यह अर्थ है कि सं० रा० अमरीका में संघीय न्यायालयों, अन्तिम रूप से सर्वोच्च न्यायालय, को शासन के सभी अंगों व अभिकरणों की कार्यवाहियों पर पुनर्वलोकन का अधिकार है, जिससे कि वे यह निर्णय दे सकें कि वे कार्य कानूनी और संवैधानिक दृष्टि से वैध हैं या नहीं। न्यायिक पुनर्वलोकन की प्रक्रिया काफी पेचीदा है, यह नीचे से ऊपर को चलती है। सभी संघीय न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग करते हैं, परन्तु ऐसे मामलों में अन्तिम निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के होते हैं। न्यायिक पुनर्वलोकन की कार्यवाही इन कार्यों के सम्बन्ध में हो सकती है— प्रशासनिक कार्य, राष्ट्रीय संविधान के अन्तर्गत राज्यों के कार्य, काँग्रेस व राष्ट्रपति के कार्य, आदि।

यदि किसी प्रशासनिक अधिकारी या अभिकरण के आदेशों के विरुद्ध प्रभावित पक्ष न्यायालय में जाता है तो न्यायालय का पहला काम यह निर्णय करना है कि वह आदेश काँग्रेस के कानून के विरुद्ध है या नहीं। यदि वह काँग्रेस द्वारा बनाये कानून के विरुद्ध पाया जाता है तो न्यायालय उसे अवैध घोषित कर देता है। यदि न्यायालय का निर्णय यह हो कि आदेश कानून विरुद्ध नहीं है तो फिर यह इस बात का निर्णय करता है कि कानून संविधान के विरुद्ध है या नहीं। यदि कानून संविधान के विरुद्ध पाया जाता है तो वह कानून और उसके अन्तर्गत जारी किया गया आदेश अवैध घोषित किया जाता है। इस क्षेत्र में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय अन्तिम होते हैं और उनके विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती।

सं० रा० अमरीका का संविधान ऐसा है जिसका संघीय न्यायालयों, विशेषकर सर्वोच्च न्यायालय ने समय-समय पर निर्वचन किया है और उसकी धाराओं की अनेक अधिकृत व्याख्यायें की हैं। मुख्य न्यायाधिपति मार्शल ने १९वीं शताब्दी के आरम्भ में ही इन सिद्धान्तों को अभिव्यक्त किया था—'यह ऐसा संविधान है जिसकी हम व्याख्या करते हैं; तथा विधायिका कानून बनाती है और न्यायपालिका उनका अर्थ लगाती है।' चूंकि सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की अनेक धाराओं का निर्वचन किया है और ऐसा करते समय अनेक वाक्यांशों तथा सैक्शनों की बहुत-सी व्याख्यायें की हैं, इसलिए कुछ लेखकों ने सर्वोच्च न्यायालयों को न्यायालय के अतिरिक्त एक अर्थ में अनवरत संवैधानिक सम्मेलन कहा है, जो निर्वचन द्वारा फिलेडलफिया सम्मेलन का कार्य जारी रखे हुए है।[1]

1. 'Thus, the Supreme Court is not only a court of justice, but in a qualified sense a continuous constitutional convention. It continues the work of the convention of 1787 by adopting through interpretation the great charter of government...'
—*J. M. Beck*, Constitution of the United States, p. 221.

संविधान की विभिन्न धाराओं की व्याख्या करने में सर्वोच्च न्यायालय ने बहुधा उनका उदार अथवा विस्तृत अर्थ लगाया है जिसके परिणामस्वरूप संविधान द्वारा काँग्रेस को स्पष्ट रूप से दी गई शक्तियों में **निहित शक्तियों का सिद्धान्त** निकला है। इसी कारण काँग्रेस की वर्तमान शक्तियाँ काफी विस्तृत हो गई हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन इस प्रकार किया है: 'संविधान के सही अर्थ में राष्ट्रीय विधायिका को संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिए साधनों के बारे में वह विवेक प्राप्त होना चाहिए जिससे कि यह निकाय अपने उच्च कर्त्तव्यों का इस प्रकार पालन कर सके कि जनता का सर्वाधिक हित-साधन हो। यदि उद्देश्य उचित और वैध हों, संविधान की सीमाओं में हो तो वे सभी साधन जो उसकी प्राप्ति के लिए उचित हों और जिन्हें संविधान में मना न किया हो संवैधानिक हैं।'

न्यायिक पुनर्वलोकन की समालोचना—इसी शक्ति के प्रयोग द्वारा न्यायपालिका संविधान की संरक्षक है। इस शक्ति का प्रयोग प्रधानतः सर्वोच्च न्यायालय करता है, जिसे **बेक ने संविधान का सन्तुलन चक्र** कहा है। उसी लेखक के अनुसार संविधान ने सर्वोच्च न्यायालय को शासन की शक्तियों के सम्बन्ध में राष्ट्र की अन्तिम अन्तरात्मा बताया है, परन्तु कुछ आलोचकों के अनुसार न्यायिक पुनर्वलोकन के सिद्धान्त में ये दोष हैं: प्रथम, यह सम्भव है कि सर्वोच्च न्यायालय काँग्रेस द्वारा तैयार किए गए कार्यक्रम को, जिसके पक्ष में जनमत का भी समर्थन हो, अप्रभावी बना सकता है। ऐसा करने का परिणाम यह होगा कि प्रजातन्त्र शासन एक दिखावा रह जायेगा। दूसरे, न्यायाधीश सभी प्रश्नों को केवल कानूनी दृष्टि से ही देखते हैं, जो साधारणतया अपरिवर्तनशील होती है और बदलती हुई सामाजिक व आर्थिक आवश्यकताओं के अनुसार नहीं चल पाती। तीसरे, यह सिद्धान्त शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त के विरुद्ध है; क्योंकि इसके अनुसार न्यायपालिका को कार्यपालिका और विधायिका के ऊपर सर्वोपरिता मिली है।

ब्रोगन ने लिखा है: 'न्यायिक पुनर्वलोकन के दो राजनीतिक परिणाम हैं, जो इसके द्वारा होने वाली अच्छाई को समाप्त कर देते हैं—(१) यह अनुत्तरदायी विधि-निर्माण को प्रोत्साहन देता है, और (२) इसके कारण राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति बड़ी दूर और अनिश्चित हो गई, परन्तु अब अधिकतर अमरीकन तथा विदेशी इस सिद्धान्त की आवश्यकता और महत्व को स्वीकार करते हैं। जिन देशों में सच्चे अर्थ में संघात्मक संविधान अपनाया गया है उन्होंने इस सिद्धान्त को अपने संविधानों में सं० रा० अमरीका जैसा ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है। भारत का संविधान इसका उत्तम उदाहरण है।

पाँचवीं, सर्वोच्च न्यायालय तीसरे सदन के रूप में—कानूनी दृष्टि से न्यायालयों का कार्य कानूनों का निर्वचन और उन्हें लागू करना है, कानून बनाना नहीं है,

किन्तु प्राय: सभी उच्च न्यायालय संविधान का निर्वचन करते समय कम या अधिक मात्रा में कानून भी बनाते हैं। यह बात सं० रा० अमरीका के संघीय न्यायालयों, विशेषकर सर्वोच्च न्यायालय के विषय में अधिक सत्य है। वास्तव में, उनकी न्यायिक सर्वोपरिता ने उन्हें अनिवार्यतः नीति-निर्धारिणी अंग बना दिया है। यह बात कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगी। सन् १९३४ के बाद जब राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने आर्थिक संकट को दूर करने के उद्देश्य से कई नए कानूनों को पास कराया तो सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन न्यायाधीशों ने उन कानूनों को अवैध घोषित किया। कुछ ही समय बाद न्यायालय में ऐसे न्यायाधीशों का बहुमत हो गया जिन्होंने नए कानूनों के प्रति सहानुभूति दिखाई और उन्हें वैध होने दिया। एक न्यायाधीश ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा था; 'न्यायाधीश कानून बनाते हैं और उन्हें कानून बनाने पड़ते हैं।' यह एक माना हुआ तथ्य है कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में तत्कालीन राष्ट्रीय नीति का आभास मिलता है। लास्की के अनुसार 'न्यायिक पुनर्वलोकन की शक्ति ने सर्वोच्च न्यायालय को सं० रा० अमरीका में तीसरा सदन बना दिया है'। ब्रोगन ने लिखा है कि सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों को समझने के लिए हमें उसे कार्यपालिका तथा विधायिका के कार्यों को नियमित करने वाले तीसरे सदन अथवा एक राजनीतिक निकाय के रूप में देखना होगा।

सर्वोच्च न्यायालय के आलोचकों ने इसे रूढ़िवादी निकाय बताया है। साधारणतः न्यायाधीश संविधान की व्याख्या इसी दृष्टिकोण से करते हैं, यद्यपि उनके उदार और विस्तृत अंगों के परिणामस्वरूप ही निहित शक्तियों का सिद्धान्त निकला। लास्की के मतानुसार, सर्वोच्च न्यायालय ने कानून की उचित प्रक्रिया का अर्थ भी इसी दृष्टिकोण से लिया है, परिणामस्वरूप यह मार्ग न होकर एक फाटक है, जिसके द्वारा सं० रा० अमरीका में राजनीतिक प्रजातन्त्र का प्रवेश तो हो गया, किन्तु उसमें सामाजिक प्रजातन्त्र का प्रवेश मना है।

अन्त में, न्यायपालिका स्वतन्त्र है—न्यायाधीशों का शासन के अन्य सभी अधिकारियों की अपेक्षा स्वतन्त्र और निष्पक्ष होना अत्यधिक आवश्यक है। संघीय न्यायालयों के न्यायाधीशों का चुनाव नहीं होता, वरन् उन्हें राष्ट्रपति सीनेट के परामर्श और सहमति से नियुक्त करता है। न्यायाधीशों को अपने पदों पर सदाचरण काल में आसीन रहने का अधिकार है, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यकाल तो आजीवन है। उन्हें काफी ऊँचे वेतन मिलते हैं और किसी भी न्यायाधीश का वेतन उसके कार्यकाल में घटाया नहीं जा सकता। एक बार नियुक्त हो जाने पर वे अपना कार्य किसी दबाव अथवा भय के बिना करते हैं। उन्हें उनके पद से केवल महाभियोग की कठिन कार्यवाही के पश्चात् ही हटाया जा सकता है। कार्यपालिका तथा विधायिका न्यायपालिका के ऊपर किसी भी प्रकार का दबाव नहीं डाल सकतीं। न्यायपालिका उतनी ही स्वतन्त्र है जितनी कि संविधान के अन्तर्गत हो सकती थी, किन्तु न्यायाधीशों की नियुक्ति की विधि अवश्य पक्षपातपूर्ण

होती है। राष्ट्रपति सदा ही यह प्रयत्न करते रहे हैं कि जब उन्हें सर्वोच्च न्यायालय में किसी न्यायाधीश की नियुक्ति करनी होती है तो वे अपने दल के समर्थकों को नियुक्त करते हैं। निम्न स्तरीय न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह सभी रिक्त स्थानों में अपने दल के सदस्यों को नियुक्त करता है। इस प्रकार न्यायाधीशों की नियुक्ति राजनीतिक आधार पर होती है, किन्तु उन्हें दलीय नियुक्तियों के रूप में नहीं समझा जाता।

२. सर्वोच्च न्यायालय

न्यायाधीश—सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या में काँग्रेस ने समय-समय पर परिवर्तन किए हैं—सन् १७८९ में न्यायाधीशों की संख्या ६ थी, सन् १८३७ में यह संख्या ९ रही, सन् १८६३ में १० और १८६९ में ९ कर दी गई; किन्तु तब से इस संख्या में परिवर्तन नहीं हुआ है। न्यायाधीशों की नियुक्ति सीनेट के परामर्श और सहमति से राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। सन् १८९७ से अब तक केवल एक न्यायाधीश का नाम सीनेट ने अस्वीकृत किया है, अर्थात् सीनेट राष्ट्रपति द्वारा नामजद व्यक्तियों को साधारणतया अपनी सहमति प्रदान कर देती है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए भारत की तरह कोई योग्यतायें निर्धारित नहीं हैं; परन्तु नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति कई बातों पर ध्यान देता है—जैसे न्यायालय की वर्गीय और धार्मिक रचना, नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों के मत और विचार, उनकी पद के लिए योग्यता आदि। साधारणतया राष्ट्रपति इस पद पर अपने दल के समर्थकों को नियुक्त करते हैं; अतएव न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति को दल के लिए राजनीतिक सेवा का फल समझा जाता है।

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश अधिकार ख्याति प्राप्त व अनुभवी वकील व न्यायविद् होते हैं। वैसे इन पदों पर सीनेटर, एटॉर्नी जनरल, कानूनी शिक्षालयों के शिक्षक अथवा न्याय-कार्य से सम्बन्धित अभिकरण के प्रशासक ही नियुक्त होते हैं। जिन व्यक्तियों को सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनाया जाता है उनकी औसतन आयु लगभग ५० वर्ष होती है और वे अपने पदों पर २० से लेकर ४० वर्ष तक कार्य करते हैं। केवल सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को ही 'जस्टिस' कहा जाता है। अन्य सभी न्यायाधीश जज कहलाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को २५,००० डॉलर प्रतिवर्ष मिलता है और मुख्य न्यायाधिपति का वार्षिक वेतन २५,५०० डॉलर है। उनका कार्यकाल आजीवन है; किसी न्यायाधीश को केवल महाभियोग की कार्यवाही द्वारा पदच्युत किया जा सकता है, जो एक कठिन कार्य है। अब तक सर्वोच्च न्यायालय का केवल एक न्यायाधीश इस प्रकार हटाया गया है।

सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र—सर्वोच्च न्यायालय के कर्त्तव्यों के बारे में संविधान में तो बहुत कम लिखा है। संविधान ने उसे प्रारम्भिक अधिकार-क्षेत्र प्रदान किया है, परन्तु यह अनन्य नहीं है। इसमें तथा निम्न स्तरीय संघीय

न्यायालयों में ऐसे सभी मामलों की सुनवाई होती है जिनका सम्बन्ध राजदूतों, अन्य सार्वजनिक मन्त्रियों, वाणिज्य दूतों से हो या ऐसे मामलों जिनमें कोई भी राज्य एक पक्ष हो। जहाँ तक संविधान के निर्वचन का सम्बन्ध है, ऐसे मुकदमों की सुनवाई आरम्भ में ही सर्वोच्च न्यायालय में हो सकती है (अथवा नीचे के न्यायालयों में) परन्तु अन्य सभी मामलों में सर्वोच्च न्यायालयों का अधिकार-क्षेत्र **अपीलीय** है। कांग्रेस के कानूनों के अन्तर्गत आजकल निम्न-स्तरीय संघीय तथा राज्य न्यायालयों के जिन मुकदमों की अपीलें सर्वोच्च न्यायालय में ले जाई जा सकती हैं उनका सम्बन्ध मुख्यत: ऐसे मामलों से होता है जिनमें संघीय अथवा राज्य के कानूनों को संवैधानिक तथा आर्थिक उद्योगों के विनियमन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो।

सर्वोच्च न्यायालय की विवेकीय शक्ति बहुत ही विस्तृत है। इसे **उत्प्रेषण लेख** (writ of certiorari) की प्रार्थनायें सुनने की व्यापक शक्ति प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय ऐसी बहुत सी प्रार्थनाओं में से कुछ महत्वपूर्ण निर्णय के लिए छाँट लेता है। सर्वोच्च न्यायालय के सामने आने वाले अधिकतर मुकदमों का सम्बन्ध सार्वजनिक नीति के महत्वपूर्ण प्रश्नों या प्राविधिक मामलों से होता है। न्यायालय के निर्वचन सम्बन्धी कार्य में बड़ी वृद्धि हुई है। संघ और राज्यों द्वारा न्यासों, रेलों, श्रम और आर्थिक मामलों के नियन्त्रण सम्बन्धी कानूनों के निर्वचन हेतु अनेक मुकदमे सर्वोच्च न्यायालय में आते हैं। इसमें साधारणतया सामान्य कानूनों से सम्बन्धित मुकदमों की सुनवाई बहुत कम होती है।

सर्वोच्च न्यायालय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य तो ऊपर वर्णित मुकदमों में सम्मतियाँ देना ही है। दूसरा कार्य लेखों (writs) सम्बन्धी प्रार्थनाओं को सुनना और उनमें निर्णय देना है। इनके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय निम्न स्तरीय संघीय न्यायालयों के प्रशासन पर देख-रेख भी करता है। यह कार्य एक प्रशासनिक अधिकारी के द्वारा कराया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय के कार्य की मात्रा बहुत बड़ी है। उदाहरण के लिए सन् १९५२-५३ में सर्वोच्च न्यायालय ने १९८ मुकदमों में निर्णय दिया। इसके अतिरिक्त न्यायालयों ने अनेक लेखों की सुनवाई भी की। न्यायालय के कार्य का महत्व अत्यधिक है। एक ओर यह संविधान का संरक्षक है और विभिन्न संघीय व राज्यों के कानूनों का निर्वचन कर उनकी वैधता पर निर्णय देता है, दूसरी ओर यह नागरिकों के अधिकारों का भी संरक्षक है।

३. अन्य संघीय न्यायालय तथा अन्य बातें

सर्वोच्च न्यायालय के नीचे संघीय न्यायालयों में तीन प्रकार के न्यायालयों का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

जिला न्यायालय—संघीय न्यायालयों में ये सबसे नीचे के स्तर पर हैं, किन्तु इन्हीं में अधिकांश मुकदमों की सुनवाई होती है। अतएव इन्हें संघीय न्याय पद्धति की 'रीढ़ की अस्थि' कहा गया है। इन न्यायालयों की संख्या ८४ है और इनमें लगभग २०० न्यायाधीश कार्य करते हैं। इन न्यायाधीशों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति

द्वारा सीनेट के परामर्श व सहमति से होती है। ये अपने पदों पर सदाचरण काल तक अर्थात् आजीवन रहते हैं, परन्तु इन्हें यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि ये ७० वर्ष की आयु पर पद से निवृत्त हो सकते हैं और उसके बाद भी उन्हें पूरा वेतन पेन्शन के रूप में मिलता है। इन न्यायाधीशों को १५,००० डॉलर प्रति वर्ष वेतन मिलता है।

ये न्यायालय संघीय कानूनों के अधिकार-क्षेत्र में दोनों ही प्रकार के दीवानी व फौजदारी के मुकदमे सुनते हैं। २० डॉलर से कम मालियत के दीवानी मुकदमों को छोड़कर सभी अन्य मुकदमों की सुनवाई ये जूरी की सहायता से करते हैं। इनमें मुख्यत: तीन प्रकार के दीवानी मुकदमे सुने जाते हैं—(अ) ऐसे मुकदमे जो कोई नागरिक संघीय कानूनों के अन्तर्गत अपने अधिकारों को मनवाने के लिए दायर करता है; (आ) समुद्रों पर होने वाले अपराधों से सम्बन्धित मुकदमे; और (इ) विभिन्न राज्यों के नागरिकों के बीच उठने वाले विवादों से सम्बन्धित मुकदमे। फौजदारी मुकदमे जो संघीय कानूनों के उल्लंघन के परिणामस्वरूप चलाए जाते हैं, जैसे मूल्य नियन्त्रण, महसूली माल को चोरी से मँगाना या बाहर भेजना, मनुष्यों के अपहरण आदि को रोकने सम्बन्धी कानूनों के विरुद्ध अपराध। सभी प्रकार के मुकदमों का अधिकार-क्षेत्र प्राथमिक है।

अपीलीय सर्किट न्यायालय—ये जिला न्यायालयों के ऊपर वाले स्तर के न्यायालय हैं। इनका सम्पूर्ण कार्य अपील सुनने का है। इनमें जिला न्यायालयों से अपीलें आती हैं। इनका काम कानूनी विवाद-ग्रस्त प्रश्नों पर निर्णय करना है। नियम यह है कि अपीलीय न्यायालयों में ३ जजों की बेंच होती है। अधिकतर मामलों में इनके निर्णय अन्तिम होते हैं; इसी प्रकार ये बहुत बड़ी संख्या में अपीलों को सर्वोच्च न्यायालय में जाने से रोकते हैं, इनमें आए हुए अत्यधिक महत्वपूर्ण मुकदमों को ही सर्वोच्च न्यायालय अपने सामने आने देता है। सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र १० सर्किटों में बँटा है और प्रत्येक में एक सर्किट न्यायालय है। कभी-कभी एक ही प्रकार के मुकदमों की सुनवाई में दो सर्किट न्यायालय कुछ भिन्न निर्णय दे देते हैं। ऐसे मुकदमों की सर्वोच्च न्यायालय में अपील सुनी जाती है। इन न्यायालयों के न्यायाधीश भी राष्ट्रपति द्वारा सीनेट के परामर्श और सहमति से नियुक्त किए जाते हैं और उनका वेतन जिला न्यायालयों के न्यायाधीशों से कुछ ऊँचा होता है।

विशेष न्यायालय—ऊपर वर्णित नियमित न्यायालयों की व्यवस्था के अतिरिक्त विशेष प्रकार के मुकदमों की सुनवाई के लिए कई विशेष न्यायालयों की भी व्यवस्था है। इस प्रकार के न्यायालयों का अति संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है। **दावों के न्यायालय** में संघीय सरकार के विरुद्ध नागरिकों के दावे सुने जाते हैं। इस न्यायालय की स्थापना सन् १८८५ में हुई थी और अब इसमें ५ न्यायाधीश हैं, इसका मुख्य स्थान वाशिंगटन है। आयात-निर्यात महसूल के न्यायालय में आयात-निर्यात महसूल एकत्रित करने वाले अधिकारियों के निर्णयों के विरुद्ध अपी

जाती हैं । इस न्यायालय में ९ न्यायाधीश हैं और इसका मुख्य स्थान न्यूयॉर्क है; किन्तु न्यायाधीश मुकदमों की सुनवाई विभिन्न बन्दरगाहों के स्थान पर करते हैं । **कस्टम और पेटेन्ट अपील न्यायालय** में ५ न्यायाधीश हैं और यह कस्टम न्यायालय तथा पेटेन्ट ऑफिस के निर्णय के विरुद्ध अपीलें सुनता है । **कर न्यायालय** में ५ न्यायाधीश हैं । इसमें कर सम्बन्धी मुकदमों की सुनवाई होती है । इसके अतिरिक्त काँग्रेस ने कोलम्बिया डिस्ट्रिक्ट तथा सं० रा० अमरीका द्वारा अन्य अधिशासित प्रदेशों के लिए भी न्यायालयों की व्यवस्था की है ।

कानूनों का परिपालन—न्यायालयों को विभिन्न प्रकार के मुकदमों में निर्णय करने की शक्ति प्राप्त है । उन निर्णयों को लागू करना कार्यपालिका का कार्य है । अभियुक्तों की गिरफ्तारी और विभिन्न प्रकार के मुकदमों की पेशी प्रशासनिक अधिकारी करते हैं । कानूनों को लागू कराने का दायित्व **न्याय विभाग** पर है, इसे ही संघीय न्यायालयों के निर्णयों को लागू करना होता है । इस विभाग का अध्यक्ष **महाधिवक्ता** (Attorney General) होता है, जो संघीय सरकार का मुख्य कानूनी अधिकारी है । न्याय विभाग के अन्तर्गत बहुत बड़ी संख्या में जिला अधिकारी हैं, प्रत्येक जिले में एक जिला एटॉर्नी होता है और उसके एक या अधिक सहायक होते हैं । प्रत्येक जिले में एक मार्शल और उप-मार्शल होते हैं जिनके कार्य अभियुक्त को बन्दी बनाना, न्यायालयों के निर्णयों को लागू करना और अन्य प्रकार के न्यायिक प्रशासन में सहायता देना है ।

प्रश्न

१. अमरीकी न्याय-पद्धति की मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन कीजिए ।
२. 'न्यायिक पुनर्वलोकन' का अर्थ और महत्व समझाइए ।
३. सर्वोच्च न्यायालय के संगठन और अधिकार-क्षेत्र का वर्णन कीजिए ।
४. संयुक्त राज्य अमरीका की शासन-पद्धति में सर्वोच्च न्यायालय का क्या महत्व है ?
५. सं० रा० अमरीका के संघीय न्यायालयों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए ।

६. अन्य महत्वपूर्ण विषय

१. राज्यों का शासन

सं० रा० अमरीका के संघ का निर्माण १३ राज्यों ने किया था; अब इसमें सम्मिलित राज्यों की संख्या ५० है। सं० रा० अमरीका की पताका पर सितारों के चिन्ह संघान्तरित राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सं० रा० अमरीका का आदर्श है—बहुत सों में एक। इसी कारण सं० रा० अमरीका के राजनीतिक जीवन की विशेषता, भारत की तरह, विविधता में एकता है। प्रायः प्रत्येक भौगोलिक बात में राज्य एक दूसरे से बहुत अधिक भिन्न हैं। क्षेत्रफल में २,६७,३३९ वर्ग मील का टेक्साज १,२१४ वर्ग मील वाले रोड द्वीप से २२० गुणा है। जनसंख्या में सन् १९५० की जनगणना के अनुसार १,४८,३०,१९२ जनसंख्या वाला न्यूयॉर्क १,६०,०८३ जनसंख्या वाले नेवादा से ९२ गुणा बड़ा है। प्राकृतिक बनावट की दृष्टि से नेवादा मुख्यतः रेगिस्तान है, इओवा में घने खेत हैं और कोलोरेडो में पहाड़ों और विशाल भूमि का सम्मिश्रण है। आय और उसकी कर लगाने योग्य क्षमता में काफी अन्तर है; फिर भी केवल मिसीसिपी ही एक ऐसा राज्य है जहाँ प्रति व्यक्ति आय ब्रिटेन की प्रति व्यक्ति आय से कम है।

प्रत्येक राज्य का अपना संविधान है, जो सं० रा० अमरीका के संविधान अर्थात् देश के सर्वोपरि कानून का अतिक्रमण नहीं कर सकता, किन्तु अपने क्षेत्र में राज्य के लिए सर्वोपरि कानून होता है। संविधान में संशोधन करने में राज्य की विधायिका और मतदाता, सामान्यतः दोनों भाग लेते हैं। कुछ प्रतिष्ठित राजशास्त्रियों ने एक आदर्श संविधान का प्रारूप तैयार किया था, जिसे सन् १९२१ में नेशनल म्युनिसिपल लीग ने प्रकाशित किया। इसे तब से चार बार दोहराया जा चुका है। इसका उद्देश्य यही है कि विभिन्न राज्य इसे आदर्श मानकर अपने-अपने संविधान में उसके अनुसार संशोधन कर लें। प्रायः सभी राज्यों के संविधान में ये ६ भाग सामान्य रूप से पाए जाते हैं—(१) प्राक्कथन, (२) अधिकार-पत्र, (३) कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के संगठन सम्बन्धी प्राविधान, (४) स्थानीय शासन के लिए प्राविधान, (५) विविध प्राविधान; जिनका सम्बन्ध ऐसे मामलों से है जैसे मताधिकार, चुनाव, आय और व्यय, शिक्षा आदि, और (६) भावी परिवर्तनों के लिए प्राविधान।

कार्यपालिका—शासन पद्धति का आधार शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त है, अतएव राज्यों में कार्यपालिका का स्वरूप वही है जो राष्ट्रीय सरकार में है—अर्थात् अध्यक्षात्मक कार्यपालिका। राज्य और कार्यपालिका का प्रमुख गवर्नर कहलाता है और लगभग ३/४ राज्यों में उप-गवर्नर का पद भी है। प्रत्येक राज्य में, मिसीसिपी

को छोड़कर, जहाँ पर साधारण मतदाताओं और निर्वाचकों के मत के मेल से गवर्नर का चुनाव होता है, गवर्नर का प्रत्यक्ष निर्वाचन होता है। कुछ राज्यों में गवर्नर के पद के लिए उम्मीदवारों की नामजदगी राज्यों के दलीय सम्मेलन में होती है, परन्तु अधिकतर राज्यों में उनकी नामजदगी प्रत्यक्ष प्रारम्भिक चुनाव द्वारा की जाती है। बहुमत प्राप्त उम्मीदवार चुन लिया जाता है। गवर्नर-पद के उम्मीदवार के लिए सम्पत्ति की योग्यता का अन्त हो गया है; आजकल तो उम्मीदवार को संयुक्त राज्य अमरीका व उस राज्य का नागरिक होना चाहिए जिसका वह गवर्नर बनना चाहता है। अधिकतर राज्यों में गवर्नर के कार्यकाल की अवधि ४ वर्ष है और कुछ में केवल २ वर्ष। अलग-अलग राज्यों में उनकी उपलब्धियाँ भिन्न-भिन्न हैं। साधारणतया गवर्नर को महाभियोग की कार्यवाही द्वारा पदच्युत किया जा सकता है।

गवर्नर की शक्तियों को मोटे रूप में तीन समूहों में रक्खा जा सकता है—(१) कार्यपालिका; (२) विधायी, और (३) विविध। प्रथम समूह में सम्मिलित शक्तियाँ मुख्यतः ये हैं—वह राज्य का मुख्य अथवा सर्वोच्च कार्यपालिका अधिकारी होता है; उसे अनेक अधिकारियों की नियुक्ति करने व उन्हें पद से हटाने का अधिकार है; वह प्रशासन की देख-रेख करता है; वह कानूनों का परिपालन करता है; वह राज्य की सैनिक टुकड़ियों का सेनापति होता है और उसे कुछ महत्वपूर्ण वित्तीय शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। उसकी विधायी शक्तियों में ये मुख्य हैं—(१) वह विधायिका को सन्देश भेज सकता है; (२) वह विधायिका का विशेष सत्र बुला सकता है; और विधायिका द्वारा पास किए गए विधेयकों पर उसे प्रतिषेध की शक्ति भी प्राप्त है। उसकी विविध शक्तियों में कुछ न्यायिक तथा अन्य शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं। अधिकतर राज्यों में, जहाँ उप-गवर्नर हैं, वे सीनेट के सभापति होते हैं।

अन्य अधिकारी—सबसे प्रमुख अधिकारी सेक्रेटरी ऑफ स्टेट है, जिसका राज्यों में प्रत्यक्ष चुनाव होता है, परन्तु कुछ राज्यों में उसे गवर्नर नियुक्त करता है। वह राज्य का प्रमुख क्लर्क होता है, अतएव वह गवर्नर तथा विधायिका के सहकारी कार्यों का रिकार्ड रखता है। एक-दो राज्यों को छोड़कर प्रायः प्रत्येक राज्य में **लेखा परीक्षक या नियन्त्रक** होता है, चाहे उसका नाम कुछ भी हो। प्रत्येक राज्य में वित्त विभाग है और उसका अध्यक्ष **कोषाध्यक्ष** होता है, जिसका अधिकतर राज्यों में लोकप्रिय निर्वाचन होता है। इनके अतिरिक्त, एक कानूनी परामर्शदाता या महाधिवक्ता शिक्षा का अधीक्षक होता है और कुछ विशेष कार्यों के लिए बोर्ड व कमीशन भी।

विधायिकायें—विभिन्न राज्यों में इनके अलग-अलग नाम हैं। प्रत्येक राज्य में, केवल नेब्रास्का को छोड़कर, दो सदन वाली विधायिकायें हैं। प्रत्येक राज्य में उच्च सदन सीनेट कहलाता है, यद्यपि बहुत से राज्यों में नीचे के सदन का नाम प्रतिनिधि

सदन है, किन्तु बहुत से राज्यों में उन्हें भिन्न नामों से पुकारा जाता है। दोनों ही सदनों के सदस्यों का चुनाव साधारण मतदाताओं द्वारा किया जाता है, परन्तु वे अलग-अलग हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। साधारणतया सीनेट भौगोलिक क्षेत्रों का और निचला सदन जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। सदस्यों की संख्या, जैसा स्वाभाविक है, निचले सदन में उच्च सदन से अधिक होती है। निचले सदन के सदस्यों की संख्या राज्य-राज्य में अलग-अलग है, केलीफोर्निया में ८० सदस्य हैं और न्यूहेम्पशायर में ४००। इसी प्रकार उच्च सदन के सदस्यों की संख्या भी विभिन्न राज्यों में अलग-अलग है।

उनकी ये शक्तियाँ इतनी भिन्न और संख्या में अधिक हैं कि उनकी सूची देना कठिन है। यह सत्य है कि अधिक शक्तियाँ क्रमिक रूप से संघ सरकार को प्राप्त हो गई हैं, फिर भी राज्यों की विधायिकाओं की शक्तियों में भी वृद्धि हुई है। उनके द्वारा पास किए जाने वाले कानूनों का सम्बन्ध मुख्यत: इन विषयों से है—जन-स्वास्थ्य और सुरक्षा, विवाह व तलाक, शिक्षा, नागरिक अधिकार, दण्ड व्यवस्था, सम्पत्ति, चुनाव व्यवस्था, मार्ग, किसानों की सहायता के कार्यक्रम, स्थानीय शासन, इत्यादि। विधायिकाओं की शक्तियों पर संघीय संविधान व राज्य के संविधान की सीमायें लगी हैं। संघीय संविधान द्वारा लगाई गई सीमाओं का विवेचन अध्याय २ में किया गया है। यहाँ पर राज्य के संविधान द्वारा लगाई गई सीमाओं के दो उदाहरण देना पर्याप्त होगा। प्रथम, सभी राज्यों के संविधानों में इस बात की मनाई की गई है कि मतदान की योग्यता के लिए सम्पत्ति को आधार बनाया जाए; दूसरी, अधिकतर राज्यों के संविधानों में ऋण लेने की सीमा लगाई गई है, जिससे राज्य की विधायिका अधिक ऋण न ले सके।

अधिकतर राज्यों में उप-गवर्नर सीनेट का सभापति होता है; अन्य राज्यों में सीनेट तथा सभी राज्यों में लोकप्रिय सदन अपने सभापति चुनते हैं। प्रत्येक विधायिका में अपनी कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में बनाए गए प्रक्रिया नियम हैं। प्रत्येक विधेयक कानून बनने से पूर्व दोनों सदनों में एक ही रूप में पास होना चाहिए। विधेयकों पर तीन वाचन होते हैं और विधायिकायें विभिन्न समितियों का प्रयोग करती हैं। लगभग १४ राज्यों में वार्षिक सत्र होता है और शेष में दो वर्ष में एक बार सत्र होता है। सत्र काफी लम्बे काल तक चलता है। साधारणतया विधेयकों को सार्वजनिक और निजी विधेयकों में बाँटा जाता है। विधेयकों के अतिरिक्त विधायिकायें विभिन्न प्रकार के प्रस्तावों पर भी विचार करती हैं।

न्यायपालिका—प्रत्येक राज्य में राज्य के कानूनों का उल्लंघन करने वाले अपराधियों के लिए अपनी न्याय-पद्धति है। विभिन्न राज्यों में न्याय-पद्धति का साधारण नमूना एकसा है, यद्यपि न्यायालयों के नामों व संगठन में विभिन्नतायें पाई जाती हैं। राज्यों में विभिन्न स्तरों के न्यायालयों का अति संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है। **जस्टिस ऑफ पीस के न्यायालय** सबसे नीचे स्तर पर न्यायालय हैं।

इनका अधिकार-क्षेत्र केवल बहुत छोटे मुकदमों तक है—जैसे शान्ति भंग करना। ये ही न्यायाधीश विवाह, आदि भी कराते हैं। **म्युनिसिपल न्यायालय** अधिकतर नगरों और शहरों में दण्डाधीशों के न्यायालय हैं। इनका अधिकार-क्षेत्र भी पूर्व वर्णित न्यायालयों के समान छोटे मुकदमों तक सीमित है। **जिला न्यायालय** सबसे महत्वपूर्ण राज्यीय न्यायालय है। कुछ राज्यों में इन्हें सर्किट, काउण्टि या सुपीरियर न्यायालय भी कहा जाता है। इन्हीं न्यायालयों में अधिकतर मुकदमों की सुनवाई होती है। इन न्यायालयों का अधिकतर-क्षेत्र प्राथमिक तथा अपीलीय दोनों ही प्रकार का है। इनमें दीवानी और फौजदारी दोनों ही प्रकार के मुकदमें सुने जाते हैं। कुछ राज्यों में **अपील के न्यायालय** अथवा सर्किट कोर्ट है, जिनमें जिले के न्यायालयों से अपीलें आती हैं। जिले व अपीलीय न्यायालयों के न्यायाधीश या तो जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं या उन्हें राज्य के गवर्नर नियुक्त करते हैं।

लगभग ४० राज्यों में सबसे ऊपर के न्यायालयों को सर्वोच्च न्यायालय कहते हैं। इसका अधिकार-क्षेत्र मुख्यतः अपील सम्बन्धी है। ये अपने-अपने राज्य के संविधान का निर्वचन भी करते हैं। कुछ राज्यों में गवर्नर या विधायिकायें प्रस्तावित विधेयकों के बारे में यह परामर्श भी प्राप्त कर सकते हैं कि विधेयक संवैधानिक है या नहीं। इनके न्यायाधीश अधिकतर जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। इस प्रकार से न्यायाधीश की नियुक्ति का आधार तर्क की अपेक्षा परम्परा अधिक है। अमरीकावासियों का विश्वास रहा है कि इस प्रकार से नियुक्त न्यायाधीशों के न्यायालय स्वतन्त्र होते हैं, परन्तु अब यह अनुभव किया जा रहा है कि न्यायाधीश शिक्षित तथा कानून के विशेषज्ञ होने चाहियें और यह भी कि निर्वाचन द्वारा नियुक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति के पीछे विशेष योग्यता की अपेक्षा राजनीतिक बातों को अधिक महत्व दिया जाता है।

प्रत्यक्ष विधि-निर्माण—बहुत से राज्यों में विधि-निर्माण में जनता प्रत्यक्ष भाग लेता है। ऐसा प्रस्तावाधिकार तथा लोक-निर्णय के द्वारा होता है। इनका उद्देश्य जनता को विधि-निर्माण कार्य में प्रत्यक्ष रूप से अपनी बात कहने का अवसर देना है, विशेष रूप से ऐसे मामलों में जहाँ विधायिका जनता की इच्छा के अनुसार न चल रही हो। इस क्षेत्र में आरम्भ करने वाला प्रथम राज्य दक्षिण डकोटा था, जिसने सन् १६०८ में ऐसे अधिकार जनता को दिये और अब भी केवल १० राज्यों में इस प्रकार की व्यवस्था है **प्रस्तावाधिकार** के द्वारा कुछ मतदाता विधेयक का प्रस्ताव रख सकते हैं। यह अधिकार दो प्रकार का है—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। ११ राज्यों में प्रत्यक्ष प्रस्तावाधिकार की व्यवस्था है, जिसके अनुसार जनता का एक विहित संख्या विधेयक का प्रस्ताव रख सकती है। ऐसा कार्य याचिका द्वारा किया जाता है और ऐसे प्रस्तावों पर बिना विधायिका द्वारा किसी प्रकार की कार्य-वाही के मत लिया जाता है। ६ राज्यों में अप्रत्यक्ष प्रस्तावाधिकार प्रचलित हैं। इनके अनुसार जनता द्वारा प्रस्तावित विधेयक पर राज्य की विधायिका को एक

नियत समय के भीतर विचार करना होता है। यदि विधायिका उसे स्वीकार न करे तो उस पर जनमत कराया जाता है और यदि जनता का बहुमत उसके पक्ष में होता है तो वह कानून बन जाता है। तीन राज्यों में दोनों ही प्रकार के प्रस्तावाधिकार की व्यवस्था है। प्रस्ताव पेश करने की याचिका पर एक राज्य में १२,००० मतदाताओं के हस्ताक्षर तथा अन्य राज्यों में ५ से लेकर ३० प्रतिशत मतदाताओं के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं।

लोक-निर्णय जनता की वह शक्ति है जिसके अनुसार यह प्रस्तावित विधेयक पर, जो या तो विधायिका के विचाराधीन हो या जिसे विधायिका ने पास कर दिया हो, अपनी स्वीकृति देती है। लोक-निर्णय के भी दो प्रकार हैं—ऐच्छिक और अनिवार्य। ऐच्छिक लोक-निर्णय विधायिका अथवा जनता को इस बारे में विवेकीय शक्ति प्रदान करता है कि किसी विधेयक पर लोक निर्णय प्राप्त किया जाये। यदि कुछ समूह चाहते हैं कि किसी विधेयक पर जनता का लोक-निर्णय हो तो वे इस प्रकार की प्रार्थना के लिए याचिका तैयार करते हैं और उस पर मतदाताओं के विहित प्रतिशत के हस्ताक्षर कराते हैं। ऐसा होने पर उस विधेयक पर लोक-निर्णय कराया जाता है—या तो विशेष निर्वाचन द्वारा अथवा आगामी नियमित रूप से होने वाले निर्वाचन के अवसर पर इस प्रकार का लोक-निर्णय कराया जाता है। अनिवार्य लोक-निर्णय का अर्थ है कि कुछ प्रकार के कानूनों पर अवश्य ही लोक-निर्णय कराया जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था मुख्यत: कुछ राज्यों के संविधानों में प्रस्तावित संशोधनों के बारे में प्रचलित है।[1]

२. स्थानीय शासन

विशेषतायें—स्थानीय शासन की कुछ प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है—(१) सं० रा० अमरीका में स्थानीय शासन को एक व्यवसायिक दृष्टि से देखा जाता है। कौंसिल-मैनेजर योजना का विकास इसका अच्छा प्रमाण है। (२) राज्य के स्तर से नीचे प्रशासन की इकाइयाँ एक प्रकार से राज्य शासन की प्रतिनिधि हैं। उनकी शक्तियों और रचना की परिभाषा राज्य के कानूनों द्वारा की गई है। (३) इसी कारण स्थानीय शासन के रूप में अलग-अलग राज्यों में काफी विभिन्नतायें हैं। सं० राज्य अमरीका के विभिन्न राज्यों में अनेक प्रकार की स्थानीय संस्थायें हैं। इनकी एक विशेषता यह है कि स्थानीय समुदायों को

1. 'In every State...the mandatory referendum is provided for constitutional amendments. That is, they must be referred to the voters and approved by them before they go into effect...If a measure is voluntarily referred to the voters by the legislature, it is said to be an optional or legislative referendum.'
—*W. A. McClenaghan*, American Government, pp. 483–89.

यह भी निर्धारित करने की स्वतन्त्रता है कि वे अपने यहाँ किस प्रकार की संस्थायें रखेंगे[1] जबकि भारतीय नगरों और ग्रामीण क्षेत्रों में राज्य सरकारों द्वारा बनाये गये कानूनों के अनुसार ही स्थानीय शासन की संस्थायें हैं। सं० रा० अमरीका के नगरों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे विभिन्न प्रकार की स्थानीय संस्थायें स्थापित कर सकते हैं। इनके इस संगठन में इस कारण भी पेचीदगी पैदा हो गई है कि ये एक ओर स्थानीय शासन और दूसरी ओर राज्य प्रशासन की इकाइयाँ हैं।

स्थानीय शासन के रूप—मोटे रूप में, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए स्थानीय शासन की पृथक संस्थायें हैं। शहरी संस्थाओं की संख्या ४०० से कुछ कम है। वे अपने देश की म्युनिसिपैलिटियों तथा निगमों के समान हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की संस्थाओं में काउण्टियों, कस्बों और विशेष जिलों की संस्थायें सम्मिलित हैं। सं० रा० अमरीका में स्थानीय शासन के निम्नलिखित तीन आधारभूत रूप हैं :—

(१) **कौंसिल-मेयर रूप**—इसके अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों से जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की एक कौंसिल होती है और उसका अध्यक्ष मेयर होता है। इनके भी दो मुख्य रूप हैं—अशक्त मेयर और शक्तिमान मेयर। प्रथम प्रकार में मेयर की शक्तियाँ बहुत ही कम होती हैं; वह कौंसिल का सभापति होता है। इसके विभिन्न विभागों के अध्यक्ष भी जनता द्वारा चुने जाते हैं। दूसरे प्रकार के स्थानीय शासन का आधार शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त है। कौंसिल नीति का निर्धारण करती है, और मेयर, जो जनता द्वारा निर्वाचित होता है, कार्यपालिका शक्ति रखता है। मेयर ही महत्वपूर्ण अधिकारियों को नियुक्त करता है, बजट तैयार करता है और उसे कौंसिल के निर्णयों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार भी होता है।

(२) **कमीशन का रूप**—साधारणतया कमीशन (आयोग) में ५ सदस्य होते हैं, जिन्हें जनता चुनती है। इनमें से एक कमीशन का सभापति अथवा मेयर होता है। सम्पूर्ण कमीशन नीति-निर्धारण करता है और कमीशन का प्रत्येक सदस्य एक प्रशासनिक विभाग का अध्यक्ष रहता है। इस पद्धति के दो मुख्य लाभ हैं—

1. 'The structure of American local government varies not only from State to State but also within the States. The constitution or laws of a State often allow some of the local communities a measure of 'home rule' in defining the organs and powers of their governments......The pattern of local and State administration is confused further by the fact that local government units are both local governments and administrative units of the States.'

—*A. M. Patter*, American Government and Politics, pp, 235-239.

(१) इसमें शक्तियों और उत्तरदायित्वों का विभाजन नहीं होता। (२) ५ या ७ व्यक्ति सामञ्जस्य के साथ कार्य कर सकते हैं—यह बात ५०—६० या अधिक व्यक्तियों के लिए लागू नहीं हो सकती। परन्तु इसके दोष भी हैं। प्रथम, इसके सदस्यों की संख्या इतनी कम है कि उसमें जनता का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता। दूसरे, इसमें सभी सदस्यों की शक्तियां समान होती हैं और कोई भी कमिश्नर दूसरों से बड़ा नहीं होता जो सबके कार्यों में समन्वय रख सके। वास्तव में, इसका सबसे बड़ा दोष यही है कि यदि कमीशन के सदस्यों के बीच किसी प्रश्न पर गतिरोध उत्पन्न हो जाए तो उसको कोई नहीं सुलझा सकता।

(३) **कौंसिल मैनेजर का रूप**—सन् १९०८ में इस प्रकार की एक सस्था थी, किन्तु अब यह व्यापक रूप से शहरों में प्रचलित है। इस पद्धति में नीति-निर्धारण का कार्य तो कौंसिल ही करती है और प्रशासन का उत्तरदायित्व एक विशेष योग्यता प्राप्त कुशल अधिकारी—मैनेजर—पर होता है। साधारणतया मैनेजर की नियुक्ति कौंसिल द्वारा होती है, परन्तु नियुक्ति के बाद दिन-प्रतिदिन के प्रशासन के लिए वही पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है। वास्तव में, यह कमीशन योजना का ही संशोधित रूप है और इसका मुख्य लाभ कुशल प्रशासन है।

स्थानीय शासन की रचना—स्थानीय शासन के लिए प्रत्येक राज्य, काउण्टियों, कस्बों, छोटे कस्बों, विशेष जिलों व शहरों में बँटा है। प्रत्येक राज्य में स्थानीय शासन की सबसे महत्वपूर्ण इकाई काउण्टि है; अथवा राज्य के प्रशासनिक विभागों को काउण्टि कहते हैं। इनकी जनसंख्या में बड़ी विभिन्नता पाई जाती है; किसी में सौ व्यक्ति रहते हैं तो किसी की जनसंख्या लाखों में है। काउण्टि ग्रामीण शासन की परम्परागत इकाई है, परन्तु अब अनेक काउण्टियों में नगर अथवा शहरी क्षेत्र भी सम्मिलित हैं। जिन राज्यों में काउण्टियाँ स्थानीय शासन की प्राथमिक इकाई हैं, साधारणतया वे राज्य विधायिका के चुनाव के लिए निर्वाचन-क्षेत्र होती हैं। काउण्टियों के कार्यों में भी बहुत अन्तर है। उनका सम्बन्ध साधारणतया न्याय के प्रशासन, जेलों और सुधार-स्कूलों, शिक्षा, दूसरी श्रेणी के मार्गों व पुलों के निर्माण, कल्याणकारी कार्य और जन-स्वास्थ्य से है। अधिकतर राज्यों में काउण्टि का एक निर्वाचित बोर्ड होता है, जिसका कार्य नीति निर्धारण है। यही बोर्ड मुख्य कार्यपालिका अथवा मैनेजर और अन्य अधिकारियों को नियुक्त करती है।

कस्बे और छोटे कस्बे—ये छोटे ग्रामीण क्षेत्र हैं। इनका सम्बन्ध मार्गों, स्कूलों, पुस्तकालयों, निर्धन सहायता, सार्वजनिक निर्माण कार्यों और अन्य सेवाओं से है। इनके अतिरिक्त ये राज्य सरकार द्वारा सौंपे हुए कुछ कार्यों को भी पूरा करते हैं। अब छोटे कस्बों का पहले जैसा महत्व नहीं रहा है, जिसका कारण मुख्यतः विशेष जिलों की स्थापना है।

विशेष जिले—साधारण रूप में यह कहा जा सकता है कि इनकी रचना किसी एक कार्य की पूर्ति के लिए की गई थी, परन्तु अब उनके कार्यों में ये सम्मिलित हैं—जल मार्ग, कृषि गैस, अग्नि, पानी शक्ति, पुस्तकालय, पार्क, आदि। विशेष जिलों के क्षेत्र आवश्यक रूप में एक दूसरे से लगे हुए नहीं होते, वे स्थानीय शासन की प्राथमिक व दूसरी श्रेणी की इकाइयों को काटकर भी बने हैं। उन्हें अपनी सेवाओं के लिए कर लगाने की शक्ति प्राप्त है। विशेष जिले की शासन-सत्ता निर्वाचित बोर्ड या कमीशन में निहित होती है; जो नीति-निर्धारण के लिए उत्तरदायी होने के साथ-साथ अन्य अधिकारियों को भी नियुक्त करती है और कर लगाती है।

शहर—शहर की सीमाओं, कौंसिल की शक्तियों और उसके निर्वाचन, आदि को राज्य द्वारा प्रदान किए गए अधिकार-पत्र (city-charter) में परिभाषित किया जाता है। शहरों के स्थानीय शासन के तीन मुख्य रूप हैं, जिनका वर्णन पूर्वगामी पृष्ठों में किया जा चुका है। शहरों की स्थानीय संस्थायें विभिन्न प्रकार के कार्य करती हैं—जैसे जन्म का रजिस्ट्रेशन, पुलिस नियन्त्रण, अग्नि से रक्षा, मार्ग, जन-स्वास्थ्य कल्याण, शहर का नियोजन, स्कूलों व कालिजों का संचालन, सार्वजनिक उपयोगिता के व्यवसायिक कार्य, चुनाव कराना, इत्यादि।

आय स्रोत—स्थानीय शासन की संस्थायें विभिन्न प्रकार के कर अथवा रेट लगाती हैं और उन्हें राज्य तथा संघ सरकार से विभिन्न योजनाओं के लिए आर्थिक सहायता भी मिलती है। इनकी आय का मुख्य स्रोत सम्पत्ति कर और इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्र में आय-कर भी हैं और इन्हें विभिन्न व्यवसायों के लिए लाइसेंस देने व सार्वजनिक उपयोगिता के कार्यों के संचालन से भी आय होती है।

स्थानीय शासन की देख-रेख—राज्य सरकारें इनके सुधार और कार्य-कुशलता को बढ़ाने के लिए इनके कार्यों की देख-रेख करती हैं, वे इन संस्थाओं को परामर्श और आर्थिक सहायता भी देती हैं। अब संघीय सरकार भी स्थानीय संस्थाओं को विभिन्न सेवाओं और योजनाओं के लिए आर्थिक सहायता देती है। विभिन्न प्रकार के कार्यों और सेवाओं के लिए स्थानीय संस्थाओं को संघ सरकार द्वारा स्थापित व संचालित संस्थाओं से अनेक प्रकार की आवश्यक सूचना प्राप्त होती है।

३. राजनीतिक दल

महत्व—सं० रा० अमरीका में राजनीतिक दल अन्य देशों के दलों की भाँति जनमत को संगठित करते हैं और मतदाताओं की राजनीतिक शिक्षा के अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण कार्य भी करते हैं। अन्य देशों में, विशेष कर जहाँ संसद प्रणाली है, दल सरकार पर नियन्त्रण करते हैं अर्थात् बहुमत दल सरकार अथवा मन्त्रि-मण्डल बनाता है और अन्य दल विरोधी पक्ष के रूप में सरकार के कार्यों की आलोचना करते रहते हैं। सं० रा० अमरीका में शासन-पद्धति का आधार शक्ति पृथक्करण

का सिद्धान्त है। साथ ही वहाँ पर संघात्मक शासन होने के परिणामस्वरूप शासन शक्तियाँ संघीय सरकार और राज्य सरकारों में बँटी हैं। शासन के विभिन्न अंगों में एकता और सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में राजनीतिक दलों का प्रमुख स्थान रहता है। राजनीतिक दल ही उस नेतृत्व की व्यवस्था करते हैं, जिसके द्वारा कांग्रेस और कार्यपालिका तथा संघीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच सुगम सम्बन्ध संचालित होते हैं।

सं० रा० अमरीका की शासन [illegible]ति में राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए निर्वाचक-मण्डल की योजना को कार्यान्वित कर[illegible] भी राजनीतिक दलों का कार्य है। चूंकि वहाँ पर दो दल हैं, अतएव साधारणतया किसी एक दल के उम्मीदवार को बहुमत प्राप्त हो जाता है। ऐसा न होने पर राष्ट्रपति की छाँट प्रतिनिधि सदन को करनी पड़ती है। राजनीतिक दलों का अमरीकी शासन-पद्धति में कितना अधिक महत्व है, इसका वर्णन एक लेखक के अनुसार इस प्रकार है : 'संविधान को छोड़कर राजनीतिक दल अमरीका की आधारभूत राजनीतिक संस्था है। इन्होंने शासन को चलाया है, सघीय पद्धति और शक्ति-पृथक्करण की मनुष्यकृत रुकावटों को तोड़ा है, राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ बनाया है, वर्गीय संघर्षों को कम किया है तथा प्रजातन्त्र का विकास किया है। यह सच है कि राजनीतिक दलों के द्वारा ही सं० रा० अमरीका की पेचीदा शासन-पद्धति सफलतापूर्वक संचालित हुई है तथा शासन-तन्त्र में सामंजस्य आ सका है। राजनीतिक दल ही राज्यों और राष्ट्र के हितों में सामंजस्य स्थापित करते हैं। वर्गीय भावनाओं और विभाजनों को कम कर दलों ने राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ किया है।'

दलीय पद्धति की विशेषतायें—सर्वप्रथम, ब्रिटेन की तरह सं० रा० अमरीका में भी **द्वि-दलीय पद्धति** है। वहाँ समय-समय पर तीसरे अथवा कम महत्वपूर्ण दल जन्मे हैं, किन्तु प्रमुख दल दो ही रहे हैं। दो दलीय पद्धति के विकास के लिए मुख्यत: ये कारण उत्तरदायी रहे हैं—(१) अमरीकी उपनिवेशों में इंगलैंड से द्वि-दलीय पद्धति भी आई; (२) सं० रा० अमरीका में भी एक सदस्य वाले निर्वाचन क्षेत्र हैं, जिनके कारण द्वि-दलीय पद्धति का विकास होता है और छोटे दलों का अन्त हो जाता है; और (३) ऐतिहासिक कारण—प्रारम्भिक काल में ही दो प्रमुख दलों का विकास हुआ और उनका संगठन सुदृढ़ बना, जिसके परिणामस्वरूप तीसरे प्रमुख दल का विकास नहीं हो सका।

सं० रा० अमरीका के वर्तमान प्रमुख दलों के नाम **डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन** हैं। ये दोनों ही दल अमरीकी राजनीति में बहुत समय से प्रभावशाली रहे हैं; परन्तु समय-समय पर छोटे दलों का जन्म हुआ है और अन्त भी। वास्तव में, रिपब्लिक दल ही एक ऐसा दल है जिसने तीसरे दल के रूप में जन्म लिया और तत्कालीन एक प्रमुख दल का सफलतापूर्वक स्थान ले लिया। कई बार छोटे दलों के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों को काफी मत मिले हैं, किन्तु उनमें से कोई विजयी

नही हुआ। ऐसे कुछ दलों का अस्तित्व कई वर्षों तक रहा है, जैसे नशाबन्दी दल और समाजवादी दल। तीसरे दल ने नई नीति को अपनाया किन्तु एक या दूसरे प्रमुख दल ने उनके कार्यक्रम को अपना लिया और कभी भी तीसरे दल का राष्ट्रपति नहीं बना।

दूसरी, विदेशियों के लिए अमरीकी दलीय पद्धति बड़ी रहस्यमय है और उसका समझना कठिन है। इसका कारण यह है कि सं० रा० अमरीका के दोनों प्रमुख दलों में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है। अमरीकी पद्धति में जिस प्रकार एक दल में उग्रवादी और अनुदारवादी हैं, वैसे ही उग्रवादी और अनुदारवादी दूसरे दल में भी हैं। वास्तव में, ब्रिटेन तथा अन्य देशों में राजनीतिक दलों के कुछ राजनीतिक सिद्धान्त होते हैं। ब्रिटेन में बहुत समय तक रूढ़िवादी अथवा अनुदारवादी और उदारवादी दो प्रमुख दल रहे और अब अनुदारवादी तथा समाजवादी या श्रमिक दो दल हैं। इसके विपरीत सं० रा० अमरीका के दोनों दलों में सैद्धान्तिक भेद नहीं हैं।[1] 'राजनीतिक दल', बर्क ने कहा है, 'मनुष्यों का एक निकाय है जो किसी विशिष्ट सिद्धान्त पर जिस पर उनमें सहमति हो, राष्ट्रीय हित को प्रोत्साहन देने के लिए संगठित होता है। यह परिभाषा सत्य से पूर्ण और बहुत ही मान्य है, किन्तु सं० रा० अमरीका के दलों पर लागू नहीं होती। एमरसन ने सत्य ही कहा था : 'साधारणतया, हमारे दल परिस्थितियों के दल हैं सिद्धान्त के नहीं'। अमरीकी दलों के विकास और कार्यक्रम में परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योग रहा है, सिद्धान्त का नहीं। दोनों प्रमुख दलों के बीच मुख्य अन्तर संगठन सम्बन्धी है, सैद्धान्तिक नहीं। सन् १८८८ में **जेम्स ब्राइस** ने लिखा था—'किसी भी दल के कोई सिद्धान्त नहीं हैं, दोनों ही परम्परायें हैं; दोनों ही प्रवृत्तियों का दावा करते हैं; दोनों के युद्ध-घोष और संगठन हैं, उनके समर्थन में हित हैं। दोनों बड़े दल दो बोतलों के समान हैं। प्रत्येक पर लेबिल लगा है, जो इस बात का सूचक है कि उसमें कौन सी शराब भरी थी, किन्तु दोनों ही खाली हैं।[2]

वास्तव में, दोनों ही प्रमुख दल अमरीकी समाज के प्राय: सभी वर्गों और हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतएव उन दोनों के कार्यक्रमों में बहुत कम अन्तर रहता

1. '...The distinguishing mark of political parties in Britain and Europe is that they are parties of principle; that is, they profess the purpose of governing or of opposing government in the name of a general design of values...The absence of firmly defined and broad social purpose, consistently pursued over many decades, is the diagnostic mark of political parties in the United States.'

—*H. Finer*, Theory and Practice of Modern Government, p. 353.

2. 'That the two great parties were like two bottles. Each bore a label denoting the kind of liquor it contained, but each was empty.

—*James Bryce.*

है और सिद्धान्तों पर तो उनमें कोई अन्तर नहीं है। इसी आधार पर फाइनर का यह कथन सत्य है कि वास्तव में सं० रा० अमरीका में एक दल—रिपब्लिकन-डेमोक्रेटिक है, जो आदतों और पदों के लिए संघर्ष से लगभग दो बराबर अर्द्ध-भागों में बंटा है। दल का एक आधा भाग रिपब्लिकन है और दूसरा आधा भाग डेमोक्रेटिक है। एक अमरीकी लेखक के शब्दों में, 'हमारे दोनों दल किसी (सिद्धान्त) का प्रतिनिधित्व नहीं करते, दिखावा मात्र हैं, एक ही फली से निकले समान दाने हैं। अमरीकन सभी डेमोक्रेटिक और सभी रिपब्लिकन हैं।'

तीसरी, **सं० रा० अमरीका के दल समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ओगन** के अनुसार अमरीकन दल विभिन्न वर्गों के बीच समझौते हैं और दलीय नेताओं का काम इस प्रकार के समझौते करना एवं उन्हें कायम करना है।[1] इस काम में सफलता पाना ही दल को सत्तारूढ़ बनाना है। इससे यह भी स्पष्ट है कि दलों का आधार सैद्धान्तिक नहीं है। दल विभिन्न प्रकार के वर्गों से मिलकर बनते हैं—आर्थिक, प्रादेशिक व धार्मिक, आदि। वर्गवाद के एक दो उदाहरण देना उचित होगा। बहुत समय तक सं० रा० अमरीका में आयात व निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर शुल्क लगे या नहीं, यदि 'हाँ' तो कितनी मात्रा में—इस प्रश्न पर वर्ग बने रहे। ऐसे ही वहाँ पर दो महत्वपूर्ण वर्गों का सम्बन्ध उद्योग बनाम कृषि अर्थात् शहर बनाम ग्राम से रहा है। सं० रा० अमरीका में धार्मिक आधार पर रोमन केथोलिकों तथा अन्य ईसाइयों के वर्ग हैं। प्रादेशिक आधार पर उत्तरी राज्यों के वर्ग हैं और रंगभेद के आधार पर नीग्रो जाति का वर्ग गोरों से अभी तक पृथक है। दोनों ही दलों में से कई वर्गों के समर्थक अथवा विभिन्न तत्व पाये जाते हैं और ऐसे वर्ग तथा तत्व भी जिनमें मतभेद होते हैं।

चौथी, **सं० रा० अमरीका के दल सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय नहीं हैं।** जैसा ऊपर बताया जा चुका है, प्रत्येक दल विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है। ये वर्ग आर्थिक, धार्मिक तथा प्रादेशिक होते हैं। दलों की ऐसी रचना होने के कारण उन्हें राष्ट्रीय दल कहना उचित नहीं है। प्रत्येक दल आर्थिक वर्गों के अतिरिक्त प्रादेशिक और स्थानीय वर्गों अथवा हितों का प्रतिनिधित्व करता है। दोनों ही दलों के संगठन में राज्यों और स्थानीय अथवा क्षेत्रीय इकाइयों की प्रधानता है न कि राष्ट्रीय संगठन की। चूंकि निर्वाचन का संचालन और नियन्त्रण मुख्यतः राज्यों के हाथ में है, इसलिये दलों के विकास में राज्यों की इकाइयों का महत्व चला आ रहा है। प्रधानतया दलों का हित राज्यों व स्थानीय क्षेत्रों के निर्वाचित पदों के पाने में है, यद्यपि वे राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति पद के लिए चुनावों में भाग लेते हैं। इस

1. 'Within each party there are many 'wings, or elements which do not always agree with each other on all points but which find more upon which they agree than upon which they disagree so they stay within the party...' —*Comfort et al*, Your Government, p. 239.

प्रकार दलों के सामने अधिकांशतः राज्य, क्षेत्र व स्थान से सम्बन्धित प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण रहते हैं। वास्तव में, अमरीकी दलों का आधार राष्ट्रीय संगठन नहीं है। सं० रा० अमरीका में राष्ट्रीय प्रश्नों का अधिक महत्व नहीं रहा है। जहाँ तक विदेश नीति का सम्बन्ध है दोनों ही दलों की नीति प्रायः समान होती है। एक लेखक के अनुसार अमरीकी दल यह मानते हैं कि उनके बीच आधारभूत प्रश्नों पर सामान्य सहमति है। इस कारण से भी सं० रा० अमरीका में राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों का प्रायः अभाव है।

पाँचवीं, अमरीकी राजनीति और दलीय पद्धति में **दबाव समूहों का बड़ा महत्व** है। एक लेखक के अनुसार तो ये समूह वही कार्य करते हैं जो अन्य देशों में छोटे-छोटे राजनीतिक दल करते हैं। ये प्रभावशाली समूह चुनाव संघर्ष में एक या दूसरे दल का समर्थन करते हैं और उसके बाद विजयी दल पर ऐसा दबाव डालते हैं कि उनसे सम्बन्धित कानून यथासम्भव उनके हितों का ध्यान रख कर बनें। इन्हीं के कारण सं० रा० अमरीका में **लॉबीइंग**[1] की प्रथा अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई है। दबाव समूहों के अपने संगठन हैं. किन्तु ये संगठन स्वयं चुनाव संघर्ष में नहीं आते। ये अप्रत्यक्ष रूप में अपने उम्मीदवारों को खड़ा करते हैं अर्थात् एक या दूसरे प्रमुख दल के उम्मीदवार के रूप में। अप्रत्यक्ष रूप से चुनावों में भाग लेने वाले संगठनों में मुख्य सं० रा० अमरीका का चेम्बर ऑफ कॉमर्स (वाणिज्य संघ), उत्पादकों का राष्ट्रीय संघ, कृषक संघ, स्त्री मतदाताओं की लीग, आदि हैं।

छठी, यद्यपि दलों का संविधान में कोई उल्लेख नहीं है तथापि उनका विकास हो जाने पर उनकी कार्यप्रणाली, आदि के बारे में कॉंग्रेस तथा राज्यों की विधायिकाओं ने बहुत से कानून बनाये हैं। **दलों की परिभाषा राज्य कानूनों द्वारा होती है।** राज्य कानूनों से ही उन्हें मान्यता प्राप्त होती है। कानूनों द्वारा ही प्रारम्भिक चुनाव आदि विनियमित होते हैं। दलों पर प्रभाव डालने वाला प्रथम संघीय कानून १९०७ में पास हुआ था। उसके बाद दलों की सदस्यता, उनके संगठन, उनके कार्यों और उनकी वित्तीय व्यवस्था के बारे में अनेक कानून बने हैं। इस प्रकार दलीय पद्धति को कानूनों में मान्यता प्राप्त है और उनको विनियमित करने में कानूनों का महत्वपूर्ण भाग है।

अन्त में, सं० रा० अमरीका के दलों की इस आधार पर बहुत आलोचना होती है कि उनका स्वरूप वर्गीय है, राष्ट्रीय नहीं तथा उनके कोई स्पष्ट राजनीतिक

1. 'No consideration of Congress in action would be complete without some mention of Lobbyists...... Nearly a thousand well paid persons are regularly employed as lobbyists. Their task is to work (or or agains) legislation in which their groups are interested. They spend millions each year in their activities.'

—*W. A. Mclenaahn, op. cit., p. 163.*

एवं आर्थिक सिद्धान्त नहीं हैं। इसी कारण प्रत्येक दल में विभिन्न विरोधी मत वाले समूह भी पाये जाते हैं। एक लेखक के मतानुसार, दलों की ऐसी रचना के कारण प्रगति धीमी अवश्य रही है; परन्तु साथ ही बड़ी सुगम भी। कॉयल के अनुसार अमरीकी दलों का एक विशेष गुण यह है कि वे अमरीका और लोकतन्त्र के पक्ष के प्रवल समर्थक हैं, वहाँ पर देश के प्रति घात करने वाला कोई दल अर्थात् साम्यवादी दल नहीं है।

दोनों प्रमुख दलों का विकास—स्वतन्त्रता प्राप्ति से भी सं० रा० अमरीका में कुछ समूह और गुट थे, जो दलों से कुछ समानता रखते थे। वे क्रान्ति के समय देश-भक्तों के समूह कहलाये। दलों से मिलते-जुलते गुट, किन्तु जिनका न संगठन था और न राष्ट्रव्यापी आधार ही संविधान की सम्पुष्टि के प्रश्न पर, संघवादी और 'संघ विरोधी' उत्पन्न हुए, परन्तु संविधान में राजनीतिक दलों का कोई उल्लेख नहीं है। वास्तव में संविधान के संस्थापकों के दृष्टिकोण को तो वाशिंगटन ने अभिव्यक्त किया था, जबकि राष्ट्रपति पद के अन्त में उसने दलीय भावना के बुरे परिणामों के विरुद्ध चेतावनी दी थी, किन्तु साधारण और आवश्यक कार्यों में गुटों और दलीय भावना का उदय होना अन्तर्गस्त है, अतएव उनका विनियमन करना शासन का महत्वपूर्ण कार्य होगा। संक्षेप में, आधुनिक दलों की उत्पत्ति वाशिंगटन के दूसरे प्रशासन काल के उपरान्त ही हुई, उस समय इस आधार पर मतभेद उत्पन्न हुआ कि एक ओर वे थे जो सुदृढ़ राष्ट्रीय सरकार स्थापित कर उसके द्वारा वाणिज्य, कारखानों में उत्पादन और बैंकिंग को प्रोत्साहन देना चाहते थे और दूसरी ओर वे जो सुदृढ़ राष्ट्रीय सरकार को अविश्वास की दृष्टि से देखते थे, जिनका विश्वास राज्य सरकारों के शासनतन्त्र में था और जिनका प्रथम हित कृषि में था।

संघवादी और गणतन्त्रवादी—**हेमिल्टन** का विश्वास सुदृढ़ राष्ट्रीय सरकार में था और उसके अनुयायियों ने अपने को संघवादी कहा। दूसरी ओर **जेफरसन** का सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार में अविश्वास था और वह ऐसी सरकार अधिक पसन्द करता था जिसकी शक्तियाँ कम से कम हों। उसके अनुयायी गणतन्त्रवादी कहलाए। संघवादी दल का राष्ट्रीय सरकार पर सन् १७८९ से लेकर सन् १८०१ तक नियन्त्रण रहा, परन्तु सन् १८०० के चुनाव में जेफरसन राष्ट्रपति बना। उसके बाद संघवादी दल में फूट पड़ गई।

डेमोक्रेट और ह्विग—सन् १८२८ में एण्ड्रयू जेकसन राष्ट्रपति बना और उसके आगे यह विचार रहा कि राष्ट्रपति को शासन का वास्तविक नेता होना चाहिए। उसने स्वयं और अपने अनुयायियों को डेमोक्रेट कहा, जिस शब्द का अर्थ उस समय में स्थापित सत्ता के विरुद्ध उग्रवाद और क्रान्ति से लिया जाता था। उसके विरोधियों ने अपने को ह्विग कहा, जो शक्तिशाली शासक (अर्थात् राष्ट्रपति) के विरोधी थे।

रिपब्लिकन और डेमोक्रेट—सन् १८५६ में दास प्रथा के विरोधियों ने, जिन्हें दासता के प्रश्न पर ह्विग दल की असफलता से बड़ी निराशा हुई थी, एक नया दल बनाया जो रिपब्लिकन दल कहलाया। यह उस समय का उदारवादी दल था, क्योंकि डेमोक्रेटिक दल दक्षिणी राज्यों के बागवानों के नेतृत्व में अनुदार बन गया था। वास्तव में, दक्षिणी राज्यों द्वारा पृथक् होने, गृहयुद्ध और उसके उपरान्त पुनर्निर्माण के प्रश्नों का दलीय राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। सं० रा० अमरीका में रिपब्लिकन दल की विजय से दासता का अन्त हुआ। सन् १८८० तक सं० रा० अमरीका की दलीय राजनीति का आधार भौगोलिक बन चुका था। पूर्वगामी दास प्रथा वाले राज्यों से बाहर संघीय तथा राज्यों के चुनावों में रिपब्लिकन दल का प्रभुत्व रहा। सन् १८६० के निर्वाचन में रिपब्लिकन दल प्रथम बार विजयी हुआ और सन् १९१२ तक वह राष्ट्रीय राजनीनि में प्रभुत्वशाली बना रहा, परन्तु सन् १९१२ तक रिपब्लिकन अनुदारवादी हो गए थे, अतएव सन् १९३३ से पूर्व डेमोक्रेटिक दल को राज्य के अधिकारों और आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता (laissez faire) का समर्थक समझा जाता था।

रिपब्लिकनों को राष्ट्रीय शक्तियों में वृद्धि अर्थात् संविधान का उदार निर्वचन कराने वालों का दल माना जाता था, परन्तु सन् १९३३ के बाद से दोनों दलों की नीतियों ने पलटा खाया। डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन दलों की नीतियों को क्रमश: उदारवादी और अनुदारवादी कहा गया है।[1] इसका कारण यह है कि सन् १९३२ से ही डेमोक्रेटिक दल के राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूजवेल्ट ने आर्थिक क्षेत्र में शासन द्वारा हस्तक्षेप की नीति को प्रारम्भ किया। न्यू डील (New Deal) के प्रश्न पर रिपब्लिकन दल के उदारवादी डेमोक्रेटिक दल में आ गए। सन् १९३३ से कम आय वाले नगरों का श्रमिक वर्ग डेमोक्रेटिक दल का समर्थक रहा है और रिपब्लिकन दल को धनी मतदाताओं का अधिक समर्थन मिला है। धार्मिक आधार पर अधिकतर कैथोलिक डेमोक्रेटिक दल और प्रोटेस्टेन्ट रिपब्लिकन दल के समर्थक रहे हैं। सन् १९१२ से लेकर १९६१ तक डेमोक्रेटिक दल के राष्ट्रपति लगभग २१ वर्ष तक रहे हैं और शेष काल में रिपब्लिकन दल के।

दलीय प्रश्न—सं० रा० अमरीका के दलों में जैसा पहले बताया जा चुका है, कोई महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक मतभेद नहीं है, अतएव इनका कोई निश्चित ध्येय और कार्यक्रम नहीं रहा है। वास्तव में प्रजातन्त्र और प्रतिनिधि शासन के बारे में दोनों

1. 'Since 1933 the national Democratic party has been recognised as the party of loose contruction and the Republican party as the party of states' rights and laissez faire.....The Democratic policies in the domestic affairs both before and after 1933, have been called liberal and the Republican policies conservative.'

—*A. M. Potter*, American Government and Politics, p. 125.

का एक ही मत रहा है। दोनों का ही इस प्रकार की शासन पद्धति और देश-प्रेम में विश्वास है। दोनों ही दल देश की समृद्धि और प्रगति को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहे हैं। परन्तु समय-समय पर उनमें कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों पर मतभेद पैदा हुआ है—यथा देश में प्रधानता कृषि की हो या उद्योग की, आन्तरिक सुधार, दास प्रथा, गृह युद्ध के उपरान्त पुनर्निर्माण सम्बन्धी नीतियाँ, आयात-निर्यात महसूल, प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्र संघ की सदस्यता और बेकारों को सीधे संघ सरकार द्वारा अथवा राज्य के प्रशासन द्वारा आर्थिक सहायता आदि।

सन् १६३६ में **रिपब्लिकन दल ने अपने कार्यक्रम में ये बातें सम्मिलित की थीं**—राष्ट्र संघ और विश्व न्यायालय का सदस्य न बनना किन्तु मानवता के विकास हेतु राष्ट्र संघ के साथ सहयोग करना, व्यापारिक क्षेत्र में आन्तरिक उद्योगों की रक्षा राष्ट्र सुरक्षा के लिए काफी सेना रखने पर जोर आदि। उसी वर्ष डेमोक्रेटिक दल ने यह कार्यक्रम अपनाया था—अन्य राष्ट्रों के मामले में न पड़ना, भले पड़ौसी की नीति, अमरीका की रक्षा के लिए सुदृढ़ सेना रखना, अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का पंचों द्वारा निर्णय। कुछ समय से रिपब्लिकन दल का कार्यक्रम यह रहा है—अमरीका के सभी राज्यों के बीच सुदृढ़ संगठन, संयुक्त राज्य संघ का समर्थन, सोवियत संघ के विरुद्ध क्रियाशील पग उठाना, राष्ट्रवादी चीन को अधिक से अधिक सहायता देना, सैनिक तैयारियाँ, श्रमिकों के लिए बीमे तथा सामाजिक बीमे की योजनायें, उत्पादकों व श्रमिकों के हित में आयात-कर नीति, सहकारी उद्योगों पर सहकारी नियन्त्रण का विरोध। **डेमोक्रेटिक दल के कार्यक्रम में ये बातें सम्मिलित रही हैं**—निजी उद्योगों का समर्थन, राज्यों में जाति-भेद का अन्त, सार्वजनिक कल्याण हेतु सरकार का उत्तरदायित्व, संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन, साम्यवाद के समर्थकों को सरकारी पदों से हटाना, सोवियत संघ को प्रसन्न करने की नीति का विरोध, उत्तरी एटलांटिक सन्धि का समर्थन, यूरोपीय देशों तथा अन्य पिछड़े हुए प्रजातन्त्रों को आर्थिक सहायता।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दोनों ही दल साम्यवाद के विरोधी व संयुक्त राष्ट्र संघ के समर्थक हैं। वास्तव में वैदेशिक मामलों में दोनों की नीति एक समान (Bi partisan) है। आन्तरिक क्षेत्र में भी उनकी नीतियों में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है। दोनों ही दल हवाई और अलास्का को राज्य-पद दिलाने के पक्ष में रहे। दोनों ही दल कम आय वालों के लिए गृह-निर्माण व शिक्षा सहायता देने का समर्थन करते हैं; दोनों ही दल सुदृढ़ सेना रखने और संयुक्त राष्ट्र संघ को सहयोग देने का समर्थन करते हैं; और दोनों ही दल कृषि उत्पादन में सहायता देने में विश्वास करते हैं, जिससे कि खेतों की पैदावार का मूल्य निर्धारित सीमा से नीचे न गिरे। फिर भी दोनों के कार्यक्रम में अन्तर रहा है।

डेमोक्रेटिक दल ने आन्तरिक तथा विदेशी मामलों में नए निर्णय किए। उसने राष्ट्र संघ का प्रस्ताव रक्खा और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना में भाग लिया।

इसने सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रम को स्थापित तथा विकसित किया, टेनेसी वेली ऑथोरिटी एवं श्रमिक-प्रबन्धक सम्बन्धों के बारे में आधारभूत कानून बनाए। इसके विपरीत रिपब्लिकन दल परिवर्तन तथा नई बातों को स्वीकार करने में धीमा रहा है। यह नई बातों को सन्देह की दृष्टि से देखता रहा है और अनिश्चित बातों के प्रति इससे भय प्रकट किया है।

प्रश्न

१. सं० रा० अमरीका में राज्यों के शासन का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
२. सं० रा० अमरीका में स्थानीय शासन के विभिन्न रूपों का परिचय दीजिए।
३. सं० रा० अमरीका में स्थानीय शासन के संगठन और महत्व का विवेचन कीजिए।
४. सं० रा० अमरीका की दलीय पद्धति की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
५. सं० रा० अमरीका के दोनों प्रमुख दलों के बारे में आप क्या जानते हैं ?

सोवियत संघ
की
शासन पद्धति

(THE CONSTITUTION OF U. S. S. R.)

१. परिचयात्मक

१. देश और निवासी

देश—सोवियत संघ (Union of Soviet Socialist Republics—USSR) विश्व का सबसे बड़ा देश है, जिसमें पूर्वी यूरोप और उत्तरी व केन्द्रीय एशिया के भाग सम्मिलित हैं। इसका कुल क्षेत्रफल २·२४ करोड़ वर्ग किलोमीटर है। आकार में सोवियत संघ संयुक्त राज्य अमेरिका से तीन गुना और भारत से सात गुना है। इसमें १५ संघीय गणतन्त्र (Union Republics) हैं और उनके भीतर विभिन्न प्रकार के भूमिगत विभाग हैं। इसकी उत्तरी सीमा पर आर्कटिक महासागर है; जिसके निकटवर्ती बड़े भाग में सदैव बर्फ जमी रहती है। इसके अधिकांश भाग की जलवायु समशीतोष्ण है। प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से यह एक धनी देश है। 'आज सोवियत संघ एक अति औद्योगिकृत राष्ट्र है। उद्योग, वाणिज्य, परिवहन, शक्ति के विकास, खनिज, विज्ञान और तकनीकी में उसके आर्थिक प्रयत्न इतने बड़े पैमाने पर हुए हैं कि उनके समान दूसरा उदाहरण विश्व में नहीं मिलता।'[1]

देश के यूरोप व एशिया में स्थित भागों को यूराल पर्वत (Ural mountain) ने एक दूसरे से अलग किया है। इसकी बड़ी नदियाँ वोल्गा व नीपर (Dnieper) हैं; नीपर बाल्टिक सागर से काले सागर (Black Sea) तक बहती है और परिवहन का एक महत्वपूर्ण साधन है। यद्यपि देश में बड़ी प्राकृतिक बाधायें नहीं हैं, फिर भी उसे पश्चिम से पूर्व की ओर को चार बड़े भागों में बाँटा जा सकता है—(१) बर्फ से जमा हुआ उत्तरी टुण्ड्रा प्रदेश; (२) उसके नीचे का वन प्रदेश; (३) बड़े मैदान (the Steppes); और (४) दक्षिण के अर्ध-रेगिस्तानी व रेगिस्तानी भाग।

सोवियत संघ में ५ लाख किलोमीटर से अधिक लम्बे जलमार्ग हैं, जिनमें से लगभग १/३ में भारी आवागमन रहता है। देश के उत्तर-पश्चिमी और दक्षिण-पूर्वी यूरोपीय प्रदेश में लगभग २·७० लाख झीलें हैं। उसमें विश्व के १/५ वन हैं, जो लगभग १/३ भाग में फैले हैं। प्राकृतिक साधनों में यहाँ विश्व के सबसे बड़े कोयले, कच्चे लोहे, मैंगनीज, प्राकृतिक गैस, निकल, कोबाल्ट आदि के भण्डार हैं। यहाँ धातुओं के अतिरिक्त अन्य खनिज भी बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। -

निवासी—यह विश्व के सबसे घने बसे देशों में तीसरे स्थान पर है; प्रथम और दूसरे स्थानों पर चीन व भारत हैं। जनवरी, सन् १६७० में इसकी कुल

1. *H. Finer* : The Major Governments of Modern Europe, p. 551.

जनसंख्या २४ करोड़ से अधिक थी। परन्तु इसकी जनसंख्या में एकरसता (homogeneity) का अभाव था; क्योंकि देश में लगभग २०० जातीय समूहों के निवासी रहते हैं और वे लगभग १५० भाषाओं का प्रयोग करते हैं। इनमें सबसे बड़ी संख्या स्लेव (Slav) जाति की है और उनमें भी रूसी सबसे अधिक हैं। जार बादशाहों के अन्तर्गत रूसी साम्राज्य में राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों (national minorities) का दमन किया जाता था और उन्हें रूसी बनाने अर्थात् उनकी भाषाओं, संस्कृतियों व धार्मिक विश्वासों को नष्ट करने की नीति का पालन किया जाता था। परन्तु मार्क्सवाद के अनुसार श्रमिकों का कोई पितृदेश नहीं है; अतः अब सभी जातियों (राष्ट्रों व उप-राष्ट्रों) के बीच एकरसता का विकास हो रहा है।

अब देश के संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रीय भाषाओं, संस्कृतियों और धार्मिक विश्वासों को उचित स्थान व मान्यता प्रदान की गई है और सरकार ने उनके विकास हेतु सभी उचित कार्य किये हैं। अब सरकारी नारा है : 'संस्कृति का रूप तो राष्ट्रीय हो किन्तु उसका सार समाजवादी रहे' (Culture should be national in form and socialist in content)। सोवियत संघ एक धर्म-निरपेक्षीय (secular) राज्य है और उसके निवासियों को धार्मिक विश्वास रखने की स्वतन्त्रता है। इस समय देश भर में २० हजार से अधिक ईसाई, बौद्ध व मुसलमानों के धार्मिक स्थानों का रजिस्ट्रीकरण है। परन्तु लगभग पिछले ६० वर्ष से चर्च का राज्य के मामलों में कोई हाथ नहीं है। धार्मिक केन्द्रों को धार्मिक रचनाओं, प्रार्थना-पुस्तकों, पत्रिकाओं, कलेण्डरों आदि को प्रकाशित करने की सुविधा दी जाती है।

अक्तूबर, सन् १९१७ की क्रांति से पूर्व, रूस की बड़ी बहुसंख्या रूसी कट्टर चर्च (Russian orthodox church) की अनुयायी थी; और अन्य सम्प्रदायों के सदस्यों को जारशाही के अधिकारी उन्हें रूसी बनाने की नीति के अनुसार सताते थे। परन्तु मार्क्स और लैनिन के सिद्धान्तों के अनुसार तो धर्म एक धोखा (illusion) है, जो मनुष्यों के अज्ञान से जन्मा है और उनका शोषण करने वाले उन्हें वर्तमान अवस्था में ही रखना चाहते थे। अतएव सोवियत शासन ने नास्तिकवाद का प्रचार करके उनके धार्मिक भावों का विलोपन करने का प्रयत्न किया। सन् १९३६ के संविधान की धारा १२४ के अनुसार चर्च को राज्य से पृथक् किया गया और शिक्षालयों को चर्च से, जिससे कि धार्मिक विश्वास (freedom of conscience) की स्वतन्त्रता सभी को प्राप्त हो जाये। सभी नागरिकों को धार्मिक पूजा की स्वतन्त्रता है। साथ में वे धर्म के विरुद्ध प्रचार भी स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकते हैं।

पिछली ६ दशाब्दियों में सोवियत समाज की संरचना में बहुत बड़े परिवर्तन हुए हैं। सन् १९२४ से पूर्व हुए हिंसापूर्ण परिवर्तनों के परिणामस्वरूप तत्कालीन वर्ग-संरचना

का नाश हुआ। यह प्रक्रिया तीन कारणों से आगे बढ़ी—(१) शक्ति प्राप्त विशिष्ट जनों (power elite) के लक्ष्य; (२) नये संस्थागत रूप और (३) क्रांति के बाद अस्तित्व में आई शक्तियाँ। खेती के समूहीकरण (collectivesation) और भारी उद्योगों पर दिये गये असाधारण बल ने इस प्रक्रिया को और आगे बढ़ाया। निम्न-लिखित तालिका में सोवियत संघ की जनसंख्या की वर्गीय रचना के परिवर्तनशील नमूने को देखा जा सकता है—

कुल जनसंख्या	१९३३	१९५५
	१००·०	१००·०
उद्योगों, कार्यालयों व अन्य व्यवसायों में लगी संख्या	१७·०	५८·३
सामूहिक फार्मों और दस्तकारों की सहकारी समितियों के सदस्य	—	४१·२
व्यक्तिगत किसान और दस्तकार	६६·७	०·५
जमींदार, कुलक और व्यापारी	१६·३	—

परन्तु कुछ आलोचकों का कथन है : 'सोवियत संघ के साम्यवादी दल के वर्णित ध्येयों में से एक वर्गविहीन समाज (classless society) का विकास है। फिर भी, इस बारे में बावजूद सरकारी घोषणाओं के, सोवियत संघ में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने वाली वर्ग पद्धति का विकास हुआ है। सोवियत सामाजिक संरचना की चोटी पर वे लोग हैं जिनके हाथों में सारी शक्ति और अधिकांश विशेषाधिकार हैं—वे हैं साम्यवादी दल के सदस्य। वर्ग पैमाने के धरातल पर वे लोग हैं जिन्हें सुधार श्रम शिविरों में काम करने के लिए दण्ड रूप में विवश किया जाता है।'[2] इस कथन में सत्य का अंश है; परन्तु धन और आर्थिक शक्ति पर आधारित परम्परागत सामाजिक वर्गों के विभाजन का प्रायः अन्त हो गया है। इसके अतिरिक्त दो अन्य बातें उल्लेखनीय हैं—(१) स्त्रियों की स्थिति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है; और अब वे पुरुषों के समान अधिकारों का उपभोग करती हैं तथा आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हैं। (२) सोवियत जनता ने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं।

रूसी राष्ट्रीय चरित्र के बारे में एस्पेचूरियन ने लिखा है : 'बोलेशेविकों का एक घोषित लक्ष्य रूस की जनता में देश की सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था का पुनर्गठन कर उग्र परिवर्तन लाना था। परन्तु अभी तक क्रांति से पूर्व के रूस की अनेक विशेषतायें समकालीन रूसी समाज में पाई जाती हैं। वास्तव में, रूसी संस्कृति को सोवियत पद्धति के भीतर लगभग १० करोड़ गैर-रूसियों तक विस्तृत किया गया है

2. *Belikema et al.* : Contemporary Foreign Governments, pp. 281–88.

(जो साम्यवाद के सिद्धान्तों के विरुद्ध है) ।[3] एक दूसरे लेखक के अनुसार, 'आधुनिक सोवियत शासन की अनेक विशेषतायें तो पुरानी जारशाही सरकार के ही वर्तमान रूप हैं। केन्द्रीकरण की उच्च मात्रा, अधिकारीतन्त्र का फैलाव, उद्योग पर नियन्त्रण, गुप्त पुलिस, सरकारी सेन्सरशिप आदि पुरानी व नई सरकारों की विशेषतायें हैं।'[4]

२. अक्तूबर, सन् १९१७ की क्रांति तक संक्षिप्त राजनीतिक इतिहास

जारकालीन रूस की राजनीतिक पद्धति की मुख्य विशेषता अप्रतिबन्धित स्वेच्छाचारी शासन (unrestsained despotism) था, जो बहुधा पाशविक दमन व सैनिक कानून का रूप धारण किया करता था। जार राजाओं को प्रशासन में सहायता देने वाले प्रमुख अंग ये थे—चांसलरी, शासक सीनेट और स्टेट कौंसिल। सन् १८१२ में बनाई गई वैयक्तिक चांसलरी में कई विभाग थे, उनमें से एक गुप्त पुलिस का था। सीनेट सम्पूर्ण केन्द्रीय प्रशासन की देखरेख करती थी, किन्तु व्यवहार में यह अपील के उच्च न्यायालय से कुछ अधिक न थी। स्टेट कौंसिल उससे अधिक महत्व की थी; यहीं जार की स्वीकृति के लिए विधायन व बजट को तैयार करती थी।

एलेक्जेण्डर द्वितीय ने, जिसे 'सुधारक जार' (reforming Tsar) कहा गया, सन् १८६४ में जिले व प्रान्तीय स्तरों पर स्थानीय शासन की वृहत योजना (Zemstovs) स्थापित की थी। इन निकायों के सदस्यों का चुनाव ३ वर्ष के लिए होता था और वे निर्वाचित सदस्यों मे से ही स्थायी शासक मण्डलियों को चुनते थे। विभिन्न जिला निकाय ६० से लेकर १०० सदस्यों तक के प्रान्तीय निकाय चुनते थे। परन्तु १७वीं शताब्दी के मध्य तक विभिन्न सामन्ती वर्गों का विकास हो चुका था, वे थे—चर्च अधिकारी, सैनिक-सरदार, व्यापारी और किसान। इन सबमें सामन्ती सरदार (nobility) सबसे ऊपर और ताज के ठीक नीचे थे, जिनमें शाही परिवार के सदस्य, सैनिक अधिकारी, धनी जमींदार और उच्च अधिकारी सम्मिलित थे। जार राजाओं के अन्तर्गत रूसी चर्च शासन कोअपना समर्थन देता था और चर्च शासकों के सहयोग से साम्राज्यीय पद्धति (imperial system) पर प्रत्यक्ष व बहुधा भारी प्रभाव डालता था। जारशाही के पतन के लिए उत्तरदायी एक अन्य कारक शासन के प्रति किसानों की कटुता थी। सन् १६४९ में दास प्रथा ने एक औपचारिक रूप पा लिया था। दास प्रथा के अन्तर्गत दासों के श्रम के बदले में स्वामी उन्हें दुष्काल में खाना देते थे और फसल खराब हो जाने पर बीजादि देते थे। परन्तु स्वामियों को दासों की सम्पत्ति छीनने, उनकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाने, उनका विवाह कराने का आदेश देने अथवा विवाह न होने देने, किसान को

3. *Macridis and Ward (eds.)* : Modern Political Systems Europe, pp. 480-81.
4. *Richard C. Gripp* : Patterns of Soviet Politics, p. 7.

दूसरे जमींदार को बेचने और उन पर सामान्य न्यायिक नियन्त्रण के अधिकार प्राप्त थे। इस संस्था को सन् १८६१ में उन्मूलित किया गया। १९वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों तक रूसी उद्योग बहुत पिछड़े हुए रहे। सन् १८६१ तक तो अनेक उद्योग दासों के श्रम पर आधारित थे; परन्तु उस प्रथा का अन्त हो जाने पर उद्योगों का कुछ तेजी से विकास हुआ, जिसके विकास में सरकार की नीति ने भी कुछ योग दिया।

चर्चवार्ड के मतानुसार, '१९वीं शताब्दी के रूस के राजनीतिक इतिहास को परम्परागत दृष्टि से सुधार और प्रतिगामी पगों के अदलते-बदलते चरणों के रूप में समझा जाता है। परन्तु यह कहना अधिक उचित होगा कि जार शासक अपने निरंकुश शासन को तथा जमींदार अपने सामाजिक व राजनीतिक प्राधान्य को बनाये रखने के प्रयत्नों में लगे थे। कभी-कभी शासकों की उदारता व किसानों के विद्रोहों के भय से शासन में उदारवादी रुख को भी अपनाया गया।'[5] पिछली शताब्दी में चले रूस के क्रांतिकारी आन्दोलन को तीन काल-खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम, सन् १८२५ से १८६१ तक—इसमें उच्च कुलों के कुछ व्यक्तियों ने भाग लिया। दूसरा, सन् १८६१ से १८९५ तक—इसमें बुद्धिजीवियों अथवा धनी प्रजातन्त्रवादियों ने महत्वपूर्ण भाग लिया। तीसरा, सन् १८९५ के बाद जिसमें प्रमुख भाग किसानों व मजदूरों (proletariat) का रहा।

पिछली शताब्दी के अन्त से पूर्व ही छुपकर काम करने वाले मार्क्सवादियों का राजनीतिक आन्दोलन तेजी से चला। रूसी साम्राज्य के औद्योगिक कस्बों व सभी मुख्य जिलों में मार्क्सवादी केन्द्र व समितियाँ बनीं तथा हड़तालों की गतिविधियों में भी वृद्धि हुई। दमनकारी व स्वेच्छाचारी जारशाही पर प्रथम खुले आक्रमण सन् १९०४ में हुए; ये आक्रमण समाज के उन वर्गों की ओर से किये गये जिनसे भविष्य में उदारवादी दलों का विकास हुआ। ये थे स्थानीय स्वशासन के अंग और व्यावसायिक वर्ग। उन्हें पूँजीवादी (bourgeois) वर्ग नहीं कहा जा सकता था; वास्तव में रूस में ऐसे वर्ग का उस समय तक उद्भव ही न हुआ था। जनवरी, सन् १९०५ में सम्पूर्ण देश को धक्का लगा जबकि एक प्रदर्शनकारी निःशस्त्र भीड़ पर गोली वर्षा की गई और बहुत से व्यक्ति मारे गये। उसी वर्ष जापान के विरुद्ध हुए युद्ध में रूस की पराजय ने एक प्रकार के चुपचाप विद्रोह को बढ़ावा दिया। सारे वर्ष अशान्ति बढ़ी, परन्तु वह असंगठित रही। वर्ष के अन्त में समाजवादी अस्तित्व में आये। परन्तु उनके दोनों ही समूह (Social Democrats and Socialist Revolutionaries) एक प्रभावी क्रान्ति लाने के हेतु अक्षम सिद्ध हुए।

5. *L. G. Churchward* : Contemporary Soviet Government, p. 25.

उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि उन्होंने अक्तूबर में सम्राट से एक घोषणापत्र निकलवाया, जिसमें पूर्ण नागरिक स्वतन्त्रता व एक विधायिका (State Duma) के वायदे किये गये थे। ड्यूमा का चुनाव व्यापक मताधिकार पर होना था, और उसे विस्तृत विधायी शक्तियाँ सौंपी जानी थीं। सन् १९०६ में बने निर्वाचन कानून द्वारा २५ वर्ष की आयु से अधिक के ऐसे पुरुषों को जो कर देते थे, मताधिकार प्रदान किया गया। प्रथम ड्यूमा के लिए चुने गये ४७८ प्रतिनिधियों में किसानों को आधे से कम स्थान मिले थे, और बहुमत उदारवादियों को मिला था। अतएव ड्यूमा ने ऐसे कार्य किये जिन्हें सरकार ने पसन्द न किया, यथा मताधिकार का विस्तार, राजनीतिक बन्दियों को क्षमादान, बड़ी जमींदारियों का विभाजन, प्रशासनिक मामलों में सुधार और सरकार के ऊपरी सदन (State Council) का अन्त।

प्रथम ड्यूमा की राजनीतिक रचना पर नियन्त्रण न पा सकने के कारण सरकार ने परिश्रम के साथ दूसरी ड्यूमा के लिए तैयारी की। चुनाव अभियान के दौरान वामपंथी दलों को अवैध घोषित किया गया और विरोधी समूहों को डराने के लिए अन्य पग उठाये गये। परन्तु दूसरी ड्यूमा भी सरकार विरोधी बनी और मार्च से जून सन् १९०७ तक वह भी अप्रभावी और अस्थायी रही। उसके बाद उसे जार ने विघटित कर दिया। तीसरी ड्यूमा के लिए हुए चुनावों में सरकार की ओर से और भी अधिक बेईमानी की गई; और सन् (१९०७–१२) के बीच बनी तीसरी ड्यूमा सरकार को अधिक पसन्द आई। उसने अपने काल में कुछ कार्य करने में सफलता पाई।

प्रथम विश्व युद्ध (The Great War) के आरम्भ होने पर रूस के दोनों सामाजिक प्रजातन्त्रात्मक समूहों (Bolshevik and Menshevik) ने युद्ध ऋणों के विरोध में मतदान किया। परन्तु रूसी आन्दोलन समग्रत: असंगठित रहा; बोल्शेविकों ने युद्ध का अत्यन्त उग्र विरोध किया, यद्यपि मेन्शेविकों ने भी उसका विरोध किया। युद्ध के सामान्य विरोध के कारण दोनों दलों के बीच आपसी सम्पर्क बढ़ा। महा युद्ध (Great War) के दौरान रूस साथी देशों (Allies) में से एक था, जो कि यूरोप की केन्द्रीय शक्तियों के विरुद्ध लड़ रहे थे। परन्तु रूस बहुत दिनों तक युद्ध न कर सका, क्योंकि जनता ने स्वेच्छाचारी शासन का समर्थन न किया। शासन को प्रजातंत्रात्मक रूप देने के लिये मांगें बढ़ीं, किन्तु जार ने उन्हें बार-बार अस्वीकार किया। परिणामत: उदारवादी व्यक्ति भी सरकार की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध उठ खड़े हुए। जार ने नासमझी पूर्ण आदेश जारी किये; उसने प्रतिनिधियों (deputies) को अपने घरों को जाने और श्रमिकों को पीट्रोग्रेड (राजधानी) में हड़ताल समाप्त करने को कहा। ऐसे कार्यों ने सन् १९१७ की क्रान्ति को निकट लाने का कार्य किया। ड्यूमा ने जार का कड़ा विरोध किया, जिसके परिणामस्वरूप

निकोलस द्वितीय ने मार्च सन् १६१७ में गद्दी छोड़ दी और एक अस्थायी सरकार बनी।

परन्तु अस्थायी सरकार (Provisional Government) ने समाज के अधिक अनुदारवादी नेताओं का समर्थन किया और युद्ध में भाग लेना जारी रखा। फिर भी सरकार और प्रमुख दलों के बीच हुए एक संविदा (contract) के अनुसार राज्य की सत्ता तो सरकार के हाथों में रही और सोवियत (Soviet) राजधानी की क्रान्तिकारी शक्तियों (श्रमिक, किसान और सैनिक) की प्रवक्ता बनी। सरकार के आदेशों का पालन उसकी सहमति के बाद ही होता था। देखने में नई सरकार का स्थिति पर नियन्त्रण था, परन्तु उसमें अनेक कमियाँ थीं।

फिर भी, मई सन् १६१७ में सरकार व सोवियत के बीच एक काम-चलाऊ समझौता हुआ; सोवियत ने उसके द्वारा निर्धारित विदेश व आन्तरिक नीतियों पर सरकार द्वारा चलने के बदले में सरकार को समर्थन देना जारी रखा। परन्तु अक्तूबर में ही अस्थायी सरकार टूट गई, जबकि बोल्शेविकों (Bolsheviks) ने उसे एक गम्भीर व नियोजित आक्रमण द्वारा चुनौती दी। वास्तव में सितम्बर में ही ऐसी स्थिति पैदा हो गई थी कि समाजवादी प्रधानमंत्री (A. F. Kerensky) को दो विकल्पों में से एक को चुनना पड़ा—सत्ता सैनिक तानाशाही को सौंपना या वामपंथी शक्तियों को। उसने वामपंथी शक्तियों को ही सत्ता सौंपना पसन्द किया। अक्तूबर के अन्त में बोल्शेविकों ने, जिन्होंने पीट्रोग्रेड की [illegible]ग्रत पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया था, अपने अनुयायियों को [illegible] दिया कि वे सीधी कार्यवाही द्वारा सरकारी भवनों, रेलवे स्टेशनों, [illegible]घरों आदि पर अधिकार करलें और अस्थायी सरकार के सदस्यों को वन्दी बना [illegible]यह कार्य २६ अक्तूबर को किया गया और उस क्रान्ति के परिणामस्वरूप [illegible] बोल्शेविकों के हाथों में आई। उसके बाद रूस की सभी सोवियतों [illegible]सरी कांग्रेस बुलाई गई और बोल्शेविकों ने उसे शासन सत्ता धारण करने [illegible]लए आमन्त्रित किया। चूँकि कांग्रेस पर बोल्शेविकों का नियन्त्रण स्थापित [illegible]या था, इसलिए मेन्शेविकों (अल्पसंख्यकों) और सामाजिक क्रान्तिकारियों ने [illegible]त को छोड़ दिया। कांग्रेस ने दो आदेश निकाले : (१) तुरन्त शान्ति स्थापित [illegible]और (२) भूमि पर किसानों का स्वामित्व कायम हो। उसने जन कमिसारों [illegible]एक कौंसिल (Council of People's Commissars) के निर्माण पर भी [illegible]ति दी, जिसमें सभी सदस्य बोल्शेविक थे। इस प्रकार बोल्शेविकों के अन्तर्गत [illegible]की नई सरकार ७ नवम्बर सन् १६१७ को स्थापित हुई।

३. संवैधानिक विकास—सन् १६३६ तक

सन् १६१८ का संविधान—प्रथम संविधान सभा के लिए नवम्बर के अन्त से [illegible]ही चुनाव हुए और जनवरी में उसका अधिवेशन शुरू हुआ। १० जुलाई, १६१८ को सोवियतों की अखिल रूसी पाँचवीं कांग्रेस ने प्रथम संविधान को

अंगीकार किया। उसके अन्तर्गत रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी गणतन्त्र (Russian Soviet Federal Socialist Republic) का निर्माण हुआ और स्थानीय शासन की शक्तियाँ स्थानीय सोवियतों को सौंपी गईं। संविधान में नये शासन के उद्देश्यों को सविस्तार वर्णित किया गया। सर्वोच्च विधायिका सोवियतों की कांग्रेस (All Russian Congress of Soviets) को बनाया गया; उसकी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति (All Russian Central Executive Committee) को कांग्रेस के अधिवेशनों के बीच के काल में सर्वोच्च सत्ता सौंपी गई; और जन कमिसारों की कौंसिल (Council of Peoplies Commissars) को सार्वजनिक मामलों पर 'सामान्य निदेशन' का कार्य सौंपा गया।

यह संविधान एक नये नमूने का था; विश्व के तत्कालीन अन्य सभी संविधानों से यह भिन्न था। उसने ही पहली बार कार्ल मार्क्स के समाजवादी सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप दिया; और उसका उद्देश्य पूँजीवाद को पूर्णतया दबा देना था। उसने रूसी संघ को श्रमिकों, सैनिकों व किसानों का गणतन्त्र घोषित किया। क्रान्ति के बाद मार्च सन् १६१६ में दल द्वारा स्वीकृत कार्यक्रम में राष्ट्रीय स्वभाग्य निर्धारण (National selfdetermination) के सिद्धान्त को पुनः दोहराया गया; और उसमें यह भी प्रस्तावित किया गया कि सोवियत नमूने पर संगठित राज्यों का एक संघ बनाया जाय। सन् १६२२ तक उन राज्यों का फिर से एकीकरण हो गया जो रूसी साम्राज्य के अंग थे और दिसम्बर सन् १६२२ में संघ निर्माण की योजना को सोवियतों की दसवीं कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। ३ दिन बाद ही संघ में सम्मिलित होने वाले राज्यों के साम्यवादी प्रतिनिधियों ने संघ योजना पर अपनी स्वीकृति दे दी और ६ जुलाई सन् १६२३ को केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति (All Central Executive Committee) ने भी उसे स्वीकार कर लिया; जिसकी पुष्टि सम्पूर्ण संघ की दूसरी सोवियत कांग्रेस (Second All Union Congress of Soviets) ने ३१ जनवरी सन् १६२४ को की। इस संविधान ने विभिन्न संवैधानिक प्रदेशों अथवा आज्ञप्तियों (Constitutional decrees) के स्थान पर केवल एक आलेख ही नहीं दिया, वरन् पृथक संवैधानिक नियमों को एकरस और व्यवस्थित पद्धति में एकत्रित किया। साथ ही कुछ संवैधानिक सिद्धान्तों को अधिक स्पष्ट और विस्तृत रूप में निर्धारित किया। संविधान में ६ विभाग (sections) थे, जिनके शीर्षक ये थे : (१) श्रमिक व शोषित जनों के अधिकारों की घोषणा-प्रस्तावना; (२) संविधान के सामान्य प्राविधान; (३) सोवियत शक्ति का सविधान (गठन); (४) सक्रिय और निष्क्रिय मताधिकार; (५) बजट कानून; और (६) रूसी सोवियत संघ के समाजवादी गणतन्त्र (RSFSR) के राज्य चिन्ह और झण्डा।

सन् १६२४ का संविधान—इसमें संघ की शक्तियों का, जो कि काफी विस्तृत थी; परिगणन किया गया। नई सर्वोच्च विधायिका (The Congress of Soviets

of the Union of Soviet Socialist Republics) और उसकी केन्द्रीय कार्यकारिणी (Central Executive Committee of the Congress of Soviets), जिसे कांग्रेस के सत्रों (sessions) के बीच के काल में विधायी शक्तियों के प्रयोग का अधिकार दिया गया था, पूर्व की भाँति निर्वाचित निकाय रहे। संक्षेप में संघ की विधायिका (Union Congress of Soviets) में जनता के ४,००० निर्वाचित प्रतिनिधि थे; उसका वर्ष में केवल एक ही सत्र होता था। इसलिए कांग्रेस प्रतिवर्ष एक संघीय केन्द्रीय कार्यकारिणी (Union Central Executive Committee) नियुक्त करती थी, जा उसकी अनुपस्थिति में विधायी शक्तियों का प्रयोग करती थी। इस निकाय के लगभग ४०० सदस्य थे और यह प्रत्येक तिमाही में एक बार एकत्रित होती थी। इस समिति के भी दो चेम्बर थे—सोवियत ऑफ नेशनलीटीज और सोवियत आफ दी यूनियन (Soviet of Nationalities and Soviet of the Union)। इनके अतिरिक्त एक २१ सदस्यीय प्रेसीडियम (Presidium) भी थी। यह उन दिनों विधायी कार्य करती थी, जबकि केन्द्रीय समिति की बैठकें न होती थीं। जन कमिसारों की कौंसिल (The Council of People's Commissars) में १७ सदस्य थे और यह कार्यपालिका थी तथा मंत्रि-परिषद् की भाँति कार्य करती थी।

यह संविधान पूर्वगामी संविधान से कइ बातों में भिन्न था। इसमें सोवियत संघ के निर्माण की घोषणा व रचना सम्वन्धी संधि को सम्मिलित किया गया था। बहुराष्ट्रीय राज्य के विकास से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति को घोषणा में वर्णित सच्चे लेनिनवादी सिद्धान्तों के आधार पर परिगणित किया गया। संघ के ऐच्छिक स्वरूप, सभी तत्कालीन व भावी समाजवादी गणतन्त्रों के उसमें स्वैच्छिक प्रवेश तथा संघ से सम्बन्ध विच्छेद करने के अधिकार पर घोषणा में बल दिया गया था। संधि में ही संवैधानिक नियम दिये हुए थे। सविधान का मुख्य सार नये संघ के मूल सिद्धान्तों की स्थापना थी।

संविधान में दल का कोई उल्लेख न था; परन्तु केन्द्रीकृत दल का राजकीय तन्त्र पर नियन्त्रण काफी बढ़ा हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप घटक राज्यों की स्वायत्तता बहुत सीमित हो गई थी। सन् १९२१ में लेनिन द्वारा सुझाई गई नई आर्थिक नीति (New Economic Policy) में किसानों के लिए अनेक रियायतों की व्यवस्था थी; परन्तु वह उसके परिणामों को स्वयं न देख सका, क्योंकि २१ जनवरी सन् १९२४ को उसकी मृत्यु हो गई। उसी समय से स्टालिन (Stalin), दल के केन्द्रीय सचिवालय पर अपने नियन्त्रण के द्वारा, दल में अपनी स्थिति अति सुदृढ़ बनाने में लगा हुआ था; परन्तु उसका सबसे गम्भीर प्रतिद्वन्द्वी ट्रॉटस्की (Trotsky) था, जिसे कुछ लोग लेनिन का उत्तराधिकारी समझते थे। अत: स्टालिन ने ट्रॉटस्की को अपनी चोटों का निशाना बनाया। सन् १९२७ के अन्त तक ट्रॉटस्की और उसके साथियों की हार हुई और उन्हें देश से निष्कासित कर दिया गया।

उसके बाद स्टालिन ने देश में तीव्र औद्योगीकरण की शुरूआत की, जिसमें पूँजी का जबरन छीना जाना व किसानों से आवश्यक श्रम का लिया जाना सम्मिलित थे।

४. १९३६ का संविधान

निर्माण—साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति के प्लीनम (Plenum of the Party Central Executive) ने फरवरी सन् १९३५ में मोलोटोव को सोवियत संघ की सोवियतों की ७वीं कांग्रेस के सामने उपस्थित होने तथा संविधान में (१) निर्वाचन पद्धति को और अधिक प्रजातन्त्रात्मक बनाने और (२) संविधान के सामाजिक व आर्थिक आधार को अधिक स्पष्ट रूप से पारिभाषित करने के उद्देश्य से परिवर्तनों के सुझाव देने का आदेश दिया। मोलोटोव के प्रस्तावों को कांग्रेस ने ६ फरवरी को स्वीकार कर लिया और स्टालिन की अध्यक्षता में संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए एक आयोग नियुक्त किया। स्टालिन ने प्रारूप को तैयार करके केन्द्रीय समिति की प्लीनम के सम्मुख १ जून सन् १९३६ को रखा। उस पर जनता के वाद-विवाद हेतु उसे प्रकाशित किया गया और उसकी पुष्टि करने के हेतु सोवियतों की काँग्रेस बुलाई गई। प्रारूप के बारे में एक लाख से भी ऊपर सुझाव व संशोधन आये, जिनमें से केवल ४३ को स्वीकृत किया गया।

अपनी रिपोर्ट में स्टालिन ने कहा था : 'संविधान में, जो कि कार्यक्रम से भिन्न होता है, जो उपलब्धियाँ पहले ही हो चुकी हैं और जो बातें तथ्य में जीती जा चुकी हैं, उनका रजिस्ट्रीकरण और विधायी समावेश होना चाहिए। इस प्रकार सन् १९३६ के संविधान में उन परिवर्तनों को परिलक्षित और रिकार्ड करना था जो कि देश की सामाजिक और आर्थिक संरचना में सन् १९२४ के बाद हो चुके थे। उसने यह भी कहा कि शोषण का अन्त हो जाने के फलस्वरूप श्रमिक वर्ग को सर्वहारा वर्ग (proletariat) कहना उचित न रह गया था। उसका अधिनायक तन्त्र दूसरी मंजिल—समाजवाद में प्रवेश कर चुका था, जिसे उसने साम्यवाद की पहली मंजिल भी कहा। अस्तु, नये संविधान में श्रमिक वर्ग के प्रजातन्त्र के लिए व्यवस्था की गई थी।

संविधान के प्रारूप को सर्वोच्च सोवियत के सामने रखते हुए, स्टालिन ने अग्रलिखित बातों की सराहना की—(१) अब हमें साम्यवाद के ध्येय को स्थापित करना है; उसका आधार होगा 'प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करे और उसे उसकी आवश्यकता के अनुसार मजदूरी मिले।' (२) यह वर्ग-विहीन समाज पर आधारित है; और इसके अन्तर्गत किसान व श्रमिक ही सत्ता का प्रयोग करेंगे। (३) यह ऐसी अन्तर्राष्ट्रीयता पर आधारित है जो किसी भी प्रकार के भेदों के रहते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीयता को मान्यता प्रदान करता है। (४) अपने स्वरूप में यह पूर्णतया प्रजातन्त्रात्मक है। (५) इसका बल इस बात पर है कि सभी नागरिक मूल अधिकारों का उपभोग कर सकें। उसने आलोचनाओं का भी उत्तर दिया। अन्त में, संविधान को ५ दिसम्बर सन् १९३६ को अंगीकृत किया गया।

संविधान की मुख्य विशेषतायें

समाजवादी राज्य—विशिस्की के शब्दों में सोवियत संघ एक नये प्रकार का राज्य बना। सोवियत संघ के संविधान की सबसे प्रमुख विशेषता यह थी कि यही प्रथम संविधान था जिसमें पूर्णरूप से समाजवादी सिद्धान्तों को अपनाया गया।[6] इस संविधान के द्वारा सम्पत्ति के व्यक्तिगत अधिकार को समाप्त कर दिया गया सारी भूमि, प्राकृतिक साधनों और उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शोषण का अन्त किया गया, जैसा कि संविधान के प्रथम अध्याय में सोवियत समाज के सम्बन्ध में दिये गए अग्रलिखित **आधारभूत सिद्धान्तों** (basic principles) से पता लगता है—सोवियत समाजवादी संघात्मक गणराज्य **'मजदूर और किसानों का समाजवादी राज्य है।'** श्रमजीवियों के प्रतिनिधियों की सोवियतें समाजवादी संघ की राजनीति का आधार हैं अर्थात् सोवियत संघ में सारी शक्ति, जिनका प्रतिनिधित्व ये सोवियतें करती हैं, नगरों और ग्रामों में श्रमजीवियों के हाथों में हैं। संघ के आर्थिक आधार ये हैं—सामाजिक, आर्थिक और उत्पादन के साधनों का 'साम्यवादी स्वामित्व' जो पूंजीवाद अर्थात् 'मनुष्य द्वारा शोषण' को मिटाकर स्थापित किया गया है। **सामाजिक स्वामित्व** (socialist ownership) **दो प्रकार** का है—राज्य का स्वामित्व तथा सहकारी समितियों अथवा सामूहिक खेतों का स्वामित्व। सारी भूमि, खनिज पदार्थ, वन, कारखाने, रेल, यातायात के साधन व सब उद्योग राज्य की सम्पत्ति (state property) घोषित किये गये हैं। राज्य की सम्पत्ति का अर्थ सारे राष्ट्र की सम्पत्ति से है। सामूहिक खेत और सहकारी समितियों के उद्योग, उसके पशु, औजार, उपज और मकान इत्यादि सामूहिक खेतों व सहकारी समितियों की समाजवादी सम्पत्ति हैं। यहाँ पर कुछ प्रकार की व्यक्तिगत सम्पत्ति (personal property) पर नागरिकों का अधिकार कानून द्वारा सुरक्षित है जैसे अपनी मेहनत से कमाया हुआ धन, घर गृहस्थी का समान; निजी उपभोग और आराम की वस्तुयें तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति का उत्तराधिकार, इत्यादि।

समाजवाद और आर्थिक नियोजन—सोवियत संघ ही प्रथम देश है जहाँ समाजवादी सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप मिल पाया है। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त ही व्यवहार में समाजवाद है। समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सोवियत संघ में बेकारी का प्रायः अन्त हो गया है और सर्वसाधारण जनता के कल्याण व संस्कृति की वृद्धि हुई है। दोनों प्रकार की समाजवादी सम्पत्ति पर आधिपत्य कुछ विशेष व्यक्तियों का न होकर जनता का है। राज्य की सम्पत्ति का

6. 'The Stalin Constitution concisely sets forth the fundamental principles of the new Socialist system of society and of the new Soviet structure of our multi-national State. Ours is the first country in the history of mankind to have established such a system and such a structure of society.'
V. Karpinsky : The Social and State Structure of the U. S. S. R. p. 9.

अर्थ सम्पूर्ण जनता के स्वामित्व से है, सहकारी और सामूहिक फार्मों पर स्वामित्व सार्वजनिक संगठनों का है। दोनों ही प्रकार के उद्योगों में कार्य करने वालों को पारिश्रमिक संविधान में वर्णित समाजवादी सिद्धान्त **'प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार कार्य लेना और उसे उसके कार्य के अनुसार देना'** के अनुसार मिलता है। दोनों ही प्रकार के उद्योगों को एक ही राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन के अनुसार सम्पादित किया जाता है। अतएव सोवियत संघ की आर्थिक व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण **विशेषता आर्थिक नियोजन** द्वारा आर्थिक जीवन का निर्धारण और नियन्त्रण है। आर्थिक नियोजन के निम्नलिखित तीन उद्देश्य बताये गए हैं—सार्वजनिक सम्पत्ति को बढ़ाना, श्रमजीवियों की आर्थिक और सांस्कृतिक दशा को बराबर उन्नत करना और सोवियत संघ की स्वतन्त्रता तथा रक्षा के साधनों को सुदृढ़ बनाना।

संघात्मक शासन—सन् १९३६ के संविधान के अनुसार सोवियत संघ एक संघात्मक राज्य बना जिसका आधार सम-अधिकार रखने वाले सोवियत समाजवादी गणराज्यों का ऐच्छिक संघ (voluntary association) था। यहाँ की संघीय प्रणाली भी अन्य देशों की संघीय प्रणालियों से भिन्न रही है। इन गणराज्यों (Constituent Republics) की सन् १९३६ में संख्या ७ थी, जो आगे बढ़कर १५ हो गई। संविधान द्वारा गणराज्यों के अतिरिक्त अग्रलिखित प्रकार की स्वाधीन इकाइयाँ भी मान्य हैं—स्वशासित गणराज्य (autonomous republics), स्वशासित प्रदेश (regions) और राष्ट्रीय क्षेत्र (national areas)। अकेले रूस में इस प्रकार की स्वशासित इकाइयों की संख्या लगभग दो दर्जन है। इन इकाइयों की सरकारें अपने-अपने क्षेत्राधिकार में स्वाधीन हैं। संवैधानिक दृष्टि से संघीय गणराज्यों (Constituent Republics) का दर्जा समान है और उनके अधिकार बराबर हैं, यद्यपि यूक्रेन और बाइलो-रशिया को संयुक्त राष्ट्र संघ में भी पृथक् प्रतिनिधित्व प्राप्त है। क्षेत्रफल, जनसंख्या तथा प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से रूस सबमें प्रमुख तथा सबसे महत्वपूर्ण गणराज्य है।

सोवियत संघ की विधायिका अर्थात् सर्वोच्च सोवियत (Supreme Soviet)—यह अन्य देशों की विधायिका से बहुत भिन्न है। यद्यपि अधिकतर दूसरे राज्यों की विधायिकाओं के समान वह भी दो सदन वाली है, फिर भी दो बातों में उसका संगठन विलक्षण है। प्रथम बात तो यह है कि उसके दोनों सदनों की शक्तियाँ पूरी तरह से सम हैं। स्विटजरलैंड में भी ऐसा ही है, किन्तु वहाँ पर उच्च सदन के सदस्यों की संख्या बहुत कम है, परन्तु सोवियत संघ में ऊपर वाले सदन के सदस्यों की संख्या निचले सदन के सदस्यों की संख्या के लगभग बराबर है। दूसरी बात यह है कि सर्वोच्च सोवियत के अधिवेशन के विराम काल (recess) में उसकी समस्त शक्तियों का प्रयोग एक समिति करती है, जिसे प्रेसीडियम (Presidium) कहते हैं। यह प्रेसीडियम सोवियत संघ के शासन विधान में एक

बिल्कुल नई प्रकार का निकाय (body) है, जिसकी तुलना अन्य किसी देश के किसी भी निकाय से नहीं की जा सकती। यह सर्वोच्च सोवियत की एक समिति है, जिसे वैधानिक तथा प्रशासकीय अधिकार प्राप्त हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि सोवियत शासन की पद्धति की एक विशेषता यह है कि यहाँ की व्यवस्थापिका द्वारा अपनी शक्तियाँ एक छोटी स्थायी समिति को प्रदान (delegate) की गई है।

सोवियत संघ में प्रजातन्त्र—सोवियत नेताओं के मतानुसार पश्चिमी देशों में मध्यवर्गी प्रजातन्त्र (bourgeois democracy) है, अर्थात् राज्य सत्ता पर एक वर्ग का नियन्त्रण है, जिसे वे छिपाने का प्रयत्न करते हैं। इसके विपरीत, सोवियत नेता सिद्धान्त में वर्ग-भेद को स्वीकार करते हैं और उसका अन्त करने में विश्वास करते हैं। इस दृष्टिकोण से पश्चिमी देशों में केवल प्रजातन्त्रवाद का औपचारिक रूप (formal democracy) है, जबकि सोवियत संघ में पूर्ण प्रजातन्त्रवाद (thoroughgoing democratism) है। सन् १९३६ में संविधान द्वारा संघ की निर्वाचन-पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। जिन लोगों को पहले मताधिकार प्राप्त न था, उन्हें भी बिना किसी भेदभाव के मताधिकार दिया गया, अप्रत्यक्ष चुनावों के स्थान पर प्रत्यक्ष चुनाव होते हैं और प्रतिनिधित्व भी गाँव व नगर निवासियों के लिए एक समान कर दिया गया। प्रत्येक नागरिक को जिसकी अवस्था १८ वर्ष हो चुकी हो, बिना किसी प्रकार के जाति, राष्ट्रीय, वर्ग, धर्म, शिक्षा, निवास-स्थान, सामाजिक-स्तर, जन्म, भूतकाल के कार्य या राजनैतिक विचार के भेद-भाव के मत देने का अधिकार मिला। केवल पागल या न्यायालय से दण्डित या निर्वाचन अधिकारों से वंचित व्यक्ति मत नहीं दे सकते। चुने जाने के लिए उम्मीदवारों की आयु सन् १९४७ के संशोधन द्वारा १८ वर्ष के स्थान पर २३ वर्ष कर दी गई। गाँव और शहर की सोवियतों से लेकर सर्वोच्च सोवियत (Supreme Soviet) तक का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होने लगा। प्रतिनिधियों का निर्वाचन गुप्त मतदान द्वारा शुरू हुआ। लाल सेना में काम करने वाले सैनिक तथा अन्य सरकारी सेवकों को मताधिकार तो प्राप्त हुआ ही, उन्हें दूसरे नागरिकों के समान निर्वाचित होने का अधिकार भी मिला।[7]

अधिकार और कर्त्तव्य—सन् १९३६ के संविधान में नागरिकों के अधिकारों का विस्तृत वर्णन है। सभी नागरिकों को ये अधिकार समान रूप से बिना किसी भेद-भाव के प्रदान किए गए। संविधान की एक विशेषता यह भी है कि वहाँ पर नागरिकों को केवल अधिकार ही नहीं दिए गए बल्कि उनकी रक्षा का भी

7. 'The essential and fundamental pre-eminence of Soviet democracy consists in the fact that for the first time in history the nation itself truly carries state government into effect in its own interests, depriving exploiters of all their privilieges and advantages.' *A. Y. Vyshinsky* :The Law of the Soviet State, pp. 41

समुचित प्रबन्ध कर दिया गया। इस संविधान में अधिकारों के साथ नागरिकों के कर्त्तव्यों का भी समावेश किया गया। संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों का यहाँ केवल उल्लेख करना ही काफी होगा, क्योंकि नये संविधान में उनका विस्तार किया गया है।

नागरिकों को सन् १९३६ के संविधान द्वारा दिए गए अधिकार ये थे—(१) काम पाने का अधिकार, (२) विश्राम का अधिकार, (३) सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, (४) शिक्षा पाने का अधिकार, (५) अन्तःकरण की स्वतन्त्रता (६) शरीर, घर व पत्र व्यवहार की स्वतन्त्रता, (७) भाषण, प्रेस, सभा, प्रदर्शन और जलूस आदि की स्वतन्त्रता। संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों की मुख्य बातें ये थीं—प्रथम सभी नागरिकों को बिना किसी प्रकार के भेद-भाव के सम अधिकार दिए गए। दूसरे, अन्य देशों की तुलना में इन अधिकारों का बल सामाजिक और आर्थिक लाभों पर था। एक लेखक ने तो इन्हें संवैधानिक कानून के बजाय राज्यीय नैतिकता कहा।[8]

संविधान के प्रारूप पर बोलते हुए **स्टालिन** ने नागरिकों को दिए जाने वाले अधिकारों के विषय में कहा था कि नागरिकों को केवल अधिकार नहीं प्रदान किए जा रहे हैं, वरन् उनके समुचित उपयोग की दशायें और आश्वासन भी। इस कथन में सत्य का अंश है, क्योंकि काम पाने और विश्राम आदि अधिकारों के उपयोग के लिए समुचित व्यवस्था की गई।[9] **विंशिस्की** ने भी इन अधिकारों को सच्चा अधिकार-पत्र (genuine charter of the rights) बताया। निःसन्देह पूर्वगामी संविधानों की तुलना में यह एक अति महत्वपूर्ण प्राविधान था। इन अधिकारों में आर्थिक अधिकारों का विशेष महत्व था, क्योंकि तत्कालीन आर्थिक कठिनाइयों के काल में काम पाने के अधिकार, विश्राम के अधिकार और सामाजिक सुरक्षा के अधिकार वास्तव में देश की अधिकांश निर्धन और बेकार जनसंख्या को प्राप्त हुए वहाँ बेकारी का अन्त हो गया, श्रमिकों के लिए काम के घण्टे कम हुए और काम करने की दशाओं में सुधार हुआ। इन अधिकारों के महत्व को पूरी तरह से

8. 'Unlike others it lays stres on social and economic advantages, the right to work, to rest and leisure, to educate, and to support for the infirm *i. e.* the aged, the sick, the incapacitated. This is a code of state morality rather than constitutional law.' *Adams et. al* : Foreign Government and Their Backgrounds, pp. 687–88.

9. 'What distinguishes the draft of the new Constitution is the fact that it does not confine itself to stating the formal rights of citizens but stresses the guarantees of these rights, the means by which these rights can be execiesed···· It does not merely proelam the right to work, but ensures it by giving legislative embodiment···· It dose not merely proclaim democratic liberties, but it also ensures them by providing definite materal resources ?' *Stalin on Draft Constitution*

जार-कालीन रूस के मजदूरों और किसानों की स्थिति की तुलना से ही समझा जा सकता है।

आलोचकों ने यह भी माना कि सिद्धान्त रूप में तो अधिकार महत्वपूर्ण थे और वे प्राय: सभी प्रकार की व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं को प्रदान करते थे, किन्तु व्यवहार में स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार वास्तविक नहीं थे। सोवियत संघ में साम्यवादी दल के अतिरिक्त किसी अन्य दल को संगठित न होने देने, संगठन की स्वतन्त्रता के अधिकार को अवास्तविक बना दिया है। ऐसे ही वहाँ पर भाषण व समाचार पत्रों की स्वतन्त्रतायें भी दिखावटी थीं, क्योंकि कोई भी व्यक्ति शासन की आलोचना नहीं कर सकता था और समाचार-पत्र शासन की नीति के विरोध में कोई बात नहीं प्रकाशित कर सकते थे। वास्तव में, सभी समाचार-पत्र एक ही प्रकार के समाचार और मत प्रकाशित करते थे और उनका मुख्य उद्देश्य शासन की नीति व कार्यक्रम का समर्थन करना होता था।

कर्त्तव्य—सोवियत संघ के संविधान में सोवियत संघ के नागरिकों के लिए अग्रलिखित कर्त्तव्य निर्धारित किये गये हैं—(१) सोवियत संघ के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह सोवियत समाजवादी प्रजातन्त्री संघ के संविधान के अनुकूल चले, कानूनों का पालन कर श्रम सम्बन्धी अनुशासन को माने, ईमानदारी के साथ अपने सार्वजनिक कर्त्तव्यों को पूरा करे और समाजवादी आचार-व्यवहार के नियमों का सम्मान करे। (२) सोवियत व्यवस्था के पवित्र और अनुल्लंघनीय आधार के रूप में, सभी श्रमिकों की समृद्धि और संस्कृति के स्रोत के रूप में—सार्वजनिक तथा समाजवादी सम्पत्ति की रक्षा करना और उसे सुदृढ़ बनाना, सोवियत संघ के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। (३) सार्वजनिक, समाजवादी सम्पत्ति को हानि पहुँचाने वाले व्यक्ति जनता के शत्रु हैं। (४) सार्वजनिक सैनिक सेवा कानून द्वारा अनिवार्य है। (५) सोवियत संघ की सैन्य-शक्ति में फौजी सेवा करना सोवियत संघ के नागरिकों का सम्मानजनक कर्त्तव्य है। (६) देश की रक्षा करना सोवियत संघ के प्रत्येक नागरिक का पवित्र कर्त्तव्य है। मातृभूमि के साथ गद्दारी करना, वफादारी की शपथ को भंग करना, शत्रु से मिल जाना, राज्य की सैन्य-शक्ति को हानि पहुँचाना, जासूसी करना सबसे घृणित अपराध है और इनके लिए कानून में कड़ी से कड़ी सजा दी जाती है।

शक्ति विभाजन का सिद्धान्त—संविधान में कहा गया था कि विधायी शक्ति का प्रयोग केवल सर्वोच्च सोवियत करेगी, मन्त्रि-परिषद् शासन की सर्वोच्च कार्यकारिणी तथा प्रशासकीय समिति होगी और न्यायाधीश स्वतन्त्र रहेंगे, परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं था। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता तो केवल कागज पर ही थी। अधिकतर कानून सर्वोच्च सोवियत द्वारा नहीं बनाये गये, बल्कि मन्त्रि-परिषद कम्युनिस्ट पार्टी की सलाह से अनेक आज्ञप्तियाँ (decrees) जारी करती थी। कभी-कभी तो कार्यकारिणी द्वारा जारी की गई आज्ञप्तियाँ संविधान में संशोधन का प्रभाव

रखती थीं। वहाँ की सर्वोच्च सोवियत को विधायिनी शक्तियों के साथ कार्यपालिका तथा न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त थीं। यह मन्त्रियों और प्रेसीडियम के सदस्यों को नियुक्त करती थी। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तथा प्रोक्यूरेटर-जनरल को भी वही नियुक्त करती थी। इस सम्बन्ध में अन्तिम परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि प्रेसीडियम (Presidium) एक ऐसी संस्था रही जो शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त के बिल्कुल विपरीत विधायी तथा प्रशासकीय कार्य करने के अनेक अधिकार रखती थी। अतः यह कहना उचित है कि सोवियत संघ में शक्ति-विभाजन सिद्धान्त को केवल ऊपरी या बहुत सीमित रूप में मान्यता प्रदान की गई।

अन्य विशेषतायें—सोवियत शासन-पद्धति का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त लोकतन्त्रात्मक केन्द्रीकरण (democratic centralism) था। यह सिद्धान्त साम्यवादी दल के संगठन में भी लागू किया गया। सोवियत शासन-पद्धति की एक दूसरी विशेषता यह थी कि वहाँ पर केवल एक ही राजनैतिक दल रहा। साम्यवादी दल शासन के सभी अंगों से गुँथा हुआ (integrated) था। अन्त में, यद्यपि सोवियत शासन-पद्धति संघात्मक थी, फिर भी वहाँ पर **पुनरावलोकन** (judicial review) के सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया। वहाँ पर सर्वोच्च न्यायालय को स्वतन्त्र व निष्पक्ष नहीं माना गया। उसे संविधान का निर्वचन करने वाला तथा उसका संरक्षक भी नहीं माना गया। वास्तव में, वहाँ की न्यायपालिका भी विशेष प्रकार की थी। सोवियत संघ में सरकार ने संविधान को अपनी छाया में ले लिया और सरकार को ही नागरिकों के आदर व आज्ञापालन पर एकाधिकार प्राप्त हुआ।[10]

संविधान में संशोधन-विधि (Amending process)—सोवियत संघ का संविधान इस दृष्टि से अन्य संघात्मक संविधानों से बहुत भिन्न था। वहाँ पर संविधान की संशोधन-विधि अत्यधिक सरल थी। संविधान के अनुच्छेद १४६ में कहा गया—'संविधान में कोई भी संशोधन सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत कर सकती है; उसके लिए केवल यह आवश्यक है कि संशोधन प्रस्ताव को दोनों सदनों में २/३ के बहुमत से समर्थन प्राप्त होना चाहिए।'[11] यह विधि देखने में अनमनीय (rigid) थी; परन्तु इसमें अनमनीयता नाम की ही थी, क्योंकि सर्वोच्च सोवियत के दोनों सदनों में प्रायः सभी सदस्य साम्यवादी होते रहे और वे दल के आदेश के अनुसार ही कार्य करते थे। अतएव साम्यवादी दल किसी भी संशोधन प्रस्ताव को बिना कठिनाई के पास करा सकता था।

10. '...in the U. S. S. R. it is the government which overshadows the constitution and monopolises the respect, awe and obedience of the citizens.' *K. C. Wheare*: Modern Constitutions p. 114.
11. 'The Constitution of the U. S. S. R. may be amended only by decision of the Supreme Soviet of the U. S. S. R. adopted by a majority of not less than two-thirds of the votes cast in each of its chambers.' Article 146.

इस सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय थी। वह यह कि सोवियत संघ का संविधान संघात्मक था और उसके अनुसार संघ व संघीय गणराज्यों के बीच शक्तियों का वितरण हुआ। भारत में शक्तियों के वितरण से सम्बन्धित संशोधन प्रस्ताव का संसद में पास होने के बाद कम से कम आधे राज्यों की विधायिकाओं द्वारा भी स्वीकृत होना आवश्यक है। सं० रा० अमरीका में सभी संशोधन प्रस्तावों का पुष्टिकरण कम से कम ३/४ राज्यों की विधायिकाओं अथवा उनके द्वारा बुलाये गये राज्य सम्मेलनों द्वारा होता है। परन्तु सोवियत संघ में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। संशोधन प्रक्रिया में गणराज्यों का कोई भाग नहीं था। इसका अर्थ यह हुआ कि संघीय सरकार अकेले ही शक्तियों के वितरण में जैसा चाहे संशोधन या परिवर्तन कर सकती थी। इसी कारण यह कहा जाता था कि सोवियत संघ में संघात्मक सिद्धान्त को सच्चे अर्थ में लागू नहीं किया गया।

इसके अतिरिक्त सोवियत संघ के संविधान में प्रेसीडियम भी आज्ञप्ति द्वारा छोटे-मोटे संशोधन कर सकती थी। उदाहरण के लिए, सन् १९४६ के बाद प्रेसीडियम ने अपनी एक आज्ञप्ति द्वारा सोवियत के सदस्यों की आयु की निम्नतम सीमा १८ वर्ष के स्थान पर २३ वर्ष कर दी। इसी आधार पर अगली बार चुनाव हुए और बाद में सर्वोच्च सोवियत ने इसी उद्देश्य से एक संशोधन पास कर दिया। सन् १९४४ में सर्वोच्च सोवियत की प्रेसीडियम ने दो आज्ञप्तियाँ जारी कीं, जिनके परिणामस्वरूप विदेश सम्बन्ध, जो उस समय तक अनन्यत: संघ सरकार के अधिकार क्षेत्र में थे, गणराज्यों को हस्तान्तरित किये गये। प्रथम आज्ञप्ति के अनुसार गणराज्यों को शक्ति प्रदान की गई कि वे विदेशी राज्यों से सम्बन्ध स्थापित कर सकते थे और अन्तर्राष्ट्रीय समझौते भी। दूसरी आज्ञप्ति द्वारा उन्हें पृथक् सैनिक संगठन संगठित करने की शक्ति दी गई। तदनुसार उनकी शक्तियों में भी आवश्यक परिवर्तन किये गये।

सोवियत शासन पद्धति के अध्ययन का महत्व—इसके लिए विभिन्न कारणों को, संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है: (१) आज की विश्व राजनीति में सोवियत संघ का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है; विश्व के प्रमुख शक्तिशाली राष्ट्रों में इसे दूसरे स्थान पर रखा जाता है। सन् १९१७ की क्रान्ति के बाद से इस देश में नये प्रकार की शासन सत्ता स्थापित हुई; वास्तव में यही प्रथम साम्यवादी देश है। इसमें गत ५८ वर्षों में सभी देशों की तुलना में अभूतपूर्व विकास हुआ है। (२) इसका आकार सबसे बड़ा है और इसकी जनसंख्या भी विश्व में तीसरे स्थान पर है। इसमें अनेक राष्ट्रों व उपराष्ट्रों के लोग स्वेच्छापूर्वक एक संघात्मक शासन के अधीन रहते हैं। 'इसका नया संविधान गहराई से देखने पर अन्तर्राष्ट्रवादी है। इसका आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सभी राष्ट्रों व मूलजातियों के अधिकार सम हैं।' (३) इसकी शासन पद्धति के प्रशंसकों ने इसे सच्चा प्रजातन्त्र बताया है, किन्तु आलोचक इसे सर्वाधिकारवादी अथवा अधिनायकतन्त्री राज्य कहते हैं।

(४) इसकी शासन संस्थायें नये नमूने की हैं, जिनमें प्रेसीडियम विशेषत: अनोखी संस्था है, जो शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का पूर्णतया अतिक्रमण करती है। सर्वोच्च सोवियत भी दो सदन वाली है, फिर भी दो वातों में उसका संगठन विलक्षण है। प्रथम बात तो यह है कि उसके दोनों सदनों की शक्तियाँ पूरी तरह से सम हैं। स्विट्जरलैंड में भी ऐसा ही है, किन्तु वहाँ पर उच्च सदन के सदस्यों की संख्या बहुत कम है। सोवियत संघ में ऊपर वाले सदन के सदस्यों की संख्या निचले सदन के सदस्यों की संख्या के बराबर है। दूसरी बात यह है कि सर्वोच्च सोवियत के अधिवेशन के विराम काल में उसकी समस्त शक्तियों का प्रयोग एक समिति करती है, जिसे प्रेसीडियम (Presidium) कहते हैं। यह प्रेसीडियम सोवियत संघ के शासन विधान में एक बिल्कुल नई प्रकार का निकाय है, जिसकी तुलना अन्य किसी देश के किसी भी निकाय से नहीं की जा सकती। यह सर्वोच्च सोवियत की एक समिति है, जिसे वैधानिक तथा प्रशासकीय अधिकार प्राप्त हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि सोवियत शासन की पद्धति की एक विशेषता यह है कि वहाँ की विधायिका द्वारा अपनी शक्तियाँ एक छोटी स्थायी समिति को प्रदान की गई हैं। गणराज्यों के संविधान में भी इसी तरह की शक्ति प्रदान की गई है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. सोवियत संघ और उसके निवासियों के बारे में आप क्या जानते हैं ?
२. सोवियत (साम्यवादी) क्रान्ति से पूर्व के जार-कालीन रूस के शासन की उन मुख्य वातों व दशाओं का वर्णन कीजिए जिनके परिणामस्वरूप वहाँ सन् १९१७ की क्रान्ति हुई।
३. सन् १९१८ और सन् १९२४ के संविधानों की मुख्य बातों का वर्णन कीजिए।
४. सन् १९३६ के संविधान की मुख्य विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
५. सन् १९३६ के संविधान से सोवियत संघ में हुए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों का वर्णन कीजिए।

—:०:—

२. नया संविधान—निर्माण, आधारभूत सिद्धान्त, विशेषतायें और महत्व

१. नये संविधान का निर्माण और उसकी विषय सूची

सन् १९३६ के पूर्वगामी संविधान में समय-समय पर अनेक संशोधन हुए। व्यवहारत: प्राय: सभी अध्यायों को संशोधित किया गया और उनमें महत्वपूर्ण बातें जोड़ी गईं। फिर भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन राजकीय संरचना (state structure) और सोवियत राजकीय अंगों (Soviet state organs) से सम्बन्धित अध्यायों में किए गए। नागरिकों के अधिकारों व कर्त्तव्यों और निर्वाचन पद्धति में भी संशोधन किए गए। सन् १९३६ के संविधान को अंगीकार किये जाने के समय से सन् १९७७ तक सोवियत संघ के सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक पहलू में मूलभूत महत्व के प्रमुख परिवर्तन हुए हैं। अत: इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि इन परिवर्तनों को नये संविधान में परिलक्षित किया जाए।

यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सन् १९३६ का संविधान अंगीकार किये जाने के समय सोवियत संघ ने समाजवाद के आधारों (foundations of socialism) की रचना को तभी पूर्ण किया था। सामूहिक फार्मों (collective farms) की पद्धति को तब तक समेकित न किया जा सका था और औद्योगिकी (technology) की दृष्टि से सोवियत संघ एक पिछड़ा हुआ देश था। परन्तु सन् १९७७ में वह स्थिति पूर्णतया बदल चुकी थी। एल० आई० ब्रेजनेव ने प्रारूप संविधान पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय ठीक ही कहा था: "देश की अर्थव्यवस्था इतनी बदल चुकी है कि उसे पहचानना कठिन है। इसमें समाजवादी स्वामित्व की सर्वोपरिता है। इसका वैज्ञानिक और औद्योगिकी की क्रान्ति के मेल द्वारा विकास हो रहा है और उसके साथ समाजवादी पद्धति के लाभ जुड़े हैं। देश की सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन हुआ है। सोवियत समाज में बढ़ती हुई सामाजिक एकरसता (social homogeneity) इन सभी परिवर्तनों की सामान्य बोधक है। श्रमिक वर्ग, सामूहिक फार्मों के किसानों और जनवादी बुद्धिजीवियों तथा व्यवसायियों की नष्ट न होने वाली मित्रता पहले से भी अधिक सुदृढ़ हो गई है। आधारभूत सामाजिक समूहों के बीच अन्तर क्रमिक रूप से विलोपित हो रहे हैं। इस देश के सभी राष्ट्रों व उपराष्ट्रों के जीवन का प्रवाह उन्हें एक दूसरे के अधिक निकट ला रहा है। एक नये ऐतिहासिक समुदाय, सोवियत जन की स्थापना हुई है।"

"पूर्ण समाजवाद के प्राप्त हो जाने तथा जनसंख्या के सभी विभागों (sections) द्वारा श्रमिक वर्ग की वैचारिक और राजनीतिक स्थितियों के अंगीकार किये जाने से, हमारा राज्य, जिसका अस्तित्व 'सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तन्त्र' के रूप में हुआ अब सम्पूर्ण जनसमुदाय का राज्य बन गया है। सोवियत संघ की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और सम्पूर्ण विश्व के सामाजिक आर्थिक रूप में उग्र परिवर्तन हुए हैं। सोवियत संघ के पूंजीवादी देशों द्वारा घेरे का अन्त हो चुका है और समाजवाद एक विश्व पद्धति बन गई है।...परिणामस्वरूप विश्व में शक्तियों का सन्तुलन पूर्णतया बदल गया है।"

उपरोक्त परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत ने नये संविधान का प्रारूप तैयार कराने तथा उस उद्देश्य से एक आयोग नियुक्त करने के लिए एक प्रस्ताव पास किया। आयोग का सभापति मि० ब्रेजनेव को बनाया गया और उसमें प्रमुख राजनीतिज्ञों व सार्वजनिक नेताओं को सदस्य बनाया गया। साम्यवादी दल की २५वीं कांग्रेस ने आयोग को इस सम्बन्ध में स्पष्ट निदेश दिये। २४ मई १९७७ को नये सविधान का प्रारूप साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति की प्लीनेरी मीटिंग (Plenary meeting of the CPSU Central Committee) के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। प्रारूप को जनता का मत जानने के लिए प्रसारित किया गया।

प्रारूप संविधान पर राष्ट्रव्यापी वाद-विवाद हुआ जिसमें सोवियत जनता ने सक्रिय भाग लिया। इस बात का अनुमान तो इससे लगाया जा सकता है कि देश की लगभग ८० प्रतिशत वयस्क जनता १४ करोड़ स्त्रियों व पुरुषों ने इसमें भाग लिया। प्रारूप पर श्रमिकजनों की लगभग १५ लाख बैठकों में विचार-विमर्श किया गया। सम्पूर्ण साम्यवादी दल इस वाद-विवाद में अन्तर्ग्रस्त रहा। इस प्रयोजन से लगभग ४½ खुली बैठकें हुईं, जिन्हें ३० लाख पुरुषों व स्त्रियों ने सम्बोधित किया। ऐसे व्यापक राष्ट्रीय वाद-विवाद का संविधान के अन्तिम रूप पर प्रभाव पड़ा। उसमें संशोधन हेतु लगभग ४ लाख सुझाव आये। उनके परिणामस्वरूप संविधान की ११० धाराओं को संशोधित किया गया और एक नई धारा भी जोड़ी गई। सर्वोच्च सोवियत के असाधारण सत्र में संविधान के अन्तिम रूप को ७ अक्तूबर सन् १९७७ को अंगीकार किया गया। उसी दिन संविधान लागू हो गया; उसके लागू होने से पूर्व के वे सभी कानून जारी रहेंगे, जो नये संविधान के किसी भी प्राविधान से असंगत नहीं हैं।

संविधान को विषय सूची

संविधान के प्रारूप को संवैधानिक आयोग ने तैयार किया और सर्वोच्च सोवियत (संघ की विधायिका) ने उसे अंगीकार किया। अतः यह एक विशेष निकाय द्वारा निर्मित (enacted) है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, इसके निर्माण में

जनता ने व्यापक आधार पर सक्रिय भाग लिया। निर्मित होने के साथ-साथ संविधान पूर्णतया लिखित है। यह लगभग २५ मुद्रित पृष्ठों में है। इसमें कुल १७४ धाराएँ (articles) हैं, जो ९ भागों व २१ अध्यायों में विभाजित हैं। यहाँ पर उनका संक्षिप्त परिचय देना उचित और आवश्यक प्रतीत होता है, जो निम्नलिखित है—

भाग **शीर्षक**

(१) सोवियत संघ की सामाजिक संरचना व नीति के सिद्धान्त—अध्याय १. राजनीतिक पद्धति, २. आर्थिक पद्धति, ३. सामाजिक विकास और संस्कृति, ४. विदेश नीति, ५. समाजवादी मातृदेश की प्रतिरक्षा।

(२) राज्य और नागरिक—अध्याय ६. सोवियत संघ की नागरिकता, नागरिकों के आधारभूत अधिकार ७. स्वतन्त्रताएँ और कर्त्तव्य।

(३) राष्ट्रीय-राज्य संरचना—अध्याय ८. संघात्मक राज्य, ९. संघीय सोवियत समाजवादी गणराज्य, १०. स्वशासी सोवियत समाजवादी गणराज्य ११. स्वशासी प्रदेश और स्वशासी क्षेत्र।

(४) जन प्रतिनिधियों की सोवियतें और निर्वाचन प्रक्रिया—अध्याय १२. जन प्रतिनिधियों की सोवियतों की पद्धति और उनके कार्य के सिद्धान्त, १३. निर्वाचन पद्धति और १४. जन प्रतिनिधि।

(५) राजकीय सत्ता के उच्चतर निकाय और सोवियत संघ का प्रशासन—अध्याय १५. सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत, १६. सोवियत संघ की मन्त्रि-परिषद।

(६) राजकीय सत्ता के निकायों की संरचना के आधारभूत सिद्धान्त और संघीय गणतन्त्रों में प्रशासन—अध्याय १७. राजकीय सत्ता के उच्चतर निकाय और संघीय गणतन्त्र का प्रशासन, १८. राजकीय सत्ता के उच्चतर निकाय और स्वशासी गणतन्त्र का प्रशासन, १९. राजकीय सत्ता के स्थानीय निकाय और प्रशासन।

(७) न्याय, पंच-निर्णय और प्रोक्यूरेटर का परिवीक्षण—अध्याय २०. न्यायालय और पंच-निर्णय, २१. प्रोक्यूरेटर का पद।

(८) राज्य चिन्ह, झण्डा, और सोवियत संघ की राजधानी।

(९) संविधान की सर्वधानिक शक्ति और संविधान में संशोधन की प्रक्रिया।

संविधान की प्रस्तावना और सामाजिक संरचना व नीति के सिद्धान्त

प्रस्तावना—इसका सारांश इस प्रकार है: महान अक्तूबर की समाजवादी क्रान्ति ने पूँजीवादी व भू-स्वामियों के शासन को उखाड़ फेंका। गृह-युद्ध में विजय प्राप्त

करने और साम्राज्यवादी हस्तक्षेप को पीछे हटा देने के बाद सोवियत शासन ने दूर-गामी सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन किये और सदैव के लिए मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण, विभिन्न वर्गों के बीच शत्रुता और राष्ट्रीयताओं के बीच संघर्षों का अन्त किया। अपने रचनात्मक प्रयत्नों को जारी रखते हुए श्रमिकजनों ने देश के द्रुत और सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित बनाया और समाजवादी पद्धति में लगातार सुधार किया। सोवियत संघ में विकसित समाजवादी समाज का निर्माण हुआ है। यह एक ऐसा समाज है जिसमें शक्तिशाली उत्पादक शक्तियों और प्रगतिशील विज्ञान व संस्कृति की रचना हुई है। यह ऐसा समाज है जिसमें जीवन का कानून प्रत्येक व्यक्ति की भलाई सबकी चिन्ता का विषय है और प्रत्येक को सबकी भलाई की चिन्ता है।[1] यह सच्चे प्रजातन्त्र का समाज है। विकसित समाजवादी समाज साम्यवाद के मार्ग पर एक स्वाभाविक और तर्कसंगत मंजिल है। सोवियत राज्य का सर्वोच्च ध्येय एक वर्ग-विहीन साम्यवादी समाज का निर्माण है।

सोवियत जनता ने, वैज्ञानिक साम्यवाद के विचारों से मार्ग-दर्शन पाकर और अपनी क्रान्तिकारी परम्पराओं के प्रति सच्चे रहकर; समाजवाद के महान सामाजिक आर्थिक औस राजनीतिक लाभों पर निर्भर करते हुए; समाजवादी प्रजातन्त्र के आगे विकास के लिए प्रयत्न करते हुए; समाजवाद की विश्व पद्धति में सोवियत संघ की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा अपने अन्तर्राष्ट्रीय उत्तर-दायित्व के प्रति चेतनाशील होकर; पूर्वगामी संविधानों के विचारों व सिद्धान्तों की निरन्तरता का परिरक्षण करते हुए; इसके द्वारा सोवियत संघ की सामाजिक संरचना व नीति के सिद्धान्तों में आस्था प्रकट की है और उन्होंने नागरिकों के अधिकारों, स्वतन्त्रताओं व दायित्वों तथा सम्पूर्ण जनता के समाजवादी राज्य के संगठन के सिद्धान्तों और इसके उद्देश्यों को पारिभाषित किया है तथा इनकी इस संविधान में उद्घोषणा की है।

उपरोक्त प्रस्तावना में सन् १९१७ की क्रांति और उसके बाद समाजवादी समाज व राज्य की स्थापना तथा विकसित समाजवादी समाज (developed socialist society), भावी साम्यवादी समाज के आधारभूत सिद्धान्त, सच्चे प्रजातन्त्र के समाज और वर्ग-विहीन साम्यवादी समाज की स्थापना के ध्येय का हवाला देते हुए कहा गया है कि सोवियत जनता ने वैज्ञानिक समाजवाद, समाजवाद के लाभों, समाजवादी प्रजातन्त्र के भावी विकास, पूर्वगामी संविधानों के विचारों व सिद्धान्तों की निरन्तरता को बनाये रखने तथा नागरिकों के अधिकारों व दायित्वों को ध्यान में रखते हुए इस संविधान को स्वीकार किया है। इस प्रकार इसमें सोवियत समाजवादी राज्य के सिद्धान्तों व भावी विकास और ध्येय का स्पष्ट रूप से दिग्दर्शन

1. 'It is a society in which the law of life is concern of all for the good of each and concern of each for the good of all......Developed socialist society is a natural, logical stage on the road to communism.'

कराया गया है। प्रस्तावना का इसी कारण से बड़ा महत्व है, क्योंकि इसमें संविधान के लक्ष्यों को भली प्रकार से पारिभाषित किया गया है। साथ ही इससे स्पष्ट है कि संविधान के अंगीकार करने में जनता की सहमति निहित है।

राजनीतिक पद्धति के सिद्धान्त (Principles of the Political System)—संक्षेप में, ये सिद्धान्त इस प्रकार हैं—(१) सोवियत संघ सम्पूर्ण जनता का समाजवादी राज्य (socialist state) है। (२) सोवियत संघ में सभी शक्ति जनता की है। (३) सोवियत राज्य प्रजातन्त्रात्मक केन्द्रवाद (democratic centralism) के सिद्धान्त पर संगठित है और उसी के अनुसार कार्य करता है। राजकीय सत्ता के सभी निकाय निर्वाचित हैं और वे जनता के प्रति उत्तरदायी हैं। साथ ही नीचे के स्तरों के निकायों का यह दायित्व है कि वे उच्चस्तरीय निकायों के निर्णयों का पालन करें। इस सिद्धान्त में केन्द्रीय नेतृत्व के साथ स्थानीय पहल और रचनात्मक गतिविधियों को मिलाया गया है।

(४) सोवियत राज्य और इसके सभी निकाय समाजवादी कानून के आधार पर कार्य करते हैं। (समाजवादी कानून का न्यायपालिका के अन्तर्गत विवेचन किया गया है)। (५) राज्य के अति महत्वपूर्ण मामलों को राष्ट्रव्यापी वाद-विवाद के लिए प्रस्तुत किया जायगा और उन पर लोक-निर्णय (referendum) कराया जायेगा। (६) सोवियत समाज को नेतृत्व प्रदान करने वाला व मार्ग-दर्शन देने वाला तथा राजनीतिक पद्धति और सभी राजकीय सार्वजनिक संगठनों का केन्द्र बिन्दु (nucleus) साम्यवादी दल है। साम्यवादी दल का अस्तित्व जनता के लिए है और यह उसकी सेवा करती है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्तों से सुसज्जित साम्यवादी दल समाज के विकास के सामान्य परिप्रेक्ष्यों और गृह तथा विदेश नीति के मार्ग को निर्धारित करती है। यही सोवियत जनता के रचनात्मक कार्य का निदेशन करती है और उसके साम्यवाद की विजय हेतु संघर्ष को नियोजित, क्रमबद्ध और सैद्धान्तिक रूप प्रदान करती है।

(७) ट्रेड यूनियनें, अखिल-संघीय लेनिनिस्ट युवा साम्यवादी लीग, सहकारी संगठन और अन्य सार्वजनिक संगठन राजकीय और सार्वजनिक मामलों के प्रबन्ध तथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मामलों पर निर्णय करने में भाग लेते हैं। (८) कार्यों से सम्बन्धित सामूहिक संगठन (work collectives) राजकीय व सार्वजनिक मामलों पर वाद-विवाद करने और उन पर निर्णय लेने, उत्पादन और सामाजिक विकास की योजना बनाने में भाग लेते हैं। (९) राजनीतिक पद्धति के विकास की प्रमुख दिशा समाजवादी प्रजातन्त्र का विस्तार है; अर्थात् राज्य और समाज के मामलों के प्रबन्ध में नागरिकों का अधिक वृहत भाग लेना।[2]

2. Articles 1-9

आर्थिक पद्धति के सिद्धान्त—इन्हें संक्षेप में, इस प्रकार रख सकते हैं—(१) सोवियत संघ की आर्थिक पद्धति का आधार उत्पादन के साधनों का समाजवादी स्वामित्व (socialist ownership of the means of production) है। इसके तीन रूप हैं—अ. राजकीय सम्पत्ति, ब. सामूहिक फार्म और स. सहकारी सम्पत्ति। (२) राजकीय सम्पत्ति सार्वजनिक सम्पत्ति का प्रमुख रूप है। भूमि, खनिज, जल और वन राज्य की अनन्य सम्पत्ति हैं। (३) सामूहिक फार्मों के अधिकार में भूमि उन्हें स्थायी रूप से मिली है। राज्य सामूहिक फार्मों व सहकारी सम्पत्ति के विकास को प्रोत्साहन देता है। (४) मेहनत से कमाई गई आय (earned income) नागरिकों की वैयक्तिक सम्पत्ति (personal property) का आधार है। इसमें प्रतिदिन के प्रयोग की वस्तुएँ, औजार, मकान, छोटा सा भू-खण्ड आदि सम्मिलित हैं। (५) सामाजिक धन और जनता के कल्याण के विकास का स्रोत शोषण रहित सोवियत जनता का श्रम है। (६) सोवियत संघ की अर्थव्यवस्था का रूप एकीकृत है, जिसमें सामाजिक उत्पादन, वितरण और विनिमय के सभी तत्व सम्मिलित हैं। (७) सोवियत संघ में कानून दस्तकारियों, कृषि, जनता की सेवाओं के लिए व्यवस्था आदि में व्यक्तिगत श्रम की आज्ञा देता है। (८) वर्तमान व भावी पीढ़ियों के हित में देश की भूमि और उसके खनिज व जल साधनों आदि की रक्षा व उचित प्रयोग के लिए आवश्यक पग उठाये जाते हैं।[3]

सामाजिक विकास और संस्कृति के सिद्धान्त—ये इस प्रकार हैं : (१) सोवियत संघ का सामाजिक आधार श्रमिकों, किसानों व बुद्धिजीवियों की न टूटने वाली मित्रता है। (२) साम्यवादी आदर्श के अनुसार 'प्रत्येक का स्वतन्त्र विकास सबके स्वतन्त्र विकास की शर्त है।' (३) ये काम करने की दशाओं में सुधार सुरक्षा और मजदूरों का रक्षण, काम का वैज्ञानिक सगठन और मशीनीकरण व स्वचालित यंत्रों के द्वारा कड़े परिश्रम को कम करते हुए अन्त में समाप्त करना ऐसे कार्य हैं जिन्हें राज्य करेगा। (४) ऐसे कार्यक्रम को संगत रूप से कार्यान्वित किया जा रहा है कि कृषि कार्य को विभिन्न प्रकार के औद्योगिक कार्यों में बदला जा सके। शैक्षिक, सांस्कृतिक और चिकित्सक संस्थाओं के जाल का विस्तार किया जाय और ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापार, सार्वजनिक भोजनालयों, सेवा और सार्वजनिक उपयोग की सुविधाओं का विस्तार हो। (५) उत्पादन में वृद्धि द्वारा जनता के वेतन स्तरों और वास्तविक आयों को ऊपर उठाया जाय। (६) देश में स्वास्थ्य रक्षा, सामाजिक सुरक्षा, सामुदायिक सेवाओं और सुविधाओं की राजकीय पद्धतियों को विस्तृत किया जा रहा है। (७) देश में सार्वजनिक शिक्षा की एकरूप पद्धति है, जिसमें लगातार सुधार किया जा रहा है। (८) समाज की आवश्यकताओं के अनुसार विज्ञान के नियोजित विकास और वैज्ञानिक कार्मिक के प्रशिक्षण के लिए राज्य व्यवस्था करता है।

3. Articles 10–18.

(६) जनता की नैतिक और सौन्दर्य-परक शिक्षा के लिए राज्य समाज के सांस्कृतिक धन की रक्षा, वृद्धि और विस्तृत प्रयोग के लिए कार्य करता है।[4]

विदेश नीति और प्रतिरक्षा सम्बन्धी सिद्धान्त—(१) सोवियत संघ लगन के साथ लेनिनवादी शान्ति की नीति का अनुसरण करता है और राष्ट्रों की सुरक्षा व वृहत अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को सुदृढ़ बनाने का समर्थक है। इसी कारण सोवियत संघ में युद्ध-प्रचार की मनाई है। (२) सोवियत संघ के अन्य देशों के साथ सम्बन्ध इन सिद्धान्तों पर आधारित हैं: प्रभुत्वपूर्णसमता, बल के प्रयोग अथवा धमकी का पारस्परिक आधार पर त्याग, राज्यों की सीमाओं की अनतिक्रमणीयता, राज्यों की भूमिगत अखण्डता, विवादों का शान्तिपूर्ण निर्णय, आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना, मानव अधिकारों और मूल स्वतन्त्रताओं के लिए आदर, राष्ट्रों के समान अधिकार, राज्यों के बीच सहयोग, आदि। (३) विश्व की समाजवादी पद्धति और समुदाय का अंग होने के नाते सोवियत संघ अन्य समाजवादी राज्यों के साथ मित्रता, सहयोग, पारस्परिक सहायता आदि को प्रोत्साहन देता है और उन्हें सुदृढ़ बनायेगा। (४) समाजवादी मातृदेश की प्रतिरक्षा राज्य के सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है और यह सम्पूर्ण जनता का कार्य है। (५) राज्य देश की सुरक्षा और प्रतिरक्षा क्षमता को सुनिश्चित बनाता है।[5]

उपरोक्त सिद्धान्तों का महत्व—ये सिद्धान्त राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचना के आधार हैं। इन्हीं के अनुसार सोवियत संघ की सरकार की नीति का निर्धारण होगा। ये संघ व संघातरित गणराज्यों की सरकारों के लिए मार्ग-दर्शक रेखायें हैं, जिन पर उन्हें चलना ही चाहिए। परन्तु ये उस अर्थ में मूलभूत (fundamental) नहीं हैं, जिसमें कि भारत व संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिकों के मूल अधिकार हैं। उन अधिकारों को न्यायालयों द्वारा मनवाया जा सकता है; इन सिद्धान्तों के लागू कराने में देश के न्यायालय कोई भाग नहीं रख सकते। इस दृष्टि से ये सिद्धान्त भारत के संविधान में दिये गये राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों से मिलते हैं। इस प्रकार के नीति सम्बन्धी सिद्धान्त अन्य राज्यों के संविधानों में भी मिलते हैं। परन्तु इन सिद्धान्तों व राज्य नीति के निर्धारक सिद्धान्तों में एक अन्तर यह है कि राज्य नीति के सिद्धान्त तो सरकारों की नीति-निर्धारण में मार्गदर्शन ही करते हैं, किन्तु ये मार्ग-दर्शन करने के अतिरिक्त देश की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक संरचना के आधार भी हैं। अतः वे उसके स्वरूप व ध्येय को भी परिभाषित करते हैं। संक्षेप में, ये बताते हैं कि विकसित समाजवादी राज्य (प्रजातन्त्र) का रूप क्या है और वह साम्यवाद के ध्येय की ओर किस प्रकार आगे बढ़ेगा।

4. Articles 19–27.
5. Articles 28–32.

३. नये संविधान की विशेषतायें

इसकी दो विशेषताओं का सविस्तार विवेचन तो पूर्वगामी सैक्शन में किया जा चुका है : प्रथम, संविधान निर्मित व लिखित है और दूसरे, इसमें प्रस्तावना के साथ सामाजिक नीति---राजनीतिक पद्धति, आर्थिक पद्धति, विदेश नीति और प्रतिरक्षा नीति—के आधारभूत व मार्ग-दर्शक सिद्धान्त दिये गये हैं। फिर भी उनसे सम्बन्धित दो विशेषताओं की ओर ध्यान देना आवश्यक है :

(१) जबकि सन् १९३६ के संविधान की धारा १ के अनुसार सोवियत संघ को श्रमिकों और किसानों का समाजवादी राज्य बताया गया था, नये संविधान में उसे सम्पूर्ण जनता का राज्य कहा गया है। यह ऐसा राज्य है जो श्रमिकों, किसानों, बुद्धिजीवियों तथा देश के सभी राष्ट्रों व उप-राष्ट्रों के श्रमिकजनों की इच्छा और हितों की अभिव्यक्ति करता है। आज सोवियत संघ में श्रमिक वर्ग की कुल जनसंख्या का २/३ भाग है, जो शिक्षित, तकनीकी दृष्टि से सक्षम और राजनीतिक दृष्टि से परिपक्व है और उसका राज्य के मामलों व उसके संचालन में भाग बहुत बढ़ गया है। किसानों में भी ऐसा ही परिवर्तन हुआ है। सामूहिक फार्म के किसान की मानसिक बनावट अब समाजवाद पर आधारित है। वह शिक्षित भी है और उसे नई तकनीकी सुविधायें प्राप्त हैं। साम्यवाद के निर्माण में बुद्धिजीवियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। जनता के इन सभी वर्गों के बीच अब न टूटने वाली मित्रता है।

(२) संविधान के अध्याय ४ में विदेश नीति से सम्बन्धित सिद्धान्त दिये गये हैं; जिनका पूर्वगामी सैक्शन में परिगणन किया जा चुका है। यह पहला संविधान है जिसमें कहा गया है कि सोवियत संघ समाजवाद की विश्व पद्धति का एक भाग है। अतः यह अन्य समाजवादी देशों के साथ मित्रता, सहयोग और साथियों जैसी सहायता को समाजवादी अन्तर्राष्ट्रवाद के आधार पर प्रोत्साहन देता है और उन्हें सुदृढ़ बनाता है। इस अध्याय के संविधान में सम्मिलित किये जाने की आवश्यकता इस कारण से अनुभव हुई कि सोवियत संघ की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति अति महत्वपूर्ण हो गई है और विश्व राजनीति में उसका प्रभाव बहुत अधिक बढ़ा है।

यद्यपि देश की विदेश नीति का इस प्रकार से संविधान में सविस्तार वर्णन करना एक अनोखी बात है, भारतवासियों के लिए यह सन्तोष की बात है, क्योंकि भारत के संविधान में विदेश नीति से सम्बन्धित राज्य नीति का एक निदेशक सिद्धान्त है। संविधान की अन्य विशेषताओं का विवेचन इसी संख्या क्रम में निम्नलिखित है।

(३) सर्वोच्च सोवियत के निर्वाचन हेतु आयु की योग्यता में परिवर्तन किया गया है। सन् १९३६ के संविधान की धारा १३५ के अन्तर्गत कोई भी ऐसा नागरिक चुनाव में खड़ा हो सकता था जिसकी आयु कम से कम २३ वर्ष थी। नये संविधान की धारा ९६ के अनुसार यह आयु सीमा घटाकर २१ वर्ष कर दी गई। इसी प्रकार अन्य सोवियतों के लिए चुने जाने वालों की आयु २१ वर्ष से घटाकर १८

वर्ष कर दी गई है। इस प्रकार के अन्तर का कारण यह है कि सर्वोच्च सोवियत सम्पूर्ण देश के लिए कानून बनाती है, अतः उसके लिए अधिक परिपक्वता की आवश्यकता है।

(४) नागरिकों के अधिकारों से सम्बन्धित प्राविधान विशेष महत्व रखते हैं। सन् १९३६ के संविधान में इस पहलू से सम्बन्ध रखने वाला अध्याय १० था और उसका शीर्षक था 'नागरिकों के मूल अधिकार व कर्त्तव्य'। नये संविधान के भाग २ में इस विषय से सम्बन्धित धारायें हैं और उसका शीर्षक है : 'राज्य और व्यक्ति' इससे अधिकारों के प्रति संविधान निर्माताओं की आधारभूत पहुँच (basic approach) में परिवर्तन का पता लगता है। इस भाग के प्रथम अध्याय का सम्बन्ध 'नागरिकता और नागरिकों की समता' से है। इसके दूसरे अध्याय में 'नागरिकों के आधारभूत अधिकार, उनकी स्वतन्त्रतायें व उनके कर्त्तव्य दिये गये हैं। दोनों संविधानों में दिये गये अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने के बाद यह कहना उचित होगा कि अब उनमें बहुत सुधार किया गया है। इस अध्याय में नागरिकों के सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को जनता के जीवन की आवश्यकताओं से जोड़कर विशद रूप में दिया गया है। नागरिकों के अधिकारों में सुधार और विस्तार देश में विकसित समाजवाद के निर्माण से सम्भव हुआ है।

नया संविधान 'पूर्वगामी की भाँति' इस आधार पर बना है कि नागरिकों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का प्रयोग देश की सामाजिक पद्धति के विरुद्ध कभी भी नहीं किया जा सकता और न कभी इस प्रकार से कि सोवियत जनता के हितों को ही हानि पहुँचे। इसी कारण संविधान में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि नागरिकों द्वारा उनके अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का प्रयोग उनके कर्त्तव्यों के पालन और दायित्वों से कभी भी पृथक् नहीं हो सकता। अधिकारों के प्रयोग से समाज व राज्य के हितों को हानि नहीं पहुँचनी चाहिए और न ही उससे दूसरे नागरिकों के अधिकारों में हस्तक्षेप होना चाहिए। नागरिक को राजनीतिक स्वतन्त्रताओं की प्रत्याभूति श्रमिकों के हितों से मेल खाते हुए रूप में दी गई है और उनका प्रयोजन समाजवादी पद्धति को समेकित करना है। नागरिकों के अधिकारों, उनकी स्वतंत्रताओं और उनके कर्त्तव्यों का विस्तारपूर्वक विवेचन अध्याय ४ में किया गया है।

(५) नये संविधान में यह बात स्पष्ट रूप में कही गई है कि सोवियत संघ में साम्यवादी दल की भूमिका नेतृत्व व मार्ग-दर्शन प्रदान करने वाली (leading and guiding role of the Communist Party) है। इस संविधान में, जैसा कि पूर्वगामी संविधान में न था, सोवियत समाज व राज्य साम्यवादी दल की यथार्थ स्थिति को पारिभाषित किया गया है। इस प्रकार की व्यवस्था चीन के सन् १९७५ में बने संविधान में भी है।

(६) सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि नया संविधान सोवियत संघ में विकसित समाजवादी समाज (developed socialist society) के निर्मित हो जाने के आधार पर बना है। इसे सम्पूर्ण जनता का राज्य घोषित किया गया है और इसका सर्वोच्च ध्येय साम्यवाद की स्थापना बताया गया है। 'समाजवादी निर्माण की प्रारम्भिक मंजिलों में सोवियत जनता को अपने सभी साधनों और प्रयत्नों को अत्यन्त अविलम्ब कार्यों पर केन्द्रीभूत करना पड़ा, ये ऐसी बातें थीं जिन पर कि राज्य का अस्तित्व ही निर्भर था। आज विकसित समाजवाद की दशाओं में यह सम्भव हो सका है कि जनता की अनेक और विभिन्न भौतिक व सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में देश की अर्थ-व्यवस्था को मोड़ा जा सका है। दूसरे शब्दों में, समाजवादी उत्पादन के सर्वोच्च ध्येय को आज साम्यवादी दल की नीति के अनुसार केन्द्रीय महत्व प्रदान किया जा सका है। उत्पादन के ढंग व जीवन शैली के रूप में समाजवाद के ऐतिहासिक लाभों व उसके मानवतावादी सार का अब अधिक पूर्णता और नाटकीय रूप में पता लगा है। सोवियत जनता का भौतिक व आध्यात्मिक जीवन एक अति ऊँचे स्तर तक उठ गया है।'[6]

अन्त में, नये संविधान में शासन के विभिन्न अंगों के बारे में बहुत कम प्राविधान दिये गये हैं। शासन की प्राय: सभी संस्थायें पूर्ववत कायम रहेंगी और किसी नई संस्था की रचना नहीं की गई है। सोवियत संघ की शासन पद्धति पहले जैसी ही है। अतएव उसकी मुख्य विशेषतायें वही हैं जो सन् १९३६ के संविधान के अन्तर्गत थीं और जिनका विवेचन पूर्वगामी अध्याय में किया जा चुका है। फिर भी हम यहाँ पर उल्लेख करना ही आवश्यक व पर्याप्त समझते हैं: (१) सोवियत संघ एक संघात्मक (federal) राज्य है। (२) इसकी शासन पद्धति पाश्चात्य नमूनों—सांसद, राष्ट्रपतीय व स्विस—में से किसी के भी समान नहीं है। केवल देखने में ही इसकी शासन संस्थायें सांसद नमूने की हैं। (३) शासन की तीनों प्रमुख शाखाओं के बीच शक्तियों का पृथक्करण नहीं (no separation of powers) है। (४) शासन का आधार प्रजातन्त्रात्मक केन्द्रवाद (democratic centralism) का सिद्धान्त है। (५) सोवियत संघ में एक नये प्रकार का प्रजातन्त्र है। जिसका आधार आर्थिक अधिक है और राजनीतिक स्वतन्त्रतायें सीमित रूप में। (६) संविधान में संशोधन

'In the initial stages of socialist construction the Soviet people had to concentrate their resources and efforts on the most urgent tasks on which our state depended for its very existence....Today, in the conditions of developed socialism......it has been possible to achieve an appreciable swing of the economy towards the ever fuller satisfaction of the people's many and varied material and cultural requirements......The Soviet people's material and spiritual has risen to a new, incomparably higher level.' *L. I. Brezhnev* : in 'A Historic Stage on the Road to Communism' Soviet Review, No. 56-7, pp. 11–12.

की विधि सरल व सुसंशोध्य है, जबकि संघात्मक संविधानों में यह दु:संशोध्य होती है और होनी चाहिए। (७) सोवियत संघ में कानून की धारणा भी पाश्चात्य देशों की धारणा से भिन्न है और इसकी न्यायपालिका न तो स्वतन्त्र है और न ही उसका वह महत्व है जो कि संघात्मक संविधान में होना चाहिए।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. सोवियत संघ के नये संविधान का निर्माण किस प्रकार हुआ ?
२. नये संविधान की प्रस्तावना और उसकी विषय सूची का वर्णन कीजिए।
३. संविधान में दिये गए राजनीतिक पद्धति के मुख्य सिद्धान्तों का विवेचन कीजिए और उनका महत्व बताइए।
४. संविधान में दिये गये आर्थिक पद्धति के सिद्धान्त क्या हैं ? उनका महत्व समझाइए।
५. विदेश नीति और प्रतिरक्षा के बारे में संविधान में दिये गये नीति के सिद्धांन्तों का उल्लेख कीजिए और उनका महत्व बताइये।
६. नये संविधान की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
७. सोवियत संघ के नये संविधान का महत्व समझाइए।
८. सोवियत संघ के शासन की मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त किन्तु आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

—:o:—

३. सोवियत संघ की सरकार

१. संघीय विधायिका—सर्वोच्च सोवियत

सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत (Supreme Soviet of the USSR) राजकीय सत्ता का उच्चतम निकाय है।[1] यह दो सदन वाली विधायिका है; सदनों के नाम ये हैं : लोकप्रिय सदन—संघ की सोवियत (Soviet of the Union) और उच्च सदन—राष्ट्रीयताओं की सोवियत (Soviet of Nationalities)। जबकि पूर्वगामी संविधान के अन्तर्गत दोनों सदनों की सदस्य संख्या में अन्तर था। (सन् १९५० में चुनी गई संघ की सोवियत और राष्ट्रीयताओं की सोवियत में सदस्यों की संख्या क्रमशः ६७१ और ६५७ थी) नये संविधान की धारा ११० के अनुसार दोनों सदनों के सदस्यों की संख्या सम होगी। संघ की सोवियत का निर्वाचन तो सम्पूर्ण जनसंख्या द्वारा बराबर संख्या वाले निर्वाचन-क्षेत्रों से होगा। राष्ट्रीयताओं की सोवियत में विभिन्न संघांतरित इकाइयों का प्रतिनिधित्व निम्न आधार पर होगा :

प्रत्येक संघीय गणराज्य	३२ प्रतिनिधि
,, स्वशासी ,,	११ ,,
,, स्वशासी प्रदेश	५ ,,
,, स्वशासी क्षेत्र	१ ,,

सर्वोच्च सोवियत के दोनों सदनों में श्रमिकजनों के प्रायः सभी मुख्य विभागों का प्रतिनिधित्व होता है। सन् १९७० में चुनी गई सर्वोच्च सोवियत में १५१७ निर्वाचित प्रतिनिधि थे; उनमें विभिन्न समूहों का प्रतिनिधित्व इस प्रकार था—उद्योगों में काम करने वाले श्रमिक ४८१; किसान २८२; वैज्ञानिक, कलाकार, लेखक आदि १४६; सोवियत संस्थाओं के कार्यकारी अधिकारी (executives) २१७; सैनिक अधिकारी ५७; फैक्टरियों के प्रबन्धक और विशेषज्ञ ७३; सोवियत साम्यवादी दल के अधिकारी २४१; और ट्रेड यूनियनों व युवा साम्यवादी लीग के प्रतिनिधि २०। सन् १९६२ में चुनी गई सर्वोच्च सोवियत के प्रतिनिधियों का व्यवसाय-वार वितरण अग्रांकित तालिका में दिखाया गया है :

1. *'The highest body of state authority of the U.S.S.R. shall be the Supreme Soviet of the U.S S.R.'* Article–108.

व्यवसाय	प्रतिनिधियों की संख्या
हाथ से काम करने वाले, खान खोदने वाले, इत्यादि	२८५
साम्यवादी दल का पूरा समय काम करने वाले अधिकारी	२७४
सरकारी अधिकारी	२३२
किसान और फार्मों में काम करने वाले	२१९
राजकीय व सामूहिक फार्मों के संचालक	११७
सैनिक अधिकारी	६३
संस्थानों व अस्पतालों आदि के संचालक	२५
फैक्टरियों के संचालक	१५
अन्य	३४
योग	१,४४३

प्रत्येक सदन सदस्यों के चुनाव की वैधता की जांच करने के लिए एक प्रमाणीकरण समिति (Credentials Commission) को चुनता है; यह समिति सदस्यों (deputies) के चुनावों की वैधता से सम्बन्धित प्रश्नों पर निर्णय देती है। यदि किसी मामले में चुनाव कानून का उल्लंघन किया गया हो तो सम्बन्धित सदस्य के चुनाव को यह समिति अवैध घोषित करती है।

संगठन (Organisation)—सर्वोच्च सोवियत का प्रत्येक सदन एक चेयरमैन और चार वाइस चेयरमैन चुनता है। प्रत्येक सदन का सभापति अपने सदन में बैठकों का सभापतित्व व संचालन करता है। संयुक्त बैठकों में दोनों सदनों के सभापति वैकल्पिक क्रम से (alternatively) सभापतित्व करते हैं। सर्वोच्च सोवियत के सत्र वर्ष में दो बार होते हैं। उसके विशेष सत्र उसकी प्रेसीडियम (Presidium) के द्वारा उसके विवेक में अथवा किसी संघीय गणतन्त्र (Union Republic) या किसी सदन के १/३ सदस्यों की प्रार्थना पर बुलाये जा सकते हैं। सर्वोच्च सोवियत के सत्र में उसकी संयुक्त बैठकें, दोनों सदनों की पृथक बैठकें और सदनों व सर्वोच्च सोवियत की स्थायी समितियों (Standing Commissions) की बैठकों को सम्मिलित किया जाता है। उसकी बैठकों में प्रायः सभी सदस्य भाग लेते हैं और उनमें से अनेक विचाराधीन प्रश्नों पर बोलते हैं। उसके सत्र खुले होते हैं; सोवियत नागरिक, सार्वजनिक संगठनों के नेता, विदेशी दूतालयों के सदस्य और सोवियत तथा विदेशी समाचार-पत्रों व रेडियो के प्रतिनिधि उनमें दर्शक रहते हैं। उसके सत्र साधारणतया अल्प-कालीन ८–१० दिन चलने वाले होते हैं। उसकी बैठकों में सांसद पद्धति वाले देशों की विधायिकाओं की भांति खुलकर वाद-विवाद नहीं होता और न ही सरकार की विपक्ष द्वारा आलोचना, क्योंकि वहाँ इस प्रकार का अन्तर ही नहीं है।

सर्वोच्च सोवियत की शक्तियाँ तथा उसके अन्य कार्य (Powers and functions)—सर्वोच्च सोवियत को सोवियत संघ के अधिकार-क्षेत्र में आने वाले सभी मामलों के बारे में निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त है। संविधान को अंगीकार करना व उसमें संशोधन करना; नये संघीय या स्वशासी गणतन्त्रों, प्रदेशों व क्षेत्रों के संघ में प्रवेश और उनका निर्माण; आर्थिक व सामाजिक विकास के लिए राजकीय योजनाओं की स्वीकृति; संघ के बजट की स्वीकृति; उसके प्रति उत्तरदायी निकायों की स्थापना, ऐसे विषय हैं जिन पर सर्वोच्च सोवियत को ही अनन्य शक्ति प्राप्त है। संघ के लिए कानून सर्वोच्च सोवियत ही बनाती है अथवा उन्हें सर्वोच्च सोवियत के निर्णय के आधार पर कराये गये लोक-निर्णय (referendum) द्वारा बनाया जाता है।[2]

इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि सर्वोच्च सोवियत के दोनों सदनों की शक्तियाँ पूर्णतया समान हैं। इसी कारण उन्हें उच्च व निम्न नहीं कहा जाता (There is no such thing as an upper and lower house)। दोनों सदनों में विचाराधीन प्रश्न पर मतदान अलग-अलग होता है, जिससे कि दोनों सदनों के अन्तर व क्षमता की रक्षा की जा सके। दूसरी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि सरकारी सूत्रों के अनुसार सर्वोच्च सोवियत तीन प्रमुख कार्य करती है—प्रथम, वह कानून (laws) बनाती है। दूसरे, वह आज्ञप्तियाँ (decrees) स्वीकार करती हैं; इसमें अधिकारियों की नियुक्ति व पदच्युति सम्बन्धी कार्य सम्मिलित हैं। तीसरे, सर्वोच्च सोवियत के देख-रेख सम्बन्धी कार्य हैं; इसमें सर्वोच्च सोवियत के अधीन संगठनों की रिपोर्टों की स्वीकृति सम्बन्धी प्रस्ताव आदि आते हैं।[3] अतएव सर्वोच्च सोवियत की प्रथम महत्वपूर्ण शक्ति कानून पास करने (legislative power) की है।

सर्वोच्च सोवियत की विधि निर्माण सम्बन्धी अन्य महत्वपूर्ण शक्तियाँ इस प्रकार हैं—(१) देश के आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का निदेशन करने के हेतु सर्वोच्च सोवियत निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में आधारभूत सिद्धान्तों (basic principles) का निर्धारण करती है—भूमि-व्यवस्था (land tenure), वन, खनिज

2. 'Laws of the USSR shall be enacted by the Supreme Soviet of the USSR or by a nationwide vote (referendum) held by a decision of the Supreme Soviet of the USSR.' Article 108.

3. 'According to Soviet Official sources there are three categories of Supreme Soviet business : Laws; defined as 'Acts of Supreme Legislation.'; Decrees, defined as 'Acts of Supreme Administration'; and a third category described as 'Acts of Supreme Supervision'. The second category consists of acts making or confirming appointments, the third of resolutions—which in practice are usually also called Decrees—for the approval of reports from organisations subordinate to the Supreme Soviet.' *Dereck J. R. Scott* : Russian Political Institutions, p. 105.

व जल आदि के प्रयोग के बारे में, जिन पर सम्पूर्ण जनता का अधिकार स्थापित हो गया है। (२) सर्वोच्च सोवियत शिक्षा व सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं, श्रम, न्याय-पद्धति और कानूनी-प्रक्रिया के सम्बन्ध में मूलभूत सिद्धान्तों (Fundamental principles) की स्थापना करती है। (३) संघीय नागरिकता, विदेशियों के अधिकार, विवाह और परिवार के सम्बन्ध में विधि-निर्माण के सिद्धान्तों का निर्धारण भी सर्वोच्च सोवियत के अधिकार-क्षेत्र में आता है।

सर्वोच्च सोवियत के अन्य कार्यों में ये महत्वपूर्ण हैं—(अ) संघीय गणतन्त्रों की सीमाओं में परिवर्तनों का अनुसमर्थन (confirmation), संघीय गणतन्त्रों के विदेशी राज्यों से सम्बन्ध स्थापना के लिए साधारण सिद्धान्तों का निर्धारण। (आ) सर्वोच्च सोवियत का सोवियत संघ के संविधान के पालन पर नियन्त्रण है और उसे यह भी देखना होता है कि संघीय गणतन्त्रों के संविधान सोवियत संघ के संविधान के विरुद्ध न हों। (इ) सर्वोच्च सोवियत को राज्य के सभी अंगों व अधिकारियों के ऊपर सर्वोच्च नियन्त्रण की शक्तियाँ प्राप्त हैं। इसी अधिकार की पूर्ति के हेतु वह प्रेसीडियम द्वारा सर्वोच्च सोवियत के दो सत्रों के बीच में जारी की गई आज्ञप्तियों के बारे में रिपोर्ट सुनती है और उनका अनुसमर्थन करती है। (ई) सोवियत संघ की मन्त्रि-परिषद् सर्वोच्च सोवियत के प्रति उत्तरदायी है। इस प्रकार सर्वोच्च सोवियत संघ सरकार पर नियन्त्रण करती है। उसके नियन्त्रण का प्रयोग ४ प्रकार से होता है—(१) सर्वोच्च सोवियत मन्त्रियों को नियुक्त करती है। (२) उसके दोनों सदनों की स्थायी समितियाँ सरकार के प्रशासनिक कार्यों पर नियन्त्रण करती हैं। (३) सर्वोच्च सोवियत के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न (interpellations) पूछ सकते हैं और इस अधिकार का बहुधा प्रयोग किया जाता है। (४) सर्वोच्च सोवियत प्रशासनिक कार्यों की छानबीन कराने के हेतु आयोग (investigating commissions) भी नियुक्त कर सकती हैं। (उ) दोनों सदन संयुक्त बैठक में प्रेसीडियम को चुनते हैं। (ऊ) सर्वोच्च सोवियत संघ के सर्वोच्च न्यायालय और विशेष न्यायालयों के न्यायाधीशों को चुनती है। (ए) सर्वोच्च सोवियत संघ के प्रोक्यूरेटर-जनरल को भी नियुक्त करती है। (ऐ) सर्वोच्च सोवियत संघीय संविधान में संशोधन करती है। (ओ) प्रतिवर्ष सर्वोच्च सोवियत राज्यीय बजट (State Budget) पर कानून स्वीकार करती है अर्थात् करों और आय स्रोतों का निर्धारण करती है और व्यय पर स्वीकृति देती है। सोवियत संघ में बजट आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की वित्तीय योजना होता है।

सर्वोच्च सोवियत की प्रक्रिया सम्बन्धी बातें—विधि-निर्माण हेतु पहल करने का अधिकार दोनों सदनों, सर्वोच्च सोवियत की प्रेसीडियम, सर्वोच्च सोवियत की मन्त्रि-परिषद्, संघीय गणतन्त्रों को राजकीय सत्ता के उच्चतर निकायों द्वारा, सर्वोच्च सोवियत की समितियों, सदनों की स्थायी समितियों, सर्वोच्च सोवियत के सदस्यों, सर्वोच्च सोवियत के सर्वोच्च न्यायालय व उसके प्रोक्यूरेटर-जनरल में

निहित है। सार्वजनिक संगठन भी अपने अखिल-संघीय निकायों द्वारा इस अधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। विधेयकों और अन्य मामलों पर जो कि सर्वोच्च सोवियत में पेश किये जाते हैं सदनों में पृथक् से अथवा उनकी संयुक्त बैठकों में वाद-विवाद होता है। आवश्यकतानुसार किसी विधेयक या विचाराधीन विषय को प्रारम्भिक अथवा अतिरिक्त विचार हेतु एक या अधिक समितियों को सुपुर्द किया जा सकता है। किसी भी विधेयक को तब पारित माना जाता है जबकि सदन की कुल संख्या का बहुमत उसके पक्ष में मत देता है। सर्वोच्च सोवियत के निर्णयों व अन्य कार्यों को भी उसकी कुल सदस्य संख्या के बहुमत से ही अंगीकार किया जाता है।

सर्वोच्च सोवियत के निर्णय या प्रेसीडियम के पहल या संघीय गणतन्त्र के प्रस्ताव पर किसी विधेयक या महत्वपूर्ण मामले को राष्ट्रव्यापी वाद-विवाद (nationwide discussion) के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। सर्वोच्च सोवियत के दोनों सदनों की शक्ति बराबर है। यदि किसी विचाराधीन मामले (प्रश्न) पर दोनों सदनों के बीच मतभेद पैदा हो जाए तो उस मामले को दोनों सदनों के बराबर सदस्यों से बनी समझौता समिति (conciliation commission) को उस पर फैसला करने के लिए सौंपा जाएगा। उसके बाद उस मामले पर दोनों सदन संयुक्त बैठक में विचार करेंगे। यदि फिर भी समझौता न हो सके तो उस मामले को सर्वोच्च सोवियत द्वारा अगले सत्र में विचार हेतु स्थगित कर दिया जाएगा या सर्वोच्च सोवियत उस पर राष्ट्रव्यापी मतदान (referendum) करा सकेगी। सोवियत संघ के कानूनों और सर्वोच्च सोवियत के निर्णयों को विभिन्न संघीय गणतन्त्रों की भाषाओं में प्रकाशित कराया जाता है।

सर्वोच्च सोवियत की कार्य-सूची (agenda) में कानून बनाने के प्रस्ताव (Bills) बहुत कम होते हैं, उसकी कार्य-सूची में अधिकतर विषय सरकारी कार्यों की रिपोर्टें सुनने से सम्बन्धित होते हैं। साधारणतया रिपोर्ट को कोई मन्त्री प्रस्तुत करता है; उसके बाद कोई सदस्य खड़ा होकर उसके कुछ पहलुओं की प्रशंसा करता है और प्रस्ताव पेश करता है कि उसे स्वीकार कर लिया जाए। यह प्रस्ताव साधारणतया सर्वसम्मति से स्वीकृत हो जाता है। सर्वोच्च सोवियत इतने कम कानून पास करती है कि इसका विधि-निर्माण सम्बन्धी कार्य महत्वहीन समझा जाता है। उदाहरण के लिए, सर्वोच्च सोवियत ने सन् १६५८ में अपने प्रथम सत्र में केवल ५ कानून पास किए, जिसमें से एक वार्षिक बजट के बारे में था, दूसरे का सम्बन्ध दो गणराज्यों की सीमा में परिवर्तन, तीसरे और चौथे प्रेसीडियम के आदेशों की स्वीकृति तथा पाँचवें का संविधान के संशोधन से सम्बन्ध था। इनके अतिरिक्त सर्वोच्च सोवियत मन्त्रि-परिषद् व प्रेसीडियम द्वारा जारी की गई आज्ञप्तियों पर औपचारिक स्वीकृति प्रदान करती है। कानूनी प्रस्तावों पर दोनों सदनों में थोड़ा सा वाद-विवाद होता है और उसके बाद उन पर मतदान कराया जाता है। मतदान पहले प्रत्येक धारा पर होता है और अन्त में सम्पूर्ण विधेयक पर।

साधारण वाद-विवाद के दौरान ५० सदस्यों के प्रत्येक समूह को एक रिपोर्टर छाँटने का अधिकार है, जो वाद-विवाद में भाग लेता है। इन रिपोर्टरों को आरम्भ में १–१ घण्टे तक भाषण देने और वाद-विवाद के बाद आधे-आधे घण्टे तथा सारांश देने के लिए समय मिलता है। कुछ ज्येष्ठ सदस्यों की एक समिति (Council of Elders) कार्य-सूची तैयार कराती है। सर्वोच्च सोवियत का कोई भी सदस्य किसी मन्त्री से सूचना माँग सकता है। सम्बन्धित मन्त्री या अधिकारी, जिसे कोई पूछताछ सम्बोधित की जाती है, के लिए उसका मौखिक या लिखित उत्तर देना आवश्यक है। वास्तव में सन् १९५७ तक कभी भी मन्त्रियों से प्रश्न नहीं पूछे गये थे। अब भी प्रश्नों की संख्या बहुत कम होती है और उनका उद्देश्य केवल साधारण सूचना पाना होता है। यद्यपि अंग्रेजी में इस अधिकार को फ्रांस की तरह "इण्टरपैलेशन" (interpellation) कहा गया है, किन्तु सर्वोच्च सोवियत में फ्रांस की पार्लियामेंट की तरह प्रश्न पूछने का परिणाम कभी भी वाद-विवाद अथवा मन्त्री का अपदस्थ होना नहीं होता।

नई सर्वोच्च सोवियत के प्रथम सत्र में साधारणतया इस कार्यक्रम का पालन होता है। सर्वोच्च सोवियत के चुनाव के बाद पहले दोनों सदनों की बैठक अलग-अलग होती हैं जिनमें वे अपने अधिकारियों का चुनाव करते हैं, कार्य-सूची अथवा समय-क्रम को स्वीकार करते हैं और समितियों की छाँट करते हैं। अगली बैठक में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक होती है, जिसमें बजट पर रिपोर्ट सुनी जाती है। इस दौरान सदस्य अपने सुझाव देते हैं और बजट प्रस्तावों की साधारण आलोचना भी करते हैं। इसके बाद वित्त मन्त्री आलोचना का उत्तर देता है और सुझावों के सम्बन्ध में कुछ आश्वासन भी। अन्त में, दोनों सदनों की अलग-अलग बैठकें होती हैं, जिनमें बजट स्वीकार कर लिया जाता है। इसके बाद दोनों सदनों की पृथक् बैठकों में प्रेसीडियम द्वारा जारी की गई आज्ञप्तियों पर स्वीकृति दी जाती है और कुछ कानून भी पास किये जाते हैं। सत्र की अन्तिम बैठक में सर्वोच्च सोवियत प्रेसीडियम के सदस्यों के नामों की सूची पर स्वीकृति प्रदान करती है और इसी प्रकार मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों के नाम भी स्वीकार कर लिए जाते। कभी-कभी महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों के सम्बन्ध में भी सर्वोच्च सोवियत प्रस्ताव (resolution) स्वीकार करती है।

सर्वोच्च सोवियत की स्थायी समितियाँ (Standing Commissions)—अन्य राज्यों की विधायिकाओं की तरह सोवियत संघ भी सर्वोच्च सोवियत समितियों का प्रयोग करती है। सर्वोच्च सोवियत के सत्रों के अन्तकाल में भी ये समितियाँ अपने कार्य करती रहती हैं। दोनों सदन अपनी-अपनी स्थायी समितियाँ नियुक्त करते हैं; उनमें से मुख्य समितियाँ ये हैं—विधायी प्रस्ताव समिति, बजट समिति, प्रमाणीकरण समिति (Credentials Commission), वैदेशिक मामलों की समिति प्रश्नों पर प्रारम्भिक विचार करती हैं और उन्हें सदन के समक्ष पेश करने के लिए तैयार करती हैं। सदन ही उन पर अन्तिम निर्णय करते हैं। इस प्रकार समितियों को

विधायी प्रस्तावों को आरम्भ करने का अधिकार प्राप्त है। समितियाँ प्रशासनिक विभागों तथा अधिकारियों से विधायी प्रस्तावों के सम्बन्ध में सरकारी आलेख व सामग्री और लिखित सूचना माँग सकती हैं। इसी बीच में वे सरकार और विभिन्न वैज्ञानिक तथा सार्वजनिक संगठनों के प्रतिनिधियों की रिपोर्ट भी सुनती हैं। समितियों में सभी विषयों पर निर्णय बहुमत से किये जाते हैं। प्रत्येक समिति अपने कार्यों के लिए सम्बन्धित सदन के प्रति उत्तरदायी होती है और सत्रों के अन्तर्काल में सदन के सभापति के प्रति।

विधायी प्रस्ताव समितियाँ (Legislative Proposals Commissions)—ये स्वयं विधायी प्रस्ताव तैयार करती हैं और अन्य अंगों द्वारा पेश किये गये प्रस्तावों पर भी विचार करती हैं। ये विचारहीन प्रस्तावों के सम्बन्ध में नागरिकों द्वारा भेजे गये पत्रों पर भी ध्यान देती हैं। दोनों १०–१० सदस्यों की विधायी प्रस्ताव समितियाँ नियुक्त करते हैं। **बजट समितियों** के कार्य का बड़ा महत्व है। प्रतिवर्ष ये सरकार द्वारा तैयार किये गये बजट की जाँच करती हैं, गत वर्ष के बजट की क्रियान्विति की रिपोर्टों पर विचार करती हैं और नये बजट की आय तथा व्यय की मदों पर भी विचार करती हैं। समितियाँ अपने निष्कर्षों के बारे में सम्बन्धित सदन को रिपोर्ट देती हैं। प्रत्येक सदन की बजट समिति में १३ सदस्य होते हैं। **वैदेशिक मामलों की समितियाँ** वैदेशिक नीति सम्बन्धी सभी प्रश्नों पर प्रारम्भिक विचार करती हैं। उनके सम्बन्ध में कभी-कभी आवश्यक कानून और प्रस्ताव भी ये समितियाँ पेश कर सकती हैं। संघ की सोवियत और राष्ट्रीयताओं में क्रमशः ११ और १० सदस्य होते हैं।

सदस्यों के विशेष अधिकार और कर्त्तव्य—सोवियत संघ के संविधान के अन्तर्गत सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार अथवा विमुक्तियाँ (immunities) प्राप्त हैं। सर्वोच्च सोवियत का कोई सदस्य जिन दिनों उसका सत्र होता है, उसकी सहमति के बिना न तो बन्दी बनाया जा सकता है और न ही उसके विरुद्ध अन्य कानूनी कार्यवाही की जा सकती है। जिन दिनों सर्वोच्च सोवियत का सत्र नहीं होता, सदस्यों को बन्दी बनाने तथा उनके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये प्रेसीडियम की सहमति आवश्यक है। सदस्यों के कुछ विशेष कर्त्तव्य भी हैं। प्रत्येक सदस्य को चुने जाने पर उसके निर्वाचक आदेश (mandate) भी दे सकते हैं अर्थात् उसे क्या कार्य करने हैं इस सम्बन्ध में निर्वाचक सुझाव दे सकते हैं और उसका यह कर्त्तव्य है कि वह उन्हें पूरा करने के लिये प्रयत्न करे। जन प्रतिनिधियों की सोवियतें (सर्वोच्च सोवियत) तथा अन्य निर्वाचकों के आदेशों की परीक्षा करती हैं, आर्थिक व सामाजिक विकास की योजनाओं व बजट को तैयार करते समय वे उनका ध्यान रखती हैं; उनके कार्यान्वयन को संगठित करती हैं और नागरिकों को इस बारे में सूचित करती हैं।

सोवियतों के सदस्यों जनता निर्वाचकों के सर्वशक्तिमान प्रतिनिधि (plenipotentiary representatives) हैं। वे राज्य सम्बन्धी मामलों, सामाजिक व आर्थिक विकास के कार्यों पर निर्णय लेते हैं और सोवियतों के निर्णयों के कार्यान्वयन को भी संगठित करते हैं। सदस्य इन कार्यों को अपने नियमित रोजगार या कर्त्तव्यों का पालन करते हुए ही करते हैं। सोवियत के सत्र के दौरान उन्हें नियमित रोजगार या कर्त्तव्य पालन से मुक्त कर दिया जाता है। उन्हें अपने काम करने के स्थायी स्थान पर उन दिनों के लिए औसत आय पाने का अधिकार है। कोई भी सदस्य उपयुक्त राजकीय निकायों व अधिकारियों से पूछताछ कर सकता है, जिसका जवाव देना उनके लिए अनिवार्य है। सदस्यों के लिए ऐसी दशाओं को सुनिश्चित बनाया गया है जो उनके अधिकारों व कर्त्तव्य-पालन के प्रयोग को वाधारहित व प्रभावी वना सकें। सदस्यों की उन्मुक्तियों व उनके कार्यों से सम्वन्धित प्रत्याभूतियों (guarantees) को कानूनों (Law on the Status of Deputies and other legislature acts) में पारिभाषित किया गया है। सदस्यों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने कार्य तथा सोवियत के कार्यों के वारे में अपने निर्वाचकों तथा उन काम करने के सामूहिक संगठनो (Work-collectives) और सार्वजनिक संगठनों को जिन्होंने उनकी नामजदगी की, रिपोर्ट दें। ऐसे सदस्यों को जो अपने निर्वाचकों के विश्वास को न्यायोचित ठहराने में विफल रहें कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार अपने निर्वाचकों के वहुमत निर्णय से वापस वुलाया जा सकता है (May be recalled)। Articles 103-07.

२. कार्यपालिका-मन्त्रि परिषद्

रचना—सन् १९४६ से सोवियत संघ की कार्यपालिका के सदस्य, जो पहले जनता के कमिसार (People's Commissars) कहलाते थे, मंत्री कहलाने लगे। तभी से पाश्चात्य राज्यों की तरह मंत्रियों को सामूहिक रूप में **मंत्रि-परिषद्** (Council of Ministers) कहा जाने लगा। सम्पूर्ण परिषद् में एक सभापति अथवा प्रधान मंत्री (Chairman or Prime Minister), प्रथम उप-सभापति, उप-सभापति अनेक विभागीय मन्त्री तथा समितियों व आयोगों के अध्यक्ष (Heads of Committees and Commissions) होते हैं, जिनकी संख्या ३० के लगभग होती है। इसके अतिरिक्त १६ संघीय गणराज्यों के प्रधान-मन्त्री उसके पदेन सदस्य (ex-officio) होते हैं। इस प्रकार कुल मन्त्रियों की संख्या लगभग ५० होती है, जिनमें १६ पदेन होते हैं। प्रधान मन्त्री, उप-सभापतियों आदि से मिलकर एक प्रकार की आन्तरिक परिषद् (inner core) बनती है, जो सम्पूर्ण परिषद् का मार्ग-दर्शन करती है। मंत्रि-परिषद् नव-निर्वाचित सर्वोच्च सोवियत को उसके प्रथम सत्र में अपना त्याग-पत्र देती है; उसके बाद ही सर्वोच्च सोवियत की संयुक्त वैठक में मंत्रि-परिषद् का निर्माण होता है। मंत्रि-परिषद् सर्वोच्च सोवियत के प्रति और जब उसका सत्र न हो रहा हो (between sessions of the Supreme Soviet)

उसकी प्रेसीडियम के प्रति उत्तरदायी है। यह नियमित रूप से अपने कार्यों की रिपोर्ट सर्वोच्च सोवियत के सम्मुख रखती है।[4]

दो प्रकार के मंत्री (Two types of Ministers)—विभागीय मन्त्रियों में दो प्रकार के मन्त्री होते हैं—प्रथम, **अखिल संघीय मन्त्री** (All-Union Ministers) अर्थात् ऐसे विभागों अथवा मन्त्रालयों के मन्त्री जो केवल संघ सरकार के ही अधीन हैं (गणराज्यों में नहीं)। इन विभागों में मुख्य ये हैं—हवाई जहाज उद्योग, प्रतिरक्षा उद्योग, समुद्री बेड़ा, विदेशी व्यापार, रेडियो इंजीनियरिंग उद्योग, परिवहन, मशीन उद्योग, पैट्रोल उद्योग, संचार के सामान का उद्योग, कृषि मशीन उद्योग, रसायन उद्योग, बिजली उद्योग, कोयला उद्योग आदि। दूसरे, **संघीय-गणतन्त्रीय मन्त्री** (Union-Republic Ministers) अर्थात् उन विभागों के मन्त्री जो संघ तथा गणराज्यों दोनों ही सरकारों के अधीन होते हैं। इनमें कुछ मुख्य विभागों के नाम इस प्रकार हैं—आन्तरिक मामले, उच्चतर शिक्षा, राज्य-सुरक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, न्याय, हल्का उद्योग, खाद्य उद्योग, कृषि, राज्यीय फार्म, व्यापार, वित्त इत्यादि। इस प्रकार के मन्त्री भारत सरकार के भी होते हैं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, श्रम आदि विभागों के मन्त्री।

मन्त्रि-परिषद् में सबसे महत्वपूर्ण स्थान सभापति अथवा **प्रधान मन्त्री** का होता है। उसका पद अत्यधिक शानदार होता है। उसकी सिफारिश पर ही अन्य मन्त्रियों को मन्त्रि-परिषद् में लिया जाता है और उन्हें अपदस्थ भी किया जाता है। उप-सभापतियों में से एक वैदेशिक मामलों और दूसरा आन्तरिक मामलों से सम्बन्ध रखता है। अन्य उप-सभापतियों का सम्बन्ध भी विभागों में समन्वय स्थापित करने से है। मन्त्रि-परिषद् के प्रमुख मन्त्रियों से मिलकर उसकी **प्रेसीडियम** बनती है। प्रेसीडियम में पहले ९ सदस्य होते थे। अब धारा १३२ के अनुसार उसमें सभापति, प्रथम उप-सभापति और अन्य उप-सभापति होते हैं। यह मंत्रि-परिषद् की एक स्थायी समिति के रूप में कार्य करती है और इसका सम्बन्ध मुख्यतः अर्थव्यवस्था का मार्ग-दर्शन करने वाले प्रश्नों और राज्य प्रशासन के अन्य मामलों से है। प्रेसीडियम के सदस्य दल की प्रेसीडियम के भी प्रमुख सदस्य होते हैं। वास्तव में, इन्हीं के द्वारा दल मन्त्रि-परिषद् को अपनी नीति व निर्णयों से प्रभावित करता है अर्थात् ये मन्त्री मुख्यतः दल की इच्छा के अनुसार सरकार को चलाते हैं। साथ ही इन मन्त्रियों के द्वारा दल को सरकार के विस्तृत और पूर्ण कार्यक्रम का पता रहता है। फाइनर के मतानुसार सोवियत संघ में मंत्रि-परिषद् की प्रेसीडियम ब्रिटेन व फ्रांस की मंत्रि-परिषद् के बहुत समान है। इसी के द्वारा साम्यवादी दल निर्णयों के निर्धारण व कार्यान्विति में अपना महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।[5]

4. Article 130.
5. 'The body of nine, the Presidium of the Council of Ministers, is the closest analogy in Russia to the cabinet in Britain or France... The

(Contd.)

सम्पूर्ण मन्त्रि-परिषद् की साधारणतया प्रति सप्ताह एक बैठक होती है। इस प्रकार सभी मन्त्री नीति-निर्धारण अथवा मननात्मक (deliberative function) कार्य में भाग लेते हैं। अतः सामूहिक रूप में मन्त्रि-परिषद् कार्यपालिका सम्बन्धी नीतियों पर विचार तथा वाद-विवाद और निर्णय करती है। मन्त्रि-परिषद् के सदस्य अर्थात् मन्त्री विभागों के अध्यक्ष होते हैं। अतएव प्रजातन्त्री राज्यों की केबिनेटों की तरह सोवियत संघ में भी मन्त्रि-परिषद् के दो प्रकार के कार्य हैं—सामूहिक रूप में और व्यक्तिगत मन्त्रियों के विभागों के अध्यक्ष के रूप में।[6]

मंत्रि-परिषद् की शक्तियाँ और उसके कार्य :

मंत्रि-परिषद् को राज्य प्रशासन के उन सभी मामलों के बारे में शक्ति प्राप्त है जो सोवियत संघ के अधिकार क्षेत्र के भीतर हैं, किन्तु उस सीमा तक जहाँ तक कि वे संघ की सर्वोच्च सोवियत व प्रेसीडियम की सक्षमता में नहीं आते (in so far as they do not come within the competence of the Supreme Soviet or its Presidium)। अपनी शक्तियों के भीतर मंत्रि-परिषद् ये कार्य करती है : (१) आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की दिशा को निश्चित करना; जनता के कल्याण और सांस्कृतिक विकास हेतु आवश्यक पगों के प्रारूप तैयार करना और उन्हें कार्यान्वित कराना; विज्ञान और इंजीनियरिंग का विकास करना; कीमतों, मजदूरी (wages) और सामाजिक सुरक्षा के बारे में एकरूप नीति का अनुसरण करना; औद्योगिक, निर्माणात्मक और खेतिहर उद्यमों के प्रबन्ध को संगठित करना; इत्यादि। (२) देश के आर्थिक और सामाजिक विकास हेतु चालू तथा दीर्घकालीन योजनायें व बजट तैयार करके उन्हें सर्वोच्च सोवियत के सामने रखना; उनके स्वीकृत हो जाने पर उन्हें कार्यान्वित कराना। (३) राज्य के हितों की प्रतिरक्षा के लिए पगों को कार्यान्वित करना; समाजवादी सम्पत्ति की रक्षा करना; सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखना और नागरिकों के अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की रक्षा करना। (४) राज्य की सुरक्षा को सुनिश्चित बनाने के लिए पग उठाना। (५) देश की सशस्त्र सेनाओं के विकास पर सामान्य निदेशन का प्रयोग करना। (६) अन्य राज्यों से सम्बन्ध वैदेशिक व्यापार और अन्य राज्यों के साथ सहयोग हेतु सामान्य निदेशन की व्यवस्था करना। (७) आवश्यकतानुसार

Presidium of the Council of Ministers is the funnel through which the party Presidium exerts its will for more specific formulation and execution...*H. Finer* : The Major Governments of Europe, pp. 626-27.

6. 'Like cabinets in the democracies, the council of ministers has a dual role. As a group, it is charged with the discussion and adoption of executive policies, while its individual members are the heads of administrative department.' *Ogg & Zink :* Modern Foreign Governments, p, 866.

देश के आर्थिक मामलों, सामाजिक व सांस्कृतिक विकास और प्रतिरक्षा आदि के सम्बन्ध में समितियाँ या केन्द्रीय बोर्ड बनाना और विभाग खोलना।[7]

मंत्रि-परिषद् के अन्य कार्यों को सक्षेप में, इस प्रकार रखा जा सकता है। (अ) यह देश के कानूनों और सर्वोच्च सोवियत व प्रेसीडियम के निर्णयों के आधार पर तथा उन्हें लागू करने के लिए निर्णय और अध्यादेश जारी करती है तथा उनकी कार्यान्विति के सत्यापन को देखती है। (ब) सोवियत संघ के अधिकार-क्षेत्र के भीतर आने वाले मामलों के बारे में संघीय गणराज्यों की मंत्रि-परिषदों के निर्णयों व अध्यादेशों की कार्यान्विति को स्थगित कर सकती है और संघ के मंत्रालयों व राजकीय समितियाँ तथा अन्य अधीन निकायों के कार्यों को रद्द (rescind) कर सकती है। (स) यह सभी मंत्रालयों (all-Union and Union Republican) व सोवियत संघ की राजकीय समितियों और अन्य अधीन निकायों के कार्यों में समन्वय स्थापित करती है तथा उनके कार्यों का निदेशन करती है।[8] मंत्रि-परिषद् के **निदेशों** का सम्बन्ध सामान्य व्यवहार के नियमों से है और **आदेशों** का विशिष्ट नामों से है।[9]

मन्त्रि-परिषद् के अन्तर्गत आयोग और समितियाँ (Commissions and Committees)—मंत्रि-परिषद् के साथ बहुत-सी समितियाँ और आयोग लगे हुये हैं। उनमें से कुछ प्रमुख ये हैं—राज्यीय नियोजन समिति (Gosplan), राज्यीय बैंक का बोर्ड (Board of the State Bank), कला-समिति (Committee for the Arts), राज्यीय नियन्त्रण समिति, आर्थिक परिषद् (Economic Council) इत्यादि। इन निकायों के अध्यक्ष मंत्रि-परिषद् की बैठकों में नियमित रूप से भाग लेते हैं; क्योंकि वे भी उसके सदस्य हैं। सन् १९४६ से शिक्षा-समिति का सभापति भी मंत्रि-परिषद् का सदस्य बन गया है। इसके अतिरिक्त, कुछ समितियाँ इन विषयों के बारे में हैं—नाप और तौल, भूगर्भ सम्बन्धी मामले, ब्राडकास्टिंग, स्टालिन पारितोषिक। इनमें से अधिकतर का सम्बन्ध अखिल संघीय मामलों से है, किन्तु कुछ का ऐसे मामलों में भी है जो अधिकांशतः गणराज्यों के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं, जैसे शारीरिक व्यायाम और खेल। ये समितियाँ साधारणतया अपने से सम्बन्धित विभागों के कार्यों की देख-रेख करती हैं; इनके कार्य प्रशासनिक नहीं हैं।

उपरोक्त निकायों—कमीशनों, बोर्डों व कमेटियों की स्थापना मंत्रि-परिषद् ने आवश्यकतानुसार समय-समय पर की है। आर्थिक परिषद् के कर्त्तव्य इस प्रकार

7. Article 131
8. Articles 132 & 133.
9. 'Directives are acts establishing rules of generalization and understood to be constantly operative until they shall have been abrogated or have lost their force. Orders are acts operative on a single occasion and regulating separate and definitive cases.' *Andrew V. Vyshinsky* : The Law of the Soviet State, p. 375.

हैं—(अ) राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था सम्बन्धी वार्षिक और त्रैमासिक योजनाओं पर विचार करना, (आ) योजनाओं का अनुसमर्थन और (इ) आर्थिक योजनाओं की पूर्ति सम्बन्धी मामले। यह तो ऊपर बताया जा चुका है कि प्रत्येक संघीय गणराज्य की मंत्रि-परिषद् का सभापति संघीय मंत्रि-परिषद् का पदेन सदस्य होता है। इस प्रकार संघीय सरकार की नीति के निर्माण में गणराज्यों के प्रतिनिधि भाग लेते हैं। साथ ही यह व्यवस्था भी है कि प्रत्येक अखिल संघीय मन्त्रालय का एक प्रतिनिधि (agent) प्रत्येक संघीय गणराज्य में रहे, जो सन् १९३६ के संविधान के अनुसार गणराज्य की मन्त्रि-परिषद् के सदस्य होते हैं। संघीय गणराज्यीय मन्त्रालयों के प्रतिरूप मन्त्रालय और मन्त्री गणराज्यों में होते ही हैं। इस प्रकार संघ सरकार व गणराज्यों की सरकारों के बीच सामंजस्य व उनके कार्यों में समन्वय स्थापित होता है।

३. एक अनोखा निकाय—प्रेसीडियम

रचना—सोवियत संघ में प्रेसीडियम एक अनोखा निकाय है, क्योंकि इसके समानान्तर निकाय अन्य संसदीय पद्धति वाले राज्यों में नहीं है। स्टालिन तथा अन्य लेखकों ने इसे सोवियत संघ का **सामूहिक प्रधान** (Collegial President) बताया है। वास्तव में, यह सर्वोच्च सोवियत की एक स्थायी समिति (permanent Committee of the Supreme Soviet) है, जैसा कि इसकी रचना और कार्यों से स्पष्ट होगा, किन्तु यह बात भी पूर्णतया सत्य नहीं है, क्योंकि इसके सभी सदस्य सर्वोच्च सोवियत के सदस्य नहीं होते। प्रेसीडियम के सदस्यों का चुनाव सर्वोच्च सोवियत के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में नई सर्वोच्च सोवियत के प्रथम सत्र के अन्त में होता है। प्रेसीडियम में एक सभापति, १ प्रथम उप-सभापति, १५ उप-सभापति, १ सेक्रेटरी और २१ अन्य सदस्य हैं अर्थात् इसके कुल सदस्यों की संख्या इस समय ३९ है। पहले प्रथा यह थी कि १५ उपसभापतियों में प्रत्येक संघीय गणराज्य की प्रेसीडियम का सभापति होता था। परन्तु नये संविधान की धारा १२० में कहा गया है कि १५ सदस्यों में से एक प्रत्येक संघीय गणराज्य से होगा।

सभापति—प्रेसीडियम स्वयं, जैसा कि ऊपर बताया गया है, एक सामूहिक प्रधान (Collective Presidency) है। परन्तु प्रेसीडियम का सभापति ही सोवियत संघ का प्रधान कहलाता है। उसे अन्य राज्यों के अध्यक्षों (Heads) की तरह कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं। उसके विशेष कार्य ये हैं—(१) उसके हस्ताक्षर से सर्वोच्च सोवियत के कानून प्रकाशित होते हैं। (२) वह प्रेसीडियम की बैठकों में सभापति रहता है। (३) वह अन्य कानूनों व आदेशों आदि पर हस्ताक्षर करता है। (४) विदेशी राज्यों के दूतों के प्रमाण-पत्र वही स्वीकार करता है। (५) प्रेसीडियम के निर्णयों की कार्यान्विति पर देख-रेख करता है। विशिस्की के मतानुसार प्रेसीडियम का निर्माण सोवियत संघ के बहु-राष्ट्रीय राज्य के सिद्धान्त के अनुरूप है। इसके

उप-सभापति विभिन्न संघीय गणराज्यों के प्रतिनिधि हैं। प्रेसीडियम की रचना से यह भी स्पष्ट है कि सोवियत संघ में सभी राष्ट्रों (संघीय गणराज्यों में रहने वाले निवासियों) का पद सम है। परन्तु इसकी विशेषता इसका सोवियत संघ के सर्वोच्च सत्ता के अंगों में प्रमुख स्थान है। यह अपने सभी कार्यों के लिए सर्वोच्च सोवियत के प्रति उत्तरदायी है।

प्रेसीडियम की शक्तियां और उसके कार्य (Powers and Functions of the Presidium)—इसकी शक्तियों और कार्यों को अग्रलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है : **विधायी शक्तियाँ**—सर्वोच्च सोवियत के सत्रों के बीच में अर्थात् वर्ष के लगभग ११ माह के दौरान सर्वोच्च सोवियत की सभी संवैधानिक शक्तियाँ प्रेसीडियम में निहित रहती हैं। इनमें ये उल्लेखनीय हैं : (१) जब कभी आवश्यक हो यह देश के वर्तमान कानूनों में संशोधन कर सकती है। (२) संघीय गणराज्यों के बीच सीमाओं में परिवर्तनों पर स्वीकृति देती है। (३) मंत्रि-परिषद् की सिफारिश पर मंत्रालयों का बचाव व उन्मूलन कर सकती है। संघ की राजकीय समितियों के बारे में भी इसे यह शक्ति प्राप्त है। (४) मंत्रि-परिषद् के सभापति की सिफारिश पर उसके सदस्यों को उनके उत्तरदायित्व से हटा सकती है तथा नये मंत्री नियुक्त कर सकती हैं।[10] इसके सभी कार्यों पर सर्वोच्च सोवियत के अगले सत्र में स्वीकृति ली जाती है, किन्तु यह स्वीकृति सदा ही मिल जाती है। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से प्रेसीडियम का महत्व सर्वोच्च सोवियत से अधिक है। व्यवहार में इसकी वास्तविक सत्ता का कारण यह है कि साम्यवादी दल इसे ही शासन का अधिक प्रभावी अंग बनाना चाहता है।[11] सोवियत संविधान के अनुसार सर्वोच्च सोवियत के सत्रों के बीच में संघ की मन्त्रि-परिषद् इसी के प्रति उत्तरदायी रहती है। (is accountable and responsible for all its activities to the Presidium)। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रेसीडियम मन्त्रि-परिषद् के निर्णयों को, यदि वे कानून के विरुद्ध हों, रद्द कर सकती है। प्रेसीडियम संघीय गणराज्यों की मन्त्रि-परिषद् के निर्णयों को भी इसी प्रकार रद्द कर सकती है, यदि वे भी सोवियत कानूनों के विरुद्ध हों।

कार्यपालक (Executive) **शक्तियाँ**—प्रेसीडियम की शक्तियाँ केवल विधायी ही नहीं, कार्यपालक शक्तियाँ भी हैं। विदेशी सरकारों के दूत और प्रतिनिधि

10. Article 122.
11. 'Acts of the Presidium are subject to approval of the next session of the Supreme Soviet, but approval is never withheld. Thus the Presidium is politically the more significant of the two bodies. It exercises real authority for the simple reason that the party chooses to make it an effective organ of Government.' *Beukema et al* : Contemporary Foreign Government, p. 33.

प्रेसीडियम के सभापति से सरकारी रूप में भेंट करने आते हैं; विदेशी राज्यों से शिष्टाचारिक संदेश (ceremonial messages) भी उसी के पास आते हैं और वह उनका उत्तर देता है। इस प्रकार प्रेसीडियम सोवियत शासन का औपचारिक व सामूहिक अध्यक्ष है। इस दृष्टि से उसका स्थान ब्रिटिश राजा अथवा रानी के समान है।[12] इस क्षेत्र में प्रेसीडियम के अन्य अधिकार ये हैं—(१) यह सर्वोच्च सोवियत के चुनावों के लिए आदेश निकालती है उसके सत्र आहूत करती है और इसे सर्वोच्च सोवियत का विघटन करने की शक्ति भी प्राप्त है। (२) सर्वोच्च सोवियत के सत्रों के बीच में उसे युद्ध की घोषणा करने का अधिकार है। यह सेनाओं को पूर्ण अथवा आंशिक रूप से युद्ध के लिए गतिमान कर सकती है। (can order partial or general mobilisation)। (३) यह सशस्त्र सेनाओं के सर्वोच्च कमांडरों को हटा व नियुक्त कर सकती है। (४) यह सोवियत सरकार के विदेशों में राजदूत नियुक्त करती है और उन्हें वापस भी बुला सकती है। (५) वैदेशिक मामलों के क्षेत्र में यह महत्वपूर्ण समझौतों का पुष्टिकरण भी करती है। (६) यह संघ की 'प्रतिरक्षा परिषद' (Council of Defence) का निर्माण करती है। उसकी रचना का अनुसमर्थन करती है; और सशस्त्र सेनाओं के उच्च कमान को नियुक्त व अपदस्थ करती है। (७) देश की प्रतिरक्षा के हित में सम्पूर्ण देश या उसके किसी भाग में सैनिक कानून (martial law) को लागू करती है। (८) सोवियत संघ की संधियों की पुष्टि अथवा उनकी निन्दा करती है। (९) सोवियत संघ के कानूनों का निर्वचन करती है। (१०) सोवियत संघ की मंत्रि-परिषद् व संघीय गणराज्यों की मंत्रि-परिषदों के निर्णयों व अध्यादेशों को रद्द (revoke) कर सकती है, यदि वे कानून के अनुरूप न हों। (११) नव-निर्वाचित सर्वोच्च सोवियत को चुनाव के दो माह के भीतर पूर्वगामी प्रेसीडियम ही आहूत करती है।[13]

न्यायिक और अन्य कार्य—यथार्थ में, सोवियत संघ का उच्चतम न्यायिक निकाय प्रेसीडियम ही है। सर्वोच्च सोवियत द्वारा बने कानूनों की संवैधानिकता पर सर्वोच्च न्यायालय को निर्णय देने का अधिकार प्राप्त नहीं है, वह तो ऐसे मामलों को प्रेसीडियम के सामने लाये जाने की सिफारिश करती है। संविधान का निर्वचन यथार्थ में प्रेसीडियम ही करती है। इसके अतिरिक्त प्रेसीडियम को क्षमादान (pardon) का भी अधिकार प्राप्त है। अन्य कार्यों में ये मुख्य हैं—(१) यह सोवियत नागरिकों को सम्मानसूचक उपाधियाँ और पदक आदि प्रदान करती है

12. 'The Soviet Presidium is, however considered the formal, collective head of government of the Soviet Union. In this respect, it holds a position which is similar in many ways to that of the British reigning monarch.' *Ibid.*, p. 331.

13. Articles 122 & 124:

(awards, decorations, medals and assigns titles of honour)। (२) सोवियत संघ की नागरिकता पाने व छिन जाने आदि प्रश्नों का निर्णय करती है। (३) अपने पहल अथवा किसी संघीय गण ाज्य की माँग पर यह किसी प्रश्न पर लोक-निर्णय (referendum) करा सकती है। (४) यह कानूनों के आधार पर आज्ञप्तियाँ (decrees) जारी करती है, परन्तु जिन आज्ञप्तियों का स्वरूप विधायी होता है उन पर आगामी सत्र में सर्वोच्च सोवियत की स्वीकृति मिलना आवश्यक है।[14] इसके अतिरिक्त मन्त्रियों की नियुक्ति व उनके अपदस्थ करने सम्बन्धी आज्ञप्तियों पर सर्वोच्च सोवियत की स्वीकृति पाना भी आवश्यक है।

अन्य बातें—प्रेसीडियम की सत्ता सर्वोच्च सोवियत की अवधि के अन्त अथवा उसके विघटन के बाद तक कायम रहती है। वास्तव में, यह तब तक कार्य करती है जब तक कि नई सर्वोच्च सोवियत का चुनाव न हो जाये और उसका सत्र न हो। सर्वोच्च सोवियत पहले ही सत्र में प्रेसीडियम का चुनाव करती है। इसकी शक्तियों में ये बहुत महत्वपूर्ण हैं—(१) यह मन्त्रि-परिषद् और गणतन्त्र सरकारों के निर्णयों को रद्द कर सकती है। यह बहुत से उच्च अधिकारियों व सेनापतियों को नियुक्त करती है। (२) यह युद्ध की घोषणा कर सकती है और कूटनीतिक सम्बन्धों का प्रशासन भी। (३) मन्त्रि-परिषद् इसके प्रति उत्तरदायी है। (४) यह आज्ञप्तियों (decrees) को प्रख्यापित (promulgate) करती है और निर्णयों को अंगीकार करती है। संक्षेप में, प्रेसीडियम को शासन के प्राय: सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं और यह लगभग निरन्तर कार्य करती रहती है। अस्तु, सोवियत संघ के शासन में उसका स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है।[15]

माइकेल स्टीवार्ट के अनुसार प्रेसीडियम राज्य के अध्यक्ष और सर्वोपरि विधान-मण्डल की शक्तियों का प्रयोग करती है। यह सर्वोच्च सोवियत द्वारा पास किये गये कानूनों के अन्तर्गत प्रादेश (decrees) जारी करती है और उनका निर्वचन भी देती है। यह सर्वोच्च सोवियत के साधारण सत्र बुलाती है और असाधारण सत्र भी। यह संघीय गणतन्त्रों की प्रार्थना पर किसी भी मामले पर लोक-निर्णय (referendum) करा सकती है। यह संधियाँ करती है सशस्त्र सेनाओं का

14 'The Presidium issues decrees, which, like the laws of the Supreme Soviet, have equal force in all Soviet Republics. But the decrees of the Presidium must be based on the all-union laws in operation and must come within their purview. This distinguishes a decree from law.' *V. Karpinsky* : The Social and State Structure of the U S.S R. p. 119.

15. 'The Presidium thus emerges as an extremely important and fully occupied administrative device which participates in every branch of govenment. Unlike the Supreme Soviet, it is in permanent session and is therefore able to discharge its function continually.' *R. G Neumann* : European and Comparative Government, p. 282.

नियन्त्रण करती है, युद्ध और शान्ति अथवा सैनिक कानून की घोषणा के प्रश्न तय करती है और यही राज्य की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी है। यह सम्मान सूचक उपाधियाँ दे सकती है और क्षमादान कर सकती है; फिर भी यह प्रशासनिक विभाग को प्रशासित नहीं करती, यह कार्य मन्त्रि-परिषद् का है। परन्तु यह मन्त्रि-परिषद् की रचना में परिवर्तन कर सकती है। यह मन्त्रि-परिषद् तथा गणराज्यों की मन्त्रि-परिषदों के निर्णयों को रद्द कर सकती है। सोवियत शासन की संस्थाओं में, जहाँ तक शक्तियों और कार्यों का सम्बन्ध है, प्रेसीडियम सर्वोच्च सोवियत की अपेक्षा ब्रिटिश पार्लियामेंट के अधिक समान है। सर्वोच्च सोवियत तो केवल प्रतिनिधियों का सम्मेलन है, जो एक संस्था को चुनती है जो कि विधान-मण्डल और कार्यपालिका पर देख-रेख करने वाली है।[16] जब सर्वोच्च सोवियत एकत्रित होती है तो यह बजट स्वीकार करती है और कानून पास करती है। सर्वोच्च सोवियत के कानून व प्रेसीडियम के प्रादेश न्यायालयों द्वारा समान रूप से लागू किये जाते हैं।

४. समालोचना

सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत को वहाँ की संसद कहा गया है और उसके कृत्यों व शक्तियों की सूची काफी बड़ी है; किन्तु वास्तव में वह अन्य राज्यों की राष्ट्रीय विधायिकाओं की तरह नहीं है। उसके वर्ष में केवल २ अल्पकालीन सत्र होते हैं, वह कानून भी कम बनाती है और जो भी बनाती है उनका आरम्भ सरकार करती है। सर्वोच्च सोवियत में विधेयकों पर बहुत ही कम वाद-विवाद होता है, वे साधारणतया सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिए जाते हैं। सोवियत संविधान और लेखक उसे 'राज्य सत्ता का सर्वोच्च अंग' बताते हैं। **न्यूमेन** इस मत को नहीं मानता, क्योंकि उसके अनुसार सर्वोच्च सोवियत नीति का निर्धारण नहीं करती।[17] अन्य पाश्चात्य लेखकों के मतानुसार सर्वोच्च सोवियत का विधि-निर्माण में भाग महत्वहीन है।[18] **फाइनर** के अनुसार सर्वोच्च सोवियत की विधायी शक्तियों में दो कारणों से अस्पष्टता है—(अ) इसे विधि-निर्माण के अतिरिक्त अन्य शक्तियाँ प्राप्त हैं। (ब) संविधान ने अन्य अंगों को भी विधायी शक्तियाँ प्रदान की हैं

16. 'So far as anything in Soviet structure resembles power and functions, the British Parliament, it is the Presidium rather than the Supreme Soviet. The latter is really a delegate conference electing a body which is both a legislature and a supervisory organ over the Executive.'
Michael Stewart : Modern Forms of Government, pp. 247–48.
17. 'On paper these powers are formidable as those of any Western parliament. In practice the difference could not be greater...An institution which does not determine policy, which in fact has no hand in the determination of policy, can not easily be held to power.' Ibid , pp. 579–80.
18. 'The Supreme Soviet passes so few laws as to make its legislative role insignificant.' *Beukema et al* : op cit . p. 380.

प्रेसीडियम आज्ञप्तियाँ बना सकती है और मन्त्रि-परिषद् कानूनों के आधार पर और उनकी पूर्ति के लिए निर्णय कर सकती है तथा आदेश निकाल सकती है (decisions on the basis of and in fulfilment of laws in force), जिन्हें तुरन्त लागू किया जाने लगता है और बाद में सर्वोच्च सोवियत से उनका पुष्टिकरण कराया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सर्वोच्च सोवियत वास्तव में पाश्चात्य राज्यों के समान विधायिका नहीं है। फाइनर ने लिखा है कि प्रजातन्त्रों में संसदों का एक महत्वपूर्ण लाभ सदन में मन्त्रियों और विरोधी पक्ष के नेताओं के मतों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति और उनका प्रकाशन है (they are the forums of publicity of the intentions and motivations of the governmental authorities and the opposition)। परन्तु सोवियत संघ में सर्वोच्च सोवियत में शायद ही कभी वाद-विवाद होता है; कानून बिना वाद-विवाद के ही बनाये जाते हैं, केवल कुछ कानून बनाये जाते हैं और उन्हें उचित रूप में कभी भी प्रकाशित नहीं किया जाता है।[19]

जूलियन टाउस्टर के मतानुसार भी अभी तक सर्वोच्च सोवियत ने इस प्रकार कार्य किया है कि यह मुख्यतः पुष्टिकरण व प्रचार करने वाला निकाय है। इसका मुख्य प्रयोजन, ऐसा प्रतीत होता है, समय-समय पर जब आवश्यकता हो सरकारी नीति पर प्रतिनिधि सभा के रूप में अपनी स्वीकृति देना है।[20] **हारपर और टॉमसन** लिखते हैं कि सर्वोच्च सोवियत की दो विशेषतायें हैं—(१) प्रतिनिधि रिपोर्ट पेश करते हैं, उसमें वास्तविक मननात्मक कार्य (real deliberative function) नहीं होता; (२) व्यवहार में, सर्वोच्च सोवियत में सभी प्रश्नों के पक्ष में मतदान सर्वसम्मति से होता है। यह इस तथ्य की अभिव्यक्ति है कि सम्पूर्ण सोवियत विधि-निर्माण दलीय नीति के अनुसार होता है (all Soviet legislation is the 'general line' of the party) यद्यपि सोवियत पद्धति में संसदीय रूप पर बहुत बल दिया गया है फिर भी सोवियत पद्धति परिचित पाश्चात्य प्रजातन्त्रों से बहुत भिन्न है।[21] फाइनर ने लिखा है: 'प्रजातन्त्रात्मक पद्धतियों में विधायिका का कार्यपालिका पर प्रभुत्व होता है; सोवियत संघ में, व्यवहार में संवैधानिक दृष्टि से भी प्रेसीडियमों का सोवियतों प्रभुत्व पर है। दूसरे शब्दों में, देश पर दल और

19. *H. Finer*, op. cit, p. 617.

20. 'The Supreme Soviet has so far operated as a ratifying and propagating body .Its chief purpose appears to be, periodically or as occasion demands to lend the voice of approval of a representative assembly to government policy.' *J. Towster*: Political Power in the U.S.S.R., p 263.

21. 'The trend towards greater formalism has been a substantial one......But for all the changes that have occurred...there still remains a world of distinction between the Soviet State system and its Western counterparts.' *Harper & Thompson*: The Government of the Soviet Union, p. 137.

प्रशासन द्वारा शासन होता है, जबकि सोवियतें केवल 'हाँ' कहती हैं और विरोधी मत प्रकट करने वाला तथा अनुपस्थित रहने वाला कोई भी सदस्य नहीं होता है।'[22]

मुनरो और सहयोगी लेखक का मत है कि सोवियत शासन बिना सर्वोच्च सोवियत के भी सुचारु रूप से चलाया जा सकता है। यदि ऐसा है तो सर्वोच्च सोवियत का अस्तित्व क्यों है ? इसके कई कारण हैं—प्रथम, यह सोवियत नागरिकों की साधारण सभा है जो सत्र के बाद अपने-अपने क्षेत्रों में शासन की सफलताओं और उनकी भावी योजनाओं के लिए जोश लेकर लौटते हैं। सर्वोच्च सोवियत के सदस्य मतदाताओं में सोवियत सरकार के प्रतिनिधि होते हैं, वे मतदाताओं के प्रतिनिधि नहीं होते। सदस्यों और उनके द्वारा मतदाताओं में कुछ इस प्रकार की भावना पैदा होती है कि वे शासन में भाग लेते हैं।[23] **वरनन वी० एस्पेटुरियन** के शब्दों में : 'सर्वोच्च सोवियत एक ऐसी संस्था है जो औपचारिक रूप में प्रजातन्त्र और वैधता का चिन्ह है यह दल की इच्छा को कानूनों में परिवर्तित करती है, जिनके बारे में कहा जाता है कि जन-साधारण के प्रतिनिधियों ने बनाये हैं। सर्वोच्च सोवियत राज्य शक्ति की अभिरक्षक है, न कि सोवियत समाज में सर्वोच्च शक्ति की। यद्यपि यह उच्चतम कानूनी अंग है, सोवियत शक्ति और वैधता का वास्तविक स्रोत साम्यवादी दल है। अतएव, सर्वोच्च सोवियत ऐसी संस्था है जिसका प्रयोजन जन-साधारण में यह विचार पैदा करना है कि वे शासन में भाग लेते हैं।[24] अन्य लेखकों के अनुसार सर्वोच्च सोवियत की बैठकों का प्रयोजन सदस्यों को प्रेरणा देना और उन्हें तथा उसके निर्वाचकों को शिक्षित करना है।[25] परन्तु **ऑग और जिंक** का मत है कि चाहे सर्वोच्च सोवियत पाश्चात्य दृष्टि से सच्चा मननात्मक निकाय न हो, फिर भी यह नहीं मानना चाहिये कि यह सार्वजनिक मामलों पर उचित मात्रा में प्रभाव नहीं डालती।[26] हमारे विचार में यह मत बहुत ठीक और सन्तुलित है।

संविधान में कहा गया है कि मन्त्रि-परिषद् सर्वोच्च सोवियत के प्रति उत्तरदायी है। व्यवहार में मन्त्रियों की नियुक्ति साम्यवादी दल की प्रेसीडियम द्वारा की जाती है और वही मन्त्रियों को अपदस्थ करती है। औपचारिक रूप में मन्त्रियों

22. *H. Finer* : Theory and Practice of Modern Government, p. 542.
23. *Munro & Ayearst* : The Governments of Europe, p. 664.
24. *Macridis & Ward* : Modern Political Systems—Europe, p. 512.
25. 'One of the obvious purposes of the meetings of the Supreme Soviet is to inspire the delegates and to educate both of them and their constituents.' *Carter et al* : The Government of the Soviet Union, p. 98.
26. 'In the Western sense, the Supreme Council of the U. S. S. R. may not be a truly deliberative body...but it should not be assumed that it does not exercise at least a reasonable amount of influence in the public affairs of the Soviet Union.' *Ogg & Zink* : op. cit., p. 860.

की नियुक्ति आदि सर्वोच्च सोवियत द्वारा की जाती है आज तक किसी भी मन्त्रि-परिषद् अथवा मन्त्री को सर्वोच्च सोवियत के विरुद्ध मत अथवा आलोचना व निन्दा के कारण पद-त्याग नहीं करना पड़ा है। इस आलोचना में बहुत सत्यांश है कि सोवियत संघ में मन्त्रि-परिषद् अन्य संसदीय राज्यों के समान संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं है।[27] अन्य लेखक भी यह नहीं मानते कि मन्त्रि-परिषद् वास्तव में सर्वोच्च सोवियत के प्रति उत्तरदायी है। उनके अनुसार यह एक संवैधानिक भाषा की काल्पनिक रचना है और औपचारिकता की बात है।[28] सरकार की नीति तो साम्यवादी दल निर्धारित करता है, सम्भवतया यह तो साम्यवादी दल के निर्णयों का अनुसमर्थन करती है।[29] वैसे भी मन्त्रि-परिषद् तो इस काम के लिए बहुत ही बड़ा और भारी भरकम निकाय (too large and cumbersome) है। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि सोवियत सरकार का बाह्य रूप (external forms of trappings) तो मन्त्रिमण्डलात्मक पद्धति जैसा है, परन्तु यथार्थ में वास्तविकता यह नहीं है। स्कॉट के मतानुसार तो मन्त्रि-परिषदें जार की मन्त्री समिति की तरह सामूहिक रूप में, साम्यवादी दल की नीति के अनुसार आज्ञप्तियाँ आदि जारी करती हैं।[30] अन्त में, प्रेसीडियम की रचना, पाश्चात्य लेखकों के अनुसार, इस बात की प्रतीक है कि साम्यवादी दल किस प्रकार से सोवियत शासन पर नियन्त्रण करता है, यह कार्य दल के प्रभावशाली नेताओं को शासन के कई पदों पर रखकर किया जाता है। यह सच है कि दल के प्रमुख नेता सर्वोच्च सोवियत, मन्त्रि-परिषद् व प्रेसीडियम के महत्वपूर्ण सदस्य होते हैं।[31] तीसरे खण्ड में यह विस्तृत रूप से बताया गया है कि इसके कार्य कितने विस्तृत हैं और इसका सोवियत शासन में कितना महत्वपूर्ण स्थान है।

27. '...the Council of Ministers is not responsible to the Supreme Council in the sense in which Cabinets of Great Britain and France are responsible to their Parliaments' *Ibid.*, p. 866.
28. 'This assumption is, however, a figment of constitutional fiction...such action is nothing but a formality.' *Beukema et al* : op. cit., p. 333.
29. 'At times, the Council does little more than confirm the decisions already made by the Communist Party through the Politbureau. Certainly it is hardly the supreme executive authority in more than a formal sense, the Politbureau would leave it no room for such a job.' *Ogg & Zink* : op. cit , p 862.
30. 'Apart from the acts of their several members Councils of Ministers; at all levels are, like the Tsars, Committees of ministers, empowered to issue decrees and dispositions in their corporate capacities.' *Darek J. Scott* : op. cit., p 120.
31. 'This is typical of the way the party controls the government by placing its members in responsible and often multiple government posts.' *Beukema et al* : op. cit., p. 331.

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत की रचना और संगठन का वर्णन कीजिए।

२. सर्वोच्च सोवियत में विधि-निर्माण किस प्रकार होता है? क्या उसकी विधायी प्रक्रिया को प्रजातन्त्रात्मक कह सकते हैं।

३. सर्वोच्च सोवियत की शक्तियों का आलोचनात्मक विवेचन कीजिये।

४. सोवियत संघ की मन्त्रि-परिषद् का निर्माण किस प्रकार होता है? उसकी शक्तियों और कार्यों का वर्णन कीजिए।

५. मन्त्रि-परिषद् में प्रधानमन्त्री (उसके सभापति) का क्या स्थान है? मन्त्रि-परिषद् की कार्य-प्रणाली बताइये।

६. मन्त्रि-परिषद् का सर्वोच्च सोवियत और साम्यवादी दल से क्या सम्बन्ध है? क्या मन्त्रि-परिषद् संसद पद्धति वाले राज्यों की मन्त्रि-परिषद् अथवा केबिनेट के अनुरूप है?

७. प्रेसीडियम का निर्माण किस प्रकार होता है? उसकी शक्तियों का वर्णन कीजिए।

८. सोवियत संघ के शासन में प्रेसीडियम को अनोखा निकाय क्यों कहते हैं? यह शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का किस प्रकार अतिक्रमण करती है?

९. प्रेसीडियम का सर्वोच्च सोवियत और मन्त्रि-परिषद् से सम्बन्ध बताइये।

१०. क्या सोवियत शासन पद्धति को संसद पद्धति कह सकते हैं? अपने उत्तर के पक्ष और विपक्ष में तर्कों को दीजिए।

—:o:—

४. न्यायपालिका, नागरिकों के अधिकार व कर्त्तव्य

१. कानून की धारणा और न्यायपालिका की विशेषताएँ

कानून की धारणा—सोवियत संघ में शासन के अन्य अंगों की तरह, न्याय-पद्धति भी अन्य राज्यों से भिन्न है। सोवियत संघ की न्याय-पद्धति भी साम्यवादी सिद्धान्तों से प्रभावित है। वास्तव में, वहाँ पर न्याय व कानून की धारणा (concept of justice and law) अन्य देशों की तरह नहीं है, जैसा कि अग्रलिखित विवेचन से स्पष्ट होगा। मार्क्सवाद-लैनिनवाद में कानून की स्पष्ट परिभाषा दी गई है। यह बताता है कि कानूनी सम्बन्धों की जड़ जीवन की भौतिक दशाओं में होती है और कानून केवल प्रभुत्वपूर्ण वर्ग की इच्छा होती है।[1] अतएव न्यूमेन के अनुसार सोवियत न्याय-शास्त्र स्वतन्त्र 'कानून के विचार' को अस्वीकृत करता है अर्थात् कानून की आर्थिक व्यवस्था और वर्गीय रचना से अलग कोई स्वतन्त्र धारणा नहीं हो सकती। कानून, राज्य की अभिव्यक्ति अर्थात् प्रभुत्वपूर्ण वर्ग की इच्छा और अभिव्यक्ति होता है।[2] सार में, सोवियत कानून वह है जो साम्यवादी क्रांति के लक्ष्यों को आगे बढ़ाये। न्यायपालिका कानून की दूसरी धारा में न्यायपालिका के ये मुख्य कार्य बताये गये हैं—(१) प्रत्येक प्रकार के हस्तक्षेप के विरुद्ध सोवियत संघ के सामाजिक और राजकीय संगठन, साम्यवादी सम्पत्ति और समाजवादी आर्थिक पद्धति की रक्षा करना; (२) नागरिकों के हितों और अधिकारों की रक्षा करना; (३) राजकीय संस्थाओं व उद्योगों, सामूहिक फार्मों आदि की रक्षा करना। सोवियत संघ में न्यायालयों की आवश्यकता दो प्रयोजनों

1. 'Marxism-Leninism gives a clear definition of the essence of Law. It teaches that legal relationship (and, consequently, law itself) is rooted in the material conditions of life, and that law is merely the will of the dominant class, elevated into a statute.' *Y. Vyshinsky* : The Law of the Soviet State, p. 23.
2. 'Soviet legal science, therefore, utterly rejects the concept of an independent 'idea of the law' which may exist separate from the economic and class structure of the state Law is merely an expression of the state, an expression of the material form of life in that state, and in a class society it is the will of ruling class.' *R. G. Neumann* : European and Comparative Government. p. 592.

के लिये है—प्रथम सोवियत शासन के शत्रुओं से संघर्ष करना और दूसरे नई सोवियत पद्धति को सुदृढ़ बनाना ।[3] विशिस्की के अनुसार समाजवाद के अन्तर्गत राज्य के हितों और सर्व साधारण के हितों में, जैसा कि शोषक देशों में है, कोई पारस्परिक विरोध नहीं है। 'समाजवाद व्यक्तिगत हितों को मना नहीं करता—साधारणतया यह उन्हें सामूहिक हितों से मिला देता है।'

निष्पक्षता, कानून की उचित प्रक्रिया और ऐसे ही पूंजीपति कानूनी पद्धतियों के सुन्दर वाक्यांश सोवियत कानूनी पद्धति में महत्व की दृष्टि से दूसरे स्थान पर आते हैं। कानून लैनिन के कथनानुसार, एक राजनैतिक साधन है अथवा कानून राजनीति है।[4] सोवियत संघ की वर्तमान न्याय-पद्धति सन् १९३६ के संविधान और सन् १९३८ में बने 'न्यायपालिका कानून' (The Law of the Judiciary of the U.S.S.R.) के अन्तर्गत संगठित हैं। न्यायाधीश स्वतन्त्र और केवल कानून के अधीन' (Independent and subject only to the law) होते हैं। परन्तु सोवियत धारणा के अनुसार स्वतन्त्र कानून या न्याय का विचार मान्य नहीं है। वास्तव में, जबकि अन्य राज्यों में न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता एक आधार-भूत सिद्धान्त है और न्यायाधीशों को सरलता से अपदस्थ नहीं किया जा सकता सोवियत संघ में न्यायाधीश स्वतन्त्र नहीं होते और उन्हें सरलता से हटाया जा सकता है। यथार्थ में, न्यायाधीश भी अधिकतर साम्यवादी दल के सदस्य होते हैं। चाहे वे दल के सदस्य हों या न हों, उन सभी का लक्ष्य समाजवाद को आगे बढ़ाना है। न्यायपालिका राज्य सत्ता का एक अंग है, अतएव वह राजनीति से बाहर नहीं हो सकती।

न्यायपालिका स्वतन्त्र नहीं है। इसे कार्यपालिका तथा विधायिका से स्वतन्त्र नहीं माना जाता; इससे भी बढ़कर बात यह है कि न्यायपालिका साम्यवादी दल के प्रभाव से स्वतन्त्र नहीं है। **फाइनर** के अनुसार इसका एक स्वरूप कुछ ऐसा है जैसा कि किसी पराधीन प्रदेश की न्यायपालिका का होता है; जहाँ पर न्याय-पालिका सम्राट की साम्राज्यवादी नीति के अनुसार न्याय करती है और जहाँ नीति के निर्धारण में जनता से कोई परामर्श नहीं किया जाता।[5] यह बात तो बहुत ही

3. 'Lenin and Stalin teach us that the Soviet State, the Soviet people need the courts, first, to fight the enemies of Soviet Government and, secondly fight for the consolidation of the new Soviet system, to firmly anchor the new socialist discipline among the working people' *V. Karpinsky* : The Social and State Structure of the U. S. S. R., p. 133.
4. 'Law is in essence that which furthers the aims of the Socialist revolution. Impartiality, due process of law, and similar embellishments of the 'bourgeois' types of law are of secondary consideration. Law is a political measure, law is politics.'
5. 'It is not regarded as a power independent of the executive and the legislature, and still less of the Communist party leadership. It can be best

स्पष्ट है कि सोवियत संघ में न्यायपालिका स्वतन्त्र नहीं है। न्यायाधीशों की नियुक्ति साधारणतया कार्यपालिकाओं द्वारा की जाती है और उनका कार्यकाल कुछ ही वर्षों तक के लिये सीमित है। सबसे नीचे के धरातल पर न्यायाधीशों को जनता चुनती है और उन्हें वापस भी बुला सकती है। न्यायाधीश निष्पक्ष और स्वतन्त्र नहीं होते। न्यायालयों का उद्देश्य ही समाजवाद की रक्षा करना तथा साम्यवाद के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होना है। सम्पूर्ण न्यायपालिका पर प्रोक्यूरेटर-जनरल के विभाग की देख-रेख रहती है। सोवियत संघ में संघात्मक संविधान होते हुए भी न्यायपालिका को विशेष रूप से उच्च और स्वतन्त्र स्थान प्राप्त नहीं है। न्यायपालिका संविधान का निर्वाचन नहीं करती; इसे कानूनों को अवैध घोषित करने की शक्ति प्राप्त नहीं है और न ही यह नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करती है। परन्तु नीचे के स्तरों पर न्यायालयों के कार्य में स्थानीय नेताओं का हस्तक्षेप नहीं होता, यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय पर सर्वोच्च नीति-निर्धारण करने वाले निकाय—सर्वोच्च सोवियत का बहुत नियन्त्रण रहता है और सर्वोच्च सोवियत में ८० प्रतिशत सदस्य साम्यवादी दल के होते हैं।[6]

सोवियत संघ की न्यायपालिका राज्य सत्ता का एक उपकरण है, इसलिये उस पर देश के शासन और राजनीति का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। सोवियत संघ में न्यायाधीश शासन से अलग नहीं होते, इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय के साथ प्रोक्यूरेटर जनरल और संघीय न्याय-मन्त्री का निकट सम्पर्क रहता है। इससे यह स्पष्ट है कि कार्यपालिका न्यायालयों के कार्यों पर पर्याप्त प्रभाव डालती है। वास्तव में, सोवियत न्यायपालिका सर्वहारा वर्ग की अधिनायकशाही के हाथों में सशक्त अस्त्र है। 'इसलिये सोवियत संघ के सर्वोच्च न्यायालय को शासन का एक सहायक उपकरण समझा जाता है, न कि शासन से उच्चतर अथवा शासन के प्रभाव से स्वतन्त्र उपकरण।'[7] सोवियत न्याय-पद्धति की अन्य प्रमुख विशेषताओं का सक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

envisaged as the performance of the judicial function in a colonial territory by an absolutely dominant old fashioned, imperial master. The system of law is imposed according to the policy of the imperial rule, without consultation with the native population.' '*H. Finer* : The Major Governments of Modern Europe. p. 649

6. 'The courts of the U. S. S. R. are avowedly an arm of the Communist party policy. Soviet jurists accept no doctrine of separation of powers, while lower courts are insulated by law from interference by local party tyrants; the Supreme Court is always subject to control by the highest policy body in the state apparatus, the Supreme Soviet in which 80 percent of the deputies are members of the Communist Party....' *John N. Hazard*: The Soviet System of Government, p. 193.
7. *J. Towster* : The Political Power in the U. S. S. R., p. 301.

(१) न्याय-पद्धति सामान्य प्रशासन की एक शाखा के रूप में है। वास्तव में वहाँ पर शक्तियों का पृथक्करण नहीं है और न्यायाधीशों को सिद्धान्त तथा व्यवहार में प्रशासन की एक शाखा समझा जाता है। उनके ऊपर प्रशासनिक देख-रेख की व्यवस्था है और यह अधिकार सोवियत संघ के प्रोक्यूरेटर-जनरल मे निहित है,[8] जिसके अधीन सभी स्तरों पर प्रोक्यूरेटर हैं। (२) सोवियत सघ के न्यायालय नागरिकों के अधिकारों की वहाँ तक तो रक्षा करते हैं जहाँ तक कि कोई नागरिक दूसरे के अधिकारों में हस्तक्षेप करता है, परन्तु उनका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे सरकार द्वारा हस्तक्षेप के विरुद्ध नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करें[9] क्योंकि सोवियत सिद्धान्त के अनुसार नागरिकों को ऐसी रक्षा की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ सकती है। (३) संविधान के अनुसार मुकदमों की सुनवाई खुले अर्थात् सार्वजनिक रूप से होती है, यदि कानून द्वारा किन्हीं मुकदमों के लिये विशेष व्यवस्था न हो। बहुधा मुकदमों की सुनवाई मिलों, कारखानों और कोलखोजों में होती है जिससे सम्बन्धित मामले के निर्णय में रुचि रखने वाले नागरिक अधिकतम संख्या में उपस्थित हो सकें। प्राय: सभी न्यायालयों में, साधारणतया मुकदमों की सुनवाई में जनता के असेसर भाग लेते हैं, जो कानून के विशेषज्ञ नहीं होते। सन् १९५५ तक असेसरों (assessors) का चुनाव सोवियतों द्वारा होता था परन्तु तब से उनका चुनाव २ वर्ष की अवधि के लिये श्रमिक जनों व किसानों की सभाओं में होता है।

(४) सोवियत संघ का प्रत्येक नागरिक जिसको साधारण मताधिकार प्राप्त हो, किसी भी न्यायालय का न्यायाधीश या असेसर निर्वाचित हो सकता है। वहाँ पर न्यायाधीशों के लिये कोई विशेष योग्यता का होना आवश्यक नहीं है। (५) प्रत्येक न्यायालय में कई न्यायाधीश अथवा असेसर होते हैं। धरातल के न्यायालयों को छोड़कर ऊपर के सभी स्तरों के न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा होती है। न्यायाधीश जितनी अवधि के लिये चुने अथवा नियुक्त किये जाते हैं, न्यायालयों के नियमित सदस्य (regular members) रहते हैं, परन्तु असेसर प्रतिवर्ष केवल १० दिन ही कार्य करते हैं। उन दिनों उन्हें वही भत्ता मिलता है जो वे अपने पेशे में कमाते हैं। प्रत्येक न्यायालय में मुकदमों

8. 'As there is no separation of powers, and the judges are in principle and practice a branch of the state administration, a system of administrative supervision is imposed upon them. This is vested in the Procurator General of the U. S. S. R.'

9. '...the courts are not neutral exponents of an abstract justice as between individuals or as between individual and the state; like other Soviet institutions they have to conform to the purposive nature of the state.' *J. L. Brierly* (ed) : Law and Government in Principle and Practice. p. 293.

की सुनवाई न्यायाधीशों के समूह (Judicial college) द्वारा होती है जिनमें साधारणतः एक न्यायाधीश तथा दो असेसर रहते हैं, अतिरिक्त उन मुकदमों के जिनकी सुनवाई के लिए कानून द्वारा यह आवश्यक बना दिया गया है कि ज्यूडिशियल कालेज में तीनों ही सदस्य न्यायाधीश हों। (६) न्यायाधीशों या असेसरों को निर्वाचक (recall) वापस बुलाकर उनके पदों से हटा सकते हैं। न्यायाधीशों और असेसरों के विरुद्ध फौजदारी कानून की कार्यवाही केवल उपयुक्त प्रोक्यूरेटरों द्वारा (वह भी प्रेसीडियम की अनुमति से) आरम्भ की जा सकती है।

(७) सन् १९३८ के न्यायपालिका कानून द्वारा सोवियत संघ की न्यायव्यवस्था में जो सुधार किये गये हैं वे इस प्रकार हैं—(अ) कानून की दृष्टि से सब नागरिक बराबर हैं; (आ) न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता, अब न्यायाधीश केवल कानूनों के पाबन्द हैं; (इ) न्यायालयों में स्थानीय भाषाओं का प्रयोग किया जाता है; (ई) प्रतिवादी (defendant) को साधारणतः अपने बचाव के लिए वकील करने का अधिकार है और (उ) न्यायालयों की कार्यवाही प्रकाशित की जाती है। (८) संयुक्त राज्य अमेरिका अथवा भारत के सर्वोच्च न्यायालय की तरह सोवियत संघ का सर्वोच्च न्यायालय वहाँ की सर्वोच्च सोवियत द्वारा पास किये गये कानूनों को अवैध घोषित करने का अधिकार नहीं रखता। वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय ने मन्त्रि-परिषद् द्वारा जारी की गई अनगिनत आज्ञप्तियों (decrees) अथवा अध्यादेशों (ordinances) की वैधता के बारे में कभी कोई प्रश्न नहीं उठाया है अर्थात् वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन (judicial review) की शक्ति प्राप्त नहीं है। संवैधानिकता के प्रश्न अथवा संविधान के निर्वचन (interpretation) की शक्ति प्रेसीडियम को प्राप्त है। (९) सोवियत न्याय-व्यवस्था में भी उच्च मात्रा का केन्द्रीकरण (a high degree of centralisation) है। सोवियत संघ के सर्वोच्च न्यायालय को उच्च श्रेणियों के सभी न्यायालयों की देख-रेख का अधिकार है। प्रोक्यूरेटरों की व्यवस्था भी इसी दिशा की ओर संकेत करती है।[10]

(१०) एक बड़ी ही रोचक बात यह है कि सिद्धान्त रूप में साम्यवादी वकीलों को बहुत उपयोगी नहीं मानते, क्योंकि उनके विचार में वे पूंजीवादी पद्धति से सम्बन्धित हैं। फिर भी व्यवहार में उन्हें उनकी आवश्यकता को स्वीकार करना पड़ा है, यद्यपि उनकी संख्या सीमित कर दी गई है और उनके कार्यों का क्षेत्र भी बहुत कम कर दिया गया है। जिन्हें राजनीतिक दृष्टि से विश्वसनीय समझा जाता है वे ही इस व्यवसाय में आ सकते हैं। उनके लिए निम्नतम प्रशिक्षण और अनुभव निर्धारित कर दिया गया है। इससे भी बढ़कर दिलचस्प बात यह है कि वकीलों

10. 'Even more important than the Supreme Court in ensuring uniformity of legal rules throughout the Union is the public Prosecutor (the Procurator-General) of the Union whose office is not unlike that of the procuracy of Tsarist days.' *Carter et al* : The Government of the Soviet Union, p. 109.

की फीस मुवक्किलों की देने की क्षमता के अनुसार नियमित कर दी गई है। वास्तव में, वकीलों को व्यवस्थित प्रेक्टिस का अधिकार नहीं है। वकीलों को अपने काम के अनुसार 'एडवोकेटों की संस्था' (College of Advocates) से एक प्रकार का वेतन मिलता है। प्रत्येक स्थान पर (जहाँ न्यायालय होते हैं) वकीलों के संघ हैं जो न्यायालयों की देख-रेख में कार्य करते हैं। वकील संघ के सदस्यों के लिए उन सभी व्यक्तियों को जिनकी आवश्यकता पड़े कानूनी सहायता देना अनिवार्य है और वे नियत फीस से अधिक फीस नहीं ले सकते। यदि न्यायालय यह निर्णय दे दे कि कोई व्यक्ति फीस देने योग्य नहीं है तो उससे फीस नहीं ली जायेगी।[11] (११) यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि सोवियत संघ में अपराध (crimes) दो प्रकार के होते हैं—किसी व्यक्ति की जान या माल लेने के सम्बन्ध में किये गए अपराध अथवा क्रान्ति द्वारा स्थापित समाजवादी व्यवस्था को पलटने सम्बन्धी अपराध। प्रथम प्रकार के अपराधों के लिए दूसरे प्रकार के अपराधों की अपेक्षा अधिक नरम दण्ड (lighter punishment) की व्यवस्था है। सरकारी सम्पत्ति की चोरी, धन के गबन या हत्यारों के लिए साधारणतः मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाता है। (१२) न्यायालयों का संगठन ऊपर से नीचे तक एक पिरेमिड के समान है (in a hierarchy)। सबसे ऊपर सोवियत संघ का सर्वोच्च न्यायालय है; उसके नीचे संघीय गणराज्यों के न्यायालय तथा विभिन्न धरातलों पर अधीन न्यायालय हैं। (१३) इसके अतिरिक्त कुछ विशेष न्यायालय भी हैं। उद्यमों, संस्थाओं और संगठनों के बीच आर्थिक विवादों को कानून द्वारा निर्मित विभिन्न राजकीय न्यायाधिकरणों (State Arbitration Bodies) द्वारा निर्णित किया जाता है।

२. न्यायालयों का संगठन

सबसे ऊपर संघ का सर्वोच्च न्यायालय तथा संघीय विशेष न्यायालय है और सबसे नीचे के धरातल पर जन-न्यायालय (Peoples Courts) हैं। इनके बीच में विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों (administrative units) के अपने-अपने न्यायालय हैं। न्यायपालिका के संगठन को भली प्रकार से समझने के लिए नीचे से ऊपर की ओर को चलना उचित होगा। अतः सबसे पहले जन-न्यायालयों (Peoples courts) का संगठन दिया जाता है—ये ही प्रारम्भिक न्यायालय (Courts of first instance) हैं। इनके न्यायाधीश जिले के मतदाताओं द्वारा सीधे चुनाव व गुप्त मतदान की प्रणाली से ५ वर्ष की अवधि के लिए निर्वाचित होते हैं। इनके न्यायाधीशों तथा असेसरों की संख्या गणराज्यों (Constituent Republic) की मन्त्रि-परिषद् वहाँ के न्याय-मन्त्रालय के परामर्श से नियत करती है। इनका अधिकार-क्षेत्र दीवानी (civil) तथा फौजदारी (criminal) दोनों ही प्रकार के

11. Colleges of advocates are available to give legal assistance to citizens and organisations. In cases provided forby legislation citizens shall be given legal assistance free of charge. *Article*. 161.

मुकदमों पर है। पहली प्रकार में मामूली चोरी, डकैती, शारीरिक हमलों (assault) अधिकारियों द्वारा शक्ति का दुरुपयोग अथवा कर्त्तव्य पालन न करना आदि हैं। दूसरे प्रकार के मुकदमे सम्पत्ति के अधिकार, श्रम-नियमों का उल्लंघन आदि से सम्बन्धित होते हैं।

जन-न्यायालयों तथा गणराज्यों के सर्वोच्च न्यायालयों के बीच के न्यायालय—जन-न्यायालयों के ऊपर क्षेत्रीय (territorial), प्रान्तीय (provincial), प्रादेशिक (regional) और स्वाधीन प्रदेशों (Autonomous Regions) के न्यायालय हैं। इन न्यायालयों के न्यायाधीश तथा असेसर क्रमशः उनकी सोवियतों के द्वारा चुने जाते हैं। इनकी अवधि ५ वर्ष की होती है। उनके प्राथमिक अधिकार क्षेत्र में कुछ अधिक गम्भीर अपराध वाले मुकदमे जैसे समाजवादी व्यवस्था के विरुद्ध की गई कार्यवाहियाँ (counter-revolutionary activities), समाजवादी सम्पत्ति की चोरी और वे दीवानी मुकदमे (civil cases) जिनमें राज्य या सार्वजनिक संस्थायें वादी या प्रतिवादी हों, आते हैं। ये न्यायालय अपने-अपने क्षेत्रों के जन-न्यायालयों के लिए पुनर्विचार (review) का भी कार्य करते हैं। ऐसे न्यायालयों में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष, कई न्यायाधीश अथवा असेसर होते हैं।

स्वाधीन तथा संघीय गणराज्यों के न्यायालय (Supreme Court of Autonomous and Union Republics)—स्वाधीन गणराज्यों और संघीय गणराज्यों में से प्रत्येक में अपना-अपना सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) होता है। इनके न्यायाधीशों का निर्वाचन वहाँ की सर्वोच्च सोवियतें (Supreme Soviets) करती हैं। इनकी अवधि भी ५ वर्ष होती है। ये न्यायालय भारत के विभिन्न राज्यों में स्थित उच्च न्यायालयों (High Courts) की तरह होते हैं। इनके अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत दीवानी तथा फौजदारी दोनों ही प्रकार के विशेष महत्व के मुकदमे आते हैं। इन न्यायालयों को अपने-अपने क्षेत्र में नीचे के सभी न्यायालयों के निर्णयों को रद्द करने के अधिकार के साथ-साथ उनके न्याय-वितरण के कार्यों के निरीक्षण का भी अधिकार है।

सोवियत संघ का सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court of the U. S. S. R.)—यह सोवियत संघ का उच्चतम न्यायालय है। इसके न्यायाधीशों का निर्वाचन सर्वोच्च सोवियत करती है और उनकी अवधि ५ वर्ष होती है। इसमें एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कई न्यायाधीश और जन असेसर होते हैं।[12] सन् १९४९ में सर्वोच्च न्यायालय में ६६ न्यायाधीश तथा १५ असेसर थे। सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत गणराज्यों के बीच के झगड़े तथा विशेष महत्व के गम्भीर

12. 'The Supreme Court of the USSR shall be elected by the Supreme Soviet and shall consist of a chairman., vice-chairman, members and people's assessors. The chairman of the Supreme Court of the ,Union Republics are ex-officio members of the Supreme Court.' Article 133.

मुकदमे आते हैं। इनके अतिरिक्त इसे सभी प्रकार की अपीलें सुनने का भी अधिकार है। सर्वोच्च न्यायालयों को नीचे के सभी न्यायालयों के निर्णय पर पुनर्विचार (review) का भी अधिकार है, परन्तु सर्वोच्च न्यायालयों को सर्वोच्च सोवियत के बनाये कानूनों को संवैधानिक दृष्टि से अवैध (unconstitutional) घोषित करने का भी अधिकार नहीं है। यह न्यायालय मन्त्रि-परिषद् के निर्णयों (decisions) और आज्ञप्तियों (decrees) को भी रद्द नहीं कर सकता है। इस कारण सोवियत संघ के सर्वोच्च न्यायालय का महत्व संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की अपेक्षा बहुत कम है। सोवियत संघ में सर्वोच्च न्यायालय संघीय शासन की रचना से गुंथा हुआ है और साधारणतः संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से कम स्वतन्त्र है।[13] सर्वोच्च न्यायालय के ऊपर सभी गणराज्यों के न्यायालय द्वारा न्याय वितरण सम्बन्धी कार्यों के निरीक्षण की भी जिम्मेदारी है। यह अपने नीचे के न्यायालयों को भारत के सर्वोच्च न्यायालय की तरह से उनकी कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध में आवश्यक निदेश भी दे सकता है।

सोवियत संघ के विशेष न्यायालय—पहले इनमें सैनिक न्यायालय, स्थल परिवहन सम्बन्धी न्यायालय तथा जल परिवहन सम्बन्धी न्यायालय (Military Courts, Rail-road Transport Court and Water Transport Courts) आते थे। सैन्य न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित मुकदमे आते हैं—सेना सम्बन्धी अपराध, सेना में कार्य करने वाले व्यक्तियों द्वारा शासन-व्यवस्था के प्रति किये जाने वाले संगीन अपराध, देश में विद्रोह, शत्रु को सूचना देना इत्यादि। किन्तु अब इस श्रेणी में केवल सैनिक न्यायालय ही रह गए हैं।[14]

प्रोक्यूरेटर-जनरल (The Procurator-General)—सर्वोच्च सोवियत संघ के प्रोक्यूरेटर-जनरल को ५ वर्ष की अवधि के लिए नियुक्त करती है। उसके विभाग का कार्य पूर्णतया केन्द्रीकृत (centralised) है क्योंकि वही गणराज्यों व प्रदेशों आदि के प्रोक्यूरेटरों को नियुक्त करता है और नीचे के स्तरों पर अर्थात् जिलों, क्षेत्रों, शहरों आदि के प्रोक्यूरेटरों को सम्बन्धित गणतन्त्रों के प्रोक्यूरेटर नियुक्त करते हैं, किन्तु उनकी नियुक्ति पर प्रोक्यूरेटर-जनरल की स्वीकृति आवश्यक है। ये सभी ५ वर्ष की अवधि के लिए नियुक्त किए जाते हैं। सोवियत संविधान के अन्तर्गत प्रोक्यूरेटर-जनरल सोवियत संघ का अत्यधिक महत्वपूर्ण अधिकारी है। उसके विभाग को यह देखने की शक्ति प्राप्त है कि सभी अधिकारी, संस्थायें और नागरिक सोवियत कानूनों का ठीक-ठीक पालन करते हैं। अन्य राज्यों मे यह कार्य

13. 'The Supreme Court is carefully integrated into the structure of the central government and in general is less independent than the Supreme Court of the United States.' *Ogg and Zink* : Modern Foreign Governments, p. 876.

14. *H. Finer* : op. cit., p. 648.

न्यायालयों का होता है। प्रोक्यूरेटर सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध भी अभियोग लगा सकते हैं, यदि उन्हें यह सन्देह हो जाये कि किसी अधिकारी ने कानून के विरुद्ध आचरण किया है। उनका यह भी कर्त्तव्य है कि वे प्रशासनिक विनियमों और आदेशों (regulations and orders) पर भी नजर रखें जिससे प्रशासन द्वारा कानूनों का उल्लंघन न हो। उनका यह देखना भी कर्त्तव्य है कि न्यायालय कानूनों का ठीक अर्थ लगाते हैं या नहीं। यदि किसी को यह सन्देह हो जाये कि किसी अधिकारी ने कानून के विरुद्ध आचरण किया है। उनका यह भी कर्त्तव्य है कि वे प्रशासनिक विनियमों और आदेशों पर भी नजर रखे जिससे प्रशासन द्वारा कानूनों का उल्लंघन न हो। उनका यह देखना भी कर्त्तव्य है कि न्यायालय कानूनों का ठीक अर्थ लगाते हैं या नहीं। यदि किसी नागरिक को अन्यायपूर्ण ढंग से नजरबन्दी (detention) में रखा गया है ऐसे मामले में प्रोक्यूरेटर हस्तक्षेप करते हैं। यदि वे ऐसा अनुभव करें कि किसी अभियुक्त को अत्यधिक कठोर अथवा अपर्याप्त दण्ड दिया गया है तो वे ऐसे निर्णयों का पुनरवलोकन करा सकते हैं।

प्रोक्यूरेटर विशेष रूप से क्रांति-विरोधी अपराधों के प्रति सजग रहते हैं। कार्पिस्की के अनुसार प्रोक्यूरेटर फौजदारी के मुकदमे चलाता है, ऐसे मामलों की छानबीन कराता है और अपराधियों व उनके साथियों का पता लगाता है। प्रोक्यूरेटर न्यायालयों में राज्य की ओर से आभियोक्ता (prosecutor) के रूप में कार्य करता है। जब न्यायालय निर्णय देता है तो वह यह भी देखता है कि निर्णय न्याय के अनुसार है या नहीं। प्रोक्यूरेटर ही निर्णयों के अधीन दण्ड की व्यवस्था कराता है अथवा निर्णय को क्रियान्वित कराता है। यदि वह समझे कि निर्णय अनुचित है, तो वह उसके विरुद्ध अपील दायर करता है। इस प्रकार प्रोक्यूरेटर-जनरल सम्पूर्ण न्यायपालिका पर प्रशासनिक देख-रेख करता है। न्याय-पद्धति की एकरूपता (uniformity) बनाये रखने में उसका विशेष योग रहता है। विशिस्की के मतानुसार, 'सोवियत आभियोक्ता सोवियत समाजवादी वैधता का प्रहरी है, साम्यवादी दल और सोवियत सत्ता का नेता है और समाजवाद का वीर योद्धा है।'[15]

सोवियत संघ में न्यायपालिका

निर्वाचक	कार्य काल	न्यायालय
सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत	५ वर्ष	सोवियत संघ का सर्वोच्च न्यायालय
संघीय गणतन्त्र की सर्वोच्च सोवियत	,,	संघीय गणतन्त्र का सर्वोच्च न्यायालय
स्वाधीन गणतन्त्र की सर्वोच्च सोवियत	,,	स्वाधीन गणतन्त्र का सर्वोच्च न्यायालय

15. साधारणतया न्यायाधीश ५ वर्ष की अवधि के लिए और जन-असेसर २½ वर्ष की अवधि के लिए चुने जाते हैं।

प्रदेश की सोवियत	५ वर्ष	प्रदेश का न्यायालय
स्वाधीन प्रदेश की सोवियत	,,	स्वाधीन प्रदेश का न्यायालय
जातीय क्षेत्र की सोवियत	,,	जातीय क्षेत्र का न्यायालय
साधारण मतदाता	,,	जन-न्यायालय

नागरिकों के अधिकार, उनकी स्वतन्त्रतायें और उनके कर्त्तव्य

सोवियत संघ के निवासियों के लिए एकरूप नागरिकता (uniform federal citizenship) की स्थापना हुई है। बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिक कानूनों के समक्ष बराबर हैं (equal before the law)। स्त्रियों और पुरुषों को सम अधिकार प्राप्त हैं। साथ ही, विभिन्न मूल जातियों व राष्ट्रीयताओं के नागरिकों के अधिकार भी सम हैं। अन्य देशों के नागरिकों और राज्यहीन व्यक्तियों (stateless persons) को कानून द्वारा अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की प्रत्याभूति (guarantee) प्रदान की गई है; परन्तु उनके लिए संविधान के प्रति आदर रखना आवश्यक है। ऐसे विदेशियों को, जिन्हें श्रमिकों के हितों या विश्व शान्ति का बचाव करने या क्रांतिकारी और राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन में भाग लेने के लिए सताया गया हो, सोवियत संघ में शरण पाने (asylum) का अधिकार मिला है।[16]

नागरिकों के आधारभूत अधिकार व उनकी स्वतंत्रताएँ (Basic Rights and Freedoms)—मुख्य अधिकार और स्वतंत्रताएँ संक्षेप में, इस प्रकार हैं: (१) उन्हें काम पाने का अधिकार (right to work) है, अर्थात् उन्हें रोजगार और उनके कार्य की मात्रा व गुण के अनुसार पारिश्रमिक (वेतन) देने की गारंटी है। (२) उन्हें आराम व अवकाश। (rest and leisure) का अधिकार है। (३) उन्हें स्वास्थ्य की रक्षा का अधिकार मिला है। (४) उन्हें बीमारी, बुढ़ापे, और अंगहीन होने की दशा में जीविका पाने का अधिकार है। (५) उन्हें सांस्कृतिक लाभों के उपभोग का अधिकार है। (६) साम्यवाद के निर्माण के उद्देश्यों के अनुसार, नागरिकों को वैज्ञानिक, तकनीकी व कलात्मक कार्य की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। (७) नागरिकों को राज्य के व सार्वजनिक मामलों के प्रबन्ध व प्रशासन में भाग लेने का अधिकार है। (८) प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि राजकीय निकायों और सार्वजनिक संगठनों के कार्यों में सुधार करने व उनकी कमियों की आलोचना करने सम्बन्धी प्रस्ताव उनके सामने रख सके।[17]

(९) जनता के हितों के अनुसार तथा समाजवादी पद्धति को सुदृढ़ बनाने और उसका विकास करने के लिए, नागरिकों को भाषण की स्वतन्त्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता, एकत्रित होने, सभा करने, गलियों में जलूस निकालने व प्रदर्शन करने की गारण्टी

16. Articles 33–38.
17. Articles 39-49.

मिली है।[18] (१०) साम्यवाद का निर्माण करने के उद्देश्यों के अनुसार नागरिकों को ऐसे सार्वजनिक संघ बनाने की स्वतन्त्रता है जिनके द्वारा उनकी राजनीतिक गतिविधियों व पहल को प्रोत्साहन दिया जा सके और उनके विभिन्न हितों को संतुष्ट किया जा सके। (११) नागरिकों को अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता मिली है, अर्थात वे चाहें तो किसी धर्म मे विश्वास करें अथवा न करें। (१२) परिवार को राज्य के रक्षण का उपभोग करने का अधिकार है; विवाह स्त्री व पुरुष की स्वतन्त्र सहमति पर आधारित है और पारिवारिक सम्बन्धों में स्त्रियों व पुरुषों को पूर्ण समता प्राप्त है। (१३) नागरिकों को उनके शरीर की अनतिक्रमणीयता (inviolability of the person) की गारन्टी है; किसी भी व्यक्ति को न्यायालय के निर्णय या प्रोक्यूरेटर द्वारा जारी किये गये वारंट के बन्दी नहीं बनाया जा सकता। (१४) नागरिकों को घर की अनतिक्रमणीयता (inviolability of the home) की गारण्टी मिली है; किसी व्यक्ति के घर में कोई अन्य व्यक्ति बिना कानूनी आधार के प्रवेश नहीं कर सकता। (१५) नागरिकों को पत्र-व्यवहार, दूरभाष पर बात करने, व तार द्वारा संचार को गुप्त रखने में कानूनी रक्षण प्राप्त है। (१६) व्यक्ति के लिए आदर तथा नागरिकों के अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की रक्षा करना सभी राजकीय निकायों, सार्वजनिक संगठनों व अधिकारियों का कर्त्तव्य है। (१७) नागरिकों को सरकारी अधिकारियों, राजकीय व सार्वजनिक निकायों के विरुद्ध शिकायत करने का अधिकार है।[19]

नागरिकों के कर्त्तव्य—(१) नागरिकों द्वारा अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का प्रयोग उनके कर्त्तव्यों और दायित्वों के पालन से पृथक नहीं है।[20] नागरिकों का यह दायित्व है कि वे देश के संविधान व कानूनों का पालन करें, समाजवादी आचरण के मानकों (standards) को मानें तथा सोवियत नागरिकता के मान व प्रतिष्ठा को ऊपर उठाये रखें। (२) प्रत्येक योग्य शरीर वाले नागरिक का यह कर्त्तव्य है और उसके लिए सम्मान की बात भी है कि वह अपने द्वारा चुने गये समाजोपयोगी व्यवसाय में आत्मा के साथ कार्य करे (work conscientiously) और श्रमिक अनुशासन का कठोरतापूर्वक पालन करे। (३) नागरिकों का दायित्व है कि वे समाजवादी सम्पत्ति का परिरक्षण व रक्षण करें। नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे राज्य या सामाजिक स्वामित्व अधीन सम्पत्ति का दुरुपयोग न होने दें और जनता के धन का बचतपूर्ण प्रयोग करें। (४) नागरिकों का यह दायित्व है

18. 'In accordance with the interests of the people and in order to strengthen and develop the socialist system citizens of the USSR are guaranteed freedom of speech, of the press and of assembly, meetings, street processions and demonstrations.' Article 50.
19. Articles 51–58.
20. 'Citizens exercise of their rights and freedoms is inseparable from the performance of their duties and obligations'. Article 59.

कि वे राज्य के हितों की रक्षा करें तथा उसकी शक्ति व प्रतिष्ठा को बढ़ावें। मातृदेश की प्रतिरक्षा करना प्रत्येक नागरिक का पवित्र कर्त्तव्य है और मातृदेश के प्रति विश्वासघात करना जनता के विरुद्ध सबसे गम्भीर अपराध है। (५) सेना में भरती होकर सेवा करना नागरिकों का सम्मानप्रद कर्त्तव्य है। (६) प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह अन्य नागरिकों की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का आदर करे तथा बहुराष्ट्रीय सोवियत संघ के राष्ट्रों व उपराष्ट्रों के बीच मित्रता को सुदृढ़ बनावें। (७) नागरिक का यह दायित्व है कि वह दूसरे व्यक्तियों के अधिकारों व कानूनी हितों का आदर करे। (८) नागरिकों का यह कर्त्त०य है कि वे अपने बच्चों का ठीक से पालन करें और उन्हें समाजोपयोगी कार्य के लिए प्रशिक्षित करें। बच्चों का यह दायित्व है कि वे अपने जनकों का ध्यान रखें और उनकी सहायता करें। (९) नागरिकों का यह दायित्व है कि वे प्रकृति की रक्षा करें और उसके धन को बनाये रखें (protect native and conserve its riches)। (१०) ऐतिहासिक स्मारकों और अन्य सांस्कृतिक मूल्यों के परिरक्षण के लिए चिन्ता व कार्य करना सभी नागरिकों का कर्त्तव्य है। (११) नागरिकों का यह अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्य है कि वे अन्य देशों की जनता के साथ मित्रता व सहयोग को प्रोत्साहन दें तथा विश्व शान्ति बनाये रखने व उसे सुदृढ़ करने में सहायता दें।[21]

४. नागरिकों के अधिकारों, उनकी स्वतन्त्रताओं और उनके कर्त्तव्यों का महत्व

नागरिकों के अधिकारों व स्वतन्त्रताओं को ध्यानपूर्वक देखने तथा उनकी सन् १९३६ के संविधान में दिये अधिकारों से तुलना करने पर, यह कहना उचित होगा कि उन्हें पूर्व की अपेक्षा अधिक विस्तीर्ण बनाया गया है और उनमें बहुत सुधार भी किया गया है। संविधान के अध्याय ६ में नागरिकों की समता (equality of citizens) पर बल दिया गया है। यह घोषित करता है कि नागरिक किसी प्रकार के भेदभाव बिना जीवन के सभी क्षेत्रों में कानून के समक्ष बराबर (equal before the law) हैं। स्त्रियों व पुरुषों को बराबर अधिकार मिले हैं; इसे स्त्रियों को शिक्षा, रोजगार और पारिश्रमिक आदि में बराबर समता प्रदान करके सुनिश्चित बनाया गया है।[22] ऐसे ही, विदेशियों के लिए शरण का अधिकार सन् १९३६ के संविधान में भी था, परन्तु अब उसका विस्तार बढ़ा दिया गया है। यह अधिकार केवल उन्हीं के लिए नहीं है जिन्हें श्रमिकों के हितों का बचाव करने के लिए सताया जायें या जो राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के लिए संघर्ष कर रहे हों, वरन् उनके लिए भी जो शान्ति के पक्ष में लड़ रहे हों या जो क्रान्तिकारी आन्दोलनों में भाग ले रहे हों तथा जो प्रगतिशील, सामाजिक व राजनीतिक कार्यों के लिए सताये जायें।

21. Articles 60-69.
22. Articles 34-35.

उपरोक्त के अतिरिक्त अब एक और अध्याय 'नागरिकों के आधारभूत अधिकारों, उनकी स्वतन्त्रताओं और उनके कर्त्तव्यों' के बारे में सम्मिलित किया गया है। इस अध्याय में सम्मिलित अधिकारों में सन् १६३६ के संविधान में दिये गये अधिकारों को बहुत सुधारा गया है। नागरिकों को अनेक सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्रदान किये गये हैं और उन्हें नागरिकों के जीवन की आवश्यक बातों से जोड़ा गया है। अधिकारों के उपभोग को सम्भव बनाने के लिए पूर्वगामी संविधान में भी प्राविधान दिये गये थे। किन्तु अब ऐसे प्राविधानों का विस्तार किया गया है। जैसा कि कुछ उदाहरणों से स्पष्ट होगा। सन् १६३६ के संविधान की धारा ११८ में काम पाने का अधिकार दिया गया था, जिसे प्रत्याभूत किया गया था। नये संविधान में उसे अधिक बढ़ाकर दिया गया है; नागरिकों को अपने व्यवसाय, व्यापार, पद (job) या काम को अपनी योग्यता, प्रशिक्षण, शिक्षा और झुकाव के अनुसार चुनने का अधिकार मिला है, किन्तु समाज की आवश्यकताओं के लिए उचित ध्यान रखते हुए ही ऐसा किया जा सकता है। अब यह अधिकार पहले से कहीं अधिक सार्थक हो गया है। ऐसे ही सन् १६३६ के संविधान की धारा १२० में बुढ़ापे, बीमारी या असमर्थता (disability) की दशा में जीवन निर्वाह के लिए व्यवस्था (right to mainentance) का अधिकार था। अब नये संविधान की धारा ४२ द्वारा सभी नागरिकों को स्वास्थ्य की रक्षा का अधिकार मिला है और धारा ४३ से बुढ़ापे, बीमारी, पूर्ण अथवा आंशिक (शारीरिक) असमर्थता अथवा रोटी कमाने वाले (bread-winner) के खो जाने पर नागरिकों को जीवन-निर्वाह का अधिकार मिला है। आगे, सन् १६३६ के संविधान ने नागरिकों को शिक्षा के अधिकार की गारण्टी दी थी। नये संविधान ने इस अधिकार को अधिक बढ़ाकर दिया है। उसमें स्पष्ट कहा गया है—सर्वव्यापी और अनिवार्य माध्यमिक शिक्षा (universal compulsory secondary education) तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण का विस्तारपूर्ण विकास और उच्चतर शिक्षा।

सोवियत संविधान विश्व का पहला संविधान है जिसने नागरिकों को गृह का अधिकार (right to housing) प्रदान किया है। इसका बड़ा महत्व है। इसे सुनिश्चित बनाने के लिए समाज के स्वामित्व अधीन गृहों (socially owned housing) की व्यवस्था, व्यक्तिगत व सहकारी गृह-निर्माण के लिए सरकारी सहायता और गृह-निर्माण कार्यक्रम को पूरा करने की व्यवस्था की गई है। सम्बन्धित धारा (Article 44) में यह भी कहा गया है कि नागरिक अपने मकानों को अच्छी दशा में रखने के लिए उचित ध्यान देंगे।

नये संविधान की धारा ४८ के अनुसार नागरिकों को राज्य के तथा सार्वजनिक मामलों के प्रबन्ध और प्रशासन में भाग लेने का अधिकार मिला है। उसी के साथ धारा ४६ के अन्तर्गत नागरिकों को राजकीय निकायों व सार्वजनिक संगठनों को उनके काम करने में कमियों और उनके कार्यों की आलोचना के आधार पर

सुधार सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार मिला है। धारा ५८ के अनुसार सोवियत नागरिक को अधिकार है कि वह सरकारी अधिकारियों, राजकीय निकायों और सार्वजनिक निकायों के विरुद्ध शिकायत कर सके और उनके विरुद्ध न्यायालयों से उपचार प्राप्त कर सके। धारा ५७ के अनुसार नागरिकों को उनके सम्मान और ख्याति पर हस्तक्षेप को रोकने में न्यायालयों का रक्षण प्राप्त है।

जहाँ तक ऊपर वर्णित सामाजिक और आर्थिक अधिकारों का सम्बन्ध है, यह सभी स्वीकार करेंगे कि सोवियत संघ का सन् १९३६ का संविधान इस क्षेत्र में अग्रणी था। नये संविधान ने इन अधिकारों को अधिक विस्तृत, सारपूर्ण और प्रत्याभूत किया है। इन अधिकारों के मिलने के बाद यह कहना सर्वथा उचित है कि सोवियत संघ में सामाजिक और आर्थिक प्रजातन्त्र की सच्चे अर्थ में स्थापना हुई है। परन्तु पहले की भाँति अब भी देखना यह है कि नागरिकों की राजनीतिक और वैयक्तिक स्वतंत्रताओं में किस प्रकार विस्तार हुआ है और उन्हें किस प्रकार और किस सीमा तक प्रत्याभूत किया गया है। यह एक अति महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका उत्तर निम्न प्रकार दिया जाता है। नागरिकों की सुविदित स्वतंत्रताओं— भाषण की स्वतन्त्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता, एकत्रित होने की स्वतन्त्रता, आम सभाएं संगठित करने और उनमें भाग लेने की स्वतन्त्रता, गलियों में जलूस निकालने और प्रदर्शन करने की स्वतन्त्रता को सन् १९३६ के संविधान में भी सम्मिलित किया गया था और अब उन्हें पूरी तरह से दोहराया गया है। सोवियत नागरिक को धर्म के पालन की स्वतन्त्रता है और उसे अपने घर तथा शरीर का अतिक्रमण न किये जाने का भी अधिकार मिला है। संविधान ने उसे अपने पत्र-व्यवहार, तार व टेलीफोन द्वारा संचार आदि को जनता से गुप्त रखने का अधिकार भी दिया है।

परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या नागरिक के ये अधिकार केवल कागज तक ही हैं, क्योंकि अतीत में उनका बहुधा अतिक्रमण किया जाता था। इस बात का ध्यान मि० ब्रजनेव को था, इसलिए संविधान के प्रारूप को राष्ट्रव्यापी वाद-विवाद के लिए प्रस्तुत करते समय उसने कहा था, 'साथियों हम जानते हैं कि सन् १९३६ का संविधान अंगीकार किये जाने के बाद वाले कुछ वर्षों को अवैध दमनकारी कार्यों और समाजवादी प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के अतिक्रमण से अंधियारा बनाया गया था···ऐसा संवैधानिक प्राविधानों का अतिक्रमण करके किया गया। साम्यवादी दल ने ऐसे व्यवहार (प्रथाओं) की निन्दा की और उनकी कभी भी पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। यह बात प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि हमारी केन्द्रीय समिति, सर्वोच्च सोवियत व सोवियत सरकार ने कानूनों का सुधार करने में और नागरिकों के अधिकारों में किसी प्रकार के भी हस्तक्षेप के विरुद्ध पक्की गारन्टियाँ देने के लिए कितना बड़ा कार्य किया है। इन गारन्टियों का सामान्य रूप यह है कि संविधान

व कानूनों के पालन को राज्य के सभी अंगों और अधिकारियों, आम संगठनों व नागरिकों के लिये कर्त्तव्य बनाया गया है।'[23]

परन्तु नया संविधान भी इस आधार पर बना है कि नागरिकों के अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का सोवियत सामाजिक पद्धति के विरुद्ध प्रयोग नहीं किया जा सकता और न ही ऐसा किया जाना उचित है। इसीलिए संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि नागरिकों के अधिकारों व स्वतन्त्रताओं के प्रयोग को उनके कर्त्तव्यों व दायित्वों के पालन से पृथक नहीं किया जा सकता। यह उचित ही है कि अधिकारों के उपभोग से राज्य के अथवा दूसरों के हितों को हानि नहीं पहुंचनी चाहिए नागरिकों को राजनीतिक स्वतन्त्रताओं की गारण्टी श्रमिक जनों के हितों के अनुरूप दी गई है और उसका प्रयोजन समाजवादी पद्धति को समेकित करना है इसकी पूर्वधारणा यह है कि प्रत्येक सोवियत नागरिक को यह मानना चाहिये कि उसके अधिकारों की मुख्य गारण्टी समाज के प्रति उसके उत्तरदायित्वों की पूर्ति है। इसलिए संविधान की धारा ६० में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह अपना कार्य ईमानदारी व लगन से करे और श्रमिक अनुशासन का पालन करें।[24]

अन्त में, यदि हम इस प्रश्न के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पहलुओं पर विचार करें तो हमारे ध्यान में ये बातें आती हैं। दोनों ही दृष्टियों से पूर्व वर्णित स्वतन्त्रताओं का वास्तविक होना प्रजातन्त्र की आवश्यक शर्त है। ये स्वतन्त्रतायें उसी सीमा तक वास्तविक हैं जिसमें शासन और सत्तारूढ़ दल (साम्यवादी दल) की खुलकर आलोचना और उनका विरोध न किया जाए। सोवियत संघ में किसी प्रकार के विपक्ष का अस्तित्व नहीं है और वहाँ की दशाएँ भी बहुत कुछ ऐसी हैं कि विरोधी दलों का निर्माण नहीं हो सकता। फिर भी व्यक्तियों तथा उनके समूहों, विशेषकर बुद्धिजीवियों, द्वारा शासन की नीति और कार्यक्रम की आलोचना की जा सकती है और की जानी उचित है। परन्तु अभी तक सोवियत शासन ने इस प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की है। वर्तमान स्थिति को इस आधार पर न्यायोचित ठहराया जाता है कि सोवियत संघ एक समाजवादी देश है जो साम्यवाद की स्थापना के ध्येय की ओर अग्रसर हो रहा है। समाजवादी पद्धति पूंजीवादी पद्धति से कहीं अधिक अच्छी है और उसी के विश्व में स्थापित हो जाने से सर्वसाधारण जनता—बहुत बड़ी जनसंख्या का जीवन स्तर ऊँचा उठेगा और विश्व में शान्ति स्थापित हो सकेगी। इस तर्क में काफी सार है। पूंजीवादी देशों ने ही शोषण पर आधारित साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को फैलाया तथा रंग-भेद (racial discrimination) आदि को प्रोत्साहन दिया। अब विश्व के अनेक देशों ने साम्यवाद

23. *L. I. Breizhnev* : Report on the Oraft Constitution of U.S.S.R. 24 May, 1977.
24. See *Jitsendra sharma* : New Soviet Constitution, pp. 18-9,

या समाजवाद के विभिन्न रूपों को अपनाया है। अधिकतर अविकसित और विकासशील देश उसी में अपना हित देख रहे हैं।

जिन देशों, समूहों या व्यक्तियों के पास खूब धन और सांसारिक सुखों की प्रचुरता है, उनके लिए राजनीतिक स्वतन्त्रताओं का पूर्व वर्णित सीमाओं से बढ़कर होना आवश्यक है। इसीलिए उदारवादी या 'पाश्चात्य ढंग के प्रजातन्त्रों में दो या अधिक राजनीतिक दल हैं और वहाँ विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं या वादों को प्रश्रय दिया जाता है और सैद्धान्तिक दृष्टि से ऐसा सर्वथा उचित है। परन्तु भूखे, नंगे व्यक्तियों के लिए पहले खाना कपड़ा और मकान की आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिएँ। अतः अविकसित और निर्धन राष्ट्रों की बहुत बड़ी जनसंख्या को रोजगार के साधन, जीवन की निम्नतम आवश्यकताएँ जुटाने के लिए सभी सम्भव प्रयत्न करने चाहिएँ। जैसे-जैसे इस ध्येय की प्राप्ति होगी, वैसे ही सर्व-साधारण का जीवन-स्तर ऊपर उठेगा और उन्हें दूसरी प्रकार की (बौद्धिक) स्वतन्त्रताएं भी मिलेंगी और मिलनी चाहिएँ। यहाँ पर यह बात भी ध्यान में रखने की है कि समाजवादी देशों की प्रगति में पूंजीवादी देश बाधा डालते रहे हैं और आगे भी डालते रहेंगे। अतः उनके बुरे इरादों के विरुद्ध अविकसित और विकासशील देशों को सावधान व सैनिक दृष्टि से तैयार रहना जरूरी है। यदि समाजवादी पद्धति को बनाये रखने या आगे बढ़ाने के हित में नागरिकों की राजनीतिक स्वतन्त्रताओं को सीमित किया जाता है, तो उसके लिए औचित्य है। अन्य प्रजातन्त्री देशों में भी राजनीतिक स्वतन्त्रताओं पर राज्य के हित में विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं।

जहाँ तक नागरिकों के कर्त्तव्यों का सम्बन्ध है, सोवियत संघ ही पहला देश है जिसके सन् १९३६ में बने संविधान में कर्त्तव्यों को पहली बार सम्मिलित किया गया था। उसके बाद अन्य साम्यवादी राज्यों के संविधानों में उन्हें उपयुक्त स्थान दिया गया। भारत के मौलिक संविधान में कर्त्तव्यों का समावेश नहीं किया गया था; उस कमी को सन् १९७६ में हुए ४२वें संशोधन से दूर किया गया। सोवियत संघ के नये संविधान में कर्त्तव्यों की सूची को भी विस्तृत बनाया गया है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सबसे प्रमुख बात यह है कि अधिकारों व स्वतन्त्रताओं के प्रयोग को कर्त्तव्यों व दायित्वों के पालन से अपृथकनीय कहा गया है। वास्तव में होना भी यही चाहिए। नागरिकों के कर्त्तव्यों का महत्व तो उनके उल्लेखमात्र से ही स्पष्ट हो जायेगा। संक्षेप में, कर्त्तव्य ये हैं—अपने व्यवसाय या कार्य को लगन व ईमानदारी से करना; समाजवादी सम्पत्ति की रक्षा करना; राज्य के हितों का संरक्षण करना; सैनिक सेवा, अन्य राष्ट्रों व राष्ट्रीयताओं की प्रतिष्ठा का आदर करना और उनके बीच मैत्री को सुदृढ़ बनाना, अन्य नागरिकों के अधिकारों व कानूनी हितों का आदर करना, अपने बच्चों का अच्छी प्रकार से पालन करना और सन्तान को अपने जनकों का ध्यान रखना व उनकी सहायता करना, प्रकृति की रक्षा करना, ऐतिहासिक स्मारकों की रक्षा करना और अन्य राष्ट्रों के साथ मित्रता

व सहयोग को सुदृढ़ बनाना। इस प्रकार विभिन्न कर्त्तव्यों का सम्बन्ध राज्य, समाज, परिवार, प्रकृति और विश्व समाज से है। सभी कर्त्तव्य सर्वथा उचित और आवश्यक हैं।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. सोवियत संघ में कानून की धारणा (Concept of law) क्या है ? उसके बारे में अपना मत दीजिए।
२. सोवियत संघ की न्यायपालिका की मुख्य विशेषतायें दीजिए।
३. न्यायपालिका के संगठन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
४. सोवियत संघ के शासन में सर्वोच्च न्यायालय के स्थान की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिए।
५. प्रोक्यूरेटरजनरल के पद और कार्यों का वर्णन कीजिए तथा उसका महत्व बताइये।
६. नये संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदान किये गए मुख्य अधिकार बताइये।
७. नये संविधान के अन्तर्गत नागरिकों द्वारा प्राप्त राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों का विवेचन कीजिये।
८. नागरिकों के अधिकारों को किस प्रकार सुनिश्चित अथवा वास्तविक बनाया गया है ?
९. नागरिकों के राजनीतिक अधिकार किस सीमा तक वास्तविक हैं ? क्या उन्हें मूल अधिकार कह सकते हैं ?
१०. अधिकारों के महत्व को समझाकर लिखिए।
११. नागरिकों के कर्त्तव्य क्या हैं ? उनका महत्व बताइये।

—:o:—

५. सोवियत शासन के अन्य पहलू

१. सोवियत संघ में राष्ट्रीयताओं की समस्या

क्रांति के पूर्व—रूस में क्रान्ति के उपरान्त अनेक समस्याओं में से एक का सम्बन्ध रूसी साम्राज्य में अनेक राष्ट्रीयताओं के अस्तित्व से था। क्रांति से पूर्व जार-कालीन रूस में अ-रूसी अल्पसंख्यकों पर बलपूर्वक एकता थोपने का प्रयोग किया जाता था और उनके राष्ट्रीय अधिकारों की घोर अवहेलना की जाती थी। अ-रूसी राष्ट्रीयताओं के प्रति जिनकी जनसंख्या कुल जनसंख्या की आधी थी, रूसीकरण (Russification) की नीति बरती जाती थी; अर्थात् उन्हें धार्मिक, सामाजिक, भाषा व सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित किया हुआ था। संक्षेप में, उन पर रूसी संस्कृति और भाषा लादने के प्रयत्न किये जाते थे। सोवियत लेखकों ने जारकालीन रूस को 'राष्ट्रीयताओं का कारागार' बताया है, अत: यह स्वभाविक था कि राष्ट्रीयतायें कभी-कभी विद्रोह करती थीं, किन्तु उनके विद्रोहों को कठोरता पूर्वक कुचल दिया जाता था। अ-रूसी अल्पसंख्यक राष्ट्रीयतायें रूसी साम्राज्य में विवशता के कारण ही सम्मिलित थीं और उनमें अपने हीन पद की गहरी चेतना विद्यमान थी।[1]

क्रांति के बाद—रूसी क्रांतिकारी व साम्यवादी जार की रूसीकरण नीति के विरोधी थे और उनका विश्वास था कि यह नीति असफल रही थी। साम्यवादी नेताओं और शासन ने आरम्भ से ही पूर्वकालीन नीति के विरुद्ध कार्य किया है। उनकी नीति यह रही है कि पूर्वकालीन रूसी साम्राज्य के अन्तर्गत सभी राष्ट्रों व उप-राष्ट्रों (Nations and nationalities) को कायम रहने दिया जाये और उनका विकास किया जाये। सन् १९१६–१७ में लैनिन ने अपने विचारों का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया था : 'हम अपनी ओर से पृथकत्व बिल्कुल भी नहीं चाहते, जितना बड़ा राज्य सम्भव हो उतना बड़ा राज्य, जितना सुदृढ़ (close) सम्भव हो उतना सुदृढ़ संघ, महान् रूस के पड़ोसियों की सबसे अधिक संख्या हम प्रजातन्त्र और

1. '...these non-Russian national minorities accepted their place in the old Empire only under compulsion, their status of conquered peoples always remaining deeply rooted in their consciousness...Russia was an outstanding instance of the nationally conglomerate state. Because of this fact, and the status of these national minorities the present Soviet leaders constantly refer to the Russia of The Tsars as 'the prison of peoples.' *Harper* and *Thompson* : The Government of the Soviet Union. pp. 46-7.

समाजवाद के हित में चाहते हैं। परन्तु हम ऐच्छिक मेल चाहते हैं और इसलिए हम पृथक् होने की स्वतन्त्रता को मान्यता देने को बाध्य हैं।'[2]

सन् १९१८ की 'कड़ा परिश्रम करने वाली और शोषित जनता के अधिकारों की घोषणा' (The Declaration of the Rights of the Toiling and Exploited People) में, जिसे लैनिन ने लिखा था, कहा गया है कि रूसी सोवियत गणतन्त्र का निर्माण स्वतन्त्र राष्ट्रों के स्वतन्त्र संघ के सिद्धान्त पर राष्ट्रीय गणतन्त्रो के संघ रूप में किया जायेगा। वास्तव में, रूसी क्रांतिकारी नेताओं ने अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं के आन्दोलन को सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन का मित्र समझा था और इस मत की घोषणा नये शासन ने शक्ति पाने के शीघ्र बाद ही कर दी थी। उस घोषणा (Declaration of the Rights of the Peoples of Russia) में नये शासन ने इन बातों का विश्वास दिलाया—(१) नये राज्य में सभी राष्ट्रों की समता और प्रभुता, (२) सभी राष्ट्रीय और राष्ट्रीय-धार्मिक विशेषाधिकारों व प्रतिबन्धों का उन्मूलन, (३) सभी राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों व जातीय समूहों (ethnic groups) का स्वतन्त्र विकास और (४) विभिन्न राष्ट्रों को पूर्ण स्वभाग्य निर्णय का अधिकार (Rights of the various people to full self-determination), यहाँ तक कि वे चाहें तो अलग होकर स्वतन्त्र राज्यों का निर्माण कर सकें।

उपरोक्त आधारभूत सिद्धान्तों पर पहले रूसी संघ का निर्माण किया गया और बाद में सोवियत समाजवादी गणराज्यों के संघ का। वतमान संविधान की विशेषताओं में एक यह है कि इसका स्वरूप अन्तर्राष्ट्रवादी है। इसका आधार यह है कि राष्ट्रों और जातीय समूहों के अधिकार सम हैं। अतः रंग, भाषा, सांस्कृतिक स्तर, राजनीतिक विकास के स्तर अथवा किसी और आधार पर राष्ट्रीय व जातीय समूहों के बीच असमान राष्ट्रीय अधिकारों को न्यायोचित नहीं समझा जाता।[3] सोवियत संघ की रचना में यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वहाँ संघीय गणराज्य, स्वाधीन गणराज्य, स्वाधीन प्रदेश व राष्ट्रीय क्षेत्र आदि को उचित स्थान मिला है। विभिन्न स्तरों की इकाइयों को सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के द्वितीय सदन में सम प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इसके अतिरिक्त सभी सोवियत नागरिकों के अधिकार बराबर हैं। सोवियत संवैधानिक पद्धति की यह अत्यधिक महत्वपूर्ण सफलता है कि उसके अनुसार अनेक राष्ट्रीयताओं को मिलाकर सोवियत संघ एक

2. *V. I. Lenin* : Collected Works VXX PP, p. 295.

3. '...the new (1936) constitution of the U. S. S. R. is profoundly internationalistic. It proceeds from the proposition that all nations and races have equal rights. It proceeds from the fact that neither difference in colour or language, cultural level, or level of political development, nor any other difference between nations and races, can serve as grounds for justifying national inequality of rights.' *J. Stalin* : on the Draft Constitution of the U. S. S. R., p. 21.

सुदृढ़ राज्य बना है। टाउस्टर के अनुसार 'राष्ट्रीयता का सिद्धान्त सोवियत रचना की राजनीतिक शक्ति के आधारभूत स्तम्भों में से एक है।'[4] सोवियत संघ एक बहुराष्ट्रीय राज्य (Multinational State) है, जिसमें लगभग १८५ राष्ट्र व उपराष्ट्र अथवा राष्ट्रीयतायें निवास करती हैं। एक लेखक के अनुसार सोवियत संघ की कुल जनसंख्या में मुख्य राष्ट्रीयताओं की जनसंख्या का प्रतिशत इस प्रकार है—रूसी ५१, यूक्रेनियन २१, श्वेत रूसी ३, फिन ३, तातारि ३, जार्जियन १, उजबेक आदि ३। कुछ राष्ट्रीय अल्पसख्यक करोड़ों में हैं तो कुछ लाखों में।

कुछ आलोचकों के अनुसार मार्क्स तो अन्तर्राष्ट्रीयता में विश्वास करता था, अतएव उसके अनुयायियों, लैनिन और स्टालिन ने राष्ट्रीयताओं के स्वभाग्य-निर्णय सम्बन्धी अधिकार को केवल इसलिए स्वीकार किया कि जिससे सोवियत संघ का निर्माण ऐच्छिक आधार पर सम्भव हो। इसी कारण आरम्भ में कुछ राष्ट्र रूसी संघ से पृथक् हो गए थे और उनके ऐसे अधिकार को माना गया। आलोचक यह भी कहते हैं कि सोवियत नेता समाजवाद के सिद्धान्त को राष्ट्रीयता के सिद्धान्त से उच्चतर मानते हैं। सन् १९३३ में स्टालिन ने लिखा था—'ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जब स्व-भाग्य निर्णय का अधिकार मजदूर-वर्ग के उस दूसरे किन्तु श्रेष्ठ अधिकार का, जिसके द्वारा वह अपने अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए शक्तिशाली होना चाहता है, विरोध करे; ऐसी परिस्थितियों में यह स्पष्ट है कि स्व-भाग्य निर्णय का अधिकार सर्वहारा वर्ग की अधिनायकशाही के अधिकार में न तो बाधा डाल सकता है और न उसे बाधा डालनी चाहिए।'

हमारे विचार में, सोवियत नेताओं को उनकी सफल और शान्तिपूर्ण नीति के लिए श्रेय देना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप सोवियत संघ सोवियत समाजवादी राष्ट्रों का भ्रातृत्वपूर्ण परिवार (Family of Nations) बन सका है। उन्होंने देश और समाज की परिस्थितियों को समझा और बुद्धि व सूझ से काम लिया, अतएव वे प्रशंसा के पात्र हैं। भारतवासियों के लिये तो उनका उदाहरण अनुकरणीय है। हमारे देश के कर्णधारों ने भी इसी कारण संघात्मक राज्य की स्थापना की है तथा राज्यों का पुनर्गठन भी हुआ है।

नये संविधान की धारा ७० के अनुसार सोवियत संघ एक अखण्ड, संघात्मक और बहुराष्ट्रीय राज्य (an integral, federal, multinational state) है, जिसका निर्माण समाजवादी संघवाद के आधार पर राष्ट्रों के स्वतन्त्र भाग्य-निर्णय (free selfdetermination of nations) और बराबर के सोवियत समाजवादी गणराज्यों के ऐच्छिक सहयोग के परिणामस्वरूप हुआ है। सोवियत संघ में सोवियत

4. 'The principle of nationality is one of the basic pillars of the Soviet structure of political power.' *J. Towster* : Political Power in the U. S. S. R., p. 50.

जनता की राजकीय एकता (state unity) समाविष्ट है और इसने संयुक्त रूप से साम्यवाद निर्माण हेतु राष्ट्रों और राष्ट्रीयताओं को एक साथ मिलाया है।'[5]

२. सोवियत संघ का स्वरूप

रूस के साम्यवादी नेताओं ने राष्ट्रीयताओं की समस्या का हल संघवाद अर्थात् विभिन्न राष्ट्रों के संघ की स्थापना में पाया। सिद्धान्त रूप में साम्यवादी संघात्मक शासन में विश्वास नहीं करते। साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुसार समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना के लिए पहले एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार अथवा सर्वहारा वर्ग की अधिनायकशाही आवश्यक है और वर्गविहीन समाज की स्थापना के बाद राज्य के मुर्झाने की दिशा में बढना है। **मार्क्स** के सहयोगी एन्जेल्स (Engels) ने स्पष्ट लिखा है कि 'सर्वहारा वर्ग तो केवल एक और अविभाज्य गणराज्य के रूप का ही प्रयोग कर सकता है' (The proletariat can use only the form of the one indivisible republic)। परन्तु **लैनिन** ने रूस की वास्तविकताओं को समझा और *आरम्भ में ही राष्ट्रों के स्वभाग्य निर्णय के सिद्धान्त* को अपनाया। **लैनिन और स्टालिन** संघ को एकात्मक राज्य को अपेक्षाकृत कमजोर शासन प्रणाली मानते थे, फिर भी राष्ट्रों की समस्या को हल करने के उद्देश्य से उन्होंने संघवाद का सिद्धान्त अपनाया। स्टालिन यह समझता था कि यदि कमजोर राष्ट्रीय समूहों को स्वभाग्य निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार अलग होने दिया गया तो यह सम्भव था कि उन्हें कोई दूसरा साम्राज्य अपने अधीन कर लेता।[6] इसी कारण साम्यवादी लेखक सोवियत संघ को 'रूप में राष्ट्रीय परन्तु सार में समाजवादी' (National in form but Socialist in substances) बताते हैं।

संघ के अन्तर्गत संघीय गणराज्य तथा अन्य उप-विभाग—संविधान की धारा १३ में 'सोवियत समाजवादी गणराज्यों के संघ (U. S. S. R.) को संघात्मक राज्य बताया गया है, जो सम समाजवादी गणराज्यों की ऐच्छिक एकता पर आधारित है। इसमें इस समय १५ गणराज्य सम्मिलित हैं, जिनके नाम ये हैं—रूस (R. S. F. S. R.), यूक्रेन, वाइलोरूस, (श्वेत रूस), उजबेक, कजक, जार्जिया, 'अजरवेजान, लिथुनिया, मोल्दावी, लेटविया, खिरगिज, तदजिहक, अर्मीनिया, तुर्कमेन, और स्टोनिया। इन्हें संघीय गणराज्य (Union Republics) कहा जाता है। संविधान की दृष्टि से ये एक दूसरे के सम हैं, यद्यपि आकार व जनसंख्या तथा अन्य बातों में इनके बीच विभिन्नतायें हैं। इनमें सबसे बड़ा रूस है, जो सोवियत संघ के कुल क्षेत्रफल के लगभग ३/४ भाग में फैला हुआ है और जिसमें कुल जनसंख्या का ३/५ भाग रहता है।

संघीय गणराज्यों के उप-विभाग हैं, जिनके प्रकार और संख्या यहां दिये जाते हैं—टेरीटरी (Territories) ६, प्रदेश (Regions) १२४, स्वाधीन गणराज्य

5. Article 70.
6. *J. N. Hazard* : The Soviet System of Government, p. 76.

(Autonomous republics) १५, स्वाधीन प्रदेश ६ और राष्ट्रीय क्षेत्र (National areas) १०। सोवियत संघ का सीधा सम्बन्ध संघीय गणराज्यों से है; अन्य सभी निम्न स्तरीय इकाइयों की रचना संघीय गणराज्यों द्वारा की गई है; परन्तु इन्हें भी सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के द्वितीय सदन में (Soviet of Nationalities) में प्रतिनिधित्व प्राप्त हैं। इसी कारण सोवियत संघ को संघों का संघ (Fede Nations of federations) कहते हैं। उदाहरण के लिए, अकेले रूसी संघ (R. S. F. S. R.) में ५ टेरीटरी, २७ प्रदेश, १७ स्वाधीन गणराज्य और ६ स्वाधीन प्रदेश सम्मिलित हैं। सम्पूर्ण सोवियत संघ में १५ संघीय गणराज्यों के अतिरिक्त कुल टेरीटरी ६१, प्रदेश २२, स्वाधीन गणराज्य ६, स्वाधीन प्रदेश तथा कई राष्ट्रीय जिले हैं।

शक्तियों का विभाजन—प्रत्येक संघीय गणराज्य का अपना संविधान है; परन्तु इसमें कोई ऐसी बात नहीं हो सकती जिसका संघीय संविधान से विरोध हो (which must be in conformity with the constitution of the U. S. S. R.)। किसी भी संघीय गणराज्य की सीमाओं में उसकी सहमति के बिना कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। धारा ७२ के अनुसार प्रत्येक संघीय गणराज्य के लिए स्वतंत्रतापूर्वक संघ से विच्छेद करने का अधिकार कायम है। धारा ७४ के अनुसार सोवियत संघ के कानून सभी गणराज्यों में एक-समान रूप से लागू और प्रभावी हैं। यदि किसी संघीय कानून और किसी संघीय गणराज्य (union republic) के कानून के बीच में अन्तर हो तो सर्वसंघीय कानून ही लागू रहेगा। सम्पूर्ण सोवियत संघ की भूमि (teritory) एक इकाई है, जिसमें संघीय गणराज्यों की भू-सीमायें सम्मिलित हैं। सोवियत संघ की राजसत्ता सम्पूर्ण राज्य पर लागू है। संघीय गणराज्य को दूसरे राज्यों से सम्बन्ध कायम करने, उनसे संधियाँ करने और अन्तर्राष्ट्रीय संघों में भाग लेनें का अधिकार है। संघीय गणराज्यों के प्रभुत्वपूर्ण अधिकारों के संरक्षण का दायित्व सोवियत संघ पर है।[7] सिद्धान्त रूप में सोवियत संघ की शक्तियाँ स्पष्ट और परिगणित हैं, जबकि शेष शक्तियाँ गणराज्यों के लिए आरक्षित हैं। सोवियत संघ के अधिकार-क्षेत्र में ये शक्तियाँ आती हैं : (१) नये गणतन्त्रों का संघ में प्रवेश, संघीय गणतन्त्रों के भीतर स्वशासी गणतन्त्रों व प्रदेशों के निर्माण का समर्थन (endorsement)। (२) संघ की सीमाओं का निर्धारण और संघीय गणतन्त्रों की सीमाओं में परिवर्तन की स्वीकृति। (३) राजकीय सत्ता की

7. 'A Union Republic has the right to enter into relation with othere states, conclude treaties with them, exchange diplomatic and consular representatives, and take part in the work of international organisations. The sovereign rights of Union Republics shall be safeguarded by the U. S. S. R.' Articles 80-81.

गणतन्त्रीय व स्थानीय निकायों के संगठन व कार्य प्रणाली के बारे में सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना। (४) सम्पूर्ण संघ में विधायी प्रतिमानों (legislative norms) को सुनिश्चित बनाना और संघ व संघीय गणतन्त्रों के विधायन की आधारभूत बातों की स्थापना (establishment of fundamentals of legislation)। (५) एकरूप सामाजिक और आर्थिक नीति का अनुसरण तथा देश की अर्थ व्यवस्था का निदेशन। (६) सोवियत संघ के संचित बजट (consolidated budget) का मसौदा बनाना तथा उसे स्वीकार करना। (७) अर्थव्यवस्था के सेक्टरों (sectors of economy) व उद्यमों का निदेशन। (८) युद्ध व शान्ति के प्रश्न और सोवियत संघ की प्रभुता की प्रतिरक्षा। (९) राज्य की सुरक्षा। (१०) सोवियत संघ का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में प्रतिनिधित्व; संघ के अन्य राज्यों व अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से सम्बन्ध। (११) संघ के संविधान के पालन पर नियन्त्रण। (१२) सर्व-संघाय महत्व के अन्य मामलों को सुलझाना।[8]

सोवियत संघ की शक्तियाँ को ४ समूहों में रखा जा सकता है—प्रथम, सोवियत संघ का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में प्रतिनिधित्व, अन्य राज्यों से सन्धियाँ करना और उनका पुष्टिकरण, युद्ध और शान्ति से सम्बन्धित मामले, प्रतिरक्षा का संगठन और सशस्त्र सेनाओं का निदेशन और राज्य की सुरक्षा का रक्षण। अन्तिम शक्ति के अन्तर्गत सर्वोच्च सोवियत की प्रेसीडियम को सम्पूर्ण संघीय क्षेत्र अथवा किसी प्रदेश में संघ की सुरक्षा के हित में सैनिक कानून लागू करने का अधिकार भी प्राप्त है। दूसरे समूह में समाजवादी आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्धित शक्तियाँ सम्मिलित हैं। सघीय शासन के मन्त्रालय (ministries) दो प्रकार के हैं—अखिल-संघीय (All-Union) जो केन्द्रीकृत (centralised) है और संघ-गणराज्यीय (Union-Republic), जिनका सम्बन्ध उन विषयों से है जो साधारण रूप में संघीय गणराज्यों के अधीन हैं। सोवियत संघ राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की इन शाखाओं में अविभाज्य निदेशन की शक्ति रखता है—संचार के साधन, जल-परिवहन, भारी और प्रतिरक्षा उद्योग, मशीन-निर्माण और खाद-रसद। तीसरे समूह में दो बातें उल्लेखनीय हैं—(अ) राजकीय सत्ता और प्रशासन के गणतंत्रीय व स्थानीय निकायों के संगठन और कार्य प्रणाली के बारे में सामान्य सिद्धान्तों का निर्धारण। (ब) सम्पूर्ण देश में विधायी प्रतिमानों (legislative norms) की एकरूपता को सुनिश्चित बनाना तथा विधि-निर्माण की आधारभूत बातों (fundamentals of legislation) को स्थापित करना। चौथे समूह में संघ और संघीय गण-राज्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों के क्षेत्र में संघ की सर्वोपरिता सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्त आते हैं। उदाहरण के लिए, सोवियत संघ में नये गणराज्यों का प्रवेश, संघीय संविधान के पालन पर नियन्त्रण, यह देखना कि संघीय गणराज्यों के संविधान संघीय सविधान के विरुद्ध

8. Article 73.

न हों, संघीय गणराज्यों के बीच सीमा-परिवर्तनों का अनुसमर्थन (confirmation) और संघीय राज्यों के भीतर टेरीटरियों, प्रदेशों, स्वाधीन गणराज्यों आदि की रचना का अनुसमर्थन।

संघीय गणराज्यों की शक्तियाँ—अपने संविधान के अनुसार प्रत्येक गणराज्य को ये शक्तियाँ प्राप्त हैं—यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की योजना और गणराज्य के बजट को निश्चित करता है; यह सोवियत संघ के कानूनों के अनुरूप राज्यीय व स्थानीय करों और अन्य आय स्रोतों को स्थापित करता है; यह बीमे और बचतों का प्रवन्ध करता है; भूमि का प्रयोग प्राकृतिक खनिजों, वनों और जल-साधनों का प्रयोग किस क्रम से हो, यह निर्धारित करना—इन विषयों में वह संघ सरकार द्वारा स्थापित आधारभूत सिद्धान्तों से मार्ग-दर्शन ग्रहण करता है; संघ के अधीन उद्यमों की दशाओं और प्रशासन को नियन्त्रित करता है और उनका अधीक्षण भी; और यह मार्गों के निर्माण को पूरा करता है तथा स्थानीय परिवहन और संचार का निदेशन करता है। इसके अतिरिक्त संघीय गणराज्य अपने अधीन सांस्कृतिक, शैक्षणिक और वैज्ञानिक संगठनों व संस्थाओं का भी निदेशन करते हैं। उन्हीं के हाथों में सामाजिक बीमे व शारीरिक व्यायाम और खेल आदि का निदेशन है। अन्त में, संघीय गणराज्य अपने अधीन उप-विभागों की सीमाओं आदि को निश्चित करते हैं।

सोवियत संघ का सच्चा स्वरूप—प्रायः सभी विदेशी लेखक यह मानते हैं कि सोवियत संघ सच्चाई में संघात्मक राज्य नहीं है, वास्तव में प्रायः सभी महत्व-पूर्ण शक्तियाँ संघीय सरकार में निहित हैं। सच तो यह है कि सोवियत संघ में कई अनोखी विशेषतायें हैं जिनका संक्षिप्त विवेचन यहाँ दिया जाता है। एक ओर तो सोवियत संघ का संविधान संघात्मक शासन की दिशा में विश्व के अन्य संघीय राज्यों से आगे बढ़ गया है, जैसा कि इन बातों से स्पष्ट है—प्रथम, संघीय गण-राज्यों को स्वतन्त्रतापूर्वक संघ से अलग होने का अधिकार है। अभी तक इस अधिकार का प्रयोग नहीं हुआ है; आलोचकों की दृष्टि में ऐसा कभी हो भी न सकेगा, क्योंकि यह अधिकार केवल दिखावे के लिए है। कुछ भी हो, अन्य संघात्मक संविधानों में इस प्रकार का प्राविधान भी नहीं है। दूसरे, सन् १९४४ में स्वीकृत संशोधन द्वारा संघीय गणराज्यों को दो महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्रदान की गई— (१) धारा १८ के अन्तर्गत संघीय गणराज्यों को विदेशी राज्यों से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने, उनके साथ कूटनीतिक व वाणिज्य दूतों का विनिमय करने और उनसे सन्धियाँ करने के अधिकार मिले हैं। (२) धारा १८ व के अन्तर्गत संघीय गणराज्यों को अपनी सशस्त्र सेनाओं पर नियन्त्रण का अधिकार है। इन्हीं संशोधनों के परिणामस्वरूप यूक्रेन और बाइलो रूस को संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्राप्त

हुई । यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के अधिकार अन्य किसी संघ राज्य में संघान्तरित इकाइयों को प्राप्त नहीं हैं ।[8]

दूसरी ओर सोवियत संघ के संविधान में कई ऐसी बातें हैं अथवा आवश्यक बातों का अभाव है जिनके कारण इसे आलोचक सच्चा संघ नहीं मानते । सोवियत संघ के संविधान में संघात्मक संविधान की सर्वमान्य दो बातों का स्पष्ट अभाव है—प्रथम, सोवियत संघ में न्यायपालिका को संविधान का संरक्षक नहीं बनाया गया है, अर्थात् उसे संघ व गणराज्यों के कानूनों पर न्यायिक पुनरवलोकन (Judicial review) की शक्ति प्राप्त नहीं है । सोवियत संघ का सर्वोच्च न्यायालय इस शक्ति से वंचित है; साथ ही उसे संविधान की धाराओं के निर्वचन की शक्ति भी प्राप्त नहीं है । दूसरे, संविधान में केवल संघीय सर्वोच्च सोवियत ही अकेले किसी भी प्रकार का संशोधन कर सकती है, अर्थात् संघ व गणराज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन से सम्बन्धित कोई भी संशोधन बिना गणराज्यों की सहमति अथवा जन-निर्णय से किया जा सकता है । इन दोनों आवश्यक बातों के अभाव के कारण सोवियत संघ संघात्मक संविधान के मान्य प्रतिमानों से गिरा हुआ है अथवा सच्चे अर्थ में संघात्मक नहीं है ।

उपरोक्त के अतिरिक्त आलोचकों की दृष्टि में, व्यवहार में, सोवियत संघ में प्रायः सम्पूर्ण महत्वपूर्ण शक्तियाँ राष्ट्रीय सरकार में निहित हैं । अधिक से अधिक संघीय गणराज्यों का सांस्कृतिक क्षेत्र में स्वायत्तता प्राप्त है । इस मत के पक्ष में ये तर्क दिये जाते हैं—(१) सोवियत संघ में सर्वहारा वर्ग की अधिनायकशाही है, जिसका अर्थ, व्यवहार में, साम्यवादी दल की अधिनायकशाही से है । यह सच है कि साम्यवादी दल की स्थिति ऐसी है कि कोई भी क्षेत्र उसके प्रभाव से बाहर नहीं है । विभिन्न राष्ट्रों को अपनी भाषा व संस्कृति के विकास के लिए स्वाधीनता प्राप्त है, किन्तु उनकी वह सीमित राष्ट्रीय स्वाधीनता कभी भी राजनीतिक क्षेत्र में अभिव्यक्त नहीं हो सकती ।[9] इस बात को इस प्रकार आसानी से समझा जा सकेगा । सोवियत संघ में भारत व संयुक्त राज्य अमरीका आदि संघात्मक राज्यों की भाँति यह सम्भव नहीं है कि किसी भी गणराज्य में साम्यवादी दल के अतिरिक्त किसी विरोधी दल का शासन स्थापित हो सके । ऐसा कभी भी सम्भव नहीं हो सकता; क्योंकि वहाँ पर एक ही राजनीतिक दल है और सभी नेताओं की दृष्टि में संघवाद साम्यवाद के ऊपर नहीं है । (२) संघ सरकार को सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र के

8. अब ये बातें नये संविधान की धारा ८० में सम्मिलित की गई हैं, जिसे पूर्वगामी पृष्ठों में दिया जा चुका है ।
9. 'National autonomy has in no way been allowed to find expression in the field of politics, which remains the exclusive domain of the Communist party of the Soviet Union and its subordinate agencies,' *Beukema et al*: Contemporary Foreign Governments, p. 352.

लिए आर्थिक योजनायें बनाने की शक्ति प्राप्त है, और सोवियत संघ में नियोजन सम्पूर्ण जीवन तक विस्तृत है, अतः गणराज्यों के प्रायः सभी महत्वपूर्ण कार्य नियोजन के अन्तर्गत आ जाते हैं।[10]

(३) यदि दो संघीय राज्यों अथवा संघ व गणराज्यों के बीच शक्तियों व अधिकार-क्षेत्र के सम्बन्ध में कोई विवाद उठे तो उसका निर्णय संघ सरकार करती है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि वहाँ सर्वोच्च न्यायालय को आवश्यक शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। (४) संघ सरकार को अनेक विषयों के बारे में भी, आधारभूत सिद्धान्त निर्धारित करने की शक्ति प्राप्त है। (५) अन्य अनेक बातों में संघ सरकार गणराज्यों की सरकारों के मार्ग-दर्शन हेतु सामान्य सिद्धान्त निर्धारित करती है। संघ की सर्वोच्च सोवियत की प्रेसीडियम को गणराज्यों की मन्त्रि-परिषदों के निर्णयों को रद्द करने की शक्ति प्राप्त है। (६) सोवियत संघ में इन सभी बातों तथा प्रोक्यूरेटर-जनरल की स्थिति के कारण, जिसे सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र में सोवियत के कठोर क्रियात्मक रूप की देख-रेख के अधिकार प्राप्त हैं, वर्तमान प्रवृत्ति केन्द्रीकरण की ओर है।[11]

अन्त में, हम इस विषय में कुछ मान्य लेखकों के मत देते हैं। मैक्स बेलॉफ का मत है, 'सोवियत संविधान की दूसरी विशेषता नाममात्र का संघात्मक तत्व है जो पुराने रूसी संघ (R. S. F. S. R.) में विद्यमान था और जो आज भी सोवियत संघ तथा संघीय राज्यों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। वास्तव में, वह क्रांतिकारी काल की अस्थायी परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ। इसका उदय मार्क्स व लैनिन के सिद्धान्तों से नहीं हुआ है, जिनका स्वरूप केन्द्रीकृत और संघ-विरोधी है। व्यवहार में सोवियत संघवाद इतना सीमित है कि सोवियत संघ को संघात्मक शासन के उदाहरण रूप में पहचानना कठिन है।'[12] व्हीयर ने इसे अर्द्ध-संघ बताया

10. 'The national economic plan is paramount over the economy of every area. It is impossible for an area to develop its own kind of economy even if it had such a wish. The central powers permit the fixing of an intensively uniform economic system of production, distribution, commerce and finance... This is true even after the economic decentralisation of 1957...' *H. Finer* : The Maior Governments of Modern Europe, p. 636.
11. 'Moreover, a study of the developments of that area since the Bolshevik Revolution shows conclusively that the trend runs unmistakably.' in the direction of greater centralism.' *R. G. Neumann* : European and Comparative Government, p. 569.
12. 'It is the product of the temporary exigencies of the revolutionary period... It does not spring from Marxist-Leninist theory, which is centralist and anti-federal in character.... Soviet federalism is in practice so limited as to be scarcely recognizable as an example of the federal species.' *J. L. Brierly (ed.)* ; Law and Government in Principle and Practice, p. 284.

हैं; और उसके अनुसार, 'सोवियत संघ को किसी भी दशा में संघात्मक शासन नहीं माना जा सकता।'[13] ऑग के अनुसार, 'संघात्मक रूप के बावजूद भी सोवियत संघ में सत्ता का जितना अधिक केन्द्रीकरण है, उसके बराबर संसार के अन्य किसी राज्य में हो सकता है, किन्तु उससे बढ़कर तो कहीं कठिनता से ही होगा।' चर्चवार्ड इस विषय में इन निष्कर्षों पर पहुँचा : (१) संघवाद शब्द के साधारण पाश्चात्य अर्थ में सोवियत संघ में संघवाद नहीं है। इसे बहु-राष्ट्रीय एकात्मक राज्य कहना अधिक अच्छा होगा। जब तक वहाँ पर लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद का सिद्धान्त लागू रहता है तब तक सोवियत पद्धति एकात्मक ही रहेगी। (२) हाल में किए गये वृद्धिपूर्ण विकेन्द्रीकरण का आधार आर्थिक है। (३) सन् १९६५ में केन्द्रीकृत औद्योगिक मन्त्रालयों के पुनर्स्थापन के साथ औद्योगिक प्रबन्धकों की निर्णय करने की शक्ति में भी वृद्धि की गई। सन् १९६५ के सुधारों ने आर्थिक न्यागमन (economic devolution) के ध्येय की ओर भिन्न पहुँच अपनाई, केवल उद्योगों पर केन्द्रीकृत नियन्त्रण के पुराने ढंग को नहीं अपनाया गया।[14]

३. सोवियत पद्धति और लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद

सोवियत पद्धति की पृष्ठ-भूमि—सोवियत संविधान में प्राविधान है कि 'सोवियत संघ की राजनैतिक आधारशिला (political foundation) श्रमिक जनों के प्रतिनिधियों की सोवियतें (Soviets of Working People's Deputies) हैं जिनका विकास जमींदारों और पूँजीपतियों की शक्ति उखाड़ फेंकने और सर्वहारा वर्ग की विजय से हुआ।' 'सोवियत' शब्द रूसी भाषा का है जिसे अंग्रेजी में कौंसिल अथवा हिन्दी में परिषद् कहते हैं। यह एक प्रकार की विधायिका है। जिसे पाश्चात्य देशों में एसेम्बली या पार्लियामेंट कहते हैं, उसे रूसी भाषा में 'सोवियत' कहते हैं। आरम्भ में सोवियतों के सदस्य केवल श्रमिक जन थे और सोवियतें ही मजदूर संघों का कार्य करती थीं। उस समय उनका कार्य शासन का विरोध करना अथवा क्रांतिकारी था, अतएव वे आवश्यक रूप से राजनैतिक संगठन थीं। प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान जब हड़तालें व्यापक रूप में फैलीं तो विभिन्न कारखानों के प्रतिनिधियों के निर्वाचन से, श्रमिक जनों के प्रतिनिधियों की सोवियतों (Soviets of Workers Deputies) का निर्माण हुआ। रूस की राजधानी सेंट पीटर्सबर्ग में ऐसा ही संगठन पहले पहल बना और वह नमूना बड़े औद्योगिक नगरों में फैल गया। इस संगठन के सदस्यों की संख्या काफी बड़ी होती थी अतएव उसके सत्रों के बीच के काल में उसका कार्य करने के लिये एक कार्यकारिणी समिति होती थी।

13. *K. C. Wheare* : Federal Government, pp. 27-28.
14. *L. G. Churchward* : Contemporary Soviet Government, p. 167.

प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान कानून बनाने के लिये सरकारी ड्यूमा थी, परन्तु सोवियतों की शक्ति बढ़ रही थी। उनमें सिपाहियों के प्रतिनिधि भी लिये गये और वे **'श्रमिक जनों व सिपाहियों के प्रतिनिधियों की सोवियतें'** कहलाने लगीं। सन् १६१७ की फरवरी में रूसी क्रांति हुई और अस्थायी सरकार बनी जो स्थिति पर काबू न पा सकी। लैनिन आदि नेताओं ने यह नारा लगाया कि सम्पूर्ण शक्ति सोवियतों को सौंपी जाये और उसके बाद बोल्शेविक क्रांति हुई। शासन सत्ता सम्पूर्ण रूस के श्रमिक जनों और सिपाहियों के प्रतिनिधियों की सोवियतों की कांग्रेस (All Russian Congress of Soviets of Workers' and Soldiers' Representatives) के हाथों में आई। अब सोवियत शासन में नीचे से लेकर ऊपर तक विभिन्न स्तरों पर शासन का प्रमुख अंग सोवियतें हैं। वर्तमान संविधान के अन्तर्गत सर्वोच्च सोवियत के दो सदन हैं—'संघ की सोवियत' (Soviet of the Union) और 'राष्ट्रीयताओं की सोवियत' (Soviet of Nationalities)। प्रथम सदन में सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र का भूमिगत आधार पर प्रतिनिधित्व है और दूसरे में विभिन्न गणराज्यों व प्रादेशिक इकाइयों अथवा राष्ट्रों व उप-राष्ट्रों का। इसी प्रकार संघीय गणराज्यों और अन्य उप-विभागों की सोवियतें हैं किन्तु वे सभी एक सदन वाली हैं।

सोवियत पद्धति और उनके कार्य करने के सिद्धान्त—सभी सोवियतें—गांव की सोवियत से लेकर संघ की सर्वोच्च सोवियत तक राजकीय सत्ता की एकल पद्धति के निकाय हैं (Constitute a single system of bodies of state authority)। संघ व गणराज्यों की सोवियतों की अवधि ५ वर्ष है और नीचे की सोवियतों की अवधि २½ वर्ष है। प्रत्येक स्तर की सोवियत अपने अधिकारक्षेत्र में आने वाले सभी महत्वपूर्ण विषयों पर विचार व निर्णय करती है। सोवियतें स्थायी समितियाँ चुनती हैं, कार्यकारी प्रशासनिक और अन्य निकाय बनाती हैं जो उन्हीं के प्रति उत्तरदायी हैं। सोवियतें जन नियन्त्रण निकाय (peoples' central bodies) बनाती हैं, जिनमें राजकीय नियन्त्रण और श्रमिकों का उद्यमों, सामूहिक फार्मों, संस्थाओं व संगठनों के लिए मिला-जुला नियन्त्रण है। ये सोवियतें प्रत्यक्ष रूप में या अपने द्वारा संस्थापित निकायों द्वारा राज्य के सभी सैक्टरों तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का निदेशन करती हैं। सोवियतें खुले रूप में, सामूहिक, स्वतन्त्र, रचनात्मक वाद-विवाद और निर्णय करने के आधार पर, कार्य करती हैं। वे क्रमबद्ध रूप में अपने कार्यों के बारे में जनता को रिपोर्ट देती हैं और वे जनता को बड़े पैमाने पर अपने कार्यों में अन्तर्ग्रस्त करती है।

चुनाव पद्धति और जन-प्रतिनिधि—सभी सोवियतों के सदस्य (deputies) सर्वव्यापी, सम, और प्रत्यक्ष मताधिकार के आधार पर गुप्त मतपत्र द्वारा चुने जाते हैं। प्रत्येक मतदाता का एक मत है; चुनाव प्रत्यक्ष होते हैं। सदस्यों का चुनाव निर्वाचन-क्षेत्रों से होता है; उनकी नामजदगी साम्यवादी दल, ट्रेड यूनियनों, युवा

साम्यवादी लीग, सहकारी अन्य सार्वजनिक संगठनों द्वारा की जाती है। साधारणतया किसी व्यक्ति को एक ही समय दो से अधिक सोवियतों का सदस्य नहीं चुना जाता। निर्वाचक अपने प्रतिनिधियों को आदेश (mandate) देते हैं। प्रतिनिधि को जनता का सम्पूर्ण शक्ति प्राप्त प्रतिनिधि कहा गया है। वे सदस्य रूप में अपने कार्य को अपने नियमित पेशे, व्यवसाय के साथ करते हैं। वे अपने कार्यों के बारे में अपने निर्वाचकों को रिपोर्ट देते हैं और उन्हें वापस भी बुलाया जा सकता है।

सोवियतों का संगठन—विभिन्न स्तरों पर प्रत्येक क्षेत्र के लिये किसी सोवियत का होना आवश्यक है। नीचे के स्तरों पर प्रत्येक सोवियत २ वर्ष की अवधि के लिये चुनी जाती है। वह अपने सदस्यों में से एक कार्यकारिणी समिति का चुनाव करती है। इस समिति में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और एक मन्त्री तथा कम या अधिक साधारण सदस्य होते हैं। यही समिति सोवियत को सौंपे गये प्रशासनिक कार्यों के लिये उसी सोवियत के प्रति उत्तरदायी होती है जिसने उसे चुना होता है। सोवियत में सभी सदस्य श्रमिक, किसान या बुद्धिजीवी होते हैं। इनमें महिला सदस्यों की संख्या बहुत बड़ी है।

लोकतन्त्रात्मक केन्द्रवाद (Democratic Centralism)—सोवियतों के कार्यों का संगठन लोकतन्त्रात्मक केन्द्रवाद के सिद्धान्त के अनुसार है। सरल भाषा में, इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक स्तर की सोवियत को अपने अधिकार-क्षेत्र के विभिन्न कार्यों को करने के लोकतन्त्रात्मक अधिकार हैं। किन्तु प्रत्येक स्तर की सोवियत पर उच्चतर सोवियत का नियन्त्रण है, यह केन्द्रवाद के सिद्धान्त के अनुसार है। इस सिद्धान्त का साम्यवादी दल के संगठन के बारे में विस्तृत विवेचन आगामी अध्याय में दिया गया है। उसी सिद्धान्त को शासन के क्षेत्र में भी लागू किया गया है। वास्तव में यह विभिन्न क्षेत्रों में प्रशासन व प्रबन्ध का मार्गदर्शक सिद्धान्त है। उत्पादन के प्रबन्ध क्षेत्र में इसका अर्थ यह है कि राज्य की राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में केन्द्रीकृत प्रशासन का स्थानीय संगठनों के अधिकार-क्षेत्र में अधिकतम पहल से सामंजस्यपूर्ण मेल है। एक सोवियत लेखक के अनुसार इस सिद्धान्त के द्वारा राज्य के हितों और विभिन्न प्रदेशों के हितों के बीच सन्तुलित व्यवस्था है। समाजवादी केन्द्रीकरण नई सामाजिक व्यवस्था के प्रजातन्त्रात्मक स्वरूप की अभिव्यक्ति है। केन्द्रवाद का श्रमिक जनों के हित में प्रयोग होता है और यह सर्व-साधारण गति-विधियाँ और बढ़ते हुए पहल से मेल खाता है।[15]

विंशिस्की के अनुसार यह केन्द्रवाद का सिद्धान्त पूँजीवादी देशों के नौकरशाही केन्द्रीकरण से भिन्न है। वह कहता है कि इससे विभिन्न इकाइयों की जनता में

15. 'It is a centralism exercised by people's rule in the interests of the working masses; a centralism which is in full harmony with the growing initiative and activity of the masses.' *D. I. Kovalevsky* : Soviet Democracy : A Creative Force; pp. 38–39.

स्वाधीनता व स्थानीय स्वयं सेवा (अर्थात् प्रजातन्त्र) का भाव जागृत होता है, क्योंकि इसमें विभिन्न प्रदेशों की विशेषताओं और परिस्थितियों का ध्यान रखा जाता है। साथ ही केन्द्रवाद का सिद्धान्त राज्य के सभी भागों की सामान्य चेतन इच्छा और हितों को एक राष्ट्र के रूप में मिलाता है; क्योंकि इसमें आधार-भूत नीति के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर एकरूपता प्राप्त होती है। इसके विपरीत नौकरशाही केन्द्रवाद में उच्च अधिकारियों द्वारा केन्द्रीकरण अधीन प्रशासन अधिकारियों पर थोपा जाता है।[16]

परन्तु आलोचकों के मतानुसार व्यवहार में प्रजातन्त्र कम है और केन्द्रीकरण पर अधिक बल है। फेन्सोड का मत है कि प्रजातन्त्रात्मक केन्द्रवाद में केन्द्रवाद को प्रधानता दी जाती है।[17] ऑग और जिंक कहते हैं : 'वह विश्वास करना कठिन है कि प्रजातन्त्रात्मक केन्द्रवाद में उतना प्रजातन्त्र हो सकता है जितना कि केन्द्रवाद। फिर भी जितने तथ्य उपलब्ध हैं उनके आधार पर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पूर्ण रूप से स्थानीय प्रबन्ध के मामलों में किसी सीमा तक स्वतन्त्रता अवश्य रहती है।[18] सोवियत संघ में आर्थिक नियोजन पर पूर्ण अधिकार-क्षेत्र संघ सरकार का है; अतएव आर्थिक व्यवस्था में केन्द्रीकरण होना स्वाभाविक है। इस विषय में मौलिक नीति का निर्धारण और नियोजन संघ सरकार द्वारा किया जाता है, अतएव विभागों के शासन को जो कुछ भी स्वायत्तता अथवा पहल की शक्तियाँ प्राप्त हैं, उनका क्रियात्मक रूप संघ द्वारा निर्धारित नीति के अनुरूप होना आवश्यक है। 'स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों से आर्थिक विकास की योजनाओं को सोवियत संघ के आर्थिक नियोजन का एक अंग होना चाहिए, जो संघीय नियोजन से पूरी तरह मेल खाता हो।'[19] परन्तु विदेशी लेखक भी यह मानते हैं कि संस्कृति, शिक्षा व भाषा आदि के क्षेत्र में विभागों की सरकारों को काफी मात्रा में स्वाधीनता प्राप्त है अर्थात् उनमें प्रजातन्त्र पाया जाता है।

४. प्रादेशिक एवं स्थानीय शासन

संघीय गणराज्यों का शासन—*संघीय गणराज्यों को अपने अधिकार-क्षेत्र में* स्वायत्तता प्राप्त है। प्रत्येक गणराज्य का अपना संविधान है जिस पर उसकी सर्वोच्च

16. 'The Soviet Union State is built on the principles of democratic centralism sharply opposed to the bureaucratic centralism of the capitalist State.' : *A. V. Vyshinsky.*
17. *M. Fanisod* : How Russia is Ruled, p. 181.
18. 'It is difficult to believe that democratic centralism embodies as much of democracy as of centralism. However, the available evidence leads a student to conclude that there is a certain amount of freedom in routine affairs of a strictly local character. *Ogg* and *Zink* : Modern Foreign Governments: p. 850.
19. *J. Towster* : op. cit., p. 85.

सोवियत स्वीकृति देती है और वही इसमें संशोधन कर सकती है। प्रत्येक गणराज्य के शासन में प्रशासन व्यवस्था की अपनी संस्थायें हैं। कानून बनाने का कार्य गणराज्य की सर्वोच्च सोवियत करती है और यह एक सदन वाला निकाय है। कार्यपालिका मन्त्रि-परिषद् कहलाती है, जिसे कानूनों का पालन करवाने और शासन-व्यवस्था चलाने का पूरा अधिकार होता है। सोवियत लेखकों के अनुसार गणतन्त्रों की शक्तियों और प्रशासन के अधिकारों में वृद्धि हो रही है। यही कारण है कि अब अखिल संघीय मन्त्रालय हटा दिये गये हैं और उनके कार्य संघीय गणराज्यों को सौंप दिये गये हैं। पहले जो सैंकड़ों औद्योगिक उद्यम संघात्मक मन्त्रालयों के हाथ में थे, अब गणराज्यों के मन्त्रालयों को सौंप दिये गये हैं। प्रत्येक गणराज्य के अपने कानून होते हैं; जिन्हें उसको सर्वोच्च सोवियत बनाती है। प्रत्येक गणराज्य का अपना एक अलग राज्यीय चिन्ह, एक राष्ट्रीय ध्वज और एक राष्ट्रीय गान होता है। प्रत्येक गणराज्य को संघ से अलग होने, विदेशी राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने और सेना रखने के अधिकार प्राप्त हैं।

शासन के अंग—रूसी गणराज्य की सर्वोच्च सोवियत में ७०० सदस्य हैं और अनेक राष्ट्रीय नेता हैं जो सोवियत संघ व रूसी गणतन्त्र की सोवियतों के साथ ही साथ सदस्य हैं। सोवियत संघ में भारत की तरह इस प्रकार की सदस्यता की मनाई नहीं है। प्रत्येक अन्य गणतन्त्र में भी **सर्वोच्च सोवियत** है। इन सोवियतों का मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव होता है और इनका कार्यकाल ४ वर्ष है इनमें साधारणतया प्रति १½ लाख व्यक्तियों के पीछे एक सदस्य चुना जाता है इन सोवियतों के साधारणतया वर्ष में ४ बार सत्र होते हैं। सोवियतें नीति निर्धारण करती हैं और कानून बनाती हैं। ये अपनी सत्ता के प्रयोग का अधिकार **प्रेसीडियम** को देती हैं। सोवियतों के प्रधान या सभापति, एक मन्त्री और अन्य अधिकार होते हैं। प्रत्येक गणराज्य में ७-८ या अधिक विभाग होते हैं और प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष कोई मन्त्रि होता है। मन्त्रियों के अधीन साधारणतया इन विषयों से सम्बन्धित विभाग मिलते हैं—शिक्षा, न्याय, आन्तरिक मामले, कृषि, वित्त, व्यापार, स्वास्थ्य, सार्वजनिक कल्याण और सीमित अर्थव्यवस्था। प्रत्येक गणराज्य में अपना **नियोजन आयोग** भी होता है, जो केन्द्रीय नियोजन में भी सहायता देता है।

स्वाधीन गणराज्य (Autonomous Republics)—इनकी संख्या इस समय १६ के लगभग है, जिनमें से १२ अकेले रूसी गणराज्य में हैं। इनकी जन-संख्या में बड़ा अन्तर है, फिर भी प्रत्येक को सोवियत संघ के द्वितीय सदन में ११ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। प्रत्येक का शासन प्रायः संघीय गणराज्य के समान है; यद्यपि कई बातों में वह छोटे पैमाने पर है। इनकी सोवियतों में

प्रतिनिधियों का चुनाव छोटे-छोटे क्षेत्रों से होता है। प्रत्येक गणराज्य का अपना अलग संविधान है।

स्वाधीन प्रदेश (Autonomous Regions)—इनकी कुल संख्या ९ है जिनमें से ६ रूसी गणराज्य में हैं। इनकी संख्या १०,००० से लेकर २–३ लाख तक है। प्रत्येक को सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के द्वितीय सदन में पाँच प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। इनकी अपनी सोवियतें हैं और उनके प्रति निधियों का चुनाव प्रति १,५००–३,००० व्यक्तियों के पीछे एक प्रतिनिधि के आधार पर होता है।

राष्ट्रीय जिले (National Districts)—राष्ट्रीय उप-विभागों में ये सबसे छोटे हैं। इनकी संख्या कुछ समय पूर्व १० थी। प्रत्येक को संघ की सर्वोच्च सोवियत के द्वितीय सदन में एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त है। इनकी जनसंख्या १०,००० से लेकर १,००,००० तक है। इनकी भी अपनी सोवियतें हैं, जिसके प्रतिनिधि ३०० से ३,००० व्यक्तियों तक के द्वारा चुने जाते हैं।

ओब्लास्ट (Obilast)—रूस और यूक्रेन दो बड़े गणराज्यों में जिलों (raion) के ऊपर **ओब्लास्ट** है, जो पुराने रूसी प्रान्त कहे जा सकते हैं। अन्य गणराज्यों की सोवियतों में सीधे जिलों का प्रतिनिधित्व होता है। ओब्लास्ट की औसतन जनसंख्या ५०,००० है। प्रत्येक ओब्लास्ट की एक सोवियत होती है, जिसे ३ वर्ष की अवधि के लिए चुना जाता है। सोवियत के अधिकारी व समितियाँ होती हैं। ओब्लास्ट के कार्य मुख्यतः ये हैं—इसके अधिकार क्षेत्र में स्थित जिलों व स्थानीय शासन की संस्थाओं पर साधारण देख-रेख। इन्हें स्थानीय व जिलों की संस्थाओं के कार्यों व प्रस्ताव पर प्रतिषेध की शक्ति भी प्राप्त है। इसका सम्बन्ध मुख्यतः इन विषयों से है—जन-स्वास्थ्य, सार्वजनिक कल्याण, शिक्षा, वित्त, कृषि, न्याय, प्रशासन आदि।

टेरीटरी (Territoris Krai)—ये ऐसे प्रदेश में हैं जहाँ जनसंख्या कम है और जहाँ वर्तमान परिस्थितियों में विस्तृत शासनतन्त्र कायम करना उचित नहीं है। इनकी भी अपनी सोवियतें हैं, जिनका चुनाव होता हैं। वास्तव में ओब्लास्ट और टेरीटरी संघीय गणराज्यों के प्रशासनिक उप-विभाग हैं।

स्थानीय शासन—जार-कालीन रूस को प्रशासन हेतु प्रान्तों, काउन्टियों या केन्टनों और ग्रामीण जिलों में बाँटा हुआ था। साम्यवादी शासकों के स्थानीय शासन का बड़ी मात्रा में पुनर्गठन किया है। अधिकतर गणराज्यों में गाँव और शहरों की म्युनिसिपल सोवियतों में ऊपर **रायोन** (raion) या जिले हैं, जिनके ऊपर रूसी और यूक्रेनियन जैसे गणराज्यों में ओब्लास्ट हैं। साधारणतया रायोन में २०–२५ गाँवों की सोवियतों का क्षेत्र और कुछ में १ से लेकर ३ तक शहरी सोवियतों के क्षेत्र आते हैं। **रायोन को** सोवियत के सदस्य मतदाताओं द्वारा चुने जाते हैं और उनकी अवधि ३ वर्ष है। साधारण नियम यह है कि प्रति १,००० व्यक्तियों के पीछे एक प्रतिनिधि

चुना जाता है, कुल प्रतिनिधियों की संख्या कम से कम २५ और अधिक से अधिक ६० होती है।

रायोन के शासन का संगठन—सोवियत का संगठन ऊपर वर्णित अन्य निकायों की सोवियतों जैसा है। उनका एक प्रधान या सभापति प्रेसीडियम या कार्यकारिणी समिति, एक मन्त्री और कई स्थायी समितियाँ होती हैं। प्रधान बहुत-सा प्रशासनिक कार्य करते हैं। रायोन के प्रशासन को चलाने के लिए कम या अधिक सरकारी नौकर होते हैं। बड़े रायोनों में विशेषज्ञ भी रखे जाते हैं। रायोनों को गाँव व शहरी सोवियतों पर नियन्त्रण के काफी अधिकार हैं। इनके अतिरिक्त उन्हें अपने क्षेत्र में जिले से सम्बन्धित मामलों के बारे में भी सत्ता प्राप्त है। सिद्धान्त रूप में वे इस क्षेत्र में प्रायः सभी कुछ कर सकते हैं किन्तु व्यवहार में वे भी अन्य सोवियतों की तरह उच्चतर सोवियतों के अधीन हैं।[20] उनके बजटों पर ऊपर के अधिकारियों की स्वीकृति प्राप्त की जाती है।

शहरी सोवियतें—म्युनिसिपिल सोवियतों में जनसंख्या के अनुसार सदस्य होते हैं, किन्तु सदस्यों की संख्या कहीं-कहीं तो १०० तक होती है। इनमें पूर्ण सदस्यों के अतिरिक्त कुल संख्या के १/३ उम्मीदवार सदस्य भी होते हैं। इस प्रकार इनकी सदस्य संख्या अधिक बड़ी है। इन सोवियतों में भी एक प्रधान या सभापति एक प्रेसीडियम और कार्य समिति और अनेक समितियाँ होती हैं। प्रधान का भाग प्रशासन में अधिक महत्वपूर्ण रहता है। इन सोवियतों की स्थायी समितियों का सम्बन्ध साधारणतया इन विषयों से होता है—सार्वजनिक शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्थानीय उद्योग, शहरी आर्थिक व्यवस्था, व्यापार, वित्त। बड़ी सोवियतों में न्याय, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि अन्य मामलों के लिए भी स्थायी समितियाँ होती हैं। इनके प्रशासन संचालन के लिए बहुत बड़ी संख्या में कर्मचारी होते हैं। सोवियतों को अपने क्षेत्र में अनेक शक्तियाँ प्राप्त हैं, किन्तु उनका प्रयोग भी उच्चतर शासन के प्रतिनिधियों अथवा अधिकारियों के निरन्तर रोक-थाम के अन्तर्गत होता है। फिर भी शहरी सोवियतें काफी कार्यशील हैं और अपने-अपने क्षेत्र में उनके कार्यों की अन्य देशों की अनेक स्थानीय संस्थाओं से अच्छी प्रकार तुलना की जा सकती है।

ग्रामीण सोवियतें—सोवियत संघ अभी तक मुख्यतः गाँवों का देश है। यहाँ पर ग्रामों की संख्या लाखों में है और उनमें से बहुत बड़ी संख्या अच्छे ग्रामों की है। छोटे ग्रामों में मतदाता वर्ष में ६–८ बार एकत्रित होते हैं और समुदाय की समस्याओं पर विचार तथा निर्णय करते हैं। २ वर्ष में एक बार वे अपने अधिकारियों को भी

20. '...theoretically, there is virtually nothing that they cannot do within the limits of the raion. However, the same rule applies here as elsewhere, and *in the last analysis raions may act only in so far as what they* do is acceptable to the superior agencies and to the Communist party.' *Ogg and Zink* : op. cit., p. 914.

नियुक्त करते हैं। कुछ छोटे ग्रामों में इस प्रकार की सभायें पहले से चली आ रही हैं। बड़े ग्रामों में अपनी सोवियतें होती हैं, जबकि छोटे ग्रामों के समूहों के लिए संयुक्त सोवियतें बनाई जाती हैं। इनमें भी सदस्य मतदाताओं द्वारा चुने जाते हैं और सदस्यों के साथ-साथ १/३ उम्मीदवार सदस्य भी होते हैं। इन सोवियतों को भी अपने क्षेत्र में बड़ी सत्ता प्राप्त है और ये सोवियतें ग्रामों के लिए अनेक कार्य करती हैं। परन्तु व्यवहार में अधिकतर सोवियतें अपनी विस्तृत शक्तियों का प्रयोग नहीं करतीं। प्रत्येक सोवियत एक प्रधान, एक सेक्रेटरी और अन्य अधिकारी चुनती है। प्रत्येक सोवियत एक कार्यकारिणी समिति भी नियुक्त करती है और उसके अतिरिक्त अन्य समितियाँ भी जिनका सम्बन्ध सार्वजनिक शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, वित्त, व्यापार, स्थानीय उद्योग, कृषि आदि से होता है।

आलोचना—पाश्चात्य लेखकों के अनुसार विभिन्न स्तरों की सोवियतों द्वारा केन्द्रीय सोवियत के अतिरिक्त, नीति-निर्धारण का काम बहुत कम होता है। विभिन्न स्तरों के निकायों का मुख्य कार्य उच्चतम स्तर पर निर्धारित नीति को कार्यान्वित करना तथा स्थानीय समस्याओं को हल करना है। परन्तु एक दलीय अधिनायकशाही में उन्हें अपने स्थानीय मामलों के क्षेत्र में भी पर्याप्त स्वतन्त्रता नहीं हो सकती। सभी स्तरों पर दिखावे में सांसद पद्धति को अपनाया गया है और कार्यकारिणी निकायों को अपनी-अपनी सोवियत के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। संघात्मक सिद्धान्त का भी दिखावे में पालन किया गया है, किन्तु किसी भी सोवियत के निर्णयों को उच्चतर सोवियत रद्द कर सकती है।[21]

—:o:—

21. 'At all levels, the fiction of parliamentary government is maintained with executive bodies constitutionally responsible to their respective Soviets of Supreme Soviets. The federal fiction, also maintained, is belied by the fact that decisions of any Soviet may be overruled by the next higher legislative body.' *Beukema et al* : op. cit., p. 355.

६. साम्यवादी दल, चुनाव और प्रजातन्त्र

१. साम्यवादी दल

सोवियत संघ के संविधान में समाविष्ट समाजवादी सिद्धान्तों का पहले अध्याय में विवेचन किया जा चुका है, अतएव यहाँ पर सोवियत संघ के एकमात्र राजनीतिक दल का जो सोवियत शासन का संचालक है, संक्षिप्त विवेचन दिया जाएगा। सर्व-प्रथम सन् १९५२ के दलीय संविधान के अनुसार दल की परिभाषा इस प्रकार है—सोवियत संघ का साम्यवादी दल साम्यवादियों का ऐच्छिक व युद्ध में लगा हुआ संघ (voluntary militant union) है, जिनके एक समान विचार हैं, जिसमें श्रमिक-जन, किसान और बुद्धि-जीवी सम्मिलित हैं (धारा १)। इस समय दल के मुख्य कृत्य ये हैं—समाजवाद से साम्यवाद के क्रमिक विकास द्वारा साम्यवादी समाज का निर्माण करना, समाज के जीवन-स्तरों और सांस्कृतिक-स्तर को निरन्तर ऊँचा उठाना; समाज के सदस्यों को अन्तर्राष्ट्रवाद में शिक्षित बनाना एवं सभी देशों के श्रमिक जनों से भ्रातृत्व के सम्बन्ध स्थापित करना; और देश के शत्रुओं के विरुद्ध सोवियत संघ की सक्रिय प्रतिरक्षा को प्रत्येक दृष्टि में सुदृढ़ बनाना।

दल के कार्यों का व्यावहारिक रूप—(अ) न्यूमेन के अनुसार साम्यवादी दल सोवियत राज्य और उसके लोगों का मार्ग-दर्शक (guide) है; यह सभी सार्वजनिक कार्यों का स्पार्क-प्लग (spark-plug) है। इसके मुख्य कार्य अग्रलिखित हैं—(१) जनता की साम्यवादी विचारधारा में शिक्षा (ideological education of the people) का व्यवस्थापक है। वैसे तो सभी प्रकार के प्रशासनों को जनता का समर्थन पाना आवश्यक है, किन्तु यह बात साम्यवादी शासन के लिए विशेष रूप से सच है। चूँकि साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुसार जीवन के सभी पहलुओं और प्रयत्नों को वर्गीय संघर्ष का ही साधन माना जाता है, अतः राजनीतिक विचारों, कला, विज्ञान, संगीत आदि सभी बातों को साम्यवादी दृष्टिकोण से विकसित किया जाता है। इस कारण साम्यवादी दल के शिक्षा सम्बन्धी कार्य का बड़ा महत्व है। वास्तव में, साम्यवादी दल एक अर्थ में जनता का संरक्षक है (exercises a tutelage over the people)। यह उन्हें शासन की प्रक्रियाओं में शिक्षित बनाता है।[1] (२) दल के द्वारा शासन और दल अपने कार्यों के बारे में

1. See *R. G. Neumann* : European and Comparative Government, pp. 533–34.

जनता को सूचित करते रहते हैं। शासन और दल को सूचना के प्राय: सभी साधनों पर एकाधिकार प्राप्त है। सभी समाचार-पत्र, रेडियो व अन्य संचार के साधन शासन अथवा दल के नियन्त्रण में हैं। साम्यवादी दल का मुख-पत्र 'प्रवदा' सूचना प्रसार का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। दल ही जनता को यह सूचित करता रहता है कि शासन क्या कर रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दल बड़े पैमाने पर प्रचार कार्य करता है। (३) दल के नेता विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले स्थानीय प्रतिनिधियों को योजनाओं की पूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। इसलिए दलीय संगठन द्वारा दल के नेता सोवियत समाज के सभी महत्वपूर्ण पदों अथवा स्थानों पर दल के सदस्यों को रखवाते हैं। (४) दल का यह भी महत्वपूर्ण कार्य है कि यह अपने प्रभाव को उन सोवियत नागरिकों तक विस्तृत करे जो दल के सदस्य नहीं होते।

दल की सदस्यता (Membership)—यद्यपि साम्यवादी दल सोवियत संघ का एकमात्र राजनीतिक दल है और एक अर्थ में सम्पूर्ण शासन का संचालन करता है, फिर भी दल की सदस्यता सीमित है। इसका मुख्य कारण यह है कि दल में सदस्यों की भरती बड़े कठोर नियमों के अनुसार की जाती है और सदस्यों के लिए वफादारी के स्तर बहुत कड़े हैं। साम्यवादी दल के केवल वे ही व्यक्ति सदस्य बन सकते हैं जो साम्यवादी सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान रखते हैं, उनमें विश्वास रखते हैं और उनके अनुसार काम करने को उत्सुक हों। दल के सदस्य साम्यवादी उद्देश्यों की प्राप्ति में लगे हुए सैनिकों के समान (fighters in carrying out communist aims) हैं। कुछ लेखकों की दृष्टि में साम्यवादी दल की सदस्यता एक प्रकार का विशेषाधिकार (privilege) है, क्योंकि दल के सदस्यों को ही महत्वपूर्ण और अधिक उत्तरदायी पदों पर शासन में नियुक्त किया जाता है। दलीय संविधान की धारा २ के अनुसार कोई भी ऐसा सोवियत नागरिक दल का सदस्य हो सकता है, जो परिश्रम करता हो और किसी दूसरे व्यक्ति के श्रम का शोषण न करता हो, जो दल के नियमों व कार्यक्रम को स्वीकार करता हो, जो उनको कार्यान्वित करने में सक्रिय भाग लेता हो, जो दल के किसी संगठन का सदस्य हो और जो दल के सभी निर्णयों को क्रियात्मक रूप देता हो।

सन् १६५२ में सोवियत संघ की कुल अनुमानित जनसंख्या २० करोड़ थी, जिसमें से लगभग ६८ लाख व्यक्ति दल के सदस्य थे—अर्थात् केवल ३ प्रतिशत और इनमें भी ८ लाख से ऊपर सदस्यता के उम्मीदवार (candidate members) थे। सन् १६५६ में सदस्यों और उम्मीदवारों की संख्या क्रमश: ७६ लाख और ६ लाख से ऊपर थी। दल के ग्रामीण सदस्यों की संख्या लगभग ३० लाख है, जिनमें से लगभग आधे खेतों, मशीन या ट्रैक्टर स्टेशनों पर काम करते हैं। सन् १६५६ में (दल की २१वीं कांग्रेस के समय) दल के सदस्यों के लगभग २२ प्रतिशत

श्रमिक, १८ प्रतिशत किसान और ६० प्रतिशत हाथ से काम न करने वाले (non-manual) व्यक्ति थे।[2]

सदस्यों के कर्त्तव्य (Duties of members)—नियमों के अनुसार दल के सदस्यों के मुख्य कार्य, संक्षेप में, इस प्रकार हैं— (१) हर प्रकार से दल की एकता की रक्षा करना; (२) दल के निर्णयों की पूर्ति के लिए क्रियाशील संघर्ष-कर्त्ता बनना; (३) काम करने में उदाहरण अथवा नमूना बनना; अपने काम की तकनीक पर पूर्ण अधिकार पाकर कार्य-कुशलता को बढ़ाना और हर प्रकार से सार्वजनिक समाजवादी सम्पत्ति की रक्षा करना; (४) सर्वसाधारण से सम्पर्क को निरन्तर सुदृढ़ बनाना; (५) अपनी राजनीतिक जानकारी को बढ़ाना और मार्क्सवाद लैनिनवाद के सिद्धान्तों पर अधिकार प्राप्त करना; (६) दलीय और राजकीय अनुशासन का पालन करना; (७) आत्म-आलोचना को विकसित करना; (८) दल के निकायों के काम में कमियों के बारे में रिपोर्ट देना; (९) दल के सामने सच बोलना और ईमानदार रहना; (१०) जिस स्थान पर भी दल द्वारा रखा जाए, संवर्गों की छाँट (selection of cadres) में दल के निदेशों के अनुसार कार्य करना अर्थात् मित्रता, व्यक्तिगत सम्बन्ध आदि ने आधार पर छाँट न करना।

दलीय संगठन की प्रारम्भिक इकाइयाँ (Primary units of Organisation)—दल के संगठन का रूप पिरेमिड जैसा है। धरातल अथवा सबसे नीचे के स्तर पर दल की प्रारम्भिक इकाइयाँ (Primary party organs) हैं, जिन्हें पहले 'सेल' (cells) कहा जाता था। ऐसी इकाइयाँ कारखानों, दुकानों, दफ्तरों, स्कूलों, और सेना की टुकड़ियों में बनाई जाती हैं। जहाँ कहीं भी दल के ३ सदस्य बन जायें वहाँ ऐसी इकाई का निर्माण होता है। प्रत्येक प्रारम्भिक इकाई एक कार्यकारिणी समिति अथवा ब्यूरो चुनती है और एक सेक्रेटरी भी जो इकाई का सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी व सभापति होता है। ब्यूरो केवल अधिक सदस्यों वाली इकाई में ही बनती है। प्रत्येक दशा में सेक्रेटरी ही उसका निदेशक अथवा सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी होता है। दल के नियमों के अनुसार प्रारम्भिक इकाइयों के कार्य ये हैं—(१) दल की अपीलों और निर्णयों को क्रियात्मक रूप देने के लिए सर्वसाधारण में संगठनात्मक व आन्दोलनात्मक कार्य करना। इस कार्य के करने में उन्हें स्थानीय समाचार-पत्रों व दीवार समाचार-पत्रों (wall-newspapers) का समर्थन मिलता है। (२) दल में नये सदस्यों की भरती करना और उनके लिए राजनीतिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना। (३) दल के सदस्यों और उम्मीदवारों की राजनीतिक शिक्षा का संगठन करना, जिससे कि वे मार्क्सवाद, लेनिनवाद का निम्नतम आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकें। (४) राजनीतिक विभाग (raikom gorkom) को उसके सभी क्रियात्मक कार्य में सहायता देना।

2. *H. Finer* : The Major Governments of Modern Europe. pp. 663-64.

(२) **शहर व जिले के संगठन** (City and District organisation)—प्रारम्भिक संगठन की इकाइयाँ और जिला सम्मेलन के लिए प्रतिनिधि चुनती हैं। सम्मेलन एक समिति चुनता है और समिति एक ब्यूरो तथा सेक्रेटरी का चुनाव करती है। ये दल के स्थानीय पदों के लिए सदस्यों की नियुक्ति करते हैं। इन्हीं संगठनों पर दल में सदस्यों की भरती व उन्हें दल से निकालने के कार्यों का उत्तरदायित्व है। नये सदस्यों की भरती के लिए प्रस्ताव प्रारम्भिक इकाई का सेक्रेटरी ब्यूरो के सामने रखता है। शहर और जिले के संगठन सदस्यों को निकाल भी सकते हैं और वे ऐसे सदस्यों की अपीलें भी सुनते हैं जिन्हें अपने विरुद्ध की गई कार्यवाही के लिये कोई शिकायत है। शहर और जिले के संगठन दल के आधार-भूत रेकार्ड कार्यालय का भी काम करते हैं। ये संगठन अपने-अपने क्षेत्र में आर्थिक, प्रशासनिक और सांस्कृतिक कार्यों की देख-रेख भी करते हैं, किन्तु उनका यह अधिकार क्षेत्र अनन्य नहीं है।

(३) **उच्चतर सगठन** (Higher organs)—शहर और जिलों के संगठनों के ऊपर क्षेत्रों, प्रदेशों व गणराज्यों के संगठन हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है प्रत्येक संगठन की एक कार्यकारिणी अर्थात ब्यूरो और सेक्रेटरी होते हैं, जिनकी संख्या उच्चतर संगठनों में साधारणतया ३ होती है। एक स्तर का संगठन अपने ऊपर के स्तर वाले संगठन के लिए प्रतिनिधि चुनता है और ऊपर वाला संगठन नीचे वाले संगठन के कार्यों की देख-रेख करता है। रूसी सोवियत गणराज्य को छोड़कर प्रत्येक संघीय गणराज्य का संगठन है, जो सर्व-संघीय संगठन की कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि चुनते हैं। रूसी सोवियत गणराज्य (R. S. F. S. R.) सबसे बड़ा गणराज्य है, जो कई स्वाधीन गणराज्यों व प्रदेशों में बँटा है। उनके अपने संगठन हैं, जिन्हें सर्व-संघीय कांग्रेस के लिए सीधे प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। प्रत्येक संघीय गणराज्य की कांग्रेस एक केन्द्रीय समिति चुनती है और यह समिति एक कार्यकारिणी निकाय अर्थात ब्यूरो चुनती है, जिसमें अधिक से अधिक ११ सदस्य हो सकते हैं और उन्हीं में ३ सेक्रेटरी भी सम्मिलित हैं। संगठन के कार्यों के लिए पहल की शक्ति सेक्रेटेरियट, विशेष रूप से प्रथम सेक्रेटरी के हाथों में केन्द्रीभूत होती है। प्रथम सेक्रेटरी साधारणतया केन्द्रीय संगठन द्वारा छाँटा गया व्यक्ति होता है। सेक्रेटरी के बाद ब्यूरो का स्थान प्रभावशाली होता है, क्योंकि इसमें दल के सेक्रेटरी, गणराज्य की मन्त्रि-परिषद् का सभापति, सर्वोच्च सोवियत का सभापति और आन्तरिक मामलों के मन्त्रि सम्मिलित रहते हैं। गणराज्यों के दलीय संगठन का सबसे महत्वपूर्ण दायित्व केन्द्रीय दल के निर्देशों व आज्ञप्तियों को कार्यान्वित करना है। यही दल के विभिन्न संगठनों में महत्वपूर्ण पदों पर दलीय अधिकारियों को नियुक्त करता है। यह दलीय समाचार-पत्र प्रकाशित करता है और दल व शासन के सदस्यों के लिए एक राजनीतिक शिक्षा हेतु स्कूल व प्रशिक्षणालय संगठित करता है। सर्वोच्च संगठन के नीचे के स्तरों पर विभिन्न प्रकार के संगठनों

की संख्या इस प्रकार है—गणराज्य १५, प्रादेशिक (Krai) ८, रीजनल (oblast) १६७, ओक्रग ३६, शहर ५४४, राओन (raion) ४,८८६ और प्रारम्भिक २,५०,३०४ ।

सर्वोच्च संगठन—विभिन्न गणराज्यों के संगठन सर्व संघीय कांग्रेस (All Union Congress) के लिए प्रतिनिधि चुनते हैं । सर्व संघीय कांग्रेस का अधिवेशन साधारणतया प्रति ४ वर्ष में होता है । सर्व संघीय कांग्रेस दल का सर्वोच्च संगठन है, इसके सदस्यों की संख्या बहुत बड़ी होती है, जिसके लिए नीति निर्धारण करना कठिन है । प्रति १,००० सदस्यों के पीछे १ प्रतिनिधि चुना जाता है । सन् १६५६ की संघीय कांग्रेस में कुल प्रतिनिधि १,२६६ थे और उनके अतिरिक्त १०६ उम्मीदवार सदस्य थे । दल के सर्वोच्च संगठन में कांग्रेस के अतिरिक्त तीन अन्य महत्वपूर्ण अंग हैं, जिनका संगठन, संक्षेप में, निम्नलिखित है—

केन्द्रीय समिति (Central Committee)—यह सिद्धान्त में दल का सबसे महत्वपूर्ण अंग है; यद्यपि प्रेसीडियम (जिसे पहले पोलिट-ब्यूरो कहते थे) सबसे शक्तिशाली और नीति निर्धारित करने वाला अंग है । सन् १६५२ में चुनी गई केन्द्रीय समिति में १२५ सदस्य और १११ उम्मीदवार सदस्य थे । इसके सदस्यों का चुनाव दलीय कांग्रेस ही करती है और इनमें सभी महत्वपूर्ण व प्रभावशाली साम्यवादी नेता सम्मिलित रहते हैं । दो कांग्रेस के अन्तर्काल में केन्द्रीय समिति दल का सर्वोच्च अंग रहता है । इसके नाम से अनेक आदेश जारी किए जाते हैं यद्यपि आलोचकों के मतानुसार इसकी बैठकें भी बहुत कम होती हैं और यथार्थ में अधिकतर आदेश प्रेसीडियम अथवा सेक्रेटेरियट द्वारा निकाले जाते हैं ।[3] दल के नियमों के अनुसार केन्द्रीय समिति (जिन दिनों कांग्रेस का अधिवेशन नहीं होता) दल के कार्यों का निदेशन करती है; यह अन्य संगठनों व संस्थाओं से अपने सम्बन्धों में दल का प्रतिनिधित्व करती है, यह दल की विभिन्न संस्थाओं को संगठित करती है और उनके कार्यों का निदेशन भी; दल के समाचार-पत्रों व साहित्य प्रकाशन के लिए सम्पादकों की नियुक्ति भी यही करती है; यह दल की मानव-शक्ति और साधनों का निदेशन करती है और केन्द्रीय कोष का प्रशासन भी करती है ।

प्रेसीडियम (Presidium)—इसे ही सन् १६५२ के पूर्व पोलिट-ब्यूरो कहते थे । केन्द्रीय समिति अपने कार्य का निदेशन करने के लिए एक प्रेसीडियम संगठित

3 'The large size of the committee, the character of its membership, and the fact that the Party Rules provide for relatively infrequent meetings, suggest that its significance is largely honorific. A host of decrees continues to be issued in the name of the Central Committee, but their frequency and character *indicate that they derive from* the Secretariat of the Central Committee rather than the committee itself.' *M. Fainsod :* How Russia is Ruled, p. 188.

करती है। दलीय संगठन का यही अंग केन्द्रीय समिति का सम्पूर्ण कार्य करता है। प्रेसीडियम दल की मानव-शक्ति और साधनों का वितरण करती है और यह केन्द्रीय सोवियत संघ में सार्वजनिक संगठनों के कार्य का मार्ग-दर्शन करती है। संक्षेप में, सोवियत शासन के सम्पूर्ण राजनीतिक और प्रशासनिक तन्त्र का संचालन यही अंग करता है और यह कार्य उनमें दल के सदस्यों के समूहों द्वारा किया जाता है। प्रेसीडियम दल के संगठन का सर्वोच्च अंग (apex) है और दल के सर्वोच्च नेता इसके सदस्य होते हैं। जिस प्रकार से नीचे के संगठनों में ब्यूरो होता है उसी प्रकार सर्वोच्च संगठन में प्रेसीडियम है। सन् १९५६ में निर्वाचित प्रेसीडियम में ११ सदस्य और ६ उम्मीदवार थे। सन् १९६० में सदस्यों और उम्मीदवारों की संख्या क्रमशः १४ और १० थी। फाइनर के अनुसार, प्रेसीडियम को दल का मन्त्रिमण्डल समझा जा सकता है। किन्तु सांसद पद्धति में मन्त्रिमण्डल के अनुसार यह दलीय कांग्रेस अथवा केन्द्रीय समिति की साधारणतया परवाह नहीं करती; वास्तव में इसने दल की अन्य संस्थाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। परन्तु २० वर्ष तक स्टालिन ने प्रेसीडियम के सभापति और प्रथम सेक्रेटरी के रूप में प्रेसीडियम पर पूर्ण अधिकार रखा।[4] कुछ आलोचकों के अनुसार प्रेसीडियम शक्ति प्राप्त करने का मार्ग है। प्रेसीडियम दल की नहीं वरन् शासन की नीति व कार्यक्रम का निर्धारण करती है। यह वैदेशिक मामलों और सेना के संगठन में विशेष रूप से दिलचस्पी लेती है। अपने विभिन्न कार्यों को सुचारू रूप से करने के हेतु प्रेसीडियम के कई विभाग हैं और उनका अपना स्टाफ है। ये विभाग सदस्यों को सभी प्रकार की घटनाओं आदि के बारे में सूचना देते हैं।

सचिवालय (Secretariat)—दल के संगठन को निदेशित करने का दायित्व दल के सचिवालय पर है। दल का जनरल सेक्रेटरी होने के नाते संगठन में स्टालिन का स्थान सबसे ऊँचा था। उसी के कार्यकाल में सचिवालय ने नीति को क्रियात्मक रूप देने वाले अंग के स्थान पर कार्यकारिणी का रूप पाया था (was transformed from an executor to an executive)। न्यूमेन के अनुसार इसके भूतपूर्व प्रथम सेक्रेटरी निकिता ख्रुश्चोव का स्थान चाहे उतना महत्वपूर्ण न रहा हो जितना कि स्टालिन का था, सचिवालय दल की सभी कार्यवाहियों का निदेशन करने वाला तथा उनमें समन्वय स्थापित करने वाला यन्त्र है।[5]

4. *H. Finer* : op. cit., p. 674.
5. 'To-day the Secretariat is headed by...as First Secretary and it may or may not have the pivotal significance which it had during Stalin's rise to power. At any rate, it is the gearbox through which all activities of the vast party machine are co-ordinated and directed.' *R. G. Neumann* : op. cit., p. 542.

दलीय-नियन्त्रण समिति (The Committee of Party Control)—इसका चुनाव केन्द्रीय समिति करती है और इसके मुख्य कृत्य ये हैं—(१) दल के सदस्यों व उम्मीदवारों द्वारा दलीय अनुशासन की देख-रेख करना और जो साम्यवादी दल के कार्यक्रम व दलीय नैतिकता का अतिक्रमण करें उनसे स्पष्टीकरण माँगना। (२) प्रादेशिक व गणराज्यों की केन्द्रीय समितियों द्वारा निकाले गये सदस्यों की अपीलों की जाँच करना। (३) गणतन्त्रीय, प्रादेशिक व रीजनल संगठनों में सर्वोच्च संगठन के प्रतिनिधियों को नियुक्त करना। सन् १९५२ के पूर्व इसे दलीय नियन्त्रण आयोग (Commisson of Party Control) कहते थे और उनका चुनाव सीधे कांग्रेस द्वारा होता था।

युवक संगठन—उपरोक्त के अतिरिक्त साम्यवादी दल के संगठन का परिचय नवयुवकों के संगठनों के बारे में जाने बिना अपूर्ण रहेगा, अतएव यहाँ पर **यंग पायेनियर** और **'यंग कम्युनिस्ट लीग'** का भी संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है। **यंग पायेनियर** (Young Pioneers) उन स्कूलों के बच्चों को कहा जाता है, जो लैनिन यंग पायनियर्स नामक संस्था के सदस्य होते हैं। यह संगठन किशोरों का जन संगठन है, जिसमें ९ और १४ वर्ष के बीच की आयु के बच्चे संगठित हैं। इस समय इसकी सदस्यता २ करोड़ से कुछ ही कम है। इस संगठन का मुख्य कार्य स्कूलों और अध्यापकों की सहायता करना है। यंग पायेनियर अपने अध्ययन और आचरण से स्कूलों के अन्य बच्चों के लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इनके सभी प्रकार के क्लब हैं यथा किशोर टैक्नीशियन विमान के नमूने तैयार करने वाले, इत्यादि। उनके भवन, पार्क और खेलों के मैदान सम्पूर्ण देश में फैले हैं और लाखों यंग पायेनियर गर्मी में कैम्पों में जाते हैं या पर्यटन करने देहातों में निकल जाते हैं।

यंग कम्युनिस्ट लीग (Young Communist League) का ही संक्षिप्त नाम 'कोम्सोमोल' (Komsomol) है। इसका साम्यवादी दल से निकट सम्पर्क है और यह दल के नेतृत्व में ही चलता है। १४ से २६ वर्ष तक की आयु के युवक और युवतियाँ इसके सदस्य बन सकते हैं। सदस्य बनने के लिए इसके नियमों और कार्य-क्रमों को मानना और इसके किसी एक संगठन में कार्य करना आवश्यक है। ये संगठन फैक्ट्रियों, राज्यीय तथा सामूहिक खेतों, संस्थाओं, स्कूलों और उच्च शिक्षा के संस्थापनों में स्थापित किए जाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य युवकों को देश के प्रति निष्ठापूर्ण सेवा की भावना में प्रशिक्षण देना है। यह संगठन देश के राजनैतिक जीवन व साम्यवादी समाज के निर्माण में सक्रिय हाथ बँटाता है और युवकों में श्रम के प्रति प्रेम पैदा करता है। इसके एक लाख से ऊपर सदस्य सोवियतों के प्रतिनिधि चुने गये हैं और ७,००० सदस्य सोवियत के सोवियत वीर की उपाधि पा चुके हैं।

२. साम्यवादी दल—अन्य पहलू

फाइनर के मतानुसार साम्यवादी दल की मुख्य विशेषताएँ ये हैं—(१) यह सोवियत संघ की सर्वोच्च सत्ता (Sovereign authority) है। (२) यह आकार में जानबूझकर छोटा है, क्योंकि इसमें विशिष्ट व्यक्ति (elite) सदस्य होते हैं। (३) इसका सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र में नियोजित संगठन फैला हुआ है। (४) इसकी अधिनायकशाही में सर्वोच्च स्थान केन्द्रीय समिति, प्रेसीडियम और सेक्रेटेरियट का है। (५) दल 'लोकतन्त्रात्मक केन्द्रीकरण' (Democratic centralism) और 'दल के भीतर प्रजातन्त्र' (inner-party democracy) के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करता है।[6] (६) इस समय इसका नेतृत्व एक व्यक्ति—प्रथम सेक्रेटरी के हाथ में है। (७) यह सहायक संगठनों, सुरक्षा पुलिस, ट्रेड यूनियनों आदि का अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयोग करता है। यह सच है कि सोवियत संघ में केवल साम्यवादी दल ही अकेला दल है।

लोकतन्त्रात्मक केन्द्रीकरण (Democratic centralism)—यह दल के संगठन का अति महत्वपूर्ण मार्ग-दर्शक सिद्धान्त है। इसका अर्थ यह है: (अ) नीचे से लेकर ऊपर तक के सभी नायक निकायों (leading party bodies) का चुनाव होता है। (आ) दल के विभिन्न निकाय समय-समय पर अपने दलीय संगठन को रिपोर्ट देते हैं। दल में कड़ा अनुशासन और अल्पमत की बहुमत के प्रति अधीनता (subordination)। (ई) उच्चतर निकायों के निर्णयों का निम्न स्तरों के निकायों के द्वारा पूर्ण वाध्यता के साथ पालन (absolutely binding)। लोकतन्त्र का अर्थ यह है कि दल के संगठन में प्रत्येक स्तर पर लोकतन्त्र है, किन्तु दो स्तरों के संगठनों के बीच लोकतन्त्र नहीं है; क्योंकि उच्च स्तर वाला संगठन अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले सभी निम्न स्तरीय संगठनों से अपने निर्णय व आदेश मनवा सकते हैं। इस सिद्धान्त के समर्थक यह दावा करते है कि दल के भीतर (Intraorinner Party) लोकतन्त्र है, क्योंकि दल के सभी निकायों का चुनाव होता है, प्रत्येक निकाय बड़े निकाय के प्रति उत्तरदायी हैं और दल में आत्म आलोचना का सिद्धान्त (Party principle of self-criticism) लागू है। आलोचकों का कहना है कि दल में चुनाव वास्तविक नहीं होते; दल के अधिकारियों

6. The party member has the right (i) to take part in free and business-like discussion…; (ii) to criticise any party functionary at parts meetings; (iii) to elect or be elected to party bodies; (iv) to insist on personal participation when decisions are adopted concerning his activities or behaviour; and (v) to address any questions or statements to any party body.'

को विनियुक्त (co-opt) किया जाता है।[7] पूर्वगामी विभाग में बताया गया है कि प्रत्येक इकाई में प्रथम सेक्रेटरी का पद महत्वपूर्ण और शक्तिशाली होता है और साधारणतया वह उच्चतर इकाई की छाँट होता है। जहाँ तक छोटे निकायों का बड़े संगठन के प्रति उत्तरदायित्व का प्रश्न है, यह भी दिखावा मात्र है। वास्तव में, सम्पूर्ण दलीय संगठन को सर्वोच्च दल के प्रेसीडियम और सेक्रेटरी जनरल द्वारा निर्धारित नीति पर चलना पड़ता है।

दल की रचना इस प्रकार से की गई है कि सारी शक्तियाँ इसी में केन्द्रीकृत हैं और यह दल मोनोलिथिक (monolithic) है अर्थात् एक ही पत्थर में से काटे गये स्तम्भ की तरह है, क्योंकि इसमें केवल पक्के साम्यवादी (जो दल के नेतृत्व को स्वीकार करते हों) ही रह सकते हैं। इस बात को दूसरी प्रकार से समझा जा सकता है। यह पाश्चात्य देशों अथवा भारत के राजनैतिक दलों की तरह नहीं है, जिसमें कुछ सामान्य सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाले किन्तु विभिन्न विचार अथवा मत वाले व्यक्ति सम्मिलित हो सकते हैं। जबकि प्रजातन्त्रीय देशों के राजनैतिव दल सर्वसाधारण के लिये खुले रहते हैं—भरती के लिये बड़े कठोर नियम नही होते—साम्यवादी दल में प्रवेश केवल पक्के साम्यवादियों के लिये ही सीमित है और उनकी भरती के लिये बड़े कठोर नियम हैं।[8] दल के भीतर भी गुटबन्दी नहीं हो सकती; क्योंकि जो दल की नीति (party line) का समर्थन नहीं करते उन्हें दल से निकाल दिया जाता है।[9] इसी को दल की सफाई (purge) कहते हैं। स्टेलिन के कार्यकाल में तो विरोधी मत वाले साम्यवादी नेताओं को दल के बाहर ही नहीं निकाला जाता था, वरन् उन्हें मरवा दिया जाता था। अब दल विरोधी कार्य करने वाले (anti-party) नेताओं को महत्वपूर्ण पदों से हटा दिया जाता है और उनका सार्वजनिक दृष्टि से अपमान किया जाता है।

आत्म-आलोचना (Self-criticism) के सिद्धान्त का अर्थ है कि दल की सभाओं और सम्मेलनों तथा समाचार-पत्रों में राज्य संस्थाओं या सार्वजनिक उद्योगों के काम की खराबियों की आलोचना कर सकते हैं। सदस्य दल के पदाधिकारियों

7. 'That there is centarlism in the party has seldom been disputed. That there is democracy in the party, however, has been the subject of considerable debate... in place of the principle of election of all leading committees and secretaries there has grown up a practice of co-option and appointment.'

8. 'The party is conceived as a monolith, not a conglomerate of different groups, but a single unified, granite like structure.' *J. Towster,*

9. 'The Communist party of the Soviet Union is not an open mass party like Western political parties but a closed society of the new "elite"... The Communist party is a single, unified and centralized structure a 'monolith.' *R. G. Neumann* : op. cit., pp. 529-30.

के कार्यों की भी आलोचना कर सकते हैं। सोवियत शासन और साम्यवादी दल के आलोचकों ने भी यह स्वीकार किया है कि निःसंदेह सोवियत संघ में आत्म-आलोचना का अधिकार है, परन्तु इसकी सीमायें हैं। कोई भी सदस्य दल द्वारा निर्धारित नीति (party line) अथवा निर्णय की आलोचना नहीं कर सकता; क्योंकि ऐसा करके वह नीति से हटने (deviationism) का अपराधी होगा। वास्तव में इस अधिकार का उद्देश्य दल की नीति व कार्यक्रम की पूर्ति में रह जाने वाली कमियों को दूर कराने में सहायक होना है। आत्म-आलोचना के अधिकार के अन्तर्गत बड़े से बड़े पदाधिकारी को आलोचना किये जाने पर अपनी भूल स्वीकार करनी होती है। न्यूमेन के मतानुसार आत्म-आलोचना का अधिकार दल के भीतर लोकतन्त्र की अभिव्यक्ति नहीं है वरन् यह तो दल के अधिकारियों व सदस्यों को पूर्णतया दल की नीति का आज्ञाकारी बनाने का साधन है।[10]

आलोचकों के अनुसार साम्यवादी दल का संगठन लोकतन्त्रात्मक नहीं है। उसके संगठन में बल लोकतन्त्र पर नहीं वरन् केन्द्रीकरण पर है। पाश्चात्य आलोचक तो इसे सर्वाधिकारवाद (totalitarianism) का सूचक मानते हैं। मर्ले फेन्सोड ने लिखा है कि दल में गुट नहीं बन सकते और दल का नेतृत्व किसी प्रकार के प्रतियोगियों को सहन नहीं करता। 'लोकतन्त्री केन्द्रीकरण' का सार तो इस बात में है कि 'उच्च स्तरीय निकायों के निर्णयों से निम्न स्तरीय निकाय पूरी तरह से बंधते हैं।'[11]

बर्नन वी एस्पेटूरीयन ने इस विषय में कहा है: 'एक दलीय एकाधिकार की दशाओं के अन्तर्गत प्रजातन्त्र और केन्द्रीकरण की असंगति (incompatibility of democracy and centralism) आज भी पूर्व की भाँति कायम है; वास्तविक अन्तर यह नहीं है कि ख्रुश्चेव के अन्तर्गत अधिक प्रजातन्त्र है, वरन् यह कि केन्द्रीकरण को कम पाशविक तथा अधिक दयालु और बुद्धिपूर्ण तरीकों द्वारा लागू किया जाता है। सोवियत पद्धति और दलीय जीवन पूर्व की भाँति अप्रजातन्त्रात्मक हैं, परन्तु बोल्शेविक सर्वाधिकारवाद के आतंकवादी पहलुओं को उठा लिया अथवा निलम्बित किया गया है।'

10. 'Thus self-criticism, far from being an expression of an imagined 'intra party democracy', is only an instrument to help shape the completely obedient party member...' *R. G. Neumann* : op. cit , p. 582.
11. 'The hard realties are in striking contrast. In the slogan democratic centralism, centralism has primary significance... Party factions are prohibited, and competiting centres of power are outlawed .. The organizational pattern of the Communist Party is that of a military hierarchy in which policy directives come from the central command and the obligation of the subordinates to carry them out.' *M. Foinsod* : op. cit., p. 181.

साम्यवादी दल का संगठन सैनिक नमूने का है जिसमें केन्द्रीय कमान के आदेशों को सभी अधीन व्यक्तियों के लिये मानना आवश्यक है। परन्तु फाइनर के मतानुसार नाजी और फासिस्ट दल की अपेक्षा साम्यवादी दल में नीचे के स्तरों पर लोकतन्त्रात्मक चुनाव होते हैं; किन्तु निर्वाचित अधिकारियों व निकायों का अनुसमर्थन उच्च स्तरीय निकायों द्वारा किया जाता है। यह लोकतन्त्रात्मक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त के अनुसार है; जिसके अन्तर्गत निम्न स्तरीय निकायों को ऊपर वाले निकायों के निर्णयों को पूरी तरह से मानना पड़ता है। संक्षेप में, फाइनर के मतानुसार भी साम्यवादी दल का संगठन अधिनायक दल जैसा है। यह बात दलीय संविधान की प्रस्तावना से ही स्पष्ट है।

दल का महत्व—स्टालिन के मतानुसार ऐसे दल के बिना साम्राज्यवाद का अन्त करने और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को प्राप्त करने की बात सोचना भी बेकार था। साम्यवादी दल की मुख्य विशेषतायें ये हैं—(१) दल श्रमिक वर्ग का राजनीतिक नेता व अगुआ है; (२) दल श्रमिक वर्ग की संगठित टुकड़ी है; (३) सर्वहारा वर्ग के वर्गीय संगठन का उच्चतम रूप दल है; (४) यह सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का साधन है; (५) दल संकल्प या इच्छा की एकता का प्रतीक है; और (६) अवसरवादी तत्वों को निकालने या शुद्धिकरण से दल सुदृढ़ बनता है। जबकि पूर्वगामी संविधान में दल की शासन में भूमिका के सम्बन्ध में कोई प्राविधान न था, नये संविधान की धारा ६ में देश के शासन में साम्यवादी दल की भूमिका इस प्रकार बताई गई है: 'सोवियत समाज के नेतृत्व प्रदान करने और उसका मार्ग दर्शन करने वाला तथा सोवियत पद्धति, सभी राजकीय व सार्वजनिक संगठनों का केन्द्र-बिन्दु (nucleus) साम्यवादी दल है। सोवियत संघ का साम्यवादी दल का अस्तित्व जनता के लिए है और यह जनता की सेवा करता है। मार्क्सवाद लैनिनवाद के शस्त्र से सज्जित साम्यवादी दल समाज के विकास के सामान्य परिप्रेक्ष्यों व आन्तरिक और विदेश नीति के मार्ग का निर्धारण करती है, महान् सोवियत जनता के रचनात्मक कार्य का निदेशन करती है और साम्यवाद की विजय हेतु उनके संघर्ष को नियोजित, क्रमबद्ध व सैद्धान्तिक स्वरूप प्रदान करती है। परन्तु दल के सभी संगठन संविधान के ढाँचे के भीतर काम करते हैं।[12]

साम्यवादी दल का भावी कार्यक्रम—सन् १९६१ में हुई साम्यवादी दल की २२वीं कांग्रेस ने आगामी २० वर्ष में (अर्थात् सन् १९८० तक) साम्यवादी समाज

12. 'The leading and guiding force of Soviet Society and the nucleusafits. political system of all state organizations and public organizations, is the Communist Party of the Soviet Union. The C. P. S. U. exists for the people and serves the people... All Party organizations shall function within the framwork of the constitution of the U.S.S.R.' *Article* 6.

की स्थापना के लिये कार्यक्रम स्वीकार किया। अपने नये कार्यक्रम में सोवियत संघ के साम्यवादी दल ने घोषित किया है : सोवियत लोगों की वर्तमान पीढ़ी साम्यवाद के अन्तर्गत रहेगी। सोवियत संघ में समाजवाद पूर्णरूप में तथा अन्तिमरूप से विजयी हुआ। दो दशियों के भीतर सोवियत संघ में साम्यवादी समाज निर्मित हो जाएगा। समग्रतः विश्व की पूंजीवादी पद्धति सर्वहारावर्ग की सामाजिक क्रान्ति के लिये पक गई है। युद्धों का विलोपन करना पृथ्वी पर स्थायी शान्ति को स्थापित करना—साम्यवाद का ऐतिहासिक मिशन है। सोवियत संघ ने सगतमय रीति से भिन्न सामाजिक पद्धतियों के साथ शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का अनुसरण किया है और करता रहेगा। विश्व की समाजवादी पद्धति पूंजीवाद के साथ आर्थिक प्रतिस्पर्धा में निर्णायक विजय की ओर लगातार बढ़ रही है। यह शीघ्र ही कुल औद्योगिक और कृषि उत्पादन में विश्व की पूंजीवादी पद्धति से आगे बढ़ जायेगी।...'साम्यवाद एक वर्गहीन सामाजिक पद्धति है जिसमें उत्पादन के साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व तथा समाज के सदस्यों की पूर्ण सामाजिक समता है। इसके अन्तर्गत जनता के सर्वांगीण विकास के साथ निरन्तर विज्ञान और औद्योगिकी के द्वारा उत्पादक शक्तियों का विकास चलेगा; सार्वजनिक धन के सभी स्रोत प्रचुर मात्रा में बह निकलेंगे और महान् सिद्धान्त 'प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार, प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' को कार्यान्वित किया जाएगा।'

उपरोक्त कार्यक्रम में विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन आदि के लक्ष्य (targets) दिये हैं और यह भी बताया गया है कि किस मार्ग पर चलने से जनता को प्रचुर मात्रा में खाना, कपड़ा व सुख और सुविधायें प्राप्त हो सकेगीं। कार्यक्रम की कुछ मुख्य बातों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—अगले १० वर्ष में औद्योगिक उत्पादन २½ गुना हो जायेगा और २० वर्ष में ६ गुना, जिसके परिणामस्वरूप सं० रा० अमरीका बहुत पीछे रह जायेगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कार्यक्रम में कहा गया है : यह आवश्यक है कि उद्योगों में श्रम का उत्पादन (productivity of labour) अगले १० वर्ष में १०० प्र० श० और २० वर्ष में ३००—३५० प्र० श० बढ़ाना आवश्यक है। कृषि के क्षेत्र में उत्पादन और भी तेजी से बढ़ाना है। खेतों पर काम करने वाले श्रमिकों का उत्पादन १० वर्ष में १५० प्र० श० और २० वर्ष में ४००—५०० प्र० श० बढ़ाया जायेगा। उद्योगों व कृषि फार्मों में उत्पादन की वृद्धि के परिणामस्वरूप खाद्य पदार्थों की सभी प्रचुर मात्रा में प्राप्ति हो सकेगी। इसके फलस्वरूप यह सम्भव होगा कि फैक्ट्रियों व दफ्तरों में काम करने वालों को मुफ्त भोजन मिलेगा। इसके अतिरिक्त राजकीय फार्मों की वस्तियों और सामूहिक फार्मों के गाँवों में बोर्डिङ्ग-स्कूल, क्लब, अस्पताल और अवकाश-गृह (holiday homes) बनेंगे। ऐसा होने पर क्रमशः गाँव और शहर के बीच

अन्तर समाप्त हो जायेगा। साम्यवादी दल कृषि में उत्पादक शक्तियों को प्रोत्साहन देगा जिससे दल इन दो महान् कार्यों की पूर्ति कर सकेगा—(१) सम्पूर्ण जनता के लिये अच्छे खाद्य-पदार्थों और उद्योगों के लिये कच्चे माल का प्रचुर मात्रा में उत्पादन। (२) सोवियत ग्रामों में वर्तमान सामाजिक सम्बन्धों का क्रमशः साम्यवादी सम्बन्धों में परिवर्तन और मुख्यतः गाँव तथा शहरों के बीच अन्तर को दूर करना।

३. सोवियत संघ के चुनाव

मताधिकार—सन् १९३६ के संविधान में एक प्रकार से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये; क्योंकि इसके अन्तर्गत पूर्व संविधान के विशेष समूहों को मताधिकार से वंचित करने वाले, अप्रत्यक्ष निर्वाचन और ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों के लिये अधिक प्रतिनिधि सम्बन्धी प्राविधानों का अन्त कर दिया गया। अब प्रत्येक नागरिक को जिसकी आयु १८ वर्ष हो चुकी हो, लिंग, मूल जाति, राष्ट्रीयता, धर्म, शिक्षा, निवास, सामाजिक उद्भव, सम्पत्ति और पूर्वकालीन गतिविधियों का कोई ध्यान न रखते हुये मताधिकार प्रदान किया गया है। केवल पागल व दण्ड भोगने वाले व्यक्तियों को मताधिकार से वंचित किया गया है। नीचे से लेकर ऊपर तक विभिन्न सोवियतों के सदस्यों को सर्वव्यापी, सम और प्रत्यक्ष मताधिकार के आधार पर गुप्त मतदान द्वारा चुना जाता है। सशस्त्र सेनाओं के सदस्यों को मताधिकार प्राप्त है और वे पदों लिए के निर्वाचित भी किये जा सकते हैं। मताधिकार की दृष्टि से सोवियत संघ के प्राविधान सं० रा० अमरीका की तुलना में आगे हैं; क्योंकि सं० रा० अमरीका में अभी तक सर्वव्यापी मताधिकार पर व्यवहार में कई प्रकार के प्रतिबन्ध हैं और नीग्रो जाति यथार्थ में मतदान के अधिकार सीमित रूप में ही प्रयोग कर पाती है।

निर्वाचन पद्धति—सोवियत संघ के कानूनों द्वारा निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण भूमिगत आधार पर है और निर्वाचन क्षेत्र एक-सदस्यीय हैं। निर्वाचन क्षेत्र और उनके विभागों को इस प्रकार बनाया जाता है कि सभी नागरिक सुविधापूर्वक मतदान कर सकें। निर्वाचन सम्बन्धी नियमों के अन्तर्गत सभी नागरिक वे चाहे जहाँ हों, चाहे यात्रा कर रहे हों अथवा स्वास्थ्य लाभ केन्द्र में हों, मतदान कर सकते हैं। निर्वाचन सम्बन्धी कानूनों व नियमों के पालन की देख-रेख का उत्तरदायित्व निर्वाचन आयोगों पर है। चुनाव सम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय **केन्द्रीय निर्वाचन आयोग** करता है। केन्द्रीय निर्वाचन आयोग में एक सभापति, एक उप-सभापति, एक सेक्रेटरी और १२ सदस्य होते हैं। आयोग में मजदूर संघों, सहकारी समितियों, साम्यवादी दल के संगठनों, नवयुवक संगठनों, विभिन्न सांस्कृतिक, तकनीकी और वैज्ञानिक सोसाइटियों और मजदूरों व किसानों के अन्य संगठनों के प्रतिनिधि रहते हैं। इसी आधार पर केन्द्रीय, निर्वाचन-क्षेत्रीय तथा वार्ड चुनाव आयोग बनाये जाते हैं। सोवियत संघ के निर्वाचन कानून के अनुसार सोवियत

संघ की सर्वोच्च सोवियत में प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र को सम प्रतिनिधित्व का अधिकार प्राप्त है। अब साधारणतया प्रति ३,००,००० जनसंख्या के पीछे एक प्रतिनिधि संघीय सोवियत (Soviet of the Union) के लिये चुना जाता है। राष्ट्रीयताओं की सोवियत (Soviet of Nationalities) में जो सर्वोच्च सोवियत का द्वितीय सदन है, प्रत्येक संघीय गणराज्य, स्वाधीन गणराज्य, स्वाधीन प्रदेश और राष्ट्रीय क्षेत्र को सम प्रतिनिधित्व का अधिकार है।

सोवियत संघ में उम्मीदवारों की नामजदगी (nominations) का अधिकार 'सार्वजनिक संगठनों और काम करने वालों की सोसाइटियों में निहित है।' साम्यवादी दल के संगठन मजदूर संघ, सहकारी संगठन और सांस्कृतिक सोसाइटियाँ विभिन्न स्तरों की सोवियतों के लिये उम्मीदवारों को नामजद कर सकते हैं। इस प्रकार किसी भी पद के लिये साम्यवादी दल अथवा अन्य संगठनों द्वारा एक से अधिक उम्मीदवारों को नामजद किया जा सकता है। परन्तु विभिन्न उम्मीदवारों की व्यक्तिगत योग्यताओं पर सार्वजनिक रूप से विचार होता है और साधारणतया एक पद के लिये किसी एक उम्मीदवार को स्वीकार कर लिया जाता है। मतपत्र पर केवल एक ही उम्मीदवार का नाम दिया होता है। मतदाता को मतदान करते समय उसी उम्मीदवार के पक्ष में मत देना होता है या वह उसका नाम काट सकता है। इस प्रकार चुनाव केवल एक औपचारिक क्रिया है।

आलोचना—सोवियत पद्धति की इस आधार पर तीव्र आलोचना की जाती है। यह कहा गया है कि सोवियत संघ के चुनावों में केवल एक ही राजनैतिक दल भाग लेता है। अन्य सार्वजनिक सगठन भी उम्मीदवारों की नामजदगी में भाग ले सकते हैं, किन्तु वे सभी साम्यवादी दल के समर्थक होते हैं (A bloc of Communists and non-party people, who follow the cause of Lenin and Stalin)। चुनावों में साम्यवादी दल से बाहर के सदस्य भी चुने जाते हैं, विशेषकर निम्न स्तरीय सोवियतों में ऐसे सदस्यों की संख्या ऊपर की सोवियतों की अपेक्षा बड़ी होती है। परन्तु आलोचकों की दृष्टि में इन सदस्यों का चुनाव साम्यवादी दल की कृपा अथवा समर्थन से होता है। अतएव फाइनर के मतानुसार, 'सोवियत संघ में ऐसे चुनावों पर आधारित सरकार को स्वतन्त्र नहीं कह सकते।'[13]

प्रचलित पद्धति के पक्ष में एक सोवियत समर्थक का कथन इस प्रकार है: 'सोवियत निर्वाचन कानून के अनुसार नामजद किये जाने वाले उम्मीदवारों की संख्या पर कोई सीमा नहीं लगी है। तथ्य यह है कि अपने निर्वाचन सम्मेलन

13. 'This cannot be called a free government, for it is dominated by the Communist party, and if there are non-party nominees and later deputies, it is by grace of and to the satisfaction of the party... It is in a sophisticated sense only that the people choose their representatives.' *H. Finer* : Theory and Practice of Modern Government, p 256.

में मतदान स्वयं ही एक व्यक्ति के नाम को सबकी सहमति से स्वीकार कर लेते हैं ।' सम्पूर्ण सोवियत समाज की नैतिक और राजनैतिक एकता की दशाओं में, जैसी एकता का पूँजीवादी संसार को ज्ञान नहीं है । उसी लेखक के अनुसार सं० रा० अमरीका में उम्मीदवारों की नामजदगी का अधिकार दोनों पूंजीवादी राजनीतिक दलों को प्राप्त है, जिसका अर्थ केवल आय वाले पदों को आपस में बांटना है। इसके विपरीत सोवियत संघ में स्वयं जनता अपने उम्मीदवारों को नामजद करती है । सं० रा० अमरीका की कांग्रेस में एक भी श्रमिक नहीं, जबकि सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत में सभी श्रमिक, किसान, साम्यवादी दल के पदाधिकारी, वैज्ञानिक, डाक्टर, कलाकार, सरकारी नौकर—पुरुष और स्त्रियां हैं।

वर्तमान संविधान के निर्माण से पूर्व ही **स्टालिन** ने एक बार कहा था कि सोवियत संघ में विरोधी दल नहीं हैं; क्योंकि वहाँ पर अब एक ही वर्ग का समाज है । विभिन्न दल वहीं होते हैं, जहाँ कई वर्ग हों क्योंकि दल वर्ग का ही अंग होता है । *सन् १९४६ के चुनाव में किसी भी मत-पत्र पर एक से अधिक नाम अंकित न* था । चुनाव में ९९·७ प्रतिशत मतदाताओं ने मतदान किया और लगभग ९९·२ प्रतिशत मत 'साम्यवादी दल और उसके समर्थकों के समूह के उम्मीदवारों के पक्ष' में डाले गये। सन् १९५४ में सर्वोच्च सोवियत के चुनावों में ९९·९८ प्रतिशत मतदाताओं ने मतदान किया । चुनावों में मतदाताओं का इतना बड़ा प्रतिशत भाग लेता है, किन्तु चुनाव, पाश्चात्य प्रतिमानों के अनुसार, स्वतन्त्र नहीं होते । मतदान का अधिकार केवल 'साम्यवादी दल और उसके समर्थकों के समूह' द्वारा नामजद उम्मीदवार को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने तक ही सीमित है । कुछ लेखकों के अनुसार सोवियत सरकार चुनावों का प्रयोग प्रचार के प्रयोजन तथा सरकार में नये अधिकारियों की भरती के लिये करती है ।[14]

हेजार्ड के अनुसार, 'सोवियत संघ के निर्वाचन कानूनों के अन्तर्गत चुनावों का रूप लोकतन्त्रात्मक है, किन्तु उन पर ऐसे प्रतिबन्ध और विरोधी भार लगे हैं कि चुनाव स्वतन्त्र नहीं हो सकते ।'[15] इस विषय में ऑग और जिंक ने लिखा है : 'सोवियत पद्धति वास्तव में उससे कम लोकतन्त्रात्मक है जितनी कि यह दिखाई पड़ती है (a system less democratic than it appears) ।' इन बातों का स्मरण न रखने से निर्णय करने में भूल होगी—(१) पाश्चात्य देशों की तरह

14. 'At election time, the Soviet citizen is accorded the privilege of voting only for one candidate for each existing vacancy. He may either turn in his ballot unmarked or scratch of the name it presents. In short, his voting right is limited to acceptance or rejection of the party nominee. The government uses elections for purposes of propaganda and the recruiting of new government officials.' *Beukema et al* : Contemporary Foreign Governments, p. 327.
15. *John N. Hazard* : Ths Soviet System of Government, p. 48-49.

बहुदलीय पद्धति का पूर्णतया अभाव; और (२) साम्यवादी दल व उनके अधिकारियों द्वारा चुनाव-पद्धति पर प्रायः पूर्ण नियन्त्रण और प्रतिबन्धों का प्रयोग। निःसन्देह बाद के निर्वाचन कानूनों में पूर्वकालीन पद्धतियों की तुलना में लोकतन्त्रात्मक रूप की व्यवस्था की गई है और इसके लिये सोवियत संघ के कर्णधारों को उचित श्रेय देना चाहिये। परन्तु कठोर दलीय अधिनायकशाही के अन्तर्गत यह सम्भव नहीं हो सकता कि बहुसंख्यक निर्दलीय निर्वाचकगण अपने राजनीतिक अधिकारों का बिना मार्ग-दर्शन व प्रतिबन्ध के प्रयोग कर सकें। यदि वहाँ प्रजातन्त्र है तो यह शक्ति के साम्यवादी एकाधिकार के लौह ढांचे के भीतर है।[16]

प्रत्यावर्तन (Recall)—सोवियत संघ में नीचे की सोवियतों के प्रतिनिधियों को वापस बुलाने के लिये व्यवस्था पहले ही थी। सन् १९३६ के संविधान में उच्च स्तरीय सोवियतों के सदस्यों को वापस बुलाने--प्रत्यावर्तन की व्यवस्था भी की गई है, किन्तु अब इस उपबन्ध का बहुत कम प्रयोग किया जाता है। सर्वोच्च सोवियत के सदस्यों के प्रत्यावर्तन के सम्बन्ध में आवश्यक कानून सन् १९५९ में बनाया गया। इसके अन्तर्गत किसी भी निर्वाचन जिले के मतदाता बहुमत निर्णय से अपने प्रतिनिधि को किसी समय भी वापस बुला सकते हैं। वे ही संगठन जो उम्मीदवार को नामजद करते हैं, इस प्रकार के प्रश्न को उठा सकते हैं।

४. अधिनायकतन्त्र बनाम प्रजातन्त्र

सोवियत संघ के शासन के विषय में यह प्रश्न सबसे अधिक महत्व का है कि वहाँ पर अधिनायकतन्त्र है अथवा प्रजातन्त्र। इस प्रश्न के दो उत्तर हैं, जो एक दूसरे के विरोधी हैं। एक ओर तो सोवियत संघ के नेता और साम्यवाद के समर्थक सोवियत शासन-पद्धति को सच्चा प्रजातन्त्रवाद बताते हैं, दूसरी ओर उसके आलोचक सोवियत संघ में प्रजातन्त्र के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते और यहाँ की शासन-पद्धति को अधिनायकतन्त्र मानते हैं। इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर देना बड़ा कठिन है, अतएव दोनों प्रकार के विचारकों व लेखकों के मतों के आधार पर ही इसका निर्णय किया जा सकता है। पहले हम उनके मतों और तर्कों का विवेचन करेंगे जो यह मानते हैं कि सोवियत संघ में सच्चा प्रजातन्त्र है।

सोवियत संघ में प्रजातन्त्र है—सन् १९३६ में वर्तमान संविधान के प्रारूप पर बोलते हुये **स्टालिन** ने कहा था कि नये संविधान के प्रारूप की पाँचवी विशेषता उसका तर्कमय और **पूर्णरूपेण प्रजातन्त्रवाद** (its consistent and thorough-going democratism) है; क्योंकि उसमें बिना किसी प्रकार के भेद-भाव तथा प्रतिबन्ध के सभी नागरिकों को समान राजनीतिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। वहाँ पर अधिकतर अधिकारी निर्वाचित होते हैं और प्रत्यावर्तन का भी अधिकार

16. 'If there be democracy, 'it is strictly within the iron frame-work of the Communist monopoly of power.' *Ogg & Zink* : Modern Foreign Governments, pp. 832-833 .

है,[17] सोवियत पद्धति के समर्थकों के अनुसार स्थानीय सोवियतों के प्रतिनिधियों की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई है, अब इनके लगभग साढ़े तीन लाख सदस्य हैं। इन सोवियतों का काम सुधारने, जनता के साथ उनके सम्पर्क सुदृढ़ करने; सोवियत जनतन्त्र का विकास बढ़ाने और सोवियतों के व्यावहारिक काम में श्रमिक जनों को अधिक विस्तृत रूप से जुटाने के उद्देश्य से यहाँ यह पग उठाया गया है। सोवियत नेताओं के अनुसार विभिन्न स्तरों की सोवियतों को अपने-अपने क्षेत्र में जन-कल्याण के विभिन्न कार्यों को करने की शक्तियाँ प्राप्त हैं। इस विषय की विवेचना पूर्वगामी अध्याय में की जा चुकी है। सांस्कृतिक सुविधाओं से सम्बन्धित कुछ कार्य सार्वजनिक संगठनों को सौंपने की दिशा में प्रगति की जा रही है। शारीरिक व्यायाम और खेल-कूद की राज्य समिति के कार्य ऐच्छिक खेल-कूद संस्थाओं के संघ ने अपने हाथ में ले लिये हैं।

सोवियत संघ में एक दलीय पद्धति के समर्थक मानते हैं कि सोवियत संघ में समाजवादी समाज का निर्माण हो जाने से स्वभावतः वर्ग-आधार ही समाप्त हो गया जिस पर दूसरे राजनीतिक दल बन सकते हैं। सोवियत समाज में अब कोई शोषक वर्ग नहीं है, वहाँ केवल दो मैत्रीपूर्ण वर्ग हैं—श्रमिक जन और किसान एक सामाजिक समुदाय है और श्रमिक बुद्धिजीवी दूसरा। इन सभी के समान हित हैं और वे एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं—अतएव यह स्वाभाविक है कि वहाँ एक ही राजनीतिक दल साम्यवादी दल है—जो इन हितों की रक्षा करता है और जिसके मार्ग-दर्शन में सोवियत संघ में समाजवाद की स्थापना हो चुकी है। साम्यवादी पद्धति के प्रशंसक यह कहते हैं कि सोवियत संघ में बेकारी का अन्त हो गया है; सम्पूर्ण जनता को काम पाने का अधिकार, विश्राम का अधिकार और सामाजिक सुरक्षा का अधिकार वास्तव में प्राप्त हो गये हैं। संक्षेप में, वहाँ पर सच्चे आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना हो गई है। सोवियत संघ में केवल श्रमजीवियों का समाज है; वहाँ पर पाश्चात्य राज्यों की तरह पूँजीपतियों का शोषण करने वाला वर्ग नहीं है। समाज में सभी का स्थान समान है, सभी में बन्धुत्व की भावना है और चूँकि वहाँ शोषण नहीं है और जीविकोपार्जन की परतन्त्रता नहीं है, इसीलिए उस समाज में ही वास्तविक स्वतन्त्रता, समता व बन्धुत्व की भावना है। आर्थिक विकास की गति में सोवियत संघ अन्य सभी पूँजीवादी देशों से बढ़ा हुआ है और आर्थिक शक्ति में उसका संसार के देशों में दूसरा स्थान है। इतनी आश्चर्यजनक उन्नति

17. 'It represents the highest form of democracy possible in a classless society. This democracy is expressed first of all in the very fact of participation by the working population in State Government, in the fact that officials are all elected and can all be replaced, and in the extraordinarily simple forms and methods of state government accessible to every worker."

केवल ४० वर्ष में हुई है और एक अत्यन्त पिछड़े हुए देश में यह साम्यवादी दल के सफल नेतृत्व का प्रमाण है ।

सिडनी और बीट्रिस वैब ने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ में यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि वहाँ पर प्रजातन्त्र है । उनके अनुसार सोवियत संघ सरकार की विशेषता **'बहुरूपी प्रजातन्त्र'** है । प्रत्येक नागरिक तीन प्रकार से सामाजिक तथा राजनीतिक संगठन में भाग लेता है । **नागरिक की हैसियत** से वह सोवियत संघ की विभिन्न सोवियतों के चुनावों व कार्यों में भाग लेता है, उत्पादक की हैसियत से वह श्रमिक **के रूप में** श्रमिक संघ के कार्यों में भाग लेता है, **उत्पादन स्वामी के रूप में** उत्पादकों की सहकारी समितियों और कृषि क्षेत्र में सामूहिक फार्मों में भाग लेता है और **उपभोक्ता की हैसियत से** वह उपभोक्ताओं की सहकारी समितियों में भाग लेता है । इनके अतिरिक्त वह साम्यवादी दल के सदस्य के नाते साम्यवादी दल के संगठनों के चुनावों तथा कार्यों में भाग लेकर दूसरों का नेतृत्व करता है ।[18] इस दृष्टि से **सोवियत संघ में बहुरूपी प्रजातन्त्र की स्थापना** को स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु प्रश्न वैसे राजनीतिक प्रजातन्त्र का है जैसा कि पश्चिमी देशों में पाया जाता है । इसका उत्तर 'नहीं' में देना पड़ेगा ।

सोवियत संघ में प्रजातन्त्र नहीं, अधिनायकशाही है । इस मत के पक्ष में अधिकतर पाश्चात्य लेखक हैं जो विभिन्न तर्कों द्वारा यह सिद्ध करना चाहते हैं कि सोवियत संघ में प्रजातन्त्र नहीं है । प्रथम, हेजार्ड के मतानुसार आज विश्व की सभी जातियों की जबान पर 'प्रजातन्त्र' शब्द चढ़ा है । यद्यपि सोवियत संघ में बाहर के विचारों के प्रवेश पर भी कठोर सीमायें लगी हैं, सोवियत नागरिक जानते हैं कि मनुष्य मात्र अच्छे शासन को इस दृष्टि से जांचते हैं कि राज्य की जनता को अपने नेताओं को चुनने तथा नीति को प्रभावित करने का अवसर मिलता है । सोवियत संघ में आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखने की समस्या को बढ़ाना होगा, यदि वहाँ जनता को प्रजातन्त्र से सम्बन्धित समस्यायें प्रदान न की जायें । ऐसा न होने पर सोवियत नीतियों को पाश्चात्य देशों की जनता का समर्थन भी न मिलेगा । इसके अतिरिक्त साम्यवादी दल ने सोवियत राज्य के ढांचे को इसलिए कायम रखा हुआ है कि यह दल के प्रभाव को दल से बाहर बड़े सक्रिय जन-समूहों को प्रभावित करता है और इसलिए भी यह तर्क दिया जा सकता है कि सोवियत संघ में प्रजातन्त्रात्मक संस्थायें हैं ।[19]

18. 'The result is a multiform democracy in which Soviets and trade unions, co-operative societies and voluntary associations, provide for the reasonable participation in public affairs of an unprecedented proportion of the adult population.'

19. 'The Soviet state apparatus has been retained by the Communist party probably not only because it facilitates the tradition of party influence

दूसरा, फाइनर कहता है कि, अधिनायकशाही राज्यों में संघ बनाने, सभा करने, सहमति प्रकट करने और शासन की इच्छा निर्माण करने वाले स्वातन्त्र्य अधिकारों को नष्ट किया जाता है। अधिनायकशाही के पीड़ित व डरे हुए प्रजाजन जीवन में आने वाली नैतिक छांटें नहीं कर सकते। अधिनायकशाही का आधार यह है कि एकाधिकार प्राप्त दल मनुष्य मात्र के राजनैतिक भाग के बारे में अन्तिम सत्य को मानते हैं। उसके मतानुसार सोवियत संघ में साम्यवादी दल की अधिनायकशाही है।'[20] एक अन्य लेखक के अनुसार सोवियत संघ में बौद्धिक स्वतन्त्रता (intellectual freedom) नहीं है। जहाँ तक प्रेस की स्वतन्त्रता का प्रश्न है, इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। क्रान्ति से पूर्व जारशाही के अन्तर्गत बड़ी रोकथाम (censorship) के बावजूद भी समाचार-पत्रों में विभिन्न मत प्रकाशित होते थे, किन्तु अब सोवियत संघ में सेन्सरशिप की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वहाँ पर केवल साम्यवादी पत्र ही प्रकाशित हो सकते हैं। पाठक को प्रवदा या इजवेस्तिया देखने के बाद अन्य हजारों समाचार-पत्र देखने में समय खोना होगा, क्योंकि वे सभी एक ही बात कहते हैं।[21]

तीसरा, आइवर जेनिंग्स के अनुसार, जब तक ब्रिटिश पार्लियामेंट में विरोधी पक्ष हैं, वहाँ केबिनेट की अधिनायकशाही कायम नहीं हो सकती। किसी देश में प्रजातन्त्र है या नहीं ? इसकी पहचान विरोधी पक्ष के होने या न होने से होती है। इसी कारण आलोचक यह मानते हैं कि सोवियत संघ में प्रजातन्त्र नहीं है। फ्लोरिस्की के अनुसार, राजनैतिक प्रजातन्त्र का सार इसमें है कि जनता को सत्तारूढ़ दल के विरुद्ध मत रखने और उसे अभिव्यक्त करने का अधिकार हो। आधुनिक प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का जीवनदायिनी तत्व संगठित विरोध (organised oppostion is the vital element of modern democratic system) है।[22] यह सच है कि सोवियत संघ में एक ही दल है, जिसे शक्ति का एकाधिकार प्राप्त है। सोवियत सघ मे एक दलीय पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक मतदाता से एक ही उम्मीदवार के पक्ष में मतदान करने या उसका नाम काटने की बात पाश्चात्य प्रजातन्त्री देशों के नागरिकों की दृष्टि में प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली नहीं है। वे अवश्य ही यह तर्क देंगे कि इस प्रकार से मतदान करने से निर्वाचकगण एक रबर की मोहर के समान हैं जिसे मत देने की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। मतदान का

throughout larger groups of the active non-party masses but also because it makes possible an argument, however ineffective from the point of view of the Westerner, that democratic institutions exist within the U. S. S. R.' *John N. Hazard* : op., cit., p. 46.

20. *H. Finer* : Theory and Practice of Modern Government.
21. *Michael T. Florinsky* : Towards an Understanding of the U. S. S. R., p. 189.
22. Ibid., p. 196.

आकार ही ६७–६६% मतदाता द्वारा सत्तारूढ़ शासक वृन्द को एक मत से स्वीकृति देना इस बात का प्रमाण है कि यह सम्पूर्ण क्रिया एक प्रकार का प्रहसन है।[23]

चौथा, शासन पर नियन्त्रण साम्यवादी दल का रहता है, स्टालिन की अधिनायक शक्तियों का आधार ही उसका दल पर नियन्त्रण था। स्टालिन के व्यक्तित्व में तो शासक वर्ग और शासक दल दोनों का ही मेल था (combination of ruling class and ruling party in his own person)। वास्तव में, साम्यवादी दल का इतिहास ही सोवियत संघ का इतिहास है। पहले साम्यवादी दल क्रान्ति का अगुआ (spearhead of the revolution) था और अब वह स्थापित व्यवस्था की प्रधान शक्ति है। न्यूमैन के अनुसार साम्यवादी दल का प्रमुख भाग इस बात से स्पष्ट होता है कि वह राज्य और जनता का मार्ग-दर्शक है। सोवियत जीवन के सभी सार्वजनिक कार्यों और कभी-कभी व्यक्तिगत क्षेत्र का भी स्पार्क-प्लग अर्थात् बिजली शक्ति प्रदान करने वाला साम्यवादी दल है।[24] साम्यवादी दल के नेताओं ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि शासनतन्त्र की चालक शक्ति दल है, यद्यपि सोवियत निकाय और समितियाँ आदि उनके अन्य अंग हैं।[25] एक बार स्टालिन ने स्वयं कहा था : यह दल खुले रूप में स्वीकार करता है कि वह शासन को सामान्य निदेश देता है और उसका मार्ग-दर्शन करता है (that it guides and gives general direction to the government)। ऑग और जिन्क के अनुसार सोवियत संघ में कागज पर दल और शासन एक दूसरे से अलग हैं और केवल एक दूसरे के पूरक हैं। तथ्यों की दृष्टि से, सभी बातों में केवल वाह्य रूप को छोड़कर दल ही शासन है और साम्यवादी अधिनायकशाही है।[26]

अन्य लेखकों ने भी उपरोक्त मत का समर्थन किया है। हारपर व टॉमसन ने लिखा है कि सोवियत संघ में वास्तविक नीति निर्धारण करने वाला निकाय दल

23. 'The very size of the Russian votes, that 97 and 99 percent of all the voters give unanimous approval to the regime in power, seems to us a proof that the whole thing is a farce.' *Walter Deranty* : Stalin & Co., p. 23.

24. 'It is the spark-plug of all action of the public and sometimes the private sector of Soviet life.' *R. C. Neumann* : op. cit., p. 533.

25. 'The Party has been described by its own leaders as the motive power of a highly generated machine; the other parts of which are the Soviet assemblies and committees, the trade or labour unions, and various other types of mass organization.' *Harper & Thompson* : The Government of the Soviet Union, p. 57.

26. *Ogg & Zink* : op. cit. p. 812.

का पोलिट-ब्यूरो है,[27] जिसे अब प्रेसीडियम कहते हैं। नाम के लिए दल और शासन का पृथक्-पृथक् संगठन है जो ऊपर से लेकर नीचे गांव तथा कस्बे तक समानान्तर रूप से फैला है—दोनों के अपने समाचार-पत्र हैं; सम्मेलन व सभायें हैं और उनके पृथक् कृत्य व संगठन हैं; परन्तु चूंकि दोनों में एक ही व्यक्ति-समूह सदस्य हैं; दोनों एक दूसरे से गुंथे हुए हैं; विशेषकर ऊपर के स्तरों पर। दोनों की सदस्यता में इतनी अधिक समानता है कि व्यवहार में यह कहा जा सकता है कि शासन के प्रायः सभी उच्च स्तरीय तथा अधिकतर निम्न अधिकारीगण साम्यवादी दल के सदस्य हैं।[28] कार्टर और सहयोगियों के मतानुसार भी सोवियत संघ में शासन करने वाला दल है (party as governor)। कहने को मन्त्रि-परिषद् सर्वोच्च सोवियत के प्रति उत्तरदायी है; किन्तु आज तक सर्वोच्च सोवियत ने किसी मन्त्री को भी अपदस्थ नहीं किया है। दोनों सदन स्वतन्त्र हैं, किन्तु उनके बीच कभी भी किसी प्रकार का मतभेद उत्पन्न नहीं होता। वास्तव में, वहाँ पर 'वफादार विरोधी पक्ष' (loyal opposition) का अस्तित्व ही नहीं है। विधि-निर्माण और प्रशासन दोनों में सदैव दल ही यह निर्णय करता है कि क्या करना है, कब करना है, कैसे करना है और किसके द्वारा ?[29] प्रायः सभी लेखक यह मानते हैं कि सभी राजनैतिक संस्थायें दल के नियन्त्रण में हैं।

जहाँ तक प्रशासन का सम्बन्ध है, मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति साम्यवादी दल के सत्ताधारी अंग—प्रेसीडियम द्वारा की जाती है और वही इन्हें उनके पद से हटा भी सकता है; यद्यपि संवैधानिक दृष्टि से जिन दिनों सर्वोच्च सोवियत का सत्र होता है, मन्त्रि-परिषद् उसके प्रति उत्तरदायी रहती है और अन्य समय सर्वोच्च सोवियत की प्रेसीडियम के प्रति शासन व प्रशासन के सभी महत्वपूर्ण पदों पर साम्यवादी नेता व कार्यकर्त्ता आसीन रहते हैं। सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों में भी अधिकतर साम्यवादी दल के सदस्य अथवा उसके समर्थक हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रशासनतन्त्र पर दल का प्रभुत्व है। विधि-निर्माण क्षेत्र में, संविधान की दृष्टि से, सर्वोच्च कानून बनाने का कार्य सर्वोच्च सोवियत करती है। कानून बनाने की औपचारिक कार्यवाही होती है, किन्तु यह सच है कि नीति का निर्धारण साम्यवादी दल के सर्वोच्च नेता व अंग करते हैं। यह तथ्य विधायी प्रक्रिया से भी सिद्ध होता है। सोवियत संघ में सर्वोच्च सोवियत के साधारणतया दो सत्र होते हैं और प्रत्येक सत्र लगभग ८–१० दिन तक चलता है। अतः सत्रों का काल अत्यन्त अल्प है; विधेयकों पर बहुत कम वाद-विवाद होता है, केवल अभिरुचिहीन

27. *Harper & Thompson* : The Government of the Soviet Union p. 64.
28. 'But party and Government are none-the-less indissolubly jointed by reason of the identity of their membership especially at the higher levels.' Ibid. p. 58.
29. *Carter et al* : The Government of the Soviet Union, p. 69.

प्रक्रिया सम्बन्धी कार्यवाही पूरी की जाती है। व्यवहार में, वहाँ पर सर्वोच्च सोवियत स्वतन्त्र विधायी कार्य नहीं करती।[30] टाउस्टर ने भी लिखा है कि सर्वोच्च सोवियत का मुख्य प्रयोजन, ऐसा प्रतीत होता है, कभी-कभी जैसा कि आवश्यकता पड़े, शासन की नीति पर अपनी स्वीकृति प्रदान करना है।[31]

पाँचवा, **साम्यवादी दल अपनी गतिविधियों, नेताओं व कार्यकर्त्ताओं द्वारा सम्पूर्ण शासन व प्रशासन पर नियन्त्रण रखता है।** साम्यवादी दल का गुप्त पुलिस और सेना पर भी नियन्त्रण है। राजनैतिक और आर्थिक सभी प्रकार के कार्यों का संचालन करने वाले मन्त्रालयों व नियन्त्रण अभिकरणों (controlling agencies), राजकीय नियोजन आयोग और राजकीय मन्त्रालय पर साम्यवादी दल का ही नियन्त्रण है। गुप्त पुलिस और सेना द्वारा तो साम्यवादी नेता जनता को आतंकित और भयभीत रखते हैं। सभी अधिनायकशाही वाले देशों में ऐसा होता है। सोवियत संघ में तो साम्यवादी दल क्राँति के बाद से देश में समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना में लगा है, अतएव वह इनके विरोधियों को कुचलने में विश्वास करता है। शासन के अन्य विभागों व अभिकरणों द्वारा साम्यवादी दल सोवियत समाज के प्राय: सम्पूर्ण जीवन पर नियन्त्रण रखता है।[32]

छठा, **सोवियत संघ में प्रजातन्त्र है या अधिनायकशाही—इस प्रश्न का उत्तर स्वयं समाजवादी नेताओं ने ठीक-ठीक नहीं दिया है।** साम्यवादी मत के अनुसार सोवियत संघ में सर्वहारा वर्ग की अधिनायकशाही (dictatorship of the proletariat) है और साथ ही साथ वे इसे प्रजातन्त्र भी बताते हैं। स्टालिन ने इसे अधिनायकशाही और पूर्ण प्रजातन्त्र बताया है। इन दोनों बातों में असंगति है, यह स्पष्ट है। साथ ही यह बात स्पष्ट है कि साम्यवादी नेता 'प्रजातन्त्र शब्द का कुछ भिन्न अर्थ लेते हैं। वे प्रजातन्त्र को उस रूप में नहीं स्वीकार करते जिसमें कि इसे पाश्चात्य विचारक समझते हैं। साथ में यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि यदि साम्यवादी दल और शासन एक दूसरे से पृथक् नहीं हैं तो फिर साम्यवादी नेताओं ने ऐसी व्यवस्था क्यों की है। इस प्रश्न का उत्तर दो प्रकार से दिया गया है: (१) शासन वह महत्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा सम्पूर्ण जनता में दल के प्रभाव

30 'Like elections, they follow an immutable and dreary routine; long programme speeches by the leaders, blank endorsement of constitutional amendment and decrees of the presidium and practically no independent legislative work.' *J. T. Shotwell (ed.)*: Governments of Continental Europe, p. 749.

31. *J. Towster*: Political Power in the U. S. S. R., p. 263.

32. 'The political basic of the U. S. S. R. comprises the leading and directing role of the Communist party in all fields of economic, social and cultural activity.' *A. Y. Vyshinsky*: The Law of Soviet Union, p. 159.

को फैलाया जा सका है। (२) इसके आधार पर साम्यवादी नेताओं के लिए यह तर्क देना सम्भव हो सका है कि सोवियत संघ में प्रजातन्त्र का अस्तित्व है। सातवाँ, कुछ लेखकों के मतानुसार सोवियत संघ स्वेच्छाचारी शासन का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है। इसमें असभ्यकालीन हृदय की कठोरता, पूर्वात्य देशों की चाल और पाश्विकता और मार्क्सवादी पूर्णता से जानबूझ कर निकाली निर्दयता का मेल है। इस शासन-पद्धति ने लाखों मनुष्यों का संहार किया है और लाखों को भूख और मौसम की कठोरताओं से मरने के लिये छोड़ दिया है।[33] यह मत अतिवादी अमरीकी आलोचकों का प्रतिनिधित्व करता है।

निष्कर्ष—हमारे विचार में सोवियत संघ में बड़ी मात्रा में आर्थिक और सामाजिक प्रजातन्त्र की स्थापना हुई है। वहाँ पर बेकारी, निर्धनता व मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर दिया गया है और सर्वसाधारण जनता को सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक चिन्ताओं से मुक्ति प्रदान की गई है। आज की कठिन आर्थिक परिस्थितियों में आर्थिक प्रजातन्त्र अथवा समता व स्वतन्त्रता का महत्व राजनैतिक प्रजातन्त्र से कम नहीं हो सकता। इस बात का वहाँ और भी अधिक महत्व है, क्योंकि जार-कालीन रूस में सर्वसाधारण जनता की दशा बड़ी ही दयनीय थी। साथ ही सोवियत संघ में सभी नागरिकों को बिना किसी भेद-भाव के समान अधिकार प्राप्त हुए हैं। वहाँ स्त्रियों और पुरुषों तथा विभिन्न राष्ट्रीयताओं के सदस्यों के बीच किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं बरता जाता। इसके अतिरिक्त वहाँ पर सम्पत्ति के आधार पर ऊंचे व नीचे वर्गों का अन्तर समाप्त हो गया है। सोवियत संघ ही एक ऐसा देश है जहाँ श्रमिक जन, किसान और बुद्धिजीवियों का समाज है और जिसमें श्रमिकों व किसानों को सम्मानित पद प्राप्त हुआ है।

उपरोक्त के अतिरिक्त यह भी सच है कि वर्तमान संविधान में प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का रूप अवश्य ही अपनाया गया है; किन्तु पूर्व वर्णित विभिन्न तर्कों के आधार पर कहना ठीक है कि सोवियत संघ में राजनैतिक स्वतन्त्रता का अभाव है, नागरिकों को स्वतन्त्र रूप से मतदान का अधिकार नहीं है और निर्वाचन पद्धति ऐसी है जिसे प्रजातन्त्रात्मक नहीं कहा जा सकता। सोवियत नेताओं के इस तर्क में सत्य का कुछ अंश है कि वहाँ विभिन्न वर्गों की समाप्ति के बाद विरोधी दलों के लिये आधार नहीं रहा है; परन्तु राजनैतिक प्रजातन्त्र को वास्तविक तभी माना

33. 'Soviet Russia is the world's most conspicuous example of despotism, combining primitive callousness, Oriental cunning and brutality and the calculated ruthelessness of Marxian infallibility. It has slaughtered human beings by the million and left other millions to die of starvation and exposure.' *Adams et al*: Foreign Governments and their Backgrounds, p. 766.

जा सकता है जबकि जनता को स्वतन्त्र रूप से अपना मत प्रकट करने व संगठित होने का अधिकार प्राप्त हो। अतएव वहाँ पर राजनैतिक दृष्टि से प्रजातन्त्र नहीं है। वास्तव में, साम्यवादी दल का सम्पूर्ण शासन पर प्रभुत्व तथा नियन्त्रण कायम है। अस्तु, इस कथन में अत्ययुक्ति नहीं है कि सोवियत संघ में साम्यवादी दल का अधिनायकशाही है, जिसे साम्यवादी नेता सर्वहारा-वर्ग की अधिनायकशाही कहते हैं।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. साम्यवादी दल के संगठन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
२. सोवियत संघ के शासन में साम्यवादी दल की क्या भूमिका है?
३. सोवियत शासन और साम्यवादी दल के बीच सम्बन्ध को समझाकर लिखिए।
४. सोवियत संघ की चुनाव पद्धति का वर्णन कीजिए।
५. क्या सोवियत संघ में चुनाव प्रजातन्त्रात्मक ढंग से होते हैं? यदि नहीं, तो ऐसा क्यों?
६. सोवियत संघ में प्रजातन्त्र किस रूप में है और किस सीमा तक?
७. क्या सोवियत संघ में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई है?
८. 'सोवियत संघ में प्रजातन्त्र' विषय पर एक निबन्ध लिखिए।

—:०:—

स्विटजरलैंड

का

शासन

(GOVERNMENT OF SWITZERLAND)

१. परिचयात्मक

१. देश और निवासी

देश—स्विटजरलैंड यूरोप महाद्वीप के सबसे छोटे देशों में से एक है। इसका कुल क्षेत्रफल १,४१,३०६ वर्ग किलोमीटर है। आकार में यह हॉलैंड या डेनमार्क या सं० रा० अमरीका के मेरीलैंड नामक राज्य के बराबर है, किन्तु इसका क्षेत्रफल न्यूयार्क राज्य का केवल १/३ है। यह देश यूरोप के मध्य में स्थित है, अतएव एक लेखक ने इसे यूरोप का भौगोलिक केन्द्र बताया है और दूसरे ने यूरोप का हृदय (Heart of Europe)। एक स्विस लेखक ने अपने देश का परिचय इन शब्दों में दिया है; 'एक छोटा महाद्वीपीय देश, प्राकृतिक साधनों में निर्धन, विरोधी बातों में धनी विश्व के राष्ट्रों में स्विटजरलैण्ड एक विशेष स्थान रखता है।"[1] सम्पूर्ण देश पहाड़ी है और आल्प्स (The Alps) पर्वतमाला तथा उससे निकलने वाली नदियों की घाटियाँ सम्पूर्ण देश में फैली हुई हैं। इसकी सीमा समुद्र तट से बहुत दूर है, जिस कारण यह चारों ओर भूमि से घिरा हुआ देश है। चूंकि सम्पूर्ण देश पहाड़ी है, अतएव एक चौथाई भाग तो बिल्कुल अनुपजाऊ है और शेष का अधिकांश केवल वनों अथवा चरागाहों के लिए ही उपयुक्त है। अस्तु, केवल ३५ प्रतिशत भाग ही खेती के काम में आता है। स्विटजरलैंड में कोयला व लोहा धातुयें भी नहीं मिलतीं, इसलिये यह देश उद्योगों का विकास भी नहीं कर सका। परन्तु यहाँ पर जल-विद्युत शक्ति का प्रचुर मात्रा में विकास हो पाया है। ऊंचा-नीचा भूमितल होने के कारण यहाँ रेल अथवा अन्य मार्गों का निर्माण भी कठिन कार्य है। इस प्रकार प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से स्विटजरलैंड एक निर्धन देश है।

परन्तु स्विटजरलैंड अपनी प्राकृतिक सुन्दरता के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। सम्पूर्ण देश सुन्दर दृश्यों, मनोरम घाटियों और मनोहर स्थानों से भरा है। आल्प्स पर्वत के ऊंचे शिखर स्विटजरलैंड के मुख्य भूमि-चिन्ह हैं। स्विटजरलैंड में लगभग ४० नदियों के श्रोत और ५५ झील हैं। एक लेखक के मतानुसार स्विटजरलैंड की सुन्दरता ही उसकी निर्धनता का कारण है। परन्तु इसकी प्राकृतिक सुन्दरता के कारण ही सम्पूर्ण यूरोप तथा विश्व के अन्य देशों से लाखों यात्री वहाँ सैर को जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप पर्यटन (Tourism) स्विटजरलैंड का सबसे अधिक महत्व-पूर्ण उद्योग बन गया है और स्विटजरलैंड के होटल जगत प्रसिद्ध हैं। इसी कारण सम्पूर्ण स्विटजरलैंड में मार्गों व रेलमार्गों का विकास हो गया है। कृषि के अतिरिक्त

1 'A small continental country, poor in natural resources, rich in contrasts and differences, Switzerland seems te be a "special case" amcng the nations of the world.'
—*Corl Dcka,* Switzeriand in its Cultural, Secil and Folitical Aspects, pp-1-2.

स्विटजरलैंड में वनों और अंगूरों की खेती को भी बहुत विकसित किया गया है। प्राकृतिक साधनों के अभाव में भी स्विटजरलैंड अब एक समृद्धिशाली देश है और वहाँ के निवासियों को किसी भी दृष्टि से निर्धन नहीं कहा जा सकता।

स्विटजरलैंड की प्राकृतिक बनावट का वहाँ के निवासियों के सम्पूर्ण जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। राजनीतिक दृष्टि से स्विटजरलैंड में बहुत समय से अनेक स्वाधीन केन्टनों व कम्यूनों का विकास हुआ है। स्विटजरलैंड में संघात्मक शासन का विकास हुआ, क्योंकि वहाँ पर एकात्मक शासन की स्थापना के लिये उपयुक्त भौगोलिक दशायें विद्यमान न थीं। एक दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि स्विटजर-लैंड तीन बड़े शक्तिशाली राज्यों—जर्मनी, फ्रांस और इटली—से घिरा है औ इसकी जनसंख्या में जर्मन, फ्रांसीसी व इटेलियन जातियों के सदस्यों का बड़ा भा है, अतएव स्विटजरलैंड ने बहुत समय से तटस्थता (Neutrality) की नीति व अपनाया है और वह उस पर सफलतापूर्वक चल सका है।

निवासी—सन् १९५१ में स्विटजरलैंड की कुल जनसंख्या ४६ लाख से कुछ हं ऊपर थी; किन्तु अब यह ६० लाख के लगभग है। जैसा कि ऊपर बताया गया है स्विटजरलैंड में अधिकतर निवासी तीन मूलवंशों (racial stocks)—जर्मन, फ्रांसीसं और इटेलियन—के हैं। इस प्रकार वर्तमान स्विस जाति तीन राष्ट्रों से मिलक बनी है। स्विटजरलैंड के निवासियों में मूलवंश के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार क विविधतायें भी पाई जाती हैं। वहाँ पर ४ भाषायें बोली जाती हैं—जर्मन ७२% फ्रांसीसी २१%, इटेलियन ६% और रोमांच्य १%। इन चारों ही भाषाओं क संघ के शासन व प्रशासन के सम्बन्ध में राज-भाषाओं (official languages) का पद प्राप्त है। अधिकतर शिक्षित स्विस साधारणतया दो या अधिक भाषाअ का प्रयोग करते हैं।

वहाँ पर धार्मिक अन्तर भी महत्वपूर्ण है। स्विटजरलैंड में प्रोटेस्टेन्ट और केथो-लिक ईसाइयों की बड़ी संख्या है और उनके भी कई सम्प्रदाय हैं आर्थिक दृष्टि से स्विटजरलैंड की बहुसंख्यक जनता शहरी है और व्यापार तथा उद्योगों में लगी है (people are essentially urban and non-agricultural)। सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्योग मशीन बनाना, धातु का काम, घड़ियाँ, सूती, रेशमी और ऊनी कपड़े बनाना है। स्विटजरलैंड में तीन सामाजिक वर्ग ये हैं—किसान शहरी (towns people) और श्रमिक। वहाँ पर साधारण व्यक्ति का जीवन स्तर अन्य देशों के समान व्यक्तियों के स्तर से कुछ ऊंचा ही है।

यद्यपि स्विटजरलैंड के निवासियों में कई प्रकार की विविधतायें पाई जाती हैं। भाषायी दृष्टि से स्विटजरलैंड बहुभाषी देश (polyglot country) है; और वहाँ चार प्रमुख भाषाएं हैं। भूमि की रचना, वस्तुकला और प्रथाओं में विभिन्न प्रदेशों के बीच बड़े अन्तर हैं, फिर भी स्विस जाति में एक सामान्य भावना और दृष्टिकोण की समता है। स्विटजरलैंड के बारे में यह कहा जा सकता है कि 'यह विविधता में

एकता का सबसे सच्चा उदाहरण है।[1] अब उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना बहुत सुदृढ़ है और सभी निवासी अपने को एक राष्ट्र का सदस्य मानते हैं। उनमें राष्ट्रीयता और देश-भक्ति की सुदृढ़ भावनायें मिलती हैं। ब्राइस के अनुसार इस महत्वपूर्ण राष्ट्रीय एकता के पीछे गत ६०० वर्षों से अधिक की घटनायें हैं।[2] यद्यपि स्विटजरलैंड के निवासियों में एकता स्थापित हो गई है, परन्तु वे एक-रस नहीं हैं (though united they are not yet homogeneous)। स्विस राष्ट्र के बारे में एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उसमें स्थानीय स्वतन्त्रता का प्रेम (love of local liberty) बहुत गहरा है। इसी कारण वहाँ अभी तक कुछ केन्टनों और अनेक कम्यूनों में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र प्रचलित है। कुछ केन्टनों में स्वशासन की परम्परा ६०० वर्ष से भी पुरानी है। स्विटजरलैंड में प्रजातन्त्रात्मक तथा संघात्मक शासन पद्धति ने राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में बड़ा योग दिया है।

२. संवैधानिक विकास

स्विटजरलैंड का राष्ट्रीय और संवैधानिक विकास, भारत की तरह, एक दूसरे से गूंथे हुए हैं। वहाँ पर संवैधानिक विकास के साथ-साथ राष्ट्रीयता का विकास हुआ है। स्विटजरलैंड के संवैधानिक विकास का संक्षिप्त अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत सुविधापूर्वक किया जा सकता है—

संघटन की उत्पत्ति (Origins of Confederation)—आधुनिक स्विटजरलैंड का विकास केन्टनों के क्रमिक एकीकरण से हुआ है। इस दिशा में प्रथम पग सन् १२९१ में उठाया गया था जबकि उरी, श्विज और अन्टरवाल्डेन नाम के तीन केन्टनों ने एक स्थायी इकरार (Perpetual Covenant) किया, जिसके अनुसार उन्होंने आपस में एक दूसरे के अधिकारों और विशेषाधिकारों की अपने सामन्ती शासकों के विरुद्ध रक्षा करने की शपथ ली। आगामी शतियों में केन्टनों के बीच नये इकरार हुए और उन्होंने विदेशी शत्रुओं के विरुद्ध सफलतापूर्वक अभियान चलाये। नये केन्टनों के प्रवेश से देश का विस्तार बढ़ता गया। सन् १५७३ में स्विस संघठन (Swiss Confederation) में १३ केन्टन सम्मिलित हो गये थे; वे सभी जर्मन भाषा-भाषी थे। उनमें से प्रत्येक केन्टन प्रभुत्वपूर्ण (Sovereign) था और उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार की शासन पद्धतियाँ प्रचलित थीं।

1. 'Landscape, architecture and custams differ greatly from one region to another, even from one valley to onother. But there is a spirit common to the whole Swiss people and an identity of outlook. Switzerland, it may be said, is the truest example of unity in diversity.'
2. 'It is a remarkable series of events, reaching back over more than six hundred years, that had brought men of these three stocks together, and made them not only a united people, but one of the most united, and certainly the most patriotic, among the peoples of Europe.'
—*J. Bryce*, Modern Democracies, *Vol. I. p. 368.*

उन केन्टनों ने मिलकर एक छोटा सा राष्ट्र-संघ (Miniature League of Nations) बनाया हुआ था। उनकी अपनी स्वाधीनता की मात्रा इतनी अधिक थी और उनका संघात्मक संघटन इतना ढीला था कि इतिहासकारों ने यहाँ तक घोषित किया है कि स्विटजरलेंड नाम का कोई राज्य ही न था।[1] उनका कोई प्रतिनिध्यात्मक शासक न था, न कोई संघीय सार्वजनिक सेवा ही थी, न संघीय सेना थी, न संघीय बजट था और न राष्ट्रीय नागरिकता ही थी। प्रत्येक केन्टन अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में स्वयं स्वामी था आन्तरिक मामलों में ही नहीं वरन् वाणिज्य नीति सम्बन्धी विदेशी मामलों में भी। उनके राष्ट्रीय अर्थात् सामान्य मामलों पर कभी-कभी होने वाली डायट (Diet) की बैठक में ही विचार होता था और उसमें प्रत्येक केन्टन को पृथक् व सम प्रतिनिधित्व प्राप्त था। १५ वीं १६वीं शताब्दियों में स्विटजरलैंड सैनिक शक्ति में बढ़ा हुआ था, परन्तु उसकी कई बार पराजय हुई और वह क्रमशः शान्तिपूर्ण प्रयत्नों का नेता बन गया।

जब सन् १७९८ में फ्रांस की क्रान्तिकारी सेनाओं ने स्विटजरलैंड पर आक्रमण किया तो पुराना संघटन शीघ्र ही भंग हो गया। फ्रांसीसियों ने स्विस जाति को एक संविधान दिया जो उनके अपने नमूने पर आधारित था। तब स्विटजरलैंड में एक केन्द्रीयकृत राज्य (Centralized State) की रचना हुई, जिसके परिणामस्वरूप केन्टनों का प्रभुत्वपूर्ण और स्वतन्त्र पद समाप्त हो गया और वे एक केन्द्रीय सरकार के प्रशासनिक उप-विभाग बन गये। कुछ व्यक्तियों ने इस संविधान का स्वागत किया परन्तु संघवादियों ने इसका विरोध किया। यह संविधान केवल ५ वर्ष तक चला। केन्द्रवादियों और संघवादियों के बीच तो तनाव रहा ही, उसके साथ स्विस निवासियों और उनके फ्रांसीसी स्वामियों के बीच खुला संघर्ष आरम्भ हो गया।

स्विस जाति में फ्रांस द्वारा थोपे गये संविधान के विरुद्ध इतनी तीव्र प्रतिक्रिया पैदा हुई कि सन् १८०३ में ही नेपोलियन को स्विस केन्टनों की स्वतन्त्रता फिर से स्वीकार करनी पड़ी। सन् १८०३ के मध्यस्थता कानून (Mediation Act of 1803) के अन्तर्गत फ्रांसीसी और इटेलियन भाषायें बोलने वाले प्रदेशों के केन्टन और स्विस संघटन में मिल गये और नेपोलियन के पतन के बाद हेल्वेटियन गणतन्त्र का भी शीघ्र ही अन्त हो गया। सन् १८१४ में ३ अन्य पश्चिमी राज्य केन्टनों की तरह स्विस संघटन में सम्मिलित हुए और इस प्रकार उनकी कुल संख्या २२ हो गई।

सन् १८४८ का संविधान (The Constitution of 1848)—इस संविधान का प्रारूप डायट ने तैयार किया था, जिसे लोक निर्णय के आधार पर अपनाया गया

1. Their individual rights were so preponderant and their federal organisation so loose that historians have generally been led to declare that there was no such thing as a Swiss state.'

—*W. E. Rappard*, The Government of Switzerland, p. 16.

था। रेपर्ड के अनुसार इस संविधान के निर्माताओं के सामने वैसी ही समस्या थी जैसी कि सन् १७८९ में सं० रा० अमरीका के संविधान निर्माताओं के सामने आई थी। उन्हें अत्यधिक क्षीण और ढीले-ढाले संघटन तथा असमान राजनीतिक इकाइयों से एक सुदृढ़ और सन्तुलित संघ का निर्माण करना था। अतएव सन् १८४८ के संविधान के अन्तर्गत द्वि-सदनात्मक संघीय विधायिका स्थापित की गई, जिसके ऊपर वाले सदन में सभी छोटे-बड़े केन्टनों को २-२ स्थान दिये गये और निचले सदन में जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई। एक ७ सदस्यों वाली कार्यपालिका (Federal Council) की रचना की गई, जिसके सातों सदस्यों का दर्जा बराबर रखा गया और यह भी प्राविधान बना कि किसी भी केन्टन का एक से अधिक प्रतिनिधि कार्यपालिका में न रह सकेगा।

इस संविधान के निर्माताओं के सामने दो मुख्य प्रयोजन, रेपर्ड के अनुसार ये थे—प्रथम, सच्ची राष्ट्रीय सरकार की स्थापना, जो संघीय एसेम्बली, संघीय कौन्सिल और संघीय ट्रिब्यूनल की रचना द्वारा की गई। दूसरा, केन्टनों की लीग को संघीय राज्य में परिवर्तन करना और सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र में नागरिकों को कुछ मूल अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का आश्वासन देना। इस दृष्टि से सन् १८४८ के संविधान में विभिन्न प्राविधानों द्वारा इन स्वतन्त्रताओं की प्रत्याभूति दी गई है—उद्योग और व्यापार, अन्तर्रात्मा, समाचार-पत्रों व याचिका इत्यादि की स्वतन्त्रता। सन् १८४८ के संविधान ने बड़े और छोटे केन्टनों के बीच पुराने संघर्ष का सं० रा० अमरीका के नमूने पर संघात्मक राज्य की रचना करके अन्त कर दिया। संघात्मक शासन की स्थापना से दलीय और राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ हुई। उसके अन्तर्गत संघीय डाक सेवा कायम की गई, टेलीग्राफ का राष्ट्रीयकरण किया गया और एकरूप नाप तोल व सिक्कों की पद्धति लागू की गई। इस संविधान द्वारा संघटन को संघ में परिवर्तित कर दिया गया, यद्यपि अभी तक इसे कन्फेडरेशन ही कहा जाता है।[1]

सन् १८७४ का संवैधानिक परिवर्तन (The Constitutional Revision of 1874)—सन् १८७४ में स्विटजरलैंड के संविधान में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिनके चार लक्ष्य थे—राष्ट्रीय केन्द्रीयकरण, विस्तृत प्रजातन्त्र, शक्तिपूर्ण धर्म-विरुद्ध कार्यवाही और सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में राज्य का बढ़ता हुआ हस्तक्षेप। इसके अन्तर्गत पूर्व की अपेक्षा संघ की शक्तियाँ विस्तृत हो गईं; और वैदेशिक सम्बन्धों, सैनिक मामलों, मुद्रा, दीवानी व फौजदारी कानून, संचार तथा वाणिज्य, उच्चतर शिक्षा, देशीकरण, प्राकृतिक साधनों का रक्षण आदि पर संघ सरकार का

1. 'This constitution, based largely on the model of the American system of government, supplied a central political system with adequate and effective national authority and definitely transformed Switzerland from a confederation into a federal state.'

—*Shotwell et al*, Governments of Continental Europe, p. 336.

नियंत्रण स्थापित हुआ। विभिन्न केन्टनों में लोक-निर्णय और प्रस्तावाधिकार को अपनाने के पक्ष में चले आन्दोलन के फलस्वरूप इन संस्थाओं को संघीय क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण स्थान मिला। सन् १८७४ के परिवर्तनों से प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की सुविधायें बढ़ीं। सन् १८४८ के संविधान के अन्तर्गत संवैधानिक परिवर्तनों के लिये लोक-निर्णय अनिवार्य था, परन्तु कानून के बारे में इसकी व्यवस्था न थी। परिवर्तित संविधान की धारा ८६ के अनुसार विधायी मामलों में भी ऐच्छिक लोक-निर्णय की व्यवस्था हो गई है। इस प्रकार के लोक-निर्णय की माँग ३०,००० मतदाता या ८ केन्टन कर सकते हैं। चूंकि केथोलिक अल्पसंख्यक जाति सभी उदारवादी सुधारों का विरोध करती थी, अतएव सन् १८७४ के संविधान में उनके विरुद्ध शक्तिपूर्ण प्राविधान सम्मिलित किये गये। समाजवाद के प्रभाव में राज्य के कार्यों का क्षेत्र विस्तृत हुआ और राज्य को आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने की विस्तृत शक्तियाँ प्राप्त हुईं।

सन् १८७४ से संविधान में अनेक संशोधन हुए हैं। इन्होंने संघीय सरकार की शक्ति में और भी वृद्धि की है। उनके द्वारा आर्थिक विनियमन और सामाजिक बीमे के क्षेत्र में सरकार को नये कार्य सौंपे गये हैं। उसके साथ विधि-निर्माण कार्य में जनता के प्रत्यक्ष भाग में भी वृद्धि हुई है। सन् १९३५ में उन समूहों ने जो केन्टनों की शक्तियों में वृद्धि चाहते थे, संविधान के प्रस्तावाधिकार द्वारा पूर्ण दोहराये जाने की प्रार्थना की थी; परन्तु उसे जनता ने अस्वीकार कर दिया।

२. शासन की विशेषतायें

१. शासन के अध्ययन का महत्व

स्विटजरलैण्ड के शासन के अध्ययन का महत्व कई कारणों से है, जिनका संक्षिप्त विवेचन यहाँ दिया जाता है :

अनेक विविधताओं के होते हुए भी सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता (Strong national unity in spite of many diversities)—स्विटजरलैण्ड में रहने वाले निवासियों में, जैसा कि पहले अध्याय में बताया जा चुका है, कई प्रकार की विविधतायें हैं, फिर भी वहाँ सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता स्थापित हो गई। स्विटजरलैण्ड की शासन पद्धति का अध्ययन इस दृष्टि से वहुत ही अभिरुचिपूर्ण है कि वहाँ के निवासियों ने संसार को यह दिखा दिया है कि अनेक विविधताओं के होते हुए भी उनमें घनिष्ठ सहयोग सम्भव है।[1] स्विटजरलैण्ड में एक असम्भव बात सम्भव हुई है, इसीलिये कुछ विदेशी उसे स्विटजरलैण्ड का चमत्कार कहते हैं। न्यूमेन ने लिखा है : 'केवल स्विटजरलैण्ड ही एक चमकदार अपवाद है। वहाँ पर तीन महत्वपूर्ण समूह—जर्मन, फ्रांसीसी और इटेलियन भाषा-भाषी जिनकी भाषा व संस्कृति में बहुत अन्तर है और जो संख्या में भी बहुत कम या अधिक हैं, एक साथ सराहनीय सामंजस्य में रहते हैं। जहाँ कहीं भी सम्भव होता है, स्विस सरकार (फेडरल कौंसिल) और बहु-भाषी केन्टनों की कार्य-पालिकाओं में विभिन्न भाषा समूहों के प्रतिनिधि नम्बरवार सरकार के प्रमुख रहते हैं, जो उनके सामंजस्य का दृष्टिगोचर होने वाला रूप है। कदाचित यह कहा जा सकता है कि स्विस जाति ने अपनी अल्पसंख्या की समस्या को सफलतापूर्वक हल कर लिया है क्योंकि उन्होंने बहु-संख्यक जाति की धारणा अर्थात् शासक समूह के विचार को कभी भी नहीं पैदा होने दिया। वास्तव में, यह बड़ी ही आश्चर्यजनक बात है कि विभिन्न भाषा-भाषी जन स्विटजरलैंड को अपना प्रिय देश मानते हैं। यह बात भारतीय विद्यार्थियों के लिये विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की संस्थायें (Institutions of Direct Democracy)—सारे संसार में स्विटजरलैंड अपनी प्रजातन्त्रात्मक संस्थाओं, विशेष रूप से प्रत्यक्ष

1 'Switzerland is of interest...because it has demonstrated the possibility of close co-operation between people who at one time were independent of each other politically and who to-day are widely divided by language and religion.'

—*R, L. Buell (ed)*, Democratic Goveraments in Europe. p, 553.

प्रजातन्त्र, के लिये प्रसिद्ध है। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की संस्थाओं में एक और लैंड्स-जमींडे (Landsgemeinde) नाम का प्रत्यक्ष अथवा विशुद्ध प्रजातन्त्र अभी तक कई कैन्टनों में प्रचलित है और इस प्रकार का अनुपम उदाहरण है। दूसरी ओर, वहाँ पर जनता विधि-निर्माण में महत्वपूर्ण भाग लेती है। प्रत्यक्ष-विधि निर्माण (Direct legislation) की संस्थाओं में लोकनिर्णय (Referendum) और प्रस्तावाधिकार (Initiative) अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। एक लेखक (John Brown Mason) के अनुसार जब संयुक्त राज्य अमरीका ने राष्ट्रीय जीवन आरम्भ किया तो उसका गणतन्त्रीय संविधान अनगिन राजतन्त्रों में अकेला था, परन्तु उस समय स्विटजरलैंड में गणतन्त्रीय संस्थायें ५०० वर्ष से भी अधिक पुरानी हो चुकी थीं।[1] यह सच है कि अन्य देशों की अपेक्षा स्विटजरलैंड में गणतन्त्रीय भावना की जड़ें अधिक गहरी गड़ी हैं।

यूरोप में स्विटजरलैंड ही ऐसा राज्य है जो सदा ही गणतन्त्रीय रहा है। ब्राइस के अनुसार आधुनिक प्रजातन्त्रों में, जो सच्चे अर्थ में प्रजातन्त्र है, स्विटजरलैंड की शासन पद्धति के अध्ययन के लिये सबसे अधिक औचित्य है।[2] यह सबसे प्राचीन प्रजातन्त्र है, क्योंकि वहाँ ऐसे समुदाय रहते हैं जिनमें जनप्रिय शासन संसार के अन्य यूरोपीय राज्यों की अपेक्षा अधिक दूरी तक ले जाया गया है और अधिक संगत रूप में कार्यान्वित किया गया है। इसके अतिरिक्त, चूँकि वह संघात्मक राज्य है, इसकी संकुचित सीमाओं के भीतर प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्तों पर आधारित विभिन्न प्रकार की संस्थायें मिलती हैं। जर्कर ने तो कहा है कि हाल में 'स्विटजरलैंड और प्रजातन्त्र पर्यायवाची हो गये हैं।[3]

स्विटजरलैंड की अनोखी कार्यपालिका (Unique type of Executive in Switzerland)—स्विटजरलैंड में एक अनोखी प्रकार की कार्यपालिका है, जिसे बहुल-कार्यपालिका (plural executive) कहते हैं। इस कार्यपालिका में अमरीकन पद्धति के स्थायित्व (stability) और ब्रिटिश पद्धति के उत्तरदायित्व (responsibility) का सुन्दर मेल है। इस प्रकार यह कार्यपालिका न संसदात्मक है और न अध्यक्षात्मक, किन्तु इसमें दोनों पद्धतियों की अच्छी बातों को मिलाया गया है। इसकी एक विशेषता यह है कि इसमें सभी महत्वपूर्ण दलों का प्रतिनिधित्व रहा है।

1. 'When our country began its national life, it constituted a republican oasis amid an overwhelming number of monarchies: but Switzerland had known republican institutions for some five hundred years.'
—*F. M. Marx (ed)*, Foreign Governments *p. 369.*
2. 'Among the modern democracies which are true democracies, Switzerland has the highest claim to be studied '
—*J. Bryce*, Modern Democracies, *v. 1. p. 367.*
3. 'Switzerland and democracy have in recent years, become almost synonymous.' —*Zercher.*

उनमें मतभेद होते हैं किन्तु राष्ट्रीय भावना उन सब पर विजयी रहती है। कार्य-पालिका का विस्तृत विवेचन दूसरे अध्याय के दूसरे खण्ड में किया गया है।

स्थायी तटस्थता—स्विटजरलैंड ही एक ऐसा देश है जिसने बहुत समय से स्थायी तटस्थता (permanent neutrality) को अपनाया हुआ है और वह उसका सफलतापूर्वक पालन कर सका है। स्विटजरलैंड की तटस्थता की सन् १८१५ में वियना की कांग्रेस ने प्रत्याभूति दी और सन् १६२० में राष्ट्र संघ (League of Nations) ने भी उसकी पुष्टि की। तटस्थता का सिद्धान्त दोनों विश्व-युद्धों में स्विटजरलैंड की विदेश नीति का आधार बना रहा। दूसरे विश्व-युद्ध के दौरान हिटलर के जर्मनी ने भी उसकी तटस्थता का मान किया। इसी कारण स्विटजरलैंड दोनों विश्व-युद्धों से अपने को अलग रख सका। अब भी स्विटजरलैंड दोनों शक्ति-गुटों (power blocks) से अलग है। स्विस संविधान की धारा १०२ में कार्यपालिका के लिये तटस्थता की नीति पर चलने का निदेश दिया गया है। इसी कारण सन् १६२० में स्थापित राष्ट्र संघ का केन्द्रालय स्विटजरलैंड के प्रसिद्ध नगर जेनेवा में स्थित रहा और अब भी अनेक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन जेनेवा में होते हैं।

शासन पद्धति का स्थायित्व—यही कारण है कि महाद्वीपीय यूरोपियन राज्यों में स्विटजरलैंड की शासन पद्धति सबसे अधिक स्थायी रही है। दूसरे शब्दों में, वहाँ पर सबसे अधिक राजनीतिक स्थायित्व मिलता है। जबकि चारों ओर युद्ध और अशान्ति का वातावरण फैला है, स्विटजरलैंड ही एक ऐसा देश है जहाँ इन बातों का अधिक से अधिक अभाव है; वह अशान्त समुद्र में एक सुखी द्वीप के समान है। इस दृष्टि से भी भारतीय विद्यार्थियों के लिये स्विटजरलैंड की शासन पद्धति के अध्ययन का विशेष महत्व है।

अन्त में, स्विटजरलैंड का संविधान ऐसा है जिसके लिये प्रायः अनोखे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। कहने को इसका सविधान संघटन (Confederation) है, किन्तु वास्तव में संघात्मक है। इसी देश में बहुल कार्यपालिका है। इसके अतिरिक्त इसके संविधान का आधुनिक संविधानों पर काफी प्रभाव पड़ा है—विशेष रूप से ब्रिटिश उपनिवेशों (Dominions) और जर्मनी के वैमर गणतन्त्र (Weimar Republic) पर; किन्तु यह प्रभाव उनके संविधानों के साधारण रूप पर पड़ा है, न कि विस्तार की बातों पर। प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के तरीकों ने विश्व के विभिन्न संविधानों में स्थान पाया है, यथा आस्ट्रेलिया और सं० रा० अमरीका के राज्यों में कुछ विचारकों ने भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय कार्यपालिका को स्विस कार्यपालिका के नमूने पर बनाने का सुझाव दिया था और अब भी संसद प्रणाली के दोषों को देखते हुए हमारे सामने सं० रा० अमरीका व स्विटजरलैंड की ही पद्ध-तियाँ नमूने के रूप में सामने आती हैं।

२. संविधान की मुख्य विशेषतायें

स्विटजरलैंड की शासन पद्धति की प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन अग्रलिखित है—

(१) लिखित संविधान—स्विटजरलैंड का संविधान लिखित है; वास्तव में संघात्मक शासन एक प्रकार का इकरार होता है जिसका आधार लिखित आलेख होना जरूरी है। स्विटजरलैंड का लिखित संविधान मौलिक रूप में सन् १८४८ में बना था, जिसमें सन् १८७४ में अनेक परिवर्तन किये गये और उसके बाद भी उसमें बहुत से संशोधन हो चुके हैं। इस दृष्टि से स्विटजरलैंड का लिखित संविधान एक सम्मानित आलेख है और केन्द्रीय यूरोप के सबसे पुराने लिखित संविधानों में से एक है। इस संविधान की सबसे बड़ी सफलता इस बात में रही है कि इसके द्वारा स्विटजरलैंड में संघठन के स्थान पर वास्तविक संघ की स्थापना हुई। स्विटजरलैंड के संविधान में १२३ धारायें हैंऔर यह लगभग ३० पृष्ठ में आता है। इस प्रकार यह संविधान सं० रा० अमरीका के संविधान से अधिक लम्बा है और इसमें विस्तार की बातें भी दी गई हैं, जबकि सं० रा० अमरीका का संविधान अति संक्षिप्त है और उसमें कुछ महत्वपूर्ण बातें भी छूट गई हैं। स्विटजरलैंड के संविधान में, भारत के संविधान की तरह बहुत सी अनावश्यक बातें भी सम्मिलित की गई हैं, जैसे शराब के उत्पादन व बिक्री की मनाही, शिक्षा, नागरिक पद का विनियम आदि। प्रधानतः लिखित होते हुए भी अन्य संविधानों की तरह, स्विस संविधान में भी कुछ अलिखित अंश जुड़ गये हैं अर्थात् कुछ चलनों व प्रथाओं का विकास हो गया है। उदाहरण के लिये स्विटजरलैंड की संघीय कौन्सिल में, प्रथा के अनुसार, ज्यूरिच व बर्न जैसे बड़े केन्टनों से, सदा ही एक-एक सदस्य लिया जाता है। दूसरी प्रथा यह है कि उसमें से ५ से अधिक जर्मन भाषा-भाषी केन्टनों के प्रतिनिधि नहीं लिये जाते।

स्विटजरलैंड का लिखित संविधान स्विस संघ का मूलभूत कानून (Fundamental law) है। कानूनी दृष्टि से यह संघ और केन्टनों की सरकारों के लिये सर्वोच्च कानून (Supreme law) होना चाहिये। परन्तु इसकी सर्वोपरिता केवल औपचारिक है, क्योंकि इसकी सर्वोच्चता की रक्षा के लिये अपनाये गये साधन पर्याप्त नहीं हैं। बात यह है कि स्विटजरलैंड की संघीय ट्रिब्यूनल (सर्वोच्च संघीय न्यायालय) को इस सीमा तक तो संविधान की रक्षा का अधिकार है कि किसी भी केन्टन का कानून सविधान का अतिक्रमण न करे, परन्तु उसे संघ सरकार के कानून को अवैध घोषित करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। दूसरे शब्दों में सर्वोच्च न्यायालय को सीमित न्यायिक पुनरवलोकन (Judicial review) की शक्ति प्राप्त है; वह संघीय सरकार के कानूनों के विरुद्ध संविधान की संरक्षक (Guardian of the Constitution) नहीं है। इस प्रकार स्विस संवैधानिक सिद्धान्तों के अनुसार स्विटजरलैंड में, अन्य महाद्वीपीय राज्यों की तरह, विधायी शाखा (Legislative branch) को सर्वोच्च माना जाता है, जबकि सं० रा० अमरीका वभारत में न्यायपालिका की सर्वोच्चता मान्य है।

(२) दुस्संशोध्य संविधान (Rigid Constitution)—सभी संघात्मक संविधान दुस्संशोध्य होते हैं, स्विटजरलेंड का संविधान भी ऐसा ही है, क्योंकि उसमें संशोधन के लिए

एक विशेष प्रक्रिया विहित है। संघात्मक संविधान में संघ व इकाइयों की सरकारों के बीच शक्तियों से वितरण से सम्बन्धित संशोधन संघ व इकाइयों की सरकारों की स्वीकृति से होना चाहिए। स्विटजरलैंड में संशोधनों के लिए ऐसी ही व्यवस्था है। यद्यपि यह सच है कि ३०,००० मतदाता ऐच्छिक लोक-निर्णय के अधिकार के अनुसार साधारण कानून पर भी जनता द्वारा मतदान अर्थात् लोक-निर्णय की मांग कर सकते हैं, किन्तु संवैधानिक संशोधनों से सम्बन्धित कानूनों के लिए लोक-निर्णय अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त संशोधन तभी वैध माने जाते हैं जबकि उन्हें मतदान में भाग लेने वाले मतदाताओं की बहुसंख्या और साथ ही केन्टनों की बहुसंख्या स्वीकार कर ले। इससे यह स्पष्ट है कि संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया साधारण कानून की अपेक्षा अधिक कठिन है।

(३) **संशोधन की प्रक्रिया** (Amending process)—संविधान में संशोधन की पद्धति साधारण कानून के बनाने की प्रक्रिया से, जैसा कि ऊपर बताया गया है, कठिन है, किन्तु सं० रा० अमरीका की तुलना में यह काफी सरल है। स्विटजरलैंड के संविधान में दो प्रकार के संशोधन हो सकते हैं—पूर्ण (Total revision) और आंशिक अर्थात् किन्हीं १–२–४ धाराओं में परिवर्तन। पूर्ण परिवर्तन के लिये संशोधन प्रस्ताव का आरम्भ संघीय कौन्सिल या संघीय एसेम्बली कर सकती है। दोनों ही दशाओं में संशोधन के सम्बन्ध में एसेम्बली में वैसी ही प्रक्रिया का पालन होता है जैसा कि साधारण कानून के लिये विहित है। परन्तु जब संशोधन प्रस्ताव संघीय एसेम्बली द्वारा पास कर दिया जाता है तो संशोधित संविधान पर अनिवार्य रूप से लोक-निर्णय प्राप्त किया जाता है। यह तभी लागू होता है जबकि लोक-निर्णय में भाग लेने वाले मतदाताओं की बहुसंख्या और केन्टनों की बहुसंख्या उसके पक्ष में मत दे। लोक-निर्णय में केन्टन के बहुसंख्यक मतदाताओं के मत को केन्टन का मत समझा जाता है और अर्द्ध-केन्टन का मत आधा माना जाता है। पूर्ण संशोधन के लिये ५०,००० मतदाता भी प्रस्तावाधिकार के अनुसार प्रस्ताव रख सकते हैं। मतदाताओं द्वारा प्रस्ताव अर्थात् याचिका को संघीय एसेम्बली साधारण मतदाताओं के निर्णय के लिये पेश करती है। यदि मतदाताओं का बहुमत उसे स्वीकार करले तो संघीय एसेम्बली नये संविधान का निर्माण करती है और तब उस पर लोक-निर्णय कराया जाता है। संशोधित संविधान मतदाताओं और केन्टनों के बहुमत से स्वीकृत हो जाने पर लागू होता है।

जहाँ तक आंशिक संशोधन का सम्बन्ध है, उसके लिये भी संघीय एसेम्बली, संघीय कौन्सिल और ५०,००० मतदाताओं को पहल करने का अधिकार है। पहली दोनों दशाओं में उसे साधारण कानून की तरह पास किया जाता है और बाद में उस पर लोक-निर्णय कराया जाता है। मतदाताओं द्वारा प्रस्ताव को साधारण भाषा में अथवा पूर्ण विधेयक के रूप में पेश किया जा सकता है। पहली दशा में प्रस्ताव पर संघीय एसेम्बली विचार करने के बाद उसे स्वीकार या अस्वीकार

कर सकती है। यदि वह उसे स्वीकार कर लेती है तो वह उसके अनुसार विधेयक तैयार करती है और उस पर लोक-निर्णय कराती है। यदि एसेम्बली उसे अस्वीकार करे तो भी संघीय कौन्सिल इस प्रश्न पर लोक-निर्णय कराती है कि उस प्रकार का संशोधन किया जाये अथवा नहीं। यदि मतदान में भाग लेने वाले मतदाताओं का बहुमत इस पक्ष में हो कि चाहा संशोधन किया जाये तो संघीय एसेम्बली उसके अनुसार विधेयक तैयार करती है और उस पर लोक-निर्णय कराती है। यदि जनता आंशिक संशोधन के प्रस्ताव को पूर्ण विधेयक के रूप में पेश करती है तो संघीय एसेम्बली उस पर सीधे लोक-निर्णय कराती है।

(४) **गणतन्त्रीय संविधान** (Republican constitution)—जैसा कि गत पृष्ठों में बताया जा चुका है, स्विटजरलैंड का संविधान गणतन्त्रात्मक है, साथ ही यह योरप का सबसे पुराना गणतन्त्रात्मक संविधान है। स्विटजरलैंड के संघीय शासन में राजत्व का कोई स्थान नहीं है। इस दृष्टि से यह संविधान सं० रा० अमरीका और भारत के संविधानों के समान है, किन्तु ब्रिटेन के संविधान से भिन्न है। स्विटजरलैंड के संविधान की धारा ६ में यह प्राविधान है कि संघीय सरकार केन्टनों के संविधानों की संरक्षा की प्रत्याभूति (guarantee) करे, परन्तु केन्टनों के संविधानों के लिये यह आवश्यक है कि वे राजनैतिक अधिकारों का प्रयोग केवल गणतन्त्रीय अर्थात् प्रतिनिध्यात्मक अथवा प्रजातन्त्रात्मक रूपों द्वारा ही करें, सरल शब्दों में, स्विटजरलैंड के संघीय शासन तथा केन्टनों के शासन में राजतन्त्र को नहीं अपनाया जा सकता।[1]

(५) **प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र** (Direct Democracy)—स्विटजरलैंड का संविधान गणतन्त्रात्मक है और राज्य-सत्ता जनता में निहित है। स्विटजरलैंड तथा प्रजातन्त्र कुछ समय से एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हो गये हैं। स्विटजरलैंड में जनता की प्रभुता के सिद्धान्त को अन्य सभी प्रजातन्त्रों से कहीं अधिक व्यावहारिक रूप प्रदान किया गया है। कुछ केन्टनों में तो आज भी प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र प्रचलित हैं और संघ तथा केन्टनों के संविधानों में कानूनों तथा संवैधानिक संशोधनों के बारे में मतदाताओं को लोक-निर्णय (Referendum) एवं प्रस्तावाधिकार (Initiative) की महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं। इन दोनों संस्थाओं को स्विटजरलैंड में इस सीमा तक विकसित किया गया है कि अब उन्हें वास्तव में स्विस संस्थाओं के रूप में समझा जाता है। इन विषयों का विस्तृत विवेचन आगे के अध्यायों में यथास्थान पर किया जायगा।

1. The Federal Constitution prescribes to them (cantons) what is in effect a democratic constitution, for they must provide for manhood and equal suffrage, must be acceptable by the people and must be subject to amendment at any time on demand by the majority. It was resolved that no canton should be a monarchy...'

—*Hans Huber*, How Switzerland is Governed p. 9.

(६) **संविधान में अधिकारों का स्थान**—स्विटजरलैंड के संविधान में विशेष रूप से अधिकार-पत्र का अभाव है। किन्तु संघ व केन्टनों के संविधानों में नागरिकों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को इधर-उधर बिखरी हुई विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत वे सभी सामान्य अधिकार व स्वतन्त्रतायें प्राप्त हैं, जो कि साधारणतया अन्य प्रजातन्त्रों के नागरिकों को प्राप्त होती हैं। नागरिकों के प्रमुख राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकार व स्वतन्त्रतायें निम्न प्रकार हैं :

धारा ४९ के अनुसार सभी नागरिकों को अन्तरात्मा और धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार है; परन्तु इस स्वतन्त्रता के होते हुये भी नागरिकों को आवश्यक नागरिक कर्त्तव्यों, जैसे सैनिक-सेवा का पालन करना पड़ता है। धारा ५५ के द्वारा समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति दी गई है। धारा ४ के अनुसार सभी स्विस नागरिकों को कानून के समक्ष समता का अधिकार (equaliy before law) प्राप्त है। अन्य महत्वपूर्ण अधिकार ये हैं—भाषण की स्वतन्त्रता, संघ बनाने की स्वतन्त्रता, विवाह की स्वतन्त्रता, व्यापार व उद्योग की स्वतन्त्रता, वैयक्तिक और पारिवारिक स्वतन्त्रता। उनका एक महत्वपूर्ण अधिकार यह है कि वे केन्टनों सार्वजनिक स्कूलों में निःशुल्क एवं अ-साम्प्रदायिक प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

हेन्स ह्यूबर के मतानुसार स्विटजरलैंड ही यूरोप महाद्वीप में शायद अकेला देश है, जिसमें व्यक्ति की धार्मिक, बौद्धिक और आर्थिक स्ततन्त्रता की सं० रा० अमरीका के बराबर रक्षा की जाती है और जिसकी कानूनी पद्धति, जहाँ तक स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है, सं० रा० अमरीका से बहुत मिलती है। यदि किसी अधिकार का अतिक्रमण हो तो प्रत्येक नागरिक सर्वोच्च न्यायालय—संघीय ट्रिब्यूनल में शिकायत ले जा सकता है और यदि उसकी शिकायत का आधार उचित हो तो यह भी सम्भव है कि जनता द्वारा स्वीकृत कानून भी गिरा दिया जाए। ये अधिकार भाषायी, धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक अल्पसंख्यकों की बहुसंख्यक अधिनायकशाही के विरुद्ध रक्षा करते हैं।

(७) **स्विटजरलैंड के संविधान के अन्तर्गत नागरिकता और मताधिकार**

नागरिकता—धारा ४३ के अनुसार कोई भी व्यक्ति, जिसे किसी केन्टन की नागरिकता प्राप्त हो, स्विटजरलैंड का नागरिक माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति स्विटजरलैंड का देशीकृत नागरिक (Naturalized citizen) बनना चाहे तो, उसके लिये यह आवश्यक है कि वह पहले किसी कम्यून (स्थानीय समुदाय) और केन्टन का सदस्य बने, तभी उसे केन्टन व संघ की नागरिकता प्राप्त हो सकती है। दूसरे शब्दों में, कोई भी विदेशी स्विटजरलैंड का तब तक नागरिक नहीं बन सकता जब तक उसे कोई कम्यून अपना सदस्य न बना ले।

संघीय संविधान के अन्तर्गत स्विटजरलैंड में प्रत्येक पुरुष को २० वर्ष की आयु पर वयस्क माना जाता है और उसे सैनिक प्रशिक्षण के लिये बुलाया जाता है।

तभी उसे संघ के शासन में भाग लेने के लिए मताधिकार प्राप्त होता है। परन्तु कुछ केन्टनों में विधायिका तथा शासन में भाग लेने के लिए मताधिकार पाने की निम्नतम आयु-सीमा अधिक ऊंची है—कहीं-कहीं २५ वर्ष और २७ वर्ष भी। जिन व्यक्तियों को किन्हीं भी कारणों से उनके केन्टनों द्वारा नागरिक अधिकारों से वंचित किया गया हो वे संघ, केन्टन व कम्यून के चुनावों तथा अन्य मामलों में भी भाग लेने के लिये अयोग्य ठहराये जाते हैं। किसी व्यक्ति को नागरिक अधिकारों से वंचित करने के लिए साधारणतया इसमें से कोई भी आधार हो सकता है—जब नागरिक को संरक्षक के अधीन रखा जाय, वह अपराधी हो या दिवालिया हो अथवा उसने कर न चुकाए हों।

इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि स्विटजरलैंड में अभी तक स्त्रियों को मताधिकार नहीं प्रदान किया गया। नेशनल कौंसिल ने सन् १९५० में भी इस आशय के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। परन्तु घोष के अनुसार, इस जर्मन विश्वास का कि स्त्री का उचित कार्य-क्षेत्र घर है, धीरे-धीरे अन्त हुआ है। स्विस स्त्रियाँ ग्रामीण स्कूल व चर्च के चुनावों में भाग लेती रही हैं। कुछ केन्टनों में अब उन्हें श्रमिक पंच न्यायालयों का सदस्य भी चुना जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव-अधिकार घोषणा-पत्र (Universal Declaration of Rights by the U. N. O. on. Dec. 10, 1948) ने स्त्री-मताधिकार आन्दोलन की प्रगति को बहुत बढ़ाया। स्त्रियों के लिए मताधिकार न होने का यह अर्थ कदापि नहीं था कि स्विटजरलैंड में स्त्रियों की परवाह नहीं की जाती थी अथवा उनके प्रति बुरा व्यवहार किया जाता था। सन् १९७१ के एक संशोधन से स्विटजरलैंड में महिलाओं को भी मताधिकार मिल गया है। सन् १९७२ के आम चुनावों में ११ महिलाओं को संघीय एसेम्बली के निम्न सदन का सदस्य भी चुना गया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि स्विटजरलैंड में मतदान एक कर्त्तव्य है। परन्तु संघ सरकार ने यह दायित्व केन्टनों पर छोड़ा है कि वे मतदान को अनिवार्य बनायें अर्थात उचित कारण बिना मत न देने वालों के लिये दण्ड की व्यवस्था करें। १० केन्टनों में मतदान को अनिवार्य बनाया गया है और वहाँ मतदान का प्रतिशत सबसे ऊंचा है।

(८) **तटस्थता की नीति** (Policy of Neutrality)—सभी लेखकों ने इस बात पर भी जोर दिया है कि स्विटजरलैंड ने स्थायी तटस्थता (Permanent neutrality) की नीति को अपनाया हुआ है और स्विटजरलैंड की सरकार ने उसका अभी तक सफलतापूर्वक पालन किया है। ब्यूएल के अनुसार स्विटजरलैंड की एकता को बनाये रखने में संघात्मक सिद्धान्त के साथ तटस्थता के सिद्धान्त ने भी योग दिया है। मध्य युग में स्विटजरलैंड से यूरोप की बड़ी शक्तियों को किराये के सैनिक मिलते थे; परन्तु बड़ी शक्तियों के झगड़ों में पड़ने से स्विटजरलैंड ने यह अनुभव किया कि तटस्थता की नीति अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण होगी। सन् १८१५ में हुई वियना की कांग्रेस में बड़ी शक्तियों ने उसकी स्थायी तटस्थता को स्वीकार किया।

१८४८ के संविधान में नये सैनिक समर्पणों पर रोक लगा दी और सन् १८५९ से विदेशी शक्तियों के लिए स्विटजरलैंड में सैनिकों की भरती पूर्णतया बन्द है। सन् १९२० से राष्ट्र-संघ ने स्विटजरलैंड की तटस्थता को मान्यता दी और जेनेवा उसका केन्द्र-स्थान बना। दूसरे विश्व-युद्ध में भी स्विटजरलैंड पूर्णतः तटस्थ रहा।

(९) शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त का अभाव—स्विटजरलैंड के शासन में शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त (Doctrine of Separation of Powers) लागू नहीं है। शासन की तीनों प्रमुख शाखाओं का पद न तो सम है और न वे अपने कार्यों में एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं। यथार्थ में, फ़ेडरल एसेम्बली की शक्तियाँ अन्य दोनों शाखाओं से अधिक हैं। यह प्रायः सभी प्रकार के कार्य करती है। कार्यपालिका तो इसके अधीन है; कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच कार्यों का स्पष्ट विभाजन नहीं है। उदाहरण के लिए, फेडरल कौंसिल और फेडरल ट्रिब्यूनल के बीच अधिकार क्षेत्र सम्बन्धी सभी विवादों का निर्णय फेडरल एसेम्बली करती है। फेडरल कौंसिल फेडरल रेलवे प्रशासन और कुछ बातों में केन्टनों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनती है। फेडरल ट्रिब्यूनल को फ़ेडरल एसेम्बली द्वारा पारित कानूनों पर न्यायिक पुनरवलोकन (Judicial review) का अधिकार प्राप्त नहीं है।

(१०) संघात्मक संविधान (Federal Constitution)—स्विटजरलैंड के संविधान की अन्तिम परन्तु अत्यधिक महत्वपूर्ण विशेषता उसका संघात्मक होना है। दूसरे खण्ड में यह बताया गया है कि स्विटजरलैंड में राष्ट्रीयता और संघात्मक संविधान का विकास साथ-साथ हुआ है। सन् १८४८ में ही स्विटजरलैंड ने संघात्मक संविधान स्वीकार कर लिया था, यद्यपि इसका नाम अभी तक 'स्विस कन्फेडरेशन' चल रहा है। सन् १८७४ और बाद के परिवर्तनों से संघ की शक्तियों में वृद्धि हुई है। इस सम्बन्ध में कई बातें विचारणीय हैं। प्रथम, स्विटजरलैंड का संविधान संघात्मक होने के कारण लिखित और दुष्परिवर्तनीय है। उसे स्विटजरलैंड का मूलभूत कानून (fundamental law) माना जाता है, किन्तु जैसा कि लिखित संविधान शीर्षक के अन्तर्गत विवेचन किया गया है, संविधान उस अर्थ में सर्वोपरि कानून नहीं है जिसमें कि सं० रा० अमरीका का संविधान है। इसका कारण यह है कि स्विटजरलैंड में न्यायिक सर्वोपरिता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया। वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय को संघीय विधायिका द्वारा पास किए कानूनों को, यदि वे संविधान का अतिक्रमण भी करें, अवैध घोषित करने की शक्ति अथवा न्यायिक पुनरवलोकन की शक्ति प्राप्त नहीं। इस शक्ति का केवल केन्टनों के कानूनों के विरुद्ध ही प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार संघीय ट्रिब्यूनल को संविधान का निर्वचक (interpreter) और संरक्षक (guardian) नहीं कह सकते।

दूसरे, अन्य संघात्मक संविधानों की तरह स्विटजरलैंड में भी संविधान द्वारा शक्तियों का वितरण किया गया है। ब्राइस के अनुसार संघ और केन्टनों की सरकारों के बीच शक्तियों का वितरण अमरीकी और आस्ट्रेलियन संघों के समान

है । संघ सरकार को स्वतन्त्र केन्टनों से अनेक शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं । इन शक्तियों में मुख्य संघ सरकार की अनन्य शक्तियाँ (exclusive powers) हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया जाता है । संघीय सरकार को वैदेशिक सम्बन्धों पर नियन्त्रण प्राप्त हैं, किन्तु संघ सरकार की स्वीकृति से केन्टन आपस में तथा पड़ौसी राज्यों से सीमा व पुलिस आदि के बारे में समझौते कर सकते हैं । संघीय सरकार ही युद्ध की घोषणा कर सकती है, शान्ति सन्धि कर सकती है और वही राष्ट्रीय सेना का प्रबन्ध करती है । कोई भी केन्टन संघ की आज्ञा के बिना ३०० सैनिकों से अधिक की सेना नहीं रख सकता । एक-दो रेलवे मार्गों को छोड़कर सभी रेल मार्गों का स्वामित्व तथा संचालन संघीय सरकार के हाथों में है । संघीय सरकार सभी संघीय सम्पत्ति का प्रशासन करती है; डाक और तार, कापीराइट, मुद्रा और राष्ट्रीय वित्त, बैंक और आयात व निर्यात महसूल आदि भी संघीय सरकार के अधीन हैं । संघ सरकार का ही जल-शक्ति पर नियन्त्रण है और उसे शराब व बारूद के उत्पादन पर एकाधिकार प्राप्त है । संघ सरकार को वाणिज्य पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है और उसने पूर्ण नागरिक संहिता (complete civil code) का निर्माण किया है । संघ सरकार ही संविधान का अर्थ लगाती है ।

उपर्युक्त अनन्य शक्तियों के अतिरिक्त संघ सरकार को कुछ समवर्ती (concurrent) शक्तियाँ भी प्राप्त हैं अर्थात् संघ सरकार कुछ शक्तियों का प्रयोग केन्टनों की सरकारों के साथ-साथ करती है । इस क्षेत्र में ये विषय सम्मिलित हैं— औद्योगिक दशायें, बीमा, राज्य मार्ग आदि की देख-रेख और समाचार-पत्रों व शिक्षा का विनियम । जब संघ सरकार ऐसे विषयों के बारे में कानून बनाती है तो उसके कानूनों को केन्टनों के कानूनों के ऊपर मान्यता मिलती है । भारत के संविधान में इन शक्तियों की सूची काफी बड़ी है । संविधान की धारा ४२ के अनुसार संघ सरकार की आय के स्रोत ये हैं—(१) डाक, तार, टेलीफोन आदि संघीय सम्पत्ति से आय; (२) रेलवे; (३) संघीय आयात और निर्यात महसूल; (४) बारूद के एकाधिकारी उत्पादन; (५) सैनिक सेवा से मुक्त व्यक्तियों पर केन्टनों द्वारा लगाए गए करों का आधा भाग; और (६) केन्टनों पर उनसे धन, जनसंख्या और साधनों की दृष्टि से संघ सरकार द्वारा निर्धारित अंशदान । सं० रा० अमरीका की तरह स्विटजरलैंड की संघीय सरकार भी नागरिकों पर प्रत्यक्ष कर नहीं लगा सकती ।

तीसरे, **संघ सरकार की शक्तियों में वृद्धि के कारण**—उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि संघ सरकार की शक्तियाँ काफी व्यापक हैं । किन्तु स्विटजरलैंड में स्पष्ट और निहित शक्तियों का अन्तर (distinction between express and implied powers) महत्वहीन है । संक्षेप में, संघीय शक्तियों में वृद्धि के कारण ये रहे हैं— (१) राष्ट्रीय एकता के लिए वृद्धिपूर्ण इच्छा के साथ-साथ केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति में विकास हुआ । स्विटजरलैंड में राष्ट्रवाद और पड़ोसी राज्यों में एकीकरण के

प्रभाव से गत वर्षों में केन्द्रीय शक्ति में बड़ी वृद्धि हुई है। (२) परिवहन के साधनों में सुधार, व्यापार और उद्योग की आवश्यकताओं और आर्थिक संकटों के दौरान में एकरूप तथा कुशल आर्थिक नीति की आवश्यकता ने केन्द्रीय शक्ति के विस्तार में योग दिया है। (३) दोनों विश्व-युद्धों के दौरान में भी संघीय सरकार की शक्तियों में बड़ी वृद्धि हुई। सन् १९१४ में और विशेष रूप से सन् १९३९ में संघीय एसेम्बली ने संघ सरकार को देश की सुरक्षा, एकता व तटस्थता की रक्षा के हेतु अनेक असाधारण शक्तियाँ प्रदान कीं। जब युद्ध समाप्त हुआ तो संघ सरकार की शक्तियों का विस्तार फिर कम हुआ, किन्तु पुरानी सीमा तक नहीं अर्थात् पहले की अपेक्षा कुछ शक्तियाँ बढ़ी हुई रहीं।

(४) ह्वीयर के अनुसार समाजवादी विचारधारा ने भी संघीय शासन के क्षेत्राधिकार को बढ़ाया है। हाल ही में संघीय सरकार को सामाजिक विधायन (social legislation) के क्षेत्र में संविधान से व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इसी के परिणामस्वरूप एक ओर तो प्रजातन्त्र की भावना बलवती हुई है और दूसरी ओर उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की माँग भी होने लगी है। (५) संघीय सरकार की शक्तियों में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि संघीय ट्रिब्यूनल को संघ सरकार के कानूनों पर न्यायिक पुनरवलोकन की शक्ति प्राप्त नहीं है। इसके अभाव में जब कभी भी संघ सरकार ने कोई ऐसा कानून बनाया जो संविधान का अतिक्रमण करने वाला हो तो भी केन्टनों को उसके विरुद्ध अपने अधिकारों की रक्षा हेतु न्यायालय में जाने का अधिकार नहीं है। अतएव संघ सरकार के लिए अपनी शक्तियों की सीमा से बाहर जाना कठिन नहीं है।

प्रश्न

१. स्विटजरलैंड की शासन पद्धति के अध्ययन का क्या महत्व है ?

२. स्विटजरलैंड की शासन पद्धति की मुख्य विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

३. स्विटजरलैंड के संघात्मक संविधान में संघ और केन्टनों का क्या स्थान है ? उनके बीच शक्तियों का विवरण किस प्रकार हुआ है ?

४. स्विटजरलैंड में संशोधन की विधि का वर्णन कीजिए।

५. निम्नलिखित को समझाकर लिखिए—

(अ) स्विटजरलैंड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र है।

(ब) स्विटजरलैंड का संविधान संघात्मक है।

(स) स्विटजरलैंड का संविधान संघात्मक होते हुए भी सर्वोपरि नहीं है।

(द) स्विटजरलैंड का संविधान दुस्संशोध्य (tigid) है।

३. संघीय शासन

१. विधायिका—फेडरल एसेम्बली

फेडरल एसेम्बली (Federal Assembly) संघ सरकार की विधायिका है और इसके दो सदन हैं—**नेशनल कौंसिल**, जो जनता का प्रतिनिधित्व करती है और **कौंसिल ऑफ स्टेट्स**, जो केन्टनों का प्रतिनिधित्व करती है। दोनों सदनों की रचना निम्न प्रकार है—

नेशनल कौंसिल (National Council)—सन् १९५१ के संशोधन के अनुसार इस सदन के कुल सदस्यों की संख्या १९६ है और साधारणतया एक सदस्य २२ हजार से लेकर २४ हजार तक जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता है। प्रतिनिधियों का चुनाव पुरुष मताधिकार (manhood suffrage) के आधार पर होता है। मतदाता अपने प्रतिनिधियों को प्रत्यक्ष रीति से गुप्त मतदान द्वारा चुनते हैं। प्रत्येक पुरुष स्विस नागरिक, जिसकी आयु कम से कम २० वर्ष हो और जिसे केन्टन के मताधिकार से वंचित न किया गया हो, नेशनल कौंसिल के चुनाव में भाग ले सकता है। प्रत्येक केन्टन और अर्द्ध-केन्टन एक निर्वाचन-जिला होता है। केन्टनों को २४,००० जनसंख्या के पीछे १ प्रतिनिधि के हिसाब से स्थान मिले हैं, किन्तु जिनकी जनसंख्या इससे भी कम है, उन्हें एक-एक स्थान मिला है।

चुनावों के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional representation) पद्धति का प्रयोग होता है। जिन केन्टनों को केवल १ स्थान प्राप्त है, वहाँ आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति का पालन नहीं किया जा सकता। शेष केन्टनों में सूची पद्धति (List system) के अनुसार चुनाव होता है। प्रत्येक बड़ा केन्टन २, ३, ४ या अधिक प्रतिनिधि चुनता है। बर्न और ज्यूरिच दो बहुत बड़ी जनसंख्या वाले केन्टन हैं और उन दोनों को कुल स्थानों के लगभग १/३ स्थान प्राप्त हैं। प्रत्येक केन्टन में विभिन्न दलों को डाले गए मतों के अनुपात में स्थान मिलते हैं। प्रत्येक मतदाता को उतने ही मत प्राप्त होते हैं, जितने उस निर्वाचन-क्षेत्र से प्रतिनिधि चुने जाने हों। विभिन्न सूचियों में से वह किसी एक सूची के पक्ष में मत देता है। सूची में सभी या कम स्थानों के लिए उम्मीदवारों के नाम दिए जा सकते हैं। चुनाव प्रति ४ वर्ष में अक्तूबर मास के अन्तिम रविवार को होते हैं। यदि अपने कार्यकाल के बीच में नेशनल कौंसिल का कोई सदस्य त्याग-पत्र दे दे या किसी सदस्य की मृत्यु हो जाए, तो उसी केन्टन से न चुना गया वह उम्मीदवार, जो उस सूची में अगले स्थान पर हो, रिक्त स्थान को भरता है। अतः स्विटजरलैंड में उप-चुनाव की आवश्यकता नहीं पड़ती।

कौंसिल ऑफ स्टेट्स (Council of States)—प्रत्येक केन्टन २ और प्रत्येक अर्द्ध-केन्टन १ प्रतिनिधि इस सदन में भेजता है। अर्द्ध-केन्टन वह होता है जिसे

द्वितीय सदन में एक प्रतिनिधि भेजने तथा संघीय संविधान के संशोधन पर हुए लोक-निर्णयों में केवल आधा मत प्राप्त होता है। केवल तीन केन्टन २–२ अर्द्ध-केन्टनों में विभाजित हैं। विभिन्न केन्टनों में प्रतिनिधियों का चुनाव भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। कुछ केन्टनों में इन प्रतिनिधियों का चुनाव उनकी वड़ी कौंसिलें (Great Council—Legislatures) करती हैं अर्थात् अप्रत्यक्ष ढंग से होता है। अन्य केन्टनों में ये प्रतिनिधि मतदाताओं द्वारा चुने जाते हैं, और लैंड्स-जमींडे वाले केन्टनों में प्रतिनिधियों का चुनाव लैंड्सजमींडे करती हैं। कौन व्यक्ति प्रतिनिधि वन सकते हैं, इस वारे में भी केन्टनों के अपने-अपने कानून हैं। इसके अतिरिक्त सदस्यों का कार्य-काल भी केन्टनों के कानूनों द्वारा विनियमित होता है। अधिकतर केन्टनों में प्रतिनिधियों का कार्य-काल ४ वर्ष है, कुछ दूसरों में ३ वर्ष और कुछ में केवल १ ही वर्ष है।

इन बातों से यह स्पष्ट है कि स्विटजरलैंड में कौंसिल ऑफ स्टेट के सदस्यों की निर्वाचन प्रणाली सं० रा० अमरीका से कई बातों में भिन्न है। सं० रा० अमरीका (और भारत) में द्वितीय सदन के सदस्यों की निर्वाचन प्रणाली और उनका कार्य-काल संघीय सविधान तथा कानून द्वारा विनियमित हैं। सं० रा० अमरीका की सीनेट और भारत की राज्य-सभा के १/३ सदस्यों का चुनाव प्रति दो वर्ष वाद होता है।

नेशनल कौंसिल की सदस्यता के लिए कोई विशेष अर्हता आवश्यक नहीं है; उम्मीदवार मतदाता होना चाहिए। परन्तु संविधान के अनुसार चर्च पादरी अथवा चर्च अधिकारी उसकी सदस्यता के लिए नहीं खड़े हो सकते। कौंसिल ऑफ स्टेट की सदस्यता के लिए विभिन्न केन्टनों के अपने-अपने कानून हैं; उन्हीं के अनुसार चर्च पादरियों और केन्टन अधिकारियों को सदस्य वनने का अधिकार या न वनने की मनाही है। कोई एक व्यक्ति एक समय में दोनों सदनों का सदस्य नहीं रह सकता। फेडरल एसेम्वली का कोई सदस्य संघ सरकार का अधिकारी नहीं रह सकता; यद्यपि कौंसिल ऑफ स्टेट के सदस्य केन्टनों की सरकार में पदाधिकारी हो सकते हैं।

सदनों का संगठन (Organisation of the Houses)—दोनों ही सदन एक-एक सभापति (President) और उप-सभापति (Vice-President) चुनते हैं। सभापतियों को सं० रा० अमरीका के प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष (Speaker) की तरह कोई विशेष अधिकार अथवा शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं, वे सदन की वैठकों का सभापतित्व करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर निर्णायक मत (casting vote) दे सकते हैं, फिर भी उनका पद सम्मानित है। साधारण नियम यह है कि सभापति विभिन्न दलों व केन्टनों से समय-समय पर क्रमवार चुने जाते हैं। धारा ८२ के अनुसार कौंसिल ऑफ स्टेट के सभापति और उप-सभापति का चुनाव सदस्यों में से प्रत्येक सत्र के लिए होता है; परन्तु यह अभिसमय (convention) पड़ गया है कि

वे एक वर्ष तक अपने पदों पर रहें। नेशनल कौंसिल के सभापति और उप-सभापति के लिए *व्यवस्था इस प्रकार है—कोई सभापति अगले वर्ष सभापति अथवा उप-*सभापति नहीं चुना जा सकता और कोई एक व्यक्ति दो वर्ष तक लगातार उप-सभापति नहीं रह सकता। संविधान के अनुसार तो इस सदन के सभापति और उप-सभापति का चुनाव भी प्रत्येक सत्र के लिए होना चाहिए; परन्तु अभिसमय के अनुसार उनका चुनाव भी एक वर्ष की अवधि के लिए होता है।

सत्र (Sessions) आदि—स्विटजरलैंड की फेडरल एसेम्बली प्रतिवर्ष, नियम के अनुसार नियत दिन, साधारण सत्र के लिए एकत्रित होती है। नेशनल कौंसिल के १/४ सदस्यों अथवा ५ केन्टनों की प्रार्थना पर फेडरल कौंसिल उसका असाधारण सत्र बुला सकती है; परन्तु ऐसा सत्र बहुत ही कम होता है। दोनों सदनों का सत्रावसान और विघटन उनके समवर्ती प्रस्तावों से होता है न कि कार्यपालिका के आदेश से, जैसा कि भारत और ब्रिटेन में होता है (The two chambers may be prorogued or dissolved by their own concurrent resolutions)। दोनों सदनों में गणपूर्ति के लिए बहुसंख्या की उपस्थिति आवश्यक है और निर्णय मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के बहुमत से होते हैं। सघीय एसेम्बली के प्रतिवर्ष साधारणतया चार सत्र होते हैं और एसेम्बली कुल मिलाकर *वर्ष में १०—१२ सप्ताह कार्य करती है। सदस्यों को विभिन्न भाषाओं में बोलने का* अधिकार है, परन्तु सरकारी आलेख केवल तीनों राज-भाषाओं (जर्मन, फ्रेंच और इटेलियन) में ही प्रकाशित होते हैं, क्योंकि एक चौथी राष्ट्रीय भाषा है, किन्तु वह राजभाषा नहीं है। सदस्य अपने-अपने स्थान से खड़े होकर बोलते हैं। सदनों में सदस्यगण दलीय आधार पर अथवा सरकारी और विरोधी पक्ष में नहीं बैठते, वे निर्वाचन जिलों अथवा केन्टनों के अनुसार बैठते हैं। सदस्यों को प्रश्न पूछने (interpellation) का अधिकार है, किन्तु फेडरल एसेम्बली में फ्रांस की तरह प्रश्नों से उत्पन्न वाद-विवाद के आधार पर मन्त्रिमण्डल में विश्वास और अविश्वास का प्रस्ताव नहीं उठता।

दोनों सदनों के बीच सम्बन्ध (Relation between the two Chambers)—फेडरल एसेम्बली के दोनों सदनों की शक्तियाँ पूर्णतया बराबर हैं। अन्तर यह है कि जब दोनों सदनों की संयुक्त बैठक होती है, तो वे बड़े सदन के भवन में एकत्रित होते हैं और नेशनल कौन्सिल का सभापति संयुक्त बैठक का सभापतित्व करता है। कोई भी कानून अथवा प्रस्ताव तब तक पास नहीं होता जब तक कि दोनों सदन उसे स्वीकार न करलें। दोनों सदनों में से किसी एक को दूसरे पर किसी भी बात में प्राथमिकता प्राप्त नहीं; बजट सम्बन्धी मामलों में भी दोनों की शक्तियाँ पूर्णतः सम हैं। प्रत्येक सत्र के आरम्भ में दोनों सदनों के सभापति सहमति के आधार पर कार्य-विभाजन कर लेते हैं। उदाहरण के लिये, प्रथानुसार जब साधारण बजट

पर नेशनल कौन्सिल में वाद-विवाद होता है तो कौन्सिल आफ स्टेट में संघीय रेलों के बजट पर वाद-विवाद होता है।

यदि किसी विचाराधीन विषय पर दोनों सदनों के बीच मत-भेद उत्पन्न हो जाय, तो उस प्रश्न को दोनों सदनों के बराबर सदस्यों की पंचसमिति (arbitration-committee) को सुपुर्द कर दिया जाता है। यदि फिर भी कोई सहमति-पूर्ण समझौता नहीं हो पाता तो उस प्रश्न को समाप्त कर दिया जाता है। गतिरोध बहुत ही कम होते हैं और जब कभी मत-भेद उत्पन्न हुआ है दोनों सदनों का मान्य समझौता सम्भव हुआ। ऐसे अवसर आये हैं जब कि कौंसिल आफ स्टेट ने नेशनल कौंसिल की बात मान ली है और उससे बढ़कर राष्ट्रीयता का परिचय दिया है।[1] वास्तव में अधिकतर राज्यों के द्वितीय सदनों से कौंसिल आफ स्टेट एक बात में भिन्न है। यह उनकी तरह प्रथम सदन से अधिक अनुदारवादी (conservative) नहीं है। कोई भी उसे प्रतिक्रिया का गढ़ या उन्नति के पहिये पर ब्रेक नहीं कह सकता।

फेडरल एसेम्बली की शक्तियाँ (Powers of the Federal Assembly)—धारा ७१ के अनुसार फेडरल एसेम्बली जनता और केन्टनों के अधिकारों के अधीन संघ की सर्वोच्च सत्ता का प्रयोग करती है। दोनों सदनों को उन सभी विषयों पर मननात्मक और विधायी (deliberative and legislative) शक्तियाँ प्राप्त हैं जो संघ के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं और जिन्हें विशेष रूप से अन्य किसी संघीय अधिकारी (Federal authority) को नहीं सौंपा गया है। इन विषयों में ये सम्मिलित हैं—संघीय अधिकारियों के चुनाव, वेतन और कार्य-काल से सम्बन्धित मामले; संघीय संस्थाओं का संगठन; विदेशी राज्यों से समझौते और संधियां; देश की प्रतिरक्षा; संघीय संविधान को लागू करना; संघीय सेना; रेलें, आय और व्यय आदि। इस प्रकार संघीय एसेम्बली का मुख्य कार्य संघीय विषयों पर कानून बनाना, प्रशासन के बारे में रिपोर्ट लेना व उसकी आलोचना करना और संवैधानिक प्रश्नों का निर्णय करना है।

फेडरल एसेम्बली सभी संघीय कानूनों और अध्यादेशों (Ordinances) को पास करती है, इनमें वे कानून भी सम्मिलित हैं जिनका सम्बन्ध वार्षिक बजट और लेखों से हो। इसके अतिरिक्त फेडरल एसेम्बली सभी संघीय और संवैधानिक संशोधनों पर भी मतदान करती है। अतएव उसकी विधायी शक्तियाँ असाधारण रूप से पूर्ण हैं। इस विषय में घोष ने लिखा है—'यदि संवैधानिक संशोधनों पर दृष्टि

1. 'In Switzerland there has always been a very happy adjustment and cordial understanding between the two houses. Occasions are not rare when the Council of States has not only gladly given way to the demands of the National Council but has proved more national than the others.'

—*R. C. Ghosh*, The Government of the Swiss Republic. p. 73.

डालें तो पता लगेगा कि समय बीतने के साथ संघीय कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है, यहाँ तक कि स्विटजरलैंड में एक पुलिस राज्य का उच्च केन्द्रीयकृत सामाजिक-सेवा राज्य ने स्थान ले लिया है।" विधायी क्षेत्र मे ब्रूयस कहता है, स्विटजरलैंड की, संघीय सरकार की शक्तियाँ सं० रा० अमरीका की सरकार से अधिक व्यापक हैं।

फेडरल एसेम्बली के कार्यपालिका और प्रशासनिक क्षेत्र में भी कुछ महत्वपूर्ण कार्य हैं। इनमें से ये मुख्य हैं—फेडरल कौंसिल के सदस्यों, फेडरल ट्रिब्यूनल के न्यायाधीशों, नागरिक सेवा के चांसलर अथवा अस्थायी अध्यक्ष और युद्ध की दशा अथवा युद्ध के खतरे में सर्वोच्च सेनापति का निर्वाचन करना; युद्ध की घोषणा करना, सामूहिक क्षमादान (to proclaim amnesties) घोषित करना; संघीय कानूनों के विरुद्ध अपराधों को क्षमा करना, केन्टनों के संविधानों की प्रत्याभूति देना (to guarantee the cantonal constitutions), संघीय सेना समाप्त करना और संघीय नागरिक सेवा एवं संघीय ट्रिब्यूनल की देख-रेख करना।

अन्त में, फेडरल एसेम्बली की कुछ न्यायिक शक्तियाँ भी हैं, जिनमें ये उल्लेखनीय हैं—यह जनता की याचिकाओं पर निर्णय करती है; कुछ प्रकार के प्रशासनिक विवादों (administrative disputes) में यह फेडरल कौंसिल के निर्णय के विरुद्ध अपीलें सुनती है; और संघीय प्राधिकारियों के बीच अधिकार-क्षेत्र सम्बन्धी विवादों पर न्यायिक निर्णय देती है। इनके अतिरिक्त संघीय एसेम्बली न्यायिक कार्यों की देख-रेख भी करती है।

कार्य-प्रणाली (Procedure)—निम्नलिखित कार्यों को करने के लिये संघीय एसेम्बली एकात्मक निकाय (unitary body) की तरह कार्य करती है अर्थात् दोनों सदन संयुक्त बैठक में ये कार्य करते हैं—(१) कार्यपालिका, न्यायिक और संघ के अन्य अधिकारियों को चुनने की शक्ति का प्रयोग करते समय, (२) सामूहिक क्षमादान तथा साधारण क्षमादान जारी करने की शक्ति का प्रयोग करते समय, और (३) अधिकार क्षेत्र सम्बन्धी विवादों का निर्णय करते समय। अन्य सभी कार्यों को करने के लिये दोनों सदन अलग-अलग बैठते हैं। दोनों सदनों के सामने अधिकांश कार्य फेडरल कौंसिल से आता है; क्योंकि उसका यह कर्त्तव्य है कि वह प्रशासन के बारे में अनेक रिपोर्टें एसेम्बली के सामने प्रस्तुत करे और उसका यह विशेषाधिकार भी है कि वह विधि-निर्माण में पहल करे। विधि-निर्माण में पहल करने का विशेषाधिकार दोनों सदनों और उनके सदस्यों को भी प्राप्त है। सिद्धान्त रूप में केन्टनों को भी यह विशेपाधिकार प्राप्त है।

किसी निजी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव के दो रूप हो सकते हैं—**पोस्ट्यूलेट** (Postulate) अथवा **मोशन** (Motion)। पोस्ट्यूलेट की स्वीकृति के लिये पेश किये जाने वाले सदन का बहुमत ही आवश्यक है और यह एक प्रकार की फेडरल कौंसिल के प्रार्थना होती है कि वह उस आशय के विधायी प्रस्ताव का

प्रारूप तैयार करे, किन्तु फेडरल कौंसिल को यह विवेकीय शक्ति प्राप्त है कि वह ऐसा करे या न करे। परन्तु मोशन के पास होने के लिये दोनों सदनों का बहुमत उसके पक्ष में होना आवश्यक है और उसके पास होने पर फेडरल कौंसिल के लिये यह आवश्यक है कि वह उसके अनुसार विधेयक का प्रारूप तैयार करके संघीय एसेम्वली में लाये इस से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक दशा में, विधायी पहल की शक्ति चाहे जहाँ निहित हो, कार्यपालिका को ही यथार्थ में विधेयकों के प्रारूप तैयार करने और उन्हें फेडरल एसेम्बली में पेश करने के विशेषाधिकार का एकाधिकार प्राप्त है।

समितियों का प्रयोग—दोनों ही सदनों में कार्यक्रम के अधिकतर प्रश्नों को पहले समितियों के सुपुर्द कर दिया जाता है। समितियों में सभी दलों का प्रतिनिधित्व रहता है। जब ये समितियाँ एकमत निर्णय पर पहुँचती हैं तो वे एक रिपोर्टर चुनती हैं, जो उनके दृष्टिकोण को सम्पूर्ण सदन के सामने रखता है। महत्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में दो रिपोर्टर नियुक्त किये जाते हैं, उनमें से एक जर्मन और दूसरा फ्रांसीसी भाषा बोलने वाला होता है। जब कोई मामला महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ प्रवादमय भी होता है, तो समितियाँ बहुमत और अल्पमत रिपोर्ट देती हैं, जिनके लिये अलग-अलग रिपोर्टर होते हैं। चूंकि कौंसिल ऑफ स्टेट में सदस्यों की संख्या बहुत कम है, इसलिये प्रत्येक सदस्य के पास दूसरे सदन के सदस्य की तुलना में अधिक सीमित कार्य होता है।

दोनों सदनों में वाद-विवाद के समय पूर्ण व्यवस्था कायम रहती है। सदस्यों का व्यवहार बड़ा शिष्ट और एक दूसरे के प्रति सम्मानपूर्ण होता है, दोनों सदन शान्त वातावरण में कुशलतापूर्वक कार्य करते हैं (The proceedings of the Houses are marked by gravity, dignity and business-like efficiency)। **मनरो और अयर्स्ट** के अनुसार फेडरल एसेम्बली में प्रक्रिया की चार विशेषतायें ये हैं—(१) दोनों सदनों में अधिकतर विधेयक एक साथ पेश होते हैं। (२) विधेयकों के प्रारूप तैयार करने और पेश करने में प्रधान प्रभाव फेडरल कौंसिल का रहता है। (३) दोनों अपना बहुत-सा कार्य समितियों द्वारा करते हैं। (४) दोनों सदनों में विधायी मतभेद बहुत कम होते हैं।

समालोचना—स्विटजरलैंड की फेडरल एसेम्बली की समालोचना हम निम्न-लिखित दो शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे—

रचना के सम्बन्ध में—प्रथम, नेशनल कौंसिल के सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार होता है। इसके गुण और दोष दोनों ही हैं, जिनका अति संक्षिप्त विवेचन यहाँ दिया जाता है। **गुण**—(१) नेशनल कौंसिल में जनता के विभिन्न मतों का भली प्रकार प्रतिनिधित्व होता है; अल्पमतों को भी उचित प्रतिनिधित्व मिलता है। फलतः वहाँ पर उन दोषों का अभाव है जो कि ब्रिटेन व भारत जैसे देशों में एकल-निर्वाचन क्षेत्रों की पद्धति के कारण उत्पन्न होते हैं। (२) स्विटजरलैंड में यह पद्धति फ्रांस व इटली आदि राज्यों की तुलना में अधिक

सफल रही है। इस पद्धति ने चुनाव में न्याय की भावना को पैदा किया है और लोक-निर्णय की बुराइयों को कम करने में बड़ा योग दिया है, क्योंकि लोक-निर्णय में निर्णय बहुमत से होते हैं। दोष—(१) आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के परिणामस्वरूप कार्यपालिका अनिवार्यतः कमजोर होती है, क्योंकि इसका आधार समझौता होता है। परन्तु स्विटजरलैंड में मिली-जुली कार्य-पालिका होते हुए भी वह स्थिर रहती है, क्योंकि वहाँ पर कार्यपालिका के सदस्यों को विरोधी बहुमत के कारण पद-त्याग नहीं करना पड़ता। (२) इस पद्धति के कारण अतिवादी मतों का भी शासन पर प्रभाव पड़ता है, जिसके फलस्वरूप देश कमजोर होता है।

दूसरे, चूँकि स्विटजरलैंड में स्त्रियों को मताधिकार नहीं मिला, नेशनल कौंसिल के चुनाव में केवल १/४ भाग से भी कम जनता भाग लेती है। इस प्रकार कानून बनाने का कार्य उसी भाग के प्रतिनिधियों के हाथ में है; यद्यपि स्विटजरलैंड के निवासी यह समझते हैं कि वे प्रजातन्त्र में रहते हैं। तीसरे यह बड़ी सराहनीय बात है कि कौंसिल ऑफ स्टेट के सदस्य केन्टनों के प्रतिनिधि होते हैं और उन्हें वहीं से वेतन मिलता है, फिर भी वे अपने-अपने केन्टनों के प्रवक्ता (Spokes men) नहीं होते। यह सच है कि संविधान फेडरल एसेम्बली के सभी सदस्यों के लिये इस बात की मनाही करता है कि वे किसी से आदेश लें अर्थात अपने निर्वाचकों के आदेशानुसार कार्य करें।

शक्तियों के सम्बन्ध में—जैसा कि पहले बताया जा चुका है फेडरल एसेम्बली नागरिकों और केन्टनों के अधिकारों के अधीन सर्वोच्च सत्ता का प्रयोग करती है। इसके कानून बनाने की शक्तियाँ काफी विस्तृत और व्यापक हैं; और इसे अन्य प्रकार की शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। विधायी क्षेत्र में इसकी शक्तियाँ संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस से अधिक व्यापक हैं, क्योंकि संविधान के अन्तिम निर्वचन का अधिकार भी एसेम्बली में निहित है। परन्तु दूसरी दृष्टि से उसकी शक्तियाँ कम भी हैं, क्योंकि इसकी कानूनी शक्ति के ऊपर लोक-निर्णय व प्रस्तावाधिकार की दुधारी तलवार लटकी रहती है। जबकि अन्य राज्यों, विशेषकर कनाडा, आस्ट्रेलिया व भारत में दूसरे सदन की शक्तियाँ प्रथम से बहुत कम हैं, किन्तु स्विटजरलैंड ही (सोवियत संघ को छोड़कर) ऐसा अकेला राज्य है जहाँ दोनों सदनों की शक्तियाँ पूर्णतया सम हैं। इस दृष्टि से स्ट्रांग के अनुसार स्विटजरलैंड की फैडरल एसेम्बली अनोखी है।[1] उसका यह भी कहना है कि कौंसिल आफ स्टेट्स सच्चे अर्थ में न तो संघीय सदन (federal chamber) है और न ही यह दूसरा सदन है। चूँकि यदि यह संघीय सदन होता तो इसका कुछ कार्य राज्यों के हितों की रक्षा करना अवश्य

1. 'The Swiss legislature, like the Swiss executive, is unique, it is the only legislature in the world the powers of whose Upper House are in no way different from those of the lower.'
—*C F. Strong*, Modern Political Constitutions p. 206,

होता; और यदि यह दूसरा सदन होता तो इसे निम्न सदन द्वारा पारित विधेयकों को दोहराने या उन पर प्रतिषेध (veto) का कुछ अधिकार मिला होता।

यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि स्विटजरलैंड में कार्यपालिका के सदस्यों का चुनाव एसेम्बली करती है और वे उसके कार्य में मन्त्रियों की तरह से भाग लेते हैं, किन्तु बहुमत विरोध में होने पर भी उन्हें पद-त्याग नहीं करना होता।[1] इस दृष्टि से स्विटजरलैंड की विधायिका ब्रिटेन व सं० रा० अमरीका की विधायिकाओं से भिन्न है। फिर भी कार्टर और हर्ज का मत है कि 'स्विटजरलैंड में शायद सबसे अधिक सच्ची सांसद पद्धति (truest parliamentary system) है, क्योंकि उसकी संसद (Federal Assembly) को ही सभी प्रकार के महत्वपूर्ण निर्णय करने की शक्ति प्राप्त है और कार्यपालिका तो उसकी एक समिति है, जिसकी अपनी कोई आकांक्षायें नहीं हैं। परन्तु सिद्धान्त रूप में यह सच होते हुए भी कि फेडरल एसेम्बली फेडरल कौंसिल की रचना करती है और उस पर नियन्त्रण भी; व्यवहार में, फेडरल कौंसिल की प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ़े हैं। रेपर्ड ने लिखा है कि 'फेडरल एसेम्बली के सभी विशेषाधिकारों के बावजूद, नेतृत्व स्पष्टतः फेडरल कौंसिल के हाथों में आ गया है।'[2]

अन्त में, ब्राइस के अनुसार साधारण स्विस सदस्य में कई व्यक्तिगत गुण पाये जाते हैं। वह ठोस, चतुर और अ-भावुक होता है। वह प्रश्नों के प्रति व्यावहारिक और सामान्य बुद्धि अथवा मध्य वर्गीय व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाता है। व्यक्तियों के इन गुणों ने स्विटजरलैंड की राष्ट्रीय विधायिका को विशेष गुण प्रदान किया है। स्विटजरलैंड की विधायिका संसार की विधायिकाओं में सबसे अधिक कार्य कुशल विधायी निकाय (business-like legislative body) है और अपना कार्य शांति-पूर्वक करती है। विधायिका में तैयार अथवा आलंकारिक भाषणों का प्रयोग नहीं किया जाता; बोलने वालों को बीच-बीच में करतल ध्वनि अथवा अन्य प्रकार से रोका नहीं जाता। सदस्यगण एसेम्बली की बैठकों में समय पर और नियमित रूप से उपस्थित रहते हैं।

२. कार्य-पालिका—फेडरल कौन्सिल

ब्राइस के मतानुसार फेडरल कौंसिल स्विटजरलैंड की संस्थाओं में से एक वह संस्था है, जिसका अध्ययन किया जाना सर्वाधिक उचित है।[3] स्विटजरलैंड की

1. 'Parliamentary criticism of the government, however, does not lead to resignation of the Federal Council or of any of its members, nor does it impair the stability of the government in any way'
—*F. M. Marx (ed)* Foreign Governments, p. 377.
2. 'To-day, inspite of all the Constitutional prerogatives of the Federal Assembly, the lead has clearly passed into the hands of the Federal Council.' —*W. E. Reppord*, The Government of Switzerland, p 56
3. 'The Federal Council (Bundesrath) is one of the institutions of Switzerland that best deserves study.'
—*J. Bryce*, Modern Democracies. V. I. p. 393.

सामूहिक कार्यपालिका, जिसे बहुल कार्यपालिका (plural executive) भी कहते हैं, आधुनिक प्रजातन्त्र की सबसे अधिक आकर्षक राजनीतिक संस्थाओं में से एक है।[1]

फेडरल कौन्सिल की रचना—इसमें ७ सदस्य होते हैं, जिनको फेडरल एसेम्बली दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में निर्वाचित करती है। इनका कार्य-काल ४ वर्ष होता है, यदि इनकी अवधि पूर्ण होने से पूर्व ही नेशनल कौंसिल का विघटन न हो जाय। संविधान के अनुसार फेडरल एसेम्बली के सदस्य कौंसिल के सदस्य नहीं बन सकते; परन्तु व्यवहार में यदि एसेम्बली का सदस्य कौंसिल के लिये चुन लिया जाता है तो वह एसेम्बली की सदस्यता से त्यागपत्र दे देता है। सदस्यों का साधारणतया पुनर्निर्वाचन हो जाता है, फलत: कोई व्यक्ति एक बार उसका सदस्य चुने जाने पर प्राय: तब तक फिर से निर्वाचित हो जाता है जब तक कि वह चाहे। सन् १८४८ से १९३७ तक केवल १६ व्यक्ति फेडरल कौंसिल के सदस्य चुने गये।

सदस्यों के निर्वाचन के बारे में दो अलिखित कानूनों—अर्थात् प्रथाओं का पालन हुआ है। प्रथम, तीन महत्वपूर्ण केन्टनों—बर्न, ज्यूरिच और वॉद के एक-एक प्रतिनिधि सदा ही फेडरल कौंसिल में सदस्य चुने जाते हैं। दूसरा, जर्मन-भाषी केन्टनों से ५ से अधिक सदस्य नहीं लिये जाते। रेपर्ड के मतानुसार इन प्रथाओं ने फेडरल कौंसिल में प्रादेशिक प्रतिनिधित्व से सम्बन्धित स्थायी तथा अस्थायी सदस्यों की पेचीदा और कठिन समस्या का अच्छा हल निकाला हैं।

फेडरल कौंसिल के सदस्य संघ अथवा केन्टनों की सरकार के आधीन अथवा निजी प्रकार का अन्य कोई पद नहीं धारण कर सकते और न ही अन्य व्यवसाय कर सकते हैं। फेडरल कौंसिल अर्थात् कार्यपालिका के सदस्यों को एसेम्बली के दोनों सदनों में स्थान प्राप्त है और उन्हें उनकी कार्यवाही में भाग लेने का भी अधिकार है, किन्तु चूँकि ये उनके सदस्य नहीं होते, इसलिये उन्हें किसी भी प्रश्न पर मतदान में भाग लेने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इस समय प्रत्येक सदस्य को ८०,००० फ्रैंक वार्षिक वेतन मिलता है। यह पहले की अपेक्षा अधिक है, किन्तु देश के आर्थिक स्तर को देखते हुये ऊँचा नहीं है। इसी कारण फेडरल कौंसिल के सदस्य बहुत शान से नहीं रहते और न ही वे अधिक व्यय करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जब एक सदस्य से यह पूछा गया कि वह तृतीय श्रेणी में क्यों यात्रा करता था तो उसने उत्तर दिया कि चूँकि वहाँ चौथी श्रेणी नहीं है। जब वह सदस्य सन् १९१२ में जर्मन कैसर से मिलने गया तो उसने बहुत सुन्दर पोशाक न पहनी हुई थी, क्योंकि स्विटजरलैंड में इसे असाधारण बात समझा जाता है।

1. 'The collegial executive of Switzerland is one of the most striking political institutions in modern democracy.'

फेडरल कौंसिल के प्रधान और उपप्रधान (President and Vice President of the Federal Council)—फेडरल एसेम्बली प्रति वर्ष फेडरल कौंसिल के सदस्यों में से एक को सभापति और दूसरे को उपसभापति नियुक्त करती है। कौंसिल का सभापति ही स्विस संघ का प्रधान (President of the Confederation) होता है। संविधान में स्पष्ट रूप से इस बात की मनाही की गई है कि प्रधान या उपप्रधान का पुनर्निर्वाचन (Re-election) हो। परन्तु चलन के अनुसार उपप्रधान अगले वर्ष प्रधान चुन लिया जाता है। इस प्रकार दोनों पदों पर कोई सदस्य स्थायी रूप से नहीं रहता। यद्यपि संघ के प्रधान अथवा राष्ट्रपति पद की विशेष प्रतिष्ठा है, फिर भी प्रधान को केवल कुछ औपचारिक विशेषाधिकार ही प्राप्त हैं उनमें से मुख्य ये हैं—(१) वह राज्य के भीतर तथा वैदेशिक सम्बन्धों में राज्य का ध्वज-धारी (titular) अध्यक्ष होता है : (२) वह फेडरल कौंसिल की बैठकों मे सभापति रहता है। (३) उसे फेडरल कौंसिल की बैठकों में आवश्यकता पड़ने पर निर्णायक मत देने की शक्ति प्राप्त है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त उसकी कोई महत्वपूर्ण संवैधानिक शक्तियां नहीं हैं। वह अन्य राज्यों के अध्यक्षों की तरह न तो अधिकारियों को नियुक्त करता है, न उसे विधेयकों पर प्रतिषेध का अधिकार है और न ही वह कूटनीतिक वार्ता चलाता है। उसकी वास्तविक शक्तियाँ तो केवल फेडरल कौंसिल के सदस्य के रूप में एक विभाग का अध्यक्ष होने के नाते हैं। प्रधान को वर्ष में अन्य सदस्यों से १०,००० फ्रेंक अधिक वेतन और ५,००० फ्रेंक अतिथियों आदि के सत्कार हेतु मिलते हैं। घोष के अनुसार स्विस निवासी राजतन्त्री व अधिनायकतंत्री विचारों के विरोधी हैं। उपप्रधान कौंसिल की बैठकों का सभापतित्व तब करता है जबकि प्रधान उपस्थित न हो।

फेडरल कौंसिल की शक्तियाँ और उसके कार्य—इसकी शक्तियाँ, जैसा कि होना ही चाहिये कार्यपालिका और प्रशासन सम्बन्धी हैं, किन्तु इसे कुछ शक्तियाँ, विधायी व न्यायिक क्षेत्रों में भी प्राप्त हैं। विभिन्न प्रकार की शक्तियों का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है:—

कार्यपालिका शक्तियाँ—स्विस संघ की सर्वोच्च कार्यपालिका सत्ता होने के नाते फेडरल कौंसिल वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन करती है, कानूनों को लागू करती है, सेना का नियन्त्रण करती है और उन सभी संघीय अधिकारियों को नियुक्त करती है, जिनकी नियुक्ति संविधान के अनुसार फेडरल एसेम्बली द्वारा नहीं की जाती। फेडरल कौंसिल ही प्रति वर्ष संघ सरकार का बजट तैयार करती है और यही बजट वित्त विभाग के अध्यक्ष कौन्सिलर द्वारा बाद में एसेम्बली के दोनों सदनों के सामने पेश किया जाता है। वही कौंसिलर सदनों में उसे समझाता है और उसके पक्ष में तर्क देता है। बजट पास हो जाने पर फेडरल कौंसिल उसके अनुसार आय एकत्रित कराने और व्यय की देख-रेख करने के लिये उत्तरदायी है। कौंसिल प्रति वर्ष सदनों

के सामने विदेशी तथा आन्तरिक मामलों के बारे में भी रिपोर्ट पेश करती है और इस रिपोर्ट पर दोनों सदन ध्यानपूर्वक विचार करते हैं।

विधायी शक्तियाँ—जैसा कि पहले खण्ड में बताया जा चुका है सदनों के सामने आने वाले विधेयक कौंसिल ही तैयार करती है। एसेम्बली के सदस्य तो केवल 'पोस्ट्यूलेट' या 'मोशन' ही पेश करते हैं, जिनके अनुसार विधेयक तैयार कराना कौंसिल का महत्वपूर्ण कार्य है। वास्तव में, विधेयकों के प्रारूप कानूनी विशेषज्ञों द्वारा बनाये जाते हैं। फेडरल एसेम्बली द्वारा पास किया गया कोई भी विधेयक ऐसा नहीं होता जिस पर कौंसिल ने पहले विचार न किया हो। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि फेडरल कौंसिल के सदस्यों को विधि-निर्माण पर कोई प्रतिषेध जैसी शक्ति प्राप्त है; क्योंकि कभी-कभी तो उन्हें एसेम्बली के सदस्यों की प्रार्थना पर ऐसे विधेयक भी तैयार करने होते हैं, जिन्हें कौंसिल स्वयं स्वीकार न करती हो और वे कभी-कभी पास भी हो जाते हैं। फेडरल कौंसिल विधि-निर्माण में सक्रिय भाग लेती है, परन्तु यदि इसका परामर्श न माना जाये तो वह बुरा नहीं मानती। कौंसिल के सदस्य अपने अभिमान की परवाह नहीं करते और विधायिका के निर्णय अथवा इच्छा का पालन करते हैं।[1] जैसा किसी ने कहा है, स्विटजरलैंड की फेडरल कौंसिल तो कानूनी परामर्शदाता के समान है, जिसका परामर्श लिया जाता है, परन्तु यदि वह परामर्श माना न जाये तो उसे अपना पद त्यागने की आवश्यकता नहीं है। इनके अतिरिक्त, फेडरल कौंसिल को फेडरल कानूनों को लागू करने के लिये बहुत से विनियम (Regulations) निकालने पड़ते हैं।

न्यायिक शक्तियाँ—फेडरल कौंसिल को कुछ न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। पहले तो फेडरल कौंसिल ही संवैधानिक कानूनों से सम्बन्धित प्रश्नों के बारे में उठने वाले विवादों अथवा प्रवादों का निर्णय किया करती थी, किन्तु काफी वर्ष पूर्व यह कार्य संघीय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आ गया। पहले फेडरल कौंसिल संघ के मुख्य प्रशासनिक न्यायालय का भी कार्य करती थी, किन्तु इस क्षेत्र में भी अब इसका अधिकार-क्षेत्र बहुत सीमित रह गया है। सन् १९१४ के संवैधानिक संशोधन द्वारा प्रशासनिक न्याय के लिए एक संघीय न्यायालय की रचना की व्यवस्था की गई थी। बाद में ऐसा न्यायालय तो स्थापित नहीं किया गया परन्तु यह अधिकार क्षेत्र भी नियमित संघीय न्यायालय को सौंप दिया गया है। वही अब सार्वजनिक अधिकारियों के विरुद्ध व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली शिकायतों पर निर्णय करता है।

इस समय कौंसिल के न्यायिक कार्य, संक्षेप में ये हैं—(१) केन्टनों द्वारा आपस में किए गए समझौतों अथवा केन्टनों और पड़ौसी राज्यों के बीच किए गए

1. 'They pocket their pride and obey the will of the legislative bodies with as much grace as they can muster.'
—*W. B. Munro*, Governments of Europe, p 783.

समझौतों की यह इस दृष्टि से परीक्षा करती है कि वे संविधान के विरुद्ध तो नहीं हैं। (२) कौंसिल संघीय प्रशासनिक विभागों के विरुद्ध व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली अपीलें तथा संघीय रेलवे प्रशासन के विरुद्ध की जाने वाली अपीलों को भी सुनती है। (३) निम्नलिखित बातों के बारे में केन्टनों के निर्णयों के विरुद्ध भी इसे अपीलीय अधिकार-क्षेत्र प्राप्त हैं—(अ) प्रारम्भिक स्कूलों में धार्मिक आधारों पर होने वाले भेद-भाव; (आ) केन्टनों के चुनाव; (इ) व्यापार, पेटेण्ट आदि के सम्बन्ध में उठने वाले मत-भेद आदि।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संघीय कौंसिल की शक्तियाँ बहुत विस्तृत हैं, परन्तु जैसा ब्राइस ने कहा है, कानूनी दृष्टि से कौंसिल फेडरल एसेम्बली की सेवक है यद्यपि व्यवहार में यह लगभग उतना ही प्रभाव डालती है जितना कि ब्रिटिश केबिनेट। यह एसेम्बली का नेतृत्व भी काफी करती है और उसके निर्णयों का पालन भी। यह साधन होने के साथ साथ एसेम्बली की मार्ग-दर्शक भी है और बहुधा विधेयकों को सुझाव देती है और उनके प्रारूप भी तैयार करती है।[1] कौंसिल एसेम्बली के अधीन है (Executive is subordinate to the Legislature)। इस विषय में कोई मतभेद नहीं है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि कौंसिल सार्वजनिक मामलों पर कोई प्रभाव नहीं रखती।

एसेम्बली अधिकतर विधेयकों के लिए पहल करने का अधिकार कौंसिल को देती है और कौंसिल ही शासन का संचालन करती है, ये बातें कौंसिल को सार्वजनिक नीति की दिशा निर्धारित करने के अवसर हैं। कौंसिल के प्रभाव को बढ़ाने वाला एक कारण उसके सदस्यों का लम्बा कार्य-काल भी है। अन्त में, यह भी ध्यान रहना चाहिए कि स्विटजरलैंड उस वर्तमान विश्व-व्यापी प्रवृत्ति स बचा नहीं रह सकता, जिसके अनुसार सभी राज्यों में कार्यपालिका की शक्तियाँ सुदृढ़ हो रही हैं। इस सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि सन् १९३९ में राष्ट्रीय प्रतिरक्षा कानून के अन्तर्गत फेडरल एसेम्बली ने कौंसिल को देश की प्रतिरक्षा, स्वतन्त्रता और तटस्थता की रक्षा के लिए सभी आवश्यक पग उठाने की शक्ति प्रदान की थी। उसके अधीन कभी-कभी कौंसिल ने अध्यादेश जारी करके व्यक्तियों के निजी अधिकारों को भी विनियमित किया।

स्विस कार्यपालिका की विशेषतायें (Characteristics)—इसकी विभिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न विशेषताओं पर बल दिया है। हम यहाँ उनका संक्षिप्त विवेचन देते हैं। (१) स्विटजरलैंड की कार्यपालिका सच्चे अर्थ में सामूहिक कार्य है। इसके

1. 'Legally the servant of the Legislature, it exerts in practice almost as much authority as the English, and more than do some French Cabinets, so that it may be said to lead as well to follow. It is a guide as well as an instrument, and often suggests as well as drafts measures.'
—*J. Bryce*, op. cit., p. 3?7.

सातों सदस्यों की वास्तविक शक्तियाँ बराबर हैं और उनमें कोई भी प्रधानमन्त्री नहीं है। सभापति अथवा प्रधान को एक वर्ष के लिए चुना जाता है और उसे केवल कुछ औपचारिक शक्तियाँ प्राप्त हैं।[1] (२) स्विटजरलैंड में, ब्रिटेन की तरह, ध्वजधारी और वास्तविक कार्यपालिक जैसा भेद नहीं है। स्विटजरलैंड की फेडरल कौंसिल वास्तविक कार्यपालिका है, प्रत्येक सदस्य एक संघीय विभाग का अध्यक्ष होता है। स्विटजरलैंड में कौंसिल का प्रधान संघ का सरकारी अध्यक्ष (Official head) है। (३) स्विटजरलैंड में कार्यपालिका शासन की अन्य दोनों शाखाओं से स्वतन्त्र व पृथक् नहीं है। वास्तव में, स्विटजरलैंड में सं० रा० अमरीका की तरह से शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त को लागू नहीं किया गया। फेडरल कौंसिल संघीय विधायिका की सेवक है और उसके प्रति उत्तरदायी है। परन्तु स्विटजरलैंड में उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को उस अर्थ में नहीं समझा जाता जिसमें कि उसे ससदीय पद्धति वाले राज्यों में समझा जाता है।

(४) स्विटजरलैंड की फेडरल कौंसिल भारत तथा ब्रिटेन की तरह से केबिनेट अथवा मन्त्रिपरिषद् नहीं है। यह फेडरल एसेम्बली के प्रति उत्तरदायी होती है, किन्तु विरोध में बहुमत होने पर भी पद त्याग नहीं करती। अन्य राज्य की मन्त्रि-परिषदों की तरह स्विस फेडरल कौंसिल के सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों प्रकार के कृत्य हैं। इसकी नियमित रूप से बैठक होती है और निर्णय बहुमत से होते हैं। प्रधान को सभी प्रश्नों पर मत देने का अधिकार है और यदि किसी प्रश्न पर बराबर मत हों तो वह अतिरिक्त मत भी दे सकता है; परन्तु फेडरल कौंसिल मान्य अर्थ में ब्रिटेन जैसी केबिनेट नहीं है। इसके सदस्य एक दल तथा सामान्य राजनीतिक कार्यक्रम से नहीं बंधे होते, वास्तव में वे कई दलों के प्रतिनिधि होते हैं। यह साधारण अर्थ में मिली-जुली सरकार (Coalition government) भी नहीं होती, क्योंकि इसका कोई भी सदस्य बहुमत निर्णय का विरोधी होते हुए भी त्याग-पत्र नहीं देता। वास्तव में फेडरल कौंसिल के सदस्य, केबिनेट की तरह, संयुक्त उत्तरदायित्व (Collective or joint responsibility) के सिद्धान्त से नहीं बँधे हैं। इसके सदस्य एकमत निर्णय भी करते हैं, परन्तु यदि निर्णय बहुमत से होता है तो विरोधी मत वाले सदस्य अपना विरोध प्रकट कर सकते हैं और उन्हें त्याग-पत्र देना आवश्यक नहीं है।

(५) इसमें ब्राइस के अनुसार ब्रिटिश केबिनेट और अमरीकन कार्यपालिका की कुछ बातों का मेल है, परन्तु यह दोनों से भिन्न है, क्योंकि इसका कोई विशेष दलीय स्वरूप नहीं है। ब्युएल के अनुसार अमरीका की अध्यक्षात्मक और फ्रांस व

1. 'The Swiss Federal Council is truly a collegial executive. There is no Prime Minister. The President is no *primus inter pares*, no leader who selects, appoints or dismisses his colleagues He is certainly no *inter stella luna minoris*. The Councillors are all alike in power and position.'

—*R C. Ghosh, op. cit.*, p. 80.

इंगलैंड की सांसद पद्धतियों के बीच में होने के कारण स्विटजरलैंड की कार्यपालिका सत्ता न तो राजा, न राष्ट्रपति और न प्रधानमन्त्री में निहित है। सत्ता ७ सदस्यों के आयोग में, जिसे फेडरल कौंसिल कहते हैं, निहित है।[1] स्विटजरलैंड की कार्यपालिका की संवैधानिक स्थिति और उसके कार्य बड़े सराहनीय हैं। इसमें ब्रिटिश केबिनेट पद्धति के लाभ तो हैं किन्तु हानियाँ नहीं हैं। स्विटजरलैंड में कार्यपालिका और विधायिका के बीच वैसा ही सहयोग है जैसा कि सांसद पद्धति मे होता है। परन्तु जबकि केबिनेट में एक ही बहुसंख्यक दल या मिले-जुले दलों (Coalition) के सदस्य होते हैं, इसमें उन सभी प्रमुख दलों के प्रतिनिधि रहते हैं जो मिलकर एक सामान्य कार्यक्रम को स्वीकार करते हैं। अतएव इस प्रकार की कार्यपालिका पद्धति में विपक्ष (Opposition) के लिए स्थान नहीं है। वास्तव में यह तो सभी मतों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक पक्ष-विहीन निकाय है। इसी कारण लॉवेल ने इसे राष्ट्रीय सरकार की मुख्य कमानों और सन्तुलन चक्र (main spring and balance wheel of the national government) कहा है। इसका दूसरा बड़ा लाभ इसका स्थायित्व (stability) है, जो अमरीकी कार्यपालिका की विशेषता है। परन्तु उसमें वह कमी नहीं जो कि अमरीका में पाई जाती है अर्थात् कार्यपालिका और विधायिका के बीच मतभेद और खिचाव।

(६) सबसे महत्वपूर्ण विशेषता स्विटजरलैंड की कार्यपालिका का स्थायित्व है। फेडरल कौन्सिल की यह विशेषता संविधान की देन है; क्योंकि स्विटजरलैंड में कभी भी मन्त्रिमण्डल का संकट उत्पन्न नहीं हो सकता। इस स्थायित्व के कारण शासन और प्रशासन का कार्य बिना रुकावट वृहत् दृष्टिकोण से चलता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि फेडरल कौंसिल के सदस्य बड़े अनुभवी होते हैं और अपना कार्य व्यावसायिक कुशलता से करते हैं। बात यह है कि वे अपने पदों पर साधारणतया दो या अधिक अवधि के लिए चुने जाते हैं।

३. न्यायपालिका—फेडरल ट्रिब्यूनल

विशेषतायें—प्रथम स्विटजरलैंड में केवल एक ही संघीय न्यायालय है, जिसे 'फेडरल ट्रिब्यूनल' (Federal Tribunal) कहते हैं। यह स्विटजरलैंड की सर्वोच्च न्यायालय है, जिसकी वर्तमान रूप में स्थापना सन् १८४७ में हुई। इस दृष्टि से स्विटजरलैंड की न्यायपालिका सं० रा० अमरीका की न्यायपालिका से भिन्न है। स० रा० अमरीका में न्यायालयों की दुहरी व्यवस्था है—एक ओर संघीय कानूनों के अनुसार न्याय करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय और उसके आधीन जिला व

1. 'Falling midway between the American presidential system and the parliamentary system of France and England, the executive authority of Switzerland rests neither in king president or prime minister but in a Commission of seven men known as the Bundesrat or federal council . .'
—*R. L. Buell (ed.). Democracy Governments in Europe, p. 574.*

सर्किट न्यायालय हैं और दूसरी ओर राज्यों की अपनी-अपनी न्याय व्यवस्था है। परन्तु स्विटजरलैंड में संघीय न्यायालय केवल एक ही है; नीचे के स्तरों पर केन्टनों के न्यायालय हैं, जो संघीय कानूनों को भी लागू करते हैं। इस प्रकार स्विटजरलैंड में न्याय की एकता (Unity of Justice) है। इस दृष्टि से वहाँ की तथा भारत की न्यायपालिका में बड़ी समानता है; क्योंकि भारत में भी सर्वोच्च न्यायालय के अधीन राज्यों में उच्च और जिला न्यायालय हैं, जो एक ही पद्धति में संगठित (Integrated) हैं, अन्तर की बात यह है कि भारत के उच्च न्यायालय एकरूप हैं, जबकि स्विटजरलैंड के केन्टनों के न्यायालय उनके अपने संविधानों के अन्तर्गत स्थापित हैं।

दूसरी, स्विटजरलैंड में फ्रांस की तरह, प्रशासनिक कानून (Administrative law) की पद्धति है, जो ब्रिटेन, भारत और सं० रा० अमरीका से भिन्न है। जबकि इन देशों में सभी व्यक्तियों के लिए एक ही प्रकार के कानून व न्यायालय हैं, स्विटजरलैंड में सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध मुकदमों की सुनवाई के लिए प्रशासनिक कानून और न्यायालय हैं। तीसरी, हेन्सह्यूबर के मतानुसार स्विटजरलैंड में भी न्याय का प्रशासन वैसे ही स्वतन्त्र और निष्पक्ष है, जैसे कि इंगलैंड और सं० रा० अमरीका में।[1] चौथी और सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि फेडरल ट्रिब्यूनल फेडरल एसेम्बली के कानूनों को अवैध घोषित नहीं कर सकती, यद्यपि यह केन्टनों के कानूनों और उनके संविधानों को संघीय सविधान के विरुद्ध अथवा उससे असंगत होने पर अवैध घोषित कर सकती है। इस प्रकार फेडरल ट्रिब्यूनल को न्यायिक पुनरवलोकन का सीमित अधिकार प्राप्त है।[2]

फेडरल ट्रिब्यूनल को फेडरल एसेम्बली द्वारा पारित कानूनों को अवैध घोषित करने का अधिकार तो है ही नहीं; संविधान के अनुसार उसका यह भी एक विशिष्ट कर्त्तव्य है कि वह सभी संघीय कानूनों को वैध मानकर उन्हें लागू करे। इस प्रकार देखने से ही पता लगता है कि स्विटजरलैंड में न्यायपालिका तथा संविधान की सर्वोपरिता (supermacy) नहीं है। परन्तु व्यवहार में ऐसी बात नहीं है कि फेडरल एसेम्बली की संविधान के ऊपर सर्वोपारिता हो। यथार्थ में, उसे संविधान के भीतर रहकर ही कार्य करना पड़ता है। यदि फेडरल एसेम्बली संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण करे तो जनता उस कार्य में हस्तक्षेप करे अपनी सत्ता को मनवाने और संविधान की पवित्रता की रक्षा के लिए कार्य कर सकती

1. 'Swiss administration of justice is characterized by the same independence and impartiability as Anglo-American.'
—*Hans Huber*, How Switzerland is Governed, p. 63.

2. 'The Supreme Court does have a limited right of judicial review over cantonal constitutions and laws that violate the federal constitution or laws.' —*F. M. Marx* (ed), Foreign Governments, p 379.

है। संविधान में किसी भी प्रकार का संशोधन (revision) जनता की सहमति से ही हो सकता है और जनता किसी भी साधारण कानून को जिसे एसेम्वली ने पास कर दिया हो जनमत द्वारा अवैध घोषित कर सकती है।

ट्रिब्यूनल में न्यायाधीशों के अतिरिक्त ११ से लेकर १३ तक अन्य पूरक न्यायाधीशों (Alternates or supplementary judges) के चुनाव के लिये भी व्यवस्था है। फेडरल एसेम्बली न्यायाधीशों में से एक को प्रधान और दूसरे को उप-प्रधान भी नियुक्त करती है; जिनकी अवधि २-२ वर्ष होती है। संघीय एसेम्बली ६ असेसरों और फौजदारी मुकदमों के लिये ज्यूरी भी चुनती है। न्यायाधीश अपने कार्यकाल में न तो किसी अन्य पद को धारण कर सकते हैं और न वे अन्य व्यवसाय ही कर सकते हैं। कोई भी ऐसा नागरिक जो नेशनल कौंसिल की सदस्यता के लिये योग्य हो न्यायाधीश चुना जा सकता है।

फेडरल ट्रिब्यूनल का संगठन—फेडरल ट्रिब्यूनल में इस समय २५-२८ न्यायाधीश रहते हैं। इन न्यायाधीशों का चुनाव ६ वर्ष की अवधि के लिये फेडरल एसेम्वली द्वारा किया जाता है। संविधान के अनुसार फेडरल एसेम्वली के लिये यह आवश्यक है कि न्यायाधीशों में तीनों ही राज-भाषाओं का प्रतिनिधित्व हो। प्रथा के अनुसार न्यायाधीशों में केन्टनों और राजनीतिक समूहों का भी प्रतिनिधित्व होता है। यद्यपि न्यायाधीशों का कार्यकाल ६ वर्ष है, फिर भी प्रथा यह पड़ गई है कि न्यायाधीशों को फिर से चुन लिया जाता है और वे अपने पदों पर तब तक रह सकते हैं जब तक वे चाहें। इसलिये यथार्थ में न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता के लिये पूर्ण व्यवस्था है। फेडरल ट्रिब्यूनल का मुख्य स्थान लॉसेन (Lausanne) है, जो फ्रैंच भाषा-भाषी क्षेत्र में स्थित है। बात यह है कि संविधान निर्माताओं ने फ्रैंच भाषा-भाषी केन्टनों के भावों का ध्यान रखकर ऐसा किया। वे यह चाहते थे कि फ्रैंच भाषा-भाषी केन्टनों में भी संघीय शासन के एक सर्वोच्च अंग का स्थान रहे।

फेडरल ट्रिब्यूनल का अधिकार-क्षेत्र जैसा कि आगे बताया जायेगा विभिन्न प्रकार का है। अतएव यह चार आगारों में बैठता है—चेम्बर आफ एक्यूजेशन (The Chamber of Accusation), फेडरल पीनल कोर्ट (Federal Penal Court), दी क्रिमीनल चेम्बर और दी कोर्ट आफ केसेशन। प्रत्येक न्यायाधीश को ३०,००० फ्रैंक प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ऐसे न्यायाधीश को जो कम से कम १० वर्ष तक फेडरल ट्रिब्यूनल का न्यायाधीश रहा हो, पद से निवृत होने पर लगभग वेतन से आधी पेन्शन भी मिलती है।

फेडरल ट्रिब्यूनल का अधिकार-क्षेत्र—एक आधार पर फेडरल ट्रिब्यूनल को मौलिक अथवा प्राथमिक (Original) और अपीलीय (Appellate) अधिकार-क्षेत्र प्राप्त है। संघीय संहिताओं में सम्मिलित अधिकांश साधारण दीवानी व फौजदारी कानूनों का प्रशासन केन्टनों और अर्द्ध केन्टनों के न्यायालयों द्वारा किया जाता है। इन न्यायालयों के ऊपर फेडरल ट्रिब्यूनल को पुनरवलोकन का केवल सीमित

अधिकार प्राप्त है; क्योंकि केन्टनों के न्यायालयों से ऐसे दीवानी मुकदमों की अपीलें फेडरल ट्रिब्यूनल में जा सकती हैं जिनमें ऊँची मालियत के प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों (Civil cases involving a relatively large sum being appealable to it)। अन्य सभी मामलों में फेडरल ट्रिब्यूनल का अधिकार-क्षेत्र मौलिक अथवा प्राथमिक है, जिसका वर्णन निम्नलिखित है—

दीवानी मुकदमों में (In civil cases)—इसके सामने ऐसे सभी दीवानी मुकदमे आते हैं जिनका सम्बन्ध संघ और केन्टनों तथा विभिन्न केन्टनों के बीच उठने वाले विवादों से हो। इसमें ऐसे भी मुकदमे आते हैं जिन्हें कोई व्यक्ति संघ अथवा किसी केन्टन की सरकार के विरुद्ध दायर करे और उनमें अन्तर्ग्रस्त मालियत ४,००० फ्रैंक से अधिक है।

फौजदारी मुकदमों में (Incriminal cases)—इसका अधिकार-क्षेत्र ऐसे सभी मुकदमों तक विस्तृत है जिनका सम्बन्ध देशद्रोह (Treason against the Federation) संघीय अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह और हिंसा (revolt or violence against federal authority) तथा राष्ट्रों के कानून के विरुद्ध दण्डनीय अपराधों (Penal offences against the law of nations) से हो। ऐसे मुकदमों की सुनवाई ज्यूरी की सहायता से की जाती है। फौजदारी के मुकदमे सुनने के लिये ट्रिब्यूनल समय-समय पर देश के ५ विभिन्न केन्द्रों में बैठती है। (The tribunal holds assizes from time to time)। एसाइज न्यायालय में ट्रिब्यूनल के ३ न्यायाधीश ज्यूरी के १२ सदस्यों के साथ मुकदमों की सुनवाई करते हैं। सन् १८४२ से राजनीतिक अपराधों तथा सामान्य कानूनों के विरुद्ध अपराधों के लिये मृत्यु-दण्ड का अन्त हो गया है; परन्तु युद्ध काल में सैनिक कानूनों के अन्तर्गत अब भी मृत्युदण्ड दिया जा सकता है।

सीमित संवैधानिक अधिकार-क्षेत्र (Limited constitutional jurisdiction)—यह ऐसे अधिकार क्षेत्र सम्बन्धी विवादों का निर्णय करती है जो केन्टनों और संघ के अधिकारियों के बीच उठें। इसके सामने निम्नलिखित प्रकार के मुकदमें भी आते हैं—जो सार्वजनिक कानून सम्बन्धी विवाद केन्टनों के बीच उठें, नागरिक के अधिकारों के अतिक्रमण सम्बन्धी शिकायतें और सार्वजनिक कानूनों के बारे में केन्टनों के बीच उठने वाले। विवाद सभी मामलों में ट्रिब्यूनल केन्टनों के संविधानों के विरुद्ध संघीय संविधान की और केन्टनों के साधारण कानूनों व आज्ञाप्तियों के विरुद्ध केन्टनों के संविधानों को मान्यता देती है।

सीमित प्रशासनिक अधिकार-क्षेत्र (Limited administrative jurisdiction)—यह ऐसे विवादों में निर्णय देती है, जिनका सम्बन्ध सार्वजनिक अधिकारियों की न्यायिक क्षमता (legal competence) से हो। यह रेलों से सम्बन्धित मामलों में प्रशासनिक विवादों को भी सुनती है।

निष्कर्ष— स्विटजरलैंड की फेडरल ट्रिब्यूनल को संघीय कानूनों के ऊपर न्यायिक पुनरवलोकन का अधिकार नहीं है। संघीय कानूनों की संवैधानिकता का निर्णय ट्रिब्यूनल नहीं करती, जबकि सं० रा० अमरीका व भारत के सर्वोच्च न्यायालयों को यह महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त है। इसी कारण सं० रा० अमरीका में सर्वोच्च न्यायालय संविधान का संरक्षक कहलाता है और उनका बड़ा महत्व है। इस अन्तर के परिणामस्वरूप, जैसा कि रेपर्ड ने कहा है, स्विटजरलैंड की ट्रिब्यूनल को अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय जैसी प्रतिष्ठा और स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है।[1] ब्राइस के मतानुसार भी स्विटजरलैंड के संघीय शासनतन्त्र में न्यायपालिका अमरीका अथवा आस्ट्रेलिया कॉमनवैल्थ से कम महत्वपूर्ण अंग है। परन्तु स्विटजरलैंड में संघात्मक शासन-पद्धति, फेडरल ट्रिब्यूनल का संवैधानिक अधिकार-क्षेत्र सीमित होते हुए भी सफल रही है। यह तथ्य इस सिद्धान्त की काट करता है कि जब तक कानूनी संवैधानिकता अथवा नागरिकों व केन्टनों के अधिकारों की रक्षा के लिये सर्वोच्च न्यायालय न हो संघात्मक शासन सुचारु रूप से नहीं चल सकता।[2]

प्रश्न

१. स्विटजरलैंड की फेडरल एसेम्बली की रचना और शक्तियों का वर्णन कीजिये।

२. फेडरल एसेम्बली के दोनों सदनों का संगठन किस प्रकार होता है? उनमें विधायी प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।

३. फेडरल एसेम्बली के दोनों सदनों का पारस्परिक सम्बन्ध बताइये। उनके बीच मतभेद कैसे दूर किया जाता है?

४. स्विटजरलैंड की बहुल कार्यपालिका की विशेषताओं का आलोचनात्मक विवेचन कीजिये।

५. फेडरल कौंसिल की रचना और शक्तियों का वर्णन कीजिये।

६. फेडरल एसेम्बली और फेडरल कौंसिल के बीच सम्बन्ध बताइये। फेडरल कौंसिल ब्रिटिश और अमरीकन केबिनेट से किन बातों में भिन्न है।

७. 'फेडरल कौन्सिल की रचना में ब्रिटिश और अमरीका की केबिनेट पद्धतियों के गुणों का मेल है'? इस मत को समझाइये।

८. स्विटजरलैंड में संघीय न्यायपालिका की मुख्य विशेषताओं का विवेचन कीजिये।

९. फेडरल ट्रिब्यूनल के संगठन और अधिकार क्षेत्र का वर्णन कीजिये।

१०. स्विटजरलैंड में संघीय न्यायपालिका का क्या स्थान है? क्या यह सं० रा० अमरीका की न्यायपालिका से भिन्न और कम महत्वपूर्ण है? सकारण उत्तर दीजिये?

1. 'On the other hand the Federal Tribunal...has never enjoyed the prestige and independence of the American Supreme Court.'
   —*W. E Rappard,* The Government of Switzerland, p. 91.

2. 'The Swiss constitutional practice, thus. disproves the theory that a Federation cannot function properly unless there is a Supreme Court to determine the constitutionality of laws or defend the rights of the cantons and the people against Federal encroachments.'
   —*R. C. Ghosh,* op., cit, p. 106.

४. शासन के अन्य महत्वपूर्ण पहलू

१. केन्टनों का शासन

परिचयात्मक—स्विटजरलैंड के संघ की इकाइयों को केन्टन कहते हैं। संघ में उनका वही स्थान है जो सं० रा० अमरीका में विभिन्न राज्यों का है। यथार्थ में, स्विटजरलैंड के निवासियों के लिये तो संघ (Confederation) केन्टनों का संगठन अथवा संघ है और वास्तविक राज्य (States) केन्टन हैं। बहुत से केन्टनों में तो कार्यपालिका को कौंसिल आफ स्टेट कहते हैं, जो कि संघ की विधायिका के दूसरे सदन का नाम है। बात यह है कि स्विटजरलैंड के औसत नागरिक के राजनैतिक जीवन में केन्टन और कम्यून का संघ से अधिक महत्व है। वह संघ का नागरिक बनने से पूर्व किसी कम्यून व केन्टन का नागरिक होता है।[1] संघीय संविधान ने इस प्राथमिकता को धारा ४३ में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है; जिसके अनुसार केन्टन का प्रत्येक नागरिक स्विटजरलैंड का नागरिक है।

प्रत्येक केन्टन का अपना संविधान है और संघीय संविधान में केन्टनों को 'प्रभुत्वपूर्ण केन्टन' (Sovereign Cantons) कहा गया है। वे उस सीमा तक प्रभुत्व-पूर्ण हैं जहाँ तक कि उनकी प्रभुता को संघीय संविधान सीमित नहीं करता। वास्तव में, सं० रा० अमरीका के विभिन्न राज्यों की तरह संघ के निर्माण से पूर्व केन्टन स्वतन्त्र थे। स्विटजरलैंड का संघ स्वतन्त्र केन्टनों से मिलकर बना है। उन शक्तियों को छोड़कर, जो उन्होंने संघ को दे दीं, शेष अधिकार क्षेत्र में उनकी शक्तियाँ सुरक्षित हैं। इनमें से प्रमुख ये हैं—कानून और व्यवस्था बनाये रखना, सामाजिक कल्याण स्थानीय सार्वजनिक निर्माण कार्य, चुनावों का नियन्त्रण, सार्वजनिक शिक्षा और स्थानीय नियन्त्रण का शासन।

प्रत्येक केन्टन (और अर्द्ध केन्टन) का अपना संविधान है, जिसकी स्वीकृति जनता द्वारा होनी आवश्यक है। इस प्रकार की स्वीकृति संविधान के संशोधनों के बारे में भी आवश्यक है और उन पर संघ सरकार की भी स्वीकृति आवश्यक है। केन्टन के संविधान पर संघ सरकार की स्वीकृति वैसी ही है जैसी कि संयुक्त राज्य अमरीका में सर्वोच्च न्यायालय को राज्यों के संविधानों के सम्बन्ध में संवैधानिकता के प्रश्नों का निर्णय करने की शक्ति प्राप्त है। स्विटजरलैंड में संघीय सरकार

1. 'To many a Swiss, the canton or the local commune seems more important than the confederation, since they are closer to him and his affairs. He is a Swiss citizen by virtue of citizenship in a canton.'

—*F. M. Marx* (ed), Foreign Governments, p. 379

किसी संशोधन पर अपनी स्वीकृति रोके रखने का अधिकार रखती है। यदि (१) संशोधन सम्बन्धी धारा संघीय संविधान के प्रतिकूल हो। (२) वह जनता के राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग में हस्तक्षेप करती हो। और उसे जनता ने स्वीकार न किया हो।

साधारणतया केन्टनों के संविधान में नागरिकों का अधिकार-पत्र (Bill of Rights) होता है। प्रत्येक केन्टन की अपनी शासन-पद्धति पूर्ण है—उसकी अपनी कार्यपालक विधायी और न्यायिक शाखायें हैं। उन्हें अपने शासन संचालन के लिये कर लगाने की शक्तियाँ प्राप्त हैं। आज भी केन्टनों व स्थानीय शासन का कितना महत्व है इस बात से पता चलता है कि उन सबका मिलकर वार्षिक व्यय राष्ट्रीय सरकार के व्यय के लगभग बराबर होता है। संविधान में केन्टन के शासन के विभिन्न अंगों की शक्तियों और उनके आपसी सम्बन्धों की रूपरेखा दी होती है। स्विटजरलैंड के संघ में इस समय १६ पूर्ण और ६ अर्द्ध-केन्टन सम्मिलित हैं। एक दूसरे आधार पर हम केन्टनों को दो समूहों में रख सकते हैं। एक समूह में तो लैंड्सजमींडे वाले केन्टन हैं और दूसरे में प्रतिनिधिक प्रजातन्त्र वाले।

लैंड्सजमींडी (Landsgemeinde) **केन्टन**—स्विटजरलैंड के इन केन्टनों में अभी तक सबसे पुराने और विशुद्ध प्रजातन्त्र की प्रणाली प्रचलित है।[1] **लैंड्सजमींडी** का शाब्दिक अर्थ मतदाताओं की खुले मैदान में लोक-प्रिय सभा है, जो बहुत पुराने समय से चली आ रही है (old open-air popular assembly of voters)। एक केन्टन और चार अर्द्ध-केन्टन अपने अधिकारियों का चुनाव ऐसी खुली सभाओं में करते हैं। उन्हीं सभाओं में वे अपना वार्षिक बजट स्वीकार करते हैं और आवश्यक कानून भी पास करते हैं। उनमें प्रत्येक साधारण मतदाता को शासन के कार्य में प्रत्यक्ष रूप से सक्रिय भाग लेने का अवसर मिलता है। वास्तव में, इन केन्टनों का शासन मतदाता स्वयं चलाते हैं, उसका संचालन प्रतिनिधियों द्वारा नहीं होता। ये सभायें सं० रा० अमरीका के न्यू इंगलेंड के नगरों की सभाओं तथा भारत के बड़े गाँवों की सभाओं के समान हैं, किन्तु उनके बारे में महत्वपूर्ण बात यह है कि स्विटजरलैंड की ये सभायें स्विटजरलैंड के संघ की इकाइयों (राज्यों) के शासन से सम्बन्ध रखती हैं जबकि नगर-सभाओं या गाँव सभाओं का सम्बन्ध स्थानीय स्वशासन से होता है।

इस प्रकार की सभायें प्रति वर्ष अप्रैल या मई मास में किसी रविवार को होती हैं। इनका सभापतित्व केन्टन सरकार के अध्यक्ष (Landsman) करते हैं और सभाओं में संजीदगी का वातावरण रहता है। साधारणतया उनका आरम्भ प्रार्थना अथवा सामूहिक शपथ द्वारा होता है। इनकी कार्य सूची पहले ही तैयार कर ली

1. 'This is the oldest, simplest, and purest form of democracy which the world knows.' —*J. Bryce*, Modern Democracies, Vol. 1, p. 378.

जाती है। यह कार्य एक निर्वाचित परामर्शदात्री परिषद् कार्य-पालिका अधिकारियों की सहायता से करती है। वास्तव में, ये परामर्शदात्री परिषदें खुली सभा में आने वाले सभी प्रस्तावों पर विचार कर लेती है और उनके बारे में अपनी रिपोर्ट रखती हैं। अतएव उनका खुली सभा में मतदाताओं द्वारा किये जाने वाले मनन तथा विचार पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इन सभाओं में सभी प्रश्नों पर हाथ उठाकर मतदान कराया जाता है। इन खुली सभाओं की विभिन्न केन्टनों में उनके संविधान के अनुसार भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं। साधारणतया उनकी शक्तियों में ये सम्मिलित हैं—*संविधान का संशोधन, विधि-निर्माण, कर लगाना और व्यय स्वीकार* करना और अधिकारियों तथा परामर्शदात्री परिषदों को चुनना अथवा नियुक्त करना। शासन करने वाले निकायों के नव-निर्वाचित सदस्य खुली सभाओं के सामने अपने कार्य सच्चाई से करने की शपथ लेते हैं।

साधारणतया इन सभाओं को देखकर विदेशी दर्शक, यदि वे प्रजातन्त्र के समर्थक हैं, प्रसन्न होते हैं और प्रभावित भी। वास्तव में उनको ध्यान से कार्य करते देखना और उनकी कार्यवाही को सुनना एक महत्वपूर्ण अनुभव होता है। ये सभायें किसी सुन्दर चरागाह में होती हैं और उनका वातावरण भी गम्भीर और शान्त होता है। बच्चे और स्त्रियाँ, जिन्हें मतदान का अधिकार नहीं है, इन सभाओं में दर्शकों के रूप में सम्मिलित होते हैं। भावी नागरिक इनमें नागरिकता के *प्रथम पाठ सीखते हैं; इसीलिए इन्हें नागरिकता के उत्तम विद्यालय कह* सकते हैं।

इन केन्टनों का शासन पूर्णत: प्रजातन्त्र-गणतन्त्र नमूने का है, कम से कम संवैधानिक सिद्धान्त तो यही है।[1] यथार्थ में शासन का अधिकांश कार्य कार्यपालिका व प्रशासन अधिकारी करते हैं और विधि-निर्माण में भी परामर्शदात्री परिषदों तथा अन्य निर्वाचित निकायों का बड़ा महत्वपूर्ण भाग रहता है। रेपर्ड के मतानुसार इस प्रकार के प्रजातन्त्र के जीवित रहने के दो कारण हैं—प्रथम इसके पीछे बड़ी पुरानी रचनात्मक परम्परा है और दूसरा, इनकी कार्य सूची तैयार करने तथा इनके अन्य कार्य करने के लिए छोटे मननात्मक निकाय हैं। इस प्रकार इनका कार्य संचालन सुगमता से चलता है, फिर भी लैंडसजमींडी २०वीं शताब्दी की संस्था नहीं है और इसका भविष्य अनिश्चित है। इसे राजनीतिक जीवन की निरन्तर बढ़ रही पेचीदगी और जनता के तेजी से बदल रहे चरित्र से खतरा है। भविष्य

1. 'In formal constitutional theory, at least, these bodies exercise the legislative power of the canton and elect and supervise the cantonal executive and administrative officials. Hence Glarus and the four half cantons using Landsgemeinde must be regarded as possessing a Government of a purely democratic-republican type.

—*J. T. Shotwell (ed.)*, Governments of Continental Europe, p 355.

में इसका दीर्घकाल तक जीवित रहना केवल अजायबघर में रखे पुराने प्रजातन्त्र के नमूने अथवा अतीत की याद दिलाने वाली संस्था के रूप में ही सम्भव होगा।

प्रतिनिधिक केन्टनों की शासन पद्धति—अन्य केन्टनों अथवा अर्द्ध-केन्टनों में प्रतिनिध्यात्मक गणतन्त्र है, अर्थात् जनता अपने प्रतिनिधि चुनती है, जो शासन का संचालन करते हैं। उनके शासन के तीनों प्रमुख अंगों का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

विधायिकायें (Legislatures)—प्रत्येक केन्टन में निर्वाचित प्रतिनिधियों की एक सदन वाली (Unicameral legislature) विधायिका है, जिसे अधिकतर केन्टनों में बड़ी परिषद् (Great Council) कहते हैं और कुछ में केन्टन की कौंसिल। इसका चुनाव आनुपातिक पद्धति से आम मतदाताओं द्वारा होता है। इन सभी केन्टनों में प्रजातन्त्र को और अधिक विस्तृत रूप देने के लिये विभिन्न माला में प्रस्तावाधिकार और लोक-निर्णय जैसी प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की संस्थाओं का व्यापक प्रयोग किया जाता है। विधायी-लोक-निर्णय (Legislative referendum) कुछ केन्टनों में ऐच्छिक है, किन्तु अधिकतर में अनिवार्य। फलत: प्रतिनिधिक स्विस केन्टनों की शासन संस्थाओं में संघ से अधिक प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की माला पाई जाती है और उनमें तथा लैंड्सजमींडी केन्टनों में, जहाँ तक शासन के लिये जनता के प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व का प्रश्न है, बहुत कम अन्तर है।

कार्यपालिकायें (Executives)—केन्टनों में भी बहुत कार्यपालिकायें हैं अर्थात् कार्यपालिका शक्ति एक कमीशन में निहित है। इनके नाम केन्टनों में अलग-अलग हैं—कहीं पर ये कौंसिल (Governing Council), कहीं छोटी परिषद् (Small Council) और कहीं कौंसिल ऑफ स्टेट कहलाती हैं। इनके सदस्यों की संख्या साधारणतया ५ से लेकर ११ तक होती है और वे सभी जनता द्वारा चुने जाते हैं। कौंसिल का प्रत्येक सदस्य प्रशासन के एक विभाग का अध्यक्ष होता है। सामूहिक रूप से कौंसिल विधायिकों के प्रति उत्तरदायी होती है और उसकी इच्छा के अनुसार कार्य करती है। ये ही कौंसिलें विधेयकों के प्रारूप तैयार करती हैं और विधि-निर्माण में पहल करती है। इस प्रकार ये संघीय कार्यपालिका का ही छोटा रूप है।

न्यायपालिका (Judiciary)—पूर्वगामी अध्याय में बताया जा चुका है कि संघ का तो केवल एक ही न्यायालय है, जो संघ की न्यायपालिका में सर्वोच्च है। अत: न्याय प्रशासन अभी तक प्रधानत: केन्टनों के आधीन है। अधिकतर केन्टनों में, शान्ति के न्यायाधीशों अथवा छोटे दण्डाधीशों (Justice of the peace or petty magistrates) के न्यायालय कम्यूनों में छोटे दीवानी मुकदमे सुनते हैं। उनसे बड़े दीवानी मुकदमों की सुनवाई केन्टनों के जिला न्यायालयों में होती है, जिनकी अपीलें और ऊंचे न्यायालय—केन्टन न्यायालय या दीवानी न्याय के न्यायालय में जा सकती हैं। कुछ मामलों की अपीलें फेडरल ट्रिब्यूनल तक जाती हैं। राज्य

विरुद्ध अपराधों तथा फौजदारी मुकदमों की सुनवाई के लिये तीन स्तरों के न्यायालय हैं—छोटे अपराधों की सुनवाई पुलिस या दण्डाधीशों के न्यायालयों में होती है; उनसे अधिक गम्भीर अपराधों की सुनवाई सुधार न्यायालय (Correctional Courts) में होती है और अत्यधिक गम्भीर मुकदमों की सुनवाई के लिये फौजदारी न्यायालय (Criminal Court) या कोर्ट ऑफ एसाइजेज (Court of Assizes) हैं। गम्भीर अपराधों के लिये लम्बे बन्दीपन और नागरिक अधिकारों का छिनना दण्ड हैं, क्योंकि स्विटजरलैंड में मृत्यु दण्ड का अन्त हो गया है।

ब्राइस के अनुसार स्विटजरलैंड में दीवानी मुकदमों में ज्यूरी का प्रयोग नहीं होता। न्याय प्रशासन को कुछ सीमा तक जन-प्रिय बनाने का प्रयत्न किया गया है, क्योंकि कहीं-कहीं वकालत का व्यवसाय न करने वाले व्यक्तियों को भी न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है और न्यायाधीशों के साथ असेसरों को भी जोड़ा जाता है। कुछ केन्टनों में न्याय का प्रशासन बिना फीस के होता है तथा कुछ में निर्धन व्यक्तियों को कानूनी परामर्श व सहायता दी जाती है। न्यायाधीशों के विरुद्ध भ्रष्टाचार की शिकायत नहीं है। अस्तु, न्याय प्रशासन के चार गुणों—शुद्धता, शीघ्रता, सस्तापन और निश्चितता को ध्यान में रखते हुए स्विस न्याय पद्धति कम से पहली तीन बातों में इंगलैंड और सं० रा० अमरीका की न्याय पद्धतियों के समान अच्छी या अधिक अच्छी है।

२. कम्यूनों का शासन

स्विटजरलैंड को तो विशेष रूप से कम्यूनों का देश कहा जाता है। कुछ स्थानों पर तो कम्यून उतने ही पुराने हैं, जितने की केन्टन। कम्यून अभी तक शासन की सबसे छोटी इकाई है। छोटे केन्टन में तो कम्यून ही केन्टन के नीचे प्रशासनिक विभाग हैं; बड़े केन्टनों में केन्टन और कम्यूनों के बीच में कुछ बड़े प्रशासनिक विभाग हैं। कम्यून सबसे छोटी राजनीतिक तथा भूमिगत इकाइयाँ हैं। कुल कम्यूनों की संख्या ३,१०७ है। इनमें से कुछ थोड़े से बड़े शहर हैं; उनमें कुछ बड़ी संख्या में कस्बे अथवा शहरी समुदाय (Urban Communities) हैं और बहुत बड़ी संख्या गाँवों अथवा छोटे ग्रामीण समुदायों की है। कम्यूनों को सीमित स्वायत्तता के अधिकार प्राप्त हैं। कुछ भागों में तो कम्यून १८ वीं शताब्दी के अन्त तक यथार्थ में पूर्णतः स्वाधीन इकाइयाँ (virtually sovereign states, tiny but independent) थीं। अब भी स्विस कम्यून इंगलैंड के पेरिशों, ग्रामीण जिलों व काउन्टियों से अधिक स्वतन्त्र और संगठन में अधिक प्रजातन्त्रात्मक हैं। स्विस प्रजातन्त्र पूर्णतया समता पर आधारित है।[1]

1. 'The Swiss Communes are more independent and in many respects more democratic in their organization than the English parishes, rural districts and counties... Swiss democracy is equalitarian thr ugh and through.' —*Hans Huber*, How Switzerland is Governed, pp. 17-18.

रेपर्ड के अनुसार कम्यूनों के अग्रलिखित ५ विशेष पहलू हैं—(१) प्रत्येक स्विस नागरिक की राष्ट्रीय और केन्टन की नागरिकता के अतिरिक्त कम्यून की एक या अधिक नागरिकतायें (One or several communal citizenships) होती हैं। (२) नागरिक के उद्भव का कम्यून (Commune of origin or home Commune) वह है, जिसका की नागरिक जन्म से सदस्य होता है और जो उसके तथा उसके परिवार के लिये उत्तरदायी होता है। संघीय संविधान यह मानता है कि जब किसी नागरिक की जीविका का कोई साधन न रहे तो उद्भव के कम्यून को उसे और उसके परिवार को आर्थिक सहायता देनी चाहिये, वे चाहे जिस कम्यून में रहते हों। यदि आवश्यक हो तो उन्हें उसी कम्यून में आकर रहने के लिये बाध्य किया जा सकता है। (३) स्विस संविधान दो प्रकार के क्रम्यूनों का अस्तित्व स्वीकार करता है—उद्भव का कम्यून (Commune of origin) और निवास का कम्यून (Commune of residence)। क्योंकि कोई भी ऐसा स्विस नागरिक जो दिवालिया न हो किसी भी अन्य कम्यून में रह सकता है, जहाँ उसे निवासी होने के कारण कुछ स्थानीय कर देने होते हैं। (४) कम्यूनों में अनगिन भेद होते हुए भी उनके प्रशासन की साधारण पद्धतियाँ केन्टनों जैसी ही हैं। (५) वे अनेक प्रकार के सामाजिक और आर्थिक कार्यों का संचालन करते हैं।

कम्यून स्थानीय शासन के बहुत से कृत्यों का प्रशासन करते हैं। उनके कार्यों का क्षेत्र काफी मात्रा में केन्टनों के कार्यक्षेत्र से मिलता जुलता है। उनके द्वारा संचालित सार्वजनिक सेवाओं में प्रमुख ये हैं—पुलिस; शिक्षा; धार्मिक मामलों का विनियम; अजायबघरों, वाचनालयों और नाट्यगृहों को स्थापित करना अथवा सहायता देना; अग्नि से रक्षा, जन-कल्याण और निर्धनों को आर्थिक सहायता (poor relief)। कम्यूनों को न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। कुछ कम्यूनों के पा अपनी सम्पत्ति होती है और ग्रामीण क्षेत्रों में कम्यूनों के आधीन वन एवं चरागाह होते हैं। बड़े कम्यूनों की अपनी जल, बिजली और गैस की व्यवस्था है और कुछ में अपनी स्थानीय ट्रामवे हैं।

कम्यूनों का प्रशासनिक संगठन—उपर्युक्त कार्यों को करने के लिए कम्यूनों के बहुत से निकाय हैं। छोटे कम्यूनों में केवल ३ से लेकर ९ सदस्यों तक की छोटी-छोटी नगरपालिकायें (municipal councils) हैं, जिनके अध्यक्ष मेयर होते हैं। बड़े कम्यूनों में दो कौंसिलें हैं—उनमें से एक स्थानीय विधायी सभा होती है और दूसरी कार्यपालिका। सभी कौंसिलें निर्वाचित होती हैं; कभी-कभी नगर कौंसिलें कर लगाती हैं और कुछ निवासियों से व्यक्तिगत सेवा भी कराती हैं, यथा सड़क व पुल आदि की मरम्मत, अग्नि व बाढ़ से रक्षा। इस प्रकार की सेवा कर के बदले में की जाने की व्यवस्था है।

ऊपर्युक्त वर्णित कार्यों के करने के लिये राजनैतिक कम्यूनों (Political communes) के अतिरिक्त कुछ कम्यूनों में विशेष सामुदायिक निगम (special communal

corporation) अथवा विशेष कम्यून (special communes) भी हैं। उदाहरण के लिये १४ कम्यूनों में नागरिक कम्यून (citizen commune) हैं। इनके केवल वे ही व्यक्ति सदस्य होते हैं जो नागरिक हों इन नागरिकों के कुछ विशेष अधिकार होते हैं जैसे सामुदायिक सम्पत्ति में भाग और आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक सहायता पाने का अधिकार। विशेष प्रकार के दूसरे सामुदायिक निगम धार्मिक मामलों के लिये होते हैं, जो अपने सदस्यों के लिये सार्वजनिक पूजा आदि का संगठन करते हैं। परन्तु अधिकतर फ्रेंच भाषा-भाषी भागों में सभी स्थानीय सेवाओं और कार्यों को राजनीतिक कम्यूनों के ही अधीन एकीकृत किया हुआ है।

अन्त में, ब्राइस के अनुसार स्विटजरलैंड में स्थानीय स्वशासन का अत्यधिक महत्व है। यह प्रशासन के ढांचे का आधार ही नहीं, वरन् जनता के प्रशिक्षण का महत्वपूर्ण साधन भी है। योरप के अन्य किसी देश में स्थानीय शासन उस सीमा तक जनता के हाथों में नहीं है। स्विस निवासी स्वयं इस पर कई कारणों से बहुत बल देते हैं। यह सार्वजनिक कार्य में नागरिकों की शिक्षा का साधन है; यह उनमें नागरिक कर्त्तव्य पालन की भावना पैदा करता है; और यह सरकारी कार्यों को, स्थानीय पहल न खोते हुए, जनता के हित में कराने में सहायक है।

३. प्रत्यक्ष विधि-निर्माण

लोकनिर्णय और प्रस्तावाधिकार—ये प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की ऐसी संस्थायें हैं, जो स्विटजरलैंड में किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से प्रचलित हैं। स्विटजरलैंड से ही ये संस्थायें अन्य देशों, जिनमें सं० रा० अमरीका भी सम्मिलित हैं, में गई हैं। वे प्रजातन्त्र की सर्वाधिक उल्लेखनीय संस्थायें हैं क्योंकि उनके द्वारा जनता स्वयं प्रत्यक्ष कार्यवाही द्वारा विधि-निर्माण में भाग ले सकती है। आधुनिक प्रजातन्त्र के विद्यार्थी के लिये उससे अधिक शिक्षाप्रद और कोई संस्था नहीं है।[1] ब्यूएल के मतानुसार **प्रस्तावाधिकार और लोक-निर्णय** प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को लैंड्सजमींडी से सम्पूर्ण स्विस राष्ट्र तक विस्तृत बनाने के प्रयत्न के प्रतीक हैं।[2] दूसरे शब्दों में, लैंड्सजमींडी तो छोटे केन्टनों के लिए ही उपयुक्त है, उसे बड़ी जनसंख्या वाले केन्टनों तथा संघ शासन में लागू नहीं किया जा सकता परन्तु इन संस्थाओं के द्वारा सर्वसाधारण मतदाता सम्पूर्ण संघ के शासन अर्थात् विधि-निर्माण में प्रत्यक्ष भाग ले सकते हैं। ब्राइस के अनुसार प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की संस्थाओं के अपनाये जाने और उनके विस्तार के दो कारण अथवा श्रोत हैं—प्रथम, सम्पूर्ण जनता की प्रभुता

1. 'Switzerland is the ancient home of the initiative and referendum...... Nothing in the Swiss political system is more instructive to the student of modern democracy.'
—*Munro and Ayearst*, The Government of Europe, p 746.
2. 'The initiative and referendum represent an effort to extend the idea of direct democracy from the Landsgemeinde to the Swiss nation as a whole.' —*R. L. Buell* (ed), Democracy Government of Europe, p. 58.

का सिद्धान्त और दूसरा, आल्पस पर्वतों में स्थित छोटे समुदायों की प्रजातन्त्रात्मक प्रथायें।

लोक-निर्णय (referendum)—यह वह तरीका है जिसके द्वारा विधायिका में पास किये हुए कानून पर जनता का निर्णय प्राप्त किया जाता है। इसका संघ शासन तथा केन्टनों के शासन में प्रयोग होता है और इसके दो प्रमुख रूप हैं—ऐच्छिक तथा अनिवार्य (optional and compulsory)। अनिवार्य लोक-निर्णय की व्यवस्था सन् १८४८ के संघीय संविधान में ही सभी संवैधानिक परिवर्तनों के लिए थी; इस व्यवस्था को सन् १८७४ के संविधान में जारी रखा गया। अनिवार्य लोक-निर्णय ऐसे संशोधनों अथवा पूर्ण परिवर्तनों के लिए लागू है; जिनका प्रस्ताव फेडरल एसेम्बली रखती है। कोई भी संशोधन तभी वैध और प्रभावी होता है जबकि सम्पूर्ण संघ के भाग लेने वाले मतदाताओं तथा केन्टनों का बहुमत उसके पक्ष में हो। केन्टन और अर्द्ध केन्टन का मत उसके मतदाताओं के बहुमत से जाना जाता है—जो मतदाता लोक-निर्णय में भाग लेते हैं और इस सम्बन्ध में अर्द्ध केन्टन का आधा मत होता है।

पूर्ण परिवर्तन के लिए भी उपर्युक्त प्रक्रिया लागू होती है, जब तक कि फेडरल एसेम्बली के दोनों सदनों में मतभेद न हो। जब एक सदन पूर्ण परिवर्तन के पक्ष में हो और दूसरा उसका विरोध करे तो लोक-निर्णय इस प्रश्न पर कराया जाता है कि परिवर्तन के लिए कार्यवाही आगे बढ़े या नहीं। इस लोक-निर्णय में केन्टनों का मत नहीं लिया जाता। यदि लोक-निर्णय इस पक्ष में हो कि परिवर्तन किया जाय तो फेडरल एसेम्बली को संशोधित संविधान का प्रारूप तैयार करके लोक-निर्णय के लिये प्रस्तुत करना आवश्यक है। उसकी स्वीकृति के लिये उसके पक्ष में मतदाताओं तथा केन्टनों का बहुमत होना चाहिए। इसी प्रकार केन्टनों में उनके संविधानों व उनमें संशोधनों के लिये लोक-निर्णय आवश्यक है, क्योंकि संघीय संविधान में ही यह प्रावधान है कि केन्टनों के संविधान जनता द्वारा अनिवार्य रूप से स्वीकृत होने चाहियें। ८ केन्टनों में सभी कानूनों व प्रस्तावों के लिए भी अनिवार्य लोक निर्णय की व्यवस्था है।

ऐच्छिक लोक-निर्णय—सभी संघीय कानूनों और ऐसे प्रस्तावों के लिये, जिनका प्रभाव सभी पर पड़ने को हो और जिनके अन्तर्गत अविलम्ब कार्यवाही आवश्यक न हो ऐच्छिक लोक-निर्णय की व्यवस्था है। ऐसा तभी हो सकता है जबकि कम से कम ३०,००० नागरिक या ८ केन्टन ऐसी माँग करें। ७ केन्टनों में नागरिकों की विहित संख्या द्वारा माँग किए जाने पर कानूनों के लिए ऐच्छिक लोक-निर्णय की व्यवस्था है। तीन केन्टनों में कानूनों में इस आधार पर अन्तर किया जाता है कि कुछ के लिए लोक-निर्णय अनिवार्य है और दूसरों के लिए ऐच्छिक। एक केन्टन में कानूनों के लिए लोक-निर्णय की व्यवस्था नहीं है जिन केन्टनों में लैंड्सजमींडी की व्यवस्था है, उनमें लोक-निर्णय की आवश्यकता नहीं है। ऐसे भी कुछ केन्टन हैं

जिनमें महत्वपूर्ण वित्तीय मामलों के लिये भी अनिवार्य प्रशासनिक लोक-निर्णय (compulsory administrative referendum) की व्यवस्था है। इसके अनुसार यदि केन्टन की विधायिका द्वारा स्वीकृत व्यय की राशि एक नियत सीमा से बढ़ जाय तो उस पर जनता का मत प्राप्त किया जाता है।

प्रस्तावाधिकार (Initiative) **मनरो व एयर्स्ट** के शब्दों में "प्रस्तावाधिकार वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा मतदाताओं को एक विहित संख्या किसी कानून का प्रारूप तैयार कर यह माँग करे कि या तो उसे विधायिका स्वीकार करले अथवा उस पर जनता का मत प्राप्त करे।[1] यह एक प्रकार से ऊपर वर्णित संस्था का पूरक है; क्योंकि पहली सस्था के अनुसार विधायिका द्वारा पास किये गये संवैधानिक सशोधनों एवं कानूनों पर लोक-निर्णय कराया जाता है तो प्रस्तावाधिकार जनता को कानूनी प्रस्तावों में पहल करने का अधिकार देता है।

संघीय संविधान के सम्बन्ध में प्रस्तावाधिकार (Constitutional initiative)—५०,००० मतदाताओं के हस्ताक्षरों से संविधान में पूर्ण परिवर्तन का प्रस्ताव किया जाय तो उस पर वही कार्यवाही होती है जो कि तब होती है जबकि फेडरल एसेम्बली का एक सदन पूर्ण परिवर्तन का प्रस्ताव रखे और दूसरा उसका विरोध करे। यदि याचिका में किसी विशिष्ट संशोधन की माँग की जाय तो आगे की कार्यवाही इस पर निर्भर करेगी कि प्रस्तावित संशोधन को कानूनी रूप से प्रस्तुत किया गया है अथवा साधारण शब्दों में। यदि कानूनी रूप में प्रस्ताव पेश किया गया है और फेडरल एसेम्बली या उसका एक सदन उसे स्वीकार कर लेता है तो उस पर शीघ्र ही लोक-निर्णय कराया जाता है और मतदाताओं तथा केन्टनों का बहुमत पक्ष में होने पर वह प्रभावी हो जाता है। परन्तु यदि फेडरल एसेम्बली उसे अस्वीकार करे तो वह जनता से उसे गिराने की मांग कर सकती है, या उसके साथ अपनी ओर से वैकल्पिक प्रस्ताव (alternative proposal) लोक-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकती है और लोक-निर्णय के अनुसार कार्य होता है।

जब जनता द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव साधारण भाषा में होता है तो एसेम्बली उसके सम्बन्ध में भी दो प्रकार से कार्यवाही कर सकती है। यदि वह प्रस्तावित संशोधन की नीति से सहमत है तो उसके अनुसार संशोधन का प्रारूप तैयार कर उस पर जनता व केन्टनों का निर्णय प्राप्त करना पड़ता है। यदि एसेम्बली प्रस्तावित संशोधन से सहमत नहीं है तो उसे जनता का इस प्रश्न पर निर्णय प्राप्त करना होता है कि प्रस्तावित संशोधन के बारे में आगे कार्यवाही की जाय या नहीं। यदि जनता का निर्णय उसके पक्ष में होता है तो एसेम्बली को उसके अनुसार संशोधन

1. 'By the right of initiative, we understand the right of a definite number of voters to propose an amendment of the constitution, the drafting of a single constitutional or legal ordinance, and to demand popular vote upon it' —*Hans Huber*, How Switzerland is Governed, p. 27.

का प्रारूप तैयार कर उस पर जनता व केन्टनों का मत प्राप्त करना आवश्यक है। संघीय क्षेत्र में साधारण कानूनों के लिये प्रस्तावाधिकार नहीं है।

केन्टनों में प्रस्तावाधिकार—जेनेवा को छोड़कर जहाँ प्रति १५ वर्ष में अपने आप संविधान को दोहराया जाता है। सभी केन्टनों में नागरिकों की विहित संख्या आंशिक अथवा पूर्ण संशोधन की माँग कर सकती है। तीन केन्टनों के अतिरिक्त अन्य सभी केन्टनों में कानून व साधारण प्रस्तावों के बारे में प्रस्तावाधिकार की व्यवस्था है।

४. प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की समालोचना

प्रत्यक्ष विधि निर्माण के पक्ष और विपक्ष में बहुत से तर्क और तथ्य दिये गये हैं; उनमें से सभी में सत्य का कम या अधिक अंश है। हम इस विषय का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत संक्षिप्त विवेचन करेंगे—

प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के गुण—(१) यह सार्वजनिक शिक्षा का बड़ा उपयोगी साधन है। इसके द्वारा साधारण जनता में शासन व सार्वजनिक मामलों के प्रति व्यापक और सक्रिय अभिरुचि का विकास हुआ। (२) स्विटजरलेंड के संविधान में विधायिका द्वारा पास किये गये कानूनों अथवा प्रस्तावों पर कार्यपालिका का कोई प्रतिबन्ध अथवा राज्य के अध्यक्ष की प्रतिषेध जैसी कोई शक्ति नहीं है। अतएव लोक-निर्णय की व्यवस्था विधायिका द्वारा पारित विधियों पर एक उपयोगी और आवश्यक रोक है, जिसका प्रयोग साधारण मतदाता विधायिका द्वारा पास किये गये अनुचित अथवा त्रुटिपूर्ण कानूनों के विरुद्ध कर सकते हैं। (३) प्रत्यक्ष विधि-निर्माण द्वारा जनता में देशभक्ति की भावना को प्रोत्साहन मिला है; क्योंकि जनता में उत्तरदायित्व की भावना बढ़ी है। (४) लोक-निर्णय विधायिका द्वारा पारित कानूनों पर जनमत की स्पष्ट और निश्चित अभिव्यक्ति का अच्छा साधन है। इसके द्वारा ऐसे कानूनों पर, जिनके बारे में जनमत का स्पष्ट पता न हो, जनता के मत का पता लग जाता है।

(५) इसके द्वारा जनता के विभिन्न समूहों में तनाव कम होता है और जनता के असन्तोष को निकालने के लिए ये तरीके सुरक्षा नली के समान हैं। (६) इस व्यवस्था का होना विधायिकाओं के लिए एक प्रकार की चेतावनी है कि जनता की भावना अथवा समता जनमत से आगे न भागे।[1] (७) घोष के अनुसार स्विटजरलेंड में वर्गीय आधार पर उस प्रकार के कानून नहीं बने जैसे कि सं० रा० अमरीका, फ्रांस व इंगलैड आदि देशों में कभी-कभी बने हैं, क्योंकि स्विटजरलेंड में जनता प्रभुत्वपूर्ण तीसरे सदन के रूप में कार्य करती है।

1. '...the good done in securing the general assent of the people where their opinion was doubtful, in relieving tension, providing a safety-valve for discontent warning the legislatures not to run ahead for popular sentiment.' —*J. Bryce*, Modern Democracies, V. I. p. 447.

(८) ब्राइस के मतानुसार लोक-निर्णय से सरकार का स्थायित्व बढ़ा है और दली भावना उग्र होने की अपेक्षा क्षीण हुई है। इससे सकार को पूर्णतया लोकप्रिय स्वरूप प्राप्त हुआ है। इसने राष्ट्र को व्यक्तियों में विभाजित करने के स्थान पर सभी वर्गों को सामान्य कर्त्तव्य-पालन में एक दूसरे से मिलाया है; जिसके कारण यह एक संगठनात्मक शक्ति बन गया है।

प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के दोष—(१) आलोचकों का मत है कि जनता को ऐसे प्रश्नों पर मत देने का अवसर मिलता है, जिन्हें वे भली प्रकार समझते नहीं। आजकल जबकि विधि-निर्माण का कार्य आर्थिक और सामाजिक पेचीदगियों के कारण बड़ा कठिन हो गया है और विशेष रूप से विशेषज्ञों के लिए उपयुक्त है, जनसाधारण से यह आशा करना कि वे विचाराधीन विषयों को अच्छी प्रकार समझकर मत देते होंगे, अधिक उचित नहीं है। (२) प्रत्यक्ष विधि-निर्माण में प्रादेशिक और दलीय पक्षपात को बढ़ावा मिलता है और लोक-निर्णय ऐसे अनुचित आधारों पर होते हैं। (३) इस पद्धति के प्रयोग में बहुत अधिक व्यय होता है और जनता को बार-बार असुविधा भी होती है। (४) लोक-निर्णय के कारण उपयोगी कानूनों के बनने में देरी लगती है। (५) कुछ लेखकों के मतानुसार प्रस्तावाधिकार द्वारा विधि-निर्माण तथा कानूनों की लोक-निर्णय द्वारा अस्वीकृति बहुधा अल्प मत से होती है; क्योंकि साधारणतया ऐसे मत संग्रहों में लगभग ४५% मतदाता भाग लेते हैं। ब्राइस के मतानुसार सन् १८७४ और सन् १६१६ के बीच मतदान में भाग लेने वालों का प्रतिशत कभी-कभी ३० प्रतिशत तक रहा, अधिकतम प्रतिशत ७४ रहा और औसत प्रतिशत ५५।

इसी कारण लॉवेल का यह कथन उल्लेखनीय है—स्विटजरलैंड (और सं० रा० अमरीका) में डाले गए मतों की संख्या से हमारा यह विश्वास टूट गया है कि लोक-निर्णय जनमत की सच्ची अभिव्यक्ति का साधन है।[1] (६) कई लेखकों के मतानुसार लोक-निर्णय की व्यवस्था के अन्तर्गत विधायिकाओं के सदस्यों का स्तर गिर जाता है; क्योंकि वे अपना कार्य पूर्ण उत्तरदायित्व की भावना से नहीं कर पाते। स्विटजरलैंड की फेडरल कौंसिल के एक प्रतिष्ठित न्यायविद् डब्स ने कहा है—'यदि आप लोक-निर्णय लागू करते हैं तो संसद् एक मन्त्रणा समिति ही रह जाती है। इसका उत्तरदायित्व खो जाता है, क्योंकि यह किसी विषय पर निश्चित रूप से निर्णय नहीं करती।[2] (७) लोक-निर्णय पूरे कानून पर 'हाँ' या 'ना' में होता है और इस

1. 'These figures led Lowell to remark that the votes cast in Switzerland as well as in the U. S A shook our faith in she popular referendum as 'an infallible index of public opinion '
   See *R. C. Ghosh*, The Government cf the Swiss Republic, p. 112.
2. Dubbs remarked, 'If you introduce the referendum, Parliament becomes merely a consultative committee. Its responsibility disappears because it no longer decides anything definitly when the people pronounce in the last instance.' —*Ibid*, p. 11 .

बात की अधिक सम्भावना हो सकती है कि सम्बन्धित कानून के कुछ अंश आवश्यक और उपयोगी हों और कुछ अंश ऐसे हों जो जनमत के विरुद्ध हों। अतः यह पद्धति बहुत सीमा तक व्यावहारिक और वांछनीय नहीं। (८) प्रस्तावाधिकार के विरोधी यह तर्क देते हैं कि लोक-निर्णय के लिए प्रस्तुत कानून पर तो विधायिका में पहले ही पर्याप्त विचार हो चुकता है; किन्तु नागरिकों के एक समूह द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव ऐसे व्यक्तियों की ओर से आता है जिन्हें प्रशासन का अनुभव तथा व्यावहारिक कठिनाइयों का ज्ञान नहीं होता।

निष्कर्ष—सन् १८४८ और सन् १६४२ के बीच लोक-निर्णय द्वारा मतदाताओं ने ४३ संवैधानिक संशोधनों को अस्वीकृत और ४६ को स्वीकृत किया। इन संशोधनों का सम्बन्ध, अर्थव्यवस्था, वित्त, सामाजिक कल्याण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक नैतिकता, औद्योगिक विधि-निर्माण और अन्य महत्वपूर्ण विषयों से रहा। इस प्रकार इन क्षेत्रों में स्वयं जनता ने अपने संविधान को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार संशोधित किया। उसी काल में, जहाँ तक अन्य साधारण कानूनों का सम्बन्ध है, जनता ने १६ संघीय विधेयकों को स्वीकृत और ३१ को अस्वीकृत किया। लेखकों का मत है कि संवैधानिक प्रस्तावाधिकार के सम्बन्ध में मतदाताओं ने अधिकतम सावधानी से कार्य किया है; क्योंकि औसतन प्रति एक ऐसे प्रस्ताव की स्वीकृति के साथ ६ प्रस्ताव अस्वीकृत हुए हैं। सन् १८४८ के बाद एक शताब्दी में संघ की जनता ने प्रस्तावित कानूनों अथवा संवैधानिक संशोधनों को ६५ बार स्वीकार किया और ८५ बार अस्वीकार किया। भविष्य में कुछ भी हो, अतीत में रेकार्ड प्रशंसनीय रहा है। इस रेकार्ड से निर्वाचक मण्डल की स्थिर अभिरुचि, मतदान में भाग लेने वालों की वृद्धि और सावधानी व साधारण समझ पर आधारित निर्णयों का पता लगता है।

अधिकतर विदेशी लेखकों ने, जिनका प्रजातन्त्र में विश्वास रहा है, प्रत्यक्ष विधि-निर्माण पद्धति की स्विटजरलैंड में सफलता को स्वीकार किया है। घोष के अनुसार तो प्रस्तावाधिकार व लोक-निर्णय वह चूल है जिसके चारों ओर सम्पूर्ण स्विस शासन-पद्धति घूमती है। स्विटजरलैंड की बहुसंख्यक जनता इस पद्धति से सन्तुष्ट है। **ब्राइस और ब्रुक्स** (R. C. Brooks) जैसे अमरीकन लेखकों ने यह माना है कि इस पद्धति से लाभ हानियों से कहीं अधिक हैं। परन्तु हेन्स ह्यूबर के अनुसार लार्ड ब्राइस ने स्विटजरलैंड में अपनी अन्तिम यात्रा के अवसर पर मत प्रकट किया कि आर्थिक संघर्षों के युग में लोक-निर्णय व प्रस्तावाधिकार अधिक अनिश्चित अथवा शंका के योग्य हो गए हैं।

यह सच है कि स्विटजरलैंड में इन संस्थाओं की सफलता के लिए उपयुक्त दशायें विद्यमान रही हैं। ये संस्थायें छोटे आकार व कम जनसंख्या वाले राज्यों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं और स्विटजरलैंड इस दृष्टि से एक आदर्श राज्य है। साथ ही स्विटजरलैंड ऐसा राज्य है जहाँ दलीय भावना की प्रधानता नहीं है। इन

संस्थाओं की सफलता के लिए स्विटजरलैंड में अन्य ऐतिहासिक दशायें और जनता का चरित्र भी उत्तरदायी हैं। स्विस जाति को प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र व स्वशासन की संस्थाओं का सबसे अधिक व्यावहारिक अनुभव प्राप्त है, उसमें सामाजिक समता, देश-भक्ति और सार्वजनिक कर्त्तव्य पालन की भावनायें भी सुदृढ़ हैं। अन्य राज्यों में इन संस्थाओं को कार्यान्वित करने के अवश्य ही भिन्न परिणाम होते हैं। वास्तव में, जैसा ब्राइस ने कहा है, स्विटजरलैंड में इन संस्थाओं का विकास स्वाभाविक है। ब्यूएल का भी यह मत है कि स्विटजरलैंड की शासन-पद्धति में समझौता और सहनशीलता आवश्यक तत्व हैं। ऐसे राष्ट्र में जहाँ जनता पूर्ण सिद्धान्तों में अधिक विश्वास करती हो अथवा जहाँ जनता का झुकाव सिद्धान्तों पर अतिवादी वाद-विवाद की ओर हो, वहाँ स्विस-पद्धति सुचारु रूप से नहीं चल सकती। स्विस संविधान में दलों के नाटकीय संघर्षों के लिए स्थान नहीं है, जैसा कि अन्य देशों में पाया जाता है और न ही वहाँ जनता के लिए किसी दूरगामी सुधार के पक्ष में आन्दोलन के लिए अवसर है।

अन्त में, यह एक माना हुआ तथ्य है कि स्विटजरलैंड का संविधान जनता को अपने सार्वजनिक मामलों के प्रबन्ध में विश्व के अन्य किसी भी राज्य की तुलना में अधिक भाग लेने का अवसर प्रदान करता है। प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की प्रक्रिया जनता की प्रभुता पर बल देती है। इसके दो मुख्य लाभ हैं—(१) यह विधायिका को जनता से सम्पर्क बनाए रखने में सहायता देती है। (२) यह जनता में इस बात के लिए जीवित अभिरुचि पैदा करती है कि वे अपने देश के सार्वजनिक मामलों में सक्रिय भाग लें। आर० सी० ब्रुक्स ने सच ही कहा है कि इस पद्धति के लाभ हानि से कहीं अधिक हैं। ब्राइस ने लिखा है—'ये दोनों संस्थायें—लोक निर्णय और प्रस्तावाधिकार, आज की विधि से जिसमें विधायन प्रतिनिधि सभायें करती हैं प्राचीन विधि की ओर वापसी का प्रयत्न है, जिसमें कि जनता स्वयं कानून बनाती थी।'[1]

प्रश्न

१. स्विस केन्टनों के शासन के बारे में आप क्या जानते हैं?
२. कम्यूनों के शासन का वर्णन कीजिए।
३. क्या यह सच है कि केन्टनों के शासन में केन्द्रीय सरकार की अपेक्षा और कम्यूनों केन्टनों के शासन की अपेक्षा प्रजातन्त्र का अधिक तत्व है?
४. प्रत्यक्ष-विधि निर्माण से आप क्या समझते हैं? लोक-निर्णय और प्रस्तावाधिकार का अ[र्थ] बताइए।
५. स्विटजरलैंड में लोक-निर्णय व प्रस्तावाधिकार की विधियों का वर्णन कीजिए।
६. प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के लाभों और हानियों का विवेचन कीजिए।
७. स्विटजरलैंड में प्रत्यक्ष विधि-निर्माण पर एक छोटा निबन्ध लिखिए।

1. *I. Bryce*, op. cit , p. 418.

५. राजनीतिक दल

१. दलीय पद्धति की विशेषतायें

(१) स्विटजरलैंड के राजनीतिक दलों का आधार केन्टन है न कि संघ अथवा राष्ट्र।[1] इसके लिये ये कारण उत्तरदायी हैं—(अ) साधारण स्विस नागरिक यह विश्वास करता है कि उसके भाग्य का निर्धारण अधिकांशत: स्थानीय राजनीति द्वारा होता है, संघीय नीतियों द्वारा नहीं। (आ) दलों के निर्माण और संगठन का आधार प्राथमिक रूप में स्थानीय प्रश्न हैं। स्विटजरलैंड में राष्ट्रीय चुनाव होते नहीं (Switzerland does not know national elections)। अतएव ब्राइस का यह कथन बहुत ही उपयुक्त है : सं० रा० अमरीका में राष्ट्रीय दलों ने राज्यीय दलों को घेर लिया है। इसके विरुद्ध, स्विटजरलैंड में, राष्ट्रीय दलों का अस्तित्व ही उनका केन्टनों में अस्तित्व है।

(२) स्विटजरलैंड के शासन में दलों का महत्व फ्रांस और इंगलैंड से बहुत कम है; क्योंकि (अ) कार्यपालिका क्षेत्र में सदन मन्त्रियों को हटा नहीं सकते और (आ) विधायी क्षेत्र में विधायिकाओं को अन्तिम निर्णय की शक्ति प्राप्त नहीं है, जो प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के कारण जनता में निहित है।[2] सघीय एसेम्वली के दोनों सदनों में दलों का बहुत ढीला ढाला संगठन है। दलों के न सचेतक होते हैं और न अनुशासन ही कठोर होता है। इस कारण स्विटजरलैंड में दलीय संघर्ष बहुत कम कटु होता है और अन्य देशों की अपेक्षा दलीय भावना भी कम तीव्र है। हेन्स ह्यूबर के मतानुसार व्यावसायिक तथा अन्य वार्षिक संगठनों के कारण भी दलों का प्रभाव कम है।

(३) स्विटजरलैंड में बहु-दलीय पद्धति है अर्थात् कई प्रमुख दल हैं। इसके लिये भी कई कारण उत्तरदायी हैं। प्रथम, वहाँ के निवासियों में अनेक प्रकार की विविधतायें हैं। ब्राइस के मतानुसार बहुत से दलों के उदय के लिये स्विटजरलैंड से अधिक प्रचुर सामग्री योरप के अन्य किसी देश में नहीं है। दूसरे, स्विटजरलैंड में आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार चुनाव होते हैं और यह मानी हुई बात

1. '...the parties, whose importance we have measured by their success at the elections of the National Council, are essentially cantonal, and not federal, organisations.'

—*W. E. Rappard*, The Government of Switzerland, p. 104,

2. The parties play a role far inferior to that of a party in France or England, because in the executive sphere the Houses can not displace the ministers, and in the legislative sphere the Houses have not the last world, since that belongs to the people.'

—*J. Bryce*, Modern Democracies, Vol. I, p. 390.

है कि इसके अन्तर्गत छोटे दल भी जीवित रहते हैं तथा यह बहुदलीय पद्धति के विकास में बड़ा योग देती है। तीसरे, वहाँ पर कार्यपालिका के सदस्य एक दल के नहीं होते, वे कई दलों के सदस्य हो सकते हैं। यह भी आवश्यक नहीं कि वे एक सामान्य कार्यक्रम को मानने वाले हों। ब्युएल के मतानुसार स्विटजरलैंड इस तर्क के विरुद्ध प्रमाण है कि प्रजातन्त्रात्मक शासन केवल बहुमत और अल्पमत दलों के आधार पर ही कुशलतापूर्वक चल सकता है।[1] फेडरल एसेम्बली के दोनों सदनों तथा फेडरल कौंसिल में भी कई दलों के प्रतिनिधि होते हैं।

(४) राजनीतिक दलों का संविधान में कोई उल्लेख नहीं है। अन्य राज्यों में भी साधारणतया संविधान में दलों के विषय में प्राविधान नहीं है। परन्तु जब से आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति को लागू किया गया है, तब से राजनीतिक दलों को अप्रत्यक्ष रूप से संविधान में स्थान मिला है।

(५) स्विटजरलैंड में बावजूद धार्मिक और जातीय विविधताओं के, जनता में अनेक बातों में एकता है। अब वहाँ ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं रहे हैं जो देश की जनता को शत्रु शिविरों में विभाजित करें। बहुत समय से धर्म एकता को खण्डन करने वाला नहीं रहा। वहाँ धार्मिक सहनशीलता के विकास के, आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति ने अल्पसंख्यकों को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किये हैं। अब ऐसे संवैधानिक प्रश्न जैसे गणतन्त्रवाद और राजतन्त्र तथा केन्द्रवाद व संघवाद जनता को उत्तेजित नहीं करते। ऐसे ही आर्थिक क्षेत्र में भी वहाँ तीव्र वर्गीय शत्रुतायें नहीं हैं, क्योंकि वहाँ धन और निर्धनता की अतियों का अभाव है।

(६) **ढीला-ढाला संगठन**—चूंकि स्विटजरलैंड में भाषा, धर्म, केन्टनों के प्रति निष्ठा आदि के कारण कई प्रकार के विभाजनात्मक प्रभाव शेष हैं, अतएव बड़े दलों के समर्थक प्रायः सभी भागों में पाये जाते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, दलों का स्थानीय अथवा केन्टनों में संगठन अधिक महत्वपूर्ण है। सिवाय सोशल-डेमोक्रेटिक दल के, जिसने केन्द्रीय संगठन को काफी विकसित कर लिया है और जिसका यथार्थ में राष्ट्रीय संगठन बन गया है, अन्य प्रमुख दल तो केन्टनों में संगठित स्वाधीन दलों और समाज राजनीतिक प्रवृतियों वाले व्यक्तियों के शिथिल संघटन हैं। ये ही केन्टनों में संगठित दल धन की व्यवस्था करते हैं और नेशनल कौंसिल के चुनावों में भाग लेते हैं।

(७) अन्तिम उल्लेखनीय विशेषता यह है कि स्विटजरलैंड में विपक्ष (opposition) का अभाव है। ब्रिटेन में तो विपक्ष को सरकारी मान्यता प्राप्त है और वह बड़े उत्तरदायित्व से कार्य करता है। परन्तु महाद्वीप के अनेक देशों में विपक्षी दलों

1. 'Switzerland disproves the contention that a democratic government must work efficiently except upon the basis of a majority and minority party.' —*R L. Buell (ed)*, Democratic Governments in Europe, p. 577.

में अनुत्तरदायित्व तथा देश के प्रति निष्ठा में कमी की प्रवृत्तियाँ भी दिखाई पड़ती हैं। स्विटजरलैंड में उस प्रकार का संगठित विपक्ष है ही नहीं जैसा कि सांसद प्रजातन्त्रों में सामान्यतः होता है। इसका कारण बड़ा सरल और स्पष्ट है। फेडरल कौंसिल में सभी महत्वपूर्ण दलों के प्रतिनिधि रहते हैं। केवल श्रमिक (साम्यवादी) दल ही इससे बाहर है। किन्तु वह बहुत छोटा और प्रभाव हीन है।

अन्त में स्विस दलीय पद्धति में कई गुण हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—(अ) स्विटजरलैंड में राजनीति के आधारभूत सिद्धान्त ये हैं—स्विटजरलैंड की स्वतन्त्रता, देश की तटस्थता और उसके व्यापार में वृद्धि। इनके बारे में सभी दल एक-मत हैं। (आ) स्विटजरलैंड में अतिवादी दलीय सगठनों का विकास नहीं हुआ है—कुछ समय के लिये नाजी दल का उदय हुआ था, जिसे शीघ्र ही दबा दिया गया था। कुछ थोड़े से साम्यवादी भी रहे हैं किन्तु उनकी संख्या और प्रभाव भी कम हैं। वहाँ के समाजवादी प्रजातन्त्रवादी (Social Democrats) भी मार्क्स के सिद्धान्तों को मानने वाले नहीं; वे तो श्रमिकों की दशाओं में सुधार के समर्थक हैं। यथार्थ में राजनैतिक अतिवादी सिद्धान्तों में स्विस मतदाताओं के लिये आकर्षण नहीं है।[1] (इ) स्विटजरलैंड में दलों के चुनाव आदि के तरीके औचित्य की सीमा के भीतर रहते हैं, वे अनुचित व्यय नहीं करते और वे राजनीतिक जीवन में सच्चरित्रता का भी ध्यान रखते हैं।

ब्राइस के मतानुसार स्विटजरलैंड में राजनीति का संचालन विश्व के अन्य किसी भी भाग से कम व्यय में होता है। स्विटजरलैंड मे दलीय संगठन अमरीका के मशीन जैसे संगठन की बुराइयों से मुक्त है। स्विटजरलैंड के दलों के हाथ में अपने समर्थकों को देने के लिए सार्वजनिक पदों की संख्या बहुत कम है, अतएव दल मशीन-राजनीति से दूर रहते हैं और उनके संगठन में शुद्धता है। घोष के मतानुसार स्विटजरलैंड में दलीय पद्धति के दोष, जो अन्य सभी जगह पाये जाते हैं, लोक-निर्णय की पद्धति द्वारा सीमाओं के भीतर रहे हैं। देश का छोटा आकार स्विस लोगों में पारस्परिक सहिष्णुता दलों का ढीला-ढाला संगठन आदि ऐसे कारण हैं जिन्होंने मिलकर देश में असाधारण सुखमय स्थिति उत्पन्न कर दी है।[2]

1. 'The Social Democrats are far from doctrinaire Marxist and really a reformist labour party... the political extremes have held little attraction for the Swiss voter.'
—*Munro and Ayearst*, The Governments of Europe, p. 749.

2. 'The smallness of the country, the mutual tolerance which the Swiss have learned to practise, the fact that parties are loosely organised are all factors, which have helped to bring about this felicitous state of affairs.'
—*Adams et al*, Foreign Governments and Their Backgrounds, p 422.

२. प्रमुख दलों का संक्षिप्त परिचय

रेडिकल डेमोक्रेट्स (Redical Democrats)—यह एक उदार किन्तु उग्रवादी अथवा प्रगतिशील प्रजातन्त्रवादी (Progressive Democratic) दल है। सन् १६१६ में नेशनल कौंसिल के लिये चुनाव हेतु आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के लागू होने से पूर्व बहुत समय तक नेशनल कौंसिल में इस दल का बहुमत रहा। आज भी यह एक प्रमुख दल है। किन्तु यह मुख्यतः केन्टनों का ही दल है। इसके समर्थक देश के सभी भागों में हैं और जनता के सभी वर्गों में पाये जाते हैं। यह दल केन्द्र की वृद्धि पूर्ण शक्तियों का समर्थक रहा है। इसी के प्रयत्नों से रेलों का राष्ट्रीयकरण हुआ। देश में मुद्रा और राष्ट्रीय प्रतिरक्षा का एकीकरण हुआ और अनेक सार्वजनिक उपयोगिता व सामाजिक सुरक्षा के कानून पास हुए। यह दल अब भी संघ में केन्द्रीयकरण अर्थात् सुदृढ़ संघीय शासन का समर्थक है। इस दल का अभी तक धर्मनिर्पेक्षता (secularism), व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं की प्रत्याभूति और राजनीतिक प्रजातन्त्र में विश्वास है। ये उग्रवादी पर्याप्त राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के लिये सैनिक संगठन की स्थापना पर जोर देते हैं।

केथोलिक कन्जरवेटिव पार्टी (Catholic Conservative Party)—इस दल में, जैसा कि नाम से ही पता लगता है, केथोलिक सदस्य हैं और उनका दृष्टिकोण कन्जरवेटिव अर्थात् अनुदारवादी है। इस दल का दूसरा नाम 'क्रिश्चियन डेमोक्रेट्स' भी है। यह दल केथोलिक चर्च के सामाजिक सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करता है। इसने केन्टनों की अधिक स्वतन्त्रता, शराब पर कर और साधारण सामाजिक सुधारों का समर्थन किया है। इसकी दो मुख्य माँगें पारिवारिक जीवन तथा सम्पत्ति के लिये विशेष रक्षण की हैं। यह केन्द्रीयकृत समाजवादी राज्य के विरुद्ध है, परन्तु समाजवादियों की तरह यह स्त्री मताधिकार का समर्थन करती है। किन्तु इसका कारण यह है कि चर्च का स्त्रियों पर अधिक प्रभाव है, अतः उन्हें मताधिकार मिलने से दल की शक्ति बढ़ेगी। रेपडे के मतानुसार यह दल न तो व्यक्तिवादी है और न उदारवादी, वरन् धार्मिक राजनीति में विश्वास रखता है। परन्तु इस दल में भी वामपंथी अंग (Left wing) है, जो ईसाई ट्रेड यूनियनों से बना है। इन यूनियनों के सदस्य अब वृद्धिपूर्ण कल्याणकारी विधि-निर्माण की माँग कर रहे हैं।

लिबरल डेमोक्रेट (Liberal Democrats)—वास्तव में, जिन लोगों ने प्रतिक्रियावादी और संघ विरोधी केथोलिकों का विरोध किया तथा सन् १८४८ के संविधान का समर्थन किया वे सभी उदारवादी (Liberals) अथवा केन्द्रवादी पार्टी के सदस्य कहलाये, परन्तु समय बीतने पर ऐसी अनेक आर्थिक समस्याएँ उठीं कि उन्हें उदारवादी निःहस्तक्षेप (*laissez faire*) की नीति द्वारा हल न किया जा सका, अतएव उदारवादियों के दो दल बन गये। एक दल ने, जो उग्रवादी कहलाने लगा, रेलों के राष्ट्रीयकरण और सरकार के अधिक विस्तृत कार्यक्षेत्र का समर्थन किया। दूसरे दल ने स्वतन्त्रता का अर्थ भारी कर से मुक्ति तथा राज्य के बढ़े हुए

हस्तक्षेप के विरोध से लिया। उदारवादियों का दक्षिणपंथी अंग (Righ wing) एक प्रकार से समाजवाद का विरोधी है। वर्तमान शताब्दी में उदारवादियों के दल का नाम 'लिबरल–डेमोक्रेटिक पार्टी' पड़ा। यह दल समाजवाद और संघ द्वारा प्रत्यक्ष कर लगाये जाने का विरोधी है। यह स्वतन्त्र व्यापार और सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में क्रमिक विधि-निर्माण का समर्थन करता है। इस दल के समर्थकों में अधिकतर धनी प्रोटेस्टेन्ट और उच्चतर मध्यम वर्ग के व्यक्ति हैं।

सोशल डेमोक्रेट्स (Social Democrats)—वर्तमान समय में यह सबसे बड़ा दल है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इसने कुछ समय तक मार्क्सवादी सिद्धांतों—वर्गयुद्ध और क्रांति—को अपनाया, किन्तु बहुत समय से इसने प्रजातन्त्री सिद्धांतों और एक प्रकार के विकासवादी-समाजवाद को ही स्वीकार किया हुआ है। स्विटजरलैंड में बड़े उद्योगों और भूमिहीन सर्वहारा-वर्ग के विकास तथा आर्थिक समस्याओं की निरन्तर वृद्धिपूर्ण पेचीदगियों व अविलम्ब कार्यवाही की आवश्यकताओं के कारण इस दल का प्रभाव बहुत बढ़ा है। इसका ट्रेड-यूनियनों से निकट सम्पर्क है, जो प्रजातन्त्र की समर्थक रही है। आजकल स्विटजरलैंड में यही सबसे अधिक सुसंगठित दल है और इसकी शाखाएँ सम्पूर्ण देश में फैली हैं। इसके कार्यक्रम में सम्मिलित मुख्य बातें ये हैं—उद्योगों और निजी एकाधिकारों (Private monopolies) का राष्ट्रीयकरण, श्रमिकों के लिये उच्च वेतन बेकार, व्यक्तियों के लिये आर्थिक सहायता, काम पाने के अधिकार को मान्यता दिलाना, सामाजिक बीमे का विस्तार और स्त्रियों के लिये मताधिकार।

पीजेन्ट्स, आर्टिजन्स व मिडिल क्लास पार्टी (Peasants or Agrarian Artisans and Middle-class Party)—यह किसानों, हस्त कलाकारों और मध्यम वर्ग के लोगों का दल है। स्विटजरलैंड में किसानों और उनके दल का बड़ा महत्व है। घोष के मतानुसार स्विटजरलैंड के किसानों का दल उग्रवादियों (Radicals) की तुलना में अधिक अनुदारवादी है। इसका बल अधिक सुदृढ़ राष्ट्रीय प्रतिरक्षा, अधिक केन्द्रीयकरण, संघ से इकाइयों को अधिक आर्थिक सहायता, अन्न उत्पादन को प्रोत्साहन, कृषि की पैदावार का मूल्य नियत करना आदि पर है। यह मुख्यत: किसानों का दल है, किन्तु यह शहरी मध्यम वर्ग के कल्याण का भी समर्थक है। आर्थिक प्रश्नों के बारे में इसका दृष्टिकोण मार्क्सवाद का विरोधी है।

अन्य दल—मजदूरों का दल एक प्रकार से साम्यवादी दल है। सरकार ने इसे सन् १९४० में अवैध घोषित कर दिया था, परन्तु अब यह अवैध नहीं रहा है। इस दल का अन्तर्राष्ट्रीय नीति में सोवियत संघ के हितों से मेल खाता है। स्विटजरलैंड में साम्यवादी दल की कमजोरी के लिए मुख्य कारण दो हैं: (१) इसे कानूनी प्रतिबन्धों के अन्तर्गत काम करना पड़ता है। (२) स्विटजरलैंड में आर्थिक और राजनीतिक स्थिरता रही है और बहुत कम व्यक्तियों को देश की दशाओं से गहरा असन्तोष रहा है।

दूसरे विश्व-युद्ध से पूर्व साम्यवाद के विरोध और जर्मनी में नाजी दल के विकास के कारण स्विटजरलैंड में भी नाजी विचारधारा के समर्थकों के छोटे-छोटे दल बने थे अथवा आन्दोलन चले थे जो 'यूनियन' फ्रंट कहलाये। नेशनल फ्रंट और 'स्विस नेशनल मूवमेंट' को, जिनका स्वरूप विशेषतया नाजी था, सन् १९४० में अवैध घोषित कर दिया गया था। पूर्व वर्णित दलों के अतिरिक्त, अन्य कई छोटे-छोटे दल अथवा राजनीतिक समूह भी हैं। इनमें हम उदार समाजवादियों (Liberal Socialists), डेमोक्रेट्स और इन्डीपेन्डेन्स को सम्मिलित कर सकते हैं।

प्रश्न

१. स्विटजरलैंड की दलीय पद्धति की मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
२. स्विटजरलैंड की दलीय पद्धति के गुणों और दोषों का विवेचन कीजिए।
३. स्विटजरलैंड के प्रमुख दलों के नाम बताइये और उनमें से किन्हीं दो के बारे में संक्षिप्त टिप्पणियाँ दीजिए।
४. निम्नलिखित वाक्यों को समझाकर लिखिए :—
   (अ) स्विटजरलैंड में बहु दलीय पद्धति है।
   (ब) स्विटजरलैंड में विपक्ष (opposition) का अभाव है।
   (स) स्विस राजनीतिक दलों का संगठन केन्टनों पर आधारित और ढीला-ढाला है।
   (द) स्विटजरलैंड में प्रजातन्त्र बहुमत और अल्पमत के बीच संघर्ष के बिना सुचारु ढंग से चल रहा है।